मुग्धवीधं व्यॉकरंगंम्

महामहोपाध्यायेन श्रीमता वोपदेव-परिहतेन

विरचितम्

श्रोमद्भि दुर्गादासे-राम-गङ्गाधर-तंर्भवागीशैः

प्रणीताभ्यो विव्वतिभ्यः सारमाकलय पाणिन्यादिस्त्रसाम्यमभिग्नदृश्यं च

स्रीगिरिशचन्द्र-विद्यारलेन'

हतीयं संस्तरणम

कलिकाता

गिरिय-विद्यारत-वर्त्तान चतुर्विगति-सङ्ग्राक-स्त्रानि गिरिय-विद्यारत-यन्ते शीग्राग्रिम्वण भहावार्येण सुद्रितं प्रकाशितच

१८८१

প্রথম শংস্করণের বিজ্ঞাপন।

এতদেশে যে যে ছলে সংস্কৃত ভাষা শিক্ষার রীতি আছে তাহার অধিকাংশেই, অন্নারাদে ও অন্ন ধিবনে বৃৎপাদক বলিয়া, মুদ্ধবোধ ব্যাকরণ পাঠনার প্রচলন দেখা যায়। তনিমিত্ত এই ব্যাকরণ অনেকপ্রকার আকারে অনেকবার মৃদ্রিত হইয়াছে। কিন্তু ঐ সকল মৃদ্রিত প্রত্যাকরণ অধিকাংশই অম-প্রমাদে পরিকলিত। তন্তিবন্ধন অধ্যাপক ও অধ্যত্ন প্রদেশ পাঠনা ও পঠন কার্যের অত্যন্ত অস্বিধা জন্মে, এবং অনেক বালকই অভন্ধ ও অসংলগ্ন পুত্তক অস্বালনবণতঃ প্রায়ই প্রকৃত বৃৎপত্তি লাভ কুরিতে সমর্থ হয় না। আমি ঐ অস্বিধা ও অনিই নিবারণের বাসনায় এই শ্বন্তক মৃদ্রিত করিলাম।

শীন্ত বাবু ভাষাচবণ দরকার মহাশার, ইতিপ্রের মুধ্বোধ ব্যাকরণ সজ্জিপ্ত টীকার সহিত বাঙ্গালা অক্রে মৃত্তিত করিতে আবত্ত করিয়ছিলেন, সন্ধ্যার এবং শব্দেরও কিরণংশ প্রাক্তরণের টীকা-সকলেন সমর্থ না হইয়া, নিল প্রণালীতে তাহা প্রস্তুত করিতে, এই অভিসন্ধিপ্রেক, আমাকে ভার দেন, যে সময়ে সময়ে উভয়ে এক জিত হইয়া মংসংগৃহীত টীকা পুন্দৃষ্টি করত মৃত্যাকনার্থে প্রস্তুত করিব। কিন্ত তাহা করিতেও তিনি সময় না পাইয়া আমার প্রতিই সম্পূর্ণ ভারাপণি করেন। তদম্সারে আমি ঐ প্রণালীমতে ছুগালাস, রাম ও গঙ্গাল্ব তর্কবাগীশের টীকা হইতে সার সংগ্রহপ্রকি সম্দ্র গ্রন্থ মৃত্তিত করিলাম। সংশোধন ও স্বাবাধ বিষয়ে যথাসাধ্য যত্ব ও পরিশ্রম করিয়াছি।

অধ্যাপক ও ছাক্র-বর্গের বিশেষ স্থবিধার উদ্দেশে, প্রত্যেক স্ক্রের নিম্ভাগে পদছেদপূর্ব্ব বিভক্তিনির্দেশ কবিয়াছি। ১০ইত্যাদি অঙ্ক, প্রথমা দ্বিতীয়াদি বিভক্তির জ্ঞাপক,
এবং ।, ॥, ॥, এই চিহুগুলি, একবচন, দ্বিচন ও বছবচনের স্চক। আর কোন কোন
ছলে ১০ই ইয়াছে। মূল প্রস্থেন স্থাপি ভাগে একা দিক্রনে অঙ্ক বিভক্তির সঙ্কেত
করা হইয়াছে। মূল প্রস্থেন মত স্ত্রের আদি ভাগে একাদিক্রনে অঙ্ক বিন্যান করিয়া,
টাকার মধ্যে পদনাধন-স্থা শক্ত অঙ্কির উল্লেখ করিয়াছি, ভাহাতে পদনাধনের
উপ্যোগী সম্দ্র স্ত্রগুলি অনায়ানেই নিকাশিত হইতে পারিবে। এই প্রণালীতে সন্ধি,
শক্ষ, ভিত্ত ও কুদ্বের সমন্ত্র পদই প্রায় নাধিত হইয়াছে।

গ্রন্থকরে এই ব্যাকবণে দশটী অধ্যায় এবং প্রত্যেক অধ্যারে চারি চারি পাদ নির্দেশ করিয়াছেন; ঐ দশ অধ্যায় ও চল্লিশটী পাদ যে যে পৃষ্ঠে মৃত্রিত হইয়াছে, ঐ ঐ পৃষ্ঠের অধ বিন্যাসপুর্বক একটা নির্ঘট-পত্র আদিভাগে বেজিত হইল। এবং এই গ্রন্থে যতগুলি সংজ্ঞা, শব্দ, ধাতু, সমাসান্ত, স্থী-প্রত্যায়, তদ্ধিত-প্রত্যায় এবং কং-প্রত্যায় নির্দিপ্ত ইইয়াছে ঐ সমন্তই, অকামাদি বর্ণজ্ঞানে স্থটী করিয়া, এই পৃশুকের যে যে পৃষ্ঠে বা যে যে স্ক্রেই সকল বিষয় নির্দিপ্ত আছে, ঐ সূচী সকলে তাহার অধ বিন্যাসপ্রকি, শেষ ভাগে সংযোজিত হইল। যে কোন ব্যক্তির এই ব্যাকরণের যে কোন বিষয় জানিবার প্রয়োজন ইইবে, তিনি ঐ সূচী দৃষ্টে তংক্ষণাৎ তাহা অক্লেশেই নিষ্কাশিত করিতে পাবিবেন।

এই গ্রন্থ মূলিত করিতে যেরূপ বায় হইয়াছে, ন্নেকলেও চানি টাকা মূল্য করিলেও চাহার অনুরূপ হয় না, কিন্তু, ভাহা হইলে পাঠকবণের, বিশেষতঃ বালকদিগের, ক্রয় করিতে কট্ট হইতে পাবে, এই বিবেচনায়, বিন্দুমাত্র অর্থলাভাংশ পরিত্যাগ করিয়া, ইহার মূল্য ২॥। আড়াই টাকা ছুরে করিলাম।

এক্সনে অধ্যাপক মহাশয়দিগের নিকট প্রার্থনা—

্এই পুরুকে যে সকল দোষ দৃষ্ট ইইবে, অথবা কোন বিষয়ের ন্যনতা বা আধিক্য অমূভ্ত ইইবে, অমূএহ করিয়া ঐ ফ্রটি সংশোধনপুর্লক অব্যয়ন কবাইবেন। এবং আমার প্রতি বিশেষ অমূএহ করিয়া ঐ ফ্রটি আমাকে জানাইবেন; তাহা ইইলে, যদি কখন এই পুরুক পুনুম্বিত করিতে হয়, ঐ ফ্রটি আর ঘটতে পারিবে না। ইতি

कार्यात्. ১৮१२ ্ শ্রীগিরিশচন্দ্র বিদ্যারত্ন সংস্কৃত কলেজ, কলিকাতা।

দ্বিতীয় সংস্করণের বিজ্ঞাপন।

প্রায় মাদশ বংলবের পর মুগ্ধনোধ পুন্ম জিত হইল। গতবার মুলাকর প্রমাদবশতঃ যে
কুই একটা অম ঘটিয়াছিল, দেওলি এবার সংশোধন কবা গেল। অধিকস্ত এবারে সামাকাদশনার্থ প্রায় প্রত্যেক স্ত্রের টি কায় পাণিনি ব্যাকবণেব স্ত্রের অধ্যায়, পাণ ও সংখ্যা
লিখিত হইল। এবং শেষভাগে বোপদেব-সম্মত একটা লিখানুশানন ও কতকওলি উপাদিপ্রত্যায় সন্ধিবেশিত হইল; আরি স্ত্র, আগম, আদেশ ও ধারব্য়ব সম্বর্গায় সূচী ক্ষেক্টাও
সংযোজিত হইল। ইতি

১লা নবেম্বর, ১৮৮২ শ্রীগিরিশচন্দ্র বিদ্যারত্ব সংস্কৃত কলেজ, কলিকাতা।

তৃতীয় সংস্করণের বিজ্ঞাপন।

শ্রেষ নাম বংশবের পর মুগ্রনোধের তৃতীর সংক্ষরণ মুক্তিত হইল। এবারে পুত্তকের অবমার কিছু সন্ধিত হইয়াছে। পুথাবাবে প্তাও বৃত্তিওলি কুজাকরে মুক্তিত হইয়াছিল, পাঠের
স্বিধার্থ এবার ঐগুলি ওদপেকা বৃহৎ অক্ষরে মুক্তিত হইয়াছে। আর পুর্বারে কেবল
পাশিন ও কাত্যায়নের সুরপ্তলি টাকায় দশিত হইয়াছিল; এবার প্রয়োজনমতে মহাভাব্য,
নিদ্ধান্তকৌমুণী, স্পান, কনাপ ও সংক্রিয়াবের সূত্র বা তত্তমত লিখিত হইয়াছে। বে বে
স্থানে বোপাদৈবের মতের সহিত পাশিভাদির অনৈক্য বা নতাপ্তর আছে, তথায় তাহানিগের সেই
ভিন্ন মত লিখিয়া দেওবা গিয়াছে। এবার শন্ত থাতুর গণগুলি প্রায় সম্প্রকাশ নিবেশিত ইইয়াছে। কলতঃ ব্যাকবণবানির অল্নোগ্র সম্পাদনে বিশেষ মুক্তর গিয়াছে।
শারীরিক অনুস্তাবাশতঃ স্থাং নন্ধানা হওয়ায় এই তৃতীয় সংক্রণ মুক্তিত করিবার ভাব আমার ক্রেঞ্চ পুত্র কলিকাতা প্রসিডেলী কলেজের সহকাবী সংক্লেগাণাক শ্রীমান হরিকল ক্রিরেপ্র উপর অর্পিত হয়। তিনি ব্যাশান্তি পরিশ্রম করিয়া এই কোয়া সম্পন্ন করিয়া ছেন। ইতি

১লা অক্টোবর, ১৮৯১

শীগিরিশচন্দ্র বিদ্যারত্ব।

'निर्घग्टः।

प्रषादः । ।

	3812.	ı	
मङ्गलाचरणम्	•१-३		
याद्यन्ताधिकार:	8-২८ ৩		
१मः । सन्ध्यध्यायः	8-₹€	Ę	
१म पाद:संजा	8-85	4	
२य पादः — भच् मस्यः	१३-२४		
२ य पाद: इस-सन्धि:	₹8-₹		
धर्य पाद.—वि-सन्धिः	३२ ३६		
२य:। यजन्ताध्याय:	३०-८६		
१म पाद: - संज्ञा	88- <i>©</i> §	9	
२य पा द: — घ जन्तपुंलिङ्गश्र	द: ४५-७२		
३य पाद:भजन्तस् बीलिङ्ग	गब्द.७३-८०	•	
४ र्थपादः — श्रजन्त क्षीवलिङ्ग	गव्दः८१-८६		
३यः । इसन्ताध्यायः			
१म पाद: - इसन्तपृंतिङ्गग्रब्द	<i>⊏9.</i> १२०	5	
२य पाद:हमनस्वीलिङ्गश			
३ यपाद: — इसन्तक्षीवलिङ्गभ	व्द:१२३-१२६		
)र्थ पाद:— म त्ययश्रदः	१२७ १२८		
र्षः। स्याद्यन्ताध्यायः १	३५-२८७		
१म पाद — स्त्रोत्य:	१३५-१५६		
२ गपादः — कारक म् (क)	१५६ १८०		
३य पाद. — समाम: (म)	059-939	•	
द्यतःसमामः (च)	१६४-१६६		
वहुत्रीहि-समासः (इ)	189-580		
कर्माघ⊦रय-समान: (य)	288.588		
तत्पुरुय-समामः (ष)	२१८-२२०		
दिगु-भम[सः (ग)	२२१-२२३	8	
ं भव्यथीभाव-समासः (व)	२२४-२२८		
षट् समासाः	८६६-यह		
धर्थपाद:—तज्ञित: (त)			
ाद्यन्ताधिकार्: २८८-५६८			
५मः । भ्वाद्यध्यायः २	८८-३ ६०	. '	
१म पादसंजा	२८८-२६२	,	

प्रशादः । २य पाद: -- पवत् 3 6 6 - 8 3 6 ३य पाद: -- सवत् 385-355 ४थं पाद:--सिम्रः ₹40-₹€• ष्ठः।१म-चतुर्गणाध्याय:३६१-४०४ १म पाद: -- भदादि: 968-959 हादि: **9**⊏9-3⊏⊑ ै २य पादः--दिवादिः ३८८ १८५ • ३य पाद: — स्वादि: ₹24-₹25 ४र्थ पाद: —-तृदादि: 8 08-23 € भः।२य-चतुर्गणाध्यायः ४०४-४१४ १म पाद:-- कथादि: 808.80€ २य पाद:-- तनादि: 80€.80 € ३य पाद: — क्रग्रादि: 598.308 धर्ष पाँद.---चुरादि: म:।३य-चतुर्गणाध्याय:४१४ ४५२ १म पाद:-- आनः 898-898 २य पाट: — समन्तः इह४-४१इ ३य पाद:--यङन्तः 358-858 यङ्जुगन्तः ४३१-४४२ ४ यं पाद: — लिघु: ४४३-४५२ ८म:| त्याद्यन्ताध्याय:४५३-४८० १म पाद:---पं ४५३-४५४ २य पाद: -- मं . 848-800 ३य पाद: -- ढभावं 308-908 8र्थपाद: — ति: 850-8€0 ॰ मः। क्रदन्ताध्यायः ४८१-५६८ १म पाद: -- ल्य: 8 E १ - ५ o र २य पाद: -- तृनादि: · 4 0 5 - 4 5 5 **३य पादः — ऋादिः** प्रदेश ४४३ ४ थे पाद:--- इण्यादि: परिशिष्ट-पचस ५६८-५०५ सुचीपत्राणि ५७६-६१८

सुरधबोध-पठन-प्रयोजनम् ।

गीर्वाणवाणीवहनं मुकुन्द-सङ्कीर्त्तनश्चेत्युभयं हि लीके । सुदुर्लभं तच न मृंखबीधा-व लभ्यतेऽतः पठनीयमेतत्॥

ग्रस्यक्तत्-परिचयः ।

विद्वतिखरच्छात्रो भिषक्षेग्रवनन्दनः।
वापदेवस्रकारेदं विप्रो वेदपदास्पदम्॥

वीपदेव प्रशंसा।

चौर्वाचस्प्रतिनेव, प्रत्मगपुरी येवाहिनेवाभवत् येनेकेन विदुषाती वसुमती मुख्येन सङ्घ्यावताम्। स्रोऽयं व्याकरणार्णवैकतरणि-यातुर्व्यविन्तामणि-जीयात् कोविदगर्व्वपर्व्वतपविः स्रोबोपदेवः कविः॥

संशोधनी प्रवर्डनी च।

પૃષ્ઠે	पङ्कौ	પ ગુજું	गुडं
ŧ	٠ و	निरवकाश्यक:∦	निग्यकाण्यक:॥ (११५ सू)
· ₹₹	१ ३	"वाससाने" •	''वावसाने''
· ३८	39	सुटप्रत्याद्वागस्वीकारेण 🕽	सुट्पत्याश्वारस्य
		न प्रथक् संज्ञातता 🕈 🗦	सर्वनामस्थानसंजा
		•	क्तता (१।१।४३) ।
٩c	२२।२३	ार।२० सूत्रे 🚶	
		द्रष्टवाम्। ∫ 🔒	1 581815
8 0	3	*	.
8 •	२ ७	१1१1 २ ४-३६	₹18138-3€
४२	१ o	ट चौ	ब ें सी
80	₹	षु:	8 :
4 0	₹	स्थः	म्भेः
8.3	१३	018100	01810=
१२०	₹8	प्रसिज:।	प्रसिद्धः । इति इकारानाः।
682	*	सीऽक्तवी	तो 5 में वी
१५६	63	नपुंसक किति	नपुंसकमिति
१५९	१८	भात् पान्त	धात्पाच •
२३३	१	भूम: ।	भूमी: ।
२६५	?	गुणा हे छयस् ।	गुणादे छेयस् ।
139	१ १	घू: ।	घु :। •
१३६	१६	पाणिनि: १।१।४५।	पाथिनिः १।१।४५,६।१।१०८ ।
. २६७	₹8	१८, १६, २२, २३, २४।	१८, ११, २२, २३, १४, २३।
३०२	. 9	(१०७७,	(१०७₹,
३१२	२२	खम	स्त न
\$00	£	खुपाजेऽन्नाजे	स्युपाजेऽन्वाजे 📍
४२१	¥	ZE8	1 830
प्र१€	•	पनडुच्छे त	भगड् ऋ ति
५ २२	39	• सिज्ञम् ।	सिषम्। ''वहेर्धीवा ''दतिकातनाः
५६१	१ •	नादध्य	तादर्थे
प्रह	शह०	विन्ती वा	विन्दी वा



मुग्धवीधं व्याकरणम्।



मङ्गलाचर्राम्।

मुकुन्दं सिचदातन्दं प्रणिपत्य प्रणीयते। मुग्धनोधं व्याकरणं परोपक्षतये मया॥

१। ऋीं नमः शिवाय 🕂

(भी ११), नम: ११।, भिवाय ४।) ।

इति नमस्तारस्त्रम्।

- ा मया वीपदेवन सिवदानस्यं संयासी विश्वासावानन्दयेति नित्यज्ञानसुख-स्वरूपं, सुकृष्टं — सुकृम् सुर्तिं ददातीति — सुतिदावारं विश्वासित्यः । "सुकृमस्ययमानश्च निर्वायमीचवाचकम्। यसद्दाति भक्तेश्यो सुकृष्टक्षेन कीर्तितः"॥ इति बद्धवैवर्षपुराचम् । प्रिषपत्य प्रकर्षेण भित्रयञ्जातिययेन नता, सुग्धवीधं माम सुन्दरवीधजनकम् अल्पवृद्धि-वीधकं वा — सुग्धः सुन्दरसूद्यीरिति विष्यः, त्याकरणं — त्याक्रियन्ते व्युत्पादक् साध्यस्यः। अर्गनित यस्द्वुत्यादक्यास्तं, परीपक्षतये परिवां पाठकानासुपकाराय, विश्वोपकाराय वा, प्रणीयते प्रकर्षेण नीयते बत्तिसद्धितं क्षियते इत्युष्टं ।
- † विद्यबाहत्त्व्याद्या पुनर्भेङलमाचरित । शिवाय विश्वणातौताय बद्धाचे घों नमः, "प्रमद्वसि पर्दे निस्त्रैगुर्च्छ शिवाय नमी नमः" इति प्रमाण्यम् । घोंश्रस्ट्प्रयोगेणापि मङ्गलं स्चितं, —तथाच घोडारयायश्रस्य हावेतौ बद्धाचः पुरा । कर्ण्यं भिष्का विनियांतौ तेन माङ्गलिकावुभौ इति । घयश शिवाय क्षिटित ग्रयसमाप्तिकप्रमङ्गलाय घों नमः इरिहर्वद्वाक्षिणे नमः, तथाच घकारो विणुदहिष्ट छकारमु महेश्वरः । मकारेणीचते बद्धा प्रचवेन वयो मताः ॥ इति ।
- ‡ द्रति, "भीं नमः शिवाय" एतत् वाकां, नमस्तारसः सूत्रं तूचकं सूत्रयति अर्थे प्रत्याययतीति सूत्रम् ॥ तथाच —

खल्पाचर मसन्दिग्धं सारवत् विश्वतीम्खमः । श्रक्षीम-मनवदाचः मुवं स्वविदी विदुः ॥ इति ।

स्त्याचरं — क्रस्यदीर्घगणविज्ञ ब्यानां स्वचंग्रविक्षेण संज्ञाकरणेन, जटीऽन् क्षेकसंगीत्यादि (१। ११४) पाणिनिम्त्राणाम् छटीऽन् क्षेत्रे (८००) क्ष्याटि संचेपकरणेन च
स्वत्याचरलसेतदग्रयस्थम् वाणाम् । चसन्दिग्धं — मुस्यापिवदेनी सुक् पे (५५२) क्रत्यच
पाधातस्याने पिवनिर्देशात् रचणायंकजीधनार्थकयीनं सन्देष्ठः । सारवत — निष्कृष्टाययुक्तम् । विश्वतीसुर्त्ते — गुणविज्ञम्वभीः (५४२,५००) चृत्येषाच्च वषुषु प्रवित्तः । असीमं
— निर्थकश्चरवर्षितम् । चनवदां — च्यालवादिदीषग्त्यम् चनभिप्रेतिसिर्विनिवर्षक्य ।
तथा विष्ठिषम् —

संज्ञाच परिभाषाच विधिर्मियम् एव च। चित्रदेशीऽधिकारस षड्डियं स्वलचणम्॥ इति।

स्यवद्वारार्थं प्रास्त्र कृतः सङ्गेतः संज्ञाः। यत्र्यस्य सङ्गेपनिक्वीहार्थे महितविभेषः परिभाषा। अप्राप्तप्रापको विधिः, स च हिविधः—वर्षौत्पादनरूपः अभावरूपयः अभावरूपयः अभावरूपयः अभावर्षिः—वाभो निविध्यः। सामान्यप्राप्तस्य विभेषावधारणं नियमः। अन्यस्यभैस्य अन्यवारीपणमतिदेशः। पूजेम्बस्यपदस्य परम्बेश्वपस्थितरिधकारः, स त

गङ्गास्त्रीत इव ख्याता चित्रकारास्त्रयी मताः। चाकाङ्गायान् सर्वेदामनुत्रतिः परेभवेत्॥ इति ।

कस्यापि अन्दस्य कतिपयस्वपर्धन्तमनुहत्तिः सिंडावलीकिताच्या, एतद्पेचया षिकसंच्यक्तम्वानुहत्तिः गङ्गासीतः। यया, (३६) इत्यच दान्ने इत्यस्य पादभव-पर्यन्तमनुहत्तिः सिंडावलीकिताच्या, (६८) इत्यादौ मस्कूकमृतिः, (६५) इत्यच वेरित्यस्य गंडासीतः।

स्वलं चर्ण तक्केदांय निर्द्धिय सम्प्रति स्वे वर्णनीय विषयानुपन्यस्यति — कार्यो कार्य्य निक्तित्र विभिः स्वसुदाष्ट्रतम् । कदाचित् कार्य्यक्यां कचित् कार्य्यनिम्त्ततः ॥ यस्य निर्द्धियते कार्य्यम कार्यो ग्रदिती वृष्यः । कियते स्वत् तत् कार्य-मार्द्धप्रत्ययागमम् । यस्रास्त् परं, परे यस्रिन्, तिव्रमित्तं दिधा सतम् ॥

यथा (११५) नरम् नरावि तु इति स्वे नराशब्दः कार्थी, नरस् कार्यम्, अधीति निमित्तम्।

चन्यञ्च, स्वविवयक-विश्रेषमियमाः — विदरङ्गविधिश्वः स्थादमरङ्गविधिवेखौ । प्रथयादितकार्यन्तु विदरङ्गस्ट। इतम् ।

२। शंशब्दैः।

(मं।१।, म्बद्दैः ३॥)।

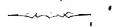
शब्दैर्भक्षतं स्थात् । इति प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धाः । *

प्रकृत्याधितकाव्ये स्वादनरक्षानिति भुगम्।—(भया ७०२ स्वे ददरिद्र इत्यादौ)।
प्रकृतीः पूर्वपूर्वे स्वादनरक्षतरं तथा॥
सावकाशिविधिश्यः स्वाइ वली निरयकाशकः।
कस्यचिद्विद्वकार्यस्य प्रव्यमं पहतलया।
सभवत् विषयो यस्य स विधिः स्वावकाशकः॥
भादो हि विषयो यस्य परतो न हि सभवत्।
स पश्चितगर्येकक्षां विधिनिर्वकाशकः॥
तथा—सामान्यस्य विश्वेषस्य स्वाहिशेषविधिभवत्।
सन्ता स्वाहिषयो यस्य स सामान्यविधिभवत्।
सन्ता स्वाहिषयो यस्य स विश्वविधिभवत्।
सामान्यस्य विश्वेषस्य स्वाहिशेषविधिभवत्।
सामान्यस्य विश्वेषस्य स्वाहिषयो विधिः।
भागमदिश्योभेष्ये वलीयानागमी विधिः।
भागमदिश्योभेष्ये वलीयानागमी विधिः।
भागमदिश्योभेष्ये वलीयानागमी विधिः।
सामान्यस्य प्रविधिभवते।
सक्तिभो विधिन्यः स्वाहवली लोपविधिक्तया।
लोपसरादेश्योसु स्वरादेशविधिवेली॥ इति।

प्रयोजनाभिषयसम्बन्धानाइ यन्दैर्मङ्गलं स्थादित । यन्दैरेव मङ्गलसुचितं स्थादित्ययंः, रान्देख्यादक्षशास्त्रारको यन्दैरेव मङ्गलं कर्मव्यमिति न्यायात् । स्थाकरचव्युक्तव्रयन्द्रशानाधीनं यास्तान्तरज्ञानं, तदधीना च वैदिक्तिया, तरफलं स्वादि, चतएव
यान्दैर्मङ्गलम् । इति प्रयोजनाभिधेयसम्बद्धाः—इतियन्द्रशान्ययत्वेन प्रयोजनपचे सम्बन्धपचे च त्रतीयान्तसम्, चिभिधेयपचे प्रथमान्तत्वं विध्यं, तिन 'इति' एभिः सन्दैर्याकरणस्य
प्रयोजनं—मङ्गलकपम्, 'इति' इमे श्रन्दाः व्याकरणस्याभिधेयाः—वाच्याः, 'इति' एभिः
प्रवदः सङ्गल्यस्यस्यस्यः व्युत्याद्यव्यादक्षभावः इत्यर्थः ।

स्याद्यन्ताधिकारः। *

१म:। सन्ध्यधार्य:। 🕆



१म पादः — संज्ञा । क

३। ऋइ उच्च लृका, ए चो ङ, ऐ चौ च,— इयवर ल, ञणन ङ म, आ ढ घ घ भ, जड दगहा, खफ ऋ ठथ, च ट तका प, शष साद्यन्ताख्या: । §

(त्र—स ।१॥, पादानाख्याः १७)।

एषां मध्ये ये वर्णास्ते पादिवर्णान्तवर्णसमाहारसंत्राः स्युः। ॥

एकार्थ्यविकिन्नाध्यायसमृहः श्रविकारः।

⁺ एकार्याविकित्रपादसमुद्रः अध्यायः।

[🛨] एतायोविष्ठित्रस्यसमूहः पार्दः।

[§] चादिना संदितोऽनः चादानः स एव चाव्या येषां ते ।

बा एवां मध्ये इति मध्यश्रद्धीऽधिकरणवाची, तेन अत्र स्वे ये वर्णां चादि-वर्णान्तवर्णयीर्थः समाहारी मेलनं स एव संज्ञा येवां ताह्याः—मध्यवर्णसितादि-वर्णान्तवर्णमिलिता चक्-चादिसंज्ञकाः स्युः, यथा—चक्, चन, चन, चन, चन। इक, इङ, इच, इख। स्टक्ष। एङ, एच, एइ। ऐव। इल, इन, इस। यख, यम, यप। वस। इन, अप, अस। चङ, चन, चप। अस, अन, अप, अस। इस। जन। खय, खप, खस। इत। चक, चप। श्रस।—(४०)। पाचिनिः— श्रिवस्वाचि, ११९१९ च।

४। इत् कते।

(इ.स् ।१।, क्रुत् ।४।)।

कस्मेचित् कार्यायीचार्यमाणी वर्ण इसंज्ञः स्थात् । तस्य कार्ये . अनुचारः । यथा अचि क-ुङ-चाः संज्ञार्थाः । इसे अकार-उचारणार्थः । अ

प्र। च्या वत् खर्वस्र।

(चा।१।, वत्।१।, स्त्र-घं सु।१।)।

श्र श्रा श्र इति वर्णत्रयं क्रमेण ख-र्घ-धु-संज्ञं स्थात् । वित्यव्हात् इ. इ. इ. द्वादिषु च । 🕆 स्व एज् नास्ति'। 🕸

६। अपोऽक् समोर्ण ऋक् च।,

(ञप: १।, चक् ।१।, सम: १।, र्थ: १।, स्टक् ।१।, च ।१।) ।

^{*} कते इति एकारासमन्यथं, क्रते कार्याय इत्। एति गच्छतीति इत्, कार्यकाले न तिष्ठतीति यावत्। द्वानभाइ यथा— चिच चच्छत्याहारमध्ये क-ड-पाँ: संज्ञायाः संज्ञैव षये: प्रयोजनं येवां ते। एवं इसे चकार खशरणार्थः, खशरणमेव चथं: प्रयोजनं यथ सः, इसवर्णे चकारस्य प्रयोजनान्तरं नालि। एतेन उंचारणार्थोऽपि वर्णः इत्। पाणिनिः १।२।२-३।

^{ां} भय त्राय त्रय दित समाहारे त्रा, विदित दर्शों। त्रय या स्ट्रंग, तत्रय त्रा स्वधंमुनं संसं स्थात्, भावत् भन्मोऽित स्वधंमुनं तः स्थादिययः । तेन यथा भ न्ना भ, तया द्रंद्र, उ ज ज, म्ह मह मह, ल क ल च। संधेपक्रता यन्यकारेण क्रस्तदीयं मृत- यन्देशः संविष्य स्वधंमुनं काता, एवं सर्वतः । एकमात्री भवेत् क्रस्त्री, दिनात्री वीर्ष उच्यते । विमानस् मृतो ज्ञेशी, स्यक्षमधार्त्रमानकम् ॥ कालेन यावता पाणिः पर्योति मानुमण्डले । स मात्रा कविभित्रीयेखक्षक्षामरविदिभिः । दूराह्राने च गाने भ रोहने च मृतो मतः ॥ पृथ्विनः १।२।२०।

[ः] स्व एज् नासीति न स्वं,चा वदिति स्वस्य व्याख्यान्तर्गतेनेव। चलया 'स्व एज् न' इत्येव वर्षस्यम् । एच् ऋससंभी न भवति, किन्तु दीर्घसंत्रः सृतसंत्रच भवतीत्यर्थः।

समानी जपीऽक् च परस्परं गी-संद्रः स्वात्, ऋक च । अ साम्यन्वेत्रस्थान्वम । 🕆

त्रवयम् एइ 🕸 वा खा घ छा: वा एठा:। दन्यं च इ ज भा अ भा ए ऐ या स्तालव्याः। ऋवयं टठ ड ढ ण र वा मूर्डन्याः। खनयंत यद धन लसां वो दन्साः। उत्रयंप फ ब भ म वा त्री त्री त्रीष्ठराः । ६ णवां मध्ये यो येन समः स तस्य तच ततः ।श

^{*} अप: चक इति पृथकपट्करणेन सम इत्यस्य प्रत्येकेन सम्बन्धात समीअप: परस्थरं र्णसंज्ञ:, सभीऽक च परस्पर गंमज्ञ: स्थादित्यर्थ:, नतु अपाकी: परस्परं गंभंजीता। भको इन्तर्गतस्यापि में का: पृथगुपादानेन मृदर्ण-स्टबर्ण अनुमानावपि परस्परं र्णसंजी स्त:। एतच साष्टतरसुचाते, एकस्थानीय-वर्णीय-वर्णाः परस्परं र्णसंज्ञाः स्य:। अकस्रक्रं एकस्थानीया वर्णाश्च परस्परं र्णसंज्ञाः स्यः। ऋवर्णः खवर्णां च परस्परं र्णसञ्जी सः। र्षाः सवर्षः। "तुल्यास्यप्रयवं सवर्षम्"--पाणिनिः १।१।६।

[†] समख भाव: साम्यं समानवर्णातम्। एकं स्थानं थेपां ती एकस्थाना: तेषां भाव: एक खानलम्, एक खानी चरितल मित्यर्थः ।

¹ स्थानजानाधीनं साम्यजाननिति स्थानं निष्पयति अत्रयमित्यादि । एह-ए भी ऐ भी ह।

[§] पूरि भी भी दलीतेषाम् उचारणस्थानं करू मुक्का, ए पे दलभयी सालव्यकार्या थे तालव्यमध्ये, भी भी दल्भयोग भोष्ठाकार्यार्थम् भाष्ठामध्ये भिन्नपद पृथक् पठनस् एवम् चनाःस्यवकारस्य वैयाकरणमते उद्यार्थस्यानम् चीष्ठमुक्ता दन्यकार्यार्थे इन्यमध्ये भित्रपदे पाइ:।

यु एवां कण्ठा-तालच्य-मूर्जन्य-दन्यीष्ठानां वर्णानां मध्ये यी वर्णी येन वर्णेन सभी भवति सः तस्य स्थाने (१), तिकान परे (२), तकादत्तरे च (३), स्थान, यथा- चभिवतं (१), शान्त: (२), वाग्घरि: (३) । अव ततस्य तर्वति नीक्वा, यदातिक्रमेण निर्देश: तन् इस्थी: चयाणां वा समवार्थे पूर्व्वपूर्वस्य प्रथमप्राप्त्रार्थम् । चत्र बदन्ति — वष्ठी सूर्वे ततः: स्याने, पश्चमी चतद्त्तरे। सप्तमी चपरे वार्चगर्यं चोपपदे कवित्॥ इति।

७। चपोदिताकानिता गः।

(चपा ३।, उदिता ३।, श्रका ३।, श्रीनता ३।, र्षं: १।)।

उकारेता चपेन अ इट्रहितेनाका 🕆 गीं ग्रह्मते।

८। इङोऽरलेङ् णुः।

(इडः: ६।, चर् चल् एङ् ग१।, गः: १।)।

इड: स्थाने अर् अल् एङ् एते सा संज्ञा: स्यु: । 🕸

१। अच आरालैज वि:।

(भव: ६।, भा श्रार्भाल् ऐच्।१।, त्रि: १।)। •

अचः स्थाने आ आर् आल् ऐच् एते विसंज्ञाः स्युः। §

^{*} च ट त क पाः यदा उदितः खुन्दा सवर्षं यक्कति, तेन उदिक्षिः चुटुतु कु पुनिः क्रमेषा च-वर्गटवर्गत-वर्गक-वर्गप-वर्गाषां प्राप्तिः छान्। उदिह्हितेन तु च ट त क प इति वर्षपञ्चकिन केवलं तत्त्त् वर्णमाचं यद्यति ।

[†] भाद च ऋ छ एते यहा इद्रहिताः स्युक्तदा सवर्षं स्वक्तित्, तेन भनितिः
भाद च ऋ छ द्रत्येतैः क्षसेण भाषा भ, इ ई इ. उ ज उ, ऋ ऋ ऋ. छ छ छ, इत्येतेषां
प्राप्तः, किन् भकारादि- छकारान्त-वर्णानां मध्ये इत्युक्तेन येन केनिचत् वर्णेन केवलतन्माचवर्णी स्ट्याते, यथा भात इत्यनेन कंवलम् भाइति वर्णमाचं स्ट्याते, मतु भाषा भा भा दित् वर्णन्यम्। परन् भादेशे प्रत्ये च प्रायशः भनिता अका तत्तस्वर्णीन साह्यः।
वर्णात् कारतकारौ ख कपे रामु छेक इत्योगादिकम् व्रम्। पाणिनिः १।१।६६-७०।

ţ इ. उत्तर स्ट ए भी वर्षान स्थाने क्रमेगादिष्टा:—

ए ची भर् चल् ए ची वर्णाः (य) ग्रुष्यसंघाः सुः । समलात् इ-वर्ण-एकारयो-रिकारः, छ-वर्ण-भोकारथोरोकारः । चर् चल् इति द्योरेकदेश-रेफ-लक्षुःरास्यां सह चर ख इति द्योः सनलात् तयोगुंचे कमेण चरलौ स्यातां, ससुदायसाम्याभावंऽिप भाशिकसाम्यस्य याद्यालात् । बढिविधायकस्वेऽप्येवम् । पाणिनिः १।१।२ ।

प्रच कर क्ल ए ऐ की की वर्णानां स्थाने कि भेषादिष्टाः —
 पा ऐ की बार् काल् ऐ ऐ की की वर्णाः (त्रि) हिं सि संद्राः स्युः ।
 कार्देशविज्ञेषसु अञ्चारकस्थानसाम्यात् पूर्व्वत् ज्ञेयः । पाणिनिः १।१।१ ।

१०। प्रपरापसंन्यवानुनिर्दृर्व्येषिसूत्यरिप्रत्य-भ्यत्यस्पपाङ् गि:।

(म-श्राङ ।१।, गिः १।)।

एते विंगतिर्गि-संज्ञाः स्युः। 🎋

प्र. परा, भप, सम्, नि, भव, भर्, निर्, दर्, वि, भिष्, मु, उत्, परि, प्रति, भिष्, भिंत, भिष्, उत्, परि, प्रति, भिष्, भिंत, भिष्, उत्, भाङ्, एते विश्वतिः (नि) उपसगे-मंज्ञाः स्यः । विश्वत्यादाः सटैक्ते सव्याः मंद्येयमं व्ययोशित विश्वतेरेक वचनान्त्रतम् । भव निर् दुर् श्रव्दी रेफानौ निम दुम् इति दन्यमानौ च ।

े क्रियायीगिनः प्रादेरीव उपसर्गभंजा, नितु द्रव्यादियोगिनः। द्रव्यादियोगिनस् प्रक्रटयासावेजर्थति 'प्रेज' इत्यादौ उपसर्गसंज्ञाभावात् (२४) गेधीरिति न गाः। चादौ धातुयोगे प्यात लिङ्गसंज्ञायास्पसर्गलसस्यंव।

क्रियावाचित्वमाच्यातुं प्रसिद्धोऽर्थः प्रदर्भितः । प्रयोगतोऽत्ये विज्ञेया सनैकार्या हि धातवः ॥ इति धातुपाठे वीपदेववचनात् धातूनामनेकार्यत्वं सिद्धम्, उपसर्गाः पुनस्तद्यं-योतकाः, न तु वावेकाः । उपसर्गस्य धातुलीनार्थयोतकत्वम् स्वादानसन्दानादावनुसस्वयम् इति माघटीकायां मिक्कनायः । उक्तस्र, निपातासाद्यो ज्ञेया उपसर्गास प्रादयः । योतकत्वात क्रियायोगे लोकादवगता इसे ॥ इति ।

प्रादयः उपसर्गः भसंयुक्तावस्थायां न केषास्विदर्थानां योतकाः, क्रियापदात् धातु-मृत्तकग्रन्दास् प्राक् प्रयुक्षमानाः प्रायभी व्यवस्थिने । क्रिचिट्पसर्गदयं तस्यं तस्यतुष्टयं वासिजिलां व्यवस्थितं — यथा, विद्यारः, स्थवसः रः, सम्थवसः रः, समित्याद्वारः ।

भात्यं वाभते कथित् कथित् कथित् तरितान्त तर्ते। तमेव विधिनव्यतः उपसर्गगितिस्विधा ॥ प्राद्यः कचित्, मृलपद्मकाधितायं स्व परिवर्तकाः, —यथा, पादने, पानकितः, कचित्रा तद्धें लीगक्ते, —यथा, प्रस्ते, प्रवस्थितिः; क्वचित्र मृलपद्मकाधितार्थे विभिषेष प्रयोक्तरं योजयन्ति, —यथा, प्रणमति, प्रतृतापः। किन्तु कस्य पदविभिष्य संयोगे प्राद्यः तद्धे परिवर्त्तथन्ति, तत्वदार्थे कमथै योजयन्ति, कमथै न योजयन्ति वा, तत् स्वंमिनिस्यम्। पाणिनिः १।४।४८। अ

प्रादीम् भर्थानाइ पुरुषीत्तमदेव:—
प्र-गत्यारकीत्वर्षं सर्व्वतीभाव प्रायम्य ख्यात्युत्वति व्यवहारेषु ।
परा-पराभवानादर प्रत्यावति न्यमावेषु ।
प्रा-पनादर भंग साकन्य वैरूप त्याग नत्रयेषु ।
सम्-प्रकर्षं श्रेष नैरन्तर्योतित्याभिसुद्योषु ।
नि-नित्ययं निषेषयी: ।

मनार्चायां खती, नातिक्रमे ऽतिः, पर्यक्षी गतीं। षपिः पदार्थ-सभाव्य-गर्चानुज्ञा-समुच्चे॥ *

११। स्वादिर्धः।

(खोदि. १।, धु: २१)।

भू सत्तायामित्यादिर्गणो धुसंज्ञ:.स्यात् । १

चव-- निषय साकल्यानाटरेष ।

चनु--पर्यात् साहस्य लचण वीक्रीत्यस्थाव आग होन सामर्थसहायं सामीय्य देर्घ्य पनरथेंया

निर निम - पत्थर्थ निषेध निषय वहिन्तर्योव।

द्र ट्रस - – निर्वेध कष्ट निन्हाव चेप ग्रेषु।

वि — विशेष वैद्या नज्यं गति दान्धु।

श्रधि-उपरिभावे।

सु-पूजन श्रोभनानायासातिशयेष ।

चन्- कर्दोत्कां प्राक्तका नेककोष्। (चट्ट इति पृथ्यस्थयः)।

परि-- सर्व्वतीभावातिशय वीशित्यकाव विक्र भाग त्याग नियमेव ।

प्रति — बचय व्यावित प्रमतीत्यभाव भाग प्रत्यपैय साहस्य विरोध वौसा समाधिषु ।

भि - सननादुभयार्थ लच्च वीसंख्याव धर्वणेषु

पनि -- पतिश्यातिकामः यूक्तनास्त्रभावनेषु ।

श्री -- पाइरणाल्य संभावन विन्दानुता समुद्यीष ।

उप— चनुगति पञ्चाद्वानानुक्तम्याधिका भीन सामीस्य प्राथस्येषु ।

चाक-मननाद यहणाप्रसाहत्तीवद्वे सर्याटा व्याप्तित्।

• भन स्वे, स चित प्रधं नायां, चित चितकसे - प्रखीदयेऽपि कियाप्रहतीं, परि घिष गती - एतो यदा गल्यंधात्योगे गितं योतयतस्ता, चित चित्रका क्या चित्रका कियायोग्यतावस्त्रका निदानुमितसमुद्ययेषु गि-संज्ञा न स्यं:। एवं चर्येषु गिसंज्ञाभावात्, सुक्षुला र लादी व्यस्य गुक्कारित (५७६) सर्लं न स्यात्, क्वाची यय् च (१९७६) व स्यात्, इति फल्जि। किन्तु गिसंज्ञापितस्य निपातलित्यवस्य वाच्, निपातले सित चय्यत्य, चतोऽतिराजीति धिवृम्, - चव्ययंके व्यं पूर्विमित्यने व (१६६६) चते: पूर्विनियातक। पार्विनिः १।४।८३-८६।

† भूमन्द्रक धातुर्धन्नानिरासायाड भू धत्तायानिर्वादिर्गर्वदित । भू द्रवादि प्रकृतयः यदा सत्तादि-क्रिया-वाविकांसदैव (५)धातुर्वन्नाः खः। स्वादिगर्वा येथी-स्वायदादी

१२। सित्यादिः तिः।

(सिव्यादि: १।, क्ति: १।)।

स्यादिस्यादिय क्तिमंजः स्यात्। *

१३। ज-द-ब्बान्येक्न-दि-बद्घष्येक्मः।

(क इ-स्वानि १॥, एक, डि-बहुषु ७॥, एकमः ।१॥)।

क्रीरेकैकं वचनं क्रमात् क्र द-ब्व-संज्ञं स्थात्, तानि च क्रमादेकः दि बहुष्वर्थेषु प्रयुज्यन्ते । गं

१४। त्रान्तान्यौ इली।

(स्थनान्यौरे॥, दःखौर॥)।

क्राम्लग्रब्दो दसंज्ञः स्यात्, त्रन्यस् लिसंज्ञः। 🕸

सुद्दीकादिः विवादिः स्वादिरेव च, तृदादिष वधादिष तनकप्रादिचुरादय इति । "शुवा-द्यो धातवः"—पाणिनिः १।६।१ ।

- * निश्च तित्र निती, िनती चादी यस्य स नित्यादिः, इत्तायरः यूयमाणः अन्दः प्रस्येकमिनसम्बद्धिते इति न्यायात् स्यादिस्थादिश्चेति । अन्दोत्तरं प्रयुक्तमानाः सि घी जसादयः एकविंगतिः, धातृत्तरं प्रयुक्तमानाः तिष्-तनादयः साशीति-अत-संख्यकाश्च (क्ति)विभक्तिसंज्ञाः स्युः । पाणिनिः १।४।१०४ ।
- † विभक्तिरेक-वचनं कसंज्ञं, वि-वचनं वसंज्ञं, वष्टु-वचनं व्यानं स्थान् । एकवचनम् एकार्थे, विवक्तनं विसंख्यार्थे, वहवचनं वैद्वये प्रयुज्यते । एकस्य क-कारं वचनस्य व-कारं रुष्ट्रीत्वा क इति सद्धेतितं, वव्यथेरध्येवभेव । नित्यवहवचनास्ता चिप प्रस्टाः सन्ति यणा दाराः, वर्थाः, िकताः, जलीकसः, द्याः (वद्धान्तवाविन्यः), वहुलाः, क्रिक्ताः, समाः, लानाः, रुष्टाः इत्यादि । गौरवे सब्बेंग्यो वहुवचनं भट्टारकपादाः इत्यादि । विकल्पेदि वहुवचनं कचिव् यथा सुमनसः सुमनाः, चस्रसः चस्रराः इत्यादि । पाणितः १।४।१०२-१०३।
- ‡ विभक्त्यत्त्रश्रन्थः (द)पदसंग्रः, तद्वित्रश्रन्थः (लि)लिक्षमंत्रः खात् । (१२२) त्यलीपे व्यलचणिति त्यायात् लुप्तविभक्तिकामा पदलन्तुः चातिदेशिकं यथा, जमा,गीरीत्यादि । भाविनिः १।॥१४, १।२ ॥५.॥६ च ; तत्राते वि = मातिपदिकत् ।

१५। लुपि न सन्ध्याद्यविधी।

. (लुपि ७), न ।१।, सन्याद्यविधी १॥) ।

लुबिति लोपे क्षते यो लुप्तस्तदाद्यन्तयोः सन्धिन स्थात्, तदा-दास्य च यो विधिः स च न.स्थात्। *

१६। चादिर्गिनि: ।

(चादि: १।, गि: १।, नि: १।)।

चारिर्गणो गिय नि-संग्न: स्यात्। 🌵

१७। णमितोऽन्याचोऽन्तेऽन्यस्यादी।

(चन-इत: १॥, अन्यान ५।, अन्ते । अन्यस्य ६।, आदी ७।)।

^{*} लुप्यब्देन लोपे कते यो लुपसदायन्तयोः सिखर्न छ।न्-धैया, (३७) हरएि । तदायस च विधानं यन किसपि तद्म स्वात, तेन राजस्याभित्यादौ (१०८) न या। इदन्तु न सर्व्यन, दक्षी भव्योकरण इत्यादिज्ञापकान्, कविन प्रायाकारस्याने विधि-भेवतीत, यहा नजा निर्द्धिसनित्यसिति न्यायान भव्योकरण्यित्यन न लुघ्यपि प्राया-कारस्याने दंभैवतीति। चन, पादिपदेन सिश्चे अध्य इति प्रवर्णयहणम् प्रवर्णीयत-निवेधार्यम्: तेन लुप्तस्यादिस्थितावर्णनिमित्तकविधिरपि न स्थान, यया, — राजभिति स्वच (१०६) न ऐम्। प्रश्नितित्तकन्तु स्थादंव, यथा, प्रक्रवतिषु इत्यादौ नस्य लुद्धपि इलान् (१११) षत्यम्। प्रव 'सिस्थ अस्य चण्यण्य (२३) दामीदर इत्यव स्वर्थ लिखितम्। पाणिनि: १११।६६।

[†] चादिर्गणः — च, वा, इ. इा, हि, ही, हे, ही, रे. भी, तु, तु, ध, वै. भी स् सिंब, चइ, एव, एवम, नृनम्, अवन्, भूयस् चेत् किंवत्, यत्न, हत्न, भाड्न, नुक्र, यावन्, तावन्, वषट्, वीषट्, स्वाहा, स्वधा, स्विन्, चीम्, त्वल्, तिल्, चथ, सृष्ठु, च, चा, इ, ई, छ, ज, चट, छ, ए. ऐ, ची, ची, यथाः, तथा, यदि, यत्, तन्, किंस्, विस्, होहा, चाही, छत, बहे, चही, चथी, नतु, चिस्, चिस्, इति, इव. वत, चमा, जातु, कथं, कृतः, कुत्त, चाहीसित्, दिया, चङ्ग, फट् अथे, चरे, खरी, खररी, छदकी, जरी. कररी, कसरी, तिर्थक्, इसाहि;—गिय-प्राद्धी विश्वतिः, एते (नि)निषातस्त्राः स्थुः। गिश्वस्ते ह गिमंत्रापठिता एव यद्यन्ते—चत्रपव स्वत्वादीनामचीदी गिसंत्रामाविऽपि निसंक्षा च्यासन्त्रा च। पाणिनः श्राध्र अप्र

णित् यसीचिते तसाम्यादमः परः, निदक्ते, जिदक्तस्य स्थाने, मिदादी, स्थात्। *

१८। परस्य:।

(परः १।, त्यः १। 🕽 ।

प्रकर्तः परी यः स त्यसंज्ञः स्थात् । 🕆

१८। ऋं ऋ: नुबी।

(अ प: ११॥, नुवी १॥) ।

श्रकार उचारणार्थः, विन्दुदिविन्दुमात्री वर्णौ क्रमाझु-वि-संज्ञी स्तः । इः

२०। ्क × पौक मून्यौ । (क × पौक १॥, मूनी १॥)।

यज्ञ-गजकुंभाक्तती वर्णी क्रमात् मू-नी-संज्ञी स्तः। §

अ षम्— ष न ङ म — इत् येश ते सेमितः, ष नि भवन पत्यंम, पत्यक्ष तत् पश्चित् तमात् पत्याचः । मूर्श्न्यणकारिदागमः स्थानिनः पत्याचः परे भवति, दत्त्यमकारिदागमः स्थानिनेऽत्त्ये, ङ कारिदादेशः स्थानिनेऽत्त्यवर्षस्य स्थानि, मकारिदागमः स्थानिनः पादौ । यस्थोष्यते इति षष्ठानिनिर्देशात् प्रत्ययेषु न प्रसङ्घः । तेन ङकारितो छे-पादिविमत्रायः चातीः परा एव । पाषिनः १११।४६,४०,४०,४५ ; तत्राते स्यान् नित्न नित्न कत्, मित् चित्।

[†] मक्रतेः परीयः सं(त्य)प्रत्ययस्तः स्थात्। पदस्य सूलभागः प्रकृतिः। "प्रती-यते विधीयते इति प्रत्ययः।" सिङ्कालकौसुदी। पैप्पिनिः शशर्।

[‡] तुरमुखार:। विविंसर्ग:।

मूर्तिव्रामुणीयः — निव्वामुणीचार्यः । नीवपाधानीयः — उपाधानीयस्थीयातिः
 स्थानम् भीषः, चवारयन्तु सर्पत्रासयत् । कपाव्यारथार्यौ । (६० स्वं द्रष्टस्यम्) ।
 नु-वि मू-नीनां चलविधौ स्वरता, स्वरस्थौ स्थमना, तथान-- नुवौ पूर्वेष सम्बद्धी

११। हो अस्।

(इ: १।, मास् ।१।)।

इकारो आसंज्ञः स्वात्। *

इति संजापादै.।

२य पादः—श्रच्सन्धः। गं

२२। सहर्गेर्घः।

(सह।१।, चें ७।, घं: १।)।

र्षे परे पूर्वस्य, र्षेत्र सच घी: स्थात्। 🕸

मृत्यो तु परगानियो। चेलारीऽयोगवाडाख्याः चलकर्माख्यभो नताः। चचः स्वयं विराजने, इससुपरगानियः॥

- भस्मत्याद्वारमध्ये (३) इकारस्याभावान् (५०) व्वंदितिमित्यादिसिद्धार्वे इकारी
 भस्यंत्रायो परिगणितः । पाणिनौतु इल इति पृथक प्रत्याद्वारस्वीकारः ।
- † संयोगशीलथब्दानामसंयोगे तेवासुकारणकाकंछान् चस्याव्यता च स्वित्ति, तहीव-निवारणाय ही शब्दी, पूर्वशब्दभेषाचरस्य परशब्दप्रयमाचरस्य वा स्वस्योदी परिवर्त्तनेन, संयुक्येते,—प्वंविधर्सयांगः सस्विराख्यातः। तस्य सामाव्यनियमः—सस्विरेकप्दे निस्वी निस्वी धातुपसर्गयोः। समासेऽपि च निसः स्वात् स चान्यव विभावितः॥ प्रति ।
- ्ष्यं प्रविध्वर्षास्य परसवर्षोन सह दीर्घः स्थात्।—स्ववर्षद्यमध्ये पूर्व्ववर्षास्य क्रस्तत्वे परस्य दीर्घते १, पूर्वस्य दीर्घते परस्य क्रस्तते २, टमगोक्रंसत्ते ३, दोर्घते वा ४, पूर्ववर्षो दीर्घो भवेत्। —यथा, धिन-माक्षा = धिनाक्षा १, जमा-माक्षां = छमाद्या १, उत्पादि । माक्ष्यं च के मं पित क्रते पीर्व्वापस्यं नियमास्यावात् कात्वार क्रस्तव परस्य दीर्घे कीत्स्वतार क्रस्ति धिन क्रें पीर्व्वापस्यं नियमास्यावात् कात्वार क्रस्तव परस्य दीर्घे कीत्स्वतार क्रस्ति धिन स्थात् । पाणितः स्थार्थः दीर्घः स्थात्, अपः सवर्षतेऽपि (६) दीर्घत्वासम्यवात् । पाणितः स्थार्थः १।

सरारि:, लत्सीय:, विष्णुलवः, धातृतिः, मल्रुद्रन्तः, हीत्-कार: । 🕸

२३। श्रादिगेचोर्णुबी।

(भात् ५।, इ.क.एची: ६॥, खन्नी १॥)।

श्रवर्णात् परयोरिगेचोरवर्णेन सन्द क्रमात् खत्री स्त:। 🕆 **हृ**षीकेशः, दामीदरः । ध सन्धिग्रहणात् सन्धितुष्येव न सन्धिः। § माधवर्डिः, गिवल्कारः, क्षणीकत्वं, मुकुन्दीकः, क्षणीक्यं, भवी-षधम्। १

२४ | गोधीरनेधिन एड्-ऋको: । (गः ६।, धोः ६।, षन्-एष्-इनः ६।, एङ-ऋकोः ६॥) ।

गैरवर्णात् परयोरिधन्विर्जितस्य धोरेङ्ऋकोरवर्णैन सह क्रमात् खवी स्तः। ∥

सुर-मरि: = सुरारि:, लच्ची-द्रेश: = लच्चीश:, विक्-उत्सवः = विक्ताव:, घाट-स्टिंड: = धार्गेंड:, मक्रु-खदनाः = मक्रुदनः, चीव-खनारः = चीतृनारः।

[†] अवर्णात् परस्य यथासभावम् इकः अवर्षेन सह गुणः (८) स्थात्, एवस् अवर्षेन सद बिह्न: (१) स्थात्। पूर्वतः सहानुवित्तः। पाणिनिः ६।१।८०-८८।

[🖠] भूगीक-र्र्श: = इशीकेश:, दामन-खदर: = दामीदर:।

[§] लुनि न सम्भावविधी रत्यत्र सिंधान्दग्रहणात् सम्यध्यायसूत्रेण लुग्रेव सिंधनं स्वात, अध्यायान्तरसूत्रेण लुपितुसन्धिः स्थात्. अतोऽत्र दामन् इति ग्रन्दस्य न-कारस्य **भध्यायान्तर(भजन्ताध्याय)म्**चेण (११८) लुपि दामीदर इति सन्धि:।

[¶] साथव-ऋडि:⇒ साधवर्डि:,शिव-ऌकार:⇒ शिवल्का×:,क्षण-एकस्यं≔ क्रचीकालं, सुकुन्द-भीक: = सुकुन्दीक:, कृषा-ऐकां अकर्षीकां, भव-भीषधम् = भवीषधम् ।

[📗] मात्सइ चेश्यनुवर्भते। खपसर्गाणां मध्ये प्रपराचप मद उप मा(उन्) एभः

प्रेजते, परोखित, श्रपाच्छेति। * श्रनेधिनः किं—उपैधते, श्रवैति। क

२५। लिधोर्वा।

(लिघी: ६।, वा (१))।

लिधोलु पूर्व्वीतां कार्यं वास्यात् , क्ष प्रेकीयति प्रैकीयति, प्रांचीयति प्रौघीयति, प्रार्चीयति प्रर्ची-यति, प्राल्कारीयति प्रस्कारीयति ।§

२६। लोपोऽस्थोमाङोः।

(लीप: १।, अस्य ६।, भीम्-भाडी: ॥)।

त्रवर्णस्य त्रोमाङोः परयोर्लीपः स्थात् । ¶ ि श्विवायोत्रमः, शिवेहि, ब्रह्मोतं, राजर्षिः । ∥

ारस्य एघ-४न वर्जितस्य घातीः प्रादीनामवर्षेत्रं सह एक्षीगुणः (८), ऋकोइतिः (८) स्यात् । घातीर्जृकाराभावात् एङ्स्तोरित्यनेकापि श्रष्टसिद्धै स्वयद्वषं परवानुक्रव्ययंत्रे । ।। विनि ६।२।८८.८१.८४ ।

- प्र-एजते च प्रेजते, परा-भोखित च परीखित, अप ऋष्किति = भपार्क्कात ।
- † उप-एधते (२३) = उपैधते, चव-एति (२३) = चवैति ।
- ‡ पूर्व्वाक्तिनिमित्तीभृतेन उपसर्गावर्षेन सह नामधातोः एङ्च्छकीः क्रमैं।त गुण(८) ह्वी (८) वा सः। प्र-घोडारीयति इत्यादी पूर्व्वापरयीः परिविधर्वस्वान इति न्यायात्। ।रस्वेष (२६) घवर्णस्य लोपे प्रोडारीयितः न तु प्रौडारीयति । पाणिनिः ६।१।१५,८८।
- ं ६ प्र-एकीयांत = प्रेकीयति (वा २३) प्रेकीयति, प्र-भोषीयति = प्रोघीयति (वा २३) विवादित, प्र-स्टबीयति = प्राचीयति (वा २३) प्रचीयति, प्र-स्टकारीयति = प्राचीयति, वा २३) प्रस्कारीयति ।
- य इन्ह चवर्णयहणं सह-निवृद्ध्ययंत् । चवर्णस चोद्धारे चादिष्टाङ च परे लोप: यात, चनादिष्ट चाङि परे दौर्वेणैव पदसिक्षे: चवर्णलीपस्य वैयर्कात् । पाणिनि: !११८५ ।

∥ शिवाय-चीम्-नमः (५०,५१) == शिवायीज्ञमः ; चत्र, स्तीपोऽध्यादेश खचते इति शयात् स्थानिवदादेश इति नियमेन चकारस्य स्थानिवस्तेन सर्याग्रीरिति (३०) स्थानिवदादेगः । * दयोर्विभाषयोर्भध्ये विधिर्नित्यः । १

२७। एवेऽनियोगे।

(एवे ७।, चानियोगे ७।)।

भवर्षस्ट एवे परे लोपः स्थातृ अतियोगे। \$। भवीव। नियोगे तु—भवीव गच्छा। §

२८। बौडोलोः से।

(बा ।१।, चीशीली: ०॥, से ०।)।

भवर्णस्य भ्रोष्ठोत्वोः परयोत्तीपः स्थात् वा से सति । ¶ विस्बोष्टः विस्बोष्टः, स्थूलोतुः स्थूलीतुः ।∥ से किं—तवीष्ठः । ॐ

यकारस्य न लुप्। शिव भा-इडि (२३) = शिव-एडि च शिवेडि, भा-कतन् (२३) च भीतं, ब्रह्म-भीत = ब्रह्मीतम्, भा-ऋषि: (२३) च घषै:, राजा-भिषं: = राजिषै:।

- स्थानसस्थानीति स्थानी, भादिक्यतेऽसी भाटेक्यः। यो वर्षो यस्य वर्णस्य स्थानी
 भादिष्टः स पूर्वावश्वत् भवतीत्ययः। वस्तुतस्तृ येषु भनिष्टं तेषु स्थानिवस्तं नानितः
 भत्तव प्राचः— इष्ट साधनायैनिव न्यायः स्वीकियते, नत्वनिष्ट नाधनायैनिति । पा.१।१।५६।
- + पूर्व्यापरयोः न्वयोः विकल्पवाचिक वाग्रव्हे प्रयुक्ते तन्मध्यविक्ति त्वे स्वथोः स्वयं वा वाग्रव्हेख नानुइतिः, धतस्विधिनियः, यथा—(२५) विधोषौ, (२८) बौष्ठोतोः से, इत्येतयोर्गर्ध (२६) खोपीऽस्यामाङोः, (२०) एवेऽनियागे इत्येतयोः वाग्रव्ह्य नानुइतिः। यव तु वाग्रव्हो व्यवस्थावाचौ, तत्र विभाग्रव्हयमध्यवित्नः इष्टत्वात् निव्यवस्थं बीष्ट्रसम्—तेन (२०) धयायो दितिः (२८) गार्वेशितयोक्ष्यः, (३८) एङोऽतः इत्यस्य निव्यवस्। (६६) से तु क ख प प वेतिः, (०१) यवाचि इत्येतयोर्गर्थे, (६०) प्रसि गिरितः (६०) क ख प प्रयोग्वित्योविक्षत्यः, (६८) श्रास्त्र गार्वितः, (६८) भाग्रवेशितः इत्यः, (००) भास्त्र भाग्रवेशितः विव्यवस्थः, (६८) भाग्रवेशितः (६८) भाग्यवेशितः (६८) भाग्रवेशितः (६८) भाग्रवेशितः (६८) भाग्रवेशितः (६८) भाग्रवेशितः (६८) भाग्रवेशितः (६८) भाग्रवेशितः (६८) भाग्यवेशितः (६८) भाग्रवेशितः (६८) भाग्रवेशितः (६८) भाग्यवेशितः (६८) भाग्रवेशित

‡ भनियोगे भनियभे भनवधारणे इत्यर्थः। "एवे चानियोगे" इति वार्त्तिकस्। ६ भयौ एव = भयोव। भया-एव गच्छ (२व) = भयोव गच्छ।

क्षाची है। चीती चपरे चवर्णस्य लोपः स्वादा समाति । वाशव्यस्थे इः स्वतस्यादाक्तिः स्वात् संचायां निष्यम् चवर्णभीपः स्वान्,तन प्रोडी इषः,प्रोडी मस्यविभेषः । वार्तिकम् ।

॥ विम्ब-घोष्ठः = विम्बोष्ठः, स्यूल-घोतुः = स्यूलोतुः, (विष्ट्रेश) विम्बीष्ठः, स्यूलीतुः। विम्बोदव घोष्ठौ यसः, स्यूलघासावीतुचैति समासवाकानः।

चे किं किं किं दित कथनुक्तम्, भ्रमासे-तव-भोष्ठ, (२३) = तथौष:।

२८। बीसे ल्तो बिं।

्वी से ७।, तु।२।, चटतः १।, बिं २।)।

त्रवर्णात् पर ऋतो त्रिमाम्नीति त्रीमे सित । क्ष भीतार्त्तः । ं त्रीमे किं—परमर्त्तः , क्ष लन्तस्य नानुष्टितः । §

३०। ऋण प्रवसन वत्सर वत्सतर दश कम्बलस्य ए:। (स्प-क्रम्बलस्य ६१, सप. ११)। एक्समवर्णीत पर ऋणी विमाप्रीति। ऋणार्णे, प्राणे। श

३१। खाचयोरीरोहिन्यौ(ग्यौ)।

(ख-प्रचयो: ६॥, ईर-ऊहिन्यौ १॥) ।

^{*} पर्यविधात् विभक्तेविंपरिणान इति न्याधात् (२६) लीपीऽस्थ्रेमाङोरित्यवर्णस्य विभक्तिं विपरिणमत्याइ प्रवर्णात् पर इति । ब्रिडिविधानदर्भनादेव सङ्गातृइतिः । वृतीयासमासे भवर्णात् परस्य पत्र्यविद्यस्य चरत्रभव्दस्यकारस्य पूर्व्वावर्णेन सङ्ग ब्रिडिः स्यात् (८) । पाणिन ६।१।८८ सुत्रस्य वार्त्तिकम् ।

[†] शीत-ऋत. - शीतार्चः । शीतेन ऋतः -- पीडित इति वृतीयात् गुरुषसमासः । एवं सभा-ऋतः - सभार्च इत्यादि ।

[‡] परस ऋतः ≔ परमर्ताः । परस्थाधौ ऋतश्रेति कर्म्मधारयसमासे ऋतस्य बद्धाभावेन (२३) गुणः (८) । •

द्वितारान्तस्य परस्य परस्व अनुवित्तर्गाति । अनेन ज्ञापक्षेन लन्तिमनपदस्य
परस्वेऽनुवित्तः स्चिता, परस्तु ज्ञापकाश्विक्तिनित्यायान कविदनिष्टे नार्नुवर्तते ।

श स्रणापन्यनायं म स्रणम् स्रणाणे, प्रक्रष्टमणं प्राणे, वसनायं हणं वसनाणे, वस्तरे स्र देयस्यं वस्तराणे, वस्तरायं स्रणं वस्तरराथे, दश स्रणाः प्रयोद्गीण सिन् यस्तन्य स्रां वा दशाणी देशः दशाणी नदी, कम्नलायं स्रणं कम्नलाथे मा स्रणोऽस्त्रियां प्रयोद्गीं देवे नीचे दुरात्मनीति पदगीविन्दः। एतदन्यन तु (२२) गुणः—यथा, प्रधम-स्रणः = प्रधमणः, उत्तम-स्रणः = उत्तमणः। "प्रवस्तरकम्बलवसनाणं दशानाः स्रणे" १ति वार्तिकम्। "श्रैन कालापानुसारिणो वस्तरश्रद्मिप पठिता वसरे देयस्यं वसराणं मिस्यदा इरिन। अपरे तु वस्तश्रद्मिप पठिन। तस्त्रे भाष्यादिविद्यम्" १ति प्रीटमनोरमा।

भनयोरवर्णात् परावेतौ त्रिमामृतः। # खेरम्, पची हिणी। ए

३२। प्रस्रोढ़ोज्युहाः।

्र (प्रस्य ६।, कट-कढ़िःकहाः १॥)।

प्रस्थावर्णात् परा एते विं यान्ति,। प्रीवः, प्रीवः, प्रीवः । क्ष

(वा ।१।, एव-एथी १॥)।

प्रस्थावर्णात् परावेती जिंवा प्राप्ततः । प्रेषः प्रेषः, प्रेषः प्रेषः ।§

३८। मनीषा:। ' (१॥)।

मनीषाद्या निपालकी । श

अ स्वाचयी: क्षममाह—स्वष्य भकारात् द्राः, भवस्य भकारात् किन्ते च, तेन सङ्गिनाप्नीति। सृत्वे द्रेर द्रत्यस्य भकार उद्याख्यार्थः. तेन रिकाल द्रेर् इत्यस्य सङ्ग्यं, तेन द्रेर-प्रेरिणोः प्राप्तिरित —यथा, स्त्वेरं. स्त्रेरी, स्त्वेरिणो । स्त्वेरा इत्यत्र न स्वादनिभिधानात । मलादिरिहिते स्त्वेरं स्वच्चन्दर्यास्त्रिप्ति शब्दास्थः । भवाषामूहिनौति वाकी "सज्ञायानेव" भवीडिणो (णलं)—परिमाणविश्वेषविशिष्टा सेना।
भवाषासूहस्तत इनि कृति तु भवीडिणो (नो)स्व भवति । पूर्वेवत् वार्तिकम् ।

⁺ ख-ईरं ⇒ खैरम्। भच-किश्नो = भधौहिषौ।

[‡] प्र-जदः = प्रौदः, प्र-जिदः = प्रौदः, प्र-जिदः = प्रौदः। जिद्द्यातीः घर्ष् प्रस्थयेन जइश्रन्दः साध्यः, वद्दयातीनु क्रा-क्रि-प्रत्ययास्यां जदः जिदः इति पदद्यं शिद्धम् प्रोदी भार ईत्यच प्रपूर्व्वादा उद्द्यात्वा वद्द्यातीः क्रप्रत्यये रूपम्। पूर्व्ववत् वार्तिकम् काश्रिकावित्त-कलाप-सुपद्म-सविष्ठसारमते (प्राचां मते भाष्येऽपि) वार्तिकस्चे जइश्रन्दस् उद्गेद्धी नास्ति, नव्यानां मते तुभाष्य तदुक्षेत्वी दृश्यते ।

[§] विकल्पन इडिविधानात् पर्च गुणो भवतीत्थवसीयते, इयभेव याशव्दस्र व्यवस्था। प्र-एष: चप्रैष:, प्र-एष: चप्रैष:। दूत इत्यर्थ:। पुर्वन्त वीर्तिकम्।

कृ यत् यत् सवर्णगानुषम् तत् सर्व्यं निपातगात् सिव्यमिति भाष्यम् । तस्य सिविःक्रिकित् वर्षागमेः, क्रितित् वर्षाविषय्येयः, क्रिकित् वर्षागमेः, क्रिकित् वर्षागमेः,
क्रिकि सालर्थातिमध्येत्रातस्या । निपातः पद्यभेदो यथा — वर्षागमी वर्षाविपय्ययम्,
क्रिकि पापरी वर्षाविकारगामे । सातीलदयोतिमधेन योगसदुत्राते पद्यविधं निदक्तमिति
पूर्वासार्थाः । पाणिनि ६।१।६॥ स्वस्य वार्तिकम् ।

प्रनीषा, इतीषा, लाङ्गलीषा, यक्तन्धः, कुलटा, सीमन्तः, पत-इतिः, सारङ्गः । *

३५ । यलायवायावाऽचीचः।

(यल-भय-भाय-भाव: १॥, अभि ६।, इत्त: ६। — यला ३।, वा) ₹

स्वः स्थाने य्व्र्ल् श्रय् श्रव् श्राय् श्राव् एते श्रवि परे क्रमात् स्यः पं त्रास्वकः, विष्यीगी, धात्रच्यती, लालतिः, इरये, ग्रभवे, नायकः, पावकः। इ

३६। वाव गोर्दान्ते।

(वा ।१।, अव ।१।, गी: ६।, दाले थैं।) ।

[•] मनस् र्रपा = मनीया — बृद्धिः। इलर्युपा च हलीया, लाइतः र्द्धपा = लाङ्गलीया, विवास लाङ्गलीया। अतं अत्युः = अतं त्रुं : — क्रिंगल्य विवास लाङ्गिः = क्रिंगल्य लाङ्गलीया। अतं अत्रुः = क्रिंगल्य लाङ्गलीया। अतं अत्रुः = स्वारङ्गः = चानकादिः। श्रृ व्यादिषु परक्षं वाच्यमिति वार्त्तिकम्। अत्र अवस्थी अन्त्वीपविधायकेऽपि सृत्ते वह्वववनिर्द्धिमात् वृत्ती आदिपदस्थीपादानाअ लाखायपि पदानि निपातनात् सिध्याल, इत्यादि वहवचनानाः स्वयस संस्वकाः इति । विधाय = वहस्यतिः, वाचस्यतिः, वनस्यतिः, वलाङ्कः, सोयदम्, आस्यदं, तीम्तः, तस्तः सस्तरी, अटवी, आयर्थं, प्रयोदरः, केशवः, परोगं, प्रयाखं, शिस्तः, तस्तरः, स्वर्तिकः, स्वर्थेऽयम्, परस्यरं, परम्परा, पिशाचः, क्रिपत्यः, निकां, विभाविः। पाणिनिः ६।३।१०८।

⁺ इ. उत्तर खुए भी ए भी एतेषांवर्णानां स्थाने क्रानेण---

यृ वृ र् ल् भय् भय् भाय् भाव् एति क्षमात् स्रः भवशे एचि असमान-रिका भ परे। समान-रिका परेतु (२२) दीर्घएव, यया— लच्ची ग्रः, सामान्यविभेषयी-रैप्ये विश्वेषविधिर्यं ज्वान् रिति न्यायात्। सूत्रेयल रिति भकारान्तपाठः उचारणसीक-योषः (४)। पाणिनि: ६।१।७०-७८।

[‡] ति-अन्तकः = त्रानकः, त्रीथि अन्तकानि धर्म्षि यसा। विश्व-ईशी = विश्वीशी, धाट-अच्छाती - धातच्यती, त्र आकृतिः - लाकृतिः, त्रकारश्चेत आकृतिर्यस्य। इते ए = इरये, श्रभी ए = श्रभवे, नै-अकः = नायकः, पी-अकः = पावकः।

गोरिचः स्थाने अवः स्थादा अचि परे हान्ते। * गवेगः, गवीगः । हान्ते किं, गवे। गवेन्द्र-गवाची नित्यम्।

३७। ऋयां योर्जुब्बा।

व प्रयां ६॥, यी: ६॥, लुप् १२।, वा १२।) ।

दान्ते खितानामयादीनां यवयोर्जुप् स्याद्या । क्ष हरएहि हरयेहि, यभददं यभविद, त्रियाएति त्रियायेति, विष्णाउलाः विष्णावलाः । §

३८। एङ रितः।

(एङ 🚜 ।, श्रत: ६।)।

दान्ते स्थितादेङः परस्य त्रकारस्य तुप् स्थात्। इरेऽव, विश्योऽव। ¶

अ द क्यस्यानुहत्तिः। चव दित प्रयक् विधानात् गांग्रज्यस्य भोकारस्याने चकारात-भवादेशः स्थादा चित्र पदाले। हत्तौ गीरिचः ग्रहणात् विचा गौर्थस्य क्यादौ (३६०) गवावादिरित्यादिना गीराकारस्थाने क्रस्य-चकारादेशे चित्रगु-भाषार्थः
 चित्रगवाद्यः इत्यादि सिडम्। गवीश इत्युदाहरणानन्तरम् च्रयां यौरिति स्वष्णकरणात् नात्र वलीषः, कीवित् समार्म न स्थादित्याहः। पाणिनिः ६।१।१२३।

[†] गी-र्द्शः (२३) = गवेशः, वा (३५) गवीशः । गी-ए (३५) = गवे । गी-दृन्दः = गवेन्द्रः, गी-अवः = गवाचः, उभयत्र नित्यसवादेशः । पाणिनः ६।१।१२३-१२४।

[‡] प्रयाम् इति बहुवपननिर्देशी गणार्थः । पदान्ते स्थितानाम् अय्, अव् आय्, भाव्, इत्येषां य्वीर्लुप् स्थादा । अव वाश्रन्दस्य व्यवस्यया—कवित्र स्थान्, कचित् वां स्थान्, कचित्रित्यमिति स्थृतम् । अभिधानादुदाहरणानि ज्ञेषानि । पाणिनिः ८। १।१९ ।

[§] इर्र-एहि (२४) = इरय्-एहि (२०) = इरएहि, सभी-इर्द (३५) = सभाव-इर्द (३०) = सभाइटं, श्रिये-एति (३५) - श्रियाय-एति (३०) - श्रियाएति, विश्वा-उत्तः (३५) - विश्वा उत्तः। वा (३५) इरयेहि, सभाविदं, श्रियायेति, विश्वावतः। (१५) सम्बन्धिः।

^{् ¶} चपदार्च यया – श्रे चर्ग (३५) च श्रयमं, भी अपनं (३५) च अथनम् । पाणितिः इं।रार०६ ।

३८। गोवी। (गी: ६।, वा ११)।

गोरति वा सन्धिः। * गवायं गीऽयं गी-त्रयम्। प

४०। नाजो त्रक्तोऽनाङ् नि: सुश्च।

(न ⊧१।, भच ।१।, भी-भन: १।, भनाङ् ।१।, नि: १।, मु: १।, च ।१।)।

अञमात्र श्रोकारान्तय' निराङ्वर्जः सन्धिं नाप्नोति, प्रुस । 🕸 अञ्चनन्त, दर्दछर, उउमेश, त्रहो-देशान, क्रण-एहि । ग्रनाङ किं--

> मर्यादायामभिविधौ क्रियायोगेषदर्थयोः। य त्राकारः स ङित् प्रोक्तो वाक्यस्मरणयोरङित्॥ §

एतमातं कितं विद्यात् वाक्यसार्णयीर कित्।

अर्थवधात् विभक्तेर्विपरिणाम इति न्यायात् अतः इति षष्ठान्तपदं सप्तस्यन्तं भुला चनुवर्त्तते, इत्यत चाइ गीरतीति। प्रकरणवशात् सन्ति:। चत्र पूर्वस्तात् एउटः इ.स.नवर्स्य एङ लस्य गीरिति वक्तव्यम्, तेन (चित्रगु-घग्रम्) वित्रव्यमित्यत्र नास्य सूत्रस्य प्रसर:। पाणिनि: ६।१।१२२।

⁺ गी.चर्य (३६) = गवायं, वा (३८) = गीऽयं (३८) = गी.चर्म।

[🕆] घचमाताव्ययस्य, भी कारानाव्ययस्य, मृतस्य च, घन्यावयवस्य बद्धानरस्याद्या-व्यवेन सङ्ग्तसिः। तेन चनत्त च, द्रेशान-चही इत्यादी सन्धिः स्थादेव । घी चन इति पृथकरचात् चच्पदेन तन्त्रात्रं प्रतीयते, चन्यया व्रजनदरल (५०४) इत्यादिवत् भननस्येव प्राप्ति: स्यात्। तीन भ, इ, उ, ऋ, ऌ ए, ऐ, भी, भी, इत्थेक्नेक निपात:, एवमोकारान्तीऽपि निपात:। नजा निर्दिष्टमनिस्यमिति न्यायात् ऋडीऽतिरस्यमिस्यादि-बिद्धि:। पाणिनि: १।१।१४१५।

६ जिन्दन्वस्थयत्वस्य भाकारस्य भाज्यं भेदज्ञानं कथम् इस्यतं त्राह—य त्राकारः— मर्थ्यादायां सीमायाम् (१), सभिविधी सभिव्याप्ती (२), क्रियायोगे — क्रियावाचकपदः पूर्व्वतित्ते (३), ईषदर्थे प्रस्पार्थे (४), वर्तते, सं ङित् ग्रीकः, तस्य सन्धिरिति भावः । महाभाष्ये यथा—र्नुषदर्थे क्रियायोगे मर्व्यादाभिविधी च व:।

पालवीधारैकदेशादालोक्यापरतेष्टीरः । भा एवं तत्त्वमर्यादा, भा एवं तत् कतं मया ॥ *

8१ | ब्वद्गेडमीय | (बन्दे का, मनी ई जन्ए च्यू कि)। ब्रे निष्यं त्रीडमी-प्रब्दो, दे निष्यं त्र हें द्वेदन्स सिं नाप्नोति। क्ष्यमी देशाः, हरी-एती, विष्णू-५मी, गङ्गे-इमे। ब्यदे किम्— प्रस्थयं, वध्यर्थः। इ

8२। स्थोद्देती। (वि.भोत - स्थोत्। ११, वा ११, रती ११)। सी जात भीकारः सन्धिं वा नाप्रीति इती परे। §

[#] यदा, भा-भाताबीधान् न्याताबीधान् — भाताभागनपर्यंत्तम् (१)। भा-एक-देशान् न्यित्वान् प्रविदेशं करचरणादिकं व्याप्य(२)। भा-भानीिकं च्यानीिकं न्यस्थैः (३)। भा-जपरतैः = भीपरतेः -- ईषद्विरत्तैः (४)। य भाकारः -- वाकार्षं (१) पूर्ववाव्यानीभवशैः (२) वर्षते, स भिङ्गं, स्वर्णः सत्यस्यानेभवशैः (२) वर्षते, स भिङ्गं, स्वर्णः सत्यस्यनं स्वादिवर्षः, यदा, भा एवं तत्त्वस्य बद्धाणी मर्यादा इति वाकां (१), मया तत् कृतम् भा एवम् इति स्वर्णः (२)।

[†] वहत्वचनिष्यतः भमीश्रव्दः, हितचनित्यतः र्द्रकारानः स्रकारानः ए कारान्य स्रितं नाप्रीति । भव द्रेकारादेः सिक्षनिष्धात् तित्रमित्तकस्थापि स्रक्षिनिष्धी बीध्यः ---तेन गक्षे-भव द्रत्यादौ नाकारखीयः । पाणिनिः १।१।११-१२।

[्]षत्री-पर्यम् = प्रस्थयम्, प्रमी --रीगी । वध्या-पर्यः (११८) = वध्-पर्यः च्याव्यंः एवं नार्था-पर्यः = नार्थ्यः इत्यादी जकार-ईकार्याः विवचनित्यव्रताभावान् सिन्धः स्वादिति । नजा निर्दृष्टमिनस्यमिति न्यायात् विवचने प्रदेश एकारस्य सिन्धः स्वादिति, तेन प्रमुक्ते-रह (१५,२०) प्रमुक रह प्रमुक्तियहः प्रमुक्ते-प्रव (१८) = प्रमुक्तेऽव, एयं मयौवादिव विवचनित्यव्रस्थापि ईकारस्य दवे परेसिन्धः स्वादिति । यथा, मयौ भाष्या-पत्ती पैव दम्पतौ नन्पती तथा । रोदसी वासकी चैव दवे जायापती तथा । प्रमौरपीह प्रकार्ने पेवुषीप्रभतान्यपीति मयौवादयः । प्रथम दविष्यः वाश्वस्स्य वश्वस्यः का स्वौकारिय ते साध्याः । ईद्नीदीर्वयद्यान् क्षमवावद्यावासित्यन्त क्रसस्य सन्धः ।

[§] सौ परे जात घोकार: छकारानाशस्त्रस सम्मोधने एव सम्भवति, स घोकार: सन्धि वा नाश्रीति इति शब्देपरे । पाणिनि: १।१।१६ ।

विष्णी-इति विष्ण-इति विष्णविति।

४३। उञ्गणपान्विच व वा।

(उञ ।१।, चपात् ५।, तु ।१।, चचि ७।, व ।१।, वा ।१।) ।

उज् सन्धं वा नाम्नोति इस्तौ प्ररे, खपात् परसु वो वा स्यादचि। † उ-इति, विति।, किम्बुत्तं, किसु-उत्तम्। ध

88। वेक् खश्चार्गेऽसे।

(वा ११।, इ.क् ११।,•स्वः १।, च ११।, भर्षे ७।, भरे ७।)।

इक् सिन्धं वा नाम्नोति, खय वा खादणें परे, नतु से, दान्ते। १ मार्की-मन मार्कि-मन मार्क्चन। मर्पे किं—हथेर्मा। ¶

84 । मटक्यम्। (मिकि श, मक्।रा)!

^{*} विश्वी दति = विश्वी दति, वा (३५,३०) विश्व दति विश्वविति।

[†] स्रकारीऽस्य निज्वदव्ययत्तक्तापकः । पूर्श्वतीऽनुवर्धमानिन वाशस्देन, एस् सिसं वानाप्रांति इ.ती परे, इत्येकोऽयः । याप्पत्याद्वारात् परसु व-कारा वास्यादिव इत्य-परीऽयः । पाणिनिः १।१।१०, ८।३।३३।

[‡] विधिवलात् सवर्थे परेऽपि उकारस्य वलं (३५), न तु दीर्घः (२३)। उकारस्य स्थानिवर्त्तन सञ्चद्वावेन वा दानी म (५२) इत्यनेन न मस्यानुस्थारः। विकल्पपच (४०) मानो चल इत्यनेन सन्धिनिर्धः।

^{\$} मख्यम्भुषा (३६) स्वात् द। ने इत्यस्मानु इति: । इक् प्रत्याहार: स्रियं वा नाप्नीति, क्रसीऽिय वा स्थात्, भसनाने वर्षे परे, पदाने, भसमासे । स्थिनिविधसम्बदी वाश्रस्ट: पूर्वादनुवर्त्तत एव, इड पुनर्वायडचं इस्तसम्बर्धायम्, भस्या स्थिनिविधसम्बद्धस्य वाश्रस्टस्य स्थिनिविधेनेव चितायंत्वे इस्तस्य नित्यतापितः स्थात् । भन्न वाश्रस्टस्य स्थवस्थावादित्वात् क्रविदिश्यसमासेऽपि स्थात्, तेन नदा-भभ इति समासे नदी-भभः नदिभभः नदाभः इति । पाणिनः ६।१।११० ।

पृष्ठरि-पर्या (१५) = प्रयंशी। क्रस्तान-प्रत्युदाइरच-क्रापकात् क्रस्तानस्थापि पची सम्बक्षाव इति स्चितं, तन वारि-चन वास्यंत्र इत्यपि भविता।

त्रक् सन्धं वा नाम्नीति ऋकि परे खद्य वा स्थात्। * ब्रह्मा ऋषिः, ब्रह्म-ऋषिः, ब्रह्मर्षिः।

इति भच-सन्धि-पादः।

३य पादः—हस्-सिंधः।

8ई। स्तु सुभि: सुगात्।

(स्तु।१।, श्चुभि: ३॥, श्चु।२।, श्रशात् ५।)।

सकार तवगीं प्रकारेण चवर्गेण वा योगे प्रकार चवर्गी क्रमात् प्राप्तुतः, नतु प्रात् परौ । *

सचित्, प्राङ्गिञ्जय। त्रशात् किं-प्रश्नः। न

^{*} इह वाहयमनुवर्षते । समकौ प्रत्याहारौ । यव इस्त्रमधावना नाम्ति तव च वा सिविरिति — तेन, दिध सः च्छति दध्युच्छति इत्यादि । अव भ्रष्टमामे इति नानुवर्षते, तेन महांथामौ स्विष्टित समामं, महास्विः महस्विः महर्षिरिति कथिदाह । श्रुतएव "समासेऽध्ययं प्रकृतिभावः" इति सिज्ञानकौ मुदी । वस्तुतम् श्रिन्यसमासे एवायं विधिः, तेन पद्याच्छेतीत्यादौ न स्थात् । पाणिनः ६।१।१२८ ।

^{*} युधिरिति वह्तवनं योगकमाभावस्वनार्थम् । त्रतौयया साहित्यस्वनात् योगी लभ्यते । योगय भव्यवहितपूर्व्वापदैकतरवर्षितम् । तालव्यक्रकार-चवर्गयोरत्यतरेष सह भव्यवधाने स्थितौ दन्यस्कार-तवर्गो क्रमान् तालव्यक्रकार-धवर्गौ प्राप्तुतः क्रकारः भवर्गयोर्भावं प्राप्तुतः रत्यथः — सकारभवर्गौ स्थातामिति यावत्, नत् तालव्यक्रकारात् परस्थितौ । भव "शान् परस्य जुलं न स्थान्" इति सिद्धान्तकौमुदौ । एकत्र हष्टः सास्त्रयोऽत्यवापि प्रयुच्यते वाधकं विनित्तं नियमान्, परस्वीक 'नच दानात् टवर्गान् परौ इतिवन् भवापि 'नच दानात् चवर्गान् पराविति' बीध्कं तेन भच् सन्धः, नञ्स्समासः, कञ्चातः इत्यादिसिद्धः । पाषिनिः पाष्ठावित' बीध्कं तेन भच् सन्धः, नञ्स्समासः, कञ्चातः इत्यादिसिद्धः । पाषिनिः पाष्ठावित' बीध्कं तेन भव्यस्तिः, नञ्स्समासः, कञ्चातः इत्यादिसिद्धः । पाषिनिः पाष्ठावित' बीध्कं ।

[†] सत्-चित् च सचित, शार्किन्-जय च शार्किञ्चय । प्रश्नः च प्रश्नः ।

८७। ष्ट्रीभः द्वष्यदान्तटोः।

्षट्भि: ३॥, ष्टु !२।, ऋषि ७।, **षटानाटी: ५**।) ।

सकार-तवर्गी वकारेण टवर्गेण वा योगे वकार टवर्गी क्रमात् प्राप्तः, न तुषकारे परे, न च दान्नात् टवर्गात् परो । 🕸 तहीका, चिक्रण्हीकसे। अपि किं—सत्षष्ठः। अदानाटीः वितं-षट-ते । ф

8८। षसां षसवित षसगर्थः। σते निपात्यन्ते । 🕸

88 । ले लस्तोः । (ले अ, तंः रा, तोः ६।)।

ले परे तो लेकार: स्थात्। है तल्लय:, विदाँ लिखिति। यली दिधारी निरनुनासिकः सानुनासिकः। जमीऽनुनासिकस्तेन तत्स्थाने सानुनासिकः॥ ¶

पूर्वतः स्तु दत्यस्यानुवितः । एभिरिति बहुवचनं पूर्ववत् । मूर्वन्यवकारटवर्गयो-रन्यतरेण सह घळावधाने स्थितौ दन्यसकारतवर्गी क्रमात् मूईन्यपकारटवर्गे। भवतः, न तु मूर्जन्यवकारे परे. न च पदालटवर्गात् परिकाती। घटत्-सत्त इत्यत्र नगटनङ (५०) इत्य-नेन टस्याने तनकरपादेव, अनेन पुन: तस्याने टकारी न स्थात्। पाणिनिः? पा४।४१-४३५

⁺ तत टोका≔ तहीका, चिक्रन्-टौकसे च चिक्रस्टौकसे; हे चिक्रन् संगच्छ-सीत्यर्थः, ढौक्रङ्गतौ इति कविकल्पद्रुमः ।

[‡] षष् नामे -- षसां, षष्भव्दाटामो नुमागमे (११०) निपातनात् षस्य गले षसा-मिति । यद तुगीयत्वात् नुभागमी न स्थात् तद न निपातनं, तेन भतिष्वाभिस्योद । षड्धिका नर्वात: षस्पवित:। षस्पा नगरी षस्पगरी। नगरीति स्त्रीनिर्देशात् षड्-नगर्मित्यच न स्थात्। ''चनाम्नवितनगरीणामिति वाच्यम्'' इति वार्त्तिकम्।

[§] ती स्तवर्गस्य । पञ्च दाले स्थितयीसकारनकारयीकदाइरणवलात् दाले इति •वीध्य, तेन सुबन्**ल्गि (२४२) इत्यचन नस्य ख:। पाणिनि:** ८।४।**६०** ।

ๆ विदाँ ज्ञिखतीत्यत्र भनुनासिकहेतुमाह यखी विधेति । भनुनासिकीऽर्वतन्द्राज्ञतिवर्षे

प्रा चोर्नु र्भस्यदान्ते।

(स्वी: ६॥, तु: १।, भासि ७।, पदासे ७।)।

त्रदानी स्थितयो भीनयो नुं: स्थात् भासि परे। रंस्थते, बृंहि-तम् । 🎋

पूर्। अपे अम नो:। (अपे श, जम ।१।, नी: ६)। त्रदानी स्थितस्य नी जीपे परे जम् स्थात । ग्रान्तः, प्रक्कितः । 🕆

पूर्। वा त्वरयपेऽरयम्। (वा ११), व ११।, अरवपे २०, परवम् ११)।

दान्ते अदान्ते वा स्थितस्य नी रेफवर्ज यपे परे रेफवर्ज यम् वा

कदः, अपिच नामिकामनुलस्योक्तत्य उचार्यते इसी इति व्यताच्या अनुस्वारे असे च वर्त्तते। नास्ति री यखिन भीऽर; यल इलास्य विशेषणम्,ततय रिभन्न यलप्रत्याहारी दिधा भवति — निर्तुनाशिक: - पर्डचन्द्राक्ततिवर्णश्यः, सानुनाभिक: - अर्डचन्द्राक्ततिवर्ष्णप्रधेकय । जमः खभावादनुनाधिकः --नाधिकामन्लद्यौक्तत्व जवार्यमाणः, तेन हेतुना तस्य स्थाने जायमानो यल: सानुनानिक: चर्डचन्द्राकृतिवर्णपुर्व्वक एव स्थात, कार्णगुणा: कार्य-गुणमारभन्ते प्रति न्यायादित्यर्थः । एवम् ऋनुस्वाग्जातो यल् मातुनासिको भवति । विदाँ क्रियतीत्वच नस्थानकातत्वान् चकारस्य भईचन्द्र।क्रतिवर्णपूर्वकत्वम्, अर्थचन्द्राकृति-वर्षस्य भनुस्वारैयत् पूर्व्वेथैव सम्बन्धः । भर दति किम, भवावशीत्यादौ (२६१) वनी न-स्थानजातीऽपि र: निरनुनासिक एव । पाणिनि: १।१।८ ।

^{*} रंखते इति रमधाती: स्पर्ते विभक्ति:, पदमध्यगलात् मस्यादान्तलं, रम्-स्पर्ते == रंखते । इडिधातीः इटिचेन नुणि ताप्रस्यः, त्रतएव नस्यादान्तलं, हन्-डितं - इडितं. क्षी क्रस (२१) इत्यनेन इत्य कल्बन्। घटान्ते इति किं— राजन् भुङ्खः। कसीति किं-नयसे, रम्यते। पाचिनि: ८।३।२४।

[🕇] चदानी स्थितस्य चनुस्वारस्य प्रश्चेकवर्गाचरे परे तद्दर्गश्चेषाचरः स्थात् । चच पूर्व्यः तीऽनुवर्त्तमानेऽपि नीरिति पुनगंहणं छामान्यानुखारपान्नप्रथम्, पून्यया कीयलमकारनकार-भातानुखारपाती जञ्जन्यते (८२७) इत्याचिसिडिः स्थात् । शान्-तः = (५०, ५१) मान्तः, • चन कितः च (५०,५१) चिक्रतः। शन्धाती चन्कधातीच कः। पाचिनि, पाध्र⊈ः।

स्थात्। * यत्नोऽतुनासिकः। गं यय्यस्यते यंग्रस्यते कः, हरि-भाज हरिंभज। कम्पते § इति पूर्वेण नित्यम्। ऋरे किः— रंरस्यते।

प्र। दान्ते मोऽसमाजो इसे नु:। '

(दान्ते था, स: ६।, घछचाजः ६।, इसे था. तु: १।) ।

दान्ते स्थितस्य मस्य इसे परे नुः स्थात्, न तु सम्बाजः। भिवस्तौति। असम्बाजः किं—सम्बाङ्ति। श

पूर्व । पुंस: सन् खष्यम्परेऽख्ये।

(पुंन: ६।, सन् ।१।, खिष ७।, चम्परे ७।, प्रस्त्रे ७।)।

अप्रयक्षियात् चदः लेडित नानुवर्णते, तेन दाने चदाने वायं विधि: । तथाच, दाले चदानी वा त्यंतस्य चनुस्तारस्य यवले परे यवला वा स्यः; दानी स्थितस्य कुवांचरे परे तदगीनी वा स्थाटिल्यंः । दानी यवले परे यथा—लें यच्च लंबचक्च, संस्कृत्यं गिम महणीमि, लंबुच्यः लंजुच्यः । चदानी यवले परे यथा—यें यस्यते यंगस्यते, वंबस्यते लंबस्यते लंबस्यते । रमधाताः ध्वान्तरेण लमधातुसिद्धि, रन्फात् सन्पन्तत् । पाणिनः पाराधिनः पाराधिकः पाराधिनः पाराधिनः

[†] यजोऽनुनासिक इति— यन जायमानी यनः चनुनासिकः चनुनासिकवानित्ययः, चर्मयादिलाद्यल्ययः । यमोऽनुनामिक इति तु लिपिक्रममाद्यातः, तयाले इत्यिज इत्यवापि चनुनासिकपुर्वक जमापभेः।

[‡] यमधाती यंडिं — यं-थस्यते = यंव्यस्यते, (वा) यंयस्यते ।

^{\$} कन्-पति (५०.५१) = कम्पते। एवं भवनी, ऋजिश्वष्ट इत्यादि । सूप सनुस्नारस्य भदाने स्थितत्वान पुत्रीसृत्रिणैव नित्यसादेश:।

[¶] शिवस्-स्तीति =ि शिवंसीति । सस्-राज्-इति च ससाउिति, इतिश्रव्येन ससाज-श्रव्यो यसिवर्षे इटस्चैक् वर्जनिति वीध्यम् । इदिसु—वेनष्टं राजस्येन सस्कलस्थियस्य यः। शास्ति ययाज्ञया राज्ञः स ससाजित्यसगीतोः । तेन संशोधनं राजते इति संराट् चन्द्र इत्यत्र अनुस्तारः सादेव । पाणिनिः षोशश्राम् ।

पुंसो मस्य सन् स्थात्, ग्रम्परे खिप परे, नतु स्थे। क्ष पुंस्कोतिसः। ग्रम्परे किं—पुंचीरम्। ग्रस्थे किं— पुंस्थातः। प

५५। नोऽप्रशासप्रक्रमे।

(न: ६।, अप्रधाना ६।, क्ते ७।)।

दान्ते स्थितस्य नस्य सन् स्थात्, श्वम्परे कते परे, न तु प्रयामः क्षं प्राङ्गिंश्किन्धि, चृत्रिंस्वाहि । श्वम्परे किं—सन्-सन्तः । श्वप्रयामः किं—प्रयान्तनीति । §

पूर्द। कांस्कान् नृं:पिवा।

. (कांस्तान् । १।, नृं: । १।, पि ७।, वा । १।)।

कांस्कान् कान्कान्, नृःपाहि नॄन्पाहि । ¶्

अप्रमुपरी यस्रात् मोऽम्परसिक्षन्, खपौत्यस्य विशेषणम्। पूर्व्वक्षात् मकारः
 अप्रवर्णते। मनो न इत् तेन (१०) मस्राले भवति; मकारे अपकार उद्यारणार्थः।
 पाणिनिः ८।३।६,वार्त्तिक्ञः।

[†] पुमांशाकी कीकिलयेति विग्रहे (१८३) पुम् कीकिलः =(५०) पृंस्कोकिलः, लुप्त-सकारस्यादिविधित्वात् (१५) सस्य विस्गोभावः । एवं पुंस्कृतिः, पुंस्पानं, पुंस्पृत्वः, पुंसातक इत्यादि । पुंमः स्वतास्पदीमृतं चीग्म् = पुंचीरम् । पुंभिः ख्वातः = पुंस्यातः ।

[‡] भ्रम्परे, दानी, सन्, इत्येतियाम् भनुवृत्तिः, सनी न इत् (१०) नस्यान्ते भवति ; स्वकारे भकार उदारणार्थः । अत्र सन्धिनातितरनकारी याद्यः, तेन किन्तव इत्यादौ न नस्य सन् । पाणिनिः ८।३।०।

[ु] श्राक्षिंन्-किन्धि = श्राक्षिंन्-म-किन्धि (५०,४६) श्राक्षिंग्किन्धि । पितन्-पाहि च पितन्-स-पाहि (६०) = पितंस्त्राहि । साद: खड़ादिसुष्टी स्वादृत्यमर: । प्रशाम्-तनीति (२०२) = प्रशाननीति ।

[¶] कान् कान् प्रति पददयस्य स्थाने कांस्कान् इति पदंनिपास्ति वा, पकारे परे तु

५७। न गटन ङ चकन् ग्र ग्रस्स ग्रसि वा।

(न गटन ङ: ६।, चकन्।१।, ग्रजस्स ग्रस्थि।, वा।१।)।

हान्ते स्थितस्य नस्य चन् मे, एस्य टन् मसि, टनयोस्तन् से, हस्य कन् मसि, स्यादा । * . सञ्क्षः: सञ्चामः: सञ्चामः: प्राग्ट्वष्ठः सगण्वष्ठः, षट्सन्तः ष्रृट्सन्तः, सन्तः सन्सः, । क्ष्रः प्राङ्वष्ठः । क्ष्रे

पूट। चपोऽबे जब्। (चपः ६१, अवं ७१, नव् ११।)। शन्ते स्थितस्य चपस्य जब्स्यात् अबे परे। वागीमः, चिट्टूपः । 🎼

पूरा जमे जम् वा। (अमे था, जम् ।रा, वा।रा) F

[इ.ति पदस्य स्थाने नृं: इति सानुस्वारिव मर्गानं नियाल्यने वा इत्यर्थः । कान्-कान् कांस्कान्, (वा) कान्कान् । नृन्पाद्धि चनृं:पाहि, (वा) नृन्पादि । पाणिनिः ३।१०।१२।३० ।

 ^{*} टस नस टनं, नस गस टनच खर्यात तस्य । चकात् न् चक्न, चक् प्रत्याद्वारः,
 गचचन् टन्तन् कन्दित चलारि । दान्तं द्रत्यन्वक्ते । वा यदणं परच निहस्त्यर्थम् ।
 गदीनां न्दत्, तेन चन्ते भवन्ति (१७) । पाणिनिः प्रारुष्यः १ ।

[†] सन्-मभु: (५०.५०.५१,६१), चयो यचैकवर्गीया मध्यमत्तच लुखते दल्यनेम गिपे = सज्क्ष्मु:। (पाणिनिमते सञ्च्क्ष्मुरित्यपि पदं स्थात)। (६१) पन्ने न मस्य सञ्च्यभु:। चन चभावपचे (४६) सञ्च्यभु:। सगण्-षष्ठ: च सगर्द्यष्ठ: (वा) ण्षष्ठ:। षट्-सन्त: = षट्त्यन्त: (वा) षट्पन्त:। सन्-स. = सन्त्य: (वा) सन्स:। १षष्ठ: = प्राङ्घष्ठ: (वा) प्राङ्घष्ठ:।

[‡] दार्न्तद्रश्यनुवर्त्तते । चप्र्याने जब् स्थान्, साम्यान् ययाक्रमं वा । वाक्-द्रेशः वागीशः । चित्-द्रपः = चिद्रुपः । पाणिनिः =।२।३८ ।

दान्ते शितस्य चपस्य जमे परे जम् वा स्वात्। एतं सुकुन्दः एतद्मुकुन्दः । अ

६०। त्ये। (१)

त्ये में परे दान्ते स्थितस्य चपस्य अम् स्थावित्यम्। चिन्नयं, वाद्मयम्। १

६१। गहोश्रपात् वांनि ऋक्षभौ।

(ब्रहो: ६॥, चपात् ५, वा ।१।, श्रमि ०।, क्र-मभौ १॥)।

दान्ते स्थितात् चपात् परयोः य इकारयोः क्रमेणामि परे छ-भाभी वास्तः । अंतिच्छवः तच्यिवः, वाग्वरिः वाग्हरिः । श्रमि किं—वाक्षयोतित । §

अ चप इत्यन्यत्तेते । एतत्-मृकृन्दः ः एतन्युकृन्दः,(वा) (५००) एतदसुकृन्दः । पाणितिः
 ८ ।

[†] त्यः प्रत्ययः, त्ये जणान ङ द्रत्येतेषासभाषाटाह से इति । विकत्यद्वयस्त्यवर्षि-त्वादस्य नित्यत्वस् । वित-सर्यः = वित्ययं —(४८६) चिदात्मकम् । वाक्-सर्यः = वाद्ययं — वागात्मकसित्ययः । "तत् प्रकृतवचनिं" इति पाणिनिस्त्रंग (५।४।२१) स्वार्थे चित्ययः सिति सिद्वस् । ''एकाचो नित्यम्'' इति भिद्रान्तकौमटीसतेन विकागवयवयोग्ययोः सयटप्रत्ययेन, "तत् प्राचुर्येण प्रमृतसिति" गोथीचन्द्रव्याख्यानेन च वाद्ययमिति सिद्धस् । पाणिनः ८।४।४५ स्वस्य वार्तिकस् ।

[‡] शहीरित स्थानिनिर्देशात् चपो निहत्तिः, चतएत्र पुनयपो ग्रहणम् । दाले स्थितात् चपात् परस्य नालञ्ज्यसारस्य स्थाने क्कारः स्थातः एवं ताद्यमःचपात् इकारस्यक्षमभ् स्थान्, चन्प्रत्यादारे परे। अत जनस्यस्य गात्तं, तेन चान् इस्य भ, टात् इस्य द, तात् इस्य घ, कात् इस्य घ, पान् इस्य म । पाणिनिः ८।४।६२,६३,५५, वार्तिकञ्च।

[§] तत्-शिव: (६१, ४६) = तक्किव:, वा (४६) = तक्षित: । वाक्षित: (६१, ४८) = वाग्षित: । वाक्षित: वाल्यमकारात् परस्थितः कारस्य प्रमुवाभावात् न प्रस्थ क: ।

६२। खासङोऽचि दि:।

(खात् प्रा, णडः: १।, श्रवि ७।, दि: १।)।

स्रात् परो दान्ते स्थितो गङो दिः स्थादि परे। अ सुगसीयः, सत्रचुतः, प्रत्यङ्ङग्रसा । 🕆

६३। क्रोऽचा। (कः रं। भव. था)।

ग्रच: परण्छकारो दि: स्थात्। **क्ष**

६ं । अप्रामे : खम्आको अप्जबावन्ते च।

(मिप्स की: ६॥, खस्मावी: ०॥, चप्मीवी १॥, चर्ना ०॥, च।रा)।

भाष्भासयोः स्थाने खम्भावयोः परयोः क्रमात् चष्-जबी स्तः, विराने च। श्रिवच्छाया, श्रच्छा। §

इति इस् सन्धिपादः।

^{*} बिरित (४८६) सुजलसन्ययम् । चव (१८२) घणाणौ इति, (१८३) णिननान् घे दति, (६३२) सन्यङलो बिरित्यादिज्ञापकात् ससासे णङो दिने स्थादिति बीध्यं, तेन घननाः, सननाः, तिङ्नाः, यङनाः, उणादिः, त्वनादिः, इत्यादयः भिर्जाः । वस्तुतस् प्रापक्षज्ञापितविधरनित्यत्वात् कांचदिप स्थादेव, यथाः, "सिलिङ्गास्तै. सन्नादिक्षचिक्षस्ति समासकैः" द्रत्यसरः । स्वादिति किं, प्राङ्चासी ⇒ प्राङामी । दाने स्थित इति किस्, प्रनितीत्यादी न स्थात् । पाणिनः ⊏।३।३२ ।

[†] सुगय-र्द्म: = सुगसीम:, सन् अचुत: = सन्नच्त:, प्रवाङ्-भावमा = प्रवाङ्डावमा ।

[‡] भन, मा(ङ), भा(ङ) भिन्न दीर्घात पदान्ताच विकल्पनित वक्तव्यम् । वार्त्तिकमते इन्दिश्च विश्वजनादः परीऽपि यिकल्पन, यथा, विश्वजनच्छनं विश्वजनक्त्रमित्यादि । पाणिनि: ६।१।०१-०६ ।

[§] अभयः खिखि चषादेशी आस्त्री अभिकासमा । विरामे तीतयीः स्थानामिन्थर्थः सम्प्रकोक्तितः ॥ स्यष्टनाइ — वर्गोदिवनुष्यस्य स्थाने तदर्गस्य प्रथमवर्षः स्थान् स्वसे पर,

8र्थ पाद:--वि-सन्धि: I

६५। वे: सोऽग्रसन्ते छते।

(वं: ६।, सः १।, भ-भसन्ते ७।, कर्त ७।)।

वै: स्वार: स्यात् अ-ग्रसन्ते इति परे। क्रणि सिन्यः, इरि-ष्टीकते, विष्णुस्ताता । ग्रसन्ते तु—कः सरः।

६६ । सेतुका-ख-प-ंभेवा।

(में ७), तारा, काँग्वप फी ०।, वा।रा)।

वै: सकारो वा स्थात् क-ख-प-फेषु परेषु, से सित । भास्त्ररः भा:करः, भास्त्वरः भाःखरः, भास्पतिः भाःपतिः, भास्फेरः भाःफेरः । भे

भन्ने परंतु तदर्गस्य त्रतीयवर्णः स्यात्, विरामे नुतदर्णदयं स्यात् । विरामः परवर्णा-भावः । श्रसः स्थाने त साम्यानुसारंणः, यथा (२१३) द्रत्यसकारस्य दः । पाणिनिः दाक्षाप्रसुप्रप्रपृद् । "वाससाने" (८।४।५६) इति पाणिनिमृतेण विरामे परेविकत्यः ।

 ^{*} क्त — कटय चटत । मश्रमन्त इति, क्ती विशेषणम् । क्रणः-चिन्त्यः (४६)
 = क्रणाथिन्यः । ६००:-टीकते ४०) -- इरिटीक्ते — इरिगंष्क्तीत्ययः । विणा.-चाता
 = विणास्त्रातः । कन्सरः – तकारस्य सकारान्तवात् न वः सः । पाणिनिः ८।३।२४-३३।

[†] तुकारात् परच समामान् इतिर्गोक्षाः भवापि श्रग्रसन्त दिति विशेषण स्यान् इति :—
सेन च श्रयं वाम दत्यादी न स्थानः। वाश्रव्दीऽत व्यवस्थावाची — सेन, कार काम कंस
कुम्भ कृशी (कृश्रा) की ल कर्ष कर्षीं कुम्भित कास्त्र कुत. करोति क्रस्य काम्यक, पित पाव
पाठ पाश्रेषु — परिषृ नित्यं स्थान प्रयोगतांऽत्यवापि, यथा श्रयस्कारः, पयस्कुभः इत्यादि ।
गी.कारः गी:काम इत्यादिवं न स्थान् । भामं करोगोति भासा खरसी खाः, भासां
पितः, भासा फेदः प्रगालविश्रेष इति क्रमेण वाक्शम् । पाणिनिः पाश्रक्ष ४८
(विश्रषतः प्रश्रम् १८५); एषु स्विषु क्रविविद्यसम्, क्षाचिष्ठिकत्यः।

६७। शसि शसां(बिकि का, बस्।१।)।

वै: यस् वास्यात् यसि परे। इरिक्रोते इरि:श्रेते, सन्तव-षट् सन्तःषट्, शिवसीयः शिवःसेयः।

६८। कख-पफयोर्मृन्यौ।

(कख-पप्रयो: ०॥, मृत्यी १॥)।

विर्मृन्यौ क्रमात् वा स्थातां कंख-पफयोः परयोः । 🕆 हरि imes काम्यः हरि:काम्यः, मर्थे imes खिनः मर्थेःखिनः, क्षण्या $^{n_-}$ पाता क्रणः पाता, भितति भक्तिः भक्तिः भक्ति।

६८ । ऋतोऽह्वव्यः । (षतः ४।, षत्-इति ७।, छः १।)। श्रकारात् परस्य वेक्कारः स्यात् श्रकारे हृत्वि च,परे। शिवोऽर्च:, शिवोवन्ध:। क्ष

७०। ऋ भो भगो ऋद्योखोऽने लुए।

(म भी भगी मधीभ्य: ५॥, मने ७।, लुप् ।१।)।

अ.च.चेषु परेषु विसर्गस्य क्रमेण अ.च.चाचास्थुरित्यर्थः । पाणिनिः ⊏।३।३६ । † मच्छूकमुतगत्या पत्र प्रश्नसन्त इत्यनुवर्त्तते, तेन कः जीय कः साति इत्यादी न मुसी। व्याधनतोः परेऽपि न स इति वक्त यं, तेन कः व्यातः। पाणिनिः पा ११३०।

[‡] भन भग्रसन इत्यस्य भनुइतिनांकि भनिष्टलात्, तेन रामोऽप्रातीत्यादी स्रादेव । भिवीऽर्चा इत्यादौ, प्रकृते: पूर्वपूर्वं स्थादनरङ्गतरं तथित न्यायेन विसर्वनातात् उकारतोऽत्तरङ्गस्य पूर्व्वाकारस्य सम्बन्धिनः सन्धेर्वलवत्तात् प्रयमतः न अपकारस्य वकारः । (६८,२१,३८) = शिवीऽर्च: । शिव:-वन्दा: (६८,२३) = शिवीवन्दा: । भव भकाराइ मुतादिति भमुते भतीते च वक्तव्यम् । तेन मुत्रोत भव, पय प्रमिदक्त इत्यादी न स्थात्। पाणिनि: ६।१।११३-११४।

चवर्णात् भी भगी चवीश्यस परस्त बेर्झुप् स्वात् चवे परे। बट्टा नमस्याः, भी परे, भगी रच, चवी यज। *

७१ । य वाचि । (य १११, वा १११, विक्रिं)। अवर्षात् भी भगी अवीभ्यय परंख वे यो वा खादचि परे। विवयुप: विवरुप:, भीयश्रुत भी अञ्चुत । पं

७२। रिचोऽने। (रंप्रा, रणः था, पने वा)।
इत्तः परस्य वे रेफः स्यादवे परे। इतिरयं, चतुर्भुजः । क्ष

७३ | रोंऽचः । (रः स्। भषः ४।)। अवः परस्य रेफस्य वेरेफः स्यादवे परे। त्रातरव, धातर्थेच्छ। §

तः चच भी:-भगी:-चघी:-पदानि भनत् भगवत् चघवत्शब्दानां सम्बेधनसाधितानि (२२६), विद्यालकौसदी-गोथीचन्द्रसते सालाव्ययानि च बीध्यानि । भो: इरे—हे इरे. भगी:-रच-भगवन् रच, चघी:-यम-चघवन् (पापिन्) यज-पूजय । चकारात् चवे परे वर्षा-थिव चागच्छति । पाणिनि: पारा१०,१२ ।

[†] भी षष्प्रत इत्यादी (१५) लुपि न सन्धीति न सन्धिः । किञ्च नजा निर्द्धिमनित्य-भिति न्यायान, सेव दावरणी रामः सैव राना गुधिष्ठिरः. एवेव रणमारुद्धा मणुरां याति साधव द्वयादिः सिद्धिः (पाः ६।१।१६४) । पाणिनिः पाः।१९०,१पः,२०।

[‡] प्रचः पति सामार्थन । सामान्यनिश्वेषन्यायसभ्याच्याच्याः संस्थि भवति । इति: चर्यः = इतिरयं; चलारी भुना यस स चतुः भुनः = चतुर्भुनः । पाणिनः व्याव्येष्टः, पार्थिनः

[§] इसात् परस्य रीफजातिवसर्गस्थासस्थवादेव सुतरासमूगाशी दच्तितस्यये पुनरची-सहस्यम् । चातर् (१०२) च चातः-भव = चातरव, एवं धातः-गच्छ = धातर्गच्छ । पावितिः ⊏।शर्भ, ⊏।श्वर्भ, ⊏।शद्द् ।

1981 खिप का। (खिष al, वा ११)।

भ्रमः परस्य रेफस्य वे रेफः स्याद्या खिप परे। गीपेतिः गीषाति: गी:प्रति: । #

७५। नाक्नो रकंत्रौ। (नाश, बक्रः ६१, रकती छ।)। मक्की रेफ स्य वे रेफी। न'स्थात् रेफे के क्रौ च परे। † बहोरातः, बहस्तरः, बहोभिः। धः

७६। इस्रेतत्तरांऽनअतः सेर्लेग्यः।

(इस् का. एतद-तद: ५), भनअक. ५।, से: ६।, सीप: १।)।

नजनवर्जारेतरस्तद्य परस्य सेवैंलीप: स्यात् हसि परे। एष-

पर्वतः अचीऽतुश्तिः । मख्कामृतगत्वा (६६) से तु काखपर्षे इत्यतः में इति चानवर्तते। तेन दर्यं गी: पतिरसी इत्यादी न स्वात्। एवं गिर्धर चड्न एवामेव विसर्गसा पतिश्रव्हे परे एव प्राथी बीध्यं, तेन गी:पाठ: पाशी:पतिरिखादी न स्थात्। कवित प्रयोगानुसारात नित्यमपि, तेन चतुर्थमिति (४५५) स्वयसदाहरित्यति । गीर (१०२) गी:-पति:= गीपंति:, (६६,१११) = गीयित:, वा गी:पति:। पाणिनि: ष्पार। ६८ सूर्व "चहरादीनां पत्यादिवुवारेफः" दति वार्त्तिकस्। चव "शीचितिरित्य-साधु" इति कमदीचर:। सिद्धान्तकीमुदाख "पर्च विसर्गीपभागीयी" इत्युक्ततात् भी:पति: गीळापति: इत्येव पददयं श्यान् । सुपद्मे तुगीष्पतिपदं द्वस्यते ! कालकी तु सद्रास्ति। गीयतिधिंवणी ग्रारियमरः।

⁺ चच रेफी इति रावि-कप-रधन्तर-अञ्दानासेव, तेनः चडा-रजन्दी; चडा रवी, इत्यादी रेफ: स्थात । एव कि.पदेन प्राप्तलीपक्तेरिय ग्रहकं, तेन दीर्घाष्ट्री निदास इत्यादी (१४८) इसात् सिलीपेंऽपि रेफनिवेष:। क्रीर्लुकित् तच रेफ: स्थादेव, तेन गताइ-र्वेलनित्यादी (१६०) सेर्लुकि रेफ: खादिति । पाचिनि: पाराइट, वार्तिकच।

[‡] भद्रम् (२२०) = भहर्, (१०२) भह:-रावः (६८,२३) = भ्रष्टोरावः। भेषः-करः (६६) = पहस्कर: । पह:-भि: (६८,२३) = पहीभि: ।

क्षणः, स-विष्णः। धनव्यकः विष्म्—+चन्नः श्रिवः, >एवको इदः।

७७। द्रोद्धि र्घश्वानुः।

(दो: ६॥, द्रि ७, घं: १।, च ।१।, (भन् ऋ) = भनु: ६।) ।

ठकारस्य ठकारे परे, रेफस्य रेफे परे, लोपः स्थात्, पूर्वस्य च ऋवर्जस्य र्धः। रूढ़ः, इरीरस्यः। अनुः किं—ढढ़ः। पं

इति वि-संसि-पादः।

' इति सन्यध्यायः।

^{*} न विद्येते नञ्जनी यत्र सीऽनञ्जनस्यात्। सदपवायक-स्थव्दस्य इप-धातु-निषदस्य एव-प्रव्दस्य च वारणाय एतत्तदोर्यहणम्। एवको नद्रद्रति स्वनियसव्यतिकसी-दाइरणदर्थनात् एतत्तक्षां सद्घ नञ्जनोर्गकमः। पाणिनिः ६ १११३२। सीपे सत्येव चित्पादः पूर्यते, तदा चिच परे सन्धिभैवति, ७१ सूत्रस्य टीका द्रष्टव्या।

[†] न म्हृ चर तस चतुः। भन लीपविधिर्मुख्यतात् ढढ़ इत्यादी स्वतारस द्वीर्घामावेऽपि ढलीपः। यन तु लीपी न भवति तत्र दीर्घाऽपि न स्यात् दीर्घविधिरातु-विश्वकतात्। बढ्ढः -- बढः। इति:-रम्यः (७२) -- इतिर्-रम्यः -- इरीरम्यः। पाचिनिः ऽ।शारश्रुष्ठः, ६।शारेररः।

२य:। श्रजन्ताध्याय:।

─

श्म पाद:-संज्ञा।

७८। ले: - सि श्री जस, श्रम श्री ग्रस्, टा थ्याम भिस्, डे थ्याम थ्यस्, डिस थ्याम थ्यस्, डिस् श्रीस् श्राम्, डिश् श्रीस् सुप्।

(ले. प्रा. सि--सुप् ।१॥) ।

स्यादीन्येकविंगतिर्ने: पराणि प्रयुज्यन्ते। क जगट रूपाः सिर्णस्योरिकारस्रेतः। पं

७८। निग: प्री ही नी ची पी षी प्रयः।

(चिम: ११॥ भी-साः १॥)।

स्यादीनि चीणि चीणि कमात् प्री दी ची घी घी प्री-संज्ञानि स्यु:। अ

[#] सिप्रस्तयः एकविंग्रतिर्विभक्तयः लिङ्गान् रामादिप्रकृतिभ्यः परस्थिता एव प्रयुक्यन्ते विभक्तीनां न तुप्रयक् प्रयोगः, रामादिप्रकृतीनामपि केवलानां न प्रयोगः, नापदं श्रास्त्री प्रयुक्तीतिति न्यायान् । पाणिनिः धारार । सुस्थाने सिः, भौट् स्थाने भौ — प्रत्येव भेदः ।

[†] विभक्तीनां ज म ट क पाः इतो भवित, सि क्स्योरिकारस इत् भववीयर्थः ;— जसी ज इत्, मसः म इत्, टा इत्यस ट इत्, के कसि कस् कि एवां क इत्, सुपः प इत्, सि कसि एतयोः इक्तृस्य इत् भववीति साष्ट्रम् ।

[‡] सि, भी, जस्,—प्री; चस्, भी, ग्रन्,—दो; टा, श्याम्, भिस्,—की; के, श्याम्, श्यस्,—ची; कसि, श्याम्, श्यस्,—पी; कस्, भीस्, भाम्,—की; कि,

८०। सम्बुङी सिर्धिः।

(सम्बुडी का, सि: १।, धि: १।)।

सम्बोधने विहित: सि: धि संज्ञ: स्थात्। #

द्र। खमौजसं वि:।

(सि चम भी अस्। १॥, वि: १४)।

सि धम् श्री जस् एते घि-संज्ञाः खुः। 🕆

८२। भि: स्तीवे। (मि: १⁻, कीवे छा)।

नपुंसके थिरेव घि-संग्नः स्थात्। इ

८३ 1. दान्तवत् सिभ । (दानवत् ।१।, सिम ॥)।

भीम्, सुप्,—भी। शयमा दितीया छतीया चतुर्थीं पश्चमी वश्ची सप्तमीनाम् एक देशं यहौता नदादिलादीपि एताः मंत्राः क्षताः । (१२) सूत्रेण स्थादीनां (क्षि) विभक्ति-संज्ञा कृता, (पाणिनिः २।४।१०४)। (१३) सूत्रेण च प्रत्येकम् एक वचन-दिवचन-वह-वचनेतु एताः प्रयुज्यन्ते इति बीध्यम्, (पाणिनिः १।४।१०३)।

^{*}सम्बुडि:--सम्बोधनं, चेतनाचेतनशोराशिसुख्येऽशिधानं, तत्र विडितस्य से: धिःसंग्राद्यये:। पाणित्रिः २।३।४८।

[†] अत्र प्यूमी चिरिति जते, सम्बोधने सिर्धिसंज्ञाविधानकपविधिवेष प्रथमायाः धिसंज्ञाकपसामान्यविधिनं स्थान्, तेन इत्याः (१६०) इति पटंन सिध्यति। भौ इत्यस्य अम्बसीकांध्ये पाठान् भौकारद्यस्य ग्रहणम्, अन्यया व्युत्कमनिर्देशी व्यर्थः स्थान्। पाणिनौ सुट्पत्वाद्वारस्थीकारेण न पृथक् संज्ञा ज्ञता। (१।४।०) त्वस्थ-धि-संज्ञायाः अर्थस् भिज्ञ एव ।

[‡] नपुंसके (१६२) नस्यसी: स्थाने जात: ब्रिटिन विस्तक: स्थात्, नतु स्थादिरित्यर्थ:। तेन नारियो इत्यादी नसब्मङक्रेति (१६४) न दीर्घ:। पाविनि: (७१।२०) सूर्व इष्टस्यम्।

सभयोः परयोदीन्तवत् कार्यं स्थात्। *

८१। भौ लिखोई समसोरने च।

(भी अ), लिखी: ६॥, इन्निसी: ०॥, प्रनी ०।, चारा)।

भी परे यत् कार्यं वक्षते तक्षेष्ये धोर्भेषे स्थात्, श्रेन्ते च तयोः । र्र

ट्यू । इसोऽन्तः फः । (इसः ११, घनः ११, फः १०)। इसो विरामस फ-संज्ञः स्थात्। १३

दई। सर्व विश्व उभ उभय भवत् त्वत् त्वैक सम सिम नेमाः, श्रन्यान्यतरेतर इतर इतमाः, त्वर् तद् यद् एतिहदमदः किंम् द्यसाद्

असे से चपरे विज्ञती दिश्वलाया जिंदान विज्ञान कार्यं खात, यथा, सृष्टिन्स द्रणादी दालविक्षात् सोन्दिल्यनेन (५०) न नियान खारः । एवं प्रभागं पृंध्यानिल्यादी दालविक्षात् दाली स(५३) द्रल्यनेन सम्यान खारं, वा तर्यप् ५२) द्रल्यनेन चनुस्वारस्थाने सकारी विति। स्व समीति खादेरेव. तेन विद्वास द्रल्यादी चन्छानुस्वारः, प्रमुखावस्य च (५१) मकारः । चन्च दवत् वभीति नीक्षा दालविद्ति क्यनेन, दाललेन विद्वितं यत् कार्यं तदेव खात् नत् विरामविद्वितनिति, तेन लिट्सु द्रल्यादी (६४) म्हण्मस्थीरिल्यनेन विराममाणिल्य न जव् । पाणिनः १।४।१६-१०।

[†] यत कार्यं भी परे बच्चते तत, लिकस्य इसी परे. धाती भंसी परे, एवम् उभयोरिव विरामि परे स्थात् । इस रह स्थादिरेव, तेन दिशि भनं दिश्यमित्यादी सम्क्राजेत्यादिभिः (१५४) वज्यदि ने स्थात् । पाणिनी भिन्संज्ञान हत्यते ।

^{‡ (}२०२) धोर्णोन: ऋसीत्यत्र सबयो: प्रयक्ष प्रक्षास्त्र सात् पत्र इस: स्थादेरेव, तेन इष्ट: इष्टिरित्थादी घीड़: फे (१५५) इति न स्थान। विरामसु स्थादेख। असी विराम:, परवर्णोभाव इति यावत्। पाणिनौ फ-संज्ञान इक्यते।

युषादः, पूर्व परावर दिच्छोत्तरापराधराक्तरखाः, स्थि:।

(सर्व-नेना. १॥, षत्य-डतना: १॥, त्यद-युष्पदः १॥, पूर्व-स्वा: १॥, सि: १।)।

द्भेदी गणभेदार्थः । एते पृष्वित्रंगत् गव्दाः सिसंज्ञाः स्युः । *
समीऽतुस्त्रे, व्यवस्थायां,पूर्व्वायोऽत्रान्तरोऽपुरि ।
विद्योगोपसंव्याने, स्वस्वज्ञातिधनाभिधः ॥ पृ

८७। न गौग्वाख्याचत्रीसासे।

(न ।१।, गौखाखप्राचचीसासे ७।)।

गीगले, संजायां, चे, 'त्याः से असे च, ते स्त्रिसंजा न स्युः। *

सम्बादिगणः — मर्वे विश्व एम उमय भवत् तत् त् एक सम सिम नेम इति। सन्वादिगणः — सर्वे सन्तर इतर उत्तर उत्तम इति। त्यदादिगणः — त्यद् तद् यद् एतद् इदम पदस् किम हि भक्षद् युषद् इति। पूर्वादिगणः — पूर्वं पर भवर दिवण उत्तर स्वर पदस् भवर किम हि भक्षद् युषद् इति। पूर्वादिगणः — पूर्वं पर भवर दिवण उत्तर स्वर भवर भवर कत्ता। एवा (१६५,१३३,११४ मृचेषु) विभिषकार्यार्थं गणभेदः। स्थ्वां बुिख्यानां नाम — सर्वेनाम, तदेकदेशगण्यान सिदंन्यादिः। उभयशब्दस्य विवननं नाकीति कैयटः, भक्षीति इरदत्तः। भवत्याच्ये युषद्यः। तत्त् क इति ही भन्यार्थे। एकमन्दि यदा सङ्गावाची तदा एकवचनान्तप्त, यदा सुख्यादिवाची तदा विवचनवड्वचनान्तीऽपि। विश्वः सिमः एतो सर्वार्थों, नेमः भन्यार्थः। नेम इत्यद्धं इति विद्वानकृत्विद्दी। उत्तर-उत्तमी प्रत्ययी (५१०), तं न तदनानां कतरकतमादीनां यहणम्। उत्तरान्तिऽपि भन्यत्यवणम् भन्यतमस्य सिसंज्ञानिवेधार्यम्। त्यद्शस्द-स्वद्धं:। पाणिनिः ११११२०।

† भव सममन्दः भतुत्वेऽथे सिसंजः, सनः सर्वसमानथोरित नेदिनी । पूर्वायः व्यवस्थायां सिसंजः. व्यवस्था कथिता को कैदिंग्देशकालवाचिका । भन्तरः, भपुरि पुर्-भिन्ने, विश्वयोगे विहःस्थितपदार्थे वाचे, उपसंज्याने परिधानवस्त्रे वाचे च सिसंजः । स्वश्रव्यक्त भज्ञातिधनाभिधः — ज्ञातिध धनच ज्ञातिधने, ते भभिद्धाति स्वययतीति ताह्यः, न ज्ञातिधनाभिधोऽज्ञातिधनाभिधः सिसंजः, ज्ञातिधनभिन्ने भाव्यनि भाव्ययि च वाचे सिसंजः स्थादिव्ययः । स्वो ज्ञातावात्यनि स्वं विष्याक्षीके स्वोऽस्त्रियां धन इत्यमरः । पाषिनः १।१।२४-१६, वार्त्तिस्य ।

‡ गौष नप्रधानं तस्य भावी गौस्थम्। ष: इन्हः। स: सनास:। सम पसम सासी

८८। चे जिस वा। (वे श, निष श, वा।१।)।

चे ते सिसंज्ञा वा खुर्जिस परे। *

दर। पूर्वाद्यत्य प्रथम चरम तथायाई कतिपय नेमा:। (१॥)।

एते सप्तद्य यब्दाः सिसंजा वा स्यः जसि परे। ऐ

१०। तीयोद्धित। (तीय: १।, जिति ७।)।

तीयान्त: ग्रन्द: स्त्रिसंत्त: स्यादा क्रिति परे । \$

११ पूर्वीऽन्खादुङ् । (पूर्वः ११, पन्यात् प्रा, वङ् ।१।)।

ग्रन्यात् वर्णात् पूर्व्वी वर्णे उङ्संजः स्यात् । §

गाः सासी क्षेत्रासी ; गौख्य पाष्या च षय बौसासी चेति तिखन्। प्रप्राधान्ये, गाव्यायां, इन्हसमाने, ढतीयासमाने, ढतीयासमासयीग्यशको च, ते सर्व्वादयः स्तिसंज्ञाः गस्युरित्यये:। पाणिनिः १।१।२८-११,३४।

चे दत्समासे। ते सर्वादय:। पाणिनि: १।१।३१.३२।

[†] पूर्व्वादयो नव, चल्प प्रथम चरम तथ चय चर्त कतिपय नेम द्रवारी च सिसंजा: ग खु: निस्ति परें तथायी प्रलयी (४६०,४६१), तेन वितय वितय दय चय द्रवादि। गांचिनि: १।१।३३ ३४।

[‡] तीय: प्रत्यः (४५०), तेन हितीय-व्रतीयी पास्त्री। तीय इति तन्मात्रप्रत्ययानस्य गर्मं, नत् (४८०) जातीयप्रत्ययान्तामपि। तीयानस्य प्रत्यादीनाञ्च गौणले न गौणाव्येति (८०) निवेध:, त्रुन प्रतिहितीयाय प्रनत्याः इत्येव स्थात्, एवसेव जीमराः। गोणिविः १।१।३३ स्वस्य वार्तिकम्।

[§] भन्ते भवः भन्यः। भिन्नविधित्वात भस्य निस्थलम्। पाणिनिः १।१।६५।

६२। ग्रन्यानादिष्टिः। (बन्यानादिः रा, टिः रा)।

श्रन्थो यो ऽच्तदादिवर्षष्टि-संज्ञः स्यात्। 🕸

. १३ | लुकि न तम्न । (लुकि वा, न ११), तव वा)। लुक् इति लीपे क्षते यी लुप्तस्तिमन् परे यत् कार्य्यं तन स्थात्। १७

१८। खरादि-नि-चित्तंत्र व्यम्।

(खरादि नि-चित्रं १।, व्यम १।)।

स्तरादिर्भणो नियकारेतस्याय व्यन्संज्ञाः स्यः। 🕸

 चन्यसासी अर्ति प्रन्याच्, चन्याच चादिय स्वतात पुंच्यम् । चादिशस्टेग् स्वयाया चन्याजादिवीं घ्यः । तिन चजनाशस्टानां चन्याच् टिसंजः, इसन्तानाना चन्या जादिवर्षण्टिस इः स्यादित्यर्थः । इतौ तदादिवर्षं दस्यच चकारः लिपिकरप्रसादपतितः पाणिनिः १।१।६/४ ।

† लुघधाती: किपि लुक्। सर्व्वत लुप्करणेन दृष्टसिद्धिर्न भवति, यतः, पय इत्यत्र (१६८) स्वमोर्लुगिति सेर्लुपि, (१५) चादिविधित्वात् सस्य विसर्गानुपपितः चादिभिन्नत्वात् (१८५) चलसीरिति चकारदीर्घापित्तत्र स्थात्। पाणितिः १।१।६३।

‡ स्वरादिर्गण:—स्वर, अन्तर् प्रातर्, पुनर, लक्षेम, नीचेस् अनेम, विना, ऋरं युगपत, अवांक्, आरात्, असम, प्रथक्, हास्. अम्, दिवा, नक्षम, सायम, विरस् विरीण, विराय, विरात् विरस्य, मनाक्, ईवत्, जोवम्, तृष्णोम्, विद्यस् समय विन्ता, क्ष्तरा, अन्तरेणः सहसा, सपदि, स्वयम्, अथा, अक्षा, सामि, सावि, साथाः वत्, तिरस्, आविम्, प्रादुस्, नाना, अम्, अलम्, कृतम्, अस्ति, ल्पायः, दीव स्वा, सुधा, मिथ्या, सल्या, सब्द, मंवत्, पुरा, मिथ्यो, मिथ्यम्, प्रायस् सुहस्, अभीष्णः अनिमम्, सद्, अत्रितं, अञ्चसा, अन्त्यतः, साविम्, समम्, सङ्, सना, काम परम्, नमस्, विक्, अर्, सुवर्, स्थाने, वरम्, द्यादि आकृतिगणोऽयम्। नि निपा —(१६) वादिर्शयो गित्र, गिरिति (१०) गिरुजापितत्रश्रदाः। विविभिन्नाः (१०३ क्षार्तिः प्रत्ययाः—वि (१४८) वृ (४८५) चृत् (४४०) चमात् (४८८) चमस् (४८ क्षार्तिः प्रत्ययाः—वि (१४८) वृ (४८५) चृत् (४४०) चमात् (४८८) चाच् (४०१) धाच् (४४६ खाच् (४०१) चाच् (४०१) आच् (११६५) चत् वि (१४६५) च्याम् (४४६ खाच् (४०१) चाच् (४००) क्षाच् (११६५) चत्रम् (१४८६) व्याम् (४१००) क्षाच् (११६५) चत्रम् व्यादिपितानां वाचकालं, वादीनां योतकालम्, भतः स्वरादि-चायोः प्रथक् यहणस् पाचिनः ११११३०।

८५। इसोऽनन्तर: ख:।

(इस: १।, भगन्तर: १।, स्थः १।)।

अचाननारिती इस: स्य-संत्र: स्यात्। क

रई। यूत् स्त्रोव ही।

(यूत् ।१।, स्त्री ।१।, एव ।१।, दी ।१।) ?

ईटूरमो नित्यस्त्रीलिङ्गो दी-संज्ञः स्वात्। 🅆

१७। नास्तीयुव:। (न।रा, पस्नी।रा, रयुवः ६१)।

इयुवस्थानावीदृतौ दीसंज्ञौ न स्तः, न तु स्त्री । क्ष

१८। वामि। (वा ११।, श्रामि ७)।

इयुव ईट्रच दीसंचो वा स्यादामि परे, न तु स्ती । §

११। स्त्री युच डिंग्त।

(स्त्री।१।, युत्।१।, च ।१।, जिल्ला ७।)।

शासि भन्तरं व्यवधानं यस्य सः भनन्तरः । अत्रचा भव्यविहती इस्वर्थः (स्यः) संयोगसंज्ञः स्वात् । पाणिनिः १।१।० ।

[†] ईष जय यू, ताभ्यां त् यूत्। दी—नदी। स्त्री एवेति एवमस्टेन नित्यस्त्रीलिङ्गी नियम्पते। यश्चित्रभै यदूरिय स्त्रीलिङ्गभन्दः तिख्नवर्थे तदूरेण यदि लिङ्गानरं न भन्नति तदा नित्यस्त्रीलिङ्गः। यथा, नदी गीरी दत्यादि। पाणिनिः १।४।३।

[‡] **दयुवस्थानी— द**युवप्रक्षियीम्पी नित्यस्त्रीलिङ्गी ईकाराकीकारान्ती नदीसंज्ञी न भवतः, स्त्रीग्रस्टक्सुनदीसज्ञः । पाणिनिः १।४।४ ।

नित्यस्त्रीचिक्की प्रयुवस्थानी स्त्रीशन्दिभन्नी देह्दन्ती दीसंक्री वा स्वाताम् चानिः
 परि। पाचिनिः १।४।५।।

स्तीलिक इट्टन्तो निखस्तीलिक इयुव बैट्च दीसंबाः स्याहा ङिति परे, न तुस्ती। #

१०० । ऋष्यच्ताच्येषु पि: । (भष्यव्ताचीप् ।१।, पि: १।) ।

विवर्ज स्यादेरच् तसंज्ञावच्येकारावीपृ च एते पि संजाः स्युः। १

१०१। सङ्घ्यावत् डत्यतुबद्धगणा नेपि।

(संख्यावत् ।१।, डित धतु बहु गखाः १॥, न ।२।, द्रीप ०।) ।

डत्यतु बहु गणानां मंख्यावत् कार्यं स्वात्, न त्वीपि । \$

दति संजापादः।

सामागस्त्रीलिङ्गौ द्रखेकारान्तीकारान्तशब्दी, चकारात् नित्यस्त्रीलिङ्गौ द्रयुवस्त्रानौ स्त्रीशस्ट्रिमंत्री देंद्दनी च दीसंत्री वा स्वातां जिति परे। पाणिनि: १।४।६।

[🕂] न वि: अधि: अधिरच् अध्यच्, अब यश अच्छी, तस्य तहितस्य अच्छी ताच्छी, श्राच्य ताची च र्रुप च तेषा समाहार: श्राच्यच्ताच्येष्। भिन्नविषयलादस्य निखलम्। पाणिनि: १।४।१८।

[🛊] खित चतु प्रत्यथी, तेन तदनानां कित यति तति यावत् तावत् एतावत् कियत् इयत् भन्दानां, वष्टुमण भन्दयीय मंख्यावाचकभन्दवत् कार्थेस्थात्, न तुर्दूपि विद्यये, यत्र दूर्ण कर्त्तव्यंतत्र न संख्यावदित्यर्थः । पाणिनिः १।१।२३,२५ ।

२य पाद:-- त्रजमा पंतिङ शब्द:।

राम-स् इति स्थिते *--

१०२ | स्रो वि: फो । (सी: ६१, वि: १।, फी छा) १,

सकार-रेफयो र्विः स्यात् फेपरे । 🎋 रामः । श्री-जसोः सन्धः । रामौ रामाः । क्षः

१०३। खदीयां ध्यमग्रसादे लें।प:।

(ख-दौग्यां प्र॥, धि-त्रम्-श्रमादेः ६।, खोपः १।) ।

खात् दीसंज्ञकाच परस्य धेरम्यसादेव लोपः स्थात्। हे राम, रामं रामी। §

रामग्रव्हात् (७८) स्इति स्थिते खनणमाह ।

[†] दालादालसाधारचयी: सकार-रेफयी: विसर्गः स्थात्, स्वादीय-इसे विरामे च परे। दालस्य-विरामे राम रत्यादि, इसे पयीभ्यामित्यादि। घटालस्-इसि परे गौलः पूस रत्यादि। पत्रस्वान् मास्वान् रत्यादौ स्वादीयइस्परत्वाभावात् न विसर्गः। प्राथिविः ८ ३।१५, ८।२।६६।

[‡] भी परे जिस परे च सन्धिभवतीत्वनेन प्रकरणान्तरेऽपि स्वातुवृत्तिर्भवितितः स्वितव्। राम-भी = (२३) रामी। राम-जस् (७८) = राम-भस् = (२२,१०२) रामाः।

[§] मन् च अस् च मन्यसी तयोरादिः, थिय मन्यसादिय समाहारे तस्य । भन्न दीयहणम् मन्यसीरादिकीपार्थमेव, के लक्षित, हे वध दत्यादी (१५३) कस्त्रे कृति कस्ता-देव थिलीपसिदः । मन्न थिदातीलीप इति सन्न क्षतं तत्, मन्य कलमित्यन (१६६) धेरीम कृति तस्त्यापि मम्बारकीपार्थम् । हे सम्बोधने, राम-सि (८०,१०३) राम । राम-मन् सम् - रामं सी विम्दुरवसाने वा' इति भौषादिक त्त्रम् । राम-मौ (२३) = रामी । पाणिनि: ६।१।६८,१००।

१०४। ग्रस्नामि वै:। (यम्नामि का, वं: १।)। प्रसिनामि च परे खद्य वे: स्थात्। अ

१०५। पंसित शस्न।

-(पुंचि ७।, तु ।१।, भ्रम् ।१।, नै ।१।) ।

स्वात् परः यस् न स्थात् पुंकिङ्गे। रामान्। 🅆

१०६। टा भिस् डि इन्सि इन्सोसा-मिनैस-यात ख योसो ऽत:।

(टा - भीसाम ६॥, र्यन - यीस: १॥, भत: ५।) ।

अकारात् परेवामेवां स्थाने एते क्रमात् स्युः । 🕸

^{*} नामीति तुम्सम्बिनकारेण सहिते पानि, तेन ज्ञानिनामित्यादौ न प्रसन्धः । पानो यहणेनैवेष्टिसिदौ नामीति लातम् पागमादिश्योमंध्ये वस्तीयानागमी विविद्तित न्यायस्तीकारार्थं, तेन क्रीष्ट्रनामित्यच पादौ (११०) तृति तनादेशो (१४०) न स्वान्, एवं प्रकृते रामाद् इत्यादौ दौषंस्य स्थानिवस्तेन क्रस्तपरत्वात् यथा श्रसी नकारिवधानं तका (११०) तुमागमी न स्थादिति स्पनार्थम्य । पाणिनः ६।१।१०२, ६।४।१।

[†] तु-यक्त्यं पुंभीत्यस्य परवानुविधिवारणार्थम् । पुंस्तिकक्तं विभागितिविधितः विभागित्यस्य परवानुविधितः विभागित्यस्य परवानुविधितः विभागितः, तथाप्त प्रास्तः स्वार्ष्टिक्ष्यं सुर्पायाः परिकाल्यतः, सर्वेवन्तुगता सम्भीः मास्त्रे पुंस्तादयस्ययः । ये तु योग्यादि-सम्बद्धाः प्राण्यितारोषयोषराः, न तेऽभ्यपायाः विध्यन्ति कलवादि-तटादिवु इति । राम-श्रम् — (१०४,१०५) रामान् । पाणितः ६।११०३।

[‡] प्रकारात् परेषां टा, सिस्, खे, किस्, कस्, भीस् एषां स्थाने क्रमेण— इन, ऐस्, प्रय, पात्, स्थ, न्योस् एते सवित । एस् पत्न क्राता ऐस् पात् करणं निर्करसैः निर्करसात् (११५) सिख्यर्थम् । पाणिनिः शिराट,१२,१३ । ७।३।१०४ ।

१०७ । षु र्णें।ऽदान्ते ने ऽव्कुपन्तरेऽप्यतहात्त्व-पक्षयुवाद्गः ससेप्स्यादे नैकाच्कोस्त वा । *

षु ; ४।, णः २।, भदाने ७।, नः ६।, भवकपुनारे ७।, भिष्ठाः।, भतहात् ४।, स्वाः।, भपकयुवाङः ६।, समेप्यादेः ६।, नेकावकोः ६।, तु ।२।, वा ।२।)। । भवकारात् रेफात् ऋवणीच परस्य श्रदानी स्थितस्य नस्य सः स्थात्, श्रव-कवर्ग-पवर्ग-व्यवक्षानिऽपि । पं

यत्र दे न-स्ततोऽन्यत्र गतानु निमित्तात् परस्य, साहिष्टि-तेनेपा स्यादिना च सहितस्य, पक्षादिवर्जितस्य,स्यात्, तस्यैवे-काचः सक्रवर्गाद्यान्यस्य, वास्यात् । राभेष । इ

[#] प च र च स्थातधात् षू ः। भव् च क्य प्य तैरमरं व्यवधानं तिधान्। तञ्च तत् दर्शित तद्दं, न तद्दम् = भतद्दं तछात्, भतद्दपदेनाव लच्चया भतद्दियताः पकाररेण-स्वर्णा उच्चन्ते, भतप्वाद यत्र दे नसतीऽन्य न गतादिति । पक्षय युवा च अद्दय पक्ष-युवाहानि, न विद्यम् पक्षयुवाहानि यिखान् सः भपक्षयुवाहम्मयः। ईत् च स्थादिष ईत्यादी, सात् ईत्यादी सेत्थादी ताथां सह वर्षते थीऽसी ससेत्थादिस्य। एकः भच्यय्य स एकाच्, कः कवर्गवान्, एकाञ्च कुष एकाच्कः — एकाच्कवर्गवच्छन्द-सम्बन्धी, न एकाच्कः नैकाच्कास्य।

[†] अन्द्रहप्रयस्वकारानाः । अपिश्रव्दादव्यवधानेऽपि, यथापुणां चतुर्णानृणां नृणानित्यादि ।

[‡] नकारवण्दपूर्व्वतिपदिख्यात् वकार-रेष-स्ववणांत् परस्य, सनासीकरविडितथीरौप्याधीरेकतरेण युज्ञस्य, पक युवन् अडन् सम्बन्धि नकारभिद्रस्य, नस्य णः स्थात्,
रस्येत—ताहमस्येव नकारस्य, एकाचग्रव्यसम्बन्धि कवर्गयुज्जग्रव्यसम्बन्धि भिद्रस्य यो वा स्थात्, एतेन एकाचसम्बन्धिनः सक्तवर्गसम्बन्धिनय नकारस्य निस्यं षः स्थात् तिइतस्य वा स्थादित्यर्थः । स्थादिना सहितः — स्थादिजातः स्थादियुक्तो वा। पकादिक्सयद्वापि निवेधः, एवस् सव्कृपुन्तरेऽपौति स्थायवापि बीध्यस् । एकाचकी यंषा, ववड्यो, रस्यविणाः, शौकानिषी, शौकानेष । एकाचकुभिद्यस्य यथा, इरिभाविषी हरिभाविभी, शौभावेष शौभावेन ; हरिभाविषा, हरिभाविना । समासोक्तरविहितेपोग्रहणान् हरिभीविभी

इरिमानिनी इत्यादी न स्थात्। पकादेशु युरुपक्षेन, चारवृना, दीर्घाज्ञा इत्यादि। पाणिनिः ८।४।१,२,११-१३ ।

धातना सह प्रादे: समासे नेथं व्यवस्था, धातुपकरणे (५४८), क्रत्पकरणे च (६६८) तस्य प्रथक् णलविधानात्। एवं — तुवी पूर्व्वेण सम्बद्धी सून्वी तुपरगानि**ष**ी । चलारी 'घोगवाहाख्या णलकर्माण्यची, नता !-- इति नियमेन एका व्यवधाने इपि णलं स्थात्, यथा बंदणम्, उर×कायेण, उर ०० पेण इत्यादि। क्रुस्ति रझयतीत्यादी भासपरत्वात (४०) नम्बानुम्बारे, पुन: (५१) भनुस्वारस्य जकारे, सक्रदगती विप्रतिषेधी यदवाधितं तदवाधितमेविति न्यायात् गलं न स्यात् । चिषः चुषः समर्थः दलादी तु नकारे परं चनुस्वाराभावात् पूर्वनकारस्य णत्वे, (४०) प्रक्षिरित्वनेन परनकारस्यापि णलं, किन्तु निर्भितः प्रसित्र इत्यादी । पूर्विपदस्यनिमिचलात् ससेपसादिभिन्नलेन णालं न स्थात् ।

राम टा = (१०६, २३, १०७) रामेण ।

भव वाग्रव्दस्य व्यवस्थया, केषाचित् णलविधिहेतौ सति भसति वा नित्यं चलं स्थात् (१), कीषाश्चित् वा स्थात् (२), कीषाश्चित् णलविधिहेताविप न स्थात् (३),

१। पूर्व्वपदस्थनिमित्तात् परस्य नो गः स्थात्, मंजायाम् अव्कपुन्तरेऽपि, यथा---सूर्पेणखा, द्रामः, खरणसः, वाशीलसः, खरणादः, नारायकः, परायणं, पारायणम्, चत्तराथ्यं, रामस्यणं, चान्द्रायणम्, अत्रयणीः, ग्रामणीः, अजीहिणी। संज्ञायां किं, ग्राप्तनस्तः, तास्तनस्तः । चवकपुन्तरे किं, त्रिलीचनः । पाणिनिः ⊏।४।३ । व⊁र्त्तिकश्चाः

रेफादियुक्त-वहनीय-वसुवाचक-मञ्दात वाहनमञ्दस निशं चलं स्वात, दर्भवाहच-सित्यादि । भवकुपुन्तरेकिं, राजवाइनस् । पाणिनिः ८।४।८ I

विचतुर्भ्यं वयसि इायनस्य। यथा, विदायणः, चतुर्द्रायसः। वयसीति कि-विद्यायना भाला, वैद्यायनं स्टब्स् । वयः प्राणिधर्म्यः ५ ति बीयीचन्द्रः ।

प्रपृथ्वीपरप्रस्विन्यः श्रक्रमञ्दस्य नित्यं गालं स्थात् । प्राक्षः इत्यादी तुन भवति । पाचिनिः ८।४।०।

प्र निर् दुर् परिभ्यो नसः। यथा, प्रयस इत्यादि। "नसय",इति सुपर्श्व, "प्रादौ नसः" इति संचित्रसारे ।

अग्रे कोटरा निप्रका नियका सारिका पुरगा श्ररास कार्थ पीयूचा खदिर प्रनि-रत्तरितु प्रतिथी वनस्य नस्य निलां चलं स्थात्, यथा — चर्यवणं कीटरावणनित्यादि । एभ्यः किं, इन्द्रवनम्। पाणिनिः ८।४।४,५।

२। दिवाज्यचनाचकात् विवाजीषधिनाचकाच परस्थितस्य वनस्य नस्य वालं स्थादा, भन्कपुनारेऽपि, न तु दरिकादेः परस्य। यथा, खीधवर्ण लीधवर्वं, मन्दारवर्णं नन्दारवर्गं,

१०८। श्रा ति-मभवि।

(च।रा, चा।रा, तिसभवि ७।)।

श्रकार आकार: स्थात् की में-भ-वेषु परेषु ।क

तिहितणं ब्रीडियनं, ट्रव्यांवणं ट्रम्यांवनं, इरिट्रायणं इरिट्रायनिभित्यादि। दित्राचः कं, देवटार्ययनम्। प्रयक्षपूर्त्तरेऽपीति किं, पर्कटीवनम्। इरिकाटेलु इरिकावनं नेमिरवनम्, इत्यादि। ब्रजीयिथियां किं, विदारीवनम्। पाणिनिः पाठा६। ग्रातिकाद्यस्यः।

पूर्वंपदस्थित-निमित्तात् पानशब्दस्य भावकरणधीः प्रयुक्तस्य णत्वं वास्थात्। यथा,— शोरपाणं चौरपगनमित्यादि। पाणिषिः ८।४।१०।

गिरिणदी खर्णदी चक्रणदी गिरिण्तस्य चक्रणितस्य गिरिणस्य गिरिणद तृर्थमाथ । प्रोण चार्गथण अस्टानां गत्व दा स्यात् । पर्जे गिरिनदीत्यादि । प्राधार० स्वस्य । पित्तम् ।

३। तथ द घप भ युक्तस्य नस्य गलं न स्थान, यथा, क्रन्ति ग्रयभं वन्दः दश्वनि ।प्रोति चुक्तांति इत्यादि । पाणिनिः ५ ४।२६,३६।

ज्ञांपदालस्थवकारात परपदस्थनकारस्य कलं न स्थात्, यथा, इविधानन, भायुष्का-न इत्यादि। पाणिनिः ५॥३५॥

भौगिनी कामिनी भामिनी यामिनीनां गखंत्र स्थात्।

खभावती सूर्डन्यणवनः शब्दाः --

वाची तृषीर विषी प्रशिव मिथा खवणं कीण कल्याण वाणाः, गौणी घीणो कणाण घृष विषणि पर्णस्थाल पुर्खावपामः। नाणिकां शोण प्राची गुण गण गणिका वेश सिंहाण वीणा निज्ञांणो निकणेण कण किया विण्जः कङ्णं पाणि तृषी॥ विष्णाकमिय पाणकासियाद्याः स्थः अस्रावत इति।

रामाध्यां रामैः, रामाय रामाध्याम्। *

१०६। ब्वे सुर्थः। (व्वे श, म्मि श, ए: १।)।

श्रकार एकारः स्थात् के ब्वें स-भयोः परयोः । † रामिभ्यः, रामात् रामाभ्यां 'रामिभ्यः, रामस्य रामयोः वि

११०। नुमाम: खद्याप्सङ्घ्याष्णीः।

(तुम । १।, भाम: ६। स्वदाप्-सङ्गार्गः प्रा)।

स्वात् या त्रापो रषनान्तसङ्घायाय परस्याम त्रादी तुम् स्थात्। र्घ-णत्वे । \$ रामाणाम् । रामे रामयोः । ¶

१११। क्विलात् क्वतोऽसात् सः घोऽदान्ते नुव्यन्तरेऽपि शास वस वस साढ़ाञ्च।

(जु-दलात् पा, जात: १।, भमात् ।१।, सः १।, घः १।, भदान्ते ७।, जु-वि-भनिरे ७।, भिषारा, भाम वस घस घादां ६॥, च ।१।)।

^{*} राम थाम (१०८) = रामाथाम् । राम भिम् (१०६,२३) = रामै: । राम छै (१०६,२२) = रामायः

[†] भद्र चनार: चनुनर्त्तते । चनारात् परयोक्ष्यादेर्वेड्वचनीय-सभयोरसम्प्रवात् स्यादेरेव सभयोर्यडणम् । पाणिनि: ७।३।१०३।

[‡] राम-ध्यम् (१०६,१०२) = रामेध्यः । राम-खनि (१०६,२२) = रामात् । राम खन्म (१०६) = रामध्य । राम-चौम् (१०६,१०२) = रामधीः ।

[§] रच घ च न च र्था, श्रद्धा घोसी र्था चिति श्रद्धार्था, स्वय दी च आप च सक्ष्यार्था च तत् तत्त्वात्। नुमः उमाधिती, उकारः पाचीनानुवाद्यंः, मिद्दादी (१०)। धेन विश्वित्तत्त्वस्थिति व्यायादाइ रघनाना इति। रान्तवान्त्रनाना सुख्यानामेव यद्द्यं, तेन प्रियचत्रर्ग प्रियचपामित्यादी भ स्थात्। धंस चालख ते भवत इति स्रेषः, एतत्क्यर्थ (१०४,१००) स्वद्ययस्थ सारणावेस्। पाचिनि. ७।१।४४,४५, १।१।२४।

प राम भाम (११०,१७, १०४, १००) ज रामाणाम् । राम ङि [(७८)क कत्](२१) क रामे । राम भीम् (१०६,१०२) = रामशी: ।

कावर्गादिलाच परः कतः साद्वर्जी दमध्यगः सकारः प्रासादेखः दः स्थात्, तु-वि-व्यवधानिऽपि। अः एव पत्वे। रामेषु। पैः एवं सुक्तन्दानन्दगीविन्दादयः। ॥

- † एल प्रते दित (१ ८,११२) स्वदय-प्रशीगप्रदर्शनार्थम् । राम-सुप् [(७८)प इत्] (२०८,१११) = रामेषु ।
 - ‡ विभेविधानविधिर्भृताः यावन्तीऽकारान्तप्तिङ्गभन्दाः एवं ज्ञयाः।

एतद्ग्रसीकानियमातिरिक्त-ष्वविधानानि ।---

त्रग्नी: स्तृत: त्रज्ञुली: सङ्गस्य, भीरी: स्थानस्य सस्य ष: समामे । स्था, श्रीप्रष्टुत्, श्रङ्गुलिषङ्गः, भीषष्ठानम् । पाणिनि: ८।३।८०-८२ ।

दीर्वालाद्यः सीमस्य सस्य व. समासे । यथा, श्रद्योवीसी । पाणिनिः पाः । ज्योतिरायु । श्रिभ्यः सीमस्य समासे । यथा, ज्योतिष्टीमः, श्रायुष्टीनः, श्रद्यिष्टीमः । पाणिनिः पाः।पर-पः

गवियुधिभ्यां स्थिरस्य समासे । यथा, गविष्ठिरः, युधिक्षिरः । पाणिनः पाः । सातः सातः पतुः पत्य स्वसः सः सः समासे ऋषुक्षमासे तुवा । यथा, माद्यवा, पिट-षसा । भलुक्ममासे तु--- भातः वसः मातः वसः, पितः वसः पितः स्वसः । पाणिनिः पाः । पाणिनिः पाः । । ।

नि-नदीम्यां स्राति: कींश्लो । यथा, निचा:, निचातः, नदीचा: ।ेपाचिनि, पाश्।पट।

^{*} इस्तः प्रवाहारः (३) । तुष विश्व तृषी ताथ्यामन्तरं व्यवधानं तिखान्। तुरिष्ठ तुष्यमादी (१६३) इत्यादिना विद्विती तुष्वेत न त्ततुस्वारः, तेन इवेषि धन्षि इत्यादी वलं, न तु पृंस इत्यादिषु । सर्पि. पृ इत्यादी भन्त कलं कलादादी रङो विस्थें (१८०) प्रथात वलं, न तृ रेफान, त्यालं भड़ मु इत्यादी प्रलावितः । मादिति चनात्रत्ययः (४८८) यथा अग्रिसात् इरिसादित्यादि । क्षत्रक्रति प्रत्यादेशायमानामं कत्मसम्बन्धीत्यथः, तेन स्वाभाविक मकारवता धानृनां सस्य घलं तृ स्थान, यथा सेसीयतं इत्यादि । आस वस्य घसान प्रविक्षत्रधातृनां पृथक्ष इत्यात् भक्ततेऽपि सकारः तिल्लान परः यः स्थान, यथा श्रिष्टः उपितः जधन्तित्यादि । मादिनु सद्धानीः (१०२८) विण्यत्रस्य दकारान्तस्य यहणान् किलापेधा धाम्नि, तेन न्राधाट् इत्यादी पलं, नतु न्रामाष्ट- मित्यादिषु । भव, स्वे भदान्ते इत्युक्ता वन्ते दमध्या इति व्याख्यानं, समासे दान्ते- स्थितस्यापि क्रवित् दमध्यात्वेन पलं स्थादिति सूचनार्थं, तेन गौष्यतिः निक्तृष इत्यादि भिद्यम् । इत्य उदाहरणानि यथा, अग्रिष्ट वायुष्ट पित्यप्त गोषु नौषु भव्ययषु व्यवप् वार्षु इल्य । को: —वानु प्राङ्ष । पाणिनिः पाश्वप्र १० ।

११२। से जम् के किस कीना-मिसी सात् सिनोऽतः।

(खे: ५।, जशा के कसि की नां ६॥, इ. धी कात् किन: १॥, चतः ५।)।

प्रादयमे स्थस्य । यथा, प्रष्ठः । पाणिनिः प्रस्थरि ।

वै: स्त्रणातेर्ववासनयो: । यथा, विष्टर: । पाणिनि: पाश्र का

विकुपरिश्रमिस्यः स्थलस्य । स्रया, विष्ठलं, कुष्ठलं, करिष्ठलं, श्रमिष्ठलम् । कपिष्ठलः (तज्ञामा चर्चाः) निपास्यते । पाणिनिः ष्यक्षार्थार्थे ।

चम्ब गी भूमि दि विकड़ मिंछ पृक्षि दियमि वहिंभी स्थस । यथा, चम्बलः, गीषः, भूमिष्ठः, दिष्ठः, विष्ठः, कृष्ठः, चक्रैष्ठः, मिंछष्ठः, पृज्ञिष्ठः, दिविष्ठः, चिष्ठः, विहंशः । एसः किं, भूस्थः । स्थस किं, गोस्थितः । परमेष्ठो सञ्चेष्ठः — निपाली, वादिनः द्वाराद्वे

द्रलात् सः पः संज्ञायानेकारे भाजुवा। यद्याः, सृषेणः, इश्षिणः, वायुषेणः। नचनातु भरणिषेणः, भरणिसेनः। इलात् किं, वित्वकीनः। एकारे किं, विस्तोताः। संज्ञायां किं. प्रयसेनः। पाणिनिः माशस्थ १००।

सुविनिर्दुर्भ्यः समम्बोः । यथा, सुवमं, विवमं, निःषमं, दुःवमं, सुवृतिः, विवूतिः, निःषतिः दःषतिः । पाणिनिः ८,३।८८ ।

निर्दुर्विदिराविः प्रादुचतुरी सः (नतु प्रस्थयस्थ) घः कस्त्रपितेषु । यथा, निष्पनः, दुष्करः, विद्वितारः, चाविकारः, प्रादुष्कतं, चतुष्यथनित्यादि । पाणिनिः वाश्वशः

निसस्तपतावनस्यावनौ । यथा, निष्टपति खणे परीचकः । आवनौ तु क्तिपति खणे खण्डेकारः, पुनः पुनरिप्नं स्पर्धयतीलाथेः । पाणिनिः पाशिरः र ।

नि:सुदुर्भ्यः साम-संघ सन्धिनां षः । यथा, नि:पाभा, सुषाना, दु:पाभा, निःपंधः, नि:पन्धिः, सुष्ठ, दुष्ठः इत्यादि । पाणिनिः पःश्रध्यः ।

स्तिरवादात्रयनिकट्याः। यथा, यष्टिमष्टस्य प्रासी, तामाणित्य तिष्ठतीत्यर्थः; प्रयष्टस्या गीः निकटे निषदा प्रासी इत्यर्थः। प्रथय श्रीतेनायस्यस्य। पाणिनिः पाः। द्वाद्यः। परिस्थिताः, द्वास्थितः, सम्प्राः। यथा, परिस्थितः, स्रस्थितः, द्वास्थितः, सम्प्राः इत्यादि । "दःस्थादेय" इति कमदीयरः।

स्त्रभावती सूर्वन्यपकारवन्तः ग्रन्दाः— सञ्जूषेषां प्रदीधो त्रष त्रष्ठमः स्वषाषाद राष्ट्रीष्ट्र कप्टं, बीप्पीषा द्वेषा भीषा विषय विष विषाणानि कुषाण्ड षण्डौ । कच्यापं साप भेषानिष सिष सद्दिश वेष पाषाः ग्रांबित्-प्रीयांभयांनुधारीयर कदव पृशेषाम्बरीयाः क्रीयस्।। प्रकारान्तात् स्त्रेः परेषानेषां स्थाने एते क्रमात् स्युः । # सर्व्ये सर्व्यक्षे सर्व्यक्षात् सर्व्यक्किन् । 🕆

१९३ | त्रात् सुमामः । (पल का, सकारा, पानः हा) प्रवर्णानात् स्नेः परस्य त्राम क्रांदी सुम् स्थात् । एत्वषत् । क्ष सर्वेषाम् । श्रेषं रामवत् । § एवं विकादयीऽकारान्ताः । उभयव्दी द्दान्तः । उभी उभी उभाभ्याम् उभाभ्याम् उभयोः । ॥

पौगूषं विप्रपा द्वयोज चयकावीषन् प्रथन् किल्लिसं, प्रत्यंष्युक्षवा कवाय कल्लं यूषं भिषक् सर्पयौ । पुष्यं पुक्तर वाष्य श्रष्य ग्रुविसं दुव्यं तुक्कीविधे सुर्व्यं गोष्यद पौक्षे प्रकृषितंतीत्वेता चाफरे॥

- अकारान सर्वनाम-शब्दात् परेशां जस् ङे ङसि ङीनां स्थाने अभात् इ. स्थे स्थात् स्थिन् एते स्यः। पत्र, जम् ङिताम् इ स्ये स्थात् स्थान् एते स्यः। पत्र, जम् ङिताम् इ स्ये स्थात् स्थान् इति क्रिते, ज्ञतिसर्वाय इत्यच सर्वनामलाभावात् स्था स्थे न स्थात् तथा ज्ञतिसर्वस्य इत्यचापि ङमः स्थाने स्थादेशस्थाप्रसङ्गः स्थातः, टाभिस् (१०६) इत्यनेनापि न भवितृमहंति, ज्ञनेनैव विशेषेण निवेधात्। पाणिनिः शरारहरू, ४५,१७।
- † सर्ज-जस् (११२, २१) = सर्जे। सर्ज-र्डे = सर्जे ही। सर्ज-रडि = सर्जे झात्। सर्जे डि = सर्जे थिन्।
- ‡ सिरिश्यत्वर्त्ततं, त्यात् त्रवर्णात् तेक मञ्जीवानित्यादि । सम जमावितौ, कतारित्रक्तांष्ट्रेः, निक्कादादौ । त्यामः स्थाने सम्विधानं विभक्तिसम्बन्धितार्थम्. त्यत-भाइ एतवत्वे इति, एतक् वत्वक्षते । सुनः स्थादीयसकारतात् (१०१) व्येनस्थेः स्थिने पक्तारः, प्यात् वत्वं भविष्यतीत्यर्थः । स्थादिस्थाने सर्व्यावयवदिश्चेतु तिस्मन् सरेन एकारः, यथा परस्तादित्यादि । पश्चितिः शराप्रः।
- § सर्व्यक्त चान (११६. १७. १०८, १११) = सञ्जेवान् । शेषम् छक्तादन्यत् रामवतः गाञ्चमित्यर्थः, पुंत्रपुसकायोः श्रेषैमित्यमरः ।
 - ण जमग्रक्दो दाना इति सुख्याभिशायेचीत्रं, तेन प्रधिगतौ छभी येन स प्रभुक्तः

जिस-निमे निमाः। * शेषं सव्वेवत्।

१९४। पूर्जादे: स्नात्-स्मिनौ वा।

्पूर्वादे: ५१, स्नात्-सिमी १॥, वा ११।)।

तौ। पूर्व्यक्षात् पूर्व्वात्, पूर्व्वीक्षान् पूर्वे । 🌣 शेषं नेमयत्। एवं परादयः।

समीऽतुखे दलायुंतीः--

नमः समस्मात् पूर्वसा अन्तरसा अमेधसाम्। समेधसामन्त्रसौ सतां ससौ स्वयन्त्वे॥ ॥

इत्सादि । उभग्रव्हादवयवार्षेऽयट्पत्ययेन साधितात् उभग्रश्चत् दिवचनं न प्रयुक्तके इति सम्प्रदाय: । एक नसङ्गावाचकादिकशब्दात् एकवचनभेव ।

છ नेन-जस् (८೭, ११२, २३) ≔नेमे, वा (२२, १०२) नेमाः।

ती द्रति इन्तिः। पूर्वविदिती (११२) क्यात् स्थिनी पूर्वविदेशे स्थानाम्। भतएव क्षिमिक्यी: स्थाने, भतस्विति वक्तव्यं, पूर्वाद्यन्ति (८८) मृत्रेण जिन परे वा सिनझामक्राता, भन्न, पूर्वविद्विति सात्-िक्षनी वा इति यक्त कर्तत्त्, पूर्वविश्वव्यात् जमः स्थानं (५११) तसि क्रते, पृत्रत्ते सिरिति (६२०) पृत्रविक्षात्, (दा सिसंज्ञायां ८८) पूर्वातः द्रति पददयसिद्धार्थम् । पूर्वे इति - पूर्वकात्, वा (१०६, २२) पूर्वितः पूर्वे किन्, या (१२) पूर्वे । पाणिनिः ०।१।१६।

[‡] सभीऽतृत्वे (८६) प्रत्यदिवदाष्ट्रणान्याइ नमः प्रति— स्वयम्युवे बद्धाणे नमः, स्वीद्यमाय, समस्मान् सकलान् पूर्वमे पूर्वकालीनाय पूर्वकालवर्त्तने प्रत्यं, प्रव समग्रस्थ पतुत्वार्थतेन पूर्व्यस्थ च कालाधेतया व्यवस्थावाचित्रन सिसंग्रा। पुनः स्वीद्याय, भानेष्यक्षं निर्वहीनाम् भन्तरस्थै विद्वारित्यत्य, सुमेषमां सुबुद्वीनाम् भन्तरस्थै सदा संसर्गान् परिचानवस्त्रस्थप्यः, सतां साधुनां स्वस्य मासीयायः, भव भन्तरणव्यः विद्यागावित्येन उपसंव्यानवाचित्यन सिसंग्रा, स्वस्त्रस्य च ग्रातिधनसिद्वार्थतेन सिसंग्रा।

समायेष परायेषां सक्तयेऽर्थान्तराय च। यदुष्वाय नमः स्वाय मन्नैर्जुष्टाय ग्रार्क्षि॥ % त्रतिसर्व्वाय सर्वाय साध्वन्यानां सिखदिषे॥ कालावराय कांलेम पूर्वीय जगती नमः॥ 🕆

जिसि — साधन्ये साधन्याः । जिस — श्रहपे श्रह्याः । भेषं रामवत्। एवं • प्रथमाद्यः। दितीयस्मे दितीयाय, हितीयसात् हितीयात्, हितीयसान् हितीये। एवं खतीय:। निर्जर: । 🕸

^{*} प्रत्युदाइरणान्याइ समायति — ग्रार्क्षणे विकावे सनः। कीडगाय एषु अस्तरस् भगाय तल्याय जगनायलादि थर्थः, अत्र समग्रन्दस्य तल्यायेलीन न सिसंज्ञा। पुनः कीटगाय एवां जगतां मध्ये पराय श्रेष्ठाय नित्यतादित्यर्थः, यच परग्रव्टस्य व्यवस्थानाचि-ल।भावात ने सिसंज्ञा। किमर्थनम इत्याह सुताये भी वाय. अर्थाल राय प्रयोजनाला-राय धर्मार्थकामार्थमित्यये. भव भ्रत्तरग्रद्धस्य विद्धीगादिभिन्नार्थलंगन सिर्मन्ना। पुन: भीडभाय यदम्बाय यद्नां भातये, स्वाय धनाय यद्नामिति समस्पदेन सम्बन्तः, समस्याममस्ति नियाकाङ्चीण यङ्गितिरितिन्यायात, षत्र खशब्दस्य जातिधनवाचित्वात् न सिमंज्ञाः पुन. कौडगाय सही वीरैं ज्ञाष्टाय सेविनाय इति पद्मपूर्णार्थसः।

[🕇] न गौग्यास्त्रीयस्य (८०) उटाहरणान्याह प्रतिसर्व्वायिति. सर्व्वाय प्रिवाय नसः भव सर्व्यमध्दस्य "सर्व्य: भिवः स्थागुरिति" सहस्रनाममध्ये पाठेन संज्ञावाचित्वात म सिनंजा। कीट्याय अतिमर्व्वाय सर्वमितिकानाय, अत्र गौणलात न सिमंजा। पुनः की हमाय साध्वन्यानां सिविदिषे, साधवय भन्यं च साध्वन्याक्षेषां, सैवा च दिट च तमी, क्रमात् शाधनां सख्ये, भमाधना दिवे ग्राववे इत्यर्थः, अत्र साध्वन्यानानिति इत्समामिष्यतलात् न सिसंद्रा. मेमासान्तविधेरनित्यलात् सिखिदिवे इत्यव (३२३) चैक्यादित्यनेन न अप्रत्ययः । प्रनः की दशाय जगतः कालावराय कालेन कनिष्ठाय अस्व काल।वरार्धित त्रतीयाततपुरुषममामस्थितत्वात् न सिसंज्ञा । पुन: कीटगाय जगत: कालिन पूर्वाय, भव दतीयातत्वक्षसमास्याग्यवाक्यस्थितत्वात न सिमंत्रा ।

[‡] साध्वन्यशब्द श्र कितु (८०) चे जिस वैत्यनैन विकल्पेन सिमंजायां माध्वन्ये साध्वन्या: इति पददयम्। चलो चल्या: इति (८८) पृथ्वीद्यलीयनेन जसि परे वा सिनजा। एवं प्रथमे प्रथमीः, घरमे घरमाः, दितये दितयाः, चितये चितयाः, दये दयाः. प्रये जया:, पर्डे पर्डा., कतियये कतिपया:, नेसे नेसा.। साधकाव्ये तु इयेषासिति

११५। जरस जराचिता।

(जरम् ।१त, जरा ।१।, भवि ७।, तु ।१त) ।

जराग्रव्हो जरस् वा स्थादं वि परे। निर्जर्मो निर्जरमः, निर्जरमं निर्जरमौ निर्जरमः, मिर्जरमा। केविदादाविनाताविक्कान्ति, निर्जरमिन, निर्जरमैः, निर्जरमे, निर्जरमः, निर्जरमादित्यादि। पद्येष्टमे च रामधत। *

११६ । पाद दन्त यूष निशा पृतना मासासन सान नासिकोदक हृदयास्क् यक्त शक्त शौष दोष: पहद यूषन्तिश् पृत्वासासन् सु नसुदन् हृदसन् यकन् शकन् शौर्षन् दोषण: शसादि-पौ।

(पाद - दैं।ष: १॥, पद---दीवण: १॥, भ्रमादि भी २।)।

म्रथेगी दृश्यते, तत महाकि विविविततात् माध्यत्, दयनिष्यत्तीति किपि द्येष्णव्देन वा। जोमरास् उभगभव्दमि भयानं मत्वा उभये उभयरः इति वदन्ति । दितीय-छे = (६०, ११२) दितीयवी. वा सिम्झायां (१०६, २२) दितीयाय द्वादि हतीयम्ब्होऽस्येवम् । वैनर्जर-सि (१०२) = निर्जर: । निर्मास्त जरा यस्येति बहुत्रीहिममासः ।

पंतिक्षे म्वकरणान विक्रतस्थापि जराश्यन्यस्थ ग्रहणं, एकह्शविक्रतममस्यवत् भवतीति स्थायात् तेन जरा जर इत्युभयस्थापि जरस् वा स्थादिव परे। प्रकरणवलात् भवतीति स्थादिव, तेन निर्जरस्थाकं निर्जराकं इत्यादी न प्रसङ्गः। भव तुःश्रन्थी व्यवस्थापकः, व्यवस्था च केनिटादाविनाताविक्कत्तीति । विद्यक्षिषिश्यः स्थादन्तरकः विधिवंतीति न्यायादादी जरसादेशे भम भाहिस्तीपः स्थी नकारस्य न स्थात्, एवं टा छे छनीनाम् इनायातीऽपि न स्यः। किश्व सर्व्यावय्यादेशेन इस्सप्यत्थाशावान् भामी श्रमागमीऽपि न स्थात् तेन निर्जरसमिति, वर्व पदां दतामित्याद्यीऽपि । किवित् पिछताः सावकाशविधिभः स्थादवती निरवकाशक इति न्यायेन, जरसादेशकरणात् भारी टा-ङस्थोः स्थाने इनाती इक्कत्ति, तन्यते (टा. १०६) निर्जरसिनः (ङसि, १०६) निर्जरसिति । पस्ते जरसादेशभावपने, इसे परिस्थाम् भिम् स्थम् मृप् एषु परिषु निर्मरसादिति । पस्ते जरसादेशभावपने, इसे परिस्थाम् भिम् स्थम् मृप् एषु परिषु निर्मरस्थां। पारिवनिः ७ १११० ।

एषां स्वाने एते क्रमात् स्तुर्वा यसादी पौच परे। क्ष पदः पदा पद्धार्मित्वादि । इतः इता दक्कामित्वादि ।

११७। सदानोऽच्चोपोऽम्बस्थात् पौ वा त्वीङगो:।

(सदा ११, भन ६।, भत्- खोपः १।, भ-म्घ-स्थात् ५।, पौ थ, वा ।१।, तु ।१।, ई.बी. ९१)।

अनोऽकारस्य नित्यं सोपः स्थात् पौ परे, ईखोसु वा, न तु मस्यात् वस्याच परस्य । 🌵

पतिवांस्थाने एते चादिशा: क्रमान् भवन्ति, यथा— पाट निशा पृतना मास मास् पद दत् यूषन् পিয়ম্ पृत् न। सिका उदक इदय ष सृज यज्ञन ষ্ঠাৰ **उद**न् ₹ ₹ भ स न् यक न् अप का न षत्र असादिय इणीन पूर्विविभक्तिरिं। सात् कीवे चौकारस्य पिलेऽपितत्र न स्थान्। भव भासनगद्भवाने बासन् इति पदं साधयता वोपदेवेन काश्विकानतसेव प्रामाणि-कत्वेन रहीतनः; सिडालकौमुटीकारेख तु भास्त्रभ्वस्थाने भासन् इति वदता तकातं प्रामादिकासिति भिद्धान्तितम्। वाशब्दस्य व्यवस्थयाः क्वविद्वास्थात् (१), क्वितिस्थं (२), क्वित्र स्थात् (३), प्रयोगत इति । यथा. (१) ग्रसादौ किक्नल्पः स्वय-मुदाइतः, एवं मुदतौ मुदनी इत्यादी च। (२) केशार्ये शीर्वण्यः, पूरियतव्यार्थे उदकुमा इत्यादि । (३) पादप्रचालमजलार्थे पाद्यमित्यादि । पाणिनि: ६।१।६३ ।

[†] सदिति पूर्व-वाधिकारिनष्ठस्वयं न । स्वा सदिति समयनं सुखाले गौणले विस्थंः, तेन पूजितपूर्णः पौतयूर्णः रत्यादि विज्ञम् । भव वस्ति म्वः (भवानःः) मृत्यासी स्थिति म्वस्यः, न मृत्रसः स्मृतस्यस्यानात्, नवसंयोगात् यथा—कर्म्यः यञ्चनः रत्यादि । ईस्त्रीरिति जि-साइचर्यात् ईरिति विभक्तिस्यस्थीयमेव यास्त्रम्, तेन स्रज्ञी पहनी रत्यादि । वार्तप्तः पौणः धार्त्तरातः एवाम् स्वेने विश्वते (४१५) इन् सन् दृति मृत्रमेवं जापयिति—त्राज्ञितस्य स्वि ये च न सर्वव स्वीऽक्षीपः, तेन राजन्यः मृद्वत्य स्वादि सिज्ञम् । पाणिनः द्वा ११६४,११६० ।

यूष्यः यूष्णा । #

११८। नो खुप् फेऽघौ।

(न: ६।, खुप् ।१।, फी ७), मधी ७)। •

नस्य तुप् स्थात् अर्थी फे परे. ं गं यूषभ्यामित्यादि । ङो — यूचिय यूषिय यूषे । मासः मासा माभ्यामित्यादि । ः पचे घीच रामयत् । पदादयः प्रथक्यव्दा द्रत्येके । §

११८। सङ्ख्या-वि-सायादाङ्कोऽहन् छौ।

(सङ्ग्रा-वि-सायात् ५), वा ।१।, चक्र: १।, चहन् ।१।, ङौ ७।)।

सङ्घा-वि-सायेभ्यः परस्याङ्ग इत्यस्य ऋहन् वा स्थात् ङी । ¶

श्रव ग्रम् (११६) = श्रम्-भम् (११७, १०७) = श्रूच: । एवं श्रव टा = श्रूचा ।

[†] लिङ्गालस्थरा अक्षत-नकारस्य लुप् स्थात् स्थायीय-इसे विरामे चन तुधी। धिवर्जनादेव लिङ्गालनकारस्य प्राप्तिः, तेन (इनधासी च्यां दिपि) चहन् इत्यादीन प्रसङ्गः। प्रश्नान् भवान् इत्यादीकातलात्न नस्य लोपः। पाणिनिः पारावि, पारावि,

[‡] यूष-खि (११६, ११७, १०७) = यूचि, वा यूषि, वा यूषे । मास-मस्≖ मास:। मास-टा = मासा । मास-भ्याम् (११६, १०२, ७०) = माभ्या ।

इ. प्रकी — केवित पिछता: बद्वभ्रतय: प्रयक्ष्या: स्तीति बदिता। एतत्
 वोपदेवस्थापि मतम्, चतरव कारके (१०१) चावसतात् स इत इति विशीयैकव्यने
 स्वस्यसुदाञ्चतम्।

ण सक्तावासकशस्य विशव्द सायश्रव्येथः परस्य सक्त इत्यकारान्तश्रव्यस्य सहन् वा स्थात् स्त्री परे । वयोरक्रोभैवः सक्रः, विगतम् सहः स्थकः, सक्रः सायः सायाकः। स्वस्यदीराक्ष इति (३५३) पमत्यये, सर्वेकदेश इति (३५४) सक्रादेशे एवामदन्तलम्। पाणिनिः ६।३।१६०।

हाडि दाहिन दाहे, व्यक्ति व्यहिन व्यहे, सायाहि सायाहिन सायाहि।

विखपा: विखपी विखपा: विश्वपां विखपी । 🌵

१२०। घोराखोपोऽख्यवी।

(धी: ६, भा-कोप: १।, भवि ७।, भवी ७।)।

भीराकारस्य लीपः स्यात् अञ्चावि परे।

विखपः, विष्वपा विख्वपाभ्यामित्यादि। एवं गङ्कभादयः । क

धोः किं-हाहाः हाहा हाहाभ्यामित्यादि । §

शेषं विशवपावत्।

हरि:।

१२१ | युद्धारा-मौ यू । (अक्राम् ४॥, को ११।, यू २॥) ।

[#] दाक्र जिल्लाइन्द (११०) = दाक्रि, वा दाहिन, वा दाक्रे द्यादि।(इ.स.ट्ना:)

[†] विश्वंपाति रचति यः स विश्वपाः विश्वपः । विश्वपाःसि (१०२) = विश्वपाः। विश्वपाःसी (२३) = विश्वपौ । विश्वपाःसम् (२२) = विश्वपाःस्।

[‡] भालतयवीभृताकारस्य लीपः स्थान विभिन्न स्थादीयाचि परे । तदिताच-यका-रयीः परयीः यथीलीप (२५८) इत्यनेन चाकारलीपस्थावस्थकते भारालीपः पौ इतिः यन्न कृतं तन् गीमायः सायः पायुरित्यादौ (४४७) चाकारस्थित्यर्थम् ४ विचपा सस् — विचपः इत्यादि । याचिनः ६।४।१४० ।

[§] इा इति छत्सिनं अर्वे जहातीति घीषादिक-काप्रत्ययेन, उस्सेचीति (६१०) माकारखीये हाइ। इति घाकारस्य घातवयवताभावात् न माकारखीय: । क्विप्रत्यये छु घातवयवताभावात् न माकारखीय: । क्विप्रत्यये छु घातवयवत्ने माकारखीय एक — इा इ: । इहा गन्यव्ये: । म्व "घातोः किं इा हान्" इति वाक्तिकस्— भावत्तिभिन्नागामाकारखीय इत्यये: । मव "घातोः किं इा हान्" इति सिक्कालक्षीसुदी । "इहा चु वा , इहा इहा इहा हा हा वा" इति सीपन्ने । "इहः" इति क्षमदीयर् । "मञ्जूलप्रीऽपि गन्यव्यं वाचको हा हा अच्दं । किंदि तस्य इहा हा हा हो इत्यादि भवति" इति गोयौषनदः । (इत्यादकाः)।

इकारीकाराभ्यां पर त्री क्रमादिकारीकारी प्राप्नीति । इरी ।

१२२ । गुधिनस्डित्सु । (वः १।, वि नम् वित्त ।॥)।

इतुरोर्णुः स्वात् भी जिस ङिति.च परे। इरयः। १ त्यां से त्

१२३। टादसञ्चास्त्रियान्त ना।

(टा ।१। चदस: ४।, च ११।, पिकां ०।, तु ।१।, ना ।१।) 1

इदुद्वामदसय परष्टा ना स्थात्, न तु स्त्रियाम्। §

[.] • इञ्चलक्ष्यू, प्रधान् तकारानुबन्धेन युती ताभ्यां। क्रमच इकारात् ची इ., स्कारान् चीलः। इति ची -= (१२१,२२) इतीः। पास्किनि: ६।१।१०२।

[†] भात्, इटुह्मां विहितं एव धी परे बीध्यं, तेन हे नदि हे सुभु इत्यादी समूदीति (१५६) इस्ते पद्मात् न गुष:। ङिति च सावात् परे बीध्यं, भन्यया सत्ये दियक्ष वा डितामिति (१५६) भनि क्रतेऽिष भनेन गुणापित्तः स्थात्। इति-जस् च (१२२, ३५) इत्यः। पाणितिः अव।१०८, १०८, १११।

[‡] प्रत्यस्य खोपेसित प्रत्यस्य सवयं विकं स्वीकियते इत्ययं, येन केनापि मध्देन प्रत्ययक्षेपे तत्प्रत्ययसम्बन्धि कार्ये स्थादित यावन्। (पाणिनः १।१।६२)। यथा, राजा इत्यादौ (१४८) सेलीपे (१६४) दीर्घः। नावामीमः वागीमः क्रात्यदौ (११८) विभक्तिल्वि विभक्षत्यविद्यति पदमंत्रा सिद्या। हे हरे इत्यव भादौ गुणे क्राते, स्थानिवच्चेनेव धिखीपे सिक्ते, त्यसंपि त्यस्यक्षीकारः स्थानिवदादेशः इति न्यायस्यव्यक्षिचारस्वनार्थः। हे—इरिसि (८०,१०३,०३,१२२) = हरी। हरि-सम् (१०३,४०४) = हरीन्।

इरिणा हरिभ्यां हरिभिः, हरये हरिभ्यां हरिभ्यः। अ

१२४। इन्सेंडो लोप:।

(डस्य ६।, एडः: ५।, स्तोप: १।)।

एङ: परस्य ङिसङिसो र्ङस्य लोप:'स्यात् । वृं इरे: इरिभ्यां इरिभ्य: । इरे: इर्थ्योः इरीणाम् । कृ

१२५ । युद्धां हे-डी:। (युक्कां प्रा., के: ६।, डी: १।)। इदुक्कां परस्य केडी: स्यात्, व इत्। §

१२६। टे-लापो डिति, विंगते-स्तेस्वङौ।

(टी: ६।, जीप: १।, डिति था, बिंबती: ६।, ती: ६।, तु ।१।, चडी था) ।

खिति परे पूर्वस्य टेर्नीप: स्यात्, विंगते-स्तेस्वङो । ¶

इरि-टा (११३, १०७) - इरिया । इरि के (१२२, ३५) = इरवे ।

[†] डः पर: घः डः तस्य कस्य, स च कसिकसीरिव सभवति, घत घाइ ङिसिकसी-र्ङस्थिति । एक इति प्रकृतिविक्ततेरपि, तेन गोः योरित्यादि । पाणिनिः ६।१।११० ।

[‡] इस्-इस् (१२२, १२४, १०२) = इरे: । एवं उस् = इरे: ।' इस् फीस् (34) = 22ीं: । इस्-याम् (११०, १०४, १००) = इसीवाम् ।

[§] यद्यपि, युद्धां उत्ते इति इतुद्धां सङ् उत्ते विघाने क्षते परस्ते चाउतिति वक्तस्यं न स्थात्, तथापि उत्तै-करणं परसूते स्थाद्यध्यायप्रकरणौय-डिति परे एव विश्वति-की-सौंपाये, तेन विश्वतिमाचिष्टे विश्वतयित इत्यत्र (८५५) जिन्नत्यसस्य (४६०) डिस्वेऽपि टेरेव स्तोप: नतुते: । पाणिनि: ७।३।११८-११९८ । एतन्प्रते भौत्।

ण जिति परे तत्पूर्वभव्दस्य टेलें।प: स्वात्, विंग्रतिगन्दस्य तु ति-भागस्य लीप: स्वात्, चर्जी जिसम्बन्धिभिन्ने जिति परे, जिसस्वन्धि जिति परे तु विंग्रतिगन्दस्य टे-लेंग्प प्तेत्वयं:। यया, विंग्रते: पूरण: इत्यये विंग्रतिगन्दात् (४५०) जटि क्रते ति-भागलीपे विंग्रे, जी तु विंग्रती। पाणिनि: ६/४/१४ २ १४ ३।

इरी इर्था: इरिषु। अ एवं श्रीपत्यग्निरव्याद्य:। 🌣

१२७। सब्यृद्ग्यां सेडीघे:।

(सख्रक्षां ५॥, से: ६।, डा ११।, अधे: ६।) ।

सिख-प्रज्ञात् ऋकारान्ताच परस्य से र्डास्थान तुधेः। सिखाः प्रधेः किं, हे सखे। 🕫 🔥

१२८। घो ति: र (घो ठा, तिः १।) ।

सब्य ऋकारस्य च तिः स्थात् श्रधी घी परे। § सखायी सखायः, सखायं सखायी सखीन्। ¶

१२८ । सब्बष्टाङिता-माएउसुसौ।

(सख्यः प्रा, टा-डिताम् ६॥, भा ए उस् उस् भौ ।१॥) ।

इरि-ङि (११५, १२६) = इरौ । इरि-सुप् (१११) = इरियु।

[†] श्रीपृतिस अग्निस रविस्र ते आदधी धेवां ते। आदिपदात् विश्रेषिणः यावतीय-पंतिकः-ऋद्येकारान्तश्रव्हाः एवमित्ययः।

[‡] सखा च ऋच ताथ्यां, सखाह्याम् । सखि-सि च सिख-छा [छ- इत] (१२६) - ः सखा । ई सिख-सि (चि) = (१०३,१२२) सखे । पाणिनौ सिखपित मृष्ट्रसाधनमकारः सस्यक् विभिन्न एव । अशब्दर,८३, अरा११५, ६१११११, अरा११८ ।

[¶] सखि ची = सखे ची (१५) = सखायी। एवं अर्थ् पम् ची परे। सखि-शम् (१०४,१०५) = सखीन्।

सच्युः परेषां टाङितां स्थाने त्राए उस् उस् ची एते क्रमात् स्युः।*

सख्या सख्ये सख्यः सख्यो । 🕆 भेषं हरिवत्।

१३०। पत्युरसे। (गत्युः ४।, भरी ७।)।

पति ग्रन्थात् परेवां टार्डितां स्थाने त्राए उस् उस् श्री एते क्रमात् स्थुनेतु से। पत्था पत्थे पत्थः पत्थः पत्थो। श्रमे किं, श्रीपतिना इत्यादि। ग्रेषं इतिवत्। श्र किंतिग्रन्थोः व्यान्तः। §

श्रा ए उसुधी दत्यच सूचलात् न सन्ति: । टा के कि स दुंस् कि स्थाने क्रमेण भा ए उस् उस् भी भवन्ति । टादिस्थाने भा भा ए उस् उस् भी भवन्ति । टादिस्थाने भा भा दि करणं ना भादिनिष्धार्थम् । किन्तु. क्र विद्यवादिषयेऽध्यक्षगीऽभिनिविधते इति भथवा भातिदेशिकं कार्थमनित्यनिति न्यायात् सखिना वानरं न्द्रेण इत्यादि सिद्धम् । सख्यद्रामिति भी विरिति सख्य एकितानित एतेषु सखिभन्दस्य सुख्यस्थैव यक्षणम् । गीणस्थापि यक्षणिनित भाष्यकारः, तन्त्रते जितसखा, जितसखायै, जितसखा इत्यादि च । किञ्च, पुंलिक्रे एव यहणं, स्त्रियान् नित्यभीवन्तवान् (२०४) सखी गौरीवत्, क्रीवे चास्य न प्रयोगः। पाणिनिः ११४।०, ६।२।१११२, ०।३।११८ ।

[†] चिख-टा = चिख-चा(३५) = चस्ता। एवं के उपि उप्मृडियोगे।

[‡] भवापि पूर्वस्ववत् क्षमान्यः, न्यायस्त्रीकारस्, तेन पतिना नीयमानायाः रति, नटे छते प्रविभित्ते क्षीवे च पतितं पतौ रति, स्रीतायाः पतये नमः रत्यादि च सिद्धं, छान्दसमिति केवित् । पति टा स्पति भा (३५) स्पत्या । एवं उटे उट सि उट्म डि परे। श्रीपति टा (१२३) स्श्रीपति टा (१२३) स्श्रीपतिमा, श्रियाः पतिः श्रीपतिरिति विग्रहः । श्रेषं पतिश्रस्ट-स्रीत्यशैः । पाणिनिः राष्ट्रा

कृतिशब्दः कियत्परिमितव। चकः, चत्रपव चिनिश्चतवह्रतार्थलेन वहुवचनान्त प्यभवति ।

१३१। डितसङ्ख्याच्यो जस्मसो र्जुक्।

(डित सङ्ग्राष्-षः ५, जस्मभीः ६॥, लुक् ।१।)।

डत्यन्तात् षान्त नान्त सङ्घायाय परयो जस्मसो र्जुक् स्यात्। क कित कृति कितिभिः कितिभ्यः कितिभ्यः कितीनां कितिषु। एवं यति तिति ।

डिति-च्य-श्यान्तसङ्गास्मद्-युष्पद्र सहग्रास्त्रिषु ।ंं च्याद्यः सङ्गाग्रद्धाः ब्वान्ताः । क्ष

१३३ । चेरयङ् नामि । (वै: ६१, पयङ् १११, नामि ०))।

विगन्दस्य अयङ् स्थात् नामि परे, ङिलादन्यस्य स्थाने। §

क ष न च च, सहा चासी चाचेति महागण, उतिय सहागण चेति तथात्। उति: प्रत्ययः, तेन उत्यन्ता. कित यित-तित इति चयः। एषां मुख्यानामेत यहणं, तेन प्रियक्तयः चित्तवयः चितिपञ्चानः इत्यादौ न जुक्। जुक्करणात् कित इत्यादौ (१२२) द्याधौत्यादिना न गुणः, पञ्च इत्यादो नान्तलात् (१६८) न दोषः, (८३) जुक्कि न तज्ञिति निविधात्। पाणिनिः १।१।२४ २५, ७।१।२२।

[†] ष च म च षो, षो भनी यथाः सा ष्णाना, ष्णाना चासी सङ्घा चेति प्णान-सङ्घा, इतियु व्यच ष्णानमङ्घा च भस्तच युभावति । इतिप्रव्यान-भव्यय सङ्घा-वाचक पाननान यस्य-युभार-भन्दाः विषु विङ्गेषु स्टमासुत्या एव स्वान्त इति नियमान एवा विङ्गिविदितविभेवकाय्ये न भवती व्ययः। एवा सुद्धानामेव यहणं, युषाद-स्वदोस्तुगौषति सुद्धति च । भवादयुषान्सं व्यास्तिषु सुरुपाः इति सिडान्सकौ सुदी।

[‡] भादिगन्दस्य व्यवस्थायाचकावात् भष्टादमपर्थंना एव, कनविंग्रणादीनान्तु एक-वदनान्तवमेत्र, 'विंग्रलाद्याः सदैकावे सन्योः सङ्घायसङ्घायो'रित्यमरात्।

[§] विशय्दस्य सुखासीव यद्यं, तेन माप्तचीयानित्यादी न स्वात्। परमास्र ते विश्वयिति तेषां परमचयायानित्यादी सुखाज्ञात् स्थादेव । नास्ययङ् वैरिति तु सुति-दुःखावद्यवान कर्तः; कवित्र स्थादित्यर्थनिति केचित्, तेन चौषानिव ससुद्राणानिति सिखन्। पाचिनिः ९०१।५३।

भग्राणां निष्। ः दिमञ्दी दान्तः। १

१३३ । त्यदां देर: तो । (त्यदां ६॥, टे. ६।, का १।, को ७) ।

त्यदादीनां टेरकारः स्थात् क्ती परे। अ

दी ही, हाभ्यां हाभ्यां हाभ्यां, हैयो: 'हयो: | §

वातप्रमीः वातप्रस्थी वातप्रस्यः। न

१३४। यूतोऽम्श्रसो-र्कावदीधोः।

(यूत: प्रा, भन-धर्मी: ६॥, की १॥, भदीधी: प्रा)।

क्षिवर्जादीदूदन्तात् परयोरम्यसीः स्थाने क्रमात् मनौ स्तः।

वि-चाम् (११०, १६२, १०४, १०७) = चयाकाम् । वि-भुप् (१११) = विषु ।

[†] दिशच्दी सुखें। एव दिवधनानः, तैन प्रियदिः पुरुष दति । येषां श्रष्टानामा-क्रतिरत्ययात्वं ने जायते ते एवादी वक्तत्याः, चतएव दकारान्तश्रष्टानासुदाहंरणे भादी विशष्टसुक्तापक्षात् दिशब्दः कथितः।

[‡] भनुकर्णशब्दस्य सिमं जाभाविन टेरलाभावि त्यदामिति पदं सिडम्। बहुवधमं गणार्थम्। सिसंज्ञानामेव त्यदादीनां टेरकारः स्थान्, तेन भतितदः भतितदः, भितितदः, भितितदः कुलानि, इत्यादी गौष्यं न स्थान् ; युष्तद्यस्योस् गौष्येऽपि, एवं हियुष्पदस्यक्षं न तसीति वज्ञत्यम् ; तेन भतियुष्पान् भत्यसान् भतिलान् भितान् इत्यादि ; प्ति तु वितः युष्पतः भवतः तत्तः भनः भित्युष्पतः इत्यादि । लिङ्गान् विभक्तेरावस्यकलेऽपि जियदणं साचान् कौ परं एव क्रेयं, तेन सः एवः इत्यादी इसाद्तरे आदी न सेलें। स्थां उङ्की इति यज्ञ कतं तन् प्रक्रियालाघवार्थमेवित । पाषिनिः ७।२।१०२।

^{\$} वि-की = द-भी (२१) = दी। दिन्धाम् (१०८) = दाभ्याम् । दि चोस् (१०६) च्चियो:। इति इटना:।

ण वार्तप्रसिमीते प्रमाति वेति वातप्रसी: भीणादिक: ई(कित्)प्रत्यय: । स्यविभेष इस्थर्थ: । वातप्रसी-भी (३५) = वातप्रसी । जस् (३५) = वातप्रस्य: । सम्बुद्धी हे वातप्रसी: । किवन्तवातप्रसीम्भरदेख तु भिम प्रसि खी च विभेष:---वातप्रस्यन्, वातप्रस्यः, धातप्रस्यः।

वातप्रमीं वातप्रस्यो वातप्रमीन्, वातप्रस्या वातप्रमीस्या-मित्यादि। एवम् चतिस्रस्यादयः।*

सुधीः। 🌵

१३५ । घोरियुविच । (भोः ६।, इष्-उत्।१।, पवि ०।)।

धोरीदूतोः स्थाने क्रमादियुवी स्तोऽचि,परे। क्ष सिधयी सुधियः द्रवादि। एवं सुश्रीयवक्रगादयः। § प्रधीः। श

१३६। कव्याद्यनेकाचोऽस्थादद्दन्पुनर्वर्षा-काराद्यन्यभूसुधियोयुर्ते।

(कवाद्यनेकाषः ६।, प्रकात ५।, पटन्—सिवयोः ६॥, य्वौ १॥)।
कादिव्यदिनेकाचय धोरीहृतोरस्यात् परवोः क्रमात् यवी

मदीसंज्ञक-घातु-भिन्नात् ईट्ट्टलात् शस्यात् परस्य अम्स्याने न श्रस्त्याने न स्वात्।
 वातप्रभी-चम् = वातप्रभीम् । वातप्रभी-चौ (१५) = वातप्रस्यौ इत्यादि । चित्रक्त्याः व्यः
 इति चादिपदेन चित्रक्तौ वहुप्रेयसी चित्रक्ष् चित्रस् इक्ष्ण्यस्यः । पाणिनिः द्वारार्० । १०३।

[🕇] सु श्रीभना घौर्यस्थिति सुधी: । ध्वैधाती: क्विप्रत्यत्रे धी: (१०६०)।

[‡] विभक्तिं विपरिणासय ईट्रतीरनृश्वितः। धालवयवीसृतयोः ईट्रतीः स्थाने क्रमात् इयुवी सः प्रषि परे। प्राथेण विच् किप्रस्थयान्त्रश्रन्थानिव ईट्रतीधीलवयवलं समावित, तथाच — "विच् किवना हि धातुलं न त्यनित कराचन। कचिन त्यनित्य धातृलं सुधीनीति-प्रदर्शनादिति॥" प्रचीति स्थादेरेन, किपन् तडितस्थापि, शेन धाम् स्वायभुवं ययुरिति सिडम्। विशेषविधिलात् (२२) सह चे ई द्रत्यस्थापि वाधकीऽयं तिन की सुधिय इत्येष । पाणिनिः ६।४।००।

९ सुधी-ची = सुधियी दलादि। ययलेगां यी: (१०३५), सुषु यीर्यस्य सः सुत्रीः यवेन क्रीचातीति यवकीः। पादिसन्दात् ग्रद्धी नी सुन् कटमू स्वयभू प्रस्तयः।

पुप्रक्रष्टा घीर्थस्य सः प्रधीः।

स्तः श्रवि परे, न तु हन्भू-पुनर्भू-वर्षाभू-काराभू-योऽन्यस्य भू-शब्दस्य सुधियस । *

प्रध्यी प्रध्यः इत्यादि । एवं दीध्यादयः । 🕂

क्रव्यादानेकाचः किं, ग्रुडिधयो । श्रस्थात् किं, यविक्रयो । नीः नियो । ध

य्वी इति धिवचनात्तेन क्रमनिक्षा हाथे पूर्वतः यूतोरिति धिवणनात्तं भूला भन्न-वर्तते। ततस—कारकादिरव्ययादेरनेना भय धातोरीदृती यद्य धंयोगात् परी भवत-सदा तथीः क्षमात् य्वी स्थातामचि परी, हन्ध्वादिभिन्नभूषस्य पृधियय न स्थादि-स्थाः। इयुवोनिविधे (५५) यसायवायेत्वनेन सिद्धाविष यविधाने (२२) दीर्षवाध-नार्थे, तेन की प्रष्टि। भव हन्पुनविधेकारादि-भूषस्य व विधाने तिक्षत्रभूवजैनस्य कष्टगस्यत्या स्पष्टायेभेव तिक्षत्रभूवजैनस्य भवापि भवीति स्थादेरिव, तेन प्रधीयर हत्यादी न प्रसन्तः। हन् इति हिंसायेमच्ययं तसी भवतीबि हन्भः पत्रगवच्यीः, प्रमर्भः स्थात् दिकद्ायां, पुनर्ववायां वर्षाभः स्थितं किञ्चसुके स्रवे, कार्मभूनिगङ्-स्थाने इति कीवः।

भव भागं विशेष:—स्यादात्पत्तीः पूर्त्तं कारकात्रयाथां कतसमासस्येव भागोगैद्रानियंवी सः न तु स्याद्यन्तस्य ममाने, तेन भयनं भी रिति किपि, भ्रेषत् भी ग्रेषोगे ते भ्रेषितयः, दुःस्थिता धी ग्रेषेयां सिति दुर्धियः इत्यादि । तद्याच विश्वकिषया पलायमानस्य भागी-विषस्यवे विनियात प्रति भाष्यम् । भव विश्वकस्य भी रिति (वश्वकस्यन्तिनी भीः) कारकादिलाभावादिति केषित् । परन्तु सुष्टु धीः प्रक्रष्टा धी रिति नियस्त्रीत्वे सुधीप्रध्यो भौ लक्षीवद्यति (१५८) कथनात् स्वसते नेशं स्यवस्था । पाणिनिः स्थाप्या । यातिकारकपूर्वस्थेवेष्यते यणादेगः इति वार्तिकम् ।

† दीधीर्कं चलुदेवने दीप्ती इति धाती: क्विषि दीधीविति कनेकाच्, पादि-पदात् प्रयागी सुती लूगी सुखी प्रधतयः।

‡ एडा घोर्यस स: गर्डधी: । ग्रह्मी-भी (१३५) = ग्रडधियो । एवं यवक्रियो, नियो।

अ कथ व्यय कथे, ते पादी यस सक्यादिः, स प पनेकाश कव्यायनेकाच् तस्य। हन् च पुनर् च वर्षाय कारा च ता' पादशी येवां ते हन्पुनवैषिकारादयः, तेभ्योऽन्यः हन्पुनवैषिकाराद्यन्यः, सचासी भृषिति हन्पुनवैषीकाराद्यन्यः,, स च सुधीय तौ हन्पुनवैषीकाराद्यन्यभूस्थियौ, न तौ शहन्पुनवैषीकार्य्यस्सुधियौ तथीः।

१३७। न्यापदीस्यो छेराम्।

(भी-पाप्-दीभ्य: ५॥, जि: ६।, प्राम् (१।) ।

नीग्रव्हादापो याय परस्य छे-राम् स्थात्। नियाम्। शेषं सुधीवृत्। अयणीः अयण्यौ। ङी-अग्रण्याम्। शेषं प्रधी-वत्। ॥

१३८। त-तज-खादीयों ङोवो:।

(स-तज-खात् ५ा, ईग्र. ५।, ङ: १।, वा ११।, ड: १।)।

तात् तस्त्रानजादणीत् खाच परादीकारजात् यकारात् परो इसिङसो ई उ: स्नादा । सत्यु: सत्यः । लृत्यः लृत्यः । सुस्यु: सुस्यः । पे

यमु हिरिवत् साध्यः । ि यमुः यम् यमावः, यमुं यमू यमून, यमुना यमुभ्यां यमुभिः, यमावे यमुभ्यां यमुभ्यः, यमोः यमुभ्यां यमुभ्यः, यमोः यम्बोः

अ अब भैवल नी प्रव्यस्य तरला प्रव्यस्य च यह णं, तेन नियाम् अयग्यां यामग्यान् मियादि । त्तीचे तु पल्तरङ्गलादादौ इस्ते गानि प्रतिनित्ति कुले, पुंत्रहावपचे प्रतिनिधानिति । त्री शिः च को प्याम् (१३५) च नियाम । प्रये नयतीति किपि घरणीः नायतः । प्रयोगीं प्रते , त्रारकादिलात् (१३६) च प्रसम्योगी इत्यादि । पाणिनिः ७।३।११६ ।

[†] तकारस्य स्थाने जातः तजः, तत्र तजसः त्वत्र तत्रज्ञातं तत्रान्, द्वेतारस्य स्थाने यः वृंधसस्यान्। एतेन तकार तकार जातवर्ण- स्वकारियः परस्थितान् कव्याद्यनं काच इत्यने जात्रयकारान् इसिङ्गोरकार उः स्थावा इत्यर्थः। सुतिभिष्कति सुतिभिवा-ष्वरित वा इत्यादि वाक्ये सुतीयतीति सुतीयधानोः किपि (७०५,६४२) सुती श्रव्दः। एवं लून्सस्यक्तीति लूनीः, सम्बभिष्किनीति सुन्वीरित्यादि। सुती-इपि (१३६,१३८) = मृत्युः, वा सुन्यः। एवं लून्यः, लून्यः, मृत्युः सुन्यः इत्यादि। पाधिनाः ६।१।११२। इति इंदना।

[া] ধ্বিস্থ রকাব্য কার্যণ পদ র জকাব্যুরি বিম্পা, साधनम्वाणि तुल्यानीति।

यभूनां, सभी सभीः सभुषु । हि सभी । एवं विणा-वायु-भान्वादयः ।

१३८। क्रोष्टोस्तृनसृत्वधौ घौ स्त्रियाञ्च।

(कोष्टो: ६।, तुन: ६।, तृन ।१।, सूबी ०।, घी ०।, स्त्रियां ०।, च ।१।)।

क्रोष्ट्रगब्दस्य तुनः स्थाने छन् स्थात् अर्थी घीपरे स्त्रियाञ्च । नद्रत्। *

(१२०) सच्युद्धप्रामिति । क्रीष्टा, हे क्रीष्टी । (१२८) घी विरिति, क्रीष्टारी क्रीष्टार: क्रीष्टारं क्रीष्टारी क्रीष्टून्। १

१८०। वान्यवी। (वारा, भविषा, भवीषा)। कोष्टोसुनस्तृन् वास्यात् अवाविच परे। क्रोड्रा । क्र

^{*} कीम्प्नीति कुम्भातीरी पारिकानुन्पत्यये कीष्ट इति लिइं (स्म्यालयाचकं), तस्क्ष्य तुन: स्थाने तन् भादेश: स्थान । तन् इत्यस्य नकार: (१४३) घावस्तस्तत्योगितः सुणनिधेषकतया सायंकः, नतु निस्तादनो, तथा सति तुनी ग्रहणं निरयंकं स्थान । गौणस्थापि ग्रहणं तेन बहुकीषा देशः । स्त्रियास्ति स्त्रीलिङ्गवित्तिं सिति निक्तिः चान्तरस्य नापेचा, तेन कोष्ट्री बहुकोष्ट्री इत्यच त्रिष् (२५०) स्टदन्ततादौप् । स्त्रियाः नियमिति कमदीसरः । क्रीवेतु सागमविधेवंशवस्त्रादौ तृष्यि बहुकोष्ट्रीन वनानि इत्यादि । पाणिनिः ०।१।८५ ।

⁺ कीष्टु-िंच कोष्टृडा (१२६) = कोष्टा। है कीष्टु-िंच (घि) (१०३,१२२) = कोष्टी। कोष्टु ग्रस् (१०४,१०५) = कोष्ट्रन्।

[‡] पूर्वसूर्वे चियक्ष्णादेव भव विभिन्नपानी पुकर्षिग्रहणं कदाचिदिप यस चित्रं सभवित तम्रिवेषार्थम्, भ्रतपव शम्बिभन्नी क त्वन्, शतः क्षीवेशी (१६२) क्षते शसीः (८२) वित्रसभावान् । टाटाचीति पाणिनिकमदीभरप्रध्तयः । भव भवीति स्थादेरेन, तेन क्षीक्ष्रिदं (भाष्ट्रस्थे) क्रौष्टविनिति । क्षीष्टुटा = क्षीष्टु-भा (३५) == क्षीष्ट्रा । पाणिकिः धारे ८०।

१८१। ऋतो डो डु:। (सतः ४।, ७:१।, इ:१।)।

ऋकारात् परो ङसिङसी ङीं डुः स्थात्, ड इत्। क्रीष्टुः क्रीष्टुः क्रीक्षीः क्रीष्ट्नाम्। *

१८२ । गुर्डिध्योः । (णः १।, कि-ध्योः ०॥)। ज्वात्रस्य गुः स्थात् की धी च परे। , क्रीष्टरि १ की द्वीः । पत्ते इसे च समुवत्। क्ष

इह: इही इह: द्रत्यादि, वातंप्रमीवत्। एवमतिचम्बादयः। स्मु: सुभवी सुभवः द्रत्यादि, सुधीवत्। एवं कटपूष्वयभ्वादयः। सुनू: सुन्ते सुन्तः द्रत्यादि, प्रधीवत्। एवं हन्भूखन्यवादयः। श्रधाता, त्रनन्तकोष्ट्रवत्। धी हे धातः। एवं नमृहोत्यपीवा-द्यः। श्र

[#] क्रीष्टु-क्रिचि = क्रीष्टु-चम् (१२६, १०२) च क्रीष्टु:, एवं क्रम् परि । क्रीष्टु-चीम् (१४०,१५,१०२) = क्रीष्ट्री: । क्रीष्टु-चाम् (११०,१०४) = क्रीष्ट्रनाम् । चागमाद्रिण्यी- क्रिये बलीयानागमी विधिरिति न्यायादादी नुमागमी चत्परलाभावात् न तन् । पाणिनि: ६।४।१११ ।

[†] क्रीष्टु-िङ (१४०,१४२) = क्रीष्टिरिः पाणिनि: ७!३।११०।

[‡] पर्चे त्रणोऽभावपर्चे, इसे भिमादौ परे शभुश्रव्दवत्। इति छदन्ताः।

[§] इड्डम्ब्स्य चिम ग्रसि च (१३४) यूत इत्यनेन इड्डंइड्ड्न । सुभू चौ (१३५) च सुभुवौ इत्यादि । सुलू-चौ (१३६) च मुली इत्यादि । इन्नाड इड्ड्येबमाया गश्चर्यान्ने स्त्रिदशौकसानिति, खलपू: स्थादडक्र. (खलं चलरं पुनाति मार्जयित) इति चामर: । कटपू: पुंसि राचसे, विद्याधरे महादेवे तथा स्थादचदेवने इति मेदिनो । इति जदना: ।

ण घाट-चि (१२०,१२६) = घाता । निरवकाश्रतादारी सेर्डाटिखोपय, चतएव (१०२) गुणस्यामसङः । धी हे घाट-चि (१०२,१४२,१०२) = घातः । घाटणस्य-साम्यात् नशुदयः (१८०) टनना एव। तथाच — नप्ता च होता गहितोऽय पीता, चताय

पिता माता नमान्दा ना सव्येष्ट्रसाहयातरः। जामाता दुहिता देवा न हनन्ता इमे दग्र॥ *

१८३ | घावखसृहणोः । (घो ७), प बस्टवणीः ६॥)। घी पर ऋकारस्य णः स्थात् नत् स्वस्टवणीः । १ पितरी पितरः, पितरं पितरी । श्रेषं धालवत् । पवं जामालस्थात्रादयः।

१८८। नुर्वा नामि म्न:।

(तु: ६।, वा ।१।, नामि ७।, र्घः १।)।

नृगन्स्य नामि परतो र्घः स्थात् वा। नृणां नृणाम्। कं श्रेषं पित्वत्। §

नेष्टा तरन् प्रमासा । भाषाय प्रसा च तननातुस्थाः, ष्रष्टिति भव्दाः खलु इडिभानः ॥ एते ष्रष्टभ्ष्दाः पौनादिषु रुढाः, नम हु पूचर निग्पन-भास भास ग्रंम, एतेथ्यो धातुग्यः तन्मव्ययेन स्वती निपातनाच सिद्धाः । एवं यावतीयतननाः धात्यभ्द्वत् ज्ञेयाः । पारियनिः ﴿।४।११ ।

मात्र अस्ति जननीयाचनः, परिमाणवाचनः वे त्वनः एव, तेन धान्यस्य मातारी प्रवाति । सब्बेष्ट्र प्रवामपार्श्वीस्थितवीरे व्हः टवर्गहितीयवान् । यातृ शब्दः स्वामिक्षातृक्ष्वीवाचनः, चन्यत्र तृननः, तेन तीयस्य यातारी प्रवाती । ननान्दृ सब्बेष्ट् दृ देवश्रव्दाः न तृनन्तत्र प्रतीयमानाः किन्तु तृनन्तलेन निपातनात् सिद्धाः । चत एते द्रश्र शब्दः वस्तुतः तृनन्ता प्रतियमने न तृनन्ताः, तृनन्तकार्यो (१२८) घौ व्रिरिखनेन विश्वं न मजने इत्ययंः, (१४२) घो यायसस्य इत्यनेन गुणं लभने इति यावत् ।

[†] पाणिनिः ७।३।११०।

[‡] नामौति सुख्यगौषसाधारणार्यं, तेन पतिनृषाम् पतितृषानिति । दृषाम् --(११०,१०७) नृषां, वा वृषाम् । पाषिनिः ६।४।६ । द्रति ऋदनाः ।

इस्टलस्थ, लटलस्थं, लटलस्थ, एटलस्थ च क्यं वीपदेवेन विरलप्रचारतात् न
 पदिमानाः
 पदि

१८५ । चोरो घो । (भो: ६१, भो १११, घो ०)। चोकारस्य स्रोकारः स्यात् घो परे। गी: गावी गाव: । अ

, १८६ | स्वा सम्मासीः । (भारा, भन-भनी: ०।) ।

श्रीकारस्य श्राकारः स्थात् श्रमि श्रमि च परे। पं गां मावी माः, गवा गोभ्याम् इत्यादि । (१२४) इन्स्वेङो लोग इति, मोः गोः । ॥

१४७। रेरास्मि। (रै।रा, सारा, स्मि का)।

रैशब्दो रा स्थात् से भे प परे । §

राः रायौ रायः, राभ्यामित्यादि । प

ग्ली: ग्लावी ग्लाव: इत्यादि ।

इति अजन्त पंचिक्व पादः।

क पाणिनि: शशह ।

[†] अप्रचादी, भीकारस्य चा स्थात् दिलीयाया चकारेपरेद्रतियन कतंतत् स्प्रप्टार्थम्। पाणिकि: ६।१।८३।

[‡] इति भी इन्ताः।

श्रीणलेऽपि, तेन क्रीवेऽपि सुराश्यां सुरासु इति । (१६०) क्रीवे स्तः इति इस्बेऽपि
 एक्रदेशविकतसनस्यत् भवतीति न्वायात् रा अपनेशः । पाणिनिः अरिष्धः ।

ण इति ऐदनाः।

[॥] इति भौदनाः।

३य पाद:-- त्रजस्त स्त्रीलिङ्ग ग्रव्हः।

१8८ । चाबीब्भसात् सेर्लीप:।

(भाप-र्यूप-इसात् ४।, से: ६।, खीप: १।)।

चाप देपो इसाच परस्य मेलींपे: स्थात्। उमा। * '

१८१ यौराप: । (ई ।१।, भो: १।, भाष: ४।) । भाष: पर भौरी स्थात् । उमे उमाः । क

१५० | घिटौस्ये: । (धिटा मीसि श, एः शं)। श्राप एः स्वात् धी टीसीय परतः । हे उमे । उमाम् उमे उमाः, उमया उमाभ्याम् उमाभिः । क्र

१५१ | डिन्तां यम् । (डिनां ६॥, वस ११)। भाषः परेषां डिनां यम् स्थात्, म इत्। छमायै छमाभ्याम् जमाभ्यः, जमायाः छमाभ्याम् जमाभ्यः, जमायाः जमयोः जमा-

भ भाग् च ईग् च हम् च तखात्, त्वलाददल्लम्। (१८३) स्थानस्रोशिदिलमेन इसात् सेलॉपि सिन्ने भव हसी यहणं सिलीपानन्तरं तत्पूर्वकार्व्यनिर्वाहार्थे, स्थानस्यारादिलमेन लुपि तु (१५) लुपि न ससीलमेन पूर्वकार्व्यनिर्वधापितः स्थादिति। छं भिवंमीयते नपतीति माङ् लि अस्टे इति मा-धातीलंग्रव्य (८६०) छम इति सन्दात् स्थिग भागि छमा इति सन्दात् स्थापि छमा इति सप्ता । पाणिनिः १११६८।

[†] भौष्याने दीर्ष-ईकारकर्षं नरसी इति सिज्यर्थम् । चापी यहणान् ईप्-इसी-निवृत्तिः । उत्ता-भौ - जना-ई (२३) = उत्ते । उत्ता-नस् (२२) = उत्ताः । पाणिनिः शिश्यः।

[‡] विभक्तिविपरिचार्नेन पाप इति षठान्तमतुवर्त्तते । घौटौंधीय इत्युक्षयी: विशेषणाय इत्ती परच इति पदं(५११) तसन्तलेनीक्रम् । हे छना-सि (थि) (१४८,१५०)

नाम्। (१३७) न्याप्दीभ्यो क्डेरामिति। उमायाम्, उमयोः ष्ठमासु। एवं दुर्गामायास्त्रिकादयः। *

१५२ । स्तः स्यम् स्वयः । (वे:४।, स्वम्।११, स्तः ११, प ।१।)।

स्त्रेराथन्तात परेषां कितां स्यम प्यात्, पूर्वस्य च स्तः । 🕆 सर्वस्य सर्वस्याः सर्वस्याः सर्वस्याम्। श्रामि-सर्वासाम्। श्रीषम समावत्। एवं विश्वादय अर्वन्ताः । ह त्रपुरीत्यृत्ती:-श्रन्तरायै नगर्थै । § दितीयसे दितीयाये, दितीयस्थाः दितीयायाः, दितीयस्थां दितीयायाम्। येषुमुमावत्। एवं हतीया। श

⁻ उसे | उसा-चम (२२) = उसाम् । उमा-चौ (१४८,२३) = उसे । उमा-चस (२२) = उमर: । जमा:टा (१५०,१५) = जमया । पाणिनि: ०।३।१०५-१०६ ।

चाप पति पद्मस्यतिनान्वर्तनम्। चावलभन्दात् परेवां ङे-ङिनि कर-िक एषांस्थाने यस स्थात, सिस्वादादी। यदित अपकारान्त:। क्रितिय इति कारणे (१०६) टामिसिवादिना अथायादेशापत्ति: स्यादिति। उमा-छे = उमा-य-ए (२३) = उसायै । एवं ङक्तिङमी: जमा य-चस् (२२) - उमाया:। उमा-चीस् (१५०,३५) = उमगी: | उमा भाम (११०) = उमानाम् । उमा हिः (१३०, १५१, २२) = उमा-याम् । विशेषविधिवहिर्भताः दुर्गामाया भन्तिकादयः सर्व्वे भावन्तशब्दाः एवभित्यर्थः । पाचिनि: ७।३।११३।

[🕆] पावर्मसर्भनामग्रब्दात् परेवां कितां खाने खन खात, मिखादादी, सम: पूर्व-स्थितस्य दीर्घस्य क्रस्वयः। यदापि उध्यम् इति कृते स्वयति न वक्षस्यं स्थान्, तथापि असी इत्यादि साधने सक्तारपर्वाभावे (२०६) मध्य इत्यस्याप्रवृत्तिः स्यात्। पाणिनिः ७।३।११४। ‡ सर्वा-डे = सर्व सा-ए (२३) = मर्वसी। मर्वा-डिस (२२) = सर्वसाः, एवं क्षस परे । सर्व्वा-डि (१३७) सर्व-सान् (२२) = सर्वस्थान् । सर्व्वा-बान् (११३) 🖚 सर्व्यासाम् । एवं विश्वा, चादिपदेन यानतीयावलाः सर्व्यनामश्रस्टाय एवं श्रीयाः ।

 ⁽८६) समीऽत्लचे इत्यात पुरिमिन्ने विद्योगि आर्थे अन्तरशब्दस्य सिसंजाविधान।त— भूत्राये (वहिस्थिताये नगर्ये पर्ये जलर्भ) इत्यत्र न सिमंज्ञा, भूतएव समाभ्रस्यत् ।

[¶] दितीया-के (८०) वा सिसंघायां-- दितीयसे दितीयाये दत्यादि। पाणिनि 0 218 8x 1

१५३। सुम्बू दी द्याजम्बार्थानां धी खः।

(सुभूदी: दिश्वच् श्रम्बार्शां रा, धी ६।, खः १।)।

सुभ्वो या दाजग्वार्थांनाच स्वः स्वात् धी परे। हे प्रम्म। शिषसुभावत्। एवमकात्तादयः।

द्वाच: निं, हे श्रम्बाले, हे श्रम्बिने । *

जरा∣ (११५) जरस् ∙जराचि तु। जरसौ। केचिदादा-वीलामिच्छन्ति। जरसीजरे। 🕆 जरसः जराः इत्यादि। (११६) पाददन्तिति, नासिका एतेना नियानां नस-एत्-निय:। नसः नसा नोभ्यामित्यादि । एतः एता एद्भग्रामित्यादि ।

निम: निमा ।

१५४। श क्राज भाज यज वज स्ज स्ज स्ज वस्र भस्जां प्रङ्भौ। (ग—सम्जां रण, पङ्।रा, भौ ण)। मान्तानां क्वान्तानां राजादेश षङ् स्थात् भी परे । 🕸

^{*} डी चची येवां ते दाच:, बन्दा अनशी चर्ची येवां ते चन्दार्थाः, दानस ते पनार्थावित दानमार्थाः, सुभ्य दी व दानमार्थाव ते तेवाम्। वादिशाहवर्धात् सुभ-अन्दः स्त्रीक्षिक एय, पंति तु हे सुभूदेंवदत्त दति अनदीयरः। अनीवे तु (१६७, १२१) हे सुभी सुख इति। सभूगव्यस्य नदीसंजकगव्यस्य विस्वरयुक्तमात्वाचकश्रव्यस्य व वी परेख: स्थात्। साहवाचकल् मुख्यएव याद्य:, तेक हे गौरि, हे पत्ने इत्यादि। एवम् पका, पत्ना, पादिशब्दान् पत्ता पप्पाप्रस्तयः । हे प्रस्थालासि (धि) (१४८, १५०) - भन्वाचे इत्यादि। पाणिनिः ७।३१०७। ई सुभूः इति धिद्धान्तकौसुदी कातत्त्राचा । हेसुस्इति सीपद्माजीनराचा

[🕇] झरा-ची (१४६, ११५) = जरसी, वा जग ची (१४८,२३) = जरे।

[‡] प्रयुक्त चराभ चरैल्यादि दर्वतं शाम्। एवां दशाना वङ्क्षात् भौ (८४) परि --- (चङ्गपकरणे इस्विरास्थीः, धातुप्रकरणे भस्विरास्थीरित्यर्थः । पाणिनिः पार्विद्

१५५। जो ड: फो । (क दा, क रा, क ०)।

षस्य ड: स्थात् के परे। निड्म्याम् इत्यादि। पत्ते वी च उमावत्। #

गोपा, विम्बपावत्। 🌵

मित हैरिवत्, स्त्रीलात् न ग्रम् न, न टा ना । मतीः मला । क

१५६। द्या ङितासस् । (वाः ११, जिता ६॥, घन ११)। द्याः परेषां जितासम् स्थातः म इत्। सत्यै सत्ये, सत्याः सतेः, सत्याः मतौ। एवं श्रुति-सृति-बुद्यादयः। §

१५७। स्त्रियां निचतुरोस्तिस्चतस् ऋ वत् क्तौ । (ख्रियां अ, निचतुरो: ६॥, तिस-चतस ।१।, ऋवत् ।१।, क्ती अ)।

भे दित (८५) स्वादीय-इसे विरासे च बीध्यम् । (६४) भाषभसीरियनेन षस्थाने साम्यात् छे भवव्यपि, निशास्थर-सुपि निट्सु द्रव्यायधंनेतत् मूचकद्रणम् । निशास्थाम् (११६) = निश्-स्थाम् (१५५) = निश्-स्थाम् (१५५) = निश्-स्थाम् । निश्च घाटेशस्य विकल्पपचे, घो परे च निशास्थरः उत्तरा पाणिनिः ८।४।५३।

[🕆] गांप्रथियों पातीति किपि (१०३२) गोपाशब्दः विश्वपाशब्दवत् । इत्यादन्ताः।

[‡] मतिर्बुतिः, इरिज्ञव्दवत्, किन्तु स्त्रीलिङस्य विशेषविधिनिषेषौ भवत एव । (१०५, १९३) एतत् सूचकार्थवयं [अन्स्याने न, टास्याने नाच] न स्नाहित्यर्थः। नित्यस् (१०इ, १०४) = मतीः। मतिन्टा (३५) = मत्या।

[§] जितां स्थाने विकानात् भमः विभिक्तसम्बन्धित्वम्, भत्तएव स्तियै इत्यादौ स्थादौ स्थापि परे (१६५) घीरियुवचीति इयादेशः । मित-जिः स्थः ८.८. मदौसंजायो मित-भ-ए (१५, २१) = मत्ये । मदी-किस्यः मित-ए (१२२, १६) = मत्ये । मित-किसि (वा कस्य) = मित-भ-भस् (१५,२२,१०२) = मत्याः, वा नदौसंजायां (१२४,१२४,१०२) = मतिः। मित-जिः (११७, १६५) = मत्योः, वा नदौसंजायां (१२५,१२४,१०२) = मतीः। मित-जिः (११७,१६५) मत्योः, वा नदौसंजायां (१२५,१२४) = मतीः। यावतीयां प्रायानाः (११४०) भित्ये च इकारानस्त्री विक्रशस्त्रः एवं भ्रेयाः। याविनिः श्राहर् ११॥६।

विचत्रोः स्त्रीलिङ्गे क्रमात् तिस्चतस्त्री स्तः क्ती परे । ती च ऋवत्, तेन न एविर्घाः । तिस्नः तिस्नः तिस्नभिः तिस्रभ्यः तिस्रभ्यः तिस्रणां तिस्रषु । *

टिरली सत्याप्। दे दे दाभ्यां दाभ्यां दाभ्यां दयी: ्र्

गौरी गौर्यों गौर्यः, हे गौरि,,गौरीं गौर्यों गौरीः, गौर्या गौरीभ्यां गौरीभिः।

(१५६) बाङितामम्। गौर्यै गौरीभ्यां गौरीभ्यः, गौर्याः

भव प्रकरणवलात् स्त्रियां प्राप्ती स्त्रियां मिति यहणं, यच विचतुरोर्न स्त्रियां वृत्तिः ततः क्रतस्मासे स्त्रियां वृत्तावित न न तिस्त्र वित्र वृत्ति स्त्रियां वृत्ती ति प्रविव्यास्त्र याः सा प्रियचिरिति मितवत्। प्राक् स्त्रियां वृत्ती प्रधात् क्रतसम्मसे सञ्जेलिङ्ग-वर्षिनीरित तथीः तिस्त्र क्रतस्मि भवत एव, तेन प्रियासिसी स्रक्ष सः (१२०) प्रियतिस्त्र क्रति पद्वा क्रतिदित् प्रियतिस्त्र क्रति पद्वा क्रियतिस्त्र क्रति प्रयत्तिस्त्र क्रति पद्वा क्रियस्त्र । प्रियची व्यामिति क्रियच्यां क्रियच्यां मिति वृक्तमत्त्र हित स्वी वितः। विभिन्न क्रति वृत्ति क्रति वृत्ति स्वा वृत्ति स्वा वृत्ति स्व वृत्ति त्र क्रति वृत्ति स्व व

^{*} तिस्वतस् रित समाहारः । स्त्रीलिकं वर्षिनः विश्वस्य तिस् स्वात्, चतुर-शब्दस्य चतस्य स्वात् कौ परे । तौ चादेशौ दीर्धक्षदन्ततुल्यौ, दीर्धतुल्यकयमात् इस्व-स्थानं नायमानाः एतियोः [(१४३) घावसस्त्वणीरिति मुणः, (१२८) घौ तिरिति हन्धिः, (१०४) शम्नाभि र्घरित दीर्थः] न स्यु, भन्यम् स्थादेव, तेन तिस्यणाभिति इस्वात् तुम्। (१०३) शमीऽकारलोपाभावनु—णय तिस् र्घस भय रति विग्रहे एतियोः रस्वनेन भकारकार्थस्यापि निवेधात् त्रेय रति।

^{† (}१२३) त्यदां टेर: जो इति टेरकार व इति ककारानात् (२४८) स्त्रियामतः इति काप् भवति, ततः द्वा इति ग्रब्टस्य जमायन्दवत् रूपम्। दा-कौ (१४८,२३) -- देः दा-को स्(१५०,२५) -- द्वीः । इति इदनाः।

गौरीभ्यां गौरीभ्यः, गौर्य्याः गौर्योः गौरीणां, गौर्यां गौर्योः गौरीषु । एवं वाणी-काली-नद्यादयः । अ

सद्ध्यीः। श्रनीवस्तत्वात् न सिस्तीपः। ग्रेषं गौरीवत्। एवं अप्वी-तन्त्यादयः। १० ,स्त्री,∙हेस्ति। ३३

१५८। स्ती मर्घ: । (म्बोनस, मृत्रा, घः रा) स् स्त्रीयब्दो सूयब्द्य धसंज्ञः स्वात्। § (१३५) धारियुवचि । स्त्रियौ स्त्रियः ।

१५८ | स्ती वाम्श्रसी: | (स्ती ।रा, वा रा, भन मनी: आ)। प्रति विश्व स्ती वा स्थात अभि श्रिष च परे। श्रि स्तियों स्तियों

^{*} गीरो-सि(१४८) = गीरो । गीरो-भी(१५) = गीव्यों द्रष्णादि । हे गोरो-सि (पि) (८६) यूत् स्थेवदीत नदीसंज्ञार्या (१४८,१५२) = गीरि । गोरी भन् (१०२) = गीरीम् । एवं ज्ञस्विसक्षी गीरोः । भादिना विशेवसिद्धा यावतीया द्वन्तप्रस्दाः एवं क्षेयाः ।

[†] खणीरिति पदं खण का कुर्यमें इति धातीः भीषादिक मीप्रययेन सिकं, नलीः धनम्। भतएव (१४८) न सिलंपः। एवं, भव तस्त द धातुभ्यः भीषादिक इं प्रययेन भनीः तन्ती. तरीरिति तन्तीसकारमध्यः, आदिप्दन यो को धी भी प्रभतीनां क्षित्रनामपि ग्रहणम्। तथाच — भवी तन्ती तरी लच्ची श्री को धी भ्यादि श्रव्दतः, भशीवन्तत्या सेनं कोपी गोर्थ्य न क्रस्ता इति। भीभरासु प्रयपपीः वहुयभीरित्यु भयस्वाच पठन्ति।

[‡] स्त्री-सि(१४८) = स्त्री। ई स्त्री सि(धि)(१४८.[(८६) नदीसंश्रायां)१५१) = स्त्रि

[§] स्त्री भू शब्दयोरीट्तो-घांलवयवलाभावान्, (१३५) इयुवार्थ धसंज्ञाविधः नन् पाणिनि: (१४।०८।

ष स्त्रीग्रहणं भूनिवस्थर्थम् ।

स्तीभ्यां स्त्रीभ्यः, स्त्रियाः स्त्रीभ्यां स्त्रीभ्यः, स्त्रियाः स्त्रियोः स्त्रीणां, स्त्रियां स्त्रियोः स्त्रीषु । *

स्री: त्रियी त्रिय: । हे त्री: । डिल्यामि च भेद: । त्रिये त्रिये, त्रिया: त्रिय: त्रि

सुध्यादयः पुंवत्। सुष्ठु धीः, प्रंकष्टा धीरिति नित्यस्तीले सुधीपध्यी सीलक्कीवता क्षः

धेनुर्मतिवत् साध्यः। धेनुः धेनृ धेनवः द्रत्यादि। §

अ स्तीश्रन्दात् भिमि श्रमि श सियं सियं: इति, भनेन स्तेण धातुमंत्रायाम् भादी (१६५) द्रयादेशे प्यादीवल्लाभावात् (१०६) भन्मभूमेशिदिलापो न स्वात् ; धुसंज्ञानिकल्पचेतु (१०६) स्त्रों स्त्रीरिति । भे उपि इम् डि विभक्तितृ स्त्रिशृ सियंयाः सियंयाः सियंयाः सियंगम् एतेषु (८८) स्त्रीयुष कितोत्यत्र स्त्रीश्रन्दवर्जनात् (८६) भित्रकृतीसंत्राधाम् भादी (१५६) द्याजितामम्, (१६०) करिशम च, प्यात् द्रयादेशः । भागविभन्नौ स्त्रीणामित्यत्त (८६) वामीति त्ते स्त्रीशस्ट्वर्जनात् (८६) नियानदीसंशायाम्, भागमविध्वंत्वत्रचादादी (११०) तुम्, भतएव भच्परताभागात् न द्रयादेशः । "स्त्रियमितिकालः भतिस्तः । हे भतिस्तं।" इति सिद्धालकौमुदी । पाणिनः ६।४।८०।

⁺ ई श्रीरित (८०) नास्तीयुव इति नदीसंज्ञानिवेधात (१५२) न क्रस्तः । जिति भामि च भेदः स्वीवन्दात् विशेष इत्ययं , (८८) स्वीयुच जितीत (८८) वामीति मुचाभ्यां नदीसंज्ञाविकत्यनात् रूपदयिमिति यावत् । श्री-ज्ञे (८८, १५६, १२५. '२२) = श्रिये, वा (१३५) श्रियं । श्री भाम् (८८, १९०, १००) = श्रीषां, वा (१३५) श्रियाम् । श्री-ज्ञि (८८, १३०, १३५) = श्रियां, वा (१३५) श्रिया ।

[‡] सु भोभना धीर्यस्याः यस्य वा इति बहुवोहौ सुधीशब्दस्य स्वीलिङ्गपुंलिङ्गयोरिका-६ पतया नित्यस्वीताभावेन नदीमं ज्ञाभावात् स्वीलिङ्गविहितकार्याभावे पुंवदित्ययः. भादिशब्दात् सुर्यो-यवकी प्रध्यादयः। शोभना चासौ धीर्यति सुधीः, प्रक्रष्टा चासौ धीर्यति प्रधीरिति कस्यंधारयसमासे तु नित्यस्वीत्वाबदीमं ज्ञायां सुधी-प्रध्यो कमात् भी-धचीवत्। सुधीशब्दः इयस्यानित्वेन ङिति भामि च (८१, १८०) वा नदीसं ज्ञायां भी-पन्दवत्, प्रधीशब्दस् नित्यस्वीत्वेन (८६) नित्यं नदीस ज्ञायां लच्चीशब्दवदित्यर्थः। इतीदन्ताः।

[§] इति खदलाः ।

वधू गौरीवत्। वधूः वध्वी वध्वः इत्यादि । एवं चसूतन्वादयः। *
भूः श्रीवत् । भूः भुवी भुवः इत्यादि । सभूः हे सभु । पं
प्रमर्भः सल्वत् । क्ष्मः पंवत् । क्ष
खसा धात्वत् । माता पित्वत् । प
स्रीः पंवत् । क्ष
स्राः पंवत् । **
नीः ग्लीवत् । पंपः

इति अजन स्तीलिङ पाद:।

तन्त्रस्टः (२०६) जवनापचे वधूवत्, चनूबनापचे धेनुविद्यार्थः ।

[†] भूषी (१५८, १३५) = भुवी कलादि। हे सुभूधि (१५३, १०३) = सुभु। सिन्नपातलकाणी विधिरनिभिक्तं तिविदातस्थिति न्यायेन धिसन्निपातनिती क्रस्वविधि-धिस्त्रीपनिभिक्तं न भवतीत्यतः सुभुवित पदं विसर्गानिभित्तं केषित्। हे सुभूविति तु पाणिनीयाः (१५३ सुत्रस्त टीका द्रष्टस्या)।

[‡] पुनर्भूबन्दस्य (१३६) कव्यादीति वकारप्राप्ताा सुल्बास्टेन साम्यंन तुसर्वेक्षैः, तेनास्य नित्यस्त्रीलात् दीतंत्रायां सर्व्यत्र वधूबन्दवदेव । एवं टन्भूवर्षास् काराभूषां कपम्।

[§] सुभूषव्यस्य नित्यस्त्रीताभावेन दीसंज्ञाभावादित्यर्थः । इति कदन्ताः ।

[¶] घाटवदिति (१२८) बिजियामा, पिटवदिति (१४३) गुणपाताा, साम्यं, न तु सम्बेदपै:, तेन मसि सम्: मात्रिति च । इति ऋदना:।

[∥] इति चीदनाः।

सुधीसभी रा: घनं यस्ता इति विग्रष्टे सुरैग्रव्ही रैग्रव्हवदिवर्थः। इति ऐदन्ताः।
 क्षेत्रकाः।

४ घे पादः — प्रजन्त क्षीव लिक्न ग्रन्दः ।

१६०। सीवात् खमोऽधमीऽतः।

(क्लीवात् ५), सि चम: ६।, चधे: ६।, म: १।, चब: ५।)।

चकारान्तात् नपुंसकात् परस्याधेः सेरमस मः स्थात्। * जानं, हे जान।

१६१ | स्तीवाद्यौ: । (क्षीवान ४१, ई १११, भी: ११)। स्तिवात् पर भीरी स्थात्। ज्ञाने। 🕆 .

१६२। जस्मसो: ग्रि:। (जस्मसो: ६॥, मि: १॥)। क्षीवात् परस्य जसः ससय ग्रिः स्थात्, स्र इत्। क्षः

१६३। नुस्यमादी असम्तरलादी तुवा।

(तुण्।१।, भग्रमादी अ, भग्ननरलादी अ, तु।१।, वा।१।)।

^{# (}१०६) खदीभ्यानिकामेन चन चादिलोपे कते सिक्वेऽपि चमः स्थाने मित्रधानं (१६८) स्थमीर्जुगित्यनेन खदीभ्यानित्यस्य वाधितलात् लुगापत्तिवारकार्यम् । ज्ञाननित्यच नकारस्य विभन्न्यायदयविभन्नलात् (१०८) चा क्रिमभदीत्यनेन न.चाः पाणिनिः ७१।२४।

[†] अञ्च पुन: क्लीवादित्युपादानं सामान्यार्थम्, तेन सर्व्यक्षात् क्लीवात् भीकार ई. स्थादित्यर्थ:। ज्ञान-भी=ज्ञान-ई. (२३) = ज्ञाने। पाणिनि: ७।१।१९८।

[‡] शित्करणं विशेषचापनार्थम्, इ इति क्रते सप्तस्येकवचनभ्रमी जायते, (१८८)
मधौ सौ मं इत्यादिषु विशेषकरणं कष्टकरश्च स्थात्। कृति पश्च चष्ट फलानि
इत्यादिषु (१३१) लिङ्गविङ्गिकार्यनिवेधात् न शि:। गौर्णतु चितकतौनि चितपस्थानि
स्वादी स्थादेव। पाणिनि: ७११२०।

क्लीवस्य भी परे तुष् स्वात्, ने तु यमादी, स्वसन्तरसयीरादी तु वा स्यात्। *

१६४। नसवमचन्त्रोऽघो घोऽघो घो।

(नस् चप्-सइत-न: १।, चधी: ६।, र्घ: १।, चधी ७।, घी ०।)।

नसन्तस्य आपो महतो नान्तस्य च धुवर्जस्य घी: स्यात् अधी घी परे। ज्ञानानि । ही प्रीवत् । , शेषं रामवत् । एवं वन-धन-फलादयः । प

१६५। तोऽन्यादेमीऽनेकतरात्।

(तः १।, अन्यादेः ५।, मः ६।, अनेकतरात् ५।) ।

भन्यादेः परस्य स्थमोर्भस्य तः स्थात् न लेकतरात् परस्य ।

^{*} यह प्रवाहारः, यमखादिः यमादिः, न यमादि-रयमादिक्षधिन् । कस् भने ययोषी भसनी, भसनी च ती रखी चेति भसन्तरखी तथीरादिक्षधिन् । तुणी ण इत् भनेशांचः परः (१७) । उकारैत् चिज्ञांथः, न तु [नृ] विन्दुमावितित वच्यति (२४२) । तुणः प्रकृतिभाजितात् ज्ञानानि इत्यादी नान्ततात् (१६४) दीर्षः । चलारि, प्रशामि इत्यादी यमादी कर्षञ्चेन न तृण् । भव नुष्यमः इति यमन्तस्येव निष्धे कृते स्वभ् श्रन्दस्य जिस स्विभृ जलानि इत्यादी यमन्ततात् नुणोऽप्रसङः स्वात् । पाणिनिः १।१।४२, ७।१।०२।

[†] नस् च घप् च सहाय न च समाहार तस्य । न्स्भागानास घप्रव्यस महत् शब्दस्य नान्तस्य च कान्यस्वरस्य दीवाँ भवित धिभिन्ने घो परे, न तृ धातीः नस्-भागानास्य नान्तस्य च इत्यदेः । यथा—विहान् चापः महान् । न इति नान्तिस्त्रस्य यंहणं, यथा राजा इत्यादि । ज्ञांनानीत्यादी नृषो लिङ्गभाजिलात् नान्तस्य । पचन् इत्यादी तु नकारस्य लिङ्गभाजिलेऽपि लिङ्गभध्यविहितलात् न नान्तस्य । चंधी किं, हे विहन् इत्यादि । पूर्वतः श्रेरतृत्ताविष घौ-क्यगं सर्वे लिङ्गेषु दीर्घाष्ट्र । ज्ञान जस् (१६९,१६३,१६४) = ज्ञांनानि । हितौया प्रथमावत् । श्रेषं प्रथमादिकीया-भिन्नं रामश्रस्यत् । यावतीय कौवलिङ्ग-चन्नारान्त्रस्याः एविनत्यषः । पाक्षितिः ६ ४।८,१०,१९।

षन्यत् प्रन्ये प्रन्यानि । हे प्रन्य । प्रमृद्धादत् । प्रेमं संवत् । क एवमन्यतराद्यः । प्रनेकतरात् किम्—एकतरम् ।

१६६। जरातोऽम् वा । (वरातः ४।, वन् ।१।, वा ।१।)।

जराग्रव्हात् परस्य स्थमोर्मस्य त्रम् स्थात् वा। त्रजरसम् त्रजरम्, त्रजरसी त्रजरे, त्रजरांसि त्रजराणि । पुन-स्तदत्। शिषं पुवत्। १

(११६) पाददलीति शीर्षहृदयोदकासनानां शीर्षनृहृदुद्-नासनः। शीर्षाण शीर्षा शीर्षभ्यामित्यादि। के हृन्दि हृदा हृद्गामित्यादि। उदानि उद्गा उद्भ्यामित्यादि। श्रासानि श्रासा श्रासभ्यामित्यादि। पत्रे शेषे त्र श्रामवत।

अ प्रकरणबलात् स्थमी: स्थाने जातस्य मकारस्य तकारी भवतीति, तेन पुंखिङ्के व्यक्ति घन्यसिति । अन्यतसस्य अन्यादिलाभावात् अन्यतमसित्येव । अन्य-सि (१६०, १६५) च अन्यत् । पाणिनि: ०।१।२५ । एकतरात् प्रतिषेधी वक्कस्य दक्षि वार्तिकङ्काः।

[†] क्रीवेऽिप जरायहणात् श्रव्हानरेण प्राप्तसमासात् जरायव्द।दिव्यर्थः । नार्सि जरा यस्य तत् अजरम् । अजर-सि (१६०, १६६, ११५) = अजरसम् । जरसादेशाभाव-पर्व (१०३) स्वदीस्यामित्यनेन अस आदिलीपे अजरम् । अमीऽभावपचि च अजरिति । अप असी नित्यत्वेऽपीएसिजी वायहणं व्यवस्थाये, व्यवस्था च — वितीयेकवचने असि अलरङ्काद-वलवतीऽिप जरसादेशात् पृत्वेम् असः स्थाने (१६०) सकारः स्थान्, प्रयादनेन असि असः स्थितिरिति ; अव्यथा आदौ जरसादेशे (१६०) सकारः स्थान्, प्रयादनेन असि असः स्थादिति । अजर-प्रे (१६१, ११५) = अजरसी, पर्चे (१६) = अजरे । अजर-जम् (१६२,११६, १६३, १६४, ५०) = अजरासि, पर्चे अवरासि । पाणिनिस्रते सिवातविरिधावया न जरस्, अजरम् ; परलात् जरिस क्रिते सिवातविरिधावया न स्थान् (ससी) लुक्, अजरसम् ।

[‡] शीर्ष-श्रस् (१६२,११६,१६४,१०७) = श्रीर्वाण । शीर्ष-टा (११६, ११७, १००) = श्रीर्था, श्रीर्थ-स्याम् (११६,११८) = श्रीर्थ-स्याम् (११६,११८) = श्रीर्थ-स्या । द्रत्यदन्ताः ।

्र १६७। क्रीय ख:। (क्रीव क, ख: ए)।

क्रीवि र्घसः स्थात्। श्रीपं, शानवत्। अ

१६८। स्त्रमोर्जुक्। (चि-मनी: ६॥, जुक्।रा)। कीवात् परयोः स्त्रमोर्जुक् स्थातः। वं वारि।

१६८। नुस्यिकोऽचानाम।

(तुष ।१।, इत् : ६।, भवि अ, भनामि अ)।

इगन्तस्य क्रीवस्य नुण् स्थात् अचि परे, न त्वामि । वारिणी वारीणि । क्षः '

१७० । सुर्धी वा । (णः ११, घी २०, वा ११) । इगनास्य क्रीवस्य सुर्वास्थात् घी परे । हे वारे हे वारि । §

अधिन विधिसदलक्षेति न्यायात् क्रीविलिङ्गधन्दस्य चनदीर्घस्य इन्छ: स्थात्, निमित्ता-निरायेषा नालीसर्थः । स्थियं पातीति शीषा, क्षीविलिङ्गवित्तिंतात् इन्छे शीपमिति । पाणिनि: ११२/४० । इत्यादन्ताः ।

^{† (}१६०) चकारान्तकीवान् स्थमी मं-विधानंत स्थन सकारान्तिभन्नान् क्रीवाव्धित कीध्यम्। लुक्करणेन (८३) लुकि न तत्रेति निवेधान् तिधान् परेतन् किन्द्रसादौ न (१३३) टेरः। विरामविदितन्तु स्थादेव, यथा पयः इविः इत्यादि। पाणिनिः ०।१।२६।

[‡] अब येन केनापि प्रकारेण इगलसापि यहणं, तेन प्रयानी सुननी सुरिजी इसादि सिखम्। तथी पिष्कात् (१०) धन्यायः परः। स्थाने जातस्य प्रक्तिभाजि-लात् वारीजि इत्यादी नाललात् (१६४) दीर्घः। धनानीति घाम्भिन्ने स्थादीये षचि परे इत्यर्थः, तेन वारीदानित्यादी न स्थात्। वारि भी (१६१, १६८, १००) = वारिणी। वारि-जम् (१६२, १६८, १६४, १००) = वारीजि। पाणिनिः ०।१।०६।

हु है कारे इत्यादी समीर्जुगित सेक्षित (८२) ज्ञांक न तनिति निवेधान (१२२) स्थित स्थित स्थानम् । इंडापि येन केनापि इशनस्य सहस्रतिन हे प्रयो है प्रयु इत्यादि।

वारिणी वारीणि, वारिणा वारिणे वारिणः वारिणः वारिणोः वारीणाम् । *

वारिणि वारिणोः । इसे इरिवत्।

१७१। पुंबदार्थीतापुंस्कं टाद्यचि।

(पुंबत्। १।, वा। १।, भृथीं त्रापुस्तं १।, टार्याच ७।)।

इगन्तं क्लीवम् ऋर्षेन प्रोक्तं पुंवत् वा स्थात् टाद्यचि । अपनादये अपनादिने इत्यादि । भ्रेषं वारिवत् । अर्थेन किं, पीलुने फलाय । १०

१७२। दधस्यसमयच्योतन्डः।

(दिधि ऋस्थि-सक्थि- भक्ताः ६।, भनङ् ।१।)।

एषामनङ् स्थात् टाद्यचि, श्रङावितौ ।

(११७) अनीऽक्षोप:। दभादभेदभः दभः दभोः दभादिभि दभनिदभोः। भेषं वारिवत्। एवम् अस्यि सक्यि अस्ति। क्ष

^{*} वारि-भान् (११०,१०४, १००) = वारीणान्।

[†] पुनानित्र पुंतत्। भ्रायेन एकार्येन उक्तः पुनान् येन तत् भ्यांकपुंस्तम्। तदुक्तम्—
एक एव हि यः श्रन्तः पुंति क्रांवे च वर्षते । एक नेत्रायेना व्याति उक्तपुंस्तः स उच्यते ॥
यथा, नाति भादिर्थस्य तत् भनादि क्रावम् भादिर हितमित्ययः, एवं भनादिः पृष्वः
भादिर हित इत्ययः, भतएव भनादिशब्दः एक। योक्तपुंस्तः। एकार्येन किं पौजुने
फलाय, पौजुशब्दः फलव। चिले क्रीविलिङः, इच्याविले पुंतिङः इति न एकार्येन
उभयिकङ्गतः। भनादि छे (पुंतहावे, १९९,३५) — भनाद्यः। पुंतहाविक स्वपि ।
(१६८) — भनादिने। एवं कटवे कटने इत्यादि। पाणिनिः २।१।०४।

[‡] दिध च ऋस्य च सक्ष्य च षाति च समादारि तस्य । (१०) कि खादन्यस्य स्थानी । गौषेऽप्ययमादेशः, तेन पौतदक्षा पुरुषेण, धृतास्य । श्रिवेन, पौतदर्भ स्त्रियै इत्यादि । षच दःयादीनां कड़ानामेन यहणं, तेन दधातीति (१११८) दिधः, श्रस्य दधये दिधिने श्रानाय इत्यच षनकुन स्थात् । दिधि टा = दधन्-षा (११०) च दभा इत्यादि । दक्षा-मित्यच षनरङ्गलादनकु, न षामः स्थाने नुम् । पाणिनिः ०।१।०५ । इति इदनाः ।

सुधि सुधिनी सुधीनि । इते सुधि है सुधि । दी प्रीवत्। सुधिया सुधिना द्रत्यादि । एवं प्रध्यादयः । *

मधु मधुनी मधूनि। है मधी हे मधु। ही प्रीवत्। मधुनु मधुभ्यामित्यादि। एवम् ऋम्बु-सान्वादयः। (११६) पाददन्तेति सुवा। स्तृनि सानूनि इत्यादि भेदः। गं

घात धात्रणी धातृणिं। धी—चे घातः के घातः। दी प्रीवत्। धात्रा धात्रणा इत्यादिं। एवं ज्ञात्र-कात्रीद्यः। ध

१९३ | एची युत् खम् । (एकः १॥, अत्।१।, खंश) । १ प्रद्युनी प्रद्यूनि । हे प्रद्यो हे प्रद्यु । ही प्रीवत्। प्रद्यवाः प्रद्युना इत्यादि । श सिर सरिणी सरीणि । हे सरे हे सरि । सराया सरिणा सराभ्यामित्यादि । ॥ सनु सनुनी सनूनि । हे सनी हे सनु । सनावा सनुना इत्यादि । ३०००

रति क्रीवलिक पादः। द्रति ग्रजन्ताध्यायः /

[ः] सुग्रीभना धीर्यस्थिति सुधि कुलाम् इत्यादीनामस्यक्तार्थेन उत्तर्युक्तस्यम् । एवं प्रध्यादयः। इति ईटिनाः ।

[†] इति चदनाः।

[‡] दधातौति धात कलम् अस्यायेकार्धेन चक्तपंस्तलम्। एवं जानातीति जात कुलम्, करोतीनि कर्नृ कलिस्यादि । सुधि, मध्, धात्र — श्रौ (१६१,१६८) — सुधीनी, मधुनी, धानृषी । सुधि, सध्, धानृ— जम (१६२,१६८,१६४) — सुधीनि, मधूनि, धानृषि । सम्बोधने (१७०) वा गुणः। टाप्रस्तिविभक्ती पुंवद्याविकल्यः। इति स्टदलाः

^{§ (}१६०) क्लीवेस्त इत्यादिभिः स्तं प्राप्तुक्त एको युदेव (इत्, चत्) अवन्तीर्थायः एकारस्य इत्स्वः कग्रुशत्वेन साम्यात् वकार एव जायकः, वतः एतत्त्वकरणाम् । पाणिनिः १।१।४८।

[¶] प्रक्रष्टाची: खर्गीयसान् तत् प्रद्युपण्यम् । अस्य पुंवहृवि गीशस्त्वत् । इति स्मीदनः ∥ शोभभी गाः धनं यस्य तन् सुरि कालम् । अस्य पुंवहावे रेशस्त्वत् । इति ऐदन्ताः । अक्ष शोभना नौर्वस्थ तत् सनु कालम् । अस्य पुंवहावे स्लीशस्त्वत् । इति सीदनाः ।

३य:। इसन्ताध्याय:।

१म पाद:--इसन्त पुंलिङ ग्रब्दः।

१७४। दिस्ताजचादी दि:।

(दिरता-नचारी १॥, दिः १।)।

क्ति दिल्य ब्हो जचा दिस दिसंजः स्थात्। *

१७५ | हो दो भौ। (इ: ६), द: १।, भौ ०।)।

इख ढः खात् भी परे। 🕆

(१४८) म्राबीब्भसात् सेर्लोपः। (६४) भप्भसीरिति चप्जबी वा। लिट् लिड् लिही लिहः, लिहं लिही लिहः, लिहा लिड्भ्या-मित्यादि।

१७६। हारेंब: । (दादे: ६।, घ: १।)।

इकारादेईस्य घः स्यात् भी परे। क

^{*} पूर्वे प्रयोजनाभावादनुकां संज्ञानाङ विकक्तितः विः (४८५) छक्तं यस्य स विकक्तः, सच जवादिय सौ विकक्तजवादी । जवादिय — जवितय दरिद्राति-यकान्तिः श्रास्तिरेव च । दीधौ वेशो च नागर्तिं-जंबादिः सप्तधातुभिः ॥ विसंज्ञाफलन्तु (१८२, २४३,५६३,६६०) एतेषु स्वेषु द्रष्टव्यम् । पाणिनिः ६।१।५,६ ।

[†] विकस्य धातीय इस ढ: स्वात् भी पर इत्यवः । पाणिनिः पाश्वशः

[‡] द भादिर्वेख स दादिलस्य। दादिशिति मन्द्रस्य धातीर्वा विश्वेषणं, वस्त्रैय मन्द्रस्य धातीर्वा भनस्थिती इकारः तस्त्रैय भादिस्थिती दकार इत्यमिप्रायः, तेन धुक् धुग्, धाक् धाग् इत्यादी स्यात्, दिधिलट् इत्यादी न कादित्ययः । पाणिनिः याशास्त्रः

१७७। भागतस्यादिजनां भभा: मे, घोसु सध्वेऽन्ते च।

(क्षमानस्य ६। पादिजवां ६॥ क्षभाः १॥ के २०, चीः ६। ,त । १। , सखे २०, प्रते २०, प्राते १।) । स्मभान्तस्यादी स्थितानां जुड़ानां स्मभाः स्युः के परे, घीसु सध्वे ग्रन्ते च ।

धुक् धुग् दुक्ती दुत्रः, दुत्तं दुन्ती दुन्नः, दुन्ता धुग्भ्यामित्यादि । क्ष

१७८ । मुइां चुङ्वाभौ।

(सुइं ६॥, घङ्।१।, वा।१।, भी ०।)।

मुहादीनां घड् वा स्थात् भी परे। सुक् सृग् सृट् सृड् सृही सृहः, सृहं सृही सृहः, सृहा सृग्भ्यां सृड्भ्यामित्यंदि।

एवं हुइ-सुइ-नग्र-सिइ: । १

^{*} भभः भने यस्य स भभानः तस्य भादी स्थिताः जवः तेषास्। तद्यसयं: — यस्य शब्दस्य धातीर्वा भने भभः, तस्यैव भादिस्थितानां ज उदगव इत्येतेषां स्थाने भभेष — — भ ढ घ घ भ इत्येते भवनि, श्रस्थ — भे (प्. , इसि विरामे च) परे, धातीसु — सभ्ये विरामे च परे इत्ययः। भव विश्रेषः — भादी जब् भने भभ्य भध्ये इस् वर्षस्य एकस्यरस्य च व्यवधानेऽपि भविष्यति न तु वहुस्वरस्यवधाने, तेन गर्द्यभाचिष्ट इति जौ किपि गर्द्यम् इत्यादौ न स्थात्। व्यध्यौ तार्इ इति धातीर्द्रन्यवकारत्वात् स्थाविन इत्यादाविष न प्रसङ्कः। जकारस्य भकारी न स्थादिनि जौभराः, तेन जभग्रन्दस्य जप्, जेह् अस्टस्य नेट् इति पटं भविष्यति (सीचतसारे सुवन्तवादस्य १४६ सूत्रं द्रष्टव्यम्)। दुइ-सि (१४८, १०६, १००, ६४) — धुक् धुग् इत्यादि। पाणिनः ८, २। ३०।

[†] सुद्दासिति बहबवनं गणार्थम् । गणय सुद्द दुह सुद्द नग्र सिद्ध दित्र। दुद्दमस्स्य सुद्दादिपाठवलात् पचे दी दी भावित्यनेन ढः, न तु दिद्धं दत्यनेन घः, तेन भुक् भुग् भुट् भुड् इति । सुद्ध-सि (१४८, १७८, ६४) — सुक् सैग्। पचे (१७५, ६४) — सुट सुद्ध। पाणिनिः ८,२।३३,६६ ।

१७८। वाहो वौ पौ खेतात्तु वा।

(वाइ: ६।, वा ११।, भी ।१।, भी ७।, श्वेतात ५।, तु ।१।, वा ।१।) ।

वाहो वा-प्रव्रस्य त्रीः स्थात् पी परे, खेतवाहसुवा। विस्तीहः विस्तीहा द्रत्यादि। , प्रेषं विड्वत्। *

१८०। ऋनादूः। (मनात् ५१, कः ११)।

श्रानवर्णात् परी वाही वा ऊः स्थात् पौ परे। भूहः भूहा इत्यादि। पं

१८१। अनडुचतुरोऽणाणो धिष्योः। (भनडुड्-चतुरः ६), प्रण्-पाणी र॥, धिष्योः ०॥)।

भनडुइ सतुरस भी परे अण् घी परे आण् स्थात, ण इत्। अ

१८२। हो न: सौ। (इ: ६।, न: १।, सो ०।)।

श्रनडुही हस्य नः स्थात् सी परे। श्रनड्वान्। हे श्रनड्वन्।

बाह् इति वडधाती: (१०६८) विक्यालयेन भिज्ञम्। श्री-करणेऽपि सिर्वे श्री-करणे इसात् परस्यापि प्राप्तायः, तेन वार्वाह् प्रव्यक्ष प्रसादी वारीड: इत्यादि। विश्व-वाह्-प्रस्—वश्व-वश्व-प्रसाद्-प्रस्—वश्व-वश्व-प्रसाद्-प्रस्—वश्व-वश्व-प्रसाद-प्रसाद-।

[†] भ: भवर्णः, न भ: भनसमात् भनात् । याहग्नातीयस्य विश्वतिषेषी विधिर्णिताहग्नातीयस्यिति न्यायात् भवर्णसमातीथीऽजीव याद्यः, न तु इस् । ततस— पृद्यस्यम् भवर्णविषयं इस्विषयं एतत् स्त्रम् इवर्णायं च-विषयमिति । भ्वाइ-भ्रम् = मृ-कङ्शस् (२२) = भृइः । एवं शाखिवाइ-शस् (१८०, २५) = शाख्युहः इत्यादि । भकारानीपपद एव वाइः साधुरिति नौयटाद्यः, तेन तन्मते भृवाट् शाखिवाट् इत्यादि पदानि भसाधूनि । पाणिनिः ६।४।१३२।

[‡] ऋनजुकतुर: इति एकवचनं क्रमनिरासार्थम् । ऋगायौ धिष्योरित्युभयच दिव-घनान्तत्वात् क्रमोद्रियोगः । (१०) घिलादिन्याच: परी भवत: । पाणिनिः शिराटम्,८८ ।

धनड्राष्टी घनड्राष्टः। धनडुष्टः घनडुष्टा। अ

१८३। सम्बस्वस्वन्डहां दङ् फे।

(सम्-ध्वम्-वसु-भगडुहां ६॥, दङ् ।१।, फी ७।)।

एवं दिङ् स्थात् फे परे, चिङाविती। अनडुइरामित्यादि। 🅆

१८४। खेतवाच्चयाजुक्षशासुपरोडाशां

इसङ् । (वितवाह—पुरीडामां ६॥, डम्ङ् ।१।)।

एषामन्तस्य इस्ङ्स्यात् फेपरे, डङावितौ । 🕸

१८५। ऋत्वसोऽघोः सौ घें।ऽघौ।

(भतु-भस: ६, भभी: ६।, सी ७, र्घः १।, भभी ०।)।

श्रतमास्यासम्तस्य च घी स्थात् श्रधी सी परे, न तु घी:। स्वेतवा:। §

^{*} असयोरनृहत्ताविष चतुरो इकाराभावात चनलुइ एवेल्थ्यः । चनडुह्-सि (१४८, १८१) = चनडु-चा-छ(२५,१८२) = चनडुन् । धो चनडुन् इत्यादि । पाणिनि: ७।२।८२।

[†] सन्स ध्वन्स धानुधां किप्प्रव्यये सम् ध्वम् प्रव्या, वस्पिति (१०८६)क्रमु-प्रस्थयान्तः विद्यस्प्रधितः। (१७) दङी ङिच्चादन्यस्य स्थाने । क्षप्कसीरित्यनेन (६४) सस्य दे सिंडेऽपि, सीविः भे (१०२) इत्यस्य बख्यच्चन बाधितत्वादनेन दङ्विधानम् । सुवः इत्यत्र सुपूर्वक वस धातोः क्षिणि वसुप्रत्ययान्तवाभावाद्ग दङ्। पाणिनि पार्।७२।

[‡] डिस्तादत्यस्य स्थाने, (१२६) डिस्तात् टिकांपः, भम् इत्यस्य स्थितिः । श्विता इ भवयान् उक्षयम् पुरांडाम् एतेस्यो उम्बिधानेन सिहानपि, एतेषां स्थाने उम्बद्ध-कर्या उम्बद्धी लिङ्गमानित्वाये, तेन श्वेतवाद्यादीनामसन्तवात् भवसीऽधीरिति दौर्यः स्थात् । भवसीऽधीरित्यच भसन्तिलिङ्गसीन यहणं, तेन दत्त्यसाधी सचेति दत्त्यस् इत्यम् न दीर्षः । पाविभिः इ।२।०१,७२ ।

१ चतुच चस् च तस्य । चतुमस्ययेन चत्भागान्तस्य (४४१,४४२) धालवयविभिन्नास्-भागान्तस्य च (१४२,१४६,४६६,१०३२,१०६६,११०३) दीर्घः स्थात् धिभिन्ने सी परी

१८६। **डस्डो भो वा।** (डन्डः १, भी ०), ना ११)। इस्डो भी परे भी वा स्थात्। हे खेतवाः हे खेतवः। खेतवाही खेतवाहः, खेतवाहं खेतवाही खेतीहः खेतवाहः, खेतवाहं खेतवाहा खेतवाहः,

(१११) किलादिति षः । तुराषाट् तुराषाड् तुरासाङी तुरासाङः, तुरासाङ तुरासाङो तुरासाङः, तुरासाङा तुरा-षाड्भ्यामित्यादि । १० चलारः चतुरः, ३ चतुर्भिः चतुर्भ्यः चतुर्भ्यः । (११०) नुमाम-इति चतुर्णाम् ।

• १८० | रङो वि: सुिप | (रङ: ६।, वि: १।, सिव ७) । रङो वि: स्थात् सुिप परे, न लन्य-रेफस्य । चतुर्धुं । §

इत्यर्थः । चलन्तस्य यथाः श्रीमान् मधवान् युग्नदर्थे भवान् इत्यादि । चलन्तस्य तिं, भवन् कुर्व्वन् इत्यादी (११००) श्रवन्तस्य न स्यात् । चधीः किं, सुवः इति । क्वितवाङ्-िस (१४८,१८४,१८५,१०२) ⇔क्वितवाः (इन्द्रः) । पाचिनिः ६।४।१४ ।

^{*} (१८४) त्रितवाहित्यनेन क्रतष्डम्खीऽकारस्य दीर्घः स्वादाधी पर इत्ययंः। हित्रतवाह-सि [धि] १८४) = त्रितवस्, सनेन दीर्घे, (१०२) = त्रितवाः, वा त्रितवः। त्रितवाहः क्रतवाहः स्थाद् । त्रितवाहः स्थाम् (१८४; १०२, ६८) = त्रितवीस्याम् । पाणिनिः पाराह् ।

[†] तुरा वेगं सक्ते कति (१०२८) तुरासाह् सि (१४८८, १७५, १११, ६४) च तुरान् षाट् तुराषाड् (इन्द्रः) क्यादि । "तुरं सक्ते क्यार्थे कन्दसि सक्तः कति (१।२।६३) खि:। सोके तुसाक्यतेः किए" कति सिखानकौमुदी । कति ककारान्ताः।

[‡] चतुर्-जस् (१८२,३५,१०२) = चलारः, शसि चतुरः ।

प्रियचलाः, हे प्रियचलः, प्रियचलारौ प्रियचलारः, प्रियचलारं प्रियचलारौ प्रियचतुरः, प्रियचतुरा प्रियचतुर्श्योमित्यादि । *

(१६४) नसब्मञ्चन इति र्घले, (११८) नो सुप्। राजा, हे राजन्, राजानी राजानः, राजानं राजानी। (११७) अनी-ऽक्षोपः। राजः, राजां राजभ्यामित्यादि। ङी—राजि राजनि। १

(११७) श्रम्वस्यादित्युक्तेः ब्रह्मणः यज्यनः इत्यादि । भेषं राजवत्।

१८८। इनपूषार्थ्यमेनोऽधौ सौ शौ र्घः । (इन-इनः ६।, षधौ था, सा था, शौ था, धैः १।)।

एषां घी: स्थात् अधी सी परे, भी च। वनहा, हे वनहन्, वनहणी वनहणाः, वनहणं वनहणी। \$

१८८। इनो हो हो न गः।

(इन: ६१, इ: ६१, घ: ११, न १११, ख: ११) ।

अप्रचला इति प्रियाश्वारी यस स: इति गौग्ये सर्विलिङ्गभाजिलम्। प्रियचत्रर्-सि (१४८, १८१, १०१) = प्रियचला: इत्यादि । इति क्लारान्ता: ।

[†] राजा इत्यव भारी नस्य लुपि (१५) तदायविधिनिधेधात दीर्घो न स्यादत भाक्ष मसब्मक्त इति र्घेलं नो लुप् इति । अक्षते: पूर्वपूर्व स्यादन्तरङ्गतरं तथिति न्यायात् भन्तरङ्गतादादी भक्षार-दोर्घ इत्याक्षिप्रयः । सिलीपलु सर्वादावेव, सर्वाविधिन्यी सीपविधिवैखवानिति न्यायादिति भाव:। राजन्सि (१४८, पैले नो लुप्) = राजा।

[‡] इनधाति नियतः इन् इत्यस्य, पूषन् भ्र्यंमन् इति भ्रव्द्हयस्य, इन्भागानास्य च दीर्थः स्वादित्यथः। नान्ततात् (१६४) प्राप्तदीर्धस्य नियमीऽयं, तेन एवां स्रो भी च परे एव दीर्घी नान्यस्थन् भी परे इति। सी इन् दीर्घाइन् भृत्याहन् इत्यादीनां इनधातुः नियम्नताभावात् नन्यमहत्र इत्यनेनैन दीर्घः। इषं इतवान् इति इपहा इत्यः। पाणिनि, ६/४/१९३।

ष्टनसाने जातस्य इत्स्य प्तः स्थात्, तस्य च नस्य गो न स्थात्। हनप्तः हनप्ता हनप्त्यामित्यादि।

एवं पूषन् ऋथंमन् मार्ङ्गिन् यमस्विन् प्रस्तयः । अ

१८०। पूष्णो डिःर्डिवर्री।

(पूषाः प्रा, डिः १।, डिः १।, वा ।१।)।

पूषि पूषि पूषि । 🌵 🐪

१८१। मदोनस्तुङ् जा क्रिप्योः।

(मघोन: ६।, तुङ् ।१।, वा ।१।, क्ति-प्यो: ७॥) । ः

मघवन् ग्रब्स्य तुङ्वा स्थात् ज्ञी पौ च परं, उङावितौ । 🕸

१८२। त्रिदचोऽद्वे नृंग् धौ।

(उ-म्ट-इत्-षच: ६।, षद्दे: ६।, तुण् ।१।, घी ७) ।

चनारेत ऋकारेतोऽचय नुण् स्थात् घौ परे, न तु है:। §

इन इति इनघातुसस्यस्थिनी ऋथैवेश्वर्थः, तेन इत्रधातुनियन्ने पन्नि पूर्व्याक्कः
 इत्यादौ चादेशी न स्थात् । यत्निविधसु स्ति सस्थि । वचइन्-श्रस् (११७ = वचक्रः,
 भिनेन घो) = वचचः इत्यादि । पूपा अर्थमा च स्यः । पाणिनिः ७।२।४४, ८,४॥२२ ।

[†] पूषन्मस्रात् परो ङि-र्जि: स्वादा । डिस्वात् (१२६) टिलीपे पूजि, एतत् पदै पाचिनीयादिभिनं मन्यते ; सारस्रतानुसारेचाच लिखितम् । पर्चे (११०) चनाऽस्त्रोपो वाद्यति पूचि पूचि ।

[‡] तुक्क: चकारेत् (१८२) तुगर्थे, खकारेत् (१०) आस्त्यवर्ष-स्थाने जननार्थम्।
भौ परे यथा, माधवतं माधवत्यं माधवती। मधवकितिरिति पदं (८३) लुक्ति न तवित्यःच नचा निर्दिष्टमनित्यभिति न्यायात् सिद्धनिति केथित्। मध्यश्च्दात् यतुप्रत्ययेन सिद्धीः मधवक्काच्दीऽप्यनित्, तुङ्कारणन्तु प्राचौनातुवादार्थम्। अनुवृत्तावित वान्यक्षणं परच निवृक्ष्ययेम्। पाणिनि: ६।४।१२८।

इस स्टब ह, ह इत् यस स हित्, क्रिच पच तस्य । पच् इति किवल-गलयांचोः
 यह्षं, तेन वहवीऽच: (स्तराः) यिकान् स बहुच् इत्यादौ न स्थात् । पच, 'पदिरिकि

१८३। सान्तसाराह्मप् फे।

(स्थान्तस्य ६।, अरात् ५।, सुष् ।१।, फी ७।)।

ख्यान्तस्य तुप् स्थात् फे परे, न तु रात् परस्य । *
मघवुान् मघवा, हे मघवृन्, मघवन्ती मघवानी, मघवन्तः
मघवानः, मघवन्तं मघवानं, मघवन्ती मघवानी । †

१८४। खयुवमद्योनामुर्वे।ऽते पौ।

(य-युव-मधीनाम् ६॥, उः १।, कः ६।, अते ७।, पौ ७।)।

एषां वयष्ट्स्य ७: स्थात् पौ परे, न तु ते । 🕸

निवेधीऽयं मत्रेत न चान्यत' इति विद्यानिवासः, तेन क्रमुप्रत्यये नमन्तान पेचिवान् इत्यादौ स्थादेव। विकीर्यन् इत्यादौ त सनन्तादौनां (६३१) पृथक् घातुमं प्राविधानात् डिकक्तनिवन्तनी तृष्नियेधी न स्थादिति। यङ्जुगन्तस्य त न पृथक् घातुमं प्राक्षका क्षता (६२१ स्चस्य टीकायां ज्यादिगये यङ्जुगन्तस्य वर्ज्यनात्)। त्रतएव पापचित्त्युदाहरता क्षमदौष्यरेण यन्तुगन्तात्र तुम इत्युक्तम्। तेन परिलेखिइदित्येव। पाणिनिः ०।१।००।

- स्थय भन: स्थानकास्य । सिकातिभिन्नः संथोगानस्य लुप् स्थात् फे परे, पूर्ववर्तिः रिफ मंद्योगस्य न स्थात् । लुप्करणात् (१५) पाद्यविविनं स्थात्, सस्यध्यायि कित-कार्यन्तु स्थादेव. तेन थिपच्यस्य भनेन भन्यस्व (६४) भापभागीरित्यनेन चप् अव् कर्षे पिपक् थिपग् इति । भरादिति किं—कार्क्, अभार्द् इत्यादी न संयोगानस्य स्थापः । पाणिनिः ८१११२,१४ ।
- † मघवन्-सि (१८८,१८१,१८२,१८६,१८५) = मघवान् इन्द्रः । तुङो विकल्पपचे (१६४,१९८) = मघवा । हे मघवन्-सि [चि] (१४८,१८९,१८२,१८२) = सघवन्, तुङो विकल्पपचेऽिय सघवन् इति । सघवन्-चौ (१८१) = सघवली, तुङो विकल्पपचे (१६४) = सघवानी, इत्यादि ।
- ्रत्र च युवन् च मधवन् च ते तेवाम । मधीनामिति निर्देशान् नालपचे एवार्यं विधिः, तेन मधवतः इत्यादी न स्थान् । चते तिहितिमित्रे पौ परे । तहिते तु श्रीवनं भौवनं माधवनमिति । गौथीऽस्ययं विधिः, तेन धतग्रनः वहुयूनः टटमधीनः इति । पार्षिनिः ६।४।१२३।

मघवतः मघोनः, मघवता मघीना, भघवद्वां मघवश्या-मित्यादि। *

श्रुनः श्रुना। यूनः यूना इत्यादि।

१८५। ऋर्वणोऽनञस्तुङ त्येऽसौ तु।

(भर्वेष: ६।, भनञ: ६।, तुङ् ।१।, खे ०।, भरी ०।, तु ।१।)।

नज्वर्जस्थार्वणो नस्य तुङ् स्थात् श्रमौ त्ये परे। क श्रम्बन्ती श्रम्बन्तः, श्रम्बन्तम् श्रम्बन्तः, श्रम्बन्ता श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्तः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्तः, श्रम्बन्ताः, श्रम्याः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्ताः, श्रम्बन्ताः, श्रम्यः, श्रम्बन्ताः, श्रम्यः, श्रम्यः

१८६। पथिमप्यृमुक्तां थितो नेमौ भौ।

(पथि-मथि ऋभुवां ६॥, थ-इती: ६॥, नमी १॥, घी ७।)।

पिंचन् मिंचन् ऋभुत्तिन् एषां यस्य नम् स्यात् इकारस्य चाकारः चौ परे। §

मघवन भस् (१८१) = मघवत: । तुङी विकल्पे—(१८४,२३) = भघीन: दूलादि ।

[†] नासि मञ्चित सोऽनञ्तस्य । सिभिन्नेषु सर्व्येषु प्रव्येषु प्रव्येषमुङ्स्यात् । एकारेन् (१८२) तृष्ये, डिक्तादन्यस्य (१७) स्थाने । गौणेऽप्ययं विधिः, तेन प्रसर्व्यनी इत्यादि । प्रव्यंतां कुलम् प्रव्यंत्कुलम् इत्यादौ (३१८) क्रिल्क्यिप्, नजा निर्द्धिमनित्य-मिति नायात् (८३) लुकि न तनियनेन न निषेधः । प्रव्यंत इदम् पार्व्यंतम् इत्यादौ प्रस्थये परे भवति । पाणिनिः ६।४।१२७।

[‡] पर्वन्-पी = पर्वत्-पी (१८२) - पर्वनी प्रवादि। पर्वाघीटनः। नज् पहितद्यायां निवर्जनात् नज्युत्तद्यायां सी परेस्थादिलायद्वाष्ट पनर्वा इति, पनापि नस्यादिलाभिषायः।

[§] पत्याय मत्याय चरभुवाय तं तेवाम् । य च इत्र यिती तथीः । नम् च घाय निभी। यस्य नम् दति सभवैतः पियमधीरेन, इत्तारस्य चाकार इति सब्बेंबामेन । (१७) मिल्लाटादी। पाणिनी ०।१।८६ इति स्वेण इतः चत्, ०।१।८० स्वेण तु यस्य त्यादेशः चतीन चात्करणम् । संवितसारे प्रक्रियोगाधवात् चानिति कतम् ।

१६७। टेरा सौ। (है: ६१, चा ११, सी भा)।

पथादीनां टेरा स्थात् सी परे। पत्थाः पत्थानी पत्थानः, पत्थानं पत्थानी।

१८८। लोपोंऽच्यदी। (बीपः १।, पवि वा, पवी वा)।

पथादीनां टेर्लोपः स्थात् अघाविच धरे।

षष्ठः पष्ठा पष्टिभ्यामित्यादि । एवं मन्याः, ऋभुत्ताः । 🕆 (१३१) डतिसङ्काराणा इति । पञ्च पञ्च पञ्चभिः पञ्चभ्यः पञ्चभ्यः ।

१८८। जो नामि घ:। (मः हा, नामि था, घं: १।)।

नान्तस्य नामि परेर्घः स्थात्। पञ्चानां, पञ्चसः। 🕸

- * सी परे पूर्वम्वेण थस्य निम इकारस्य च भाकारे पत्यान् इति स्थिते राजा इति वत् भादी सिलीपे (१४८) पत्याव्रतीपे (११८) पत्या इति निर्व्विसर्गमेव रूपं स्वान् एवं सस्वीधने नलीपाभावे हे पत्यान् इत्यनिष्टमिपं स्थात्, भतः एतत्म्वकरणम् । इदानीन् भाटी टेराकारे इस्परत्वाभावात् सेर्लेष्णाभावे सस्य विसर्गे पत्याः हे पत्या इति । गौर्न्येऽप्यथं विधिः, तेन भाग्याः इति । पथिन्-भी (१८६) = पत्यानौ इत्यादि । पाणिनिः ०११८५ ।
- + लोपोऽचीति ज्ञते पथिमण्यभुचामिति विशेषविधिना वाधितत्वाद्वेरच एव प्राप्ती अधाविति पुन: कथनं याहग्नातीयस्थिति न्यायेन स्थादेरचएव प्राप्ताये, तेन पयोऽन्त पथन द्रस्यादो न प्रसङः। लोपः पो दित ज्ञतेऽपि स्थियां नान्तवादीपि स्थितमधिन स्थानुचिषी द्रस्यादौ टिलोपानिष्टापत्तिः स्थात्। ज्ञीवे तु स्थातमधी स्थानुची कुर्त द्रस्यादौ टिलोपः स्थादेव, जस्ममील स्थानम् स्थानुचाणि कुलानि। मन्याः सन्यन स्थः, स्थादाः दन्दः। भद्दोजिदीचितस्यान स्थान्यान्तालच्चे ज्ञीपि भत्यादिलोपः सुपद्यी नगरी, स्वसुधी सेना दिलोपः द्राप्ति विखितवान्। एवनेव कौमराः। पाषिनि श्राद्याद्या
- ‡ तुम्सन्य सिन्नकारेण सहित जाम = नाम तिखिन नामि, तेन यज्यनां दिखनार इत्यादी न प्रसत्तः । पश्चानामिति जामी (११०) तमागमे जनरज्ञतादभेन दीवें (११८ नो सुप् फेडपाविति नस्म सुप्। मुख्ये एकायं विधिः, गौणले तु प्रियपश्चामिति पाणिनिः ६।४।७।

२००। वाष्ट्रनो जसग्रसोडी:।

(वा ।१।, भष्टमः ५।, जस्मभोः ६॥, औः १।) ।

म्रष्टनः परयो र्जस्यसो डींः स्थात् वा, ड इत्। मष्टी मष्ट, मष्टी मष्ट। अ

२०१। ङा त्रौ वा। ' (ङास, को अ, वास)।

यष्टनो ङा स्थात् वा क्री परे, ङ इत्। यष्टाभिः यष्टभिः, यष्टाभ्यः यष्टभ्यः, यष्टाभ्यः यष्टभ्यः, यष्टानाम्, यष्टासु यष्टसु । १

२०२। घोर्मान: फस्व।

(धी: ६।, म: ६।, म: १।, पाम्ब ७।)।

धीर्भस्य नः स्थात् फि मे वे च परे। प्रयान् प्रयामौ प्रशामः, प्रयामं प्रशामौ, प्रशान्ध्यामित्यादि । क्ष

^{*} सुख्ये एवामं विधिः, तेन भियाष्टानः इत्यादी न स्थात् । डी इत्यस्य विकल्पपचे भ्रष्ट इत्यत्र वलवन्त्यादादी (१३१) जस्मसीलेकि (८३) लुकि न तर्वति निवेधात् (२०१) न ङा। पालिनिः ७।१।२१।

[†] उड इत् (१७) भ्रत्यस्य स्थाने । भनुबत्ताविष वा-ग्रहणं परव निबस्धर्यम् । भ्रष्टाना-मिति भादौ (११०) नुसागमे पद्यात् भनेन उडादेशः, विकल्पपचे (११०) नुसागमे, (१८८) दौर्षे, (११८) नकारलुप्, एकाकृति पददयम् । परिणिनः अ। १।८४ । इति नकारालाः ।

[‡] स्वादीय-इससीव असंज्ञकति वसयीरप्राप्ती पृथग्वचनम्। तत्रत्र भावनयवीसृत-मकारस्य फीपरेन स्वात्, तिङ्नाङ्गदन्त्रयो मंकारस्य च वसयी: परयी: न स्वाद्त्यर्थः। प्र-प्र-श्रमधाती: क्विपि (१०३८) प्रशाम् शब्दः, प्रशाम्-सि (१४८) भनेन मस्य नः स्वाम् । प्रशाम् स्थाम्, भनेन सस्य नः स्वान्त्यां, (८१) दानावन्तात् न नस्य (५०) भनुस्वारः। वया स्थानिशन्तात् नस्य नं नुष् (११८)। वसयी: परयी: यथा, जङ्काम्य जङ्कमः, जगनान् इत्थादि। पाणिनि ८।२।६४।

२०३। इदमाऽयमियं पुंस्तियोः सौ।

(इदम: ६।, भयम्-६यम् ।१॥, एंस्त्रियोः ०॥, सौ ०।) ।

इष्टमः पुंजिङ्ग-स्त्रीजिङ्गयोः क्रमेणायमियमौ स्तः सौ परे। भयम्। *

५०४। दीमोऽदसस्य ताौ।

(द: ६।, म: १।, श्रदम:•६।, च ।१।, न्नी ७।)।

दंदमोऽदसय दस्य मः स्थात् क्षौ परें। इमी इमे, इमम् इमी दमान्। ११

२०५। टौसीदमोऽनकोऽनः।

(टा-चीसि ७।, इटम: ६!, चनक: ६।, चन: १।)।

भंनक प्रमः टीसीः परयोरनः स्थात्। अनेन । इ

२०६१ स्यः। (मिंभ ण, पः १)।

श्रनक इट्म: श्र: स्थात् से भे च परे। §

अयिभयम् इति लुप्तप्रथमादिवचनानं पुंस्तिशीरियनेन यथासङ्घार्थम् । इदन् सुख्यते एव, गौळो तु अतौदम् अतौदमौ इत्यादि । पाथिनि: ७।२।१०८,१११ ।

⁺ साकात क्री परे इत्यर्थः । अस्य पुत्रः — इटस्पृत्रः, असुष्य कन्या — अदःकाला, अभीभिः क्रतम् — अदःकृतम्, इत्यादी क्रीर्लुकि न दस्य मः । इदम्-भौ (१३३, २०४, २३) ∞ इसी । इदम्-जस् (१३३,२०४,११२,२३) — इसे इत्यादि । पाणिनिः ७।२।१०८।

[‡] नासि चक् यस सोऽनक् तस्य। इदमी ग्रहणम् चर्सी निव्रक्षयंम्। इदम्-टा

□ चन-टा (१०६,२३) = चनेन। पाणिनि: ७।२।११२ (इद स्थाने चन्)।

^{\$} स च भ च तसिन म्भि। घनक इटन इत्यनुवृत्तते। विभक्त्यवयय-सभिधीः परवीरित्तवं:। तेश घरण सिद्धिः इदंतिर्द्धिरत्यादौ न प्रसङ्घः। यत्तु घनृक्षो— इतस्वस्यै धनंदिहि, घण प्रस्तो भूमिंदिहि, इमनास्यो वेदीऽधीतः घण घास्यां शास्त्रमधीतम्, इति

(१०८) या तिसमभवि। याभ्याम्।

२०७। भिस भिसीऽदसञ्च।

(भिस् ।१।, भिस ६।, घटम: ५।, च ।१।) ।

त्रनक इदमोऽदसय परस्य भिसो भिसेव स्थात्, न त्वैस्। कः (१०८) व्वेस्स्येः। एभिः। (१३३) टेरत्वे, (२०४) दस्य मत्वे, (११२) के स्मे, पयात् (२०६) श्रः। असी श्राभ्याम् एभ्यः, अस्यात् श्राम्याम् एभ्यः, अस्यात् श्राम्याम् एभ्यः, अस्यात् श्राम्याम् एभ्यः, अस्यात् श्राम्याम् एभ्यः ।

अनकः किम्--

२०८। त्यादिव्यासभोस्तिसिसे वीक् प्राक् टेर्व्यक दस्।

्लादि—सः हा, वा ११।, पक् ११।, प्राक् ११।, टे: प्रा, व्यक्त ११।, दः ११, व ११।)। त्याद्यन्तस्य व्यस्य स-भ-भ्रोस्-वर्जन्यन्तः स्तेः स्तेष्ठ टेः पूर्व्वीऽक् स्यादा, व्यकस्य दश्व । ह

प्रथोग:— तत् नजा निर्दिष्टमनित्यमिति त्यायात् समाधानीयम् । अत्र त्र्ते इदम् इत्यत्र "गातिपदिकागढणे लिङ्गविशिष्टस्यैत ग्रहणम्" इति न्यायात् असम्ब्यवधानेऽपि स्यादिर्तिः वक्तव्यम् (इसन्तस्त्रीलिङ्गपादो द्रष्टव्यः) । पाणिनि ७।२।११३, १।१।२१।

अन अनक इति विशेषणम् अट्सोऽपि, अनग्याम् इटस्टीयां परस्य भिसी भिम् एव स्थान् तद्वृपेशैव स्थिति त्यथं:। तेन असकैरिति सिञ्जम्। नैसदस्विति कति सिञ्जेर् गौरवं कदा विदेस्पामायं, तेन इसेग्ंगीरित्यादि सिञ्जम्। कसदीयरेख तु''इसे-विपक्तिसित तु इट्सयेंसथब्दस्य रूपम्'' इति लिखितम्। पाणिनिः ०।१।११।

[†] इदम-भाम् (१३३,२०४,११३,२०६,१०८,१११) = एवाम्।

[‡] ति पार्दियस्य स्वयद्धिः। सत्त भव भीस् व तं सभीसः, न विद्यत्ति सभीसोः सत्र सा प्रसभीस्, प्रसभीस् किर्यसात् सीऽसभाम्किः, स वासी सिप्रेति प्रसभीस्-किसिः। व्यादिय व्यव्याप्रसभास्कासस्य सिर्यात् तस्य।

इमनेन इमनाभ्याम् इमनेरित्यादि।

२०८। द्वीटौसीदैतयोरेनोऽनक्तौ।

(दी-टा भी खि ७।, इद-एलयी: ६॥, एन: १।, अनुक्ती ७।) ।

इगंग्टीसीय परत इदमेतसीरिहैतयोरेनः स्वात् उक्तस्य पद्या-दुत्ती। 🌵

> इमं विदि हरेभीतां विदायीनं शिवार्चिकम। इमाविमान् वित्त ग्रैवान् एनावेनांसु वैशावान् ॥ श्रनेन प्रजितः क्षणोऽयैनेन गिरियोऽर्चितः। अनयो: नेम्प्य: खामी मिव: खामी अधैनयो: ॥ अ

त्याचनस्य भवति पचतीत्यादे, व्यस्य प्रपरा धिक इत्यादेः, स-भ-श्रीम् भिन्न विभन् क्राम-सर्वनामग्रन्दस्य केवलसर्वनामग्रन्दस्य च टे: (६२) पूर्वम् अक स्यात् वा, प्रिक स्रति चव्ययान्त-कस्य दय स्यादित्यर्थ:।

यया-भवतिक भवतकः इत्यादि। प्रकापरका उचकै: धिकत् इत्यादि। सामि इत्सब्द्यस्य दे: पूर्श्वम् इतक न स्थादिति वक्तव्यम् । पूर्वणक युपाःकक्तिस्थादि । सभीस्-क्यन्तसेल् प्रस्ने पासाम् पाथ्याम् प्रनयीरिल्यादिषुन स्थात्, प्रसकौ युप्पकत् इत्यादिषु समग्रीरभावे सादेव। केवलसंस् सर्वकेण सर्वकात द्वार्टि। विभन्धत्पत्ते: पूर्व्वनिक क्कते पुनर्व्विक्तस्य सक्त स्थान, लेन सर्विकी एक इत्यादयः प्रयोगान स्थः। पाणिकिः 1 50, 90151H

इम्बीन इत्यादिषु विभन्नगृत्पत्ती: प्राक् चिक जते (२०५, चन) (२०६, च) (२०७, अस्त) एते भादेशान सुरिति।

[🕆] दी चटा च भीस् च तिस्त्र न्। इतद्य एतद्य तौ तथीरिदैतयी:। ऋतु पद्यात् **डिति: चन्त्रिपास्याम् । चन्**त्रिरिच यसुद्दिस्य पूर्वसृत्रि: तसुद्दिस्य यदि पश्चाद्रितः स्थादिति बोध्यं, तेन इसं भी जय, इसं प्रेरय, इत्यत्र एकस्य भी जनसपरस्य प्रेरणसती न स्थात । इदेतयोरिति निर्देशात् मकारदकारौ हिला भवतीति, तेन क्रीके एनदिति (२४२) स्त्रसंबद्यति। एन इति प्रक्रत्यन्तरमप्यन्ति। पार्णिनः २।४।३४।

t है साधी, इसं जनं हरेर्भतां विखि जानी हि इति उत्तिः, मय, एनं (तसेव) भिया-र्श्वकं विद्यि इति प्रयादिति:। एवं सर्ववा । हे साधवः, इसी इसान् श्रेवान् विना, एनी

(१३३) त्यदां टेर: क्तौ। क: की के इत्यादि। * (१९००) भाभान्तस्येति बस्य भः। भृत् भुद् बुधी बुधः, बुधाः भुद्ग्गामित्यादि। †

२१०। युजिरोऽसे नुणु घौ।

(युजिन: इ।, असे ७।, तुष् ।१।, घौ ७) ।

युजिरो युज्यब्दस्य नुण्स्यात् घी परे, नत् से। 🕸

२११। चुङ्क्राङ्युङ्सग् दिगसग्रात्विक् दथक् दक्स्पृक् सगुष्णिहां कुङ्भौ।

(चुङ्—उधिहां ६॥ कुङ्।१।, भौ ७।)।

पवर्गान्तानामञ्चादीनाञ्च कुङ्स्यात् भौ परे। § .

एनान् वैष्णवान् वित्त, यूरमिति ग्रेजः । अत्र इसी इसान् इत्युभयीर्विशेषणं श्रेबान् इति, तथा एनी एनान् इत्युभगीर्विशेषणं वेणवानिति उत्तवता भावार्थेण नागालिङ्गानां नानावचनान्तानां विशेषाणास् एकं विशेषणं परस्वैव लिङ्ग सङ्गास्त्र भनतीति स्चितम् । भनेन क्रणः पूजितः, स्रय एनेन (तेनैव) गिरिशोऽस्तितः । अत्रयोः स्वामो क्रेशवः, भण्ण एनथीः स्वामी श्रिवः इत्थर्थः । भन्न कितीयायाः एक विशुष्ठ वचनेषु टा-भोस्-विभक्तशोश्व यथाकमसुदाइतिसिति ।

- * त: इति किम् िं, लीपस्तराटेशयोन् स्वराटेशिविधिर्वतीति न्यायात् भादौ (१३३) टेरले, से विंसर्गः। किम्-जस् (१३३, ११२, २३) \Rightarrow के इत्यादि । इति मकारानाः।
- † बुध्यते इति बुधधानी: बिपि, बुध्-मि (१४८,१००,६४) = भुन भुद इत्यादि । इति धकारानाः।
- ‡ युजिर प्रति कथनात् "युजिर् योगे" प्रति घातोः क्रियनस्य युज्यस्स्सेत्यर्थः, नेषु युज् समाधावित्यस्य । पाणिनिः ७।१।७१।
- § तुष अन्य्व कृन्य्कथनन्य सन्य दिश्य अस्त्र च स्विज्य द्रश्य दृश्य द

(५०) स्रोर्नुर्भरयदानी । (५१) अपे अम् नीः। (१८३) स्वान्त-स्यारात् तुप्फी। युङ् युक्ती युक्तः, युक्तं युक्ती युकाः, युजा युग्भ्यामित्यादि । #

भ्रमे कि — सुयुक्त सुयुको सुयुक्तः इत्यादि । युक्तिरः कि — युक् समाधिमान्। अन्च क्रुन्च युजामेव प्राक् कुङ् प्रथक्-यहणात्, तेन खन् खर्ज्जी खज्जः इत्यादि । 🕆

(१५४) प्रक्राजिति षङ्। (१५५) घीड़: फें। राट्राड्राजी राज:। एवं विभाट् देवेट् परिवाट् विश्वस्ट् परिसट्। 🕸

क्रमुच युन्ज एषां चवर्गान्तलेनैव प्राप्ती पृथकग्रहणं नियमार्थ, नियमय एषां चयाणासेव (१८३) संयोगान्तर्लाप।त् पूर्वं कुङ् स्थात, प्रन्यपा सथक चवर्गानानान् पादी सयोगान्तन्प्। • सन् यस्न ्चस्ति च्रां चवर्गान्तिऽपि, (१५४) शक्रुनिर्धित पड-बाधनार्थ ग्रहणम्। अर्द्धे सिल्लातीनि क्रिमि लिण्डि, अन्य (१७८) सल्लादिविहितघडी विकालपर्या (१९०५) क्रीडीभावित्यस्य वाधनार्थं ग्रहणाम् । क्रांड इति क्: केवर्गः, कु इत्। **च**र्वासध्ये क्वारम्य (१५४) शक्निति गाधितत्वेन, घालवयव जकारासमावेन च च ज भ इस्वेषांच्याने क्रमेण काग घडस्येतं स्थ्रिययं:। जवर्गसाटचर्यात अर्व्यक्षामधि अपत्र गरहीत शब्दानां का गघ एषा मेकात स एवं स्थान. पश्चान आत्र भागमा संविधानेन यथा थी ग्यं कारी स्थाताभित्ययः । रूज भुज धातुन्यां क्षप्रत्ये रूग्यः भूगः इत्यादी व्यक्तग्रङ्गलाहादी विनेत जस्य गकारे पथात् तकारस्य नकारः । गमानन्दः काशीव्रगैत् ऋव कङ्क्रलाः, कश्यः सुमादिसाधनाय मुतालर कल्पयतः । भी परे इति चवर्गालार्थभेव तेन चवर्गालधातूनाः मपि स्थात्, भन्ययां कीवलशस्टानासेव ग्रहणात् इसे विरामे चंस्ययं.। विश्वस्तर्ज् अन्दरा सिदालकौमुदीमते विश्वसृट् इति, क्रमदीश्वरमते तु विश्वसृक् इति ६५म्। पाणिनि: श्रापट, पाराइ०.६२।

^{*} युज-सि (१४८,२१०,२११,५०,५१,१८३) - युज् । युज्-श्री (२१०,५०,५१) = युद्धी। इत्यादि।

[†] खिजि पाजुल्बे इति खन्ज घाती: विच्मल्बे, खन्ज-सि (१४८,१६३) = खन्।

[‡] राजने दति राजधातोः क्विपि राट् राख् 🏿 एवं विसानते द्वति विसाट् । देवात् वनतीति देवेन ्यन्दः। परिवनतीति, विश्वं स्ननतीति, परिस्तनतीति-परिवाट् भिष्ठः, विश्वस्टट् (वा विश्वस्क्) विधिः, परिवट् मार्जकः ।

२१२ । विश्वराजोऽदा । (विषराजः ६), भत्।स, भा।स)।

विखराजोऽकारस्य ग्रा स्यात् भौ परे । विखाराट् विखाराड् विखराजौ विखराजः । क

२१३। खादे: सो लीपं: कोऽषढ्न्यरच्च: [(खादे: इ., मृ: इ., लापं: ११, कः इ., पषढवरचः इ.)।

स्वादी स्थितस्य सस्य लोपः स्थात् भी परे, कस्य च — न तु षढ़ाभ्यामन्यस्य स्थाने जातस्य रचया । १

स्ट् स्ड्। (६४) भाषभासीरिति सस्य दः, (४६) सुयुभियुधा-दिति, स्रज्जी स्रजः इत्यादि। जर्क् जर्म् जर्जी जर्जः इत्यादि। ऋत्विक् ऋत्विम् ऋत्विजी ऋत्विजः इत्यादि। अवयाः हे अवयाः हे अवयः अवयाजी अवयाजः, अवयोभ्यामित्यादि।

विश्वराज्यव्यस्य विश्वस्थैव श्रकारः सभावति श्रतस्येव ,श्रात्वं, तेन।स्य धात्त्वासभावात् भा दृत्यस्यानुब्रताविष तदनःपाति-फंपरे एव वीध्यस् । विश्वराज्-सि (१४८,१५५,१६५,२९२) ⇒ विश्वाराट् विश्वाराड् । पाणिनिः ६।३।१२८ ।

[†] स्यः मयोगः, स्यस्यद्धः स्यादिनस्य । षय दय पदी तास्यामन्य घदन्यः, ततः (४३३) इत्मर्थे पाप्रस्थये घदन्यः षदन्यनात इत्यर्थः । रच इति उपचारात् रचधात्सन्यसील्यः, पदन्यप रच च इति ममाहारे घटन्यः न घटन्यःच षपदन्यःच तस्य,
कः इत्यस्य विशेषणम् । संयोगादेः सस्य लीपः स्यात्, एवं घटनातिभन्नककारं
रचधात्ककारस्य वर्षायला षन्य ककारस्य लीपः स्यात्, ततस्य नात्ककारमध्ये
घटनातककारस्य रचभिन्नधात्-ककारस्य च (संयोगादिःस्थतस्य) लीपः स्यात् भौ परे
दय्यदेः । तेन, विविद् लिखिट षाकीत् इत्यादौ स्थात्, नत् पिपक् गोरक् इत्यादौ ।
कस्नाता इत्यादौ संयोगस्यादान्यलान स्थात् । पाणिनः प्राराहे १८८।

[‡] सम्ज-धाती: क्रिपि, (६६१) स्मृज-सि (१४८,२१२,१४४,१४४,६४) = स्ट स्ड । जजभाती: क्रिपि, कर्ज्-सि (१४८,२११,६४) = कर्क् कर्ज् ग्रां। स्टती यजतीति स्तृत्य अभाती: क्रिपि स्टिक् प्रोहित:। भव्य गतीति निपातनात् विधि भव्य ग्राज्-सि (१४८,१८४,१८४,१०२) = भव्या:। मन्नोधने (१८६) = भव्या: भव्यः। भव्याज्भाम् (१८४,१०२,६६,२२) = भव्योभ्याम्। इति जकारान्ताः।

२१४। त्यदां तदोः सः सौ।

(त्यदां ६॥, तदो: ६॥, सः १।, सौ ७।)।

त्वदादीनां तदयोः सः स्थात् सौ परे। स्यः त्वौ त्वे इत्वादि सर्व्वत्। एवं तद्। एषः एती एते इत्वादि। * (२०८) दीटौसीदैतयोरेनोऽनृक्षाविति प्रयोगसु इदम्वत्। पं

२१५ 1 युप्तदसारो-स्वाही युवावी युववयी त्वसारी तथ्यमद्यो तवममी सि-द्व-जस्-क्क- - डःससु । (युषद पक्षदी: ६॥, ल-पही १॥, युव-पावी १॥, यूव वयी १॥, लद-मदी १॥, तथ्य-मन्नी १॥, तव-मनी १॥, वि-द-जम्क कं-डम्स ०॥)।

भनयोः क्रमादेते घादेशाः एषु परेषु क्रमात् स्यः । 🕸

२१६। डिघोर्म: । (ई घी: ६॥, म: १।)।

स्वटामित वहवचनं गणार्थे स्वटाटीनामिस्थयः । सौ परे स्वटाटीनां (१३३)
 टेन्कारे घत्रशिष्टी यौ तकारटकारौ तथीः स्थानि सः स्थादि यथः । तेन स्वटन्तट्-एतटां तकारस्य घटसी दकारस्थेति यात्रत् । घत्र सिसंधकानां स्वटादीनां ग्रहणात् पतिस्वदा-दीनां न स्थात् । पाणिनिः ०२।१०६ ।

[†] इदम्बदिति --- एतं विद्धि हरेभेतं विद्ययेनं शिवार्षकमित्यादि ।

[†] त्य घड्य लाडी इत्यादि इन्हः। निय इच नम्च कच छेय रूम्च ते तेष्। इंडियचनं, क्रान् एक यचनम्। सुख्यत्वे गीयत्वे चायं विधिः, यया त्यम् घडम्, घतितम् घत्यस्म्।

क्टिस परे द्विवचने असि परे ङेपरे क्रमय-——भीपरे एकदचने युषाद: स्थाने तय युव यू य त्त्र ट्र तुभ्य सम चसद:स्थाने चड भाव वय सर मश्च यापिनि: ७।२।६४,६२,६५,६७,६५,६६।

युष्पदसाङ्गां परस्य के दलस्य विश्व मः स्थात्। लं अहं। 🌸

२१७। सममोध्वाङ् । (स-म-अस्-भौष ०॥, आङ् ११)।

युष्पदस्मदीराङ् स्थात् से भे श्रमि श्रीकारे च परे। युवां श्रावां, यूयं वयं, त्वां मां, युवां श्रावां। 🕆

२१८ । शस्-भ्यंस्-ङसि-भ्यस्-ङस्-सामां न-डभ्यम्-त-त-डाकमः । (शम्-मानां ६॥, न--भाकमः १॥)।

युष्पदसाद्भगां परेषामिषां स्थाने न-डभ्यम्-ति-त-ड-आकम् एते क्रमात्स्युः, ड इत्। युषान् अस्मान्। क्ष

 ^{*} एतटादिध चतुर्ध सुनेष विधानं मुख्यगौष्यमाधारणम् अाचार्यमस्थतम् । युग्नद्,
 श्रस्यदःसि (२१५,२१६) ⇔ लं श्रहः । पाणिनिः ७।१।२८ ।

[†] आ डो उत्दर्भन्यवर्णस्थाने । भेषरे भाउन्करणं भिस्स्थाने ऐस्वारणार्थम् । भेभे माचादेव, तेन लंयुधान इत्यादी न भाउन् । युधार, अस्मद-भौ (२१५,२१०,२१६) च्युवां, भावां ।युधाद, भस्मद-भम् (२१५,२१०,२१६) ≕ लांमा ।पाणिनि: ०।२।८८ ।

[्]र स्वसम्बन्धि-सकारिण सहित भाग ⇒ साम्, भ्रम् च स्थम् च द्रश्यादिद के तिषास्। न च उत्थम् च द्रश्यादिद के तिषास्। (१६१) उतिव्याचाने त्यादिद के ति। अत्र न कारि तकारदिये च भकार उद्यारणार्थः। (१६१) उतिव्याचाने त्यादिना लिङ विहित-कार्य्यानिषेषात् (१०५) पृति तु भ्रम् न द्रत्यस्य भगाती विधु लिङ्गेषुः भ्रमो न विधानम्। स्थमी स्थम् न कला उत्थम्करणम् (१९०) भाङ निगरणार्थम्। इसी उकरणं (१०६) स्थवारणार्थम्। भामः सुम् (११३) स्थ्ये एव भवति, भवाच साम भाकम्विधानात् गौष्णे भामः (२१८) एङ् एव।

भागभ $\frac{1}{2}$ श्रम् अध्यम् अस्य साम् एवा स्थाने—-न् अध्यम् त्, त् उ भाकम् एते क्षमात् स्यः । युभाद, भासाद-श्रम् (१३१,२१८,१०४) = युभान्, श्रस्थान् । पाणिनिः श्रार्ट. ३०,३२, ११,२०,३३ ।

२१८। एङ् टाङ्ग्रामि । (एड्।२१, टाःङि बामि का)।

युषादस्रादोरेङ स्थात् टार्ड्याः परयोरामि च, ङ इत्। 🏶 लया नया युवाभ्यां जावाभ्यां युषाभिः ज्राखाभिः, तुभ्यं मह्यं युवाभ्यां ग्रावाभ्यां युषास्यं अकास्यं, लत् मत् युवास्यां श्रावाभ्यां युषात् श्राचात्, तव मम युवयी: श्रावयी: युषाकां ऋसाकां। 🕆

श्रतित्वयां श्रतिमयां श्रतियुवयां श्रत्यावयां श्रतियुषयां ऋत्यस्मयां। 🎉

(२१५) क्त-द्वारधस्यापि ग्रहणात्। एवं सर्वेत्र। 🦠

⁻ ण्डीड इत् श्रन्त्यस्य स्थाने । मुध्यत्वं (२१८) साम भाकस्विधानात् अत्रत श्राभीति गौगार्थभव । पाणिनि, शराब्हा

[†] युपाट, श्रमाट्-टा (२१४, १३३, २१८, ३५) - ल्या, मया । युपाद, श्रमाद स्याम् (२१५.२१०) युवाध्या, आत्राध्यां। युषाद असाद्धिसः ।२१७) = युषाधिः, असाधिः । युषाद, चनाद हे (२१५,२१६) च तुभ्यं, मर्स्या। युपाद, चनाद-४ भ्यम् (२१८,१२६) - ०्षास्यं, अक्षस्यं । युषादः, अक्षाद-ङिन (२१५.२१८) - लत्, सत् । युषादः, अक्षाद्-५ भ्यम (१३३,२१८) = युषात अस्मत ा सुपाद, असाट्-डम् (२१५. २१८ १२६) = तव, मम । युभाद, असाद-आंम् (२९५,१०६,१०२) = युवर्यो., भावधी: । युभाद, असाद् भाम् (१३३, २१३, २१८) — गुपाल, अस्तालां ।

[🕇] लामतिकान्तानामिति वाक्यं ऋतियुष्पदशब्दस्य श्राम्विभक्तौ, व्यासवाक्यान्तर्गत-लानिति एकवचनस्य अर्थे ग्रहीला (२१५) खंद आदेशे. (१३३,२१६,३५) अतिलया-मिति, एवं मामतिकान्तानाम श्रतिमयां। ययामतिकान्तानामिति वाक्ये युवामिति द्विवचनस्य चर्य रहतेला युवभादेश ऋतियुवया, एवम् श्रावामितिकान्तानाम् अव्यावयां। युपान् अतिकानानामिति वाक्ये बहुले आर्दशाभावात् अतियुपादशब्दस्य चाम्विभक्तौ (१३३,२१८,३५) चतिय्षया, एवम् चत्यवायामिति ।

अतिलयामित्यादो वहवचने लटाद्यादेशः कथमित्याभद्याह कदयोरिति। ततयायमर्थ.---य्मद्सादी भेष्यत्वे गीणते च, (११५) । सि-जम्-डे-डमा स्वर्षण ग्रहणात् तेष परीष ला भ्राह युग यय तुभ्य मद्या सव मम एते ऋदिका:स्युरिव। सिजमादिरत्यत्र मुप्तदस्मदोर्भव्यत्वं एकवचन परि लनादौ, दिवचने परि युवाबौ, बहुवचने

त्विय मिय युवयोः त्रावयोः युषास त्रसास । *

२२०। दीचीषीणां केंद्रें कें स्ते-मे वां-नी वस-नसी वाऽपादवाकादा-वचवाहाहै वाहगृहश्यर्थे स्वा-मा त्वमा।

(दो -ची-घोषा ६॥, के. ३॥ दें: ३॥, वंत. '३॥, तिसी ११॥, धां-नी १८॥, वस् नसी १॥, वा १२॥, क्यादवाक्यादी ७।, श्रेच ब्राह अहं एवं अहग्हम्बर्थे: ३॥, लामा १२॥, तु ११।, अमा १।)।

षरे स्वरूपेणावस्थानम्। गौण्लं तु परिविभक्तिमनाडल्य क्वेबलयुपाटसाटारेकलं त्वचाटौ बित्य युवाबी, बहुर्त्व भ्वरूपेणावस्थानमिति चटाहुँ•णं स्था - त्वामितिकान्त: लामतिकान्ती लामतिकान्ता: इत्यादि वाकाप - ऋतिल ऋतिलां ऋतिययं, ऋतिलां अतिलां अतिलान, अस्तिलया अतिलाभ्या अतिलाभिः, अतिलभ्यं अतिलाभ्या अतिलभ्यं, श्रतिलात श्रतिलाभ्या श्रतिलात, श्रतितव श्रतिलायी: श्रतिलायां, श्रीतलायां श्रतिलायां : चितित्वास् । युगमितिकान्त. युगमितिकान्तौ युवामितिकान्ताः इत्याद्दि वार्काय्—चितित्वं अपतिथ्यां अपतिथ्यं, अपतिथ्यां अपतिथ्या अपतिथ्यान, अपतिथ्यया अपतिथ्यास्या अपत युवाभि: अतिवृश्यं अतिवृशास्यां अविवृश्यं, अतिवृशत् अतिवृशस्यां अतिवृशतः अविव श्रतियुवधी: श्रतियुवशा, श्रीतयुवधि श्रतियुवधी: श्रीतयुवास् । यमानतिकान्तौ युमानांतकान्ताः इत्यादि वार्क्ययु-मित्वं भातयुमा ऋतिययं, भातयम श्रांतयुषां श्रांतयुषान्, श्रातयुषाया श्रातयुषाभ्यां श्रातियुषान्नः, श्राततुभ्यं श्रातयुषान्नः श्रतियुप्तस्यं, अतियुप्तत अतियुप्तास्यां अतियुप्तत्, अतिकाव अतियुप्तयां आगतयुप्तय षतियुषायि अतियुष्पर्याः प्रतियुष्पास् । एवं मामतिकालः इत्यादि∢ आवार्मातकालः द्यादिर् चस्मानतिकाल. इत्यादिप्च युषादत प्रशेग: : लया कर्त लत्कतम्, सः धनं सहन्तर, त्वासिक्कति त्वद्यति, त्वामाचर्ष्टत्वदयित, त्वदीषद्रनं त्वतकत्यं इत्याद विभक्तिलिक अपि एकवचनस्य अर्थे ग्रहीत्वा त्वनादादेश स्यादंव।

डिबचनस्यार्थं क्राचिदादेणा न स्यृतिति वक्तव्य च्यथा, युवयीरयं युप्पदीयं, युवयीर्थः पुष्पद्धनम्, चात्रयीर्यकः चन्नाद्युकः: चावान्यां कृतं चन्नातृत्वतन् । युवानिच्छति युवानि वाचरति वा युष्पद्यति, युवामाचष्टे युष्पयति, इत्याद्यविष् विचचनार्थं चादेशी न स्यात्.

अ युवाद, वातादिङ (२१५, १३३, २१८, ३५) क्लायि, मिया युवाद, वालाद्मार (२१७) व्यावाता, वालामा । वालाद "जिङ्कावनायीय लगायामादी" इत्यादिम लगदी वालादी युवादिम लगदी वालावाता युवादिक द्वादरणान तेन प्रदर्भितानि । यथा, युवाद युवासि वालावाता, युवाद युवासि युवासि वालावाता, युवासि युवासि वालावास्। युवासि वालावास्।

यबाटसाटी: दीचीषीणां की: सिहतयी स्ते-मे, है वीं-नी, व्वे वीस-नसी, क्रमादा स्थाताम, श्रमा-युक्तयोसु त्वा-मा, न तु पादस्य वाकास्य चादी स्थितयोः. न चवादी-रदर्भनार्षदृश्यर्थ-भ्रमिश्व योगे। *

> दामीदरस्वावतु मापि मित्र, ददात् ते मेऽपि सुदं मुजन्दः। निहन्त ते विशारघानि मेऽपि. रचलसी वामंपि नी मरारि:॥ ददातु वां नाविष ग्रमी क्रणः. करोत वां श्रीदियतो दयां नी।

पादच वाकास पादवाको, तथीरादिः पादवाक्यादिः, न पादवाक्यादि स्पाद-वाक्यादिस्तिमानं पाद: पद्यचतुर्भागैकभागः, "पादशब्दैनात ऋकपादः स्रीकपाद**य** ग्टश्चते" इति पाणिनिटीका । वाका परस्परमाकाङचपदस**सूइ**ः । "साख्या<mark>तं साव्ययं</mark> सकारकं सविभेषणं वाकासिहासिभेतस, न तुलौकिकापदसङ्घात: सम्बन्धार्थो वाका मिति" इति क्रमदीखरः। • इक दर्शनम्, न इक अडक, द्रशिदंर्शनमधी येषां ते हायथीं:, बहाग् बदर्शने हायथीं: बहागहायथीं:; च च वा च इ च सह च एव च षटगढ्यायांच ते चवाहाहैवाटगहायायां:, पत्रात् नञ्यीगे तैं:।

दितीया-चतुर्थी पत्रीनाम एक अचने: सह युषादसादी सी मी, दिवचने: सह वां नी, बहुवचनै: सह वस-नसी, भासा सहितयील ला-मा, क्रमात् वा स्थातास्। भासा सहित्यी स्वा-मा इति विशेषाभिधानन चतुर्थीषष्ठारिकवचनेन ते-से, दितीयैकवचनेन त्वा-मादतिनिकार्षः । पादस्य वाकास्य वा भारौ स्थितयोः युमादकादोरिते ऋादेशा नस्य:। चवाहमह एव इति पञ्चभिरव्यथैयौगैऽपि एते मादेशा न स्य:। मन इ सह स्थाने इ। इ इति व्याख्यानमय्क्तं पाणिनिःसर्ववर्माःचन्द्र-पद्मनाभःक्रमदीयरादि-सतिविरीधात । एवं स्वभावात दर्शनार्था ये धातवर्श यदि धातनामनेकार्थतात् दर्भनिभन्ने चर्ये वर्त्तनं, तटा तैथींग्ऽपि एते कार्द्भा न स्परिसर्थः। पाणिनिः 511177,70,71,75,74,7X,7X

पुणात वो नोऽपि इरिर्धनं वो ददात नी. इन्बग्रभानि वी नः ॥ * ग्रपादवाक्यादी किं--युषानवत्वविरतं क्रणोऽस्नान् पातु ग्रङ्गरः । 🕆

अ-चादियोगीः किं,— तुभ्यं महाञ्च दद्यात् स्वं गोविन्दो महामेव ग्रम। यीकारही मामपेच्य ला-मालोकयति पूजकम ॥ §

† प्रत्यदाहरणनु —

क्रणः ऋषिरतं निरन्तरं युषान् चवत्, इत्यत्र युषान् इति पाटादिस्थितत्वात् न व इति भादेश:। अन्यान् गङ्गरः पातु इति वाक्यादिस्थितलात् न न द्ति भादेश:।

† योगे इति क्रयनात् साचाद्योगेऽयं निर्षधः, परम्पद्वासम्बन्धे तुत्रादेशः स्यादेवः यथा इरी इरिय मे खानो । इति निहान्तकौ मदो । यव चादिभि न युपादमादी योगः भवित भर्यान्तरस्य तचापि लाइयः स्यः। इति कमदीश्वरः।

§ गीविन्द: तथ्यं मद्यञ्च स्व धनंदयात, शंकल्याणं मद्यमेव द्यादिति श्रेष:। भव तुम्यभिति पादादिस्थितलात् महात्रेति महामैवति च चादियौगात् न मादेश:। अव युष्पद्चाइप्रामिव चादियोगे निषेध:, तेन रामी धनमेव द्यात ते इत्यादी स्यादेव। शीकाग्रः मामपेट्य स्वक्षात्वां पूत्रकम् त्रालोकयति विचारशतीत्यर्थः, अत्र ईचधातुः लोकधातुम दर्भनार्योऽपि इह पुनत्यागार्थी विचारार्थय प्रयुक्तः, ऋतीऽदर्भनार्थ-टम्यर्थभातुयोगे न भादेश इति।—ते ने इत्यादिकम् अव्ययनप्यक्ति, तेन श्रीक्ते सासामित्यादि प्रयोग:। प्रथमात्रतीययोरप्यादेशा इति वामन:, तेन "गेये कीन विभीतौ थां," वां युवाभिति प्रयमायृज्ञस्यादेश:। एव "कारितासी यतोऽतस्वां," अव ते ल्या इति हतीयाय्क्रस्थादेश इति ।

हे सिच, टामीदर: श्रीक्रण: ला (ला) सा (मां) श्रिप अवत रचत । सक्तन्दः ते (तुभ्य) में (मस्त्र) ऋषि मृदं इर्षें ददातु । विणा; ते (तृव) में (मन) ऋषि ऋघानि पापानि निहन्त । अभौ सुरारि: वां (युवां) नौ (भावा) अपि रचत् । क्रणः वां (यवाभ्यां) नी (त्रावाभ्यां) ऋषि भक्ता सुखं ददातु । श्रीद्यितः श्रोपितः वां (युवयीः) नी (श्रावयी:) दर्था करोतु। इरि: वः (युष्मान्) नः (श्रव्मान्) भवि पुणातु। (यथभ्य) न: (श्रमाभ्यं) धर्न इदात् । व. (यथाकं) न: (श्रमाकं) श्रमानं श्रमानि इन्तु । दीचोषीणामित्यस्य एतानि ययाक्रमसुटाहर्णानि।

२२१ | सदानुको ऽसादिप्रताः । (सदा ।१।, अनुको २०, प्रमादिप्रताः ५।)।

अनयोरेते अन्वादेशे नित्यं स्यः, न तु सपूर्व्वात् प्रान्तात् परयोः।

ृ यूयं वयं विनीतास्त्रत् ग्नातु वी नी महेश्वरः । यूयं वयं हितास्तेन, सं। स्मान् पातु स वः श्रिवः ॥ *

२२२ । नाविशेष्यान्याद्यामन्त्रात्।

(न । १।, अर्वि औष्यान्याद्यामन्त्रप्रात् ५।) ।

विशेष्यपूर्वमनामन्त्रापूर्वेच हिला अन्यमादामन्त्राहिते त्रादेशा न स्यः। ^१

शक्षीऽसान् रत्त, लत्तीश मेव्य नीऽवाव सर्व्व नः । 🕸

[🌣] अपन पथादताम अनुतांतिसान । अपाटिना पूर्वस्थपदान्तरेण सह वर्त्तरे यासा सादि, सादिशासी भी चेति सादिशी, पशान्न अशीर्ग तस्या.। अन्वादिर्भ छक्तस्य पथादक्ती युपादसादी: स्थाने पते अर्थादणा निर्थं स्थु किन्तु पुर्श्वस्थितपदालर्गा सहितात प्रथमान्तपदात परशी श्रीफद्धादो रण्जाविष एते चाहिणा निर्धन स्थ:, पूर्वम्बिणैन विभाषया स्युल्लियी.। यूय वया विनीता. इति उक्ति: तत्तसमात् महे-अदर: वी युपान् नोऽकान पातृ र्इत पथादक्तौ निल्यमादेश:। सपूर्वीत् प्रयमान्तान्, युगंबर्गहिता, तेन म जिन: ऋकान् पातु, म वी युगान् पातु इति श्रेष:। अप्र विकल्पेनादेश:। पाणिनि. ८।१।२६।

⁺ विश्रयञ्च अन्यस्त ते विश्रयान्ये, अन्यदिति आमन्त्राभिन्नपदिमत्यये: । तं आदी यस्य तत् विशेषान्यादि, तच तत् आसन्तार्चिति विशेषान्यायासन्त्रं, पश्चात् नत्रयंशं तस्मात । चामन्त्रं सस्वाचनविहित-प्रथमान्तपदम् । विशेष्यामन्त्रापूर्वे यदासन्त्रा भानलामित्रपद्यपूर्वेष यदामलाम् एतद्भयमित्रादामलात् परयो ग्रीमटकाटीरेते त्रादिशान स्य:, ततथ पूर्वपद ग्हितान् विशेषनापूर्वाच भागन्द्रशत् परयो न[‡]स्युरिति निष्कर्ष:। पाणिनि: ८।१।०२,०३।

[‡] ग्रमीऽभान् रच दात उदाह्वय, प्रत्युदाहरति हे लचीग्र सेव्य नीऽकान् भव. हेसर्थ नीऽक्यान् अव, लच्चीशिति निशैष्यपूर्वात् सेच्य दूत्यामनद्रशत् परत्या

सुपात् सुपादी सुपादः, सुपादं सुपादी। *

२२३। पात् पत् पौ । (पान ।रा, पन ।रा, पौ ७।)।

पादः पत् स्थात् पौ परे। सुपदः सुपदा सुपाइरामित्थादि। वि (२११) चुिङ्गि कुङ्। (५०) नस्य नः। (५१) नोर्ङः। (१८३) स्थान्तस्य लुप्। प्राङ्गाञ्चो प्राञ्चः, प्राञ्चं प्राञ्चौ। एवं क्रञ्जतिर्थाञ्चोदञ्चादयः। ॥ ं

२२४। अचोऽह्वोपो ध्या

(श्रव: ६१, श्रक्षीप: ११, घं: ११, च १११)।

धर्चोऽकारस्य लोपः स्यात् पौ परे, पूर्वस्य च र्घः।

प्रतीचः प्रतीचा प्रत्यग्भ्यामित्यादि । §

निधेधी नाभृत्, एवम् ऋव इत्यनामन्त्रापूर्व्वात् भव्वे इत्यामन्त्रात् प्रस्तया निबेधी नाभूदिति।

- असमी पादी यस्थित निग्रंड (३४७) पादस्थाने पादः अपदिश:। सुपात् सुपाइ इति च सिंडान्तकौसुदी।
- † (६४%) पादस्थाने पादिष्टपाइणव्दस्य पद्स्यान् पौ परं इत्यर्थः । स्त्रियां सुपदी, विपदीत्यादि । क्रीवे विपदी वसुनी इति । योगविभागान् विपदा इत्यपि । पाणिनिः ६।४।१२० । इति दकारानाः ।
- ‡ अन्तु गतिपूजनयीतित्वस्य किपि (५६८) पूजायंत्वात्रकीपाभावे प्रान्त् इति । सिङ्गम् ; गत्ययंस्य तृननीपे प्रात् इति । सिङ्गम् ; गत्ययंस्य तृननीपे प्रात् इति । सिङ्गम् ; गत्ययंस्य तृननीपे प्रात्त इति । सिङ्ग प्राची प्राच्च प्रति । स्वाः प्राचा प्राज्ञस्यां प्राज्ञस्य च प्राचः प्राचा प्राग्नस्यां प्राज्ञस्यते । सिर्थेङ्, उत् ज्ञस्य स्वतीति उदङ्, स्वांच किपि कपम्।
- § भच्डित गत्यर्थान्चधातीः क्रियि ग्रहणम्। धंयेति सक्षवपरो विधिः, तेन
 स्वभावदीर्थादि भक्नोपः स्थात्, यथा नदीचः गोचः इत्यादि । गोच इत्यव पूर्वे

 स्वभावदीर्थादि भक्नोपः स्थात्, यथा नदीचः गोचः इत्यादि । गोच इत्यव पूर्वे

२२५ । तिर्थ्यगमुम्यगदम्यगुद्रचां तिरञ्चा-मुमुईचादमुईचोदीच:।

(तिर्थंक — उद्वां ६॥, तिर्य — उदीच: १॥) ।

एकामेते क्रमात् स्यु: पौत्परेत

तिरयः तिरया तिथीग्भ्यामिलादि ।

असुसुद्देचः असुसुदेचा असुसुयग्भग्नामित्वादि । एवसदसुयङ् । उदीचः उदीचा उदग्भ्यामित्वादि । श्रेषं पूर्ववत् । *

(१५४) मक्राजिति चस्य वले, तिविभित्तस्य मस्य सले, (२१३) स्थादे: सो लोपः। सुबट् सुबड् सुबबी सुबबः इत्यादि। पं

(१६४) नसब्महत्त इति घी: । (१८३) स्थान्तस्य लीप: । महान् महीन्ती महान्तः, महान्तं महान्ती महतः, महता महद्रामित्यादि ।

इस्साभावात दीर्षः, पत्तीपस्य विशेषात (३१) गीर्बेलस्य च न विषयः। दिवं प्रस्नतीति दिवच्गक्टस्य शनि प्रनेन पत्तीपे (२४०) वस्य उत्ते, स्रनेन दीर्वे सूब् इत्यादि। स्व प्रत्नोपो पंचिति कतेऽपौष्ट विज्ञी सची यहणं पूर्वे पदान्तरस्थिते रावस्यकलं ज्ञापयति, तेन क्वलस्य भवः—भवः, भवा इत्यादो न प्रसक्षः। प्रति भक्षतीति प्रस्यव् इति निङ्गम्। पाणिनिः ६।४।१३६, ६।३।१३६।

तिर्थंच अमुमृत्रच् घटमृत्रच् उत्व् इत्येषां स्थानि तिरस्य अमुमृद्रंच अदमुद्रंच घटनेच् इत्येतां आदिगाः क्रमात् स्यः। अमुमृद्रंच अदमुद्रंच इति सम्यभावनिद्देशात् न सित्यः। तिरः अञ्चतीति तिर्थेङ्। अमुमञ्जतीति अमुमुत्रङ्, अदमुत्रङ्। उत् अञ्चतीति उदङ्। सञ्चेच अन्चधातीः क्रिप्। प्रयं पूज्यत् पान्च-प्रव्दवित्ययः। पाणिनिः ६।४।१३८, ६।३।८४, पाराप्तः।

† सम्बद्धति, त्रम्च्य केटे इति त्रम्च धातर्रन्यमध्यः, पयात् चकारयोगात् (४६) तालव्यमध्यः। नकारजावनृष्वारपञ्चमी कृतिधात्पः। सकारजः ग्रकारय षाद्द्वर्गन्तवर्गजः॥ सत्रयतीति क्विपि (६६१) सम्बद्धारिकपं, सम्बद्धानि (१४८, १५४, चस्याने व. ततः निमित्तस्यापायं नैनिन्तिकस्याष्यपायं इति न्यायात् प्रस्थाने स्, ततः २११, १५५, ६४) -- सम्बद्धान्य इति चकारानाः।। भवन् भवन्ती भवन्तः, भवन्तं भवन्ती भवतः, भवता भवद्गा-मिलादि। शेषं महदत।

(१८५) ग्रलसोऽधोरिति—श्रीमान्, ग्रेषं भवदत्, एवं यगस-दादयः। 🕸

२२६। भगवद्ववद्भवतां भगोऽवोभो वा (भगवत्-श्रघवत्-भवतां ६॥, भगी-श्रघी-भो ।१॥, वा ।१।, घौ ७।) । एषामिते क्रमात् स्युर्वा धौ परे। है भगी: हे भगवन्, हे अघी: हे अधवन्, हे भी: हे भवन्। शेषं श्रीमदत्। 🌵 (१८२) श्रद्वेदित्युत्ते-र्न नुण्—ददत् ददती ददत: इत्यादि । एवं जचत-जायदादयः । 🕸

महामिति, महत्क पूजे इति धातीरी वादिकोऽनुपत्ययः। (१६४) नस्बमस्त्र इत्थव महती ग्रहणात् स्थादिपञ्चके दीर्घः। भवन्निति भृषातीः श्रष्टप्रलाये भवत् इति रूपं, महिस्सात् (१८२) ब्रिटच इति तृष्, (१८३) स्त्रानस्य सर्जनासस् भवत् प्रव्हस्य भाधाती डंवनुप्रत्ययेन रूपम्, तत्र सि-विभन्नी श्रक्षन्तलेन (१८५) दीर्घ:। श्रीर्वियतेऽस्य श्रीमान, एवं यश्री वियतेऽस्य यश्रस्तानित्याद्यः।

[†] भगवद्यवतीर्वतन्त्री: भवत्र उवतनस्य ग्रहणम् । भगवद्यवद्यतीवतं उस् इति क्षते उसन्तत्वात् रङ्भवितुमर्दति, तथा स्ति विसर्गस्य रेफजातत्वात् भी:पते इत्यादी (०४) स्तर्गिवस्थ विषय: स्थात्। एषां टेडीम् प्रस्थकरणन्तु स्पष्टार्धम्। हे भगी: इत्यादी हसात् सिखीपस्य प्राथमिकलेऽपि सर्व्वावयवादेशस्य वलवत्वात् प्रागीवा-र्देशे इस्परलाभावात् सिर्लापाभावे विसर्गः। शेवं स्रीमददिति—(१८५) चलसी-Sघोरित्यनेन दीर्घी भनिश्वनौत्यर्थ:। निदान्तकौसुदीमते भगोस् अघोस् भोस् एते सकाराला निपाता:। इत्तिकार-भाष्यक्रन्यते तुभी: शब्द एवाव्ययम्।

[‡] ददहिति दाधाती: भ्रत्यस्ययेन रूपं, दिस्ततवात्न नृण्। एवं जचत् जागत् भासत् चकासत् विभ्यत् जदत् प्रस्तयः। पाणिनिः ७।१।७८,६।१।६ । इति तकारान्ताः।

(१५४) म्रक्राजिति पङ्—विट् विड् विमी विमः, विमं विमी विमः, विमा विज्ञः, विमा विज्ञः

(१७८) मुहां घङ्द्रति—नक् नग् नट् नड् नशौ नग्नः, नग्नं नग्गी नग्नः, नग्ना नग्भ्यां नृड्भ्यामित्यादि ।

(१८४) खेतवाहिति डस्ङ्—पुरोडाः, हे पुरोडाः हे पुरोडः, पुरोडामौ पुरोडामः, पुरोडोभ्यामिल्यादि ।

(२११) चुङिति कुङ्—सृक् सृग् सृग्री सृगः, सृगा सृग्या-मिलादि। *

दधक् दधग् दधषौ दधषः, दधग्भ्यामित्यादि । षट् षड्, षड्भिः षड्भ्यः षसां षट्सु । 🕆

२२७। सषेसुसमनुषद्गां रङ् फेऽचः।

(सष इस् उस् सजुष् भक्तां ६॥, रङ् ।१।, फी ७।, भन्न: ६।)।

सस्य स्थाने जातस्य षस्य इसुसः सजुषोऽक्रय रङ् स्थात् फे परे, न तु चान्तस्य । क्ष

क विश्व नम्म स्थम धाती: किपि क्रमेण विश्व नम्म स्थम मन्दा:। पाणिनिः काराइइ, शराप्रका:। (१०२८) पुनः अयं दाम्यतेऽसी पुरोडाः इतिः, दामधातीः विश्वप्रत्ययेन निपातनात् सिदः। सम्बोधने (१८६) उस्को धी विति विकत्यः। पाणिनिः शराङ्गः। इति मकारान्ताः।

[†] धृष्धाती: क्रिपि निपातनात् दधृष्मश्दः सिष्ठः । ष्यानिति (४८) निपातनात् सिहम् ।

[‡] दन्यसस्य स्थाने जाती मुर्जन्यः सवः, सवय दृस्च छस्च सजुव्च प्रहन् च तेवाम्। विपठिष् चिकीर्ष् बुभूषांदीनां किपः प्राक् वले सस्याने जात-वः। (१०३२) इसुसी दन्यान्ती, यथा पिस्ट गत्यां (पिस गती प्रति सिद्धानाकीसुदी) सुपीः,

२२८ । र्व्यनचतयीको धोद्यीऽकुर्वेडखे:।

(र्वि ७), अनचत्रि ७), इक: ६), घी: ६), घी: १), अनुरक्तर: ६), अखे: ६)) । धीरिको र्घ: स्यात वि रेफे च, न तु कुरकुरी:, न च खे:, नाचि तये च। 🎄

पिपठी: पिपठिषी पिपठिष:, पिपठीम्थीं पिपठी:ष । चिकीर्षादयः । 🎌

तुस ध्वाने (तुस खण्डने इति सिद्धान्तकौसुदी) सुतू:, एवम् इति: धनुरित्यादि। सज्वी सूईन्यानतादपाती पृथगृतिः, जुषी प्रीतिसेवनयीः, जीवणं नुट्, सह जुषा वर्तत या सा सज:। चानस्य तु, लिझी ज ल स्वादे लिलिचतीति किपि लिलिट, भाव (१७५) इस्य ढले (६०२) षढ़ी: का: से द्रति ढस्य काले, (१११) कि चारित्यनेन सन: सस्य पतिऽपि चान्तवात न रङ । पिपठीमावः, आशीर्वादः, भहनिश्रम् इत्यादी विभक्तेर्लिक विरामे रङ स्थादेव। पाणिनिः पाराहरू, ६८ (कः)।

🌞 र चव चर्वतस्थिन् र्वि, रेफसाइ चर्यात् वकारीऽत्र दल्यः तेन उत्जतीत्यत्र न दीर्घ:। तसाद्वित:, तथासी य चेति तय, श्रम तय च अच्तयी, न विद्येते अच्तयी यस्नात सीऽनचतय तिस्निन्, अनच्तथीति विंदलस्य विशेषणम्। कुर्च कुर्च कुर्कुर, न कुर्कुर भक्षर्कुर तस्य । (५३८) न खिरखिमस्य । घातुसन्वसीयस्य कुरक्र-भिन्नस्य इकी घं: भ्यात्, नालि अच तयस यसात ताडमेरेफी वकारे च परे, न'तु खेरित्यर्थ:। ऋच सूचे विंदति अपदी रफस्य पश्चात् वकाग्स्य ग्रहणम्, बसीत् वि रेफी इति वैपरीत्यं ऋनचतयीत्यनेन क्रमान्वयनिगमार्थम्। उदाइरणम् यथा, रेफी परं--गी: घ: पिपठी रिल्यादि । वकारे परे--दी व्यति सोव्यतीलादि । अन च्तयौति कि - गिरी दिवी, धर्यः दिव्यमिलादि । तयसाहचर्यादव घच प्रत्यस्थैव, तेन गीरर्थ: पाशीरारमः: इत्यादी दीर्घ: स्यादेव । घी: किं -- इति: धनुरित्यादि । अकुरकरः किं — कुर्यात् कुर्यादित्यादि । अस्ते: किं — रीधाती. ठी-विभक्ती रिर्थे, ब्रीडधाती: वित्रीड, व्येधाती: संविव्यतु: इत्वादि । चनेन दीर्घे क्वतिऽपि (५५०) समस्वयद्वेत्वनेन पुनर्फ्रस्वेनैवेष्टसिद्धौ भव कथं खिवर्जनमिति चेत् – अस्य विशेषविधिलातः सभस्यधिलनेनः पुनक्रीखासमावात्। पाणिनिः पाराण्य- ७६ - गतिनदयच ।

† पठधाती: सनि पिपठिष इति धातीः क्रिपि (৩০५) इसाल्लोप इति ऋकारलोपि षिपठिष् इतिः लिङ्गम्। पियठिष्-सिः (१४८,२२०,२२८,१०२) = पिपठीः।

हो: दोषी दोष:। (११६) पाददन्तीति दोषन् वा। दोणाः स्रोष:, दोष्णा दोषा दोषभ्यां दोभ्यांमित्यादि।

(२१३) स्यारे: सो लोप:। विविट विविड विवित्ती विवित्तः, विविड्भ्यामित्यादि ।

पिपक् पिपग् पिपची पिपचः, पिपग्भ्यामित्यादि। गोरकदिधचादयः। *

सुपी: सुपिसी सुपिस:, सुपीर्थीं सुपी:षु । एवं सुतू: । विद्वान, हे विद्वन, विद्वांसी विद्वांस:, विद्वांसं विद्वांसी । 1

२२८। वसो वः सेमणुर्मतुषोः।

(वसी' ६।, व: १।, सेन् ।१।, अपि ।१।, उ: १।, मतुष्यी: ०॥)।

वसी वैग्रब्ट इमसहितीऽपि उ: स्थात मती पी च परे। विदुष: विदुषा ।(१८३)स्रम्ध्वस्विति दङ्,विदद्भग्रामित्यादि।

चिकोषीद्य प्रति, एवमिति रङप्राप्ताये, न तु सर्वेरूपमाम्यार्थे, तेन चिकीष्रशब्दस्य सुपि षस्य रङि, (१८३) स्थानस्थारादित्यत्र स्थानस्थिति भिन्नपदज्ञापकात् रादिपि रङी सीपे. (१८०) रडी वि: सुपीति नियमात् रेफस्य विसर्गाभावे (१११) किसादिति षले विकी श्रृंदित पदम्। एवं बुव्ये प्रसृति-प्रव्यस्थापि।

दीरिति दमेडें।सिरिलौणादिकस्त्रेण दीष् इति लिङ्गं बाह्वाचकम् । दीष-मस (११६,११७,१११,१०२) = दीषा: । विविद इति विश्वधातीः सनि क्विपि च विविच इति लिज्जन, विविच्-सि (१४८,२१२,१५४,१५५,६४) = विविट् विविज्। पचधातीः सिन किपि च पिपच् गब्दस्य चकारजात-ककारस्य (२१३) खीपाभावे, (१८३) स्थानस्य लुपि पिपक पिपगर्दात । गांरचतौति गोरच्थव्दस्य (२१३)रचवर्जनात् कालारः भीपाभाव:। दहभाती: सनि किपि च दिभक् दिभग्दलादि। दति प्रकारान्ता:।

[†] सुपौरिति सुत्रिति च सुपूर्वकात् पिसधातोः तुप्तधातीय किपि, इसन्तलार चसन्तवाच रङ्। विदानिति विद्धातो: महप्रवये (११०३) शतुः कखादेशे, विदस् वि (१४८,१६२,१६४,१६३) = विद्वान्। पाणिनि: ६।४।१३१, वार्भिकचा

पेचिवान पेचिवांसी पेचिवांसः, पेचिवांसं पेचिवांसी पेचुषः, पेच्या पेचिवद्वरामित्यादि । जगन्वान जगन्वांसी जगन्वांस:, जगन्वांसं जगन्वांसी। वस्रोले तिनिमत्तस्य नस्य मले—*

२३०। इनगमजनखनद्यसामुङलोपोऽङेऽच्युणौ ।

(इन गम जन-खन-घसां ६॥, उङ्-लोप: १।, घङे ७।, घि ७।, घगौ ०।) ।

एषामुङ्जीप: स्यादणाविध, न तु ङे।

जग्मषः जग्मषा जगन्वद्वामित्यादि । एवं जग्मिवान् । 🕆 (१६४) त्रघीरित्य्ते:, सुचिन् सुचिंसी सुचिंस:, सुचिन्भ्याम्। ध्वत् ध्वसौ ध्वसः, ध्वद्भाम्। एवं स्नत्।

उक्षयमा:, हे उक्षया: हे उक्षया:, उक्षयासी उक्षयास:, जन्यग्रोभ्यामितग्रादि । 🕸

^{*} सूचे वद्रति अदलग्रहणात् अकारमहितसीत उ:, इस्महितीऽपीति सति समावे। वस्वन्तात् (४४२) मतो: प्रमङ्गाभावेऽपि, मतौ परे वसीर्वस्य उविधानं ज्ञापयित "वश्वन्तात् (४४१) मृत्रेय भविष्यतीति", विद्यम्बद्धात् मतौ विदुमान् । पेचिवान् इति पचधाती: वसु: पेचिवस्-सि (१४८,१६२,१६४,१८३) -- पेचिवान्। पेचिवस् भी (१८२ १६४,५०) = पेचिवांसी। गमधातीः कसी, वकारे परे (२०२) मस्य नकारे लगन्वस् इति लिङ्गम्। वस्रीले इति—शिस परे लगन्वस्थव्दस्य वस्य जले, सएव वकारी निमत्तं यस स तिमित्तनादृशस्य नस्य, निमित्तसाभावे नैमित्तिक-स्याप्यभाव इति न्यायात्, मले, नगमृष् इति स्थिते इत्यर्थः। पाणिनिः ''वसीः सम्प्रसारणम्'' इति (६।४।१३१)। अत्र अन्तरङ्गोऽपि इड्रागमः सम्प्रसारणविषये न मधर्तते, ''त्रकतव्यहाः पाणिनीयाः'' इति परिभाषया ।

ተ यिखान परे गुणी निविद्धलाद्दर्भ चिच परे (५६५) ङ भिन्ने, एतेवां पञ्चानां धात्नां चडीऽकारस्य लीपः स्थादित्यर्थः, भयमच् भाष्यातक्रतोरेव सभवति । अज्ञोप इति कते सिक्षेऽपि चक्रलीपकरणं (१११८) दिसादुङ्लीपिन इति स्वे एवां प्राप्तायंन्। जगम्-उष् इति गम् इत्यस्य चनिन उङ्लीपे नम्मष इति। गमधातीः कसी (१०६८) निसवान् प्रति च। पाणिनि: ६।४।८८।

^{‡ (}१६४) नमन्मइत इत्यत्र धालवयनवर्जनात, स हिनसीति किपि सहिन्म्

२३१ | पुंसोऽसुङ् द्वौ | (पंतः ६।, असङ् ११[।], घो ०)।

पुंसीऽसुङ् स्थात् घी परे, उङाविती । पुमान् पुमांसी पुमांसः, पुम्भ्यां पुंभ्यामित्यादि । *

२३२। से डींग्रनसपुरुदंगोऽने इसोऽधे:।

(से: ६।, डा ११।, उशनम्पुरुदंशम्-अनेहसः ५।, प्रधे: ६।)।

एभ्यः परस्य सेर्डास्थात्, नतुधेः। उग्रना। वं

२३३ । भेर्डडनो वोशनस: । (थि: ६१, ख-खनी १॥, वा १११, उमनस: ५१) ।

उगन्म: परस्य धे डी-डनी वा स्त:, ड इत। ही उगन ही चयनन् हे उपनः, उपनसी उपनीभ्याम् । \$

इत्यस न दीर्घः, (१८३) स्थानस्य लुप् सुद्दिन् इति । व्यन्स घातीः किपि, व्यस्-सि (१८३) ध्वत् इति । उक्षानि मामाद्वानि शंसतीति (१०२८) विणि निपातनात्, जन्यग्रास्-सि (१४८,१८५,१०२) = जन्यग्रा: । ८।२।६० पाणिनिम्त्रं चकारादुन्यग्रा: ।

असुङ उदिखात (१६२) नृण्, डिखादन्यस्य स्थाने । पुम्स्-मि, असुङ् = पुनस् चि (१४८,१६२,१६४,१६३) - पुनान् । पुनस्-स्थाम् (१८३,५३,५२) = पुन्स्यां, वाप्ंथां। पाषिनिः ७।१।८८।

[🕇] उग्रना दैत्यगुरुः। पुरुदंशा इन्द्रः, भयं शब्दः उकारबद्रेफवान्। भनेहा काल:। अपनेन सेर्डा कर्ते (१२६) टेर्लीप इति टिलीप:। पाणिनि: ०।१।८४।

[‡] ख-डनीर्ड इत्, च चन् स्थिति:। छन्ननः सम्बोधने रूपचयम्—- चटनं नानं सान्तच । सान्तपचे (१८५) धिवर्जनात्र दौर्घ:। "वभे: कनितः" प्रत्यौषादिकस्चेष सम्मसारपाम उमनस्-धि (२३३,१२६) = उमन दलाहि। ''बस सम्बुती वानङ् नलीपय वा वाच्यः" इति वार्शिकन्। काशिकावृत्तीच "सम्बोधने नूग्रनसस्त्रिक्षं सान्तं तथा नान्तमयाप्यदन्तम्'' इत्युक्तम् ।

अनेष्ठा, हे अनेष्ठः, अनेष्ठसी अनेष्ठसः, एवं पुरुदंशा । विधाः, हे विधः, विधसी विधसः इत्यादि । (१८५) अधोरित्युत्तेः, सुवः सुवसी । *

२३४ । ऋदस: सेरो: । (अदसः प्रा, से: ६।, भो: १।) । अदसः परस्य से-री: स्थात्। ऋसी । 🕆

२३५ । मात् खर्घावुऊ । (मात् पा, खर्घा रा, ज कारा) । भदसो मात् परौ स्वर्घावुदूतावाप्रुतः । श्रम् । क्ष

^{*} पनेडस्-ित (२३२,१२६) च यनेडा कालः, ''निज इन एइ च'' इति श्रीणादिकस्त्रेण श्रस्तः। ''विधाजी वेध च" इत्थीणाटिकस्त्रेण श्रस्तः, यद्दा विधधातीः श्रम्पत्यये वेधस्-ित्तं (१४८,१८५,१०२) च वेधाः विधाता। सृष्ट्यंक-वसधातीः क्रिप्-प्रत्यये सुवस् इत्यत्र श्रकारस्य धालवययत्वात् (१८५) न दीर्घः।

[†] अव, पूर्वतः वाश्रव्यः कीवलं व्यवस्थावाची भूला भगुवर्तते। व्यवस्था च—
भक्युक्ताददसः से-रीव्वां, भनकम् नित्यमितिः तेन असकौ असकः पुमान्, असकौ
असका स्त्रो । असुकः असुका इत्याकाराणि पदानि त्याणिनीयार्गन "सौ भौत्वप्रतिष्ठेषः सक्तम् कादा वक्तव्यः सादृत्वघ" इति वार्त्तिकातः "असुक इत्यागमिकम्" इति कम-दीवरः । सुपद्ये तु "असकौ असुकी वा, असुकयेखेके" इति । क्रीवे तु सेर्नुकि कृते, (८३) लुकि न तविति निषेधात् (२१४) त्यदां तदीरित्यस्य (२०४) दीनीऽदसयेत्यस्य च अपासौ अदकः कुल्विति । अदम्-सि (२३४,१३३,२१४) = असौ । पाणिनिः शरारे००, वार्त्तिकाच ।

[‡] अदस्यव्हस्य मकारात् परस्थितस्य इस्तस्यरस्य स्थाने छ, दीर्घस्यरस्य स्थाने छ भवत इत्यर्थः। मान् किं, असुष्य प्रिष्यः अदःशिष्यः, असुष्य स्त्री अदःस्त्री इत्यादी विभित्तिः जुक्ति । त्रिष्ठे विश्व न त्रे ति निष्धात् (२०४) दस्य मकाराभावे मपरत्वाभावात् न छ। अव छ-यहपीनैव छत्वभागी छ ज इत्युभयग्रह्णं प्रत्ययादेश्यीः इद्रहितेनाका सवर्षों न यद्यते (७) इति ज्ञापनार्थम्। अदम्-भौ (१३३,२०४,२१,२३५) = असू। पाथिनिः ८।२।८०।

२३६ । •एरी क्वे । (ए: ११, ई ।११, क्वे ७)) ।

भदसो मात् परो व्वे निष्यत्न एकार ई स्थात्। भ्रमी। अमुं अमू भ्रमून्। (१२३) टादसयास्त्रियान्तु ना। अमुना भ्रमूभ्यां अमीभिः, अमुष्ये अमूभ्यां श्रमीभ्यः, अमुषात् श्रमूभ्यां श्रमीभ्यः, अमुष्य अमुयोः श्रमीषां, श्रमुष्यिन् श्रमुयोः श्रमीषु । *

> " इति इसन्त पुंलिङ्ग पादः।

२य पादः -- इसन्त स्तीलिङ गव्दः।

२३७ । नही धङ् भौ। (नहः ६१, धङ् ११, भौ ०)। नही हस्य धङ् स्यात् भी परे। उपानत् उपानद् उपानही उपानहः, उपानद्वां। १ (२११) चुङिति कुङ्। उणाक् उणाही, उणाग्यामित्यादि।

क पूर्वती सादित्यनवर्षते। बहुवधनस्थानजात एकार दे स्थादित्यनेन भमू स्त्रियी, भमू फल इत्यादी न स्थात्। भदम् जम् (१३३,२०४,११२,२३,२३६) = भ्रमी। भदम् भम् (१०३,२०४,१०३,२३६) = भ्रमी। भम् भम् (१०४,१०४,२३६) = भ्रमीकाः। भम् भ्याम् (१०५,२३६) = भ्रमीकाः। भम् भ्याम् (१०५,२३६) = भ्रमीकाः। भ्रमुष्यां इत्यादी (१३३,२०४,११२,२३६,१११) एवं पदिधिद्धिः। उत्तम् भ्रोम् स्थाने (१०६) स्य योम् भवतः, भाम्स्थाने (११३) साम् भवति। पाणिनिः पाराप्रा

[†] डिस्तादत्यस्य स्थाने, भाती व्याक्यायां इत्य घङ् इत्युक्तम् । भौ (८४) इति कयनात् लिङ्गस्य घातीय यहणाम् । उपानद्यतिऽनयेति क्विपि उपानत्, पादुकेल्थरैः । घीनुभनातसीत् भनज्ञ इत्यादि । पाणिनिः ८१२।३४।

[📫] कर्दे सिद्यतीति (उद्धिक किप्) उपिक्, क्लीविशेषः वेदे असिदः।

२३८। दिव ऋौङ् सौ। (दिवः ६।, भौङ् ।१।, सो २०)। दिव भौङ् स्थात् सौ परे। यौ: दिवौ दिव: । क्ष

२३८ । वास्याङ् । (वा ११), पिन ११)। दिव प्राङ् स्थात् वा श्रमि परे। यां दिवं दिवी दिवः, दिवा। १

२४० । उह्रस्युङ् । (जहिंस का, जह ।१।)। दिव जङ्स्यात् जवर्षे इसि च परे । युभ्यां । क्ष गी: गिरी गिर: । एवं पू: । §

श्रीति सरादेशतादादी वस्य त्रीकार सिविंसर्गः। गौणले चायं विधिः, तेन प्रतियौदित्यपि। यौ: सर्गः, पाकाशच। "यौ: सर्गसुरवत्मंत्रोः" इति विश्वः। पाणिनः ७११८४।

[†] अधमपि मुख्यते गौषते च, दिव्शस्य अमि यां दिवं, अतिदिव्शस्य असि यां दिवं, अतिदिव्शस्य अतियां अतिदिवं। नतु यीशस्य यामिति, दिव्शस्य दिवमिति उभयपदिनिद्धौ वाम्याक्तित व्यवेनिति चेत्र, (१७६) आ अमुससीरित्य मुख्यसैव यहणेन अतिया-नित्यस्यानुपपत्ते:। पाणिनीयाः (पाणिनिपद्मनाभक्तमदीश्वरादयः) दिव्शस्टात् यामिति पदं न मन्यते। कातन्ते तु "वाम्या" इति सुवेष पद्वयं स्यादेव।

[‡] भव विति नानुवर्त्तते भनिष्टलात्। इक्कया हि व्यवहितमप्यनुवर्त्तते भव्यविक्तमिप नानुवर्त्तते इति तालिकाः। स्थादिमध्ये सभाभ्यां विना भव्यह्मोऽसभ्यात् सभि इति न क्रला इसि-यहणं सामान्यहम्मात्राये, तेन दिवः पतिः युपतिरित्यादि । भव दिवो वकारः दान्ते स्थितो वक्तव्यः, तेन दिविमक्ति दिव्यति, दिवि भवो दिव्य- इत्यादौ न स्थात् । (१६८) स्यमोर्जुक्यपि भवतौति च वक्तव्यं, तेन सुयुक्तलिन्यादि । पाणिनः ६।१११३१ । इति वकारान्ताः।

[§] निरतौति गृथातीः किपि, निर्-िष (१४८,२२८,१०२) = गीः, वाकाम । निरौ इत्यादिष रेफस अच्परलात् न दीर्घः।

(१५०) स्त्रियां विचतुर इति चतसः। चतसः चतसः चतसः। चतस्यः चतस्यः चतस्यां चतस्यः। *

(१३३,२४८) टेरले सत्याप्। का ने का: इत्यादि, सर्वा-वत्। एवं यद्। १

(२०१) इट्मोऽयमितीयं। इयं इमे इमाः, इमां इमे इमाः, अनया श्राभ्यां श्राभिः, श्रस्यै श्राभ्यां श्राभ्यः, श्रस्याः श्राभ्यां श्राभ्यः, श्रस्याः श्रनयोः श्रामां, श्रस्यां श्रनयोः श्राम् । ॥

स्रक् सजी सज:, सग्भ्यां। §

(१३३,२४८) टेरले श्राप्। स्था खेत्याः इत्यादि सर्वी-वत्। एवं तद् एतद्। ¶

वाक् वाची वाचः, वाग्भ्यां।

त्रप्राब्दो ब्वान्तः । (१६४)नसब्मन्दनद्गति र्घः । त्रापः,त्रपः ।**

२८१। स्यपो दङ्। (मि ७, वप: ६), दङ्।१)।

अपो दङ्स्यात् भि परे । अद्भिः, अद्भगः अद्भगः, अपां असु। 🕆 🕆

चतुरशब्दः स्त्रीलिङ्गानिशब्दवतः। इति रकारान्ताः।

[†] किम्-सि (१३३ २४६ १४८) = का इत्यादि।

 $[\]ddagger$ इदन-घी (१३३,२०४,२४८,१४८,२३) = इसे । इसा-टा (२०५.१५०,३५) = अन्या। इसा-यां (२०६) = घायां, इत्यादि सर्व्यावत् साध्यम् । इति सकारानाः ।

[§] स्रज्यते इति स्रज्ञधातीः किपि, सज्सि (२११,१४८) = सक्माला। इति जकारानाः।

[¶] त्यदः सि = त्या सि (२१४) = स्था। द्रति दकारान्ताः।

[∥] जचतिऽसाविति वनभातीः क्तिपि, वाच्सि (२११ १४८) = वाक् वाक्यम् । प्रति चकारानाः ।

^{* *} व्यान्त इति भव्दमिस्सभावादुक्तम्। आपी कलानीत्वर्थः।

^{† ।} चन याशव्दस्य नानृहत्तिः । चन प्रकरणवलात् भ इति स्यादेरैव, तेन चन्धस्य-नित्यादौ न प्रसङ्कः । गौ.णेऽस्ययं, तेन स्वक्षप्रानित्यादि । पाणिनिः ७।४।४८ । इति पकारान्ताः ।

दिन् दिगौ दिगः, दिग्धामित्यादि । एवं दृक् । * विट् विषौ विषः, विड्धामित्यादि । † सजूः सजुषौ सजुषः, सजूर्धां सजूःष । एवं ग्रागीः । इ

(२३४) घदसः सेरीः। जसी युम् यम्ः, यम् यम् यम्ः, यम्या यम्भ्यां यम्भिः, यमुष्ये यम्भ्यां यम्भ्यः, यमुषाः यम्भां यम्भ्यः, यमुषाः, यमुषोः यमुषां, यमुषां यमुषोः यमुषु। §

इति इभन स्वीलिङ्ग पाद:।

३य पाद: — इसन्त क्षीवलिङ्ग ग्रब्द:।

इति श्वार्।नः: |

[🕆] दिश्ह्य लिष्घातुभ्य: किपि दिक् हक् लिट्डति पदानि ।

[‡] नुष्धातो. किपि जुट् प्रीति', सह जुषा वर्तते इति सजुष्-सिर्४ड-,२२०,२२८, १०३) — सजूः। शा-कास धाती किपि भागीरिति. इसन्तलात् रङ्, विश्वी च वैधा' स्त्री लागीहिताशंसाहिदद्वयीरित्यसरसिंहेन दन्यान्तसध्य पठितलात् । इति पकारान्ताः।

[§] असी असू असू इत्यादिषु भदन्याच्दस्य सि-भादि-विभक्तिष् — (१३३,२४८,२१४, २३४,२०४,१४८,१६०,१५२,१३०,११३,२३५) इत्यादीनि स्वाणि यथायथं प्रवर्त्तन्ते ! इति सकारान्ताः ।

ण भोभनोऽनङ्गान् यिधान् गोष्ठे तत् स्वनडुन्। स्वनडुङ्भौ (१६१) = स्वनडुङी। स्वनडुङ्-जम् (१६२,१६३,१८१,३५,५०) = स्वनडुंहि। इति इतारान्ताः।

[∥] चतुर्जम् (१६२,१८८१,३४) -- चलारि। क्रति रकाराला ।

२८२। स्तीवे नो लुब्बा धौ।

(क्रीवे ७), न: ६।, लुप्।१।, वा।१।, घो ७।)।

नपुंसके नस्य लुप् स्थात् वा धी परे। हे ब्रह्म हे ब्रह्मन्, ब्रह्मणी ब्रह्माणि। अहः अङ्गी अहनी अहानि, अहीस्थां। *

किं के कानि। इदं इमे इमानि। पं

असक् असजी असचि, असानि असचि, असा असजा असभ्यां असम्मामित्यादि । ६ जर्क जर्जी जन्जिं जर्जि ।

सुवल् सुवली सुवन्ति सुविला। (१६२) नुस्पयमित्यवं भत्तसन्तरलयोरादी तुवानुण्। उकारितो नुर्विन्दुमात्रस्य नास्था। §

^{*} (११८) नी लुप् फेऽधाविति धौ निवेधादप्राप्ते विभाषेयम्। लुप्करणात् तदा दिविधेर्निवेधे हे धनि इत्यादौ (१००) सधौं विति ग्रुणो न स्थात्। ''सम्बुदौ नपुंसकानः न वा वाचः'' इति वार्तिकम्। षडन्-सि (१४८,२२०,१०२) = श्रष्ठः। षडन्-भै (१६१ ११०) = भ्रष्ठो, वा श्रप्तनी। षडन्-सम् (१६२,१६४) = श्रष्ठानि । श्रष्ठन् स्याम् (२२०,१०२,६८) = श्रष्ठोध्यां। इति नकारानाः।

⁺ किम्-सि (१६८) - किम् । किम्-सी (१३३,१६१,२३) = की । किम्-सि (१३३,१६१,१६३,१६३) = कानि । इट्स्थ्रस्ट: किम्-श्रस्टवत्, (२०४) दी म इति किश्चर: । इति सकारान्ताः ।

[‡] षस्रज्-िस (१६८,२११) = षस्रक् [रक्तम्] । षस्रज्-सम् (११६,१६२,१६४) = षस्रानि, यसादी निषेधात् (१६३) न तृष् । वा षस्रनादेशे षस्रज्-सम् (१६२,१६१ ५०,५१) = षस्रिहा । असा (११०) । षस्र्यां (११८) ।

[§] जर्जधातीः सु-वल्गधातीय किपि जर्ज-सुवल्ग ग्रन्दी । जर्ज सि (१६८,१११ - जर्ज्य मी (१६१) - जर्ज्यो । जर्ज- जस् (१६२,१६३) - जर्न्जां, वा कर्जि इति जकारानाः । सुवल्ग-सि (१६८,१८३) - सुवल् । यंग्यते इत्वादी (८१०) जम् जपत्रभित्यादिना यथा नृत्तित्यनुद्धारागमः भियते, (१६३) नृष्यमेत्यच न तथा, पर छकारिता नृ नेकारः न नु विन्दुमाण्य चनुस्वारस्य संज्ञययः । चनुस्वारागमधन्दि वार्षाय इद्मुतम् । इति गकारानाः ।

त्यत् त्ये त्यानि । एवं यत् तत् एतत् ।(२०८) अनूक्षी तु एनत् ।
गवाक् गोची गवाचि । तिर्थक् तिरची तिर्थिचि । एवं परे ।
यक्तत् यक्तती यकन्ति, यक्षानि यकन्ति, यकभ्यां यक्तद्भाःमित्यादि । एवं यक्तत् । ददत् ददती । %

२४३। हे: शतनुंग् भौ।

(दे: ५), भ्रतुः ६।, तुगाशः, भ्री अ)।

है: परस्य गतुर्नुण्स्यात् वा भी परे।
ददन्ति ददति। एवं यचत्-जाग्रदादयः। तुदत्। १

२८८ | त्रादीपो: | (भात था, ई ईपी: १)। प्रवर्णात् परस्य मतुर्वेण् स्थादा ईकारे ईपि च परे ।, तुदन्ती तुदन्ति । भात् भान्ती भाती भान्ति । ध्रं पचत्।

[«] एनदिति (१६८) भनी सुकि कते, (८३) सुकि न तर्नित निषेधेऽपि (२०८) इदैत्योरेनादेशिक्षानसाफल्यार्थम् एतभागस्य एनादेशः स्थादेन, (१३३) टिरलाभावे दकारिस्थितः। (''एनदिति नपुंसकेकश्चने'' इति वार्त्तिकम्)। इति दकारान्ताः। गामस्रतीति किपि गवाक्। गवाच्-भौ (१६१,२२४) = गोची । सिदानकौसुद्याम् भन्धातीः गतिपूजनार्थभेदेन विविधानि पदानि प्रदर्शितानि, यथा—गवाक् गवाग्, गोभक् गोभग्, गोक् गोग्; गवाङ् गोभङ् गोङ; गोची, गवास्रौ गोभधी गोधी; गवास्ति गोश्चि गोश्चि गोश्चि तरः भञ्चतीति तिर्थक्। तिर्थक् भौ (१६१,२२५) ⇒ तिरस्रौ। एवं परे, त्रदसुयगादय इत्थवः। इति चकारान्ताः। यक्तन् रोगविशेषः, शकत् तास्त्रयादिः विष्वावाषकः, स्वभयन (११६) पाददनेति यकन् शकन् भादेशः। दददिति दाधातीः श्रवप्रस्थे क्ष्यम्।

^{† (}१८२) ब्रिट्च इति वेनिषेधादप्राप्ते विभाषेयम् । दहत्-जस् (१६२,२४२) == ददन्ति, वा ददति । तुद्धातो: सतरि तुदत् । पाणिनि: ७।१।७८ ।

[‡] ईपः प्रथक्य इचात् ई इति (१६१) कीवादी इत्यनेन भादिएस ईकारस यह छं,

२८५ । ऋप्यनी नित्यं। (भप्यनः ४), नित्यं १)।
अपी यनस परस्य मतुर्नित्यं नुष् स्थात् ई ईपीः परयोः।
पचन्ती पचन्ति । दीव्यत् दीव्यन्ती दीव्यन्ति । *

स्वप् स्वपी। (१६४) नसब्स हनोऽधो र्घः । स्वाम्पि, स्वपा। (२४१) भ्यपो दङ्। स्वद्धिः । १

(२२९) सषिति रङ्। धनुः धनुषी धनूंषि। एवं इवि:। पयः पयसी पयांसि, पयसा पयोभ्यां। श्रदः श्रमू श्रमूनि। दी प्रीवत्। क्ष

ुद्रति इसन्त क्षीवलिङ्गपादः।

तेन तुद्त रदं बुदतीय नित्यादी न प्रमणः । ची विभन्नी तुद्ती तृद्दी दित चनेन या तृष् । जिस पूर्श्वेष (१६३) नित्यम् । भाषाती. भ्रत्यप्रत्ये भात् । एवं या, या, स्वा, स्वा, द्वा, रा, रा, जा. च्छा, मा, प्ता, घातभ्यः भ्रत्यत्ये क्ष्मम् । क्षादिराकार जो पेऽपि स्थानि व्लात् क्षीणनी की षाती द्वादि । जुनतीत्यत्र तु प्रथम नाकार जृति कते तुम् न भवति दित गी थीचन्द्रः । चत्र स्वद्यत्ययस्थापि वा नुण् यक्त स्वं, तेन यास्यती स्वास्यनी भविष्यती द्वादि । पाणिनिः ७।१। ८०।।

धातीर्विहतात् पपः यमय परस्य त्यंः, गच्छती गमयनी पुत्रकास्यनी जानीयनी इत्यादयः। मालिशाचरनी मालानी, वीणेवाचरनी वीणानी इत्यपि दुर्गासंहः। विच्छथातीः (६३०) विच्छामृतिपणी वाय इति चायपचे ग्रापि विच्छायनी इति नित्यं, विक्तत्यपचे तुद्दितात् में (२४४) विच्छनी विच्छती इति । कुर्वनीति धातृपागयणे, तइहमामसस्यतमिति गीयीचन्द्रः। पाणिनिः ९।१।८१ इति तकागनाः।

[†] श्रीभना चापीयण सरसि तत्स्वप्, (४०४) नार्चीयां स्वतिरित्यादिना समा-सालनिवेषः। स्वप्-जम् (१६२,१६३ १६४,५०,५१) = स्वाम्पि । इति पकाशन्ताः।

[‡] धनधातीकम् धतुः । इधातीरिस् इतिः । पत्र इति (१६८०) सेर्लुकि. (८३) खुकिन तत्रेति निवेधात् (१८५०) न दीर्घः । एवम् घटः इत्यत्रापि (२१४) दः सीन स्थात् । अमृतिसक्तौ च (२०४) दो मीन स्थात् । इति सकारान्ताः ।

४र्थः पादः—-म्रव्यय-ग्रन्दः ।

२४६ । व्यास्त्रक्तः । (व्यात् ४।, लुक् ।१।, तीः ६।)।

व्यात् परस्याः तीर्जुक् स्थात्। स्वः प्रातः, चवा हा है उचैः उचकैः धिक् धिकत्, प्रपरा, हरिव्रत कला। *

२४७। उदः सः खास्तमाोः।

(उद: ५+, सः ६+, स्थानमी: ६॥) ।

उदः परवीरनयीः सस्य लुक् स्थात् । ज्ञानं उत्तभाः । न

अभ्ययानां लिङ्गकार्याभावात् पृंलिङ।दिवादेष्वतृक्वा पृष्यगुपन्यामः क्षतः । तथाच — सद्दर्भाविष लिङ्गेष सब्बासुच विभक्तिषु, वचनेषुच सब्बेषु यद्ग व्येति तद्व्यय- मिति प्राचः । भलिङानामव्ययानां विशेषणकात् न नपृंसकलनेव सामान्यलाद्यपुंसक- मिति यचनात् यथा शीभनं प्राविष्ति । पाणिनिः २।४।८२।

विभक्ते ज्वरणात विभक्तिनिमित्तकावाये न छात्, तेन यः नम इत्यादी सेर्जुकि (१८५) भलसीऽघोरित दीवाँ न स्थात्। विसमं सु विराममाधित्य स्थादेव। एवं, खलु नतु इत्यादी (१२२) ग्राधिं भिस्यादिना गुणी न स्थात्। भ्रव्ययात् विभक्ष्यपत्तिः प्रयोभनन्तु पदलं, तेन छद्गक्ति छत्मज्ञतीत्यादी तकारस्य १६८,५१ दकार-नकारी स्थाताम। एवं, विभक्तिजुक्यि विभक्ष्ययं विद्यमानलात स्वगंक्कित स्वः पततीत्थादी स्वगंस्य क्षमंतादिप्रतीतः स्थादेव। गौन्छेत् न विभक्तिजीपः, तेन प्राप्तं स्वः यैसी प्राप्तस्वः इति। भ्रवः (१४) संज्ञाम् नेक-चत्र्विधाव्ययानां क्रमेणीदाइग्णं दर्भयति स्वः स्वादि। छच्चतैः धिकत् (२०८) टेः पूर्वे अक् त्यकस्य दय। इरिरिव इरिवत्, च्यत्रत्ययान्तः। क्रसातोः क्षाच् कला इति। भ्रव पाणिनिना "तद्वितथासर्वेवभिक्तः" (१।१।६८) इति स्वेण तस्यमासान्तपदानामि भव्ययलं स्वीकृतम्।

† पाणिनिः प्ाधि ६१। भन कः स्थाता कः सम्भः इत्यादी विधर्भस्य वा लीपी वक्तव्यः। यथा कस्थाता कसम्भ इत्यादिः। "खस्था भविन मिय जीवित घार्णराष्ट्राः" इति वेणीसंद्वारे। "खर्परे प्ररिवा विसर्गलीपी वक्तव्यः" इति वार्तिकम् ; "वा यरि खर्परे" इति पद्मनाभः ; "कादियुक्ते प्रषमे लुग्वा" इति कमदीश्वरः ; "श्रष्मेष्य-घोषपरेषु विसर्ज्ञनीयस्य" इति यीपतिदक्तस्य ।

मुन्धबोधं व्याकरणम् । [३प. ४पा. २४८ स.

२८८ । वातोऽवाष्यो:।

१२८

(वा ।१।, श्रतः ६।, श्रवाप्यीः ६॥)।

त्रवाप्यीरकारस्य लुक् स्थात् वा। वगाष्टः त्रवगाष्टः, पिधानं श्रपिधानम्। *

र्ति व्यपादः ।

द्रति इसन्ताध्यायः।

^{*} चवायी विंकलीन चकारलीपस्य इड सामान्यती विधानं, केचित्तु वतरित वतीर्ण वतंसः वगाइः, पिनञ्चति पिनदः पिदधाति पिधानं क्षेत्रलमेतानि पदानि विकल्पेन भवनौति वदन्ति । अत अपेक्पसर्गसीव यहणम् । "वष्टि भागुरिरक्षीपमवाष्योकप सर्गयो." इति भागुरिमतम् ; "त्रिपेरलुग्धादौ वा" इति जमदीश्वरः ; "त्रवसायलुव किचिदिति वक्तव्यम्" इति गीयीचन्द्र: ; "घाञनद्वयीरपेकपसर्गस्यादैः", "चवस्य तंसे' इति च श्रीपतिदत्तः।

प्रचलिताव्ययग्रद्संग्रहः।

	শ্ব	चनरा	ব্যতিরেকে। মধ্যে।
۳	·	अन्देख	বিনা। মধ্যে।
٦	অভাব, ভেদ, অপ্রাশস্ত্যা,	भन्यत्	অগ্যপ্রকাব।
	केष९, मापृश्च, विरत्नांश*।	षन्यतरेद्युस्	হুয়ের এক দিনে।
श्रकसात्	অকারণ, হঠাৎ। '	भन्यतस्	অন্তর। অন্য হইতে।
भ गतस् ========	ख्यं थरम । मन्त्रूर्थ ।	भगव	অগু স্থানে। বিনা।
प्रघीस्	সম্বোধন-পাপিন্।	श्रनांथा	স্বন্ধবর।
শঙ্গ	সম্বোধন। পুনঃ।	चन्यदा	অক্ত সময়ে।
षविरात्	শীর্ষ।	1	विद्युम्, अधरेद्युम्,
শ্বত্ত	আভিমুখ্য।	चपरेबुस्	
श्रञ्जभा	শীঘ। যথার্থ।	अपि	সমূচ্য। প্রশ্ন। সন্তা-
श्रदृष्ट	উচ্চ শব্দ।	111	वना। निका। सङ्घा
अ तस्	অতএব।	प्रभितस्	সর্ব দিকে। উভয়
भिति	श्रक्षं। नङ्ग्न।	गामवस्	
त्रतीव	অতিশয়, অধিক।	1	দিকে। অভিমুখে। সংক্রমা সীম্মা
% 4	এই, এই স্থানে।		সাকল্য'। শীঘ্তা।
षथ, त्रयो		त्रभीचलम्	পুনঃ পুনঃ।
	আরম্ভ। সাকল্য।	चमा .	সহিত। সমীপ।
षय विस्	আর কি, ইা।	अभुव	প্রলোকে।
षद्वा	সত্য, যথাৰ্থ।	শ্বি	সম্বোধন। প্রশ্ন। অনুনয়।
षय	আজি, একণে।	प ये	ওহো, শ্বরণ। সম্বোধন।
श्रधरात्,श्र	धरंग नीटि ।	चरे, चरेरे	मस्योधन ।
भधस्, भध	स्तान नीरह।		পূৰ্বেৰ, পশ্চাং। বক্র।
अधुमा	हेमानीः ।	चलम्	ব্যৰ্থ। সমৰ্থ। ভূষণ।
भनु	পশ্চাৎ। সাদৃশ্য।		•পর্য্যাপ্তি। বারণ।
प नुपदम्	অনন্তর।	श्रवश्यम्	নিশ্চয়।
पन तस्	(শংষ, न्।नकरन्न।	अथवाक ्	দক্ষিণ দিক্,দেশ,কাল।
•	गर्धा, त्मर्या अञ्चः कत्रन ।	यसकत्	পুনঃ পুনঃ।

অথের মধ্যে যে বে হলে বিশেষ্য বিশেষণাদি শব্দ ব্যবহৃত হইল, সেই সেই পলে তথাচক ব্রিতে ছইবে।

प्रभम् थार्नान, नाम । प्रश्न थार्का । प्रश्न थार्का । प्रश्न अप्रार्म् अर्के श्रीकात । प्रश्न अप्रार्म् अर्के श्रीकात । प्रश्न अप्रार्म अर्के श्रीकात । प्रश्न अप्रार्म अर्के । प्रश्न अप्रार्म अर्के । प्रश्न अर्वे । प्रत्न अर्वे ।		marrial makes .		
चित्र ।	ष्रश्तम् 	অদর্শন, নাশ।		
प्रवह, प्रवहा			•	
चहे गर्थायन। चही जार्र्या। चहीत जरूनी, जार्था। चहीत जरूनी, जार्था। चहीत जरूनी, जार्था। चहात ग्री प्राः चहात जरूनी, जर्थ। चहात ग्री प्राः चहात जरूनी, जर्थ। चहात ग्री प्राः चहात जरूनी, जर्थ। चहात जरूनी, जर्थ। चहात जरूनी, जर्थ। चहात जरूनी, जर्थ। चहात जरूनी प्राः चहात जरूनी जरून। चहात जरूनी जरून। चहात जरूनी जरून। चहात जरून। जरूनी जर्मी				
प्रश्नी कार्न्य । प्रश्नीय क्रिक्त । प्राण्व क्रिक्त । प्रश्नीय क्रिक्त । प्राण्व क्रिक्त । प्रश्नीय क्रिक्त व्या क्रिक्त । प्रश्नीय क्रिक्त व्या क्रिक्त । प्रश्नीय क्रिक्त व्या क्रिक		-\	•	
सहीवत करूণी, जारी। सहाय भीष्ठ। प्रा वित्रिक, (कांशा शिष्ठा । प्रा प्र प्र	त्र ह	· ·		
भाग	श्रहो	আ'*চৰ্য্য।		
সা	ऋडी वत	করুণা, আহা।	उभयद्युस्, उभ	
भा अवग, ७-७। भाङ् जीमा। वाशिश । केवंद। भाम् श्रीकांव । भाः विविद्धित, कारी श्रीकांव । विवा जम्म शर्म । भारात पृत । ममीश । भारात प्रता । ममीश । भारात प्रता । ममीश । भारात प्रता । समीश । भारात प्रता । ममीश । भारात प्रता । ममीश । भारात प्रता । भारात ।	चक्राय	শীঘ।	`.	
पा	স্থা		उररी, उरी, उर री श्वीकांत्र।	
भार वितिष्ठ, दर्भाश शिष्ठा। भार वितिष्ठ, दर्भाश शिष्ठा। भार पृत्र। प्रभीश। भारत प्रति अभाग। भारत प्राचित परमार। अभा। द्वारी, भारोसित परमार। अभा। द्वारी, भारोसित परमार। अभा। द्वारी प्रति ।	श्रा	স্মরণ, ও-ও।	उषा	নিশা-শেষ।
भाः	पा ङ्	সীমা। ব্যাপ্তি। ঈষঁৎ।	•	জ
चारात	त्राम्	স্বীকার।	ज	ছঃখ।
प्रारात	षा:	বিরক্তি,কোপ। পীড়া।	ज म्	গৰ্ম্ম। ক্ৰোধ। প্ৰশ্ন।
चाहित् প্রাকশ্য । चाही, षाहोसित् সন্দেহ । প্রশ্ন । इत्ते	चारात्	দূর।সমীপা।	जररी, जरी,	
पाहो, पाहोस्वित गत्मर । श्रिम । प्रति (थम। किंगा। प्रति (थम। किंगा। प्रति (अरे। तिया। अरेटरञ् । प्रति (अरे। तिया। । प्रति (अरे। तिया। । प्रति (अरे। । प	चाविस्	প্রাকাশ্য।		
प्रतरेद्धम् অন্ত দিনে। प्रतरेद्धम् অন্ত দিনে। प्रति এই। শেষ। এই/হেতৃ। प्रति এই শেষ। এই/হেতৃ। प्रति পরম্পরা। प्रति পরম্পরা। प्रति পরম্পরা। प्रति এইপ্রকার। प्रति अবধারণ। प्रति अর্গ। प्रति अर्ग। प्रति अर्व अर्ग। प्रति अर्ग। प्रति अर्ग। प्रति अर्ग। प्रति अर्ग। प		, इ	ऋते	विना ।
प्रति				ए
प्रित	द्रतरेव्स	ু অন্ত দিনে।	ए	স্মরণ। সম্বোধন।
प्रत्यम्	- '	এই। শেষ। এইহেতু।	एकटा	এক সময়ে।
মহানীন এক্ষণে। মন সদৃশ। বাক্যালহার। মন্ থেদ। বিস্মা। ইম্ ইম্ ইম্ব স্থান। ত বিতর্ক। পাদপূরণ। কোধোক্তি। ভ ন্তাধোক্তি। ভ ন্তাধোক্তি। ভ ন্তাধাক্তি। ভ নিক্তিমাক্তি। ভ নিক্তমাক্তিয়াক্তিয	इतिह	পরম্পরা।	एतर्हि	এক্পণে।
	द त्यम्	এইপ্রকার।	एव	
सम् (थम। বিশ্বর। द्रे च শ্বরণ। সম্বোধন। च শ্বরণ। সম্বেগন। च শ্বরণ। च শ্বরণ। সম্বেগন। च শ্বরণ। च শ্বরণ। সম্বেগন। च শ্বরণ। च শ্বরণ। च শ্বরণ। সম্বেগন। च শ্বরণ। च শ্বরণা বর্তমান বংসর। च শ্বরণা বর্তমান বংসর। च শ্বরণা च শ্বরণা বর্তমান বংসর। च শ্বরণা বর্তমান বংসর। च শ্বরণা বর্তমান বংসর। বরণা বর	दरानीम्	এক্ষণে।	एवस्	এইপ্রকার। সন্মতি।
	द व	সদৃশ। বাক্যালন্ধার।		সাদৃশ্য। অবধারণ।
ইবন অল্ল। ত ত বিতর্ক। পাদপূরণ। কোধোজি। ত অধক। ত অধক। ত অধক। ত মান বংসর। মী সংখ্যন বুজন বুজন বুজন বুজন বুজন বুজন বুজন বুজ	द्रस्	থেদ। বিশ্বয়।		
ইবন অল। ত ত স্মী ত বিতর্ক। পাদপূরণ। েক্রাংধাক্তি। ত ক্লকীন্, ত স্বীন্ত উচে। অধিক। ত্র সংশ্র। সমুচ্চর। ত স্মী		द ्र	ð	স্মরণ। সম্বোধন।
ত সী ত বিতৰ্ক। পাদপূরণ। কোধোক্তি। ত অবকীন, ভবীন্ উচে। অধিক। ত্বন সংশয়। সমুচ্চয়। সী				
ত বিতর্ক। পাদপুরণ। কোধোক্তি। তক্তমান্তিক। তক্তমান্তক।		অন্ন।	ऐषमस	
ट्रकाट्यांकि । च बक्ते म्, प्रचेष् चे छे छ । अधिक । च त गश्भाग्र । ग्रमु अभिम् अभि । च त गश्भाग्र । ग्रमु अभि । च त गश्भाग्र । ग्रमु छ ।		•	,	বর্ত্তমান বৎসর।
च च के स्, च च स् च च च च च च च च च च च च च च च च	र्द्रषत्	उ	, a	वर्खमान वरमत्र । भो
चत रःশय। সমুচচय। श्री	र्द्रषत्	ভ বিভৰ্ক। পাদপুরণ।	् भी	বর্ত্তমান বংসর। দী সংখোধন। স্মরণ।
1/14/1/1/2011	र्द्र षत् उ	ত্ত বিতর্ক। পাদপূরণ। জোধোক্তি।	् भी	বর্ত্তমান বংসর। দী সংখোধন। স্মরণ।
जाता, ज्याकालाय प्राना (१५४) । अ। १०११मा	द्रंपत् ख खबनैस्, उबैस्	उ বিতর্ক। পাদপূরণ। ক্রোধোক্তি। ্উচ্চ। অধিক।	् भी भीम्	বর্ত্তমান বৎসর। নী সংস্থোধন। স্মরণ। প্রেণব। সম্মতি।
	द्रंपत् छ डचकौस्, डचैस डत	ড বিতর্ক। পাদপূরণ। ক্রোধোক্তি। উচ্চ। অধিক। সংশয়। সমুচ্চয়।	् भी भीम् थ	বর্ত্তমান বৎসর। দী সংস্থাধন। শ্বরণ। প্রেণব। সম্মতি। দী

	-	चतुर्द्वा	চারিপ্রকার। চারিবার।
कचित्	ক্ষ প্রশ্ন। ইচ্ছাপ্রকাশ।	चित्रका । जातवात । चिरम, चिरेण, चिराय, चिरराचाय,	
का ची	ज् श र्थ।	चिरात, चिरस, चिरे हित्रकाल,	
कति	কন্ত, কিয় ৎ ।	11306	ৰহুকাল।
कथम्	কিরূপে।	चेत्	यिन ।
•	नदाचन, कदाचित्, कर्डि,		
	चित् কখন, কবে।) 	ज
कम्	জাল। মস্তক।	जातु	কদাচিৎ, কখন।
कामम्	যথেষ্ট। অকামান্ত্ৰ্যতি।	जोषंम्	নীরব। স্থ।
कारिका	মৰ্য্যাদা। যত্ন। পীড়া।		भ
कि च	কিছু, আরো।	भारिति	শী घ ।
किञ्चन, किञ्चित् অ ञ्च, কিয়দংশ। '		0	त
किन्तु	পরন্ত ।	तत्	তন্নিমিত্ত, তবে।
कि ष्ठु	সংশয়।	ततस्	। তদনস্তর। তরিমিত্ত।
िकम्	কুৎদিত। প্রশ্ন। বিতর্ক।	तच	তথায়।
किसुत	অতিশয়। বিকিল।	तथा	সেইপ্রকার। সাদৃশ্য।
	'ৰিন্বিতৰ্ক, সন্তাবনা।	तदा, तदानीम ७९कात्म, ७थन।	
किंवा	অথবা।	तावत्	পবিমাণ। সাকলা।
किल নিশ্চয়। অলীক। সম্ভাবনা।			পর্য্যন্ত। অবধারণ।
	প্ৰসিদ্ধি। ঐতিহ্।		বাক্যালৈক্ষার।
	অন্থনয়। হেতু।	तिरस्	বক্র। অপ্রকাশ।
\$	কুৎসিত। পাপ। ঈষৎ।	_	অন্তৰ্ধান।
कृतस् कि	হেতু। কোথাহইতে। কোথায়	तिर्थक्	বক্ত। পার্শ্ব।
कुच	কোথায়।	3	কিন্তু। নিশ্চয়। ভেদ।
জু चित्	কোন স্থলে।		পাদপূৰণ।
के भाके भि	চুলাচুলি।	त्राम,त्रानाम (योगी, श्रित ।	
क	কেথায়।	नेधा, नैधम्	তিনপ্রকার।
, काचन, का	चित् কোথাও।		द
	ख	दिविषतस्, द	विषात्, दिविषेत ডोनि
खबु	নিশ্চয়। বাক্যালস্কার।	`	मि टक ।
	নিষেধ। প্রশ্ন। অমুনয়।	दखादिख	नार्धानार्षि ।
	च	दिवा	फि र्न ।
4	সমূত্র। সমাহার। অস্বাচয়।	दिध्या	ভাগ্যক্রমে। হর্ষ।
	ইতরেতর। পাদপূরণ।	दुषु	কু, নিন্দিত।

दीषा	दक्नी।	परमम्	সন্মতি।
द्राक्	भीष ।	परत्रम्,पर:त्रस्	আগামি তৃতীয় দিনে।
हिधा, देधा	দ্বিবার। হু ইপ্রকা র।	पराक्	বক্ত, কুটিল।
	ম	परारि	পূর্ব্বতর বংসর।
धिक	निका। निर्रं मन।	परितस्	চারি দিকে।
`		पक्त्	পূৰ্ব্ব বৎসর।
	न े	परेद्यवि, परेद्युर	্পরদিনে।
न, नञ्	ना, निरंवर । ।	पश्चात्	পরে। পশ্চিমে।
नक्तम्	রাতি।	पुनशुनर्	বারংবার ।
ननु	প্রশ্ন। অনুজ্ঞা। অনুনয়।	पुनप्	অপ্রথম,ভূয়ঃ। ভেদ।
	আমন্ত্রণ। অবধারণ।	पुरतस्	मन्त्र्रथ ।
	বিরোধোক্তি।	पुरंस्, पुरस्तात्	পূর্বা দিকে। প্রথমে।
नमस्	নমস্বাব, প্রণাম।		সন্মুখে। অতীত কালে।
नवतिधा	নব্দুইপ্রকার।	पुरा	চিরাতীত। ভবিষ্যৎ।
न वतिश्रस्	নব্টবার।		निकरि ।
नवधाः	नश्रश्रेकात। नश्रवात।	पूर्वेष	পূর্ব্ব দিকে। পূর্ব্বে।
	'নয় নয়টী।	पूर्व्वंद्यस्	পূর্ব্ব দিনে।
महि, ना	ंनिरवध ।	पृथक्	ভिन्न। नीष्ठ।
नाना	বহুবিধ। উভয়। বিনা।	पृष्ठ तस ्	পশ্চাৎভাগে।
नाम	'সম্ভাবনা। প্রসিদ্ধি।	प्रका नम्	যথেষ্ট। স্বেচ্ছাক্রমে।
	ক্রোধ। স্বীকার।	प्रगे	প্রাতঃকালে।
	निका।	प्रति	প্রতিনিধি। প্রত্যেক।
नासि	নাই, নহে।	प्रत्यक	পশ্চিম দিক্, দেশ,
निक्षाः	নিকটে।		कान । श्रम्होर।
वितराम् -	অব্ধা। অত্যন্ত।	प्रत्य इ म्	প্রতিদিন।
नित्यदा	मर्र्सा।	प्रत्यंत	বৈপরী্ত্য।
भीचके सुनी चैर	•	प्रसञ्च	হঠাৎ। বলপূৰ্বাক।
3	প্রশাবিকল।	प्राक्	পূর্বা দিক্, দেশ,কাল।
न्नम्	নিশ্চয়। বিতর্ক।	प्रातर	প্ৰভাত।
નો	निरुष्ध, ना ।	प्रादुस्	প্রাকাশ্য। নাম।
ৰ ভূ	নীচ, মুণ্য।	प्राध्यस्	আহুক্ল্য।
	प	प्रायशस्	বাহুল্যরূপে।
पञ्चधा	পাঁচপ্রকার। পাঁচবার।	प्रायस्	বাহুল্য।
परस्	কেবল। অনন্তর।	प्राक्ते	প্রভাতে।
	4, 114 11441		

2-		I	
प्रेत्यः	পরলোকে।	यया	যেপ্রকার। সতা।
फ			অনতিক্রম্। সাদৃশ্য।
फट्	মস্ত্রাংশবিশেষ। অন্তু-	1	ायथम्, यथाईम्, यथावत्,
·	কার শব্দ।	यथास्वम्	
ब		यथा शक्ति	শক্তান্থসারে। ১———
•	অবিশয়।	, यथं फितम्	ইচ্ছাতুরপ।
बलवत्		यदा	যথন। যেহেতু।
महमस ्	বাহুল্যরূপে।	यदि'	সম্ভাবনা। পকান্তরে।
મ	,	यावत्	পরিমাণ। সাকল্য।
भगीस्	সম্বোধন—ভগবন্।	TI TI PO TO	পর্য্যন্ত । অব্ধার্ণ।
भृयस्	ৰাহুল্য। বারংবার।	युग्प द	এককালে।
भूरि	<u>ब</u> र्छ।	₹	
भूरिशस्	ৰহুবার।	रहम्	, निर्कान ।
भृ श्म्	অতিশয়। বহুবাব।	a	
मी, भीम्	সংখাধন—ভবন্।	1	
म		ষ	माष्या.
मंचु	স্থীয় । ক্লিখন ।	वत्	मृह्र्भ । ∙
	শীঘা অভিশয়।	वत	থেদ। হর্ষ। বিশায়।
म त् सन्दर्भ	মদীয়। ভৃপ্তার্থ।		অনুক্শা। আমন্ত্র।
मनस ्	. 1	वरम्	উৎকৃষ্ট।
मनाक् मस	ঈষৎ। আন্তে আন্তে।	वषट्, वौषट्	
मा, माचा स	सग्ठा, मात्रा। निन्ता। निट्यस, ना।	वहिस्	বাহির।
ना, नाचा नियम्	भवा । निर्वय, ना । পরস্পর। निर्ज्ञता ।	वा	বিকল্প। বিতর্ক।
ानयस् निष्या, सुवा	বরণ। নিক্ষল।		সমুচ্চয়। উপমা।
स्था, सुवा पूथा। नियना सुष्टासुष्टि, सुष्टीसुष्टि कीलांकीलि।		C-C	বাক্যপূরণ। ————————————————————————————————————
		विधिवत्	यथाविधि ।
सृष्ट्रस् स्वा	মাগ্ৰাগ মিথ্যা।	विना	ব্যতিরেকে।
- • •	(44)) 1	विश्वक्, विश्वक्	
य		वधा	নিরর্থক। অবিধি।
यम्	८यरङ्ज्। ८यमन ।	वै	পাদপূরণ।
	যাহাতে।	ম	
यसम्	যেহেতু। যথন।	ज्ञ ैस	ক্রেমশঃ, অরে অরা।
	(यमन।		নিরগুর। সহিত।
यम	८यथारन ।	भयत्	114441111

श्चानम्	নিবৃত্ত, বারিত ।	सन्र	অতিশয় স্থন্দর।
य त्	শ্ৰদ্ধা।	स्थाने	উচিত।
य स ्	আগামি দিনে।	स	অতীত। পাদপূরণ।
`	स	खतस्	নিজ হইতে।
संवत्	বৎসর। বিক্রমাব্দ।	स्रधा	পিতৃদান-মন্ত্রবিশেষ।
सक्तत्	একবার। সহিত।	खयम्	নিজে।
सना	সহিত।	खर	স্বর্গ। পরলোক।
सदा, सना	मर्का। ,	खसि	শুভ। আশীৰ্কাদ।
सवस्	তৎক্ষণে, তথনি।	E	পুণ্য।
सपदि	শীঘ্ৰ, তৎক্ষণে।	खाहा	হবিদান-মন্ত্রবিশেষ।
समन्ततस्, स	मनात् नकल पिरक।	खित्	প্রশ্ন। বিতর্ক, সংশয়।
समम्	সহিত। যুগপং।	• `	
समया	मगीरर्थ। मरशु।	,	₹
समुपयोषम्	ভাগ্যবশুতঃ। হর্ষ।		- harden a
सम्प्रति	এক্ষণে।	£	সম্বোধন। পাদপূরণ।
सम्यक्	সত্য। স্থন্দর। সমুদয়।	हं ही	मृत्याधन ।
सर्वतस्	• সকল দিকে।	इ ञ्जे	ভূত্যার প্রতি সম্বোধন।
सर्वव	িসকল স্থানে।	इर्ग्ड	নীচার প্রতি সম্বোধন।
सर्खया	সকলপ্রকারে।	इन	থেদ। হৰ্ষ। অমুকম্পা।
सर्वदा	দকল সময়ে।		বাক্যারম্ভ।
सहसा	হঠাৎ, অতর্কিত ।	इला	স্থীব প্রতি সম্বোধন।
सानम	সহিত।	हा	বিষাদ। শোক। পীড়া।
साचात्	প্রতাক। তুগা।	हि	হেতু। অবধারণ।
साचि	বক্র, নত।		পাদপূরণ।
सामि	অর্দ। নিশিত।	हिरक्	ভিন্ন। মধ্যে। নিকটে।
साम्प्रतम्	সম্প্রতি। উচিত।	हिहि, श्री ही	আহলাদ। হাস্য।
सायम े	সন্ধ্যাকাল।	ह ी	বিশ্বয়।
सार्ह्यम्	সহিত।	इन, इन	স্বীকার। পরিপ্রশ্ন।
सुचिर म्	ৰহুক ল।		বিতক ।
सुतराम्	অত্যন্ত। অবশ্য।	हे, हेहे, है,	ी সম্বোধন।
•	অগত্যা।	द्यस्	গত দিনে।
		•	

प्र-परादयी विश्वतिकपसर्गासाव्ययशब्दाः ।—१०म-सूत्रं द्रष्टव्यम् । एतक्षित्रा भपि अव्ययशब्दाः बहतः सन्ति ।

४ष:। खाद्यन्ताध्याय:।

१म पादः-स्त्रीतः।

२८१। स्तियामत त्राप्।

(स्तियाम् ७।, चतः ५।, चाप्।१।)।

स्त्रीलिक्ने खितादकारान्तादाप् स्थात्। मेथा, सर्वा। अ

२५०। इसादा। (इसात्रा, वा ११)।

स्त्रियां इसन्तादाप् स्थादा। वाचा वाक्, दिया दिक्। 🕆

^{*} लिङ्गसाधनयोग्यानिप भावादीन् काठिन्यभयात् स्त्रीलङ्गपादे नीक्वा पृथक् वदित स्त्रियामित्यादि । लिङ्गामां स्त्रीलियवचायां स्वायुत्पत्तेः प्रागेव यथासभ्यवमावादयः स्यः, त्यदादेनु स्वायुत्पत्तेः पश्चात् (१३३) टेर्न्त अदन्तवादाप् स्थादिति, भातप्व त्यदादे-ष्टरत्ते सत्याप् (१५०,२४०) इति स्त्रयमुक्तम् । भावीपीः पकारन्तु (१४८) भावीव्-भसादित्यादिषु गीपा-श्रीपा-प्रभतीनानप्राप्तये विश्वेषणार्थः । जपन्नु पकारः (४६३) रूपकत्ते चेवूप् इत्यादौ इस्तादेः प्राप्तये विश्वेषणार्थः । मेधा सेधधातोः (११५४) भप्रत्यये, सेध इति नित्यस्त्रीलिङ्गादाप् । पाचिकस्त्रीलिङ्गन्तु—सर्वा । पाणिनिः ४।१।४। स्यूष्टा भामकत्रपूर्वा इति वार्त्तिकम् ।

[†] जिल्प्योगातुसारियैव स्थादा न तु सर्व्वसात् इसनादिति। यथा — चुघा वाचा दिशा कुचा विपाणा च सजा कना। गिरीचिष्ठा देवित्रणा, पचे चुघ्-वाग्-दिगादयः॥ (भागृरिभतम्)। "गिरादियो" इति पद्मनाभः। "चिष्ठादेरियोके" इति कमदीवरः। एवं वाग्रक्तस्य व्यवस्थ्या, दिपात् चिपात् चतुष्पादित्यादौ न स्थात्, दिपदा विपदा चतुष्पद् स्वत् क्यादौ तु स्थात् (पाणिनिः शाशादे)। चिष्ठि किं, दिपदी स्त्री।

२५१ । मनो डाप्। (मनः ५१, डाप्।११)। स्नियां मनन्तात् डाप् स्थादा। सीमे सीमानी, पामे पामानी।क्ष

२५२। हेऽन:। (हे ०।, अनः ५।)।

स्त्रियां हे स्थितादनन्तात् छाप् स्यादा। बहुयज्वे बहुयज्वानी। 🕆

२५३। ईप् चाम्वस्थात् (ईप्।रा, च।रा, चन्वस्थात् प्रा)।

मस्यवस्थान्यपरानन्तात् हे स्थितात् स्तियामीप् डाण् च स्थादा। षहुराज्ञी बहुराजी वहुराजानी । क्ष

भ निभागान्तात् डाप् वा स्थात्, डपावितो । सीमे इति सिधाती: इमिन, पामे इति पाधाती मेनि, सीमन पामन इति लिङ्गम, आस्यां डापि श्रीविभक्ती सीमे पामे इति । पवे सीमानी पामानी । सीममीमे ित्वथाममे, पामपामा विचर्तिका (रीग-विश्वषः) इत्यमरः । सिविभक्ती विकल्यपचे रूपमास्थात् नीदाहृतम् । एवं द्दातीति सामा, अत्रापि दामे दामानी इति । श्रिवच सुधक्षे सुधर्माणी, बहुपिटमे बहुपिटमानी । 'भन इति नेदं प्रत्थयग्रहणं किन्तु वर्षग्रहण्, सेन श्रतिमहिमानी श्रतिमिधने'' इति गोथीचन्दः । पाणिनः ४१२११९ — १३ ।

[†] समंयोग-वसंयोग-परिश्वताननादेवायं विधि:, तदन्यत्र परस्वेश वाधितत्वात् । बद्धवो यज्ञानी यथीः समयोशी सभे इति विग्रहे वहुयज्ञे, पर्चे (१६४) बहुयज्ञानी । एवं बहुबह्माणी, सुधर्मो सुधर्माणी इत्यादि । पाणिनि: ४।१।१२ ।

[‡] मच वच व्य स्व तत् स्व वेति स्वसः, न स्वसः चन्यसः चान्यस्व ति । सव इत्य नेन सवान उचिते । व्याख्याया मस्यवस्थान्यपरान्न सिति, मस्य वस्य तो ताम्यानयः सस्यवस्थान्यः, तद्यात् परीऽन् सस्यवस्थान्यपरान्, सीऽने यस्य तस्यादिति विय इः । सस्योग-वसंयोगाभित्रवर्णात् परी योऽन् केत्नादीप् चन्नारात् डाप् च स्थादा । वहराद्यौ इति वहवी राजानी ययोः समयोनी इति विय हे वहराजन्यस्थात् चनि हेपि (११०,४६) वहराजी-सन्दात् चो । पत्तं डापि (१२६) वहराजा-सन्दात् चौ (१४८,२३) = वहराजी । उसयोग्प्रातिपत्ते नान्तस्थितः । एवं डष्टपूचीगा डष्टपूपे डष्टपूषाणी, सुदास्यौ सुदाम सुदासानौ स्त्रियौ इत्यादि । (२०६) न मन्संस्थित्यन् दूप् निषेधत् वहन्नीहरन्यन् चेत्रः। तत्र वहयुवा पूः डष्टमचवा स्त्री इत्यभयत्र दूप् न स्थात् डाप् तु स्थादिविति चक्रस्यम् । पाणिनः ४।१।२८, ६।४।१२०।

२५४। काष्यनाशीरकेऽदिदयत्ततित्तपादेः।

(कापि ७), श्रनाभीरके ७), श्रत्।१।, श्रत्।१।, श्रयत्तिपादीः ६।) ।

श्रामीरर्धाकवर्जे कापि परे चकार दकारः स्थात्, न तु यत्-तत-चिपारे: ।

सर्व्विकाकारिका। ग्रागीरकेतुजीवका। यदादेसुयका सका, विपक्का धुवका चटका। 🏶

२५५। देवसूतपुत्रवृत्दारखज्ञाजभस्तुाधुत्य-क्यो वी । (हैव-धुलक्यी: ६॥, वा ।१।)।

दादे र्धुत्यवर्जयो: कययोशाकार दकारः स्यादा कापि।

^{*} कयुक्त चाप् काप् तिस्मिन्। चाशिषि चकः चाशीरकः, नास्ति चाशीरको यत्र मीऽनाशीरकसासिन् कापीत्यस्य विशेषणम् । याद्यग्जातीयस्य विश्रतिषेधी विधिरपि साहग्नातीयस्थेति न्यायात् पाधीरकवर्जनात् क्रतककारस्य ग्रहणं न तु प्रक्रतेः, तेन तक-धाती: (१९३) पवादिबादनि तका, शक्षाती: शका दूखादी न इकार: स्यात्। मधेय-मित्यचतुमामिकादति चादेशलात् क्रतककार एव । (मामकनस्करीक्पसंख्यानमिति यार्तिकम् ।) सर्व्विकीति सर्व्वा इत्यस्य (२०८) टे: पूर्वे अक्ष् च सर्वका इति कापि परे सर्वस्य पकार इकारः। कारिकेति कारीति या इति वाक्ये क्रधातीः (८८०) णकप्रत्यये चापि कारका इति कापि चकार इकारः। जीवकेति जीवतादिति वार्क्ये (१००६) अर्थिषि चक्, पश्चान स्त्रियां कीवका इति, आर्थीरथैभिन्ने जीविका इत्येव । यका मका इतियासा इति पददयस्य (२०८) टी: पूर्वे श्रकि रूपम्। "चिपका घुक्ताचैक करका धारकंटका । एड़काचटकाद्याच पितृणामटका भवैत्। उपयकाधित्यका च तारका भट्टगंशयोः। वर्णका वस्त्रभंदं स्थान श्कृती वात् ्रष्टकेति द्रवधाती:, अप्टर्कति यश्रधातीरीयादिकसक: ''द्रष्यशिश्यां तकन्''। चप्टका-तारका-वर्षकानाम् चन्यस्मित्रर्थे पप्टिकत्यादयः। चप्टिका खारी । वर्णिका नटाटौनाम् । दीपद्गायाम् वर्त्तिक्षेत्र । पाणिनिः ७।३।४४,४५, वार्त्तिकानि घ। ''स चाप्सप: परी यदिन भवति'' इति किं, ''बहुपरिवाजका नगरी'' इत्यत्र ''बह्रवः परित्राज्ञका ऋस्यामिति विग्यन्त सुबन्ताद्यं टाप्'' इति पाणिनिटीका ।

दिने दके, चटकिका चटकका, मार्यिका मार्यका। धुत्ययोस्य—नायिका कत्यिका। *

२५६। वाचापोऽनुत्तपुंस्कस्य।

(वा ।१।, चात् ।१।, च ।१।, चापः ६।, चतुक्तपुंस्कस्य ६।)।

श्रापः स्थाने जातोऽकार द्रदीच स्थादा कापि न तूक्तपुंस्कस्य। गङ्गिका गङ्गाका गङ्गका। उक्तपुंस्कस्य तु श्रुस्त्रिका। १

इति दिश्रन्दस्य टेर्न्त रूपम् । एष इति एतदः सौ रूपम् । त्यः ति नच प्रत्ययस्य संज्ञा किना (५२५) त्यंत्रयंनन क्रतस्य त्यप्रत्ययस्य ग्रहणामः। पथ त्यस धत्यौ, न धत्यौ षप्यो। कच यच का अप्ययो:काषप्यका। इ.थ.एपथ सृतय पुत्रय विन्हारथ स्तय जय भज्य भस्ता च एपां ममाहार: हैपमृतप्वतन्दारस्त्राजभस्तं, तच श्रधुत्यका च तौ तथी: । द्वादीनां नवानां चकारस्य धकारः स्थादा कापि, धातोः ककारयकारौ हिला त्यस्वरूपस्य चयकारं हिला अन्योयौ ककान्यकारी तयीरकारस्य च इकारः स्थादा कापीत्यर्थ:। दिक्ते दर्क दिन दिशब्दात् श्री क्रते (१३३) टेग्ले, (२०८) टे: पूर्वे पिक, (२४८) भाषि दका दति स्थिते अनेन वा अकाग्स्य द:। एवं एषिका एषका, सूतिका मृतका, पुनिकापुनका, बन्दारिका बन्दारका दलादि। भस्तिका भस्तर्काति, भस्ता चर्माप्रसीविका इत्यमर:। भस्ता एव (४३३) स्वार्थे ककारे. (४३०) इस्ते, भस्त्रका इति स्थिते चनेन वा इकारः । भस्त इत्यकारान्त इति वार्धिकम् । एप्रांगौगर्लऽपि वहस्तिका बहुखका इत्यादि। चटिककीति चटधाती गैणाटिकी ऽक:, तत: चटकामञ्दात (४३३) खार्चे ककारादि। आर्थिकीत ऋधाता: (६०१) व्यक्ति आर्थामध्यामध्यात खार्थे कका-रादि। उभयत्र वा धकारस्य इ: । नाथिकीति नीधाती: (१६०) सनप्रत्यये नायक-शब्दात आप, धात्सम्बन्धियकारत्वादस्थाप्राप्ती पूर्व्यंग नित्यम इकार: । धाती: कका-रस्य यथा— चकथानी: णकप्रत्ययं चाकिर्कात्यादि पूर्व्वेण नित्यम् । क्रांत्यर्कति का भवा इति वाकी (५२५) क्रत्या, तत. स्वार्धे (४३३) काकारे कत्यका इति स्थिते पूर्वेण मिल-मिकार:। एवं तत्रत्यिका दाचिणात्यिका भमात्यिका प्रत्यादि। त्यस्वरूपनिषेधात् भारु थिका भारुयका इति । पाणिणि: ७। ३।४६,४७, वार्त्तिकचा

⁺ छक्त. प्रमान् येन सन् उक्तपृंस्तं, न उक्तपृंस्तं मनुक्तपृंस्तं (लिङ्गं) तस्य। भाषः स्थानं (४३०) केऽकः स्व इत्यनिन जाती योऽकारसास्य स्थाने इतार भाकास्य स्थात् वाकापि,पचऽकार्यस्थातः, न तु उक्तपृंस्त्रशब्दस्य। गङ्गाएव इति वाक्ये (४३३,४३०)

२५७। द्विनुच्वाचनदादेरीए।

(ष्-ट्-ज-ऋ-इत् न् ऋ ऋञ् वाष्ट नदादे: ५१, ईप् ११) ।

षकारित-ष्टकारित उकारित च्छकारितो नान्ता-दृदन्ता-दृञ्जो वाही नदादेश ईप स्थात स्तियाम । *•

२५८। ययोलीपोऽयुंत्तौ पौ।

(ययी: ६॥, लीप: १।, अ-मु-त्त्ती ७।, पी ०।)।

गङ्गका इति स्थिते घनेन अकारस्य इकारः घाकारय, पचे घकारस्थितिः । एवं दुर्गिका दुर्गका दुर्गका इत्यादि । ग्रिक्षिकिति पूर्विषा नित्यसिक्त/रः । ग्रमः पुसान् इति च भवतीत्ययसुक्तपुंस्कः ग्र≂ः । पाणिनिः ७.३,४८,४८ ।

* ष च ट च च स स्य हर. ते इती येषां ते हित: , तेच नव स्य प्रंच् च बाह् च नदादिस्रेति तकात्। नकार-स्वतारयोः केवलयोरमभवात् तदन्तर्यार्यहणम्। ध्वन् स स्वस् इत्यादौ भातां क्कारितम् नाव ग्रहणं ''भातोक्षितः प्रतिषेधः'' इति वार्त्तिकात्। भव पकारेत्-टकारेत्-नदादीनां सुख्यानामव ग्रहणं, तेन बहुवैणवा, वहुं मूषणा, बहुनदा इत्यादौ न स्थात्। श्रव्यां गौणानामित, तेन श्रतिविद्षौ, श्रतिपचन्ती, श्रतिदिख्नी, श्रतिकाती, स्रतिप्रति प्रतिकाती, स्रतिप्रति प्रतिकाती, स्रतिप्रति प्रतिकाती, स्रतिप्रति प्रतिकाती,

नदी मद यर यौरी गौर चल भष प्रवाः। दर कन्दर तकारा-सक्षः कथ-काकिणौ। वदरामलकौ स्द-इरोतक-विभीतकाः। गवी देवां धातकय मातामहापितामधौ। द्रीयः स्यूणाढ़कौ पाव-कीवातक-पुटामटः। [अयः स्यूण दति पाणिनः, चायस्यूण इति कमदीवरः।] कवाउमावटो नाटो नटो भीट-पटौ बठः। वराटः शब्जुलः स्वः श्रची मख्डल-कुख्डलौ। स्वीहिताष्डाऽय कुषाख मठ पुष्कल पिप्पलाः। [स्वीहाख इति पाणिनिः।]

कदल: कन्दल: पिण्ड-काकली ग्रह्मको हपः।

दवर्णावर्णयोलीप: स्थात् श्रयावत्ती पौ परे। घ--वैषावी वराकी। *

२५६। काङ्यची चानात्यपत्यव्यायस्य । व (का-छा-चो श, च ।११, अनाति श, भपत्यचास ६।)।

अपत्यार्थ-णास्य लीप: स्यात् अयावती पी परे, का-छा-ची च, गार्गी। 🕆 नताकारे।

> भन्डत् मूर्ग्य-कोली च पिणक्षातस-वेतसाः। मालतः ग्रम-सूर्यो च विल्व मख्डप कंकयाः । मडुली मह-मण्डौ च सुषव: पृथिव: पृथु: । च्छ्यो मनुष्यी मतस्य समुक्तयी गव्यी हयः। महत् बहत् तरः एकः एतदाचा नदादयः ।'प्रः। (एतद्विद्वा छानेकेऽपि मौरादौ पठिता: पुन:।)

पुचग्रब्दोऽपि नदादाविति क्रमदीश्वरः । पाणिनिः ४।१।५,६,१५,४१,६१,"अञ्चेषीपः संख्यान"मिति वार्त्तिकञ्च।

मच ८३ संख्यको नदादिः पठितः, संविप्तसारे तु११० संख्यकः। पाणिनीयी भौरादिस् १५० संख्यकः।

- इस भव ली थी, तथी: ययी:। युच किय युक्ती, न विद्येते युक्ती यच पौ सी-ऽयुक्तिस्तिसन्। अत्र अयुद्ध दित समासे एलें।प दित करी एकारलीपश्रमी जायते त्रत: ययोरिति । (४००) प्रेष्ठ: श्रेष्ठ इत्यादी प्रश्च इत्याद्यादेशस्य त्रकारान्तनिहेंगान् न अकारलीप:। पारस्त्रैर्णय इत्यचतु (४१६) दिपदबद्धिविधानात् न र्द्रकारलीप:। अधुक्तौ किं ऊर्णायु: रामेण इत्यादि। घ--इति षकारेत्प्रव्यस्य उदाहरणज्ञापकम्। वैचावी, विचार्देवता यस्याः इत्यर्थे विचाशब्दात् (४३३) विकारमञ्जेति चाप्रत्यये वैचाव श्रव्हादीप्। वराकी च बधातीः (११११) भिजन ल्पेति याकप्रत्यये वराकश्रव्हादीप्। पाणिनि: ६।४।१४८।
- † काथ उपय चित्रेति काद्यचित्रतिधान्। न चात् चनात् तिधान्। चपत्ये गार चपत्यच्यातस्य। चकारात् युक्तिवर्जे पो च। गार्गी इति गर्गस्य स्व्यपस्यम् इति चप-व्यार्थे (४१५) भीत्र कर्ते, नार्ग्यशब्दात् (१५०) वकारेच्वादीपि, अर्नन पी परे चात्रलीप:।

२६०। सूर्यागस्यस्य तिष्यपुष्यस्य वण्यमतस्य-स्येयेपो भेष्णे ईपि यः।

(स्थांगस्त्रस्हा, तिष्युष्यस् ६।, श्वामस्यस्य ६।, ईविपोः ७॥, भर्षे ७, ईपि ०।, यः ६।)ः।
एषां यस्य लोपः स्यात् ईयेपोः पर्योः, नचत्रश्ये ईपि च ।
सीरी त्रागस्ती चातुरी । ३६

ट—चयी भूषणी। उ—विदुषी श्रीमती भवती। (२४५) श्रप्यनी नित्यम्, ऋ—पचन्ती । (२४४) श्रादीपीः, तुदन्ती तुदती, भान्ती भाती। न—दण्डिनी श्रव्यंती राज्ञी श्रनी, मघवती मघोनी। ऋ—कर्नी क्रोष्ट्री। श्रन्च-प्रतीची प्रत्यञ्ची, तिरश्ची तिर्थ्येची, श्रमुमुद्रेची श्रदमुद्रेची, उदीची। वाह—भारौही, खेतौही खेतवाही, श्राब्यूही। नदी मसीं गौरी। १

को — गार्ग्य मिच्कति (८४३) गार्गीयति । छो — गार्ग्य इवापरति (८४८) गार्गायते । चौ — चगार्ग्यो गार्ग्यो भनति (४८५) गार्गीभवति । विभन्नौ — गार्गे इत्यादि । चानारे तु गार्ग्याययः । चपत्य कार्यति निं, सुभगस्य भावः सौभाग्यं, सौभाग्यमिच्कति (८४३) सौभाग्यीयति । पाणिनः ६ । ४ । १५० — १५२ ।

^{*} म्र्यांगस्ययो-रीये द्रंपि च परे, तिष्यपुष्ययोनंत्र नायं विहिते णो परे, णार-मन्ययोौपि परे यस लोप: सादिल्थं:। णार इति चपलाथं भिन्नस्य यहणं, पूर्व्वमृते तस्य यहणात्। सौरीति मूर्यस्थिमिल्थर्थं (४३३) णो सौर्यं इति स्थिते (२५०) वित्तादीपि चनेन यलोप:। एवं चानसी। चात्रीति चतुरस्य भावः इत्यर्थे (४३३) णोर चात्र्यं इति स्थिते (२५०) द्रंपि चनेन यलोप:, एवन् भौचिती मैनी सामगी। पाणिनि: ६।४।१४८, वार्णंकत्रयञ्च।

[†] ट इति टकारेन् उदाक्तियते इत्यर्थः। त्रथी त्रयाणां पूरणीलर्थे (४६१) ति-वन्दान् त्रयट्। सूचतेऽनर्थति सूवधातीः करणवाचे (११३४) त्रनट्, टिच्लादीप्।

२६१। गाच्यसादनो रङीप्वा तु हे।

(णच्खसात् थ्रा, वन: थ्रा, रङ् ।११, ईप् ।११, वा ।११, तु ।११, हे ०।)।

णादच: खसाच विद्वितात् वन ईप् स्थात्, वनी रङ् च स्तियां, हेतुवा!

श्रवावरी धीवरी हरिष्टांषरी, बहुधीवरी बहुधीवा। #

च इति चकारित चदाक्रियते इत्यर्थ: । विद्वीति विद्धाती: शत, (११०३) शतस्थाने क्कसः, विद्यसभव्दात् उदिच्चादीपि, (२२८) वस्थाने उ:। श्रीमतीति श्रीरस्यस्या इति वाक्ये (४४१) श्रीभव्दात् भतः, उदित्तादीप् । भवतीति भाधातीरीणादिकी डवतः,भवत भ्रब्दादीप । फ्राइति ऋकारित छदाहरणम् । पचन्तीति पचधातो: (११००) भ्रतः। तुद्धातो: भाधातोय प्रत्यस्यये विकल्पेन नृण्। न दृति नान्तर्स्यर्थः। दण्डिनौति दर्छोऽत्यस्या इति वाक्यं (४४४) इन्, अर्ज्ञतौति अर्ज्ञन्भव्दात् नान्तलादीपि (१८५) तुङ्। राजन्शव्दाटीपि (११०,४६) राजीति। सनीति यन्सव्दादीपि (१८४) वस्य छ:। सद्यवनभ्रव्हादोपि (१८१) तुडी विकल्पः, विकल्पपचे (१८४) वस्य छ:। म्ह इति म्हदनस्थेत्यथं:। कर्नीति करोतियासाद्रति क्रधातीः (६६०) हन्, तती क्टदन्तलादीप। क्रीप्ट्रीति क्रीष्ट्रणव्दस्य स्त्रियां (१३६) तुन: स्थाने तन, तत: ईप। अनच इति अनचधाती: किवन्तस्यैत्यर्थ. । प्रतिपूर्वकात् अन्चधाती: (१०३२) किपि (५६७) नलोप, प्रत्यच्श्रव्दात् र्द्गीय (२२४) प्रतीची । पूजार्थे (५६८) नलीपासावी प्रत्यचग्रन्दादीपि प्रत्यची। तिर्य्यचग्रन्दादीपि (२२५) तिरयी। तिर्यचग्रन्दादीपि तियंशी। असुसुयच अदमुयच उटच ग्रब्स्य ईपि (२२५) असुसुईची अदसुईची **छदीची। वाइ इति विणल-वहधातीरित्यर्थः। भारं वहतीति (१०२८)** विण्-प्रत्यये भारवाहग्रन्दादीपि (१९८) वा स्थाने भी। श्वेतवाहग्रन्दादीपि, वा भी। शालिवाइश्रव्हादीपि(१८०)वा-स्थाने ऊ:। नदादेवटाहरणमाइ नदी, सस्प्रायव्हादीपि, (२६०) भनेन यलीप:। (१६३) जातेरत इत्यत्र यकारीङवर्जनादपाधी नदादिलादीप। गौरमञ्चादीपि गौरीति।

अ णानात् भजनात् खमनाच घातोः परः (१०३२) चामुसिसिल्यनेन विहिती यो वन्प्रत्ययक्तमात् ईप्स्थान् स्त्रियाम्, ईपिसित वनो रङ्चस्थान्, बहुनीकौ त २ ङोपो वाल इत्ययः। भवावशीति श्रीणघातोः (१०३२) वनिषि, (१०३१) णकारस्य भाकारि (३५) भोकारस्य अवि भवावन् इति स्थिते भनेन ईप्र रङ्च। धीवशीते

२६२। सञ्चोध:संख्यादिदामवयोऽर्घन्नायनाह्वे।

(स् ।१।, नः १।, च ।१।, कधम्-मङ्गादि-दाम वयोऽर्यं हायनात् ५।, हे ७।) ।

जधसः सङ्घापूर्वात् दान्नी वयोऽर्थ-हायनाच ईप् स्थात् हे, सस्य च नः स्थात्। पीनीभ्री हिदान्नी दिहायनी।

२६३। जातरतो ऽस्ती-युङ्-सत्काग्डप्राक्-प्रान्तग्रतैकादिपुष्प-संभस्ताजिनैकग्रणिग्डादिफल-नादिमुलात्। (जाते: प्रा, जनतः प्रा, जस्ती- मुलात् प्रा)।

धाधातीः (१०३२) कानिय (६१२) जी, घीवन दलसान ईप्रङ्च, एवं विक्षाव-रील्यादि। हारेटयरीति इरि पग्रति या इति वाक्ये हिन्द्य घातीः कानिय हिन्द्यन्, विनयी वकारस्य दल्यलेन कम्परलाभावात् (१५४) न षङ्। तस्त्रादीप्रङ्च। वहधीवरीति वहवी घीवानः (कैवनीः) यस्यां नयानिति वहवीही ईप्रङ्च, ईपी-प्रप्रतिपचे रङीऽप्यभायः, एक्योगनिर्दिष्टानां सह वा प्रश्नतः सह वा निश्नतिथितं न्यायात्। पचे—बहुधीवन-सि (१४८,१६४,११८) वहुधीवा। णम्बसात् कि यञ्चा। पाणिनः ४।१।०, वार्षिकदयस्च।

• वयः प्रषां यस्य स वयोऽषंः सवाभी हायनंत्रित वयाऽषं हायनः, दास च वयीऽषंदायनस्र तौ, सङ्गा प्राद्यियांभी सङ्गादी, ता च तौ दासवयोऽयं हायनौ चिति
सङ्गादिदासवयोऽयं हायनौ, जधस च सङ्गादिदासवयोऽथं हायनौ चिति तसात्। जधसः
सङ्गाप् व्वेदासः सङ्गाप् व्वेवयोऽयं हायनास स्त्रियासीप्, बहुवो हौ सस्य नः स्यादिति
सभवाद्धस एव । हे दूलस्य पुनद्गादानं परसूच निश्च्ययं न्। पीनी घोति पीन मृ जधा
यस्याः सा गौः, पीनी धस्मव्दादीप् सस्य च नः। इ दासनौ (रच्चौ) यस्याः सा
दिहास्त्री गौः। प्रसङ्गादेसु सुदाभे सुदासानौ इति (२५३) पूर्व्यं य वा स्यात्।
दौ हायनौ वया यस्याः सा दिहायनौ, दिवभी गौः। प्रसङ्गादेसु गतद्यायाः ।
वयोऽयः तिं, दिहायना प्रास्ता। वयसु प्रास्तिनो गतपरसायः। हे दिति तिं - जभीऽतिकात्ता प्रसूधाः। पाणिनः प्राधार्शः १११ रूप् —२०। चच "संख्याव्ययादं द्वीप्"
इति प। स्तिन्त्वेष कथस्प्रद्वोऽपि संख्यादि व्यादिष्य रुद्याते, तेन ह्युभी, प्रसूधां,
दिविधी भी द्वि। चत्रप्य वीपदेवन सासान्यत एव कथस्यव्दः प्रयमं प्रयुक्तः।

जातिवाचिनीऽकारान्तात् स्तियामीप् स्यात् न तु स्तीयुङादेः।
मृगी हंसी भीतपाकी। स्तीयुङादेसु—मिचका वैश्या सत्युष्पा
संफला श्रमूला। जातेः किं—मन्दा। *

त्राक्तियहणा जातिर्लिङ्गानाञ्चन सर्वभाक्। सकदाख्यातिनग्रीह्या गीत्रञ्च चरणैः सह ॥ १

स्ती निलस्त्रीलिङ:। य उङ्यस्य स युङ्। सच का ख्रच प्राक्च प्राक्य शसच एक शते भादयी यस्य तत् सत्काण्डप्राक्षप्रान्तशतैकादि, तच तत् पुण्यचेति तत्। सम च भस्ताच अजिनच एक यथ यथ पिल्ड य ते अ। दयी यस्य तत् संभस्ताजिनैक गण-पिण्डादि, तच तत् फलचेति तत्। नञ्चादिर्यस तत् नादि नादि च तत् मूल-र्चिति नादिमुलम्। ततः स्त्रो च युङ् च सत्काख्याकप्रान्तप्रतैकादिपुणयः संभस्नाजिनैक-श्रणपिण्डादिभागञ्च नादिसूलचेति । पथात् नञ्चमासे चस्त्रीयुङसतकाण्डपाक्पानः श्रतैकादिपुषसंभस्ताजिनैकाशणापिखादिफलनादिमूलं तचात्। सगजाति: स्त्री सगी, इसजाति: स्वौ इंसी। शौते पाकी यस्या: सा भोतपाकी, श्रीविधिविभेषः। नाति-वाचिनी सुख्यादेव दूप , तेन बहुसगा भूमि: श्रवाह्मणा पुरीत्यादी न स्यात्। श्रीतपाकी-त्यादिष्तु गौणदशायामेव जातित्वम्, अतीऽत जातेर्मुख्यत्वमेव। नित्यस्तीलिङ्गानु भविका बलाका इत्यादि । युङ्कु वैद्या चित्रया । ऋष्यहयगवयादीनां युङ्खादपाधी गहादी पाठादीप । पुष्पात्तु सत्पुष्पा काग्छपुष्पा द्रश्यादि । एथ्यः किं, श्रह्मपुष्पी चौरपुषी। अज्ञातीन् बहुपृषालता। फलान् संफलाभस्ताफला, भस्त्र इत्यकारानीsfu वार्श्विके, तेन भस्त्रफला। एवं विफला श्वेतफला। एथ्यः किं, रक्तफली। **भ**जातीस बहुफला। नादिमुलात् अमुला। नञ्पूर्व्वनिषेघात् भतम् खीत्यादि भवति। भजातील् दृढ्मूला। मन्दा इति मन्दगुष्पथृकास्त्री जातिलाभावात्र ईप्। पाणिनिः ४।१।६३,६४, वार्त्तिकदयञ्च। अञ सूर्व कलापसुपद्ममतानुभारेण प्राक्षुणा द्रथेव धतं बीपदेवेन ; वार्त्तिके तु भामान्यत: अर्च् (अन्च इति क्रमदीश्वरः) इत्युक्तम् ; चन्तर्व प्राकृपृष्पा प्रत्यकृपृष्पा इति भट्टीजिदीचितः, ऋवाक्पृष्पा इत्यपि क्रमदीचरः। संभस्त्रत्यत्र च एक्कब्द: भिषक इव प्रतीयते ''संभस्त्राजिनशयादिग्छेभ्य: फलान् प्रतिषेधी वक्तव्यः" इति वार्तिके श्रदृष्टलात्, सुपद्मे संचिप्तसारे कातन्त्रपरिभिष्टे प **घ**नुक्लेखात ।

[†] भय जातिवाचकभ्रव्दचापनार्थे जातिजचणमाह भाक्तियहणेत्यादि — भाक्तियते व्यव्यते भवयेति भाक्तितित्वयवसंस्थानं, भाक्तत्या ग्रहणं जानं यस्याः सा भाक्तियहणा जातिः, जातिराक्तियहणा भाक्तित्यद्वाः। भवतीत्यपैः। अथ्या

गार्गी कठी कीयमी। %

'राश्चति इनेनेति यहणं करणसामान्यसिङ्गलाङ्गास्य स्त्रीलिङ्गलम'. 'शात्वतिर्यहणं यस्याः मा प्राकृतिबहुता संस्थानव्यकेति यावतं द्रांत गीथीचन्द्रः, 'पनुगतसंस्थानव्यक्रत्यवंः' इति विज्ञान भी भदी। तेन नगुष्यगीस्गर्भनादीनाम भाकत्या व्यच्यमाना मनष्यत-गोलासगलाईसलाटि जीति:। एवं लाचणे सति, ब्राह्मणचित्रयेशसग्रहाणां प्रयक भाकतेरभावात ब्राह्मण्यादे जीतिल नाथातिभिति लचणान्तरमाह लिङ्गानामिति. याच लिहानं न सर्वमाक — सर्वाणि लिङ्गानि न भजति, साच जाति (त्यथं:। तेन बाह्यणादीनां हिलिङ्गाचभाजिलोन बाह्यणलादिनांतिरिति। एवच मति. इंस इष्टवतीऽपि अज्ञातइंसस्य जनस्य तटाक्रथी इंसल व्यक्तितं न शकाते असी इंगलक्ष न नातित्वमिति प्रथमलुचणदीषः, एवं दवदत्तादि-संज्ञाष्ट्रस्थापि सर्व-लिडाभाजिलेन जातिलापनेहिंतीयल्चणदीषम् इति दीवश्यमपाकर्तं ह्योर्लचणयी-विशेषणमाइ सक्तदिति । सक्तदेववारम आख्यातेन छपदेशेन निर्योक्ता निश्योन यहीत् शक्या जातिरित्यर्थ. । तेन प्राक ईंडभी इंस इत्युपदेशं, पश्चात इसं हटवतसदाक्रत्या इंसं व्यक्षितं भक्तत एवेति प्रथमल जगस्य न दोष:, एवं देवदत्ताहिसंग्रामञ्दस्य एक-व्यक्तावपर्दशे व्यक्तयन्तरे ज्ञानाभावात न जातिलमिति दितीयलचणस्वापि न दीषः। ''ण्तेन जातीरेक लांनिस लां प्रत्येकं परिसमाधिश स्वरूपं दर्भितवान'' इति गोथी चन्दः। एवं सुच्चसुर्वेऽपि सति. गार्ग्यादीनां कठादीनाञ्च चाक्रतिव्यङ्गात्वाभावात् सर्व्यालङ्ग भाजित्याच न जातित्वसायातसतः पारिभाषिकं जातिलयणमाइ गीवचेति प्रव-पौचादिकमपत्थं गीमं, चरणं वेदैकदंशः, एतद्भयञ्च जातिरित्यर्थः। ''ऋपत्यप्रत्ययानः भारवाध्येतवाची च भव्दी जातिकार्ये सभत इत्यर्थः'' इति सिद्धानकीमदी। भव नाते र्लचणान्तराणि प्रदर्श्यने — "अमर्व्वलिङ्गले सति एकस्यां व्यक्तौ कथनाहाकान्तरे कथनं विनापि सग्रहा जाति:" इति सिद्धान्तको मदी। "था द्रव्यस्थीनपत्ताः वनपद्यते नाभे च नम्यति युगपदम्पैः सम्बन्धते न सर्व्वालङ्गं सजते बह्ननर्थातुपैति साजाति-रिमिधीयते। यदुर्ता, प्रादुर्भाविविनामास्यां सत्त्वस्य युगपटगुर्थै:। ऋसर्व्वतिङ्गां बहर्था तां जाति कवयी विदु: ॥ एतियान दर्भने युवलकुमारलब्बलादीनामजातिलम्' इति क्रसटी श्रवः।

 गर्मस्यापत्यं स्ती इति वाक्ये (४१५) श्वाप्रत्यये गार्ग्यश्रक्टादनेन ईपि (२६०) यजीप:। युङ्क्तादीप निषेधेऽपि विश्रेषती विधानात् गार्ग्यादीनां न निषेध:। विस्तःत् पुर्वेष (२५०) ईपस्थावनायामपि गाम्यांदीनां जातिसंजाफलन् - गार्गी भार्या यसाभी गागींभार्थ इत्यादी (३२८) पंतक्षावनिषेध: । गागीं चाभी भार्था चेति कर्माधारथे गार्ग्यभार्था इत्यादी तु (३५०) प्वद्वाव:, गार्गीलम् इत्यादी पुन: (३५०) पुंबहाव-गिषेषया कठणाखाध्ययनकत्तां कठः तस्य स्त्रियाम् भनेन र्रूपः, एवं कीयुमीत्यादि ।

२६४। गुणादोतोऽखन्खोङ:।

(गुणात ५।, वा ।१।, उत: ५।, घ-व्व न-स्योड: ५।)।

गुणवाचकादुकारान्तात् स्त्रियामीप् स्थादाः, न तु खराः स्थोङय।

मदी मदः। खकस्थोङस्तु खकः पाण्डः। गुणात् किम्—

सन्त्वे निविमतेऽपैति पृथग्जातिषु दृश्यते।

श्राधेयसाक्रियाजस सोऽसन्त्रप्रकृतिर्गुणः॥

धेन:। अ

* स्य: संयांग छक् यस स स्थांक् खिक् स्थार्क् चेति खक्सीक्, न खक्सीक् प्रखक्सीक तस्तान । गुणवाभकादिति गुणं वक्षीत कर्त्तरि णकः । प्रभिदीपचारात् गृणविधिष्टद्रव्यवाचकादुकारानादित्यर्थः । भाईवगुणविधिष्टा स्त्री स्ट्डी,वा स्ट्डा एवं पद्वी पट्ठा, लच्ची लच्चा, गुव्वी गृकिरियादि । खक्शव्यस्य ग्रक्षगुणवाचकावात् प्राप्ती निषेषः । "खकः पतिवरा कन्या" इति भद्दीजिदीचितः । "खकः तीच्यः" इति गोयीचन्द्रः । 'गुणकाइ —

सत्त्वे इति । य: सत्त्वे ट्रव्ये निविभते तदाययति, ऋपेति तस्रादपगच्छतीत्यर्थः । यथा म्यामता भासादिफले निविधते पद्मात पक्षदभागं तसादपैति । एवं पृथग्कातिपु द्रज्यानारेषु दृष्यते चासादिवत कदल्यादिषु दृष्यते, संगुणः स्यादिल्यथः। "पृथगः लातिष दृश्यते नानाजातिष्यक्लोकाते इत्यर्थः।--तथाहि ग्यामता आसे त्यो गरि च इध्यते, एतेन जातेर्गणलं निस्स, अतः सत्ता द्रव्ये गुणे कर्मणि च वर्त्तते नासौ नाति ईव्यादपैति नन्मनः प्रभव्या विनाभपर्यात्तमाधारद्रव्यापरित्यागात् न च नाति:।--नहि गोलमक्त्रजाती दृष्यते नाष्यक्षलं गीजाती।'' इति गोयीचन्द्रः। एवंसित गमनास्किर्माणी गुणलापत्तिः द्रव्ये प्रवेशनिर्गमयीगात् द्रव्यान्तरिषु च दर्शनात, श्रतश्राह अर्धियद्येति, यः पार्धियः उत्पादाः, पक्षियाजां न कियाजन्यत्रः, अनिल्यो निल्यसः भव-तीत्वर्थः, पक्कघटादिरक्रतागुण अत्पादाः शाकामादिमहत्त्वादिगुणी नित्य पति, कर्ति-पये गुणा अनित्याः कतिपये च नित्या इति तातपर्य्यम् । कर्म्मणस् मर्व्ववैवानित्यलमिति वित्रासः। "चलादनीयी नित्यस" इति तृतीयपादस्य पाठान्तरं विक्त कमदीसरः। एक्खेत तर्हि द्रव्यमपि गुणोऽल्— अवयवि द्रव्यं हि आरमाकावयवे निविधते अवयवविनाशात्तवाहपैति च, द्रव्यानरिधु च एवं दृग्यते, द्रव्याणि च कतिचिदनिवानि नित्यानि च कतिचित् सन्ति, चत उक्तम् असस्वयक्रतिरिति, स्खंप्रक्रति: खरूपं यस्य स सच्चप्रकृति , न सच्चप्रकृतिर्भच्चप्रकृति: द्रच्यभिन्न इत्यर्थः । धेनुरिति गुणन्वणायोगात् न ईप्। एतरगुणलवणकारिका तृ सिडालकौमुद्यां न दृश्यते, भाष्यशता एतसा ष्रव्याख्यानात्। पाणिनिः ४।१।४४, वात्तिंकञ्च।

२६५। पाच्छोणादिखाङ्गेतोऽक्तर्वा।

(पाद-- खाङ्गेत: ५१, भन्ने: ५१, वा ११।)।

षादः स्रोगादेः खाङ्गादिकारान्ताच स्तियामीप् स्यादान तु केः। तिपदी विषात्, स्रोगी स्रोगा चण्डी चण्डा, विस्बोष्ठी विस्बोष्टा। *

खाङ्गात् किम्—

खाङ्गं स्थादद्रवं मूर्त्तं प्राणिस्थमविकारजम्। दृष्टं तत्रातत्स्थमपि तदत्तादृशि च स्थितम्॥ क

[•] पाद च शीणादिय खाङ्गच इच तमात्। न ति: पिततस्या:। (३४०) सङ्गा-मुपमानादित्यनेनादिष्टात् पादः ग्रन्दात् शीषादेः स्वाङ्गवाचकात् ग्रन्दात् क्तिभिन्नेकारान्ताच स्तियामोप स्थादा इत्यर्थः । भाषादिशः — श्रीषः क्षपण-कल्याषौ पुराणः कसलस्रथा । विकाटीदारचण्डाय साधारणविश्रद्धटी । सहायारालभरूका विश्रालादासया परे इति । भव भीषादिगणीन इकागलेन च पाणिनीशी बह्वादि: (४।२।४५) खच्यते, परन्तु तव महायसाधारणभव्दौ न दृश्येते, भाक्रतिगण।ऽयमिति लिखनात् तुभवस्थेव । कटि-शोषिप्रस्तिस्वाङ्गानामिकारान्तवेन प्राप्तः सुखनखादीनाञ्च स्त्रीत्वाभावात् स्वाङ्गिसह गौणर्भवेति, तेन विस्वीशी दीर्घनखीत्यादि। श्रतएव पाणिनौ उपसर्जनादिति (४।१।५४), मंचितमारे च अपधानार्थादिति, सुपद्मे अपधानादिति, कातन्तपरिभिष्टे च बहुत्री ही दति लिखनम्। चिपदीति चयः पादाः यस्याः इति बहुत्रीही (३४०) पादस्य पाद-त्रादंशे विपादशब्दादनेन दूपि, (२२३) पादः पदादेशः। भङाधारपात्री। पत्ते त्रिपातः। भ्रोणवर्णास्त्री भ्रोगौ, वाश्रोगाः। चल्डी चल्डा इति भोगादिलात् वार्द्रप, पत्थनतकीपना स्त्रीत्यर्थः। विक्वेदव क्रोष्टौ यस्याः दति विस्वीष्ठी विस्वीष्ठास्त्री, स्वाङवाधकलात् वा द्वेष, अत्र स्वाङगढुपसर्जनाददन्तादिति मिडान्तकौ सुदी लिखनात शोभना शिखा सुश्रिखा दल्यत न ईप। पाणिनि: ४ १ ८ ४३,४५,५४, ''क्रांदिकारादिकानः'' इति यार्त्तिकञ्चा

[†] स्वाङ्गजनणमाह—स्वाङ्गं स्थादिति। ऋद्रवं द्रविभिन्नं, मृत्तें साकारं (काटिन्या-दिस्पर्भविभेषी मृत्तिंदिति गीयौचन्द्रः), प्राणिस्थं प्राणिनि स्थितं (मुखनासिकाभ्यां त्री वायुः निष्कामति स्रप्राणः साऽस्थास्तीति प्राणो तत्र यत् तिष्ठति तत् प्राणिस्थामिति स्रोभौचन्द्रः), स्विकारजं पातुवैषस्यादिकपविकारात्न जातम्— एवभूतं यद्वस्नृ तत्

बहुखेदा द्रवलात्। सुन्नाना अमूर्त्तलात्। सुमुखा याला ग्रप्राणिस्थलात् । सुभोफा विकारजलात । 🐲 सुनेशी सुनेशा रथा, अप्राणिखस्यापि प्राणिनि दृष्टलात्। सुम्तनी सुम्तना प्रतिमा, प्राणिवत प्राणिसहमे खितलात् 🕆 राजी राजि:, क्रीसु बुद्धिः मृति:। 🕸

स्वाङं स्थादिल्ययः । यथा विम्बोधी विन्बीष्ठा। दितीयल वणमा इष्टरं तवातन्स्य-मपीति -तत्र प्राणिनि दृष्टम् चनलरम् अतत्र्ष्यम् अप्राणिस्थमपि चद्रवसूर्त्ताविकारजं यदल् तदपि स्वाइं स्वादिलर्थः। यथा सुकेशी सुकेशा रथा। ततीयं लचगमा ह— तदत्ताडग्रिचि श्रियतभिलि — तदत् प्राणिस्थवत्, ताडग्रि प्राचितुल्ये स्थितच अप्रव-मूर्तीविकारजं यत् तचापि खाङ्गं सादिव्यथं । यथा सुसनी मुनना प्रतिमा। जन-कारिकाया: पाठान्तरमपि टब्बर्ति यथा सिद्धानकौमुद्याम्—"च्रद्रवं सूर्तिमत्स्वाङं प्राणिस्थमविकांर्जम्। अततस्थंतच दृष्टच तेन चेत्तत् तथायुतम् ॥'' "तस्य चेत्तत तया युतम्' इति क्रमदी वरः।

- * चद्रवाद्पिद-व्यावित्ताह—वहव: स्वेदा (घम्माः) यस्याः सा वहस्वेदा, स्वेदस्य द्रवलात् न स्वाङ्गलमित्यर्थः । सुषु ज्ञानं यस्याः सा सुज्ञाना, ज्ञानस्य त्रमूर्जलात । सुष्ठ मुखं यस्या: सा सुमुखा भावा, अत्र भावामुखस्य अप्राणिनि स्थितलात्। सुष्ठ शीफ: (शीथ:) यस्याः सा सुश्रीफा, श्रीफस्य विकारजलात्, न स्वाङ्गलिनिति सर्वेजान्वय ।
- † सुष्ठ केशी यस्थाः सा सुकेशी सुकेशा ग्यादित दितीयलच्चीदाहरणम् । सुष्ठ सनौ यस्याः सा सुननौ सुसना प्रतिमा इति वृतीयस्वक्षीदाइरणम् ।
- ‡ राजी राजिरिति राजधातो: इमलाय:, एवं गीणी श्रमी मणी वनी श्रेणी रजनी मननीयादि, पर्चे गीणिरियादय:। यी: यी, लक्की: लक्की इति द्र्षेटरचितक्रमदी-श्ररी। निषेधी यञ्जातीयसा विधिरपि तज्जातीयस्थिति न्यायात्, क्रिवर्जनात् क्रदि-कारादेवायं विभि:, तेन सुगन्धि: युवजानिरित्यादौ न स्थात्। उपसचिषात् कारिः (११५८), चकरणि: (११६०) चनीवनिरित्यादी न स्थात्।

खाइत्वाचके विशेष:---

बष्टचां स्वाङानां मध्ये नासिकोदराभ्यामेव ईप्वा स्थात्। तुङ्गनासिकौ तुङ्ग-बासिका, जीगोदरी चीगोदरा। आध्यां किं, प्रयुज्ञघना, चारवदना, दीर्घलीचना इत्यादि। पाणिनिः शश्रम्।

संबीगीङ्खाङ्गानां मध्ये जङ्गीष्ठकुरुक्षचंयङ्गाङ्गदलगामाकपुण्डेभ्य एव द्रेष् वा

२६६। धात् क्रीतात्। (धान् प्र., क्रीतात् प्रा)। धनेन क्रीयते सा—धनक्रीती। क्र

२६७। त्तादत्ये। (कात् पा. भन्ये ७)।

धादिलोव। अभीण लिप्यते सा—अभी लिप्ती। १

२६८। खाङ्गाहो। (खाङात् प्रा, हे ol)।

स्वाङ्गात् परो हे श्वितो यः कास्त्रस्नांदीप् स्वात्। यङ्गभित्री । 🕸

स्थात् । दीर्धजङ्गी दीर्घजङ्गा इत्थादि । एभ्यः किं, सुनेचा सुगुल्का इत्यादि । पाणिनिः । । १११५५, वार्तिकानि च ।

प्रोही क्यलास्त्री निर्धं संज्ञासाम | प्रोही श्राफ्यी, क्यलास्त्री ऋरोधिविश्रेष: । ऋर कवर विष सणिस्य: पुच्छात नित्यम । श्रयुच्छीत्यादि । वार्तिकम् ।

उपमानपूर्वात् पुच्छपचाभ्यां नित्यम् । अपुच्छी काकपची इत्यादिः। उपमानात् किं सितपना इंसीत्यादि । वार्त्तिकम् ।

कोड ख़र बाल भ्रफ गुट भीष घोषा गल भग यीवादे ने ईप्। पाणिनिः ४।१।४६। सन्ह विदानान नञ्जः परात खाङ्गात् न ईप्। सकेशा इत्यादि। पाणिनिः ४।१।५०। नख-मुखाभ्यां संज्ञायां न ईप्। शर्पण्या कालमुखा। पाणिनिः ४।१।५८। मन्वार्थेपाट इत्यस्र।त् न ईप्। चतुष्पादा च्हक्। पाणिनिः ४।१७६।

- क्ष करणपूर्व्वात् क्षीतादीप् स्थान स्त्रियाम् । स्थायुनपत्तेः प्रागेव समासे एतदि-धानं, ऋती धनेन क्षीयते स्प्रदति वाक्यम् । धनेन क्षीता धनकीता इत्यचन स्थात् । धान् किं, राज्ञा क्षीयते स्प्रराजकीता इति । पाणिनिः ४।२।५०।
- † करणपूर्व्वात् क्रान्तादीप् स्थात् स्त्रियां करणस्य चन्पले सति । इङापि स्यायु-त्यत्ते: प्राक् समासः, चत भाड चर्भण लियर्तसंति वाक्यम् । चले किं, जलपूर्णा घटी, चन्दमानुलिप्ता चङ्गभैत्यादि । पार्णिनि: ४ । १ । ५१ १ ।
- ‡ पृथग्यीगात धादिति चलो इति च नातुवर्त्तते, कीवलं क्रादिकतुवर्त्तते । स्वाकः-वाचक्रकस्टात् परो वहुनोहिसमासे स्थितो यः क्रानग्रन्दसस्यादीप् स्थात् । श्रद्धो (खलाटास्थि) भिन्नीयया इति ग्रङ्कभिन्नी । ग्रङ्कीनिधी खलाटास्थृीत्यमरः । हे इति

२६८। वाच्छनाजाते:।

(वा । १ ।, प्रच्छन्नात् ५ ।, जाते: ५ ।) ।

श्राच्छादनजातिवर्ज्ञात् जातिवाचिनः परात् हे स्थितात् क्रादीप् स्थादा।

इत्तुभचिती इत्तुभचिता। कृतात्तुवस्त्रच्छता। अ

२७०। पत्रामपालकान्तात्।

(पत्नाम् अं, भपालकानात् ५।)।

पुंबाचकादपालकान्तादीष् स्थात् भार्य्यायाम् । गोपी । पालकान्तात्तु गोपालिका । 🕆

किं पाद्पतितः । उपमगंश्यवधानेऽपि कविन स्थान, यथा श्रीष्ठविती । अत्र (पाणिनिः ६।२११७०) क्षत्रमितजात्प्रिविश्यो न स्थादिति, यथा दन्तजाता, माम-जाताः स्रवजाताः, दःखजाताः, वहकताः, श्रकताः, स्रकताः, कृष्ण्यमित्यः। इत्यादि । विवाहं पाणिगृहोतो यथा सा पाणिगटहीती पत्रो, श्रन्यत्र पाणिगटहीताः इति च वक्तव्यम् । पाणिनिः ४।१।४२, नानिकदथस्य ।

कं कृतं वस्त्र भाति, नामि कृतं यत्र मीऽक्कृत्र मचात्। इत्तुर्भी जिती यया सा इत्तुर्भाविती इत्तुर्भी जिता, एवं इक्त हृष्टी इक्त हृष्टा हिं। वस्त्र कृतं परिहितं यया सा वस्त्र कृता, एवं वसन्प्राप्ता इत्यादी न स्थात्, तेन इत्तुकृता इत्यादि । पाणिनि: ४।१।५३, वार्तिकाम्, ६।२।१०० च ।

[†] पानकोऽनी यस्य स पानकानाः, पयात्रज्योगे तस्यातः। पानकान्तवर्जनात् स्वकारानादेवायं विधिरित । किय पानकग्रहणंनैवेटसिखी सन्त्यहणं—पानकपर्यनस्य ज्येष्ठादिगणस्य (कातन्त्रपरित्रिष्टोक्षिखितस्य) प्राप्तायं । तेन, ज्येष्ठ किनष्ठ सध्यमं स्वेषायं स्वातः प्राप्तानं प्रवानक वर्जान् प्वाचकाटकारानादीप् स्थात् 'पत्नोवाच्ये इत्ययं: । प्रवाचकादिति किंदवदत्ता । गोपस्य पत्नी—गोपौ, एव पितामही सातासहीत्यादि । गोपानकस्य पत्नी —गोपालिका (२४८,२५४), एवं ज्येष्ठा किनष्ठा सध्यना उत्तस्य प्रयालिका । गोपौत्यादिय जातिवादीनि सित्रे इह उदाहरणं निषिष्ठानामित्र प्राप्तायं, तेन चित्रयस्य पत्नी स्विधी, वैद्यस्य पत्नी वैद्यसीत्यादि । प्राणिनिः ४।१।४८, 'गं।पालिकादीना प्रात्येष्तः' इति वार्तिकस्य ।

२७१ । ब्रह्मरूमवसर्वस्टड्नेन्द्रवरुणादानङ् च।

•स्तीत्यः।

(बह्म---वर्षणात् ५), भानङ् ।१।, भा ।१।)।

एभ्यः पत्न्यामीप् स्थात्, तेषामानङ्च । ब्रह्माणी रुद्राणी । अ

२७२। मातुलोपाध्यायच्चियाचार्य्यसूर्या-र्यादा। (मानुल-प्रयोत् प्रा, वं ११)।

मातुलानी मातुली। चन्चे लीपमिप विकल्पयन्ति, तदा मातुलेत्यादि। तद्वाग्रब्दोग्व्यवस्थाप्यः। ऋचार्य्यानी, अवन णलं। पे

२७३ । द्रषाकप्यग्नि मनु पूतक्रतु कुसित कुसिदादेङ् च। (अपाकपि - कुचिदात् ४१, ऐङ्.।रे।, च।रा)।

अब्बाच कट्ट भवश्व सर्व्य स्वयं स्वयं स्वयं इन्द्य वक्षयं तसात्। प्रधानस्य ईप्-प्रत्ययस्थानुरोधात् पञ्चस्यन्तलम् । भानडी डिल्लादन्यस्य स्थाने । बद्धाणः पत्नी बद्धाणी, पर्वे कट्ठाणी भवानीत्यादि । भाव वार्णिकसते बद्धाणमानयतीति बद्धाणी, न तु ब्रह्म-श्चन्दादानङ् । एवं श्रकाणी शिवानीत्यादि । पाणिनः ४।१।४८ ।

[†] मातुलय उपाध्यायय चित्रय त्राचाय्य स्थ्य प्रथ्य प्रथ्य तसात्। ईप् भानड् इल्प्रभागरत्त्ति। एथः पत्रामीप् स्थात् तेशमानङ्च वा स्यादियथे । मातुलस्य पत्री मात्नानी मात्नी, अन्यशं मत ईपोऽपि विकल्पः, तेन मातृना इत्याद्यपि । स्वभंत तु वाण्वस्थ व्यवस्थ्या ज्ञियम्, अभिधानान्यमितानि पदानि भविष्यनीति भावः, रुषा—उपाध्यायात् पत्रामानद् वा स्थात्, तेन उपाध्यायानी उपाध्यायी । स्थं चित्रयास्य ध्याव्याद्यत् केवलम ईप् वा स्थात्, तेन उपाध्यायी उपाध्याया। भयं चित्रयास्य ध्याव्याद्यत् केवलम ईप् वा स्थात्, तेन उपाध्यायी उपाध्याया। भयं चित्रयास्य ध्याव्याद्यत् भवार्या चित्रया । भावार्थात् पत्राम् भावार्थान् स्थं वाव्याद्यत् भावार्था। स्थंनामकस्य कस्यवित् पत्री स्थं (१६०), देवतायान् स्था। मद्याद्यात् पत्रामं ज्ञाते च ईवेव—महाश्द्री (वार्त्वक्षम्)। भावार्थानीयच रेकात् चलसभावनायानपि वाश्वस्थ्यवस्थ्या न चलमिति। (४।१।४८) पाणिनिस्वस्थ वार्त्वकानि।

एभ्यः पत्न्यामीप् स्थात् तेषामैङ् च। द्वषाकापायी अग्नायी मनायी। *

२७४। नारी सखी यवानी यवनानी हिमान्यरण्यानी मनावी पतिवत्नप्रन्तर्वती पत्नी भाजी गोणी नागी स्थली क्षणी काली क्षणी कामुकी घटी कवरी नील्यिशिख्य:। (नारी-भिज्याः राग)।

एते निपात्यन्ते । 🅆

नरजातिस्तियां नारी, वयस्यायां सस्वी सता।
यवनानी लिपेभेंटें, यवानी गर्हिते यवे।
हिमानी हिमसंहत्याम्, भरण्यांनी महावने।
सनावी च मनी: पत्री, पतिवती सभर्मुका।
भर्मात्रे वो च गर्भाग्यां, पत्री पाणिग्रहोतिका।
भाभी कित्वान् व्यञ्जने च, गांणी भान्यादिपात्रके।
नागी स्त्रियां स्थात् स्थूलायां, कालायाद्याहिद् िलनी:।
स्थली भक्तिमा भूमि:, कुण्डी पात्रविश्वेषके।
काली च क्रणवर्णायां, कुश्री लीहिक्तारकं।
कामुकी मदमायत्ता, घटी चुद्रघटी सता।
कान्यी केशविन्यासे, नीकी प्राणिनि चौषधी।
पश्चित्री शिष्यारिकायां स्त्रियामेव निपातनम्।
भव नारीति नशस्द त् नरशस्दाच ईपि निपात्यम्। सखीति इदल्लान् (२६५) विकल्प

^{*} व्याकिषय प्रियम नृष पूनकत्य क्सित्य क्सित्य (क्सिट इति पाणिनी, क्षिणीट इति संविधसारे, क्सिट्शस्टा इत्यमध्यो न त दीर्धमध्य इति सिजानकीमुद्याम्) तसात्। प्रतापि प्रधानस्य ईपोऽनुरोषात् प्रयस्थनत्वम्। उत्तरच वाग्रहणेन सध्य-तिस्तरस्य निव्यलम्। ऐङ् इत्यस्य श्विष्टादन्यस्य स्थाने। व्याकपे: पवी व्याकपायी, हर्विष् ध्याकपी इत्यसरः। पुनकत्रिन्टः। पाणिनिः ४।१।३६ — ३० । 'सनोरी वा' (४।१।३८) इति सुवेण मनावी मनुष। परसूवे सनावीति पटं प्रदत्तम्।

[†] निपाती द्वार्थविशेषे भवतीत्वत.--

२७५। पद्वती शक्ती युवत्यमद्वाही ख्रेन्येनी हरिणी भरिणी रोहिणी लोहिन्यसिक्री पिलक्रियो वा। (पद्वती-पविक्राः १॥, वा ११)।

पर्चे -- पदितः यतिः यूनी अनिड्ही खेता एता हरिता भरिता रोहिता लोहिता असिता पिलता । असिक्री अवदा, पिलक्री वहा । *

ष्ट्रीप प्राप्ते, नित्याथीं निपात: । यवनजातिस्त्रीत्यथं यवनी । मनी: प्रवीत्यथं मनायीत्याप पूर्वेण (२०३)। पितवतीत्थन पितिविवाहकर्मा, तेन पितमती मेना। भन्यत्विविक् चायां प्रायमो लिङ्गसाक्षान्य।दीप्, तेन मठी पटी क्वनी वंशी स्वणालीत्यादि, भन्यी हचः हचक इत्यादी न स्थात् । भन वक्तव्य — (पाणिनिः शाशाश्य) एकः पितरस्था इत्यथीं एकपत्री, समान पितरस्थाः सपत्री, एवं अपत्री बौरपत्री भादपत्री भद्रपत्री पुत्रपत्री पिष्ठपत्रीति नित्यस् ; "विभाषा सपूर्वस्थ" (पाणिनिः शाशाश्य) दित स्वण तु विकत्यः, यथा, वहपतिः वद्यवौ, स्वप्यतिः स्वष्ठपत्री, ववलपितः ववलपत्रीत्यादि तत्-पुरुषे वहत्रीही च । एवं जानपदी । "सञ्चायां वा" इति वार्त्तिकेन नीलो नीला । पाणिनः शाशाश्य, ११,१२,१२,१८,६८,६२ । "घटकृष्णात् पाने" इति कातन्तपरिभिष्टे भौपतिदन्तः । सुपन्ने घटोभन्दो गौरादी पठितः । "दनरयीवृं विश्व" इति ग्राङ्गे-रवादिसण्याठक्त्वस् (पाणिनिः शाशाश्व)।

अ पज्ञ ती इत्यादयी निपात्यने वा। पादस्य इति: पज्ञती, सक्षभाती: कि: सक्षी सस्त्रभेद:. (बर्ल त सक्तिदेव), कान्तवेन (२६५) चप्राप्ती ईपी विभाषा। सुवन्धस्यात् तिप्रत्ययं क्रवा वा निपात्यते—सुवती सुवितिति च। चमडु इसस्टात् (२५०) ईपि, चाण्या निपात्यते। श्वित एत इति भरित रीहित ली इति सस्त्री वर्णवाचने भ्यः वा ईप् तकारस्य निपात्यते, नचने भिष्णी रीहिणीति नित्यम्। चिति-सस्याद्वज्ञाया पिलत्यन्दात् वज्ञायान् ईप् तकारस्य क्रम निपात्यते। पचि—पञ्चति-मांक्रभ्या (२६५)ईप्निथेप:। यूनी चमडु ही (२५०)ईप्। पाणिनि: वाराव्यः १८१,४५,००, वार्त्तिक्यः। "युवतीति तृ यौते: सम्बनात् खोषि बोध्यन्।" इति सिज्ञानकौष्ठदी।

चत्र वक्तव्यम्—ईश्वरशब्दादीष् वा, ईश्वरी ईश्वरा। "व्यवस्थावाविलात् ईश्वरा ईश्वरीति चौषादिकां वरट्" इति सुपग्ने।

केवल (केरल प्रति पद्मनाभक्रमदीखरी, केरली ज्योतिर्विशेषस्य नामिति गीयीकन्द्रः)

सुग्वमाव व्याकारणम्।

२७६। न मन्संख्याखसजादे: ।
(न ११), मन् सङ्गा-स्रष्ट-षजादे: ४१)।

एभ्य ई.प्न स्थात्। सीमा, पञ्च, स्त्रसा माता, त्रजा वाला। (१०१) नेपीत्युक्ते:—यावती बङ्की। *

सुमङ्गल मामक (सामकी देवताविश्वेषः) भागधेय भेषत्र समान (सुमानी कृन्दोतिश्वेषः) पाप श्राय्येकत दीर्घनिह अपर (अवर इति क्रमृढीश्वरः) रेखक देवक केकय मिल्नका-देरीप्नास्त्र। केवलीत्यादि । नास्त्रीति किंकीवला इत्यादि । पाणिनिः ४।१।३०।

ष्ठीड़।दि(भजादिश्ति पाणिनिः)भिज्ञादवार्यको यथास्य वर्त्तनानात् भ्रन्दादीप् स्थान्यस्थे। कुमारी किशोशी कश्मी तकणीत्यौदि। गौग्थे तु—वष्ठकमारा पुरी। वार्डकी वयसि—स्थितरा बद्धा। ष्ठीडादेनु—ष्ठोडा वाला कसा कत्या दस्यादि भाज्ञति-गयः। वयायां फलानां समाद्वारः विफला, भन स्त्रीलं भाप् च निपात्यते। पाणिनिः ४।१४,२०। ''अजादिलात् विफला'' दित सिद्धान्तकौसुदी।

 खसा च अगय खसजी, तौ आदी ययोसी खसजादी, सन्च सङ्गाच ससजादी चेति, तसात्। मन्प्रयथानात् सङ्गावाचकात् स्तसादः प्रजादेश र्देप न स्यादित्यर्थः । सीमन्शन्दात् (२५१) डापीऽप्राप्तिपची नानावात् प्राप्तस्य (२५०) ईपी निषेध:। एवम् धतिपटिमा इत्यादि। धत्र मन ईपवर्जनं नालतात् प्राप्तस्य (२५०) ईप एव निवेधार्थ, तेन लब्बसीमारी लब्बसीम लब्बसीमानी इत्यादिए (२५३)ईप चान्यस्यादित्यनेन द्रेप् स्थादेव । सङ्गावाचकानां मध्ये एक विषड् बह्ननामीपीऽसमाव:, तिस्चतसी' खसादिपाठादेव र्रपनिषेष: ततम पचादाष्टादशपर्यनानां मुख्यते (१३१) विष लिङ्गेषु समलविधानेनैव लिङ्गकार्य्यानिषेधे सिङ्गे, भव सङ्गावर्जनं नान्तसङ्घाभ्यो गौषलं र्रूप्निवेधार्थे, तेन प्रियपक्षा द्रौपदी रत्यादी. घपन्ना रत्यादी च (२५३) ईप चान्तस्यादिकनेन ईप्न स्थात्, एवम् चितपञ्चा स्त्रीत्यादी (२५०) हिन्नुञ्चा-ष्टें थ नेन र्रूप्न स्थात्। किञ्चाच नजीऽत्यार्थतात् विंग्रतिषध्यादेः (२६५)पा श्लोगादी स्पनेन र्द्रप वास्थादेव। पञ्च इत्युदाइरणं लिपिकरप्रमादः। पञ्चिति छदाइरणात् नाल-सङ्घाया एव द्रैप्निषेध पति केथित । सामान्यती निषेधात् एकस्य पत्नी एका इत्यादी र्प न सादित्यपरे। खसादिय—खस्र मात यात दुहित ननान्द् तिस् चतस्र कति यति तति, इति द्राः माता चत्र जननी, याता खानिसाहपत्नी, तेन धान्यस्य मात्री, तीर्थस्य यात्री इत्यादी ईप् स्थादेव । तिस् चतस्य इत्येतयी: सङ्गावाच-काला क्रियेचे पत्र गौणले ग्रहणं, तीन प्रियतिसा प्रियचतसा इत्यादि । कतियतिततीनां मुख्यते (१६१) विङकार्य्यमिषंधान गौषाते प्रियकतिरित्यादी ईप न स्यात । अजादिय

२७७। उतोऽयुङ्र ज्वादे न्प्राणिजाते रूप्।

(उत. ४।, श्रयुङ्रक्वाहे: ४।, नृशांशिजाते: ४।, कप् ।१।) I

स्त्रियामुकारान्तात् नृजातेरप्राणिजातेष जए स्थात् न तु युङो रज्ज्वादेष । कुरू: कर्जन्यू: । प्राणिजातेसु, घेनु: । युङ्-'रज्ज्वादेसु, ग्रध्वर्यु:, रज्जु: इनु: । ॥,

२७८। वामलं चणग्रफसहसहितसंहितोप-मानादूरोः। (वान सवण-ग्रफ सह-सिहत-सहित-उपनानात् ४।, करीः ४।)।

वामोरू: रम्भोरू: । १

बर्सक पिपीलिकादि: । भयमजादि: पाणिनीयाद्वियते, तच परश्रतोदयी न हम्प्रति एवं खाङ्गजातिभ्यां पराः क्षतमितजातप्रतिपद्वाय, कंश्रक्तता इस्तिना इत्यादि । (१०१) कंपीत्यक्रीरित इंपि कर्मश्री उवत्वइगणानां सङ्घावद्वाविषेषात यावतीत्यच उदिस्तात् (२४०) ईप्। बङ्गोत्यच (२४१) मुणायक्तादोप्। पाणिनीः '४।१।४,१०,११। पाणिनीयं ससादिगणे कति यति ततीनां निवेशी न हम्पते ।

^{*} य उड्यस्य स युड्, रज्युरादिर्यस्य स रज्यादिः, युड् च रज्यादिय तत् युड् रज्यादि, नामि युड्रज्यादि यसां सा अयुङ्रज्यादिस्याः। ना च अप्राणी च तत् नृप्राणि, तम्र तत् नातिश्वित नृप्राणिजातिलस्याः। सनुष्यजातेः अप्राणिजातय उकारानात् अन्दात् स्वियासूप् स्थात्, न तु यकारां डो रज्यादेय । द्रजातेः— कर्ष्टित, कृतस्य कुद्रदेशस्य सनुष्यजातिवाची, एवं कादः। अप्राणिजातेः— कर्षस्ति कर्तन् सम्बद्धः वदरीजातिवाची, एवं अलावः। धंत्रिति दिश्वप्रप्राणिजातिलात् न जप् एवं क्रकताकः भातः। "नतु सत्तन् समुपालयानुयान्तीं वरतन् सप्रवदन्ति कृत्रुटा इत्य दोषां नस्तत्तु अस्वदन्ति कृत्रुटा इत्य दोषां नस्तत्तु अस्वदन्ति स्वास्य दोषां नस्तत् अस्वदिक्षः अध्यर्थे क्राप्ति चरणत्वे न जातिलात् प्राप्ती युड्लाद्विषेषः अध्यर्थे क्राप्ति । रज्यादिश्व— रज्यः इतः कड्रः प्रियङ्गः सायुरि-त्यादि । पाणिनिः ४।१।६६, वार्षिक्ष ।

[†] वामय सचणस भाष्य सहय सहितय संहितय उपमान्य तसात्। वामादिस्यः षड्स्य. उपमानवाचकाश्च परी य करणव्यसमादूर् स्थात् स्त्रियाम्। वामी सन्दरी जरू यस्याः सा वामीकः। एवः लक्षणाव्यात् (४४६) अर्थ आदित्वात् अप्रत्ययेग लचणौ

२७६। तन्वादेवी। (तन्वादः ४), वा ११।)।

तनुः तनुः, चन्नुः चन्नुः । *

इति स्वीत्यपादः ।

२य पादः — कारकम् (क)।

२८०। त्यर्थसम्बद्धातार्थे प्री।

(ल्यर्थ सम्बुडि जन्नार्थे था, भी ।१।)।

लेरवें सम्बोधने त्यैकतार्थे के सति च प्री स्थात्।

क्षण: यी: ज्ञानं। हे विश्लो। 🕆

सुल चणानिती जक यसाः सा लचणोकः ; अफी सुरौ दव संशिष्टी खक यसाः सा अफीकः ; सकेते देति सकी खक यसाः सा सकोकः, विल चणोकसहिता वा ; दितेन सिंदती जक यसाः सा सिंदतीकः , (३८८) संदित अच्दस्य विकली सिंदती संदितीकः संदितीकः ; जपमानाः मृ, रक्षे दव जक यसाः सा रक्षीकः, एवं करभोकः । एभ्यः कि, उनीकः पीनोकरिलादि । पाणिनः ४।१।६८,०० ; सिंदतिकः । विकलीकः विकलीकः ।

अति तत्रादिर्थस्य तस्यात्। तत्वादेवां अप् स्थादिस्थः। तत्वादिर्थया— तत्रयञ्च-क्कसींकः कङ्गपङ्गप्रियङ्गवः। गस्तुः कुङ्गिति श्रीक्तासन्वाती सरयुस्तया॥ तत्रथस्यात् गौरियोऽपि वरतत्ः स्वतन्तिस्यादि। भव—वाङ्गत-कद्वकसस्याद्ये नित्यस्प् स्थात् संज्ञायामिति वक्तव्यम्, भद्रवाङ्गित्यादि (पाणिनिः ४।१।६०,०२)। अध्यरस्य पत्नी सर्थ्यदिति निपास्यस् "अध्यस्थोकार।कारसीपय" इति वार्षिकस्।

चर्चीर्राभधेय:--तथाच 'मन्द्रभोद्यार्थम।चन यहसु प्रतिपाद्यते, तस मन्द्रस्य तहसु

[†] स्थादिभिर्लिङ्गानां रूपाणि निरुष्य स्थादीनामर्थान् विरुपयित खार्येस्थादि।— चिलिङ्गं, जेरथीं खार्थः, सम्बुद्धिः सम्बोधनं, उन्नोऽयीं यस्य नत् उन्नार्थे कारकं — खार्यस्य सम्बद्धिय उन्नार्थेस्थ एतेषां समाद्वारसियन्।

सर्वोऽची जीवनः पाता दानीयः प्रभवी लयः। *

जायतामर्थसं ज्ञियति' पाच: । एवचः, "चन्यात् ग्रब्टाद्यमर्थी वीडव्यः" इती श्वरेच्छायिकि-रिभिषां, तथा, प्रतिपादाः चिभिषेय इति । यिक्त जान्य व्याकः गादिभ्याः भवति, यथाः — मित्रवह व्याकः गोपमान-कीषाप्तवाक्यात् व्यवहारतयः । साज्ञित्रवः सिद्धपद्य लिद्धाः वाक्यस्य ग्रेषात् निवतिवदिन्ति ॥ ल्ययंच पच्छा विधा वा, तद्कं — स्वार्थो द्रव्यच लिद्धाः सक्यां कियां विवतिवदिन्तः ॥ स्वार्थो विज्ञाष्ट्रांक्यः किषास्थिदिन्ति । स्वार्थो विश्वषणं, द्रव्यं विश्वषो, लिद्धं पुंस्तादि, भैक्षा एकलादि, कर्मादिदीदिन्ति ।

तिकास पर्धे, मलीधने, प्रत्यये: कथितायें कारके च सित, प्रथमा स्थादिल्थंः। किस यदा लिकायोतिकित कसांदायों न विवच्यते लहें व लिकात् प्रथमा स्थात्, अन्यशा कणं स्थामीत्यादावि प्रथमापते:। लिकाथंस्य एकत्वित्वल्वहृत्वेषु क्रमाटेकवचन- विवचनवह्वचनानि प्रथोज्यानि (१६)। यथा—घटः घटौ घटाः। एको ही वह्वद्रस्ताटिषु सङ्गा एव लिकाथंः, विभिन्नप्रयोगसु— "मापदं शास्त्रे प्रयुचीत" इति नियमात् पदलायं, कमालादिप्रतीत्ययं स्था प्रत्य प्रकृष्णान्वितस्वासंवीधकत्वं प्रत्ययानामिति प्रास्तः। पंस्तादिकमपि लिकायं इति ज्ञापयबाह कष्णः श्री. ज्ञानमिति। पाणिनिः राहा १६६,४०।

निह क्रियारहितं वाक्समलीति न्यायात् स्टब्सेनेन क्रियाच्यासरिण जक्तायंतात् प्रयमापानि क्रियं ज्यायंश्वरणमिति ? ज्ञाते, यत्र असमापक्रियापटं क्रियोदिपद्युक्तं तनैन क्रियाच्यासरः, यत्र कु केनली रुद्रश्च्यः प्रयुक्तते तत्र तत्र्यायानसरी नासीति । एवम् एकादिशस्टः यदा संख्येयनाची तटा घटादिना समानाधिकरणः स्थात्, तत्र लिङार्षे प्रयमा—यया, एका घटः, प्रशो जीठिरियादि ।

भाभिसुख्यविधानं सम्बुद्धिः । इच. लते, इत्यादावचितनेषु तृपघारः । "सम्बोधनम्ब प्रवर्त्तनाविषयवीधनादिफलकाभिसुख्यः" इति सिङ्डालकोसुदीटीका । "सिङ्ख्याभिस् सुखीभावमाचं सम्बोधनं विदुः । प्राप्ताभिसुख्यः पुरुषः क्रियासु विवियुच्यते ॥" इति चरिकारिका ।

• फलार्थे जदाइरित सर्वे इत्यादि। सर्वे: शिव:— भर्चः, कीवनः, पाता, दानीयः, प्रभवः, लयसः। भर्चःतेऽयिमिति कस्येणि व्यण्. अत्र सर्वे इति कर्मं जलाम्। कौव्यतेऽमिति कौवनः कर्मं चनट्, भन्न सर्वे इति कर्ममुल्ताम्। पातौति पाता कर्मरि दन्, भन्न सर्वे इति कर्ममुल्ताम्। पातौति पाता कर्मरि दन्, भन्न सर्वे इति क्लाने सम्मदाने भन्नोयः, भन्न सर्वे इति सम्मदाने मनोयः, भन्न सर्वे इति सम्मदाने मनोयः, भन्न सर्वे इति सम्मदाने मन्ते इत्यादानमुक्तम्। कौयतेऽसिति लयः मधिकरणे भन्न, भन्न सर्वे इत्यादानमुक्तम्। त्यैक्तार्थे को इति वहुवचननिष्टेयात् भन्यैकक्तार्थेभन्न, भन्न सर्वे इत्यादिकरणमुक्तम्। त्यैक्तार्थे को इति वहुवचननिष्टेयात् भन्यैकक्तार्थेभिष्या—तथाच सिद्धानक्षीमुद्याम् "स्थिधानन्तु प्राथेण तिक्वनद्विससार्थेभिष्या—तथाच सिद्धानक्षीमुद्याम् "स्थिधानन्तु प्राथेण तिक्वनद्विससार्थेभन्ने

२८१। कर्मा क्रिया विशेषणा भिनिविशाधि-शीडः स्थासन्वध्यपावस-डंढं दी। (कर्म-डंश, इंश, दी क्ष)। कार्यं क्रिया विशेषणम् सभि-नि-विशा देडेश्व दसंग्नं स्थात्, तत्र च दी। क्ष

"स्मिष्ठिते प्रयमा" "तिङ्गमानाधिकरणे प्रयमा" इति वार्तिकद्ये च । तिङा यथा—रामी वनं ययौ, सव कर्षा उक्तः, रामेण रावणी ज्ञि, सव कर्षा उक्तम । कता तु — स्व्योऽद्यं इत्यादि स्वयमुदाकृतम् । तिञ्जिते यथा—वाषा कृतं याधिकम, सव कर्षा उक्तं, तके वेत्यधीते वा तार्किकः, सव कर्षा उक्तः । ममामेः यथा—स्वाद्यो वानरी यं स साद्यानि । इतः, कृता पृजा येन स क्रिज्ञच्हागः खुदः, कृता पृजा येन स क्रिज्ञच्हागः पृजा विष्कृत्वो सक्तः, दत्ता भूमिर्यक्षे स दत्तभूमिर्विषः, निर्गताः पविषो यक्षान् म निर्गतप्ती वृद्धः, सृष्ठु तारा यिखन् तत् सुत्रारमाकाणम् — एषु क्रमेण कर्षा करण कर्षः सम्प्रदानापादानाविकरण।नि उक्तान् । स्वययेनायुक्ताये प्रयमा—यथा विष्वविद्याद्यस्य वर्णमावाभिष्ठायुक्तवेन न विभक्तवृत्यनिः इतिश्रञ्च्येन विभक्तिकार्य्यकारितम् । पीतमस्वरं यस्यानौ पीतास्वरो इरिस्त्याद्वी सम्बस्नग्रुक्तवेन प्रयमिति वक्तव्यम् ।

कियते यत् तन् कम्मं, करोते नििखल कियावाच कलात् कर्मुव्यांपारैयंत् साध्यते तत् कम्मं इति यावत्। ''कर्मुरी सिततमं कम्मं'' इति पाणिनः (११४१४८)। कियाव्यायं क्सोंति पद्मनाभः। कर्मृसमुद्धिं कमोंति कमदी वरः। यत् कियते तत् कमोंति सर्वे-बम्मांवार्यः। तच्च कम्मं विविधं – निर्वेचौ विकार्ये प्रायचिति। निर्वेच्यते उत्पायते अत्तत् निर्वेचो, यथा घटं करोति, पुत्रं प्रस्थते इत्यादि। विक्रियते विद्यामानं वस्तु

रामं नमित सानन्दं धर्मानिभिनिविष्य सन्। क्ष यीघोऽधिशेतेऽहिमधिष्ठितोऽस्थि-मध्यास्य घोषं मध्रामन्ष्य।

भवस्थानर नीयते यत् तत् विकार्ये, तदिप हिविधं प्रक्रते क्कंटकं प्रक्रते ग्रंणानराधाय-भव्यः यथा काष्ठं दश्ति, सवणं कृष्ठलं करोति र्येणादि । निर्व्वर्णविकायां स्थानगत् प्राप्यं, यथा गामं गक्कतीत्यादि । तद्भवं।कं इतिणा -- यदसक्वायते सदा जन्मना यत् प्रकायते. तिव्वर्वर्षे, विकार्यम् कम्मं देधा व्यवस्थितम । प्रक्रण्केटसभूतं किचित् काष्ठादिभव्यवत्, किचित् गुणानरीत्पत्या सवर्णादिविकाग्वत् । कियाक्रतिर्व्याणां विद्विचं न विद्यते, दर्शनादनुमानाद्या तैत् प्राप्यमिष्ठ कायते । परे त भनौसितमिष प्रतिक्तमनुक्तव्य कम्मान्तर वदन्ति, यथा भोदनं बुभुच्विषं भचयतीत्यादि । स्वमते प्राप्यान्तर्यतमेव तत् ।

किया धालयंसस्य विशेषणं कियाविशेषणमः। तच ससामाधिकरणसेवः असमागाधिक करणविश्रीषणे (२८८) हतीयाविधानात् । क्रियाविश्रीवणस्य कारकलं कीस्रिटेवसङ्गीकियते यथा "सद पचतीत किथाविशेषणवात दितीयान्तम । धातुपान्तमावनां प्रति हि फलांशः कमीं भूत: । तथःच फलसामानाधिकर्णये दितीया." "कियाया: क्रांचमकर्मालविवचायां तिहमप्रात्वात हितीया" इति मनारमा। "हितीयिति तियातिमीषणादिति भावः" इति अन्दरसम् । "सामान्ये नपंभक्षांकिति — अने नैय क्रियाविशेषणानां नपंसकत्वे सिद्धे 'क्रियाविभ्रेषणानां क्रीवलं द्वितीयान्तलः च' इति न । पृथ्वे धातुपान्तभावनां प्रति फलां-भस कर्मतया तत कमानाधिक रणे क्रियाविशेषणे दितीयान्तलस्थापि निही:, तस्य क्रिया-जनकत्वमपि सञ्चानिहारा बोध्यम्'' इति शब्देन्द्शेखर्य। अनदीश्वरेण च "बपृथगरूप-कियाया विभेषणस्य कर्माल क्षीवलञ्च' इति मूर्च क्षणम्। **चतः** पृथगकपिकयाविभेषणस्य कर्मावादिकं न स्थात, तेन साध: पाक: साधु पाकौ इत्यादि, क्रदिभिहिती भावी द्रव्य न प्रकाणते पति न्यायेन द्रव्यताति देशान पाकस्य पृथगरूपत्रम्। विभेषणस्य कर्मालेऽपि भक्तर्माक्षातृशामकर्माकलमेव, कर्मानिवन्सनकार्ये, किमपि न सादिति यावत्। कर्मानं ज्ञाफलन्तु साकं विभेतीति सीकभी शब्दस्य (१३६) कव्यादाने-काच इत्यनेन कारकादिलात् यकारप्राप्तिरित्यादि । पाणिनः २।३।२,१।४।४६---४५. वार्त्तिकश्च।

 रामं नमतीत्यादि । सन् साधुः धम्मांन् प्रभिनिविश्व सामन्दं यथा स्थान्तथा रामं नमतीत्यन्त्यः । रामस् इति नमनित्याच्यायं कर्षः । सामन्दिनिति कियाविशेषणं, प्रामन्देन सद्व वर्णते यत् तत्, प्रामन्दसिद्धताभित्री नमस्तार इत्थयेः । धम्मांनिति प्रभिनिविश्वधातीरिधकरणे कर्षांत्म ।

यो दारकामध्युषिती विकुष्टः मुपावसचावसतात् स द्वतः॥ *

२८२। देशाध्यकालभावं वाहै:।

(देश-मध्वन् काल-भाव १।, वा ।१।, मटै: ३॥)।

महैर्भुभियोगि एते उसंज्ञा'वा स्युः।

नदीर्वनेषु चांषित्वा क्रोगार्तृस्थेष्व इनिशि । चंक्रमित्वा प्रियानीतिं रामी रचोवधे स्थितः ॥ पं

^{*} सौग इति । यः सौगः चिक्तमधिष्ठितः सन् चिक्तमधिप्रेते, घोषमध्यास्य सण्या-कृष्य द्वारकामध्यपितः सन् विकृष्णस्पातसय स नीऽधाकं इत् इत्यम् चायसतादित्य-चयः । चिक्ति चिक्षण्रेकः, चिक्षमित चिवित्यतः, घोषमिति चध्यानः, स्युरा-सिति चनुवसतेः, द्वारकामिति चिवित्यतः, विकृष्णमित उपवसतेः, इत् इति चावसतः, चिक्तर्ये क्यांत्यम् । इत् इति इद्यश्यस्य छपम् ११६) । चावसतादिति तृषः स्थाने (१५१) तातङ् । क्योपि वाच्येऽपि एतेषा क्यांत्वं, यथा नक्तनाधिष्ठितो हयः, वलैष्य-चितामस्य मल्याद्विष्यायकाः इत्यादि । यहे चिष्ठान क्त्याये चिक्ति ह्यः इत्यादि-प्रयोगस्य चातिदायकमनित्यमिति न्यायात् समाधानौयः । चत्र चिष्ठां इत्यादि ।

[†] देशस चध्या च कालस भावस तैयां समाहारकत्। नासि ढं लक्षं येयां ते चढ़ाः तै: । देशः पृथगेकैकदेशः नदीवनपर्वतादिः। चध्या चध्यपिमाणं क्षीशमलादिः। यथा— किर्जुक्ते वितसी च नन्तः किष्कुचतुः अतम्। चतुर्हसी धनुसस्य सहस्यं क्षीश्र- चछते। क्षीश्रहयन् गव्यृतिसदृहयं योजनं विदुरिति। कालः चणद्वसमुह्रस्पेष्ठर्रितराचिपध्यमास्वत्यरादिः। भावो धाल्यः। अकर्षं कथातुर्थोगं देशादीनां कर्षां संस्रावा स्यादिव्यवः। चक्सं कथातुर्थोगं देशादीनां कर्षां संस्रावा स्यादिव्यवः। चक्सं कथातुर्थोगं देशादीनां कर्षां संस्रावा स्यादिव्यवः। चक्सं कर्षां धात्यवः। च्यात्रक्षे हित्तयप्रभयजीवितमर्था। स्थावत्यवित्यवा नैते कर्षां धातव चक्ताः हित् ॥ विकारस्य (८३२) स्वै प्रद्यः। नदीरित्यादि — राभः नदीः वनेषु च चित्रता, चहः दिवसं निश्च राचौ क्षीश्रान् क्षीश्रपरिमितान् ययः नन्त्ये नल्वपरिमितेषु पिष्यु चंक्षमित्या इतस्रतो समित्या, प्रियानीति प्रियायाः सीताया चानयनं रचोवधे च स्थित रस्यन्यः। चन्न चित्रसित्य वर्षे क्षमित्या दित्रस्योगे। नदीरिति कर्णालं, पचे वनेषु इति (२०१) सप्तमी। चंक्षमित्या वर्षे क्षमित्या इति यक्षित्यवादि क्षां स्वावादि वर्षे व्यवित्र दित्यां वर्षे क्षमित्या दित्र योगात् कीश्रानिति

२८३। सदाध्वादि व्याप्ती सर्वे: सिंहे तु घं।

(सदा १२), प्रधादि १२), याती ७), सबैं: २॥, सिशे ७), तु १२।, घं २।) १ सर्वेर्षुभियोंने श्रस्त्रन्तसंयोगे श्रध्यादयो नित्यं उसंग्राः स्युः, श्रर्थ-सिद्दी तु धसंज्ञाः ।

> स्त्यैः क्वणोऽन्वितः क्रीयं मासी गुरुष्टहे स्थितः । गुरूपदेगं निस्तो माभ्यामध्यैष्ट वाद्मयम्॥ *

२८४। घोऽञौ,ञ: ग्रन्दाग्रनगितत्तार्थाढ़-ग्रन्तहग्रयो-रखादनीक्रन्दायग्रन्दायह्वादासूतववहा-

भहरिति च कम्पैलं. पचे मलेिलिति निशैति च सतमी। स्थित इति स्थाधातुर्योगे प्रियानीतिमिति कर्म्यलं, पचे रचीवधे दृति सप्तमी। पाणिनिः २।३।४, वार्तिकच ; "देशकालाध्वगन्त्वा. कर्म्यसमा इतक्रमंणाम्" इति कारिका च। भव वक्रव्यम्— "भक्रमंकधातुर्योगेऽक्रियानरान्तर्भावे देशमावास्थाच" इति क्रमदौषरस्पन्। तेन क्रियान्तरान्तर्भावे—सास भास्वते इत्थादि, म्सिवाधीस्थैः ।

* सदा नियम् । व्याप्तिः साकल्लेनाभिसन्त्रः चिवक्तं इति यावत् । चतप्व
"कालाध्यस्यानिक्वेदे" इति कमरीचरस्वम्, ''कालाध्यस्यानितसंयोगे" इति पद्मनामस्वद्य । सर्वेः सकमंकैरक्षंकेय धातुभियोंग कियाविक्वेदाभावे गम्यमाने चध्यकालभावाः निर्वं कम्मंकीः खः, चर्यसिद्धौ प्रयोजनसिद्धौ (चपवर्गे इति पाणिनिः;
चपवर्गः फलप्राप्तिरिति सिज्ञानकौमुदी, फलप्राप्तौ कियापरिसमाप्तिरपवर्ग इति
पद्मनाभः) सम्यां तु करणसंज्ञाः खुरित्यंः । सत्तैरिक्षादि—कृषः क्षोणं व्याप्य सत्तैरः
नितः चन्त्रतः सन्, मासौ व्याप्य गुद्दग्दे स्थितः सन्, गुद्दपदे व्याप्य निश्वतः
चयन्त्रस्तः सन्, मासौ व्याप्य वाद्ययं सक्तं श्रास्त्रम् चध्येट च्योतवान् इत्यन्वयः ।
चच चित्ततः इत्यस्य योगे मासौ इति, निभृत इत्यस्य योगे गुद्दपदेशिति च कम्मंत्रम् ।
पर्व स्थित इत्यस्य योगे मास्योगित चम्ययगकत्रवान्त्रस्त्रप्रयोगनस्त सिद्दलन करण्यत्म ।
चयिविद्दतस्य जङ्गि मासौ यत्योऽभीत इत्यन किमपि न चार्तास्त्रवंः । पापिनिः
राह्मिद्धरस्य जङ्गि मासौ यत्योऽभीत इत्यन किमपि न चार्तास्त्रवंः । पापिनिः
राह्मिद्धरस्य जङ्गि मासौ यत्योऽभीत इत्यन किमपि न चार्तास्त्रवंः । पापिनिः

हिंसाभची हृक्षमाभिवादिदृश्स् वा। (वः १।, वजी ७), जे: ६।, मब्द--मी: ६।,मखाद--भच: ६।,इन्क माभिवादि हम: ६।, तु ।१। वा ।१।)। प्रजान्तानां प्रव्हार्धातीनां यो घः स आकानां टंस्यात. न त खाटारे:. जारेस वा। *

* ऋशनं भीत्रनं पानस्त्रा ज्ञानस । क्रव्टय ऋशनस्व गतिय जाय भव्दाशनगतिज्ञाः ते कर्षा शेषां ते शब्दाशमगतिज्ञार्थाः । मासि ढंकर्भा येथां ते चढाः । प्रव्दाग्रन-गतिकाथीय चढाच यह य दशय यशैति तेवा स माहारसस्य । सूत: सारिय: गनादि-निमना च घः कत्ती यस स मृतघः, न सुतघीऽस्तघः, स चासी वहंबति चस्तघवरः। न हिंसा बहिंसा, बहिंसायां भवः बहिंसाभव । खाटव नीय कन्दव प्रयव शब्दायय हास भद्य भन्तघ वस्य श्रहिंसाभचय तेषां समाहारः, पश्चात्रञयीगे श्रखादनीकन्दायभव्हायहादामृतघवहाहिंसाभचलस्य । अभेर्वादिः श्रभिवादिः प्रभि-वादिय दक्षय 'प्रसिवादिदशौ, से पातानेपदे समिवादिदशौ सामिवादिदशौ। इय क्षय साभिवाटिटशौ चेति समाद्वारी तस्य ।

श्रव्हार्थाः उद्यारणार्थाः, श्रव्हकर्मांका धातव इति यावत् । अश्रनार्थाः भचगार्थाः । गत्यर्थाः गमनार्थाः प्रवेशारीक्षणतरणप्रापणार्था व्यपि । वार्थाः वानार्थाः । वाराः सत्तादार्थाः । भजान्तकाले श्रव्हार्थाटीना धातुनां यः कर्त्ता, स तेषा आग्तकाले कर्मा स्वात्, खादादेर्भ स्थात्, प्रादेल् वा स्यादिव्ययः। , यत्र दशय्वालीक्रीनायंतेऽपि पुन-र्यं इचं क्रिबिट्यार्थक लेऽपि सादिति ज्ञापनार्थम् । खाद चद भव — एपानमनार्थलात्, नी अथ वह-एवां गत्यथंलात. अन्द द्वा (क्व) - एतयी: अञ्दार्थलात प्राप्ती निर्वध:। श्रव्हाव प्रति नासधातुः, प्रव्हं करीतीत्यर्थे (८५१) छित्रः, प्रस्य अव्हार्थला दक्षमं कलाहा माप्ती निषेध:। अनुस्तियाच्याप्यतेनैव अअन्तकर्त्तः कर्याते सिद्धेऽपि एतत् सूर्वं नियमा-र्थम्, अन्वेषान स्वादिव्यर्थः । अत्र च अन्दार्थादौनान् एकवारञ्जलानानेव यक्ष्णं, तन पिता पुत्रेण शिष्यं वेटं पाठयति इत्यादी पुत्रादोनां न कर्मालन । अत्र अकर्माकधातीः (२८२) देशाहै: कर्मालेऽपि. (२८१) एवनश्विशीकादेरधिकरणस्य कर्मालेऽपि, अन्नान-काकीनकर्भरिय कर्यांतं छादिति वक्तव्यन्, चतएव (८३२) चनलेव गीपी रजनि-मजागरीति खयं वस्त्रति । निमर्गपारीणमसौ भवन्तमध्यामयज्ञासनमेकसिन्दः रित सिट्टि:। एवं मक्सीक्धातनामक्सीक्षे सित अञासक्ते: क्सीखं स्थात, यथा अव्राहरी पौड़िती भवति, ग्र: ग्रचमाघाशयति । पविचान्यवापि कन्नलं भवति, यथा पर्ल व्याजितै: व्यैदिति रघः। पाणिनि: (। अधूर, ५३, वार्त्तिकानि च।

गयमध्याययद् गोपान् याज्ञिकाक्रमभोजयत्।
स्वधामागमयच्छक्त् भक्तांस्तर्यमधोधयत् ॥
धक्षंमस्थापयद् विषाविदानयाद्यद् विधिम्।
देत्यानद्श्ययच्छक्तिं वेश्वमत्रावयच गाः॥ ॥
स्वादादेसु—रचांस्यस्वादयदनाययद्र्ष्ट्रसोक्यः
माक्रन्द्यत् कप्रिभिराययदाश्च रामः।
यव्दाययन् रिपुमजूहवदादयच
यौकानवाद्यदमचयदिष्टंभस्यम्॥ पं

^{*} क्रमेण उदाइरणं दर्शयति — विण्: गीपान् गेशं (गानं) प्रध्यापयत्, प्रधीङ्ख्याययते रत्यस्मान् जि:, प्रजान्तकानीमकत्ंणां गीपानां कर्मालम्, एवं सक्तंत्र । विण्: गीपान् याजिकात्रम् प्रभीजयत्, मुन धी वार्ण मति जि: । विण्: शवून स्वधाम वेतु एउन प्रगामयत्, इत्वैति श्रेषः, त्री गम् छ गत्यां जि: । विण्: फ्रक्तान् तत्त्वं यायार्थ्यं प्रवीधयत्, वृध्यी ङ प्रवामने जि: । विण्: धर्ममस्यापयत्, जिः सा स्थाने जि: । विण्: वैत्यान् प्रवास्थत्, स्थाने जि: । विण्: वैत्यान् प्रकाम प्रदर्भयत्, इश्विगे प्रेति जि: । विण्: या: विण्मयावयत्, यु यवणे जि: । (एतेषां प्रजानावस्था क्रमेण प्रदर्भते—गीपा गियन प्रध्येयत्, गीपा याजिकात्रममुद्धतः, प्रवाः स्थान प्रग-प्रम्, भक्तास्त्वस्थान्, धर्माऽतिष्ठत्, विधिवेदानस्यस्त्, देत्याः प्रकामप्रसन्, गावो वेणस्यलन् ।)

[†] खादादेवदाइरणं—राजः कपिकः रखांस ख्यादयत्, खाद भवणे जि., भव भकानकाखीनकार्णां कपोशां जानावस्थायां कद्यात्यात् कनुक्रकार्णुवात्(२८८, वतीया, एवं सब्बंच। रामः कपिका रखांसि कर्षुक्षेकम् भनाययत् शे ज पापणे जिः। रामः कपिकाः रखांसि काक्रव्यत् भाज्यदित्ययंः, भाज्य्यंककः कदि तु रीदिने चाहाने जि.। रामः कपिकिः रखांसि काम्र बीह्रम् कायसत् प्रापस्तिस्यः। भय ङ्गतौ जिः। रामः काविकिः रखांसि शब्दायथन् सन् रिपुम् क्ष्युक्षकत्, शब्दायथक्तित शब्दायथन् सन् रिपुम् क्ष्युक्षकत्, शब्दायथक्तित शब्दायथन् । जी स्वर्षस्यः। भज्ञक्षविति है जै सर्जायां जिः। रामः कपिकिः रिपुम् कादयस्य, भद खी भिष्ठी । रामः कपिकिः श्रेष्ठान् श्रवाद्यत्, वही जै प्रापक्षे जिः। रामः कपिकिः अक्ष्यस्यः। अक्ष्ययन्, अक्षयस्य जिः। (रतेषामञ्जनावस्या क्षमेष

सारविष हिंसार्थयोत्तु-

सीतां रामेण चालानमदर्भयत सन्त्राणः ॥ 🌵

२८५। याच् आर्थ दुह चि प्रच्छ रुध् बूगास जिनी वहः।

यथा—कपयः रचांसि चाखादन्, कपयः रचांनि कर्वं वोकमनयन्, कपयः रचांनि चाकन्दन्, कपयः रचांसि चायन्त, कपयः अन्दायमानाः रिपुम् चाहन्, कपयः श्रेलान् चवचन्, कपयः इष्टमचम् चक्षचन् इति ।)

[#] स्तववर हिंशार्वभचयो बटाइरणं — इरि: वाडान घोटकान पार्थमर्ज्जनम् अवाह-यत् मारियर्भूता इत्थयं:, इरि: वाडान् घरीन् अभवयत् चिंधयच् घत घवाडयदित्यत्र सारियक्त मृक्ततात्, चभवयदित्यत्र च हिंसार्थतात् चञानका खीनकर्भूं यां वाडानां कर्मातम्। (वाडा: पार्थमवडन्, वाडा चरीनभयन् इत्यञान्तावस्या।)

⁺ हादेकटाइरणम्—रावव: कोशान् वानरान् शैलानुहारयत्, पचे — स्टलैर्मक्रुकैः वलानजीहरत्। राघवः कपौन् सेतुमकारयत्,पचे — वानरेरिप् सेतुमकारयदिति शिवः। राघवी लागकी वलानिवादयतं का पचे — लक्षणे न च, व्रवानिवादयते केति शिवः। राघवी लागकी वलानिवादयतं का पचे — लक्षणे न च, व्रवानिवादयते केति शिवः। पूर्वलेलेलेपि, (८१८) फलवत्कर्त्तर्याकानेपदम्। एकवार-जी कते वाभवादिधाती नंसलारार्यकलात् शियो मुक्तमिवादयतीलादी (२०१) निव्यनेव कर्ष्यलम्। लक्षणः सीताम् वालानम् वर्ष्यत, पचे — रामेष च, वालानमद्वयतित श्रेषः। पदव्यविति, वर्ष्याकानेपदम्। एता पुचं चन्द्रं दर्ययतीलादी कामकालीनकर्त्त्वतात् (८८८) लेवें वर्ष्याकानेपदम्। पिता पुचं चन्द्रं दर्ययतीलादी कामकालीनकर्त्त्वतात् (क्षणः) वन्द्रं दर्ययतीलादी कामकालीनकर्त्त्वतात् (क्षणः) वन्द्रं दर्ययतीलादी कामकालीनकर्त्त्वतात् (क्षणः) वन्द्रं दर्ययतीलादी कामकालीनकर्त्त्वतात् वर्षानिवादयति कामकालाम् पद्यान् वर्षानिवादयति कामकालाम् स्वान् कामकालाम् स्वान् लक्षण्यादिलकानावलाम् कामकालाव्यत्ति कामकालाम् स्वान् लक्षण्यादिलकानावलाम् स्वान् लक्षण्यादिलकानावलाम् स्वान् लक्षण्यादिलकानावलाम् स्वान् लक्षण्यादिलकानावलाम् स्वान् लक्षण्यादिलकानावलाम् स्वान् लक्षण्यादिलकानावलाम् स्वान् वर्षाण्यानावलाम् स्वान्ति कामकालावलाम् स्वान्ति कामकालाम्यादिलकानावलाम्याद्वान्ति कामकालावलाम्यादिलकानावलाम्याद्वान्ति कामकालावलाम्यादिलकानावलाम्याद्वान्ति कामकालावलाम्याद्वान्ति कामकालावलाम्याद्वान्ति कामकालावलाम्याद्वान्ति कामकालावलाम्याद्वान्ति कामकालावलाम्याद्वान्ति कामकालावलाम्यादिलकानावलाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वान्तिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वान्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानिकालाम्याद्वानि

ह दिग्छ ग्रह कष् मन्य मुष् पचाद्या भवी दिदा:॥ *

(याच्ञार्थ-वष्टः १॥, क-पचाद्याः १॥, घवः १॥, बिढ़ाः १॥) ।

तमधंग्रेडं मोसं, यो गोपैर्डम्धमदुख गाः।
फलान्यवाचिनीदृ हत्तान्, वार्तारः पप्रच्छ वल्लवान्॥
रदीध गोलुलं गोपीरअवीच मनीहरम्।
गोपालानन्वपात् केलींस्त्रचाज्यं जिगाय तान्॥
हन्दावनमनेषीद् गा-स्तंच्छिश्नवहद् व्रजम्।
जहारारण्यमाभीरी-देंत्यान् प्राणानदण्डयत्॥
जगाच यज्यनो भोज्य-मकर्षत् पूतनां बलम्।
ममत्यास्तमस्त्रीधं मुमोष दितिजांच तत्।
योऽसी पचित लोकानां पुष्यपापं सुखासुखम्॥ १

^{*} याच्या भर्षा येवां ते याच्यां याच भर्य माय स्था इ प्रस्तयः । प्रधान इन्हें वहपर्यन्तम् एकं परं, श्लीकार्कविरामायं प्रथक्षपरकरणम् । पच भावो येवां ते पचादाः, प्रथात् इत्य दिख्यः इत्यादि इन्हः । हे दे येवां ते किहाः । एते भातवः स्वभावात् हिक्स्यं का भवनीत्वयंः । कत्तः कियाव्यायतात् सुख्यस्य कर्मातं विद्यम्, भनेन तु गौणस्य कर्मातं विधीयते । साचात् कियान्ययितं सुख्यतं, परन्पर्या कियान्ययितं गौणतिति । पाणिनौये वार्त्तिके प्रतस्य दुहादिगचस्य मध्ये गहभातोः पाटाभावात् "मिनयक्तं ननको भनुसत्" इत्यादिकमसाधु इति भनुन्यासवाभटी (कमदीवरः) । पाणिनः १।४।५१।

[†] तमर्थये इत्यादि । चाइं तं त्रीक्षणं मोचम् चांये याचे, यः भीपै: सइ गाः टुग्धम् चाइण्य । यो वच्चान् फलानि चवाचिनीत् । यो वद्धवान् वार्षाः पपच्च, गोपान् वस्तानं किञ्चासितवानित्ययः । यो गोकुलं सोपीः वरोध, गोपीरनाः स्थापयन् गोकुलकाव्योदित्ययः । यो सोपीः मनोइदं (वच इति श्रेषः) चववीय । यो गोपालान् केलीन् चन्वशत् शिवितवान् । यक्षच केलिविचये तान् गोपालान् चन्यं अतुमञ्जयं जिनाय । यो बन्दावनं ना चन्येशेन् प्राप्यामासः । यस्वित्यम्

२८६। विक्समयानिकषा हान्तरान्तरे गौ-नातियेन तेना स्थुभयपरिसर्वतो विनर्ते ऽभिपरिप्रत्य -नूपद्यपर्यधो ऽधिभि:। (विक्-पविभि: २॥)। एभियों गिद्यो स्थात।

वीपेयक्षाविचिक्नेऽभिस्तेषु भागे परिप्रती । श्रनुस्तेषु सहार्थे च हीनेऽनूपी मताविष्ठ ॥ *

गीवत्सान् ज्ञनम् भवस्त् नीतवान् । यः भार्भौरीररण्यं अस्तर निनाय । यो देथान् प्राचान् भद्रख्यत्, प्राचान् स्टहीत्वा भ्रमासंत्ययः । वो यञ्चनी भोज्यं अधाह । यः प्रतना वलस् भक्षपंत, प्रतनां विक्रष्य वलः रहीतवानित्ययः । योऽभीधिन् भस्तं सस्य, ससुद्रसुत्त्रस्य भस्ततसुत्यापितवानित्ययः । यस्त् भ्रस्तं दितिनान् सुसीव खिष्डत-वान् । योऽभीक्ष्यः । असित् भ्रस्तं प्रापम् भ्रस्तं, प्रापम् भ्रस्तं, प्रवित्त परिचान्यतो स्थः ।

श्रव पचाया इत्यादि-पहंत गुरु शिष्यं यामं प्रष्ठिपोतीत्यादि। ब्रू इत्यनित बुवर्ष-याइणं, तेन गढ कथ भन्म प्रध्तीनां संग्रइ:। व्रचं नीकां कारीति, सुवर्षे कृष्यकं करोतीत्यादी प्रकृतिविक्ततिभाविन एक नेव कस्यं, तेन व्रची नीका कियते इत्याव इयंरिव एक त्वात् न गौषसुष्यव्यव इरारः, किल्पु प्रकृतेः सङ्गानुसारियोव कियाप्रयोगः, यदुकां— प्रकृतिविक्ततेविषि यचीकात्वं इदीरिष। वाषकः प्रकृतः सङ्गां रुष्काति विक्रतिने तु इति। प्रचादिश्य—पच वच वष वद चल पत नद भष चर गाइ देव सद चप स्व संघ इत्यादि भाकातिगणः।

क भिश्व जभयस परिय सर्वय तेथ्यसम् । उपरिक्ष भध्य अधिय ते, दयय ते उपयंधीऽधयंथित ते उपयंपिर भधाऽधः भध्यि दित दिक्ताः, पसान् इन्तः । दुग्यरीति तिं, गख्यंपिर विष्कोटन दलादौ वही खादेव, मृत् दित्या । धिक्— निर्भर्त्यंनिनन्दयीरित्यमरः । सन्या— मनिक्तभध्ययीरित्यमरः । निक्षा— भनिक्तिः दल्लमरः । इः— विवादश्वर्यात्तं पुर्थमरः । भन्तरः— मध्ये दल्लमरः । भन्तरेष, विना, स्वते— वर्जने दल्लमरः । एन—(५१६)वेनीऽपीत्यनेन विद्वित एनप्रख्यानः । भितः— भनिक्षमण्येः, प्रकर्षे खङ्किऽध्यतीत्यनरः । येनतेनौ — याद्यक्ताह्यपैं। भितः — समीपोभयतः श्रीष्ठासक्त्यानिसुखे दल्लमरः । उन्तयतः— उभयदिश्रीः । परितः, स्वतः — समनाद्यंम्, समन्तसम् परितः सर्वतः स्थानरः ।

भव प्रभिपरिप्रवानुपानामधैनिश्रेषएव ग्रह्णमिलाइ वीसित । इह हितीशाविधाने,

धिग्लोकभीखराभक्तं, समया माधवं रमा।
निकवा गिरियं गौरी. हा लोकं केयविष्यम् ॥
कष्णोऽन्तरा ब्रह्मयभू, नान्तरेणाच्यृतं सुखम्।
दिच्छिन हरि रहो. गौविन्दमित नेखरः ॥
येनेयं हरिरीयसं तेनेयमभितोऽर्च्वताः।
रामक्षणावुभयतो गोपेशं, परितः परे ॥
प्रमथाः सब्वतः सब्वं, यभी नेयार्चनं विना।
मुक्तिर्नेत्तेऽच्युतोपास्ति, सूतं भूतमभि प्रभुः ॥
भक्तो विभुमभि, प्राज्ञो गोविन्दमभि तिष्ठति।
हरिं पर्यभवक्षच्यी-हरं प्रति हलाहलम् ॥
विष्णुमन्वर्चे ते भर्गः, यक्षाद्य उपाच्युतम्।
लोकानुपर्य्युपर्यास्तेऽधोऽधि च माधवः ॥ %

भिः: वीभीत्यभाविक मतः, परिप्रती तेष वीभीत्यभाविक प्रभागे च मती, भनः तेषु वीभीत्यभाविक भागेष सहार्थे च मतः, चनूपौ होने मतावित्यन्वयः । द्रव्यनुणिक याभि-युगपत्र व्याप्ति स्वतः वीभा । कस्यचित् प्रकारकापितिरत्यभावः । चिक्रं लचणम्, भन्यत् स्वष्टम् । भन्यादिरिह भनुपसर्गएव । चिक्षप्रश्रंतिभिर्योगे दितीया स्थादिति स्वार्थः, योगस्ति ह भवेनैन, न तु श्रन्देव । पाणिविः १।४।८६ — ८०,८०,८१,८५,२।३।८,भाष्यच । चपान्वस्याङ्वसः (१।४।४८) इति पाणिवित्यन्यास्थाचनारं धिक्सनयेत्यादियोगादुपपद-विभक्तिमाइ भदीनिदीचितः ।

^{*} प्रेयराभकं लोकं धिक, स निष्य दृष्यं: । रमा लच्छी: साधवं समया, माधवस्य सभीपे। की प्रविद्यं निकला, विरिश्रस्य सभीपे। की प्रविद्यं लीकं हा, स विपादाइं: शोकाहें। या। हा राम! हा तात! दृष्यादी ए। श्रव्यस्य वक्षुः शोकाटि-स्वश्रक्तान रासादी न दितीया, सम्बीधने प्रथमेव। कच्चः वक्ष्यश्रम् प्रनरा, वक्षाश्र्योः संख्ये। पच्चतं कच्चम् प्रनरेष विना सुखं न भवतीति श्रेषः। कृदी हिं दिल्चेन, हरेदं विष्ये स्थितः। गीवन्दस्य प्रतिक्रिता दृष्यरोः न, गीवन्दस्य प्रतिक्रिता दृष्यरोः नस्वीक्षयं:। हरिरीश्रं येव दृष्यसं हरिंतेन, हरिरीश्रस्य बाह्यः दृश्यो हरेसाह्य-

२८७। दिवो घं वा। (हिन: ६१, घं ११, वा।११)। दिवो घं ढं स्थाहा। श्रचै-रचान् वा दीव्यतीय:। *

२८८। साधनकृतिवारेषसभेदकं धं कत्ता वस्ती। (साधन-भेदकं १४, घं १४, कर्ना १४, घः १४, वो ११)।

नेत्रै: पुर्खेन मुषाभि नीना दृष्ट: श्रिवो जनै: । 🕆

इत्यर्थः, इरीशौ घभिन्नाविति यावत्। चर्चकाः द्रंशमभितः समीपे। रामक्रणौ गोपेशं नन्दम् छभयतः, गोपेशस्य छभयाः पार्यथो ; परे चर्चे गोपवालकाः गोपेशं परितः. गोपेशस्य समन्तातः। प्रमयाः शिवाणाः सन्दे विवं सन्देतः, शिवस्य सन्दोष् दिद्यः। द्रंशार्यनं विना यद्यं सस्दे सस्दित्ययंः। चच्चतीपासि विण्यासनाम् कृते सिर्तानं स्यात्रित्ययंः। प्रमुरीयरः भृतं भृतम् चिभ, सन्देशाणिषु चन्नीत्ययंः, चव्यविष्यां विन्दम् चिभ, चिभल्योक्षत्य तिष्ठतीत्ययंः, वव्यविष्यं भित्तभावापत्र इत्ययंः। प्रात्तः गोविन्दम् चिभ, चिभल्योक्षत्य तिष्ठतीत्ययंः, चव विष्ठायंः। सन्दीः इरि परि चमत्त, समुद्रे सिर्यते लच्चीः इरि परि चमत्त, समुद्रे सिर्यते लच्चीः इरि परि चमत्त, समुद्रे सिर्यते लच्चीः। इर्थां श्रिवः विक्रम् चतु विच्वा सइ चम्नेते । प्रकादं ये विद्राः चच्चतम् छपः चच्चताः इति विक्रम् चतु विच्वा सइ चम्नेते । प्रमादं विकान् चप्रदे सिर्याः सम्प्रते स्मापे चान्ताः स्वताः सम्पर्यः सिर्यः समीपे चान्ताः एवं विकान् चचिऽपः समीपे, चस्यि इत्यत्ताः समीपे चान्तः एवं विकान् चपर्य्यपरिबृद्धीनां चरनीयरवृद्यस्त्वयः स्वव चपरिवृत्तीनां विश्ववः। समीपे विकानः चपर्य्यपरिबृद्धीनां चरनीयरवृत्रयः स्वव चपरिवृत्तीनां विश्ववः। स्वर्याः सिर्याः सिर्याः स्वर्यः। स्व व्याव्ययं स्वव्याः। विवावा व्यव्याव्ययः। विवावा विवावा विवावः। स्वव्यानोत्यादि ।

- श्र क्रीड़ार्थस्य दिवधाती: करणं कर्मार्सर्ज स्थादा। भाष वामञ्दी स्थवस्थावाची, केन दीव्यते: करणं निव्यं कर्मार्मजं स्थात, दितीया तुवा स्थादित्यर्थ:। भातएव दिवः सदैव सकर्माकलात् भाषा दीव्यन्तं इति कर्माया प्रत्ययः, भाषाणां देविता इति (३०५) क्रदीये कर्माणा वशैत्यादि। पाणिनिः १।४।४३।
- + साध्यते कर्मा नियायतेऽनेनेति साधनं करणम्। तथाच क्रियायां साध्यायां वक्षनां कारणानां सध्ये यद वसु मध्यवधानन क्रियानिम्पत्तिकारणं विविधितं तदेव साधनं भवति, मत०व "साधकतमं करणन्" इति पाणिनि: (१।४।४२)। तथाच → कारणाव्यवधाने तुक्षियानिम्पत्तिकारणान्। यदै विश्वितं तेतु करणंतत् प्रकौतिंत-

२८१ सङ्वार्णसमोनार्धार्थिवनापृथङ्-नानादी:। (सङ्कानार्थः २॥)।

एभियोगि ची स्यात्।

सहियाचीं उच्यती. भेदेनालं; तेन समीऽस्ति कः । विकारै रहितः यभुः, सतामर्थः श्विवार्चया ॥ स्वीर्नेशेन विना, यभुः पृथक् विखेन, तत् पुनः । न नाना यभुना, रामात् वर्षेणाधोत्तजोऽवरः ॥ *

मिति । यहा "कियायाः परिनिथित्यिदां ग्रापारा टनन्तरम् । विवचते यदा तच करणलं तदा स्मृतम् ॥ वन्तुतसदिनिर्देश्य न हि वसु व्यवस्थितम् । स्थाल्या पच्यत रत्येषा विवचा द्वयते यतः ॥ इति इरिकारिका । कार्यन मनसा वाचा इत्यादी—वङ्गामिप 'करणलम् । फलभाधनयीग्य पदार्थो हेतः, यथा—विद्यया यशः, धनेन कुश्रं सित्यादि । फर्चथीनं साधनं, यदधीना कर्तुः प्रवृत्तिः स हेतुरिति साधनहेलोभेदः । "द्वव्यादि साधारणं निर्व्यापारा साधारणाच हेतुत्वम्, करणलन्तु कियामाविषयं व्यापारित्यतच्य' इति सिद्धान्तकीसुदौ । विश्वेष्यते इनेति विश्वेषणं, कटाभिन्तापस इत्यादि । भेदयति सामान्यावगे इतरिस्यो व्यवच्छिति यत् तत् भेदकं व्यवच्छित्कं, नामा श्रिव इत्यादि । विश्वेषण विद्यानां भेदकत्वि यत् तत् भेदकं व्यवच्छित्कं, नामा श्रिव इत्यादि । विश्वेषण विद्यानां भेदकत्ववि वयमानित्यायोभेदः । प्रक्रला पटः, लाला बाह्यणः, जनमा पत्यः, स्वभावेनोदारः, सुत्वेन याति, साक्तव्येनादत्ते, प्रावेण वैच्यवः, दशाहेन प्रवेत. चन्ना काणः इत्यादी पटुलभवनादीनां प्रक्रलाटः साधनलविवच्या करणे त्रतेयित दर्गसिष्ठः । प्रक्रलादिश्य उपसंख्यानमित्व वार्तिकम् । यः करोति स कत्तां, क्ष्यास्थः कत्ते इति तार्किकाः । "स्वतन्तः कत्ती' इति पाणिनिः (१।४।५४) । "कियासच्यप्रयोजकी कत्त्रां इति तार्किकाः । स्वतन्तः कत्ती' इति पाणिनिः (१।४।५४) । "कियासच्यप्रयोजकी कत्त्रां इति तार्किकाः ।

साधन इंतृ विश्रेषणभेदकम् इति समाहारदन्दः । धं करणं, घः कर्ता । साधनादीनि ध-संज्ञानि खुः, कर्ता घमंजः स्थात्, उभयव च स्थादित्यणः । अनैरिति । नेत्रैः करणेः, पुर्ण्यन हेतृना, भूषाभिर्विश्रिष्टः, नासा भेदकीन, श्रिवः, अनैः कर्त्तृभि-दंष्टः इस्यन्वत्रः । पाणिनिः २।३।१८,२१,२३ ।

 भर्यः प्रयोजनम्, सद्य च वारणस्य समय जन्य भर्षयं ते भर्याः भिभिषेयाः वैदां ते सद्दवारणसमीनार्यार्थाः । नाना भादां येवां ते नानायाः । ततः, सद्दवारण-समीनार्यार्थाय विनाच प्रयक्ष नानादाय ते तैः । एमियोंने तृतीया स्वादित्यर्थः ।

२८०। कालभाडडे वा।

(कालभात् ५ ं, उं ।, वा ।१।)।

कालवाचिनो नचवात डे त्री स्थादा।

रोहिष्यामभवत् कणो रोहिष्यासीच चिष्डका। *

२८१। मानाद्वीपुसायां है।

(मानात् प्रा, वीप्तायां ७।, दि ७।)।

यतं यतं पयोऽपीप्यत् वलान् विशाः प्रतेन गाः ।

अप अर्थिनेव योगे, न तु अन्देन, तेन सहागतः पिता इत्यादी व्यवधानेऽपि स्थातः एवं सहार्थ।दिभिगंस्यनानैर्पि स्वात्। सहेत्वादि-श्रचतः दूंशा शिवेन सह श्रचीः र्देशित र्दश्यातीः किपि र्दशयन्दः, एवं साकं साहै समामियादिभिः। अध्यतिश्यीः भेदेन अर्ल भेदी व्यर्थ इत्यर्थ: एव साम्रा सा इत्यादिभिर्वारणार्थ:। तेन अच्यतेन समः कीऽस्ति. एवं समान तृल्य इत्यादिभिः, इवशब्दस्य तु साहश्ययीतकत्वेन वाचक-लाभावान तेन योगे न स्थात्; एवं तुलीपमाश्रन्द्यीगेऽपि न स्थात्, यथा क्राथास्य तुला नास्ति इत्यादि । अत्र समार्थैः षष्ठापीति (३०२) सूचे बच्चति । अभार्विकारै: कामजीघादिभिः रहितः चीन इत्यर्थः, एवमत्यादिभिः। सतां साधनां शिवार्मया ष्यं: प्रयोजनमः। ईग्रेन विनायो: चिवर्गसम्पत्ति-नेस्यादित्यंयः। ग्रम्भवियेन पृथकः विश्वस्य नश्वरत्वादिवार्थः। तत् विश्वं प्रनः प्राधुना न नाना न भिन्नं, विश्वस्य प्राधुमार-लात्। पृथमिवनानानाभिस्तृतीया विशीया पश्चमी चेति पाणिनिः (२।३।३२)। अव यस्ये पृथेखः नानाभ्रद्राभ्यान्तु हतीयैव । अन्यार्थेन त् पश्चमी । आदाभ्रद्रात्— घषी तत्रः क्षण: रामात् वलदेवात वर्षेण अवर: कानिष्ठ इत्यर्थ:, अव अवरमध्ययोगे वर्षेणीत हतीया। एवं मासेन पूर्व:, अस्तेण कलह:, गुड़ेन सित्र इत्यादि । अत्र प्रसिती-स्मकाभ्यां योगे तृतीयासप्तम्यौ स्थातानिति (पाणिनि: २३।४४) वक्तव्यम । पाणिनि: २।३।१८,३२.७२, वार्सिकञ्च।

* नचवावका श्रविश्वादयः प्रव्दाः, चन्द्रपवीष तक्तवधवविश्विष्ठकालेषु च वर्णनी।
भव च,काले वर्णमानादिश्वन्यादिशब्दादिधिकाणे वृतीया वा स्थादित्यर्थः । क्रणाः रीहिस्यां
रीहिशीनचवयुक्तकाले सभवन अन्तर्भार, चिष्डका च रीहिस्या साद्ये काले भाषी-दवतीयो । भव रीहिस्यामिति चिक्तकार्ये रीहिस्या इति वृतीया वा । एवं प्रये प्रयोगवा गच्छेदित्यादि । काले किं, रीहिस्यां प्रौतिश्वन्द्रस्य । पाणिनिः राश्ध्य। दिन्रोपेन कीणाति, पश्चनेन क्रीणाति, दिन्नोणं पश्चनं।

२८२। संज्ञोऽस्मृतौ। (संश: ६१, पस्ती ७१)।

स्मरणादन्यस्मित्रधे वर्त्तमानस्य संपूर्वस्य जानाते हे वी स्थाहा। संजानीस्य स्ब-मीया च संजानीहि ततः शिवम्। पं

२८३। संदानो भेऽधर्मो नित्यम्।

(संदान: ६। भे ७।, ऋधर्में ७।, निखं १।) ।

संपूर्वदानसम्बन्धिनि अधर्मो भेत्री स्यातित्यम्। संयच्छतेसागोप्येष्टं त्रीयः संयच्छति त्रियै। ः

^{*} ढे कमंपि प्रयुक्तमानात् मानवायकात्. कमंपो विशेषणीभृतादिति यावत्, वीसायां वाच्यायां हतीया वा स्यादिव्यथं:। मानम् द्यक्तापरिक्षेदकं, तेनात परिमाणवाचकस्य मञ्जावाचकस्य च ग्रहणमिति । विणः प्रतं प्रतं वत्यान् प्योऽपीष्यत्, प्रतेन
गाथ पयोऽपीष्यदिति प्रेथः। प्रव धर्तं धतमिति कमंपि प्रतेन दित हतीया वा। प्रतं
प्रतमिति पन्तवीसायां दिलं, प्रतेन दित हतीयया वीसाया उक्तवान् न दिलम्।
(ग्रतं ध्रतं वत्याः गावय पयः पपुः इति ख्रञान्तवाक्यं, वत्यान् इति ना इति च सञ्जानक्तं क्यं वत्याः गावय पयः पपुः इति ख्रञान्तवाक्यं, वत्यान् इति गा इति च सञ्जानक्तं क्यं विद्रोणेन कीणाति दिह्रोणं कोणाति, विद्रोणपरिमितं द्रव्यं क्रीणातीत्यथः। पञ्चकंन कीणाति पञ्चकं कोणाति. पञ्च पञ्च प्यम् कौणातीव्यथः। दिद्रोणेनिति
पञ्चकेनिति च क्यं पि हतीया वा। दौ दौ होणौ परिमाणमस्य इति समासन,
पञ्च पञ्च परिमाणमस्य इत्यर्थे विद्यित-तद्वितप्रयथेन च उक्तवात् न दिलम्। प्रव "गस्यमानापि किया विभक्तौ प्रयोजिका इति, प्रतेन प्रतेन वत्यान् पाथयित पयः,
प्रतेन परिष्क्रियेव्यर्थः।" दिति सिज्ञानकौमुदौ । "दिद्रोणेन धान्यं कौणातीति"
प्रक्रव्यादिश्य उपसंख्यानमित्यस्थीदाइर्यमिति सवैव ।

[†] समी का: संज्ञानस्य, न स्कृतिरस्कृतिस्याम्। हे माधी लंस्यानाम् ईया भिवेन च संज्ञानीय्व सम्यक् ज्ञानीहि, (८८८) संप्रतेश्सृतौ इत्याकानेपदम्! चन ईया इति कर्माण ब्रतीया, स्विभिति विकल्पक्यः। स्कृतौत् — ततस्वदनकरंथिवं सकानीहि स्वर इत्यर्थः। पाणिनि: २।३।२२।

[‡] संपूर्वस्य दा-न 'दाने' इत्यस्य प्रयोगे अधर्मे धर्माविक्डं भे सम्प्रदाने नित्यं दकीया स्थादित्ययः । श्रीमः श्रीपतिः गोष्या पर्रास्त्रया दृष्टं वाञ्चितं संयक्षते स्थ दक्त-

२८४। यसौ दित्सासूयाक्रोधेर्धार्गचद्रीइ-**खाङ्ग**ञ्चावस्पहिशप्राघीचाप्रतियुप्रत्यनुगृघार्य्यर्था मं ची तादर्थे च।

(यसी ४।, दिल्ला — धार्थीयां: १॥, भं १।, ची ।१।, तादर्धे ०।, च ।१।)। यसी दातुमिच्छा, प्रस्थादयः स्थादेरर्घंष यसी, तद भ संतं स्थात, तत्र ची, तादर्थे च ।

वान ! भन गीया इति भथर्ममन्त्रदाने ततीया । (१०८) दानः सा चेद्रार्थे इत्याकाने-पटम । अध्यों किं - श्रीशः श्रियै निजपवै। संयक्ति इष्टमिति श्रेषः । "अश्रिष्टव्यवहारे टाण: प्रयोगे चतुर्थार्थे हतीया" इति वार्त्तिकम् ।

* भाषतिभ्यां यः भाषतियः, प्रत्यनुभ्यां गृः प्रत्यनुगः, स्थाय क्रुस साधस स्पृहिस भ्रव च राध च द्रंच च भावतियुष प्रवातृगृथ धारिय ते, तंवामर्थाः स्वाङ्ग्याचस्य दिश्रपाधी-चाप्रतित्रप्रत्यतुष्ट्धार्थयाः । ततः, दित्सा च भन्या च क्षीधय ईष्णां च विचय द्रीहय स्थाङ्क्षावस्रुहिमपाधीचाप्रतिसुपरानुगृषार्थयांच ते। दानस्य पात्रं सम्प्रदानम्। "कर्माणा यमभिष्रति स सम्प्रदानम्" इति पाणिनिः १।४।३२। "क्रियया यसभिष्रिति सोऽपि सम्प्रदानम्" इति वार्त्तिकम्। "प्रदानाभिसन्वव्यमानं सम्प्रदानम्" इति पद्मनाभः ।

दात्मिका दिल्या, काशीस्थविषाय गां ददातीत्यादि-सिडार्थम् इक्छापर्यंन्तग्रहणम्। दानन् खखवधंसाननर परखलीत्पत्थनुकृत्यापारः, चतएव रनकस्य वस्तं ददाती स्वादी न सन्प्रदानलम्। श्रवि भयं ददातीत्वादिप्रयोगस्तपचारात्। एवच "ददात्वर्थस्य गौणलेऽपि सम्प्रदानं भवत्येव, खिल्किकोपाध्यायः ग्रिष्याय चपेटं ददातौति भाष्यप्रयी-गात''। सिद्धान्तकौसुदीटीका। मममग्राद्याचे दानमित्यादिषु तु निबचावशान् न सम्प्रदानम्। विविधं हि सम्प्रदानम् — "प्रनिराकरणात् कर्तस्यागाञ्जकर्भणेपितम्। ग्रेरणानुसतिभ्याञ्च लभते सम्प्रदानताम् ॥" दति इरिकारिका। तत्र प्रनिराकर्तु सम्प्रदानं यथा, देवाय वस्त्रं ददाति ; प्रेरकं सम्प्रदानं यथा, याचकाय धनं ददाति ; भनुमन्त सम्प्रदानं यथा, गुरवे गांददाति । भन्या गुणेषु दीवारीप:, क्रीधिश्वत्तविकारः विशेष:, ईर्ष्या अवसा. विधरनुराग:, द्रीष्ठीऽनिष्टाचरणमः। अस्यायर्थानां धात्नां कत्त्रं प्रति भन्यादिकं तत् सम्प्रदानमिति। "मुधदूदी वपस्टयी: कर्मा' रति पाणिनिस्त्रेण (१।४।३८) देवदत्तं संकुष्यति राजाननभिद्रुद्यतौत्यत्र कर्म्याणि दितीयैनः ददातु सङ्ग्रः स सुखं हरिः, स्नरात् गोपीगणीऽस्यिति कुप्यतीर्थिति । स्म रोचते दुद्यति तिष्ठते हुते-ऽश्वाधिष्ट यस्नै स्टह्मयत्यसस च ॥ *

गर्गी राध्यति रामाय क्षण्यय सेचते वृजे। शुभाशुभं पर्यालोचयदित्यर्थः।

न तु चतुर्थी। स्थापालयं रह स्थिया स्वाभिगायज्ञापनेच्छा, एवं क्र-साघ अप-धातृनं यथाक्रमं क्रवन साघन-अपनै: स्वाभिगायज्ञापनेच्छा अथं:। भत्रपव "साघादेर्यज्ञीप्ना" इति कमदोश्वरः। "साघृहुङ्खाग्रणा प्रयोगे यत् ज्ञपयितृमिक्षा तत् सम्प्रदानं स्थान्" इति गीथीनन्दः। स्थादीनां प्रयोगे यं प्रति स्वाभिगायज्ञापनेच्छा तत् सम्प्रदानं स्थान्। स्विह्वातीः क्ष्मैंव सम्प्रदानम्। राध इति देवौदिकस्य स्वादेश्य ग्रहणं, राध ईत इति ह्योरन ग्रभायभप्यां लोचननर्थः, यस्य ग्रभाग्रभप्यां लोचनं तत् सम्प्रदानमिति। भाषितपूर्वप्रणाति ज्ञीकारोऽष्यः, स च यस्य सम्बस्ये कियते तत् सम्प्रदानम्। प्रत्यत्रपृर्वप्रणाति (नत् गिरतेः) पूर्ववक्तः प्रोत्माचनमयः, तत्र यस्य धनं यद्दीत तत् सम्प्रदानम्। धारोति घ्धातृजीन्तः, तस्य यद्दीतापिग्जीचनमयः, तत्र यस्य धनं यद्दीत तत् सम्प्रदानम्। धारोति घ्धातृजीन्तः, तस्य यद्दीतापिग्जीचनमयः, तत्र यस्य धनं यद्दीत तत् सम्प्रदानम्। धारोति घ्धातृजीन्तः, तस्य यद्दीतापिग्जीचनमयः, तत्र यस्य धनं यद्दीत तत् सम्प्रदानमं । तत्र दिसादिधाययप्रय्येन्तानां यो विषयः स सम्प्रदानमं गः स्थात्, तत्र च चतुर्थी सादिस्यवः। ताद्द्ये इति—स चासौ प्रयेषित तद्यः तस्य भावस्य स्थिकाये तस्य तस्य प्राप्तानं तस्यात्, यस्य निवित्तस्य ताद्येष्ठ तस्य स्थिकः। यथा निवित्तस्य तस्य प्राप्तानं तस्यात्, यस्य निवित्तस्य त्र प्रयोजनं तस्यात्, यस्य निवित्तस्य साद्दी चतुर्थीत्यः। यथा— जानाय पाठः, समकाय धन स्थादि। पाणिनिः २।३।१२,१।४।३२—४१,वात्तिक्षः।

स इति सक्षाः साध्या सुत्वं ददात । सक्षा इति दित्सया सम्प्रदानलम् । यसे इत्ये गोपौगणाः स्वरात् कामावितोः अन्यति स्व, यस्य गुणेषु दोवारोपणमकरोदित्ययः. अम् करोतीति क्षा्व्विति (८५४) क्यां, स्वम्रस्थोगे (८२४) अतीते की । एवं यसे छ्यति स्वः इंखिति सा । यसे रोचते सा यस्यान्रागपाचमासीदित्ययः। यसे दृष्णिति सा । गोपौगणी यसे तिष्ठते सा यं स्वाभिप्रायं विज्ञापियतुमैच्छदित्ययः, तिष्ठते इति सा । यसे प्रात्मिनपदम् । यसो क्षुते सा अपक्रवेन यं स्वाभिप्रायं विज्ञापियतुमैच्छदित्ययः। यसे एडयति सा । यसो प्रात्मिन यं स्वाभिप्रायं विज्ञापियतुमैच्छदित्ययं। यसो एडयति सा । यसो प्रात्मिन यं स्वाभिप्रायं विज्ञापियतुमैच्छदित्ययं। यसो एडयति सा । यसो प्राप्ति न यसो सामिप्रायं विज्ञापियतुमैच्छदित्ययं। अस्रोति (८६८) आस्वमिपदमः।

विभीषणायाश्याव राज्यं प्रत्यश्रणोद्ययः। प्रतिज्ञातवानित्यर्थः।

रामः प्रत्यग्रणात्तसी लक्षाणीऽन्वग्रणात् कपिः । रामं वदन्तं प्रोत्साह्यामास इत्यर्थः।

सर्वी धारयते सर्वे सद्भारतं भज सुक्तये।

२८५। श्रुतार्थ वषड्टिंत सुख खाहा खधा

खित नमोभि:। (मकार्थ-नन्नि: ३॥)।

एभियोगि ची स्थात।

दैलेभ्योऽलं हरिः, पूणी वषट्, सङ्गो हितं सुखम्। स्वाहान्नये, स्वधा पित्रे, स्वस्ति धात्रे, नमः सते॥ 🅆

^{*} गर्गों सुनि: त्रजे गोष्ठे रामाय बलंदवाय राध्यति सा, कणाय ईवते सा, रामस्य क्रणस्य च यभागमं पर्याली वयदिश्यं: (पर्याली चयदिति, भिक्ति वा चुरादय इति ज्ञापकात् लोच् कीच इति भौवादिकात् स्वार्थे किः)। रामः विभीपणाय राज्यम् भाग्याव यगय प्रत्यस्थीत् दातं प्रतिज्ञातवानित्ययं। चच्चणस्यौ रामाय प्रत्यस्थात्, किषि: सुर्योवः (तसौ रामाय) भन्वस्थात्, विभीपणाय राज्यं यगय दास्यामीति वदलं रामं साधवादेः प्रीत्याच्यामासित्ययं। स्वंः गिवः सङ्घी भक्तेश्यः सभ्वे (वाक्तितं) धारस्यते, द्याचुत्या शिवस्य भध्मभण्तेन निर्देशः, भारस्यते इति प्रस्ववत्वक्ति (८१८) भारस्यते, द्याचुत्या शिवस्य मुक्तये सुक्त्ये सं सर्वे भन, भव मुक्तये इति तादस्ये चतुर्थों। यत्र निमित्तस्य कस्यंकारकेष सङ्घीगो वर्त्तते तत्र (३११) सप्तस्येव, यथा वस्त्रपु रजकस्यधीदिति। भव सु सर्वेष सङ सुक्तेनं योगः।

[†] यक्तः पर्यो येशां ते क्षक्तार्थाः चलंक्षकप्रसुस्तर्भयंतप्रश्वतप्रयः, ते च वष्र् च हितस्य स्ख्य खाडाच ख्राम ख्रास्त च नमय तैः। भव हित सुख इत्यन् न हितार्थ-सुखार्थशीय इत्यम् । वष्र् ख्राझा ख्राम ख्रास्त मनः इत्येतेषां त्यागार्थानां मन्त्रायांनाः स्वर्णम् । पत्र "अर्थेक्ट्न प्रयोजनार्थानां सहस्यम् ; हितक्रक्ट्न क्त्यापपर्याय-प्रितानां सद्रश्रोमनिष्याद्दीनां साध्रम्थतीनाय यहस्यम् ; सुख्रक्ट्न, सुत्रीत्यादीनां

• कारकम ।

२६€। हेनाशिषि वा।

(दिन इ. [श्रष्टवा दे ७). न ।१।], श्राधिषि ७।, वा ।१।)।

सङ्गाः सतां वा शं भ्यात । *

२८७। परिक्रियो घेवा।

(प्रतिक्रिय: हः र्घ छ। वा ।१।)।

भक्त्ये सुतिः परिक्रीता सङ्गिविणो क्षारिभिः। 🕆

गृहण्म'' इति भरतः। नार्।यणं नमस्त्रत्य दृष्याँदौ छपपदविभन्नी: कारकविभिन्निर्गरी-यसीति (बलीथसीति वा) न्यायात कर्म्यत्वम् । पाणिनिः २।३।१६. वार्त्तिकश्च ।

है लेख इति — इरिटेंस्थं शिलु समर्थ । पूर्ण मूर्याय वषट, पूर्ण यहातव्यं तत् वषट इत्यचार्यं दातच्यमित्यथः । सद्भाः माध्य्यो हितं सुख्य भवतौति श्रेषः । अग्रयं स्नाहाः पित्रे स्वधा, धात्रे स्वस्ति, मते विणार्वनमः, अपन्यादिस्या यत दातव्य तत् क्रमेण स्वाहा इत्यादि उचार्य्य दातव्यभित्ययः। अत्र भन्नार्थेहितसुर्खेष योगे षष्ठौपीति (३०२) वक्त व्यतः "ग्रक्तार्थै: षष्ठापीष्यतः" इति क्रमदीश्वरः । तेन प्रसुर्वभृष्भवनचयस्य, नाषीषी-दस्य क्रमनेत्यादि साध ।

- ढ-श्रव्हेन कर्माकिया चीच्यते, दश्रव्हस्य क्रियावाचकलं घेचांदिढेकाः (१०८२) इस्यच भादिते भादि तियायामित्यर्थेन स्तय वट्यति । सतय प्रयुज्यमार्वन क्रियावाच क-पटेन ग्रींग भागिषि (द्रष्टार्थाविकारको) गन्धमानाया चत्रथीं वा स्थादित्यर्थः । भयवा---भाभिक्षि गम्यभानायां चतुर्यौता स्थात न तुढ कर्म्माचि प्रयुक्त्यमाने इत्ययः । कर्म्माचि त क्तकाः सर्ता शंकरोतु इत्यादीन स्थात्। चाश्चिषितं,तेषां कुण्लं जातम्, चायुर्घः प्राणिनां घृतमित्यादि। सद्घाः सतांवा इति पत्ते षष्ठीविधानान् षष्ठप्रये एनार्यं विधि-र्रित, तेन यामे क्षप्रलं भूषादित्यादी न स्थात्। अत्र स्वलियजैकृप्रलायुष्यप्रयोजन-मद्रभद्रहितसुख्वपथ्यश्रीभनार्थेरव योगं ज्ञयम । पाणिनिः ९।३।०३ ।
- + परिपृर्वस्य क्रीणाते: प्रयोगे घे करणे चतुर्थी स्थादा इत्यर्थ:। भक्त्ये इति—सिर्द्धः साधिम: विच्छी: सक्ताशात् भक्ती सुक्ति: परिक्षीता, परिभि: शत्रभि: कवा देवेच, सुक्ति: परिक्षीतिति श्रेष: । उदाहरणादयेन विकल्पो दर्शितः । एवं द्रोणाय द्रीजीन वा परिक्रीती ब्रघल:। परेः किं, श्रंतन क्रीताऽयः । वेतने एवार्यविधिरिति क्रमदीयरः । "चतुर्थों च परिक्रीजी वेतन।दी कर्मे" दित तत् मूचम् । टनीयासिक्षेत्, चतर्थ्यथै विधानमिति गीयीचन्द्रः। व्यवस्थार्थं परम्वे वाश्रद्धेऽवस्न-वज्ञये वादयमध्यः। त्तिलेनास्य नित्यत्वप्राप्ती, विकल्पार्थवागद्वसम्। पाणिनिः १।४।४४।

२८८। गत्यर्धमन्यढे चेष्टावच्चेऽनध्याकाक-ग्रक्षमुगालनावन्त्रे वा।

(गत्यर्थमन्यते ७।, चेष्टावज्ञे ७।, घनध्या—भन्ने ७।, वा ।१।)।

गत्यर्थमन्यत्यो दें क्रमान्मार्गकाकादिवर्जे चेष्टावज्ञयोसी स्यादा।

व्रजाय व्रजिति श्रीमो व्रजं व्रजिति केमवः ।

न त्वा तृणाय मन्धेऽहं न त्वा मन्धे तृणं खल ॥

वेष्टावच्चे किं—मनसा दारकामितिः; त्वां मन्धेऽहं जनाई नम्।

श्राभ्वादौ त-—गच्छत्यनन्तः पत्थानं, न त्वा काकं स मन्धेते।
*

गतिर्थीयस्थ म गत्यंः, सच सन्यस्थति तस्य ढंतिसन्। चेष्टाच प्रवृत्ताच तत्तिसन्। न अध्वाभनध्वाः काक्षय ग्रक्तय ग्रगालय नीय अवस्य ततः, न तत् अकाकः श्वक्रशालनावनं, भनध्वा च भकाकश्काश्यालनावत्रच दशीः समाहारमस्मिन्। यथा-क्रमदर्शनार्थे नञ्जदययीगः । चिष्टा कायक्षतच्यापारः, अवज्ञा अपक्षष्टलेन जानम्। तत्य-गव्यविधातोरध्वविति कर्माण चेष्टायां गम्यमानायां, मन्यते. काकादिवितिते कर्माण अवक्षाया गस्यमानायां, चतुर्थी वा स्थादित्यर्थः। मन्य इत्यव स्थना निर्हेगात् मन भावबंधिने इति तनादिपठिती न रुद्धते: यथानलां हर्षं मन्वे। भातः त्यगायन गणयतीत्यादि चमाधु। ब्रजायिति——योग्नः ब्रजाय ब्रजति, कोमवः ब्रजं व्रकृति, पाद वारेणा गच्छतीत्यर्थ:। हे खल ऋ इंतालां तृणाय न सन्ये, लालां तृणं न मन्ये, त्रणाद्व्यपत्तरं मन्य दूल्यर्थः। मनधातीर्येन कर्मणा भवजा गम्यते तचैव चतर्थौ वा स्थात्, चतएव त्वा इत्यत्र न चतुर्थीः, इदमेव अमदीयरेण "युपादादरन भिधानाम स्यात्" इति सूर्वेण स्प्रष्टीक्रतम्। मनसा द्वारकाभेतीत्यच चेष्टाभावात्, त्वां मन्धिऽष्टं कनाईनिस्तियत च भवज्ञाभावात न चतुर्थी। भननः पत्थानं गच्छतीत्यत्र भध्वतमंत्र-त्वात्, स त्वात्वां काकं न सन्धर्त इत्यव काककर्मक लाग्न न चतुर्थी। एवं श्कादि-कर्माण्यपिन चतुर्थौस्यात् । को वित्त् ग्र्कत्यच ग्रकत्य इति वा पठन्ति । एवं, तादर्थो चतुर्धीसिज्ञाविष, गामाय सङ्गच्छतीत्यादिषु (८०५) समी गम्बन्धित्यादिमा घढलादात्मनी-पदप्राप्तिनिरासार्थनिदिनियाहः। पाणिनिः २।३।१२,१०; वार्त्तिस्ताः।

२८८। यतीऽपायभी जुगुपापराजयप्रमादा-दानभू चाणविरामान्ति द्विवारणं जंपी।

(यतः ५।, भपाय-वारणं १।, अं १।, पौ ।१।) ।

यत एते तत् जसंद्रं स्थात्, तच पी। *

विभीषणः पदाद्वष्टो, भातुर्भीतो, जुगुषितः । पापात्, पराजितो दुःखा-दप्रमत्तो विधेः, सतः ॥ यात्तविद्यो, सुनेर्जातो, स्वातुष्त्वातो निजै-भैवात् । विरतोऽन्तर्ष्टितो दुष्टात्, योकात् रामेण वारितः ॥ १

[•] प्रपायस भीस जुगुसा च पराजयस प्रमादस पादानस भूस पायस विरामस प्रमादिस वारणसित समाहार: । एते यसात् भवित तदपादानसंग्रं स्थात्, तव पस्नमै स्थादिस्तयं: । प्रपायस्वनं, भीभंशं, जुगुसा निन्दया मनीनिवृत्तिः, पराजयः सीदुनमक्त्या निवृत्तिः, प्रमादः भास्त्रविहितकस्थां करणम्, प्रादानं प्रदर्ण, भूरुत्पतिः पादुर्भावस्, पाणं रचणं, विरामी विरितः, पन्तिर्द्धरमद्भीनं, वारणं निवारणम् । प्रपादानं विविधम्— "निर्द्धटिषयं किसिदुपानविषयं तथा । प्रपंचितिकयस्वित विधापादानिम्बते ॥" इति परिकारिका । "भूवमपायेऽपादानम्" इति पाणिनः ११८१२ । तव पस्नभै २११२ । भीः वाणम् ११८१२ । पराजयः ११८१२ । वारणम् ११८१२ । प्रचादः १८१२ । पत्रं पठनं, प्रवणं, जानमध्ययन-मिलादिः, पत्र वपयोगे इति कयनात् नटस्य गायां प्रणीति, न तु नटातः, प्रतपद "भगुरुत्वे पष्ठी" इति कमदीश्वरः । जुगुसा, प्रमादः, विरामस—वार्त्तिकम्।

[†] विभीषण इत्यादि—विभीषणः पदात् स्थानात् अष्टस्रवितः, भातः रावणात् भीतः, पापात् जुगुस्तिः पापं निन्दन् तस्मात् निवच इत्ययः, दःखात् पराजितः दःखं सोदुमश्रक्या निवचः, विभेः श्रास्त्रविद्वितकस्मेणः भग्ननः भनिवचः, सतः पण्डितात् भाचियः भाचा गर्ष्द्वौता विद्या येन ताहशः, सुनैविद्यश्रवसी जातः ज्यानः, भात् राव-णात् (विभोयतात्) निजैरासौदैस्त्राती रिवतः, भवात् संसारव्यापारात् विरतो निवचः, दृष्टात् (रावणात्) भन्तर्त्ति जुङ्गायितः, रामेण श्रीकात् वारितः लामणं जदाराजं करिष्यामौत्यादि प्रयवचनसुक्ता श्रीकात् निवारित इत्यथः। एवं यवेभो गां वारयित, कृपाद्भं वारयतीत्यादि।

मुखबीधं व्याकरणमा [धम, १पा, ३०० सू.

चन्यारयाशीरात्वहित्रिनर्त्तेप्रति-पर्यपाङ दिक्रा रहे हें तुयब में च।

(भन्य-मञ्दै: ३॥, हेत्यवर्थे ७।, च ११।)।

एभियोगि हेती यवन्तस्यार्थे च पी स्थात । *

श्राङ व्याप्तिसीमो-स्वागेऽन्यो, प्रतिदाननिधी प्रति । १ नेतरो विशारीयानात, भवात प्रश्ति सोऽर्चते। सोऽसदारात विहस्तत्, मं विना नाथीं हवाहते॥ भतीः प्रत्यस्तं यस्थीः, प्रद्यमः विश्वात प्रति । पर्यानत्तात त्रयस्तापाः, श्रामृत्योः सेव्यतां हरि:॥ ब्रह्मास्यासकलात्, पूर्वः क्षणाद्रामीऽवरी गदः। चानन्दादीखरः ग्रैलादासनादीचतेऽलकाम् ॥

ग्रैसमारु श्रासने उपविष्येत्यर्थ: । क्ष

चलव चारस्व चल्वारस्वी, ती चर्ची येवां ते चल्वारस्वार्धाः । दिशि वर्त्तमानाः श्रव्हा: दिक श्रव्हा:, भन्यारभ्यार्थाय भाराच विदय विनाच करते च प्रति च परि च मप च चाङ्च दिक् बन्दाय ते तै:। यप इति क्वाचस्याने यवादेशः, तस्य केवलस्यासन्ध-वात् तदत्तसा ग्रह्मम्, तस्यार्थी यवर्थः, हेतुच यवर्थयति हेतुयवर्थे तस्मिन्। दिकाण्टरा इति दिन्देशकालवाचकानां निर्देशः, ते च पूर्वपरादयः प्रागुदक्परसगादयश्च। किञाव दिन्देशकालामां च्यापानेव ये वाचकाक्षेषानेव ग्रहणं, तैन कालमात्रवाचकस्य नासादे-नं प्रसङ्गः । भन्यार्थेरारभ्यार्थेरागदादौरष्टभिः दिग्याचनप्रस्टैश्च योगे, हेतौ प्रयुक्तमानात् किङ्कात्, यवलस्थार्ये गम्यमाने च, पश्चमी स्वादित्यर्थः।

[🕇] प्रति परि चप चाङ् चतुर्णामधैविशेषेचंव यहणसिस्याह चाङ् व्याप्तीत्यादि — अत्र भाक व्याप्तिसीसोरथेयोर्वर्तते, व्याप्तिरभिविधः, सीमा अविधः। प्रति प्रतिदान-निधी वसते, दानञ्च निधियति समाहारे दाननिधिः, सूत्रलात् पुंस्तं, प्रतेदोननिधिः प्रतिदाननिधिन्तिकान, प्रतिदाने प्रतिनिधी चेत्वर्षः। प्रतिदानं विनिमयः, प्रतिनिधि-सुत्य:। भन्यी पर्यापी त्यागे वर्जने वर्जेते । पाणिनि: १।४।८८,८२।

[‡] नेतर इति—विकाः द्रेशानात् किवात् न इतरः न शिवः, न शीच इति केवितः। ंस विष्णुः भवात प्रसृति जन्मन चारस्य चर्चते । प्रातः कार्लं सम्प्रस्य इत्यादिकन्तु, उप-

३०१। वारादधै:। (बा ।१।, बारादवै: २॥)।

दूरान्तिकार्थैः पी स्यादा।

रामाद्रदस्य यो दूरं पापाइ:खस्य सीऽन्तिकम्। #

३०२। समार्थेनार्थस्त्रसाद्वितसुर्वेर्निर्दारे सम्बन्धे ढेच षी।

(समार्थ—सुद्धै: २॥, निदांरे अ, सम्बन्धे अ, दे अ, च ११।, घो ११।)। एभियोंगे एषु च घी स्थात्।,

पद्विभक्तोः कारकविभक्तिगैरीयसौति न्यायात कर्माण दिलीया। सः विण्युः ऋसातः भारात भाषा कं निकटे इत्यर्थ: : लत् विह: तव विहिरिव्यर्थ: । हपात् धर्मात विना ऋते च प्रां सुखन अर्थस्य न सवतोत्पर्थः । विना ऋते इति द्वाभ्यां योगे (२८६) दितीया च, विना श्रन्द्रन योगे (२८८) हतीया च भवतीति वाध्यम् । अभी: भक्ते: प्रैति प्रतिदानम् श्रमृतं सीच , य: श्रमी भित्तां करोति श्रमुलस्य सुति ददातीलर्थः । प्रयुक्तः कामदेवः कंग्रवात् प्रति ¦क्यश्य तुल्य इत्यर्थः । चयस्तापाः चाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिक-संज्ञकाः भनन्नात् परि भनन्नेन वर्जिता इत्यर्थः । एवं भपानैन्नात् चयस्नापा इत्यपि। पा सत्योः सत्यपर्यानं इतिः भेज्यतान् । पा सक्तलात् अक्षणं जगत् व्याप्य बद्धापरसियर: ऋसि । रामी बलराम: क्रम्यात् पूर्वः पूर्वकालीन: ज्येष्ठ: इत्यर्थः। गदी !गदनामको बालक: कचात् भवर: पश्चिमकासीन; कनिष्ठ: इत्थर्थ:। ईश्वर: शिव: भानन्दात् हेती. ग्रैलात् ग्रैलम।कश्च आसन।त् आसने उपविद्या अलकां कुवेर-पुरीम् ईचते प्रस्यति ; भव भाक्छीति यवनस्थार्थे श्रेलादिति कर्माण पश्वमी, उपविद्यंति यवलस्यार्थे पासनादिति पधिकरणे पश्चनौ । कर्माधिकरणाभ्यामन्यम यवर्षे पश्चमी न स्यादिति प्रास्तः। पाणिनिः राशाश्वः,११,२५,२६,३२ ; वार्त्तिस्य। भव वक्तव्यम् "करणे च स्तीकाल्पक्तच्छुकतिययस्यासःचिषयस्य" (पाणिनि: २।१।३३) इति सूत्रेण "सीकान्यक्रमुदन्वता" इत्यादी पञ्चमी ढतीया च। एवमेव "सीकादि-र्धर्भवाचिन: करणात्'' इति क्रमदीवरः।

* भारात् इत्यव्ययस्य भाषं इव भाषां येषां ते भारादर्शातेः । भारात् दूरसभी-पयोरित्यसरः, भत भाइ दूरान्तिकार्थेरिति । यः रामात् कदस्य च दूरं रामस्य कद्रस्य च दूरे तिष्ठतीति शेषः, स पापात् दुःखस्य च मनिकं पापस्य दुःखस्य च मनिकं तिष्ठती-सर्थः । भाव दूरं भनिकस्य स्त्रसर्थे दितीया । पाणिनिः राहा ३४ । यः सर्वेस्य समी यस दिचिषिनीत्तरा स्थितः। उपर्येधः पूर्वेतस पश्चात्, यस्याखिलं हितम्। सुखश्च, तस्य देवानां वर्यस्य, पदयीर्भेजे॥ *

३०३ | जोऽज्ञाने धे । (जः ६१, अमाने ७), धे ७।)। ।

शक्तीर्म्युकुन्दे जानीते भक्त्या जानाति शङ्करम्।

समोऽणी विषां ते समार्थाः, समानसमतुल्यसहमादयः। समार्थाय एनय भाष रियमम च तस् चतात् चहितञ्च सुखञ्चतानि तै:। एन चारि भस्तस्तात् षड़िते तिद्धिता:, तेषाच कीवलानामसम्भवात् शदनानां ग्रहणम्। एन इति (५१६) वैनीऽपीत्वनेन, चा इति (५२०) दिविणीत्तरादाष्टीत्यनेन, रि इति (५२४) निपातनात्, च सुद्रति (५२२) चतएव च सु, तसुद्रति (५११) तसु क्रीरित्यनेन, सात् दति (५१८) दिक शब्दादित्यनेन । जातिगुण कियाणा सुल्क वेंगापक पेंग वा सजातीयात प्रयक्त करणं निर्द्धार: । सम्बन्धय प्रवयवावयविभाव-जन्यजनकलादि-रनेकविध: । समार्थै:, एनादि-घटतां ज्ञाने कितसुखाभ्याच योगे, निर्जारणे, सन्वर्भ, कर्माण च, षष्ठी स्यादिस्यं:। हिष्ठी यद्यपि सम्बन्धः षष्ठात्यतिन् भंदकादिति ज्ञेयम् । यः सर्वस्येत्यादि -- तस्य पदयी-र्भजे इत्यन्वयः, यः सब्बेख नगतः समल्ल्यः, यत्र सर्व्यय दिचिषेन स्थितः, स्थित इति वर्तमाने तः, दिविषे तिष्ठतीत्यर्थः ; एवं उत्तरा उत्तरस्यां दिशि, उपरि जर्बभागे, भर्धः निस्तदेशे, पूर्वत: पूर्वकालं, पदादुत्तरकालेच, सर्वस्य इत्यनेन स्थित इत्यनेन च सर्वेतात्वयः। यस्य चित्रलं जगत हितं मित्रं, सुखं मुखजनकच, तस्य देवानां वर्धस श्रिक्य र्नुश्वरस्य पदयीर्भजे चहनिति श्रेव:। चन यथाक्रमं लचणसङ्गमी बीध्य:। सामान्यतः कर्माण विदिशापि षष्ठी धातुविभेषाणामिति बीध्यम्, भ्रन्यया सर्वेत्र ुकर्माण पष्ठापत्ते:। तथाच, ''मधीगथंदयेशां कर्माण'' (पा २।३।५२), "क्रजः प्रतियवें "(पा. २।३।५३), "दनार्थानी भाववचनानामच्चरे:" (पा. २।३।५४), "कथिषि नायः" (पा. २।३।५५), "काविनिप्रइणनाटकायिषां हिंसायाम्" (पा. २।३।५६), ''व्यवह्रपणी: समर्थयां:'' (पा. २।३।५०), "दिवस्तदर्थस्य'' (पा. २।३।५८), इत्यादि। सतएव कमदीश्वर:-- "कर्मादिविष्येऽव्यविविधित कर्मादौ सम्बन्धविवचायां षक्षीव"-इति म्चम्। "माषाणामश्रीयादिति भाष्यम्। न च विद्यति कस्यविदिति भटि:। सा लच्ची बप कुरते यथा परेवानिति किरातः। नारायणस्यानुकरीतीत्यादि।" मुले पदशीभेजे इत्यादी तु विंकल्पः । पाणिनिः २।३।३०,३१,४१,५०,७२ ।

⁺ फ्रानाट-थिक्षत्रयें वर्तमानस्य ज्ञानाति में करचे वष्टीस्थादिख्यः। पाचितिः राह्यरा

यभुना साधनेन मुकुन्टे प्रवर्त्तते इत्यर्थः, प्रवृत्त्यर्थेय जानाति:।*

३०४। त्यायानां वा। (तृप्रायांनां ६॥, वा।१।)।

यङ्गारस्य इरिस्तृप्तः, पूर्णः यान्तेन यङ्गरः। 🕆

३०५ । दवे द्यात्यव्यक्तुक्रक्तवतुखलधक्तोच्छ-चानवसुग्रीलाधित्न भध्यणीधेणिनि । (दि १), क्रि १), भ-स्य कि चक्र क्रवत खन्यं क एत् मृत् भान वसु भीनार्थतृत् भस्य-स्वपायं-विकि १०)। स्यादिवर्जे क्रिति प्रयुज्यमाने दे चे च बी स्यात् । \$

अध्मिति । अभीः अधुना सुकुन्दे विश्वी नानीते प्रवर्त्तते भक्त इति भेषः, भ्रमी तुष्टे सित सुकुन्दे प्रवित्तर्भवतीति अभीः साधनत्वम् । धातूनामनेकार्थताम् ज्ञाधातुरच प्रवस्त्यंः । (८००) चटादित्यात्मनेपदम् । चज्ञाने किं, भक्त्या ग्रइर कानाति, स्वरेष पुत्रं कानातीत्यादी न करणे यष्ठौ ।

[†] तृतिरथीं येषां ते तृत्रायां: तेषां, तृत्रायंषात्नां करणे षष्ठीं स्वाहा प्रत्यर्थः । प्रतिः स्वद्यारस्य तृतः स्वद्यारेण सन्तृष्ट प्रत्यर्थः, तृतः प्रति कर्मरिकः। पर्चे प्रदरः प्रासंन प्रान्या पूर्णः, पूरधातोः कर्मरिकः, पृत्तिरिङ प्राप्यायनम् प्रतप्त तृतिविधेषः। (नाप्रिस्टप्यित काष्ठानां नापगानां मद्रोदिषः। नान्तकः सर्व्वभूतानां न पंसां वामस्वीचना॥) "क्रये पूसृत्रार्थयोः" द्रति कातन्त्वपरिश्रिष्टम्। "तृत्रार्थस्य प्र" दिति कासस्वीयरः।

^{देख घष उवं तिक्षिन्। यं — षतुम् काव् चणम्। खलः प्रवंदव पणी यस्य स खल्यः, (११६१) ईवह् सीरित्यनेन खल्, (११६२) प्रातोऽन द्यनेन पनः दित दर्य खल्यः। उत् उकारान्तप्रत्ययः — णक् दण् मु मु प्रालु पाद देव द्यादि। यतृ द्रत्यनेन उपल्यायतात् तृत्वस्य व्यवद्रिय प्रचम्। एवं पान द्रत्यनेन प्रान कान स्वमान द्रत्येषा गृहणम्। श्रीलम्या यस्य स भीलायः, स चामौ तृन् चिति भौलायं नृत् ; भस्य भविष्यत्वालः, ऋणं प्रतिदेशतया गृहीतं, भत्यस्य ऋणस्य भव्यणें, ते प्रणीयस्य स भव्यणें स स चामौ विन् चिति भव्यणोर्थावन्। ततः व्यक्ष किष्य जनवत् स खल्यं प्रतिदेशतया स्वात्रस्य प्रतिदेशतया स्वात्रस्य क्षाव्य स्वात्रस्य प्रतिदेशतया स्वात्रस्य स्वात्रस्य स्वात्रस्य स्वात्रस्य प्रतिदेशतया स्वात्रस्य स्वात्रस्य स्वात्रस्य प्रतिदेशतया स्वात्रस्य स्वात्रस्य स्वात्रस्य प्रतिदेशतया स्वात्रस्य स्वात्रस्य प्रतिदेशतया स्वात्रस्य स्वात्रस्य प्रतिदेशत्य स्वात्रस्य प्रति स्वात्रस्य प्रतिदेशिष्रस्य स्वात्रस्य प्रति स्वात्रस्य स्वात्यस्य स्वात्यस्य स्वात्यस्य स्वात्यस्य स्वात्यस्य स्वात्यस्य स्वात्यस्य स्वात्यस्य स्वात्यस्य स्वात}

जगतां कारकः कषाः कितिमुरिरिपोरियम्।
व्यादी तु— सृष्टा दिधं प्राक्तमेतदर्भकान्
जन्नीतवन्तं, यितिभः सुदर्भनम्।
ज्ञातं, हिरं, जिश्यरघानि संस्ववन्
सृदं द्धानीऽर्धितमीयिवान् न कः॥
प्रदाता हृत् कदागामी दृायी मोच सृषं प्रिवः। *

क्राति प्रयुक्त्यमाने भन्ते कर्याणि कर्त्तरे च षष्ठी भ्यात् न तु उत्ते, उत्ते तु (२८०) प्रथमा स्वादेव । पाणिनि: २।३।६५,९८,९०, वार्तिकञ्च।

* कृषाः जगतां कारकः, करोतौति क्रधातोः (೭೭०) तृन्-पकौ चे पति यकः, प्रस्थ कर्माण जगतामिति पष्ठौ । इयं जगदित्वयः (विधियप्राधान्यात् स्त्रीलिङ्गता) सुरिरपी: क्रति:, कियते या सा इति (११४०) कर्माण क्रि:, क्रते लर्थ:, अस्य कर्त्तर सुरिपी-रिति पत्नी। व्यादीनासदाहरणानि सहेत्यादि -- एतत् जगत् सहा निर्माय दिधं धारयनं शावकं हिंससञ्च, अर्चकान् छन्नीतवन्तम् ऊर्डे प्रापितयनं, यतिभियौँगिभिः सुदर्भनम भनायामहत्त्वमानं जातञ्च, इरि संस्तवन, भवानि पापानि निष्यः, सुदं द्धान: को जन: चर्थितं वाञ्कितं न ईशिवान् न प्राप्तवान चिप तु सब्बेण्य ईशिवानि-त्यर्थ:। भन (१९६६) स्टहा क्लाव्ययस्य कर्माण एतत् जगदित्यन न षष्ठी, एवं क्रचं द्रष्टं याति, क्षणां स्वारं स्वारं नमति। (१११६) दिधं प्रति किप्रत्ययान्तस्य कर्म जगत् भव न पष्टी। (१९१०) बाक्कमिलस्य कर्मा जगत्, भव न पष्टी। (१०५०) छन्नीसवन्तिस्यस्य कर्माण पर्मकानिस्य न षष्ठी। (१९६३) सुदर्भनिस्यस्य, (१०५०) ज्ञातिमत्यस्य च कर्त्तरि यतिभिरित्यन न षष्ठी। (११००) जिणारित्यस्य कर्माण षघानीस्यत्र न षष्ठी। एवं दु:खं महिन्यु: धनं यह्यालु:, चन्द्रं हिंहत्तिस्यादि। (११००) संस्वन् इत्यस्य कर्माण इतिमित्यच न पत्री। (१०८६,११००) दधान इत्यस्य कार्मीय सुदिसित्यच न वही, एवं इदिं सीव्यमाण इति । (१०८६) देशियान् दृत्यस कर्माण प्रर्थितमित्वच न षष्ठी। ग्रंकत्याणं दाता कत्याणदानग्रील: भीचं चरणं दायी भृष्वददयस्यदेयसोचं दायौ शिवः कदा इत् इदयम् भागासी भागमिष्यतीसर्थः। भग भीलार्थं दनलस्य द।ता इत्यस्य भिर्मात कार्माण न पत्री, दायी इत्यस्य ऋणार्थणिनलस्य भोचिमिति कर्माण न षष्ठी, भव्यार्थणिननस्य त्रागामीत्यस्य इंदिति कर्माण न षष्ठी।

दिकसंग्रानु द्योरित कर्मणी: पष्ठी, विष्णीमौतिस्य यावकी भक्त इत्यादि । केषित् गौषकमंखेत, यथा विश्लोमींचं यावकी भक्त इत्यादि । जौनरासुकर्मरिकति किक

३०६ । कामुकसङ्डार्थकोन । (कासक सत्डार्थ क्षेत्र रा)।

कामुक्त प्रवेत वर्तमान डयोर्वि हितेन क्रेन च योगे टे चे च की स्थात ।

यो लक्षााः कामुको जातः सतां तस्येदमासितम्। %

३०७। त्यभावतास्यणनसढे घे वा।

(ल्य-सदे ७।, घे ७।, वा ११।)।

र्च्ये भावार्थ-के स्त्रीविहितं युं णक्य इत्ति आरम्पत्र सड़े घेषी स्थादा।

लया मम च क्वणोऽर्चः स्नातं ह्यत्र, स यस्य तु। स्टे: क्वति-र्हृति-र्येन, चिकीर्षा यस्य मेदिका ॥ १

- पूर्वम् च चक्रक्रकतीः दे चे च षष्ठी निषंधान् प्रतिप्रस्वना इ परस्वदयेन । सन् वर्त्तमानकालः, उस् प्रधिकरणं, संख उश्च सड्दे, ते प्रणौं यस्य स सड्दाणः, स चासौ क्रियित सड्दाण्कः, कामुक्य सड्दाणंक्रम्य तत्तेन । यः श्रीकृष्णः च च्याः कामुकः खच्चों कामयते, यः सतां ज्ञातः सिक्षज्ञीयते, तस्य ददम् पासितं तेनाच चपित्रम् । प्रच कामुक दित कमधातोः (१११०) कर्त्तरि जुकः, प्रस्य कर्माण च च्याः दित षष्ठो । ज्ञात दति (१०८५) वर्त्तमानि क्रः, प्रस्य कर्त्तरि स्वामिति षष्ठी । प्रासितनिति (१०८४) प्रधिक्रणे क्रः, प्रस्य कर्त्तरि वष्ठी । इह सड्दिने दश्चनेनै वेष्टसित्ती प्रयंशव्दयद्वणं ज्ञापयित श्रीखितादेवं र्त्तमानि क्रान्तस्यापि (१०८५) कर्त्तर प्रष्ठी न स्थान्, तेन श्रीखितीऽयमनेन, रिचातीऽयमनेन दश्चादि । एतदेव क्रमदौन्नरेष ''क्रिवद्र स्थान्'' दित सूर्व प्रकटौक्रतम् । पाणिनिः २। १।६९०,६८, वार्ष्तिक्ष ।
- † त्यसिव्यादिः, भावि ताः भावतः। अय पक्ष अपकौ, स्वियामणकौ स्यणकौ मः विद्येते स्थणकौ यत्र भीऽस्थणकः। द्वेत्र सङ्गवर्तते थोऽसौ सदः, श्रस्थणकयाभौ सद्यति श्रस्थणकसदः। त्यथ भावत्तय श्रस्थणकसद्येति तकिन्। स्थे प्रयुक्तमाने

र्म्मणां मुख्ये एव पक्षीं बदन्ति, यथा गांदुन्धस्य दोन्धा गोप इत्यादि, चव क्रमदीच्यर-स्वम्—'कर्म्मद्यं दुइादौनामनुक्तं स्थात कृता यदि । कश्वित्तव समावष्टे पक्षीं प्रधानकर्म्मणि ॥''चव वक्तव्यं—क्वविद्व्ययादिकत्प्रयोगेऽपि प्रयोगानुसारेण कर्त्तृकर्मणोः षष्ठो स्थादिति । परसूर्वे द्रष्ट्यो ।

३०८ । खामीखराधिपतिदायादसाचिप्रतिमू-प्रसृतकुश्वायुक्कनिपुणसाधुसुजर्धेनीदरे प्री च।

(खानि - सुनर्धै: ३॥, नादरे ७।, प्ती ।१।, च ।१।)।

भावार्थ-के प्रयज्यमाने स्ती-विहिती च-चकी हिला चन्यव्यन स्तीविहिते सनर्याने कित प्रयुक्तयमाने चक्तर्मरिषष्ठी स्थादा इत्यर्थः । लग्नेत्यादि । हे साधी इत्यद्वां, लगामम च स क्राचीऽर्च्यः, चर्चभातीः कर्माणि वाच्य (८०१) प्यण, कर्त्ति त्येति स्तीया, पचे ममेति षष्ठी । इि यसात पत्र तीर्थे लया मम ध सातं, साधाती भावे का:, लया मम च दतीया-वहाँ। यस्य क्रणस्य स्टि: कृति: करणं, येन स्टि: इति: इरणं, कृति: इतिय क्रह्मात्भ्यां भावे (११४०) क्रिः, पस्य कर्त्तरि यस्येति षष्ठी, पत्ते येनेति हतीया। छभयत्र सृष्टेरिति कर्माण (३०५) पत्री । एवै (११४८) हानि: सुखानां दरिद्रस्य दरिदेश, (११५०) परिचर्या गुरी: शिष्यस्य शिष्येण, (११५८) वर्णना विणी: भक्तस्य भक्तंन इत्थादि। सद इति किं. साधीर्वजित्यादी कर्त्तरि पर्वेण (३०५) नित्यं घष्टी। चस्यणक इति किं. यस्य क्रचण्य सृष्टेशिकीर्षाकर्ति चर्लास्य भेदिनाच भेदनं नाग्र इति यानत्। चिक्वीवेति सनन्तक्षधातीः (११५३) स्त्रीविहितः पपत्ययः। (८८०) स्त्रीविक्रिती चकप्रययः। उभयत यस्येति कत्तंरि (३०५) नित्यं षष्ठी। एवं (११५५) इ.च्छा सुक्रोस्तपश्चिन:, (११५६) कथा क्रणस्य भक्तानानित्यादि। पाणिनि: २।३।७१, वातिनंबदयञ्च। अन अस्त्राणकसटे इत्यस्य व्याव्यानारे तते (स्त्री विहिती प-पकौ दिला प्रत्यक्षित स्त्रीविहिते पस्त्रीविहिते वा सकर्मको क्रांति प्रयुक्तमाने) ''ब्रेषे विभाषा'' इति वार्त्तिकानुसारेण शब्दानामनुशासनमाचार्थेण पाचार्थस्य वा इति विध्यति ।

क्यांणि कर्त्तर च षष्ठीविधाने वक्तव्यसेतत्---

भक्को विदित-क्रिक्षनु भी गेषशे नियम्यते (कर्मणौति ग्रेपः)। एकदा तूभयप्राप्तौ कर्माण्येन न कर्नार (पाणिनिः २।३।६६)। तन्यादीनां प्रयोगे तु दयोरैव दि नेष्यतं॥ कर्मुविभाषया केषिन (पाणिनिः २।३।७१) कर्माणीऽपि तथेष्यते। प्रधाने नियता षष्ठी गुणे तुभयया भवेत्॥

यथा वेदस्य पाठण्डाचेण, यामस्य गमनं पार्श्वन इत्यादि। कर्म्यणोऽध्याहारेऽपि न कर्त्तरि, यथा भीजनमनेन इत्यादि। तव्यादी तुयाचितव्यः क्रणो भी वंभक्तीन (भक्तस्य वा) इत्यादिः दिकर्म्यकस्याते तुयच क्रता देकम्प्रणो चनुक्ते तच दयोरिष घष्टो, केचित् सुख्ये पत् केचित्र गीणे एव, चतः प्रयोगानुमारेथेव क्रगमिति निकर्षः।

कां दिशंवान गल्त्यं, सभांवान प्रवेष्ट्यं, इत्यादी कर्माणि विद्यमानेऽपि भावे अन्यत्ययः स्वादिति भाष्यादीनां मतम् ।

खामी मुकुन्दः सर्वेषां, साची सर्वेषधीचजः। निष्यक्रस्त्रिरगुर्गीष्योऽपखे मातृष्ट्यजम्॥ *

३०८। कालभावाधारं इंप्ती।

(काल-भाव ऋाधारं १।, डं १।, प्री ।१।)।

एते डसंचाः स्युः, तत्र मी । 🕆

सुचीऽयी वार:, सुचीऽर्थ इत अर्थी यस्य स सुनार्थ: । वारार्थेनैवेष्टसिद्धौ सुजर्थ-ग्रहणं सुजयंत्रत्ययान्तानां प्राप्तार्यम् । चन्यया वारादिशब्दैरिय वशीसप्तस्यापत्ते: । सुज्यं-प्रत्ययश्च चक्रत्वस् सुच् (४८४,४८५) इति इयम् । ''धाच्प्रत्ययोऽपि क्रत्वसर्थः" इति गोयी-वन्द्रः । स्वामी च ई्यास्य चिषपितय दायादय साजी च प्रतिभूष प्रमूत्य कुञ्जलय चाय-क्ष निपुणय साध्य सुजयंय ते तै:। न पादरी नाहरस्राधान खायादिभिरिकाटशिक्षः मन्दै: चक्रलस्-सुजनाध्याच योगे, षष्ठी-सप्तस्यौ स्थातां, चनादरे गस्यमाने च षष्ठी-सप्तस्यौ स्रातामित्यर्थः। सुकुन्दः सर्वेषां खामी, सर्वेषिति च। प्रधीयजः (प्रधीगतम षच जिमित्रिय जन्यं चानं यद्यात् सः) सर्वें गुसाची, सर्वें गमिति च। एवं क्राचः सर्वेषां सब्बेषु च ईश्वरः, सब्बेषां सर्वेषु च पिषपतिः। खामीश्वराधिपतीनामैकार्थलेऽपि *ऱ्यगग* इचात् तत्पर्यायभूतश्रद्धान्तरेण योगेन स्थात्, तेन क्रमाः सर्वेवां पतिरित्यादौ सम्बन्धे षष्ठेत्रव, न तु सप्तमी । एवं, क्रचाः यादवेषु यादवानां वा दायादः चातिरित्ययः । चैत्रो भैत्रे भैत्रस्थ वाप्रतिभू लंग्नक इत्थर्थः । क्रणायादवेयादवस्य वाप्रमृतः ज्ञात इत्यर्थ: । कुमलायुक्ताभ्यां योग तत्परले एव. (चासेवायामिति पाणिनि: तात्पर्यो इति महंजिदीवित-क्रमदीयरौ) यथा काच: पाठे पाठस्य वा कुमल: त्रायुक्तो वा तत्वर इत्यर्थ:। अन्यत्र कलास कुप्रल: सुकिवित इत्यर्थ:, रघे आयुत्त: वह इत्यर्थ:, इत्यादिष् षप्तस्येव । एवं निपुणसाध्यां प्रश्नंसायानेव । अत्र ''अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यस्' --तेन साधुनिंपुणी वा मातरं प्रति, परि, अनुवा। सुनर्थै: कालाधिकरणादेव. (अतएव ''क्रल सर्थें: कालाद धिकरणात्'' इति क्रमदीश्वरसूत्रम्)। यथा ---गोप्यः, अपन्ये ब्दिति, मातुः बदलाय, बदन् पपणं बदतौ मातरञ्ज अनाहलेति श्रेषः, निश्चि विः मक्र: चि: विवारामिन्यर्थ:, भनं क्रमां अन्यु: प्रापु:। विरिति (४८५) सुचप्रत्यय:। षगुरिति इनधाती: स्या अपन् (६८२,६७५)। एवं दिने दिनस्य वा पश्चक्रल: पठती-यादि। कालाधिकरणात् किं, ग्रष्टे दिर्भुङ्की। पाणिनि: २।३।३८—४०,४३, भाष्यचा

[†] कालय भावय पाधारय तेवां सनाहार:। उन् प्रधिकरणं, ती सप्तनी। काल:

सामीप्याग्नेषिविषये व्याध्याधार अतुर्विधः । रेमे प्ररिट्गोविन्हो गोपी भिष्ठिते विधी । कालिन्द्यां, कानने, केली कुग्रलः, सकले स्थितः ॥ *

३१०। ऋधिकेशायीपाधिस्यास्।

(अधिक-ई्र्य-अर्थ-उप-अधिभ्यां ३॥)।

मिधिकार्थेंनोपेन स्वास्यर्थेनाधिना च योगे प्ती स्थात्। गुणा उप परार्डे,स्युर्विणोरिध इरी सुराः। 🕆

चणदण्डमुहर्तादिः । भागी धालर्थः, यस कियाननरं कियानरं लत्त्यते स इह भावः । "तदैपरीये च'' इति वार्तिकम् । पाणिनिः २।३।० ३६,२०।

- चानियते पदार्थीऽसिन् इति चान्नारः, (चानियनंऽितान् कियाः इति चान्नारः विषयः प्रतिपादादः, विषयः प्रतिपादादः, व्याप्तः समिष्यः समिष्यः सामिष्यः, चान्नेष्यः प्रतिपादादः, व्याप्तः सम्बद्धः सम्बद्धः । (शिज्ञान्तकोसयान् "चौपन्नेषिको वैषयिकोऽसिव्यापक्षयः । (शिज्ञान्तकोसयान् "चौपन्नेष्विको वैषयिकोऽसिव्यापक्षयः व्याप्तः स्वाप्तः विषयः इति विखित्तम् ।) कमेषोदा इति रीने इति —गीनिन्दः प्ररिष्टः प्ररक्तिः सितं विखित्तम् ।) कमेषोदा इति रीने इति —गीनिन्दः प्ररिष्टि प्रतिकाने चन्ते चित्रः विषयः विद्वते सितं विधित्तद्यक्तियानन्तरिमत्यरः, विधी इति भावे सप्तमो, उदिने इति ति विधित्तमः । यदकः—विश्रेष्यस् इ यिक्षः विभित्तिः चने स्वययः ति विधितः विश्रेष्यपदेऽपि चेति ॥ कालिन्दां कालिन्दीसमीपे खच्चया तौरे इत्यर्थः, कावने काननेकदेने, गोपीभः (स्वः) रीने कौडितवान् । गीनिन्दः लीडशः—केली कौड्राविषये कुष्रवः समर्थः, सक्ले जगित स्थितः सक्लं व्याप्य स्थितः इत्यरंः ।
- † प्रधिक्ष प्रश्निय ती पर्धी यथी: ती पिथकिशार्थी, छपय पिथ ती उपाधी, प्रथिकिशार्थी च ती उपाधी पित ताथाम् । खाय्यधें नेत्रस्य उभयार्थलं खखामिलसन्न-स्प्य उभयार्थलं खुद्धामिलसन्न-स्प्य उभयार्थलं, —तयाच पिथना यंग्ये यस परिवारस्त्रसात् यस खामी तथाश्च सप्तमी स्पादित्यथं: युषा इति विचीशंषा: पराई छप स्पु: पराई दिक्षिका प्रमुशा इत्यर्थः। पराई परमुश्चा, —तयाचीकम्, एकं दश शतचैव सम्बन्धमृतं तथा। लघ्य नियुत्तचैव कीटिरब्बंदिनेव च ॥ वन्दः खुर्ची विख्निय श्रमुप्ती च सागरः। प्रत्यं मध्यं पराई च दशवद्या यथीक्षमिति ॥ सुरा देवा: इरी पि इरी: परिवारा इत्यर्थः, एवम् पिथ सुरेषु हरिरिचिष, हिरा सुराणं खानीत्यर्थः। पाविनः श्वार ।

३११ | देनार्थात् । (हेन श, पर्यात् श) ।

टैन योगे निमित्तात् प्तीस्थात्। वस्त्रेषुरजनामवधीत् कृष्णः। *

३१२। तोना दे। (क्रीमा श, दे ण)।

क्ताहि चितेन इना योगे है भी स्थात्। वैदेऽधीती। क्

३१३। निर्द्वारेऽधिकोन क्रियान्त:काला-ध्वनोस्य पी च। (निर्दार ७), पिकोन २।, क्रियान.कालाध्वनी: ७॥, पारा, पी रहा, पारा)।

येष्ठं क्षपालुचर्कारेः बद्रैकार्यकेऽधिकम्।
मूर्च्यष्टकात्, भिवंध्यायन्, भुद्धीया दाष्ट्रिवा नप्रहात्॥
भूस्थो योजनलदीऽर्कं पश्चीक्षचदयात् विधुम्। क्ष

अ घर्षी निभित्तम् । कियाया निमित्तं यदि कर्षणा संयुक्तं स्थात् तदा तिसात् निमित्तात् मप्तमी स्थादित्यर्थः । अवधादिति कियाया निमित्तस्य वस्त्रस्य इननिक्षया-कर्षणा रजकेन सह संयोगात् वस्त्रेषु इति सप्तमी । एवं, चर्षाण हीपिनं इत्ति, दत्त्यीईत्त कुन्नरम् । केथेषु चनरीं ईत्ति, सीस्त पुष्यखकी इतः ॥ इति महानाटके । (सीमा अष्डकीयः, पुष्यखकी गत्मस्यःः) । कीर्त्तेय हीपिनं इत्ति इत्यादी कर्ष्यणा संयोगाभावात् न सप्तमी । सुकाफ्लाय करिणनित्यादी तु, ताद्र्यों चतुर्थीं (२८४) । "निमित्तात् कर्ष्योगी" इति वात्तिकम् ।

[†] क्वादिन क्वेन तेन क्वेना। अधीतीति अधीतमध्ययनम् अस्यासीति अधीती, अस्य योगे वेदे इति कसंबि सक्षी। एव क्वती युतो अवस्तिषु धौमानिति भटिः। क्वाद्यव-इतिन इना योगं एवायं विधिः, तेन क्वतश्च तत् पूर्वश्चेति क्वतपूर्व्वे तदस्यासीति क्वत-पूर्वी, कटं क्वतपूर्व्यी, वेदमधौतपृत्वीं इत्यादौ न स्यात्। किश्च सुत्यं कसंब्येखवायं विधिः, तेन मासमधौतीत्यादौ न स्वात्। "कस्येन् विषयस्य कसंब्युपसंख्यानम्" इति वार्श्विम्न।

[‡] क्रिययोरतः क्रियात्तः (मध्यं), कालय पध्या च तौ कालाध्वानी, क्रियात्तय तौ कालाध्वानी चेति तयोः। जातिगुणिकयाणासुल्ववेषापकवेषा वा समातीयात् प्रथक

३१४। सीमान्तमार्गात प्री चान्ते।

(सीमान्तर-मार्गात् ५।, प्री ।१।, च ।१।, चनी ७।)।

सोमनायाच्छतं क्रीयाः क्षणः क्रीयेषु चायते। गङ्गायम्नयोगाध्ये कति क्रोगास जाइवी॥ %

करणं निर्दार:। काल: चणदण्डसङ्कर्त्तप्रदादि:। पध्यपरिमाणं नलक्रीशादि: निर्दारे गस्यमाने, एवम अधिकाश्देन योगे, तथा क्रियादयमध्यवित्ति काले अध्वनि च पञ्चभी सप्तस्यो स्थाताभित्यर्थः। छटाइरणं — क्रपालव अर्कादेश श्रेष्ठं. कट्रैकादशर्व मुर्च्यटकाच मधिकं मिर्वं ध्यायन दांहि नाहाका सुद्धीयाः, हे साधी पति भेषः। प्रः मिर्जारे क्रपालय प्रकांदेय इति सप्तमी-पञ्चस्यौ, (३०२) षष्ठी च भविता । काकाः को किल: क्षणी: इत्यादि निर्दारणे पञ्चस्येव, नतु पष्ठी-सप्तस्यौ इति वत्तव्यम्। कट्रैका दशकी सुर्खाष्टकाच इति पिधिकाशन्देन योगे सप्तमी-पद्यस्यो, दाहि चाहादा इति ध्यान क्तिया भो चनिक्रयथी र्भध्यवर्त्तिनः कालात् सप्तभी पद्यस्यौ । जन. भूस्यः सन् थो जनल[ः] त्रकी पर्छत्, लचदयात् विसुंपर्छिदिति, त्रव भूस्थिति किया दर्भनिकायया र्भध्यवित्ती श्राप्ति योजनसर्वे सर्वदयादिति च सप्तभी-पञ्चग्यौ । (एक।दगानां समृदः एकादणः बद्राणामे कादम्कं बद्रैकादम्कं तिखन । अष्टानां समुद्दीऽष्टकं मूत्तीनामष्टकं मुर्ख्यप्टः तस्मात् । दयीरक्रीर्भवः काल इति तद्वितार्थदिगी दाकः, ततः सप्तभी विभक्ती (११८ हाकि । त्रयाणामक्रांक्माहार: त्राइलकात् । भुवितिष्ठतीति भृस्य:।) पाणिनि २।३।७,२।३।४१,४२ ।

* धीस्रीरतः, स चासी सार्गदेति सीमान्तमार्गसामातः। क्षीश्रशीकगादि:। सीमादयमध्यवर्त्तिमार्गपरिमाणवाचकात ग्रन्दात भन्ते गस्यमा प्रथमा, चकारात सप्तभी च स्यादित्यर्थः। चन्तगस्यमानाभावे त केवलं प्रथमा स्थारि स्पर्यम् वत्तस्य:। सीमनायात् ग्रतं क्रीगाः क्रमः, ग्रतके। ग्रान्ते वर्त्तते इत्थर्थः ; ए अप्यति क्रोशिषुच, अप्यत-क्रोशानीच वर्षते इत्थर्यः। अव सीमनायक्रणायीः सीसं र्मध्यवर्त्तिमार्गात् प्रतं क्रीप्रा: इत्यस्मात् भन्ते गयमाने प्रथमा, भयुते क्रीब्रेषु च इत्यस्मा सप्तभी च । शतनिति चयुते इति च वहुवचनविश्रेषणेऽपि श्रमिधानादेकलं, विः त्याद्या: सदैकलं सर्व्या: सङ्घायसङ्घायीरित्यभरात । अन्ते किं---गङ्गायस्मिशीर्थ लाइनी कृति कोशा: कृति केशिशन व्याप्य तिष्ठती कर्थ:, भन केवलं प्रथमा। दितं यार्थाकरणे अत्र (२८३) दितीया भवितुमहिति। हिमाखयमारभ्य चा ससुद्रात् गङ्ग यव च देश्रे लहुमुनिना पौतोज्भिता तत पारभ्य पा समुद्रात् न।क्रवीति गङ्गाः नामान्त म्। जाक्रव्या मध्यदेशे यसुना मिलितेति । वार्त्तिनं भाष्यव ।

३१५। त्रादयोऽर्घार्धेकतोः सेस्त सर्वाः।

(ची चादय: १॥, चर्यार्थें कत्ते: ५।, स्वे: ५।, तुः१।, सर्व्वा: १॥)।

त्रर्थार्थेनैनको लें स्यादयः खुः, स्रेसु सर्वाः।

भुक्त्यार्थेनार्थस्य मुक्तेः किं, कार्य्यं नार्च्यतेऽच्युतः। *

३१६ । संज्ञाः कं। (संजाः १॥, कं १।)।

ढ ध घ भ ज ड़ा: कसंज्ञाः स्युः । १

इति कपाद!।

^{*} जी चादिर्यासां ताः, चयां निमित्तं, स एव चर्षे। इसिधेयी यस सीऽपांधः, एका (पिम्ता) किथंयात् स एकक्तिः, षयांथेंन सह एक्किः चर्यावेंकिकिसस्यात्। निमित्तायं लिङ्गस्य विशेषणात् लिङ्गात् तृतीयादयः पच विभक्तयः स्त्रः, ताहशात् सर्वनासस्त सर्वाः प्रथमादयः स्त्रुरित्ययः। सृत्र्या चर्येन सुक्तेरथं स च्यातेऽचंते पूज्यते, किंकाय्यं न प्रचंते चित्र त प्रयम् इति तृतीया, सुक्तेरिति मेषः। च्यान निम्ताः थंस्य चर्यमञ्ज्यस्य विशेषणात् सुक्ता इति तृतीया, सुक्तेरिति पष्ठी, व्यं सुक्तये चर्याम् स्कृतं चर्यान, सुक्तेरित प्रष्ठी, व्यं सुक्तये चर्याम्, एवं वित्तेयादिकमित्र। एवं हितुकारणनिमित्तादिश्वद्र-विशेषणाद्यि—तथा चर्यस्य हतीवं हु हातु सिच्छितित रष्यः। साष्यम्।

[†] प्रसिन् पारे या या संज्ञा जका सा कमंज्ञा स्थात्। ताः संज्ञाः— द ध घ म ल ड़ा इति। कम्मेकरणक मृसम्प्रदानापादान धिकरणाना सेकतमं कारक सिति यावत्। करोति कम्मेक्वादिव्यपदेशानिति कारक सिति साव्यम्। "क्रियानिस कारक स्थार्थः इति दुर्गसिंडः पद्मनाभयः। क्रियान्वियिलं कारक लिस्यिषि क्षित् । चैत्रस्य धनसित्यादौ धनादिक भेव प्याका द्वितं स्थात् न तु गच्छतीत्यादिकं, तेन सम्बन्धस्य क्रियानिमित्त्वताभावाद्य कारक लस्, एवं खिज्ञार्थ सम्बीधन ग्रीरिषा ग्रन्ते प्रविव्यतीत्यादौ ग्रहादेः
कम्मेत्या दितीयापाशौ प्रधिकरण विवच्या सप्तमी, विवच्या श्राह्या कारकाणि भवन्तीति
न्यायात्। एवं महाक विषयोगाद्यी विवच्या समाधानीयाः, स्थितं तिस्तन नीयेति
न्यायात्। तेन स्वच्छया यामे गच्छतीत्यादिप्रयोगी न कर्मच इति साम्प्रदायिकाः।
उभयोर्थ गण्यत् प्राप्तौ तु—कर्मा कम्माधिक रणं करणं सम्प्रदानक स्पादान च सन्दे हे
परं पूर्विण वास्यते इति वचनात् व्यस्त्या। यथा, प्रस्त स्वी धावतीत्यादि। एवं क्रम-

दीवरोऽपि—पपारान सम्प्रदान करणाधारकर्मणाम् । कत्तुवान्यीन्यसन्देहे परसेकं प्रकर्तते॥ इति ।

भव वक्तव्यानि स्वाणि लिख्यनी—

- १। ''नात्याखायामेक थिन् बहुवचन मत्यतरस्याम्" (पाणिनि: १।२।५०)। जातिप्रतिपादन एकीऽपि जातिकपीऽर्थी वहुवहा स्थात्। यथा ब्राह्मणः पूज्यः, ब्राह्मणः पूज्यः। भच भानंख्याप्रयोगे इति बक्रव्यन्। यथा पद्मनाभः— "जात्यर्थे वैकस्थिन् वहुवचनमसंख्याप्रयोगं (कारकप्रकर्षे ३० स्वम्)। क्रमदीयरीऽप्येवम् ''जात्युक्तावसंख्याविश्रष्टसैकले'' (कारकपादे ४५ सूचम्)।
- २। ''पस्त्रदो दशेय'' (पाणिनि. १।२।५८)। घन्नद एक ले दिले च वहत दास्थात्। यथा घडं बनीसि. घावां बृतः इत्यादी वयं बृतः । घिवश्रिषणादिति वाच्यम् । यथा पन्नताभः—''घश्वदो दशेषाविश्रेषणात्'' (कारकप्रकर्णे ३८ सृतम्)। एवं क्रमदीयरः यथा—''मश्रदोऽिश्रंषणस्य दिले च'' (कारकपादे ४८ सृतम्)। यथा कविरहम्।
- ३। ''युम्नदी गुरुविशेषणस्य'' (संजितसारै कारकपादे ५० सूत्रम्)। "युम्नदी गौरवे'' (सुपर्द्यकारकप्रकरणे १८ सूत्रम्)। यथात्वं से गुरु., यूयं से गुरुदः। एवसेव क्षयादित्यः, यथा, "युम्रदि गुराविशेषाम्'' इति ।
- ४। "भागांत्र चा गौरवे" (सिविष्तसारे कारकपादे ५१ सूत्रम्)। यया जीवत्सु तालपादेषः।
- पू। "िंश्रत्यादेश्नावत्ती यक्ततेऽधोकत्वचनम्'' (संचिप्तसारे कारकपादे ४४ सूत्रम्)। एवं सुपर्ग्नऽपि "विश्वत्यादेरंकत्वमनावत्ती'' (कारकप्रकरणे ३६ सूत्रम्)। यथा विश्वतिः पुरुषाः। भावत्ती तुद्दे विश्वती नशाणाम्।
- ६। "दारादिनित्यम्" (सपग्ने कारकप्रकरणे ४२ स्वम्)। "मापी दारा वर्षाः सिकता नखीकस प्रत्यादरवष्ट्लेऽपि वह्ववनम्" (संचिप्तसारे कारकपादि ४५ स्वम्)। "मुंसि रुष्टाय" "सुभनीऽभरोयल्जनादेवां" (पूर्वोक्षे ४६, ४० स्वे)।
- ७। "फल्गुनी-प्रीष्ठपदानाञ्चनवर्ते" (पाणिनि: १।२।६०)। पूर्वकंकल्गुना इत्यन दिले बङ्क्तम्। तिथ्युनवर्तम् इत्यन् तु बङ्के दिलम् (पाणिनि: १।२।६३)।

३य पादः-समासः (सं)।

३१७ | देकां सोऽन्वये | (दैकां ११, मः ११, पनवे ९)। ह्योर्बह्रनां वा दानामेकां स-संज्ञं स्थात्। तचान्वये सित कार्यम्। यथा—वन्धौ चरणौ कष्णस्य इत्यर्थे, कष्णचरणौ वन्धौ इति स्थात्, नतु कष्णवन्धौ चरणाविति। ॥

३१८। भिन्तान्येकाधृद्यादिसङ्ख्याव्यादीनां च-ह्र-य-प्र-ग-वाः। (भित्र-व्यादीनां ६॥, प-वाः १॥)। भित्रार्थानां दानां सःससंज्ञः, प्रन्यार्थीनां दानां हसंज्ञः,

किश्व यत प्रतियोगिपद-कारकपद-भिन्नपदापेता वर्त्तते तत्र समाधी न स्थात्, यथा— ऋड्स्य राभी मातङ्गाः इत्यत्र ऋड्स्य राममातङ्गा इति न स्थात्। यत्र च प्रतियोगिपदकारकपद्योरपेत्रा वर्त्तते तत्र स्थादेव, यथाः— रामस्य नाममिष्टमा, काण-माणितमनाः, वाणेन निज्ञङ्कदय इत्यादिः स्थादेव। तथाच — प्रतियोगिपदादम्बत् यद्याप् कारकादपि, वित्र इत्यक्तिदेशस्य मम्बन्धमन नेष्यते इति, सापेत्रविदिर्ण गमकवात् समास इति, समस्यादमीन निष्यापेत्रेष सङ्गातिरिति च प्राचः। एवच्च निष्योऽनिष्यो

[ः] स्वादीनामयं न् निरुष स्वायनानामे कपदीकरणार्थमाह — दैक्कामित। दघ दघ ते दे, दघ दघ दघ तानि टानि, दे च दानि च तानि टानि, दानामेकां दैक्कम्, ऐक्काम् एकतरा। दं पदं, तब स्वायनमेन। तथाच — "नामां ममानी युकार्यः ततस्या लीप्या शिक्षक्यः" इति मुर्खनक्यां। नामां स्वायनलिङ्गानामित्यथः। "ममथं पदिविधः" इति पाणिनि (२१११)। "समर्थानां ममानः" इति प्रमामाः। "समानं इनेक पटस्येकपदन्ता" इति कमदीष्यउवितः। प्रणमतीत्यादौ समामन् (५४८) व्यस्य स्वकादिव्यत्यात भनति। इयोः पद्योः वङ्गां वा पदानाम् ऐक्काम् एक-पदीक्रत्यं समंत्रं स्वादिव्यत्यः। सः समानः। तच ऐक्काम् चन्यये सित कर्मव्यमिति। चन्यः समिप्रतिसम्बन्धः, स च कचिन विश्रेषक्षेत्रण, कचिन विश्रेषक्षप्रपण, इति तु सन्त्यः। कृष्यव्यो दिश्रेषक्षेत्रण, स्वात् तु स्वयं प्रविश्वव्याव्यविभावः सन्त्यः। कृष्यस्य इत्यस्य व्यो इत्यनेन सम्बन्धानान् न कृष्यव्यो इति समानः। यदा तु कृष्येन वन्यो कस्यवित् चर्णो इत्ययाँ भनित, तदा कर्मृत्यमन्त्रंन कृष्यव्यो इति स्वानः। इति स्वानेन

एकार्थानां दानां यसंज्ञः, द्यादिक्त्यन्तपूर्वेदानां वसंज्ञः, सङ्गा-पूर्वदानां गसंज्ञः, व्यपूर्वेदानां वसंज्ञः, स्थात्। *

विकल्पय समासः कर्ष्तिष्क्येति । समासः चतुर्विधः — 'पूर्व्यपदार्थप्रधानीऽत्ययीभावः, उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः, ष्रत्यपदार्थप्रधानसः, उत्तरपदार्थप्रधानसः, स्ति प्राचां प्रवादः । '' ''तत्पुरुषविश्रेषः कर्ष्यधारयः, तिहिशेषी हिगुः । ष्रनेकपदलं हन्ववहुतीस्त्रोरंव, तत्पुरुषयः काचिदेव।'' इति सिद्धान्तकौसुदी । इरिणा तु 'सपां सुपा तिङा नामा धानुनाथ तिङां तिङा । सुवन्तेनेति विद्याः समासः पड्विधी वुधैः ॥'' इति स्त्रे पड्विधीव समासः पड्विधी

* भिन्नय चन्यय एक चते, ते चर्याययां तानि भिन्नान्यैकार्यानि । दी (दिसीया)
चादिर्यासां ता द्वादयः, तासाञ्च कीवलानामसभावात् तदन्ता एव रुद्धन्ते । द्वादयच सक्षाच व्यञ्च द्वादिसङ्काव्यानि, तानि चादयो येषां तानि । भिन्नान्यैकार्यानि च द्वादिसङ्गाव्यादीनि चतेषाम् । चय द्वय यय यय वय ते ।

सित-मज्ञानां समसङ्गालात् यथाभङ्गां दर्शयित भिन्नार्थानामित्यादि । भिन्नार्थानां पृथकपृथगिभिषयानां पदाना समासः असंज्ञः स्थात । जो तत्तः । इतिकरानित्यादी अभिदः शिवरान्योरित्यादिवचनात् वन्तः पृद्धियोगभिदः पित्र भिद्विवचया तत्तः । यत्तर्यत्व विनायके िञ्चराज्ञदेनात्त्रणाधिपा दत्यादिशयोगः । पदार्थतावच्छेदकभेदादित्यकं । पदनन्य प्रतिपत्तिविषयभेदादिति च किवित् । एवमेव गीयोचन्दः—''प्रव्दप्रतिपाद्य-सम्बन्धने एव परस्परापेचा यक्षतत्र्याः' दति । किञ्च दत्तः सर्व्यपदार्थप्रधानीऽपि परपदस्येव लिङ्गं भजतोति यथा—घटय फलच घटफल, फलच घटय फलचटौ, स्त्री च प्रती च स्त्रीपुवा दत्यादि । सिज्ञानकौनुद्यां ''सभुचयानाचयेतरेतर्योगसमा-कारायार्थाः' दति चकारार्थो दिर्थितः । ''परस्परिनरपेचस्यानेकस्य एकसियन्त्रयः समुद्यसः, प्रवातरस्थान्यक्षित्रल्यः (मिलितानामन्त्यः दत्तरेतर्योगः, समुद्दः समाक्षरः।'' पाणिनिः रारार्थः ।

ष्मत्यार्थांनां समस्यमानपदात् भिन्नार्थांनां पदानां समासः इसंजः, हो बहुवी हिः। स तु सब्बेपदार्थाप्रधानः। स च दिविधः—तदगुणसंविज्ञानोऽतदगुणसंविज्ञानदा । यत्र समस्यमानपदार्थः समासवाच्यं वर्ण्तते स तदगुणसंविज्ञानः, यथा विलीचनः शिवः। तदन्योऽतदगुणसंविज्ञानः, यथा इतकंसः क्रणः। श्रस्यापरौ भेदौ यथा—समानाधिकरणो भिन्नाधिकरणस्य; पौतास्वर द्रस्यादौ सामानाधिकरणस्य, श्रस्त्रपाणिदिस्यादौ भिन्नाधिकरणस्य। पाणिनिः २।२।२५,२४।

एकार्थानां समानाधिकरणानां विशेष्य-विशेषण-भावापत्रानामिति यावत् परानां समासः यसंज्ञः, यः कर्म्मभारयः। पाणिनिः १।२।४२।

३९८ । तोलुक्त्यच। (की: ६१, लुक्।११, बी आ, च।१।)।

से स्थितायाः त्रीर्लुक् स्थात्, त्ये च परे। *

हितीयादिविसक्यन्तपदपूर्वकाणां पदानां अधमासः वसंजः, वसत्पुरुषः, स चीनर-पदप्रधानः । पाणिनिः २।१।२२ ।

सङ्गापूर्वपदानां तस्यार्थे इत्यादि वच्चमाणिनयमात् तिवितार्थे समाधारे उत्तरपदे परे च सङ्गावावकपदपूर्वकाणां पदान' समासी गर्सजः, गी दिगुः। तिवितार्थे उत्तरपदे परे च दिगुरुभयपदार्थप्रधानः, समाधारिहिगुरुत्तरपदप्रधानः। पाणिनिः २।१।५२।

व्यपूर्वदः।नां — व: कसामीध्येत्यादि नियमग्त् कारकायर्थे भव्ययपदपूर्वकाणां पदानां समासी वसंज्ञ:, वीऽव्ययीमावः, सच पूर्व्वपद्यथानः। पाणिनिः २।१।५,६।

भाव कातस्वीर्त्तं कृन्दीवडां समासविवरणं प्रदर्शते —

पर तुल्याधिकर से विज्ञेयः कर्मधारयः ।
संख्यापूर्वे विग्रिशित ज्ञेयः, तत्पुक वाज्ञभौ ॥
विभक्तयो विग्रिशित ज्ञेयः ताप्रक वाज्ञभौ ॥
समस्र ने समासी विज्ञेयस्त पुक्षः स च ॥
स्थातां यदि परे वे तु यदि वा स्पृष्क स्पि ।
तास्यस्य पदस्य ये वहत्री विः — विदिक् तया ॥
क्षः. समुज्ञयो नामो वे इनां वापि यो भवेत् ।
प्रक्षं वाच्यं भवेदयस्य चीऽव्ययोभाव दृष्यते ।
स न पुंसक लिक्षं स्थात् वन्दैक लंत्या विगी: ॥

सर्वं समासेषु व्यितायाः खादैः क्रेषुंक् खात्, सर्वं प्रत्ययेषु परेषु च खादेषुंक् खादिलावं:। समासे यथा — इरिइनी, पीतान्तरः, परमात्मा, क्रचाशितः, पचगुः, सपक्षम्। प्रत्यये थथा — श्रीमान्, पुत्रकाम्यति, वाचिकं, चित्रयं, माथुरः, हेनः, ग्राम्यम्, इत्यादी प्रथमादेलुंक्। किच तत्रत्यः साव्यं किकः इत्यादी नादेग्रस्य जीपाभावनु स्थादि प्रकर्णं किता तत्रितप्रकरणे चादेशियानसामर्थात्। स्थादिरिति किं, पचिततरा-मिलादौ तिवादेनं लीपः। खुक्करणेन, लालीपे त्यलवधमिति चायात् प्राप्तस्यं विभक्तिनिमक्तं कार्यं (११) खुकि न तत्रिति निषेषात्र स्थादिति, तेन कस्य पुत्रः किपुत्रः इत्यादौ (१३१) टेरकारी न स्थात्, धातारं गतः धात्रगत इत्यादौ (१२८) न विद्वः, यज्या चासो विप्रस्ति यञ्चविष्र इत्यादौ (११४) न दीर्षः। विराने परे विद्वितन्तु स्थादेव, तेन ब्रह्माचुतेश इत्यादौ (११८) नस्य जुप्, पशैविकार इत्यादौ (१०१) सस्य विसर्गः। किस्र लया कतं लन्जतनित्यादौ (११५) एकलेखं तदादेशः स्थादेव, क्रश्यो-

इन्द्र-सम्बासः (च)।

इतरेतरयोगे च समाष्टारे च चो हिथा। हित्य हरय हरिहरी। ब्रह्मा च अच्युतय ईशय ब्रह्माच्युतेशाः । अ

३२०। पुंवत स्ते: । (पुंवत ११, सी: ६१)।

से स्थितायाः स्नेः पुंवत् स्थात्, त्ये च परे। पूर्व्वपश्चिमे। 🕆

र्थंसापि यहणादित्युक्ते:। युवावादेशी तु दिवचने परे एव स्थातां, नतु दिलेऽथेँ इति वक्तस्यम्, तेन युवाभ्यां क्रतं (१८० प्रष्ठं द्रष्टलं) युषान्कतमित्यादि । पाणिनिः २।४।७१ ।

* ची इन्दः इतरेतर्योगे च समादारे च भवन हिथा भवति । इतरेतर्योगोऽतयय-प्रधानः, तेन चवयवक्षते हित्वबङ्खे भवतः । समादारः संहतिप्रधानः, तेन संहति-रिक्तादेकवचनेसेव इति भेदः । इरिय इत्य इति वाक्ये सि-हयस्य लृकि हरिहर इति ससुद्यस्य लिङ्कसंज्ञायाम् चवयवहयघिटतलात् दिवचनम् । राजद्खिनावित्यादौ तु पूर्व्यदस्य विभक्तेर्लेकि (११८) विरासे परे विदितनकारकोपः स्थात्, परपदस्य विभक्तिथीपेऽपि पुनर्लिङ्कसंज्ञायां विभक्तात्पचौ विरासविद्वितं नकारकोपादिकं न स्थादेव । इद्याच्यतेशा इत्यन चन्यववयघिटतलात् बहुवचनम् । एवं घटौ च घटौ च सटाः, चन चवयवचतुष्ट्यघटितलात् बहुवचनम् । समस्वपदिवङ्ग्तु परपदस्य यत् तदेव भवतौति ।

+ पुनानिव पुंवत, त्ये च इति चनुवर्तते । किञ्च त्या चन्ने विभिक्तिमित्रप्रत्यो गाज्ञः, किन्तु विभिक्तिस्थाने तिष्ठतप्रत्ययं ति ते प्यंत्र स्थिति, यथा सर्वस्थां सर्वतः इत्यादि । सर्वसमाने सर्वप्रत्ययं च पर सर्वनामः पृवद्वाः स्थादित्ययः । भव समासगतपूर्व्यवस्थेव सः पृवत् स्थात नृतु परपदस्य, भवण्य पिद्या पृष्टां च पिद्यापृष्ट्वं इत्यच पृष्टां इति परपदस्य से न पृवद्वाः । न च, (८०) न गौष्याष्ट्यत्यनेन सिसंज्ञानिविभात् पृष्ट्वंपश्चिने इत्यच, कथं प्यद्वाः इति वाच्यं, न गौष्याष्ट्यत्यनेन समाने स्थितस्य पृवद्वाः । विभावते, पृवत् सेतिस्थानेन समाने स्थितस्य पृवद्वाः । विभीयते, इत्यविरोधात् । सर्वां प्रिया यस्य स सर्ववियः इत्यादौ भनेन पृवद्वाः । (२२८) पूर्षोपियेत्यनेन तु (१२०) पृवत् स्वाक्तेत्यादि । प्रत्यवे यद्या—सर्वामिष्कृति सर्वकास्यतीत्यादि । प्रत्यवे यद्या—सर्वामिष्कृति सर्वकास्यतीत्यादि । "सर्वनास्यो हित्तस्य पृवद्वाः । विद्यत्या प्रवास्ति। विद्यतस्य प्रवास्ति। सर्व्यवतास्य विद्यास्य स्विष्टाः सर्वास्ति। सर्व्यवतास्य विद्यास्य स्विष्टाः । प्रत्ये यद्या—सर्वामिष्कृति सर्वकास्यतीत्यादि । "सर्वनास्ति । इत्यविष्टाः सर्विष्टाः । सर्विष्टाः सर्वास्ति । सर्विष्टाः । सर्विष्याः । सर्विष्टाः । स

३२१। ऋतो ङा तत्पुने सगीनविद्ये चे।

(ऋत: ६।, डा ।१।, तत्पुत्रे ७।, सगोत्रविद्ये ७।, चे ७।)।

चे स्थितंस्य ऋदम्लस्य ङा स्थात् ऋदम्ते पुत्रे च परं संगीतिविद्ये। मातापितरी पितापुत्री, हीताप्मेतारी । *

३२२। चगैक्यवं स्तीवं। (चगैक्यवं ११, कीवं १)।

चस्यैकां गस्यैकां वय क्लीवं स्थात्। 🕆

३२३ । चैक्याचुटंगहोऽ: । चेक्यात् ४१, वदवहः ४१, प. ११)। पवर्गान्ताद्दवहान्तात् चैक्यात् ग्रः स्थात् ।

^{*} सच पुत्रयः ततपुत्रं तिथिन् । तत्र श्रन्ते ह पूर्विस्थित-स्टर्क एशेखिते । गोत्र ख विद्या च ते, समाने गोत्रविद्ये यस तत् सगीत्र विद्यं तिसान् । इन्हसमासंस्थपूर्व्वर्ति-स्टर्क्त श्रन्तर का स्थात् सटको पुत्रे च परे. पूर्वोत्तरपद्योः समानगोत्र वि समान-विद्यं व सतीयथः । माताथितरौ पितापुत्री इत्युभयत्र समानगोत्र वस्त — जामाद्यपुत्री इत्यत्र समानविद्यत्म । स्टर्के किं — पितृपिताम ही । सगीत्रविद्यं कि — जामाद्यपुत्री दाद्यभीकारौ इत्यादि । अत्र पुत्र श्रद्धं प्रवायं श्रन्द उच्यते इति कमदीश्वरः, तेन दृष्टिताकाजौ इत्यादि । पूर्व्यपदस्य समानगीत्र वे परपदस्य च समानविद्यते न भवति, श्रया पिट्डोतारौ । किञ्चान दिपदरन्ते एव डा भवति, तेन होता च पोता च यष्टा च ते होद्योद्ययप्टार इत्यत्र न स्थात् । दिपद्याक्षे तु स्थादेव, तेन होतापीतारौ च यप्टोद्यातारौ च ते इंतिपितायप्टाद्यातार इति । होतापोतारौ च यप्टा चेति वाक्षे तु होतापोतायप्टार इति । चन माताथितरौ इत्युदाहरता प्रायेष इन्हे स्वीलिङ्गस्यैव पूर्व्यस्तिरिति स्वितम् (पाणिनिः श्वराध्य हपानरम् । पाणिनिः ६।३१९५ ।

[†] चय गय तौ तयं। रेकां, चनैकाच वयः तत्। ऐकां समाद्यारः। प्रस्ययोभावस्य क्षोवलफलन्तु उपसंज्ञं उपलक्षिः इत्यादौ (१६०) इत्यः। गुरूपज्ञं व्यच्छायं य्यःसभं उपसभंदासीसभंस्त्रीसभंगोबालं(पायिनि: २।४।२,२००,१८०। भवस्येविति वक्तव्यम्। पायिनि: २।४।१,२,१०,१८०।

वाक् च लक् च हयोः समाधारः वाक्लचं, श्रीस्नजं, श्रमी-दृशदं, वाक्लिषं, पीठच्छत्रोपानसं। *

३२४ । जर्बष्ठीवं पदष्ठीवं धेन्वनडुक्ती ग्रक्तो-राज: स्त्रीपंसी वाङ्मनसे क्रक्सामे दारगवं ग्रिचिमुवं इत्यादय: साध्या: ।

(कविष्ठीवं १।, पदष्ठीवं १।, घेलनजुडी १॥, षडीराचः १।, स्त्रीपंशी १॥, वाङ्-मनसे १॥, च्यक्सामे १॥, दारगवं १।, प्रतिभुवं १।, इत्यादयः १॥, साध्याः १॥)। †

दृति च:।

स्थात्, सनाहारे तु प्रावट्थन्दिनित स्थादेव । पाणिनिः ५।४।१०६।

श्रत्र समादारविषयकाणि कितिचित् पाणिनिम्ताणि लिख्यले — "इन्दय प्रापि-त्यंसेनाद्वानान'' (२।४।२), यथा पाणिपादं सुखनासिकं, साईक्षिकपाणिवकस्, रिध-काथारोद्दम्। "नातिरपाणिनान्'' (२।४।६), यथा धानामकुलि। "विश्विष्टलिङ्गी

^{*} पुष दश मूईन्य षथ इ चिति चुटष इ तथात्। समा हारह हे स्थितात् घवर्गानाः दान्त षानाः हान्तात् ष: स्थादिल्ययः। (५२०) षादिना इत्यनेन एतदः च प्रत्यादीनां तिवत्तात्, (४३१) न दं तसावित्यनेन दान्तत्विष्ठिं वाक् लवसित्यादौ विवासमाधित्य (१११) कुङ एदिकं न स्थात्। एवच समा भपादो क्षत्रत्याः प्रन्यपदादेव स्युरिति, तेन लक्ष्यं सिख्युवः इत्यादौ पूर्वपदात् न कियत प्रत्याः। चे किं, पञ्चानां वाचां समा- इतः पञ्चाक् इति हिनौ न स्थात्। ऐका सिति किं, प्रावट्शरदो इति इतरेतरे न

[†] कर्ष्यं होत्र नित्यादयः साध्याः निपात्या इत्ययः। करू च महीदनी च कर्ष्यं होत् पादी च महीदनी च पद्षीयं, उभयच महत्ययः, पादस्य पद्रिश्य । धेतृष मनदृश्य धंनन हुनै, एतदादिस्योऽपि महत्ययः। यह्य रानिय महीरानः, समाहारेऽपि पृंत्तम्। सह्यापूर्वत्वे तु त्तीवतं यथा निरावित्यादि। स्त्री च मुमीय स्त्रीपृंसी। वृत्तम् च सम्ययाद्यात्राते । महत्य च साम च स्क्रमाने। द्राय गावय द्रारगवं। मिलणी च भुवी च मिलक्षे । हत्यादयः इति मादिशन्देन षट्समासेषु मनुक्तानि उच्चने। तच समासानतरे-ऽतुक्तं तवैव वक्तव्यं, हन्दं मतुक्तानि तु मव च च्यति। नक्तिन्दं राविन्दिवं महर्ववं स्वर्गवं ; म्योधोभी स्थापन्दमसी मिनावक्षी; इत्यादिकः प्रयोगानुसारेण इतरेतरयोगः समाहारस् प्रयः। पाणिनः भू। । १००।

बहुवीक्टि-समासः (इ)।

पीतमस्वरं यस्यासी पीतास्वरी हरिः। नीलमुज्ज्वलं वपुर्यस्थासी नीलोज्ज्वलवपुः क्षणाः।

नदिक्षीऽयामाः" (२।४।७), यथा गङ्गाशीषां, कुक्कक्षत्त्रेयम् । "जुद्रजन्तरः" (२।४।८), यथा दंशमश्रकम् । षानकृषात जुद्रजन्तरः । "येषाञ्च विरोधः शाश्वतिकः" (२।४।८), यथा, गीन्यामम् । "गवाश्वपस्तीनि च" (२।४।११), यथा गवाश्वं, दासीदामं, पुत्र-पौर्चं, स्त्रोकृमारं मृत्रपुरीष, मांसशीषितिमित्यादि । "विभाषा व्यवस्गत्यषाम् यञ्चन-पग्रक्षनस्त्रविष्ठं मृत्रपुरीष, मांसशीषितिमित्यादि । "विभाषा व्यवस्गत्यपान्यश्चन-पग्रक्षनस्त्रविष्ठं पुत्रविष्ठं निराषाम्", (२।१।१२), यथा स्रवन्यगीर्धं स्वन्यगीर्थाः, क्रक्ष्मत्रविष्ठं गीमहिष्रां विस्तिदिक्षपिञ्चलं तित्तिरिकपिञ्चलाः, षश्चव्हवम् श्वव्हवृत्ती (२।४।२७), इत्यादि ।

 मौतास्वर इत्यत्र समस्यमानाभ्यां 'पौतं' 'चम्बर' इति पदाभ्याम चन्चो हर्स्बिध्यते, एवं त्रिपदवहुती ही नी की ज्वलवपुरित्यच समस्यमाने भ्यो नी लं' 'उज्वलं' 'वपुः' इति पदेभ्योऽन्य: क्राणी बम्प्रते। एवं चतुपदयहत्रीहिरपि यथा चारूटा बहुनी वानरा यं स चाकदत्व बहवानरो त्रच इत्यादि । प्रायम: समानाधिकरणानां पदानां भन्यायंत्वे बहुतीहि: स्यादिति बीध्यम् । (३३३) सह मात्रा वर्गते ये। इसी समाद्यकः इति उदाहरता ग्रन्थकारेण त कदाचित भिन्नाधिकरणानां पदानासीय वहत्रीहि: स्थादिति मूचितम, अतएव धर्मो बनियंस्थासौ धर्मबनिरित्थादि। (सिज्ञान्तकौसुद्यान्तु 'ंव्यधिकरण।नामपिन पद्यभिभंकमस्य"। एवमेव गोयीचन्द्रः।) घषिच पौतास्वर् इस्ट्राइरता विशेषणविशेषायी: समासे विशेषणमेव पृथ्वे स्थादिति स्वितं, तेन पीता-स्वर इत्यत्र क्रस्वरपीत इति न स्थान । (२६८) प्रक्रमित्रीत्यादि उदाहरता क्वचित् क्तान्तिविश्रीवर्णं परमपि स्थादिति सूचितं, तेन अग्रग्राहितः आहिताग्रिः (पाणिनिः २।२।३०) इत्यादि । वस्तः पूर्वपदोत्तरपदव्यवस्था प्रथीगानुसारेण क्रिया । दितीया-दिविभक्त्यक्तान्यपदार्थे। बहुर्द्रीहिरिति चाचार्योर्भन्थते यथा—चारुटी वान्नी यंस भाष्ट्रवानरी त्रच:। जित: काभी येन स जितका सक्तपस्ती। उपनीतं भीजनं यसी स उपनीतभी जभीऽतिथि:। निर्गती जनी यस्नात स निर्गतजभी देश:। पीतास्वर इति षष्ठान्तान्यादार्थः। उपितो विद्वशी यिधान स उपितविद्वशी द्वव इत्थादि । "प्रथमार्थे तुन, यथा इन्टे देवे गतः'' इति सिद्धान्तकौ छदो । स्वनते तुप्रयमानान्यपदार्थीऽपि, यथा समाहक दलादि।

(१०७) षुर्णोऽदान्ते न इति हरिभाविणी हरिभाविनी, श्रीभावेण श्रीभावेन । रम्यविणा श्रीकामेण । रम्यपक्षेन रम्ययूना रम्याङ्का । ॥

इर्पा नजोऽनौ वाज्यसोः।

(नज: ६।, बनौ १॥, वा ।१।, बच्हसी: ०॥)।

नजोऽचि परै अन् इसे च अ: स्थात् से वा। नास्थन्तो यस्थासी अनन्तः नान्तः। अच्युतः नच्युतः। 🌵

^{*} इरिं भावयितुं श्रीलमस्याः इति मुक् ग्रुडिचित्तयं विस्थात् (१८२) णिनि कते, (६४१) अर्जेष, (२५०) नात्तवादीपि, समासंत्रिविहितन र्चेषा सहितस्य नस्य (१००) वा पलम्। श्वन, (२६६) धात् क्षीतादिति ज्ञापकात् स्याकृपसेः प्रायि कारकाणां समामः, तथाच कति कारकोपपदानां क्षिः समासवचनं प्राक् सुनुत्रते-रिति भाष्यम्। यियां भावी यस्याकौ यीभावः तेन योभावेण योभावेन, श्वन समासंत्राप्तिस्थादिसम्बन्धिनो नस्य वा णलम्। सभयन एकाच्कवर्गयुक्तशब्दसम्बन्धिभिन्नलात् विकन्यः। रस्यो विः पचौ यत्र तेन रस्यविणा, यिथां कामी यस्य तेन
योकामेणः सभयन एकाच्कवर्गयुक्तशब्दसम्बन्धिन् निन्यं प्रलम्। रस्यं पक्षं यिन्
तेन रस्यपक्षेन, रस्यो युवा यस्तिन् तेन रस्ययुना, रस्यं श्वदर्यक्षिन् तेन रस्याङ्गा, एतंषु
पक्षयुवाहवर्जनात् न पल्यम्।

[†] यन् च यथ यनी। यक् च इम् च यज्ञासी तथी:। समासे स्थितस्य नजः स्थाने यचि परे यन् इसं च यः स्थान् वा। नासि यन इति यनी नामः। नानि युनं नामो यस्य स यख्तः नख्तः। खुनमिति खुमानीमानि का। खुनधानीः कर्मरि (१८६) कप्रस्थवे खुनी नथर इति केचिन्, तन्मने न खुनोऽख्याः खुनभिन्न-इत्सर्थः। तथाच-नतसाष्ट्यसभावय तद्यस्य तद्यस्य।

भगाभस्यं विरोध च मजर्थाः षट् प्रकीतिताः ॥ दति प्राघः I

चटाइरणं यथा— न बाज्यणीऽबाज्यसः बाज्यणस्य द्रव्ययः । पापस्याभावीऽपापन्। न चटोऽघटः घटभित्र इत्स्यः । चनुदरी चलोदरीलर्थः । चनेश्री चप्रश्रसकेशीलर्थः । चसुरः सुरविशोधीलयः । पाणिनिः ६।३।३१,७४ ।

चत्र वाम्रस्टस्य व्यवस्थावाचित्वात् नाकादिवु चारेमो न स्मान् यथा---

३२६ । महत्तेकार्ये जातीयद्वासकरविशिष्टे तुतीच । (महत् १६), वारा, पारा, एकार्ये अ, जातीय—विशिष्टे अ, तुरारा, वारा, वारा, वारा, वारा, वारा,

महतस्त श्रा स्थात् एकार्थे, जातीयादी तुती च। महावलः । *

३२७ । पुंवत् स्त्युतापुंस्तः स्त्रियां ङ्यमानि-तत्वशसन्ततरादौ चारूप्य । (प्यत् ११, स्त्री ११, अतपुन्तः १।, स्त्रियां २।, इ. ४, प्रदर्भ २)।

नाकी नवेदा नक्षणय मकी नासत्य नचत्र नपाच नभाट्।

नपुंसकं वै नमुचिनंश्वच नार्दशमेतेषु वदिन घीरा: ॥ इति पाणिनिः ६।६।०५ । एकामर्थाः — न प्रकं (दुःखं) प्रश्चित्रिति नाकः । न वेशौति नवेदाः प्रमुन्प्रत्य-यानः । न जुलमस्येति नजुलः । न कामशौति नकः, क्रमेजः । न सत्यः प्रसत्यः, न प्रसत्यः नासत्यः । न चरतोति नवनम्, चौयतेः चरतेवां चन्निति निपातः । न पातौति नपात् ग्रत्यत्यानः । न साजते इति नसाट् क्षिवनः । न स्त्रौ पुमान् नपुंसकं, स्त्रौपुंस्थोः पुंसकमावी निपातनात् । न सुखतौति नसुचिः । न खनाकाश-मस्ति नस्त्या

* एकीऽथा यस म एकार्यसिखन् । जातीयय घामय कर्य विशिष्ट्य ममाहारे तिखान् । महत्यन्द्स तकारस याकार: स्थात् एकार्यं विशिष्य धर्मा हारे तिखान् । महत्यन्द्स (स्त्रीलिक्) तोकारस याकार: स्थादिल्थं: । जातीय इति (४८०) प्रव्यः, घाम कर विशिष्ट इति अन्दाः । महत् वल यस्थासौ नहायनः । एवं महती कीर्तिंश्यासौ महाकीर्तिः । विशेष्ययन्द्रपत्लं कर्मधारयेऽपि मम्बर्धत । तन महायासौ देवसीत महादेवः, महती चासौ कीर्त्तिंशितः महावीति । एकाथ किं, महाय पिछत्य महत्याख्यती, महतः पुतः महत्यन इत्यादौ न स्थात् । आतोयादौ त महती महत्या वा घासो महाघास. । महतो महत्या वा घासो महाघास. । महतो महत्या वा वा साम महाविशिष्टः । महतो महत्या वा विशिष्टः महाविशिष्टः । महतो महत्या वा स्थान् महाविशिष्टः । महतो महत्या वा स्थान् मृतः महस्रूत्यन्दः, यमहतो महत्या वा स्थान महस्रूता वा सामणी, इत्यादावभूततक्षवि न स्थादिति वक्तव्यन् । पाथिनः ६।३।४६, वार्त्तिक्ष ।

उन्नपुंस्तः स्त्रीलिङ्गः पुंवत् स्वात् एकार्षे स्त्रीलिङ्गे, ङग्रादी च. न तुरुषो। *

३२८ । नोप्ताककोङ्पूरग्याख्यायुम्ततिका-रार्धणित्तं जातिखाङ्गेपं त्वमानिनि ।

(न ११', कप्—वित्तं १।, नातिखाङ्गेय् ११', त ११', घमानिनि ७।) ।

[🔹] पुनानित पंतत्। उतः पुनान् बेन म चक्तपुंस्तः, एक धिक्रवर्षे यः स्त्रीपुंसयोर्वत्तंते स उक्तपंक्त इति यावन्। "भाषितः पुनान् युन समानायामाक्रताविकस्मिन् प्रविति-निनिर्त्त भाषितप्स्तः ग्रन्दः। तदेतदेव कयं भवति। भाषितः पुमान् यसिन्नर्थे प्रवृत्तिनिभित्ते स भाषितप्रंस्त्रग्रन्देन।च्यते । तस्य प्रतिपादको यः श्रन्दः सीऽपि भाषित-पंस्कः । '' इति काशिका। मन् भने यस्य स मसलः, तर भादिर्थस्य स तरादिः, -ग्रमुन्तथामौ तरादियेति ग्रमुन्ततरादि.। ङाय मानिन् चतयलय ग्रमुन्ततरादिय तन् तिस्मिन्। न रूपाऽरूप्यतिस्मिन्। एकार्ये इत्यनुक्तते । चक्रपंकाः स्त्रोलिङ्गमन्दः षंत्रत् स्थात् विभेष्यस्ती लिङ्गभन्दे परं, ङग्राटीच पर. न त्रुष्ये इत्ययं। यथा— सन्दरी भार्यायस म मुन्दरभार्यः, एवं मुन्दरी चानौ भार्याचिति मुन्दरभार्या। इत्यादौ तु सुन्दरीवाचरति (८४८) सुन्दरायते । श्वात्मानं सुन्दरीं सन्यते या सा (८८३) सुन्दर-मानिनी। सुन्दर्या भाव: (४३८) सुन्दरता सुन्दरतम् । शसन्ततरादिन् (४६२ –४८३)— तरस्तमस ६०स चतरां चतमां तद्या। इष्टेयम् इमन्कल्पौ दंग्शो देशीय इत्यपि। वहु. पाग्रस्री कथ्यसमस् चैत तरादय इति॥ यथा –(४६२) द्रयमनशीरति॥धेन शुक्षा ग्रुमतरा, इयनासामितिश्येन ग्रुक्षा ग्रुमतमा । (४६४) चित्रिय्येन ग्रुक्षा ग्रुम्बद्धाः। (४६५) चनयोरतिर्श्यन का किल्तराम्, चासानति श्रयेन का किल्तसाम् । (४६६) चति-ছে।। বিজয় লখিয়া লখীয়নী। (৪৩५) लघ्याभावी लघिना। (৪৩৩) ई.पट्ना ग्रुमा ग्रुभक्त या ग्रुभदे या ग्रुभदेशीया। (४००८) ईषटूना ग्रुमा वड्डग्रमा। पाच वडी: परिख्यासभावात् न पंत्रद्वावः । वहीय समन्ततगदावुपन्यामसुवस्यमाणति स्तप्रकरणे भ्रमन्तर।दिविधायकस्ववर्गनध्यपातानुरोधात्। (४०६) कुर्तिमता ग्रमा ग्रमपाणा। (४८०) सूतपूर्व्या ग्रभा ग्रभवरी। (४८१) ग्रभाया सृतपूर्वीगी: ग्रभारुष्य:, भव कथ्यवर्जनात् न पुंवत्। (४८२) वहीर्देडि वहुणी देहि दृति। उक्तपुंक्तः सिं, गङ्गा-भार्यः । तस्याः, ततः तस्यां, तत्र, तदा, तर्हि इस्यादौ तु (३२०) पुंवत् स्नेरिति पुंतत् । इिलिनोनां नहा: डालिबं, अग्रायौ देवता अस्य आग्रेय:, कुक्कृट्या अस्डं कृक्कृटा छं, सन्याः चौरं सगचीरं, सन्याः पदं सगपदं, काक्याः ग्रावकः काकग्रावकः इत्यादी प पुंबद्वावी वक्तव्य:। पाणिनि: ६।३।३४,३४,३६,४२, वार्तिकानि च।

जबन्तं, तस्त्राकस्य वा क्षेन ककारोङ्, पूरणीत्यान्तं, संज्ञाभूतम्, इम्-उम्-रक्तार्थ-विकारार्थ-वर्जं णित्तान्तच, पुंवन्न स्थात्, जाति-स्वाङ्गविद्यितंबन्तन्तु मानिन्वर्जे। *

३२८ । पूरणी प्रिया मनोत्ता सुभगा दुर्भगा चान्ता कान्ता वामना वामा चपला बाला सुमा सचिवा तनया दुहिट खा कल्याणी भक्ती।

(पूरची--भक्ती ।)। '.

एषु परेषु पुंवन्न स्थात्। 🌵

[†] प्रश्ने चेत्रादि इन्ते तसिन्। प्रश्नीत प्रश्नीमत्ययान्तः स्त्रीखङ्ग्रस्टः वितीयादिः। भित्रम्पद्भात्र कर्म्मविविति त्र पृत्त् सादेव । एषु चटादम् परंषु पृत्त् सादिव्ययः। भन केचित् चानातनयभौः साने चमात्रस्त्री, सा इत्यय स्त्रसा इति, वाला इत्यय क्ष्मला इति च भाषः, वाला-वाना-श्रस्टो च नाषुः। नेघद्ते इटभित्रभंवाना इति, रघो च इद्भित्तिरिति व्यष्ठि इति, भाषिविक्तान् पृत्ते स्त्रभाषः। ''स्त्रीलविव्यायान्तु हृद्धान्तः'' इति सिद्धान्तकौगुदी। मस्त्तनमा इति तु प्रस्ते तृ प्रस्तं तनयया यसा इति स्विक्तस्वािष्टः। पाणिनिः दाश्वेशः।

३३०। गवाबादे: खोऽन्ते गौखेऽनीयस:।

(गवाबादी: ६।, स्तः १।, चन्ते था, गौस्ये था, चनीयसः ५।)।

म्रन्ते स्थितस्य गोः श्राप ईप जपद्य स्वः स्यात् श्रप्रधानत्वे सति, नत्वीयसः।

भीतगुः ध्वस्तमायः कालतनुः। ईयसलु बहुपेयसी । *

जबादेसु (३२८) — वामोरू आयीः रसिकाभार्थः पाचिका-भार्थः षष्ठीजायः दत्ताजायः मैथिसीभार्यः । ब्राह्मणीभार्यः सुकेशीभार्थः । श्रमानिनि कि — ब्राह्मणमानिनी । युमादेसु वैयाकरणभार्थः सौवखभार्थः काषायकस्यः हैमसुद्रिकः । पृ

^{*} चाप्चार्टियस्य स चावारिः, शीय चावारिम तत्तस्य । गुगस्य भावी गीस्यं तिस्मिन्। न द्रीयस अनीयस तस्मात्। द्रीयमः परस्थ द्रेपः स्त्री न स्यादिश्यर्थः, एव निषेधः बहुत्री हार्वेव, (ई.यसी बहुत्री हेर्नेति वाचिमिति वार्त्तिकम्) तेन प्रेयसीमितिकाल: ऋति-प्रयक्तिः खल इत्यादि । पर्छे विषयस्याः अद्वेषिपपत्ती, एवं पर्धसारी प्रश्नेगारी इत्यादे-इंस्तिविधी वक्तव्य:। अत्र भावादिस्तीत्यानां ग्रहणात् न स्त्रीतिङ्गशब्दमातसः इस्तः. तिन पतिलक्की:, पतियौरित्यादि। प्रविद्वावस्य विधिनिषेधौ निष्य्य उदाइरित शीतग्रित्यादि। शीताशीतलागी: किरकी यस्त्रासी शीतगृयन्द्रः, ध्वला सायायस्य स भ्वसमायः, उभयव पूर्वस प्वद्वावः, पग्न्य इस्तः । ईवनं यहवीही (२३२) कप्रस्थयेन वाधितत्वाद्रीदाद्रतम्। काली तन्यैस्थासी कालतनुः, पूर्वस्य पुंतत्, परस्य प्रस्तः। एवस् भन्धवापि गौवले पञ्चगुः भतिसावः भतिस्त्रिशिखादि। बह्नाः प्रेयको यस्य स बइप्रेयसी कृषाः, पूर्वस्य प्वद्वावः, परस्य ईयसी वर्जनात् न इस्तः, (१४८) ईपः सेलीपः ध्यादेव । समासान्तविधेरमित्यत्वादव न (३३२) अत्रत्ययः, (श्रव पाणिमिस्वं यद्या "ई्यस्य" ५।४।१५६)। भाम ऋश्वनिधेधान् सुप्रेयसी कृलसिल्पच (१६०)क्रीवेस्तः इस्टनेनापि इस्दी न स्थादिति । एवं प्रयोगानुसारेचान्यवाषि । चव पुंवदावप्रकरणी विपट्वहुती ही मतर्भदी दृखते, यथा, चित्रानरतीगुः, नरती चित्रागुर्वा ; एवं दीर्घा-तम्बीजङ:, तन्बीदीर्घाजङ: प्रति केचित्। पपरेतु चित्राजरहगुरिति वदस्ति ; चित्रा-जरलीं गावी यस्थेति दलगर्नेऽपि चित्राजरदगुरिति भाषाम्। कस्पैधारयपूर्व्वपदेतु इसोरपि प्रंतत्, यया जरिवनगुः। पाणिनिः १।२।४८, वार्त्तिकसः।

[†] वाली सुन्दरी जह यक्षा: सा वालीक: (१०८), वालीक: भार्या यस्य सः। स्वं वित्तीतिरसिका (४९८), रसिका भार्या यस्य सः। पचतीति (८८०) पाचिका,

पूरखादी तु (३२८)--

३३१। हे पूरणीप्रमाणीभ्याम:।

(हे ७।, पूरवी-प्रमाखीस्थां ५॥, पः १।)।

त्राभ्याम् त्रः स्यात् है।

(२५८) ययोर्लोपोऽयुक्ती पी। कत्यागीपश्वमा रात्रयः, कत्यागीपश्चमा सत्रयः, कत्यागीप्रयः। मुख्यात्र पूर्णी पाद्या, तेन—पं

पाचिका सार्था यस्य सः। षक्षां पूरकी (४५५) वही, घडी नावा यस्य सः। दत्ता (इति संघा) नावा यस्य सः। सिंद्यलायां सना नैदिली (४२६), नैदिली सार्था यस्य सः। एतु पूर्व्यपदानामूबन्तादीनां पुंवहार्बानविदः। बाह्यकी (१६०) सार्था यस्य सः ब्राह्मकी सार्थः, सुकेशी (२६५) सार्था यस्य सः सुकेशीसार्थः, सुकेशी (२६५) सार्था यस्य सः सुकेशीसार्थः, स्वत्रान् वाति-स्वादः-विद्वितेवन्तं न पुंवत्। काल्यानं बाह्यकी सन्यते या सा ब्राह्मकामानिनी, मनधातीः (६८३,२५०) विन्, ईप्च। क्षत्र सानिनि परं पुंवहातः। व्याक्तरक्षं तेति क्षधीते वा या सा (४२६,४१०) वैदाकरकी, सा सार्था यस्य सः। सुन्दरः कशी यस्य सः स्वत्रः, स्वत्रक्षेयं (४३०,४१०) सौवन्नो, सा सार्था यस्य सः। कषाविष्य रक्ता काषायी (४२६), काषायी कन्या यस्य सः। हिस्तो विकारः (४२०) हैमी, सा सुद्रिका यस्य सः। एतेषु इस्-छस्-रक्त विकाराधं-वर्जनाव् पुंवहावः। सञ्चन पर-पदानां इस्तः। (६१३।४३) पाणिनित्वेष क्राह्मिकत्रा, बाह्मिवृत्रा, बाह्मिवृत्रा, बाह्मिवृत्रा, इत्राह्मिवृत्रा, इत्रह्मिव्याः

पूरत्यादौ परे (३२८) उदाहरिष्यन् मूत्रमाह ।

† पूरणी दितीयादिः। प्रमीयनेऽनया दित प्रमाणी। पूरणी च प्रमाणी च ताम्याम्। पूरणीवाचकात् प्रमाणीयन्दात्र मः स्थात् वहुनीही दल्यं। पद्यानां पूरणी पद्यमी (४५१)। कल्याणी प्रमक्षा पद्यमी रावियांसु राविषु ता रावयः कल्याणीपद्यमाः, भव पद्यमीश्रन्दं परे (१२८) पुंवज्ञावी नामृत्, पद्यभीशप्टादर्नन भग्यथी यथोलीं दित दूंपी लोपे, (२४८) भाप्। कल्याणी प्रिया यस्य स कल्याणी प्रियः, (१२८,१३०)। एवं कल्याणीमनीजः द्रलादि। सुष्यावित भव पूरणी-परे पुंवज्ञावनिविधे पूरणीपरात् भाष्ययी च उभयत्र सुष्या पूरणी याः सा। सुल्यल्य समस्वाचानाससाधारणस्कां राष्ट्रीणः कल्याणीपद्यमः द्रव्य समस्वाचानां राष्ट्रीणः

३३२। द्यृत: क:। (श-सतः ४।, क: १।)।

दीसंज्ञ का ट्रन्ता च का: स्थात् है। कल्या चपच मीकः पचः। राचिः पूरणी वाच्या चेति पूर्वेच सुख्यलम्। स्त्रीप्रमाणः। #

३३३। सहः सो वा। (सपः ६), मः १।, वा।१।।

सष्ट्य हे सः स्यादा।

सह मात्रा वर्त्तते योऽसी समात्रकः सहमात्रकः । 🌵

३३८। सक्ष्यंच्याः षः खाङ्गे।

(सक्ष्यच्याः ५।, वः १।, खाक्रे ०।)।

माभ्यां हे ष: स्यात् खाङ्गे। दीर्घसक्यः, पुण्डरीकवदिचिणी

योऽसाधारणधर्मः: रानिलंतचतासु रानिषु पश्चस्यां रानाविष वर्णते, भारी सुख्यलम् । तेन दति, परस्वीदाइरणे कल्याणपञ्चमीकः पत्तः द्रत्यत्र न पुंवद्वावनिधेधः, नापि अप्रत्ययः, द्रस्यभेन सस्वन्धः । पाणिनिः ५।७।११६ ।

† समायक इति (२१२) कः, भागेन वा सम्स्थाने सः । विचित्त मात्रा समितः समायक इति वाकः क्रवा वतीयातत्पुरुषं वदिन । एवं सम्मानम् उदरं यस्य सः संवदः स्थादि । के किं, सम्मान, सम्प्रदेशं सावदः समितः सावदः स्थादि । के किं, सम्मान, सम्प्रदेशं स्थादा । साविः साव्यस्य स्थावा संविद्या सम्मादि निसं वक्षस्यमिति । पाचिनिः ६।३।५२ ।

यस्यासी पुण्डरीकाचः। साङ्गे किं, दीर्घसकृष्टि मकटं। #

३३५ । दाक्रायङ्गले: । (दाक्षि ७), पहुले: ४।)। पञ्चाङ्गलं दाक्। प

३३६ | **दिचेर्मुद्धः ।**' (दिवे: ४।, स्वृं: ४।) । :

३३७। नोर्लेगितो तेऽच्छे।

(न्वी: ६॥, खोपौतौ १॥, ते ७।, प्रची ७।)।

नस्य लोपः स्थात् उवर्षस्य क्षोत् स्यादंचि ये च ते। हिमूर्ड: । §

अ सक्षि च चित्र सक्ष्य चित्रसात्। स्वस्य चात्रातः चक्रं स्वाक्रं तिसात्। स्वाक्रं लचणस्क्रं (२६५)। स्वाक्षवाचिम्यामाभ्यामिल्यं:। य-प्रत्ययय व ६त् (२५०) ईवरं:, चकार्रस्यितः। दीवें सक्ष्यती (ऊक) यस सः दीवंसक्षः। प्रश्वरीकविदित, प्रश्वरीकं सिताचीजं तन्वेव चतु अ सम्प्रवित, चती लच्चया तत्त्त्त्यं चर्यः, चत्रत्य व वर्षः, चत्रत्य व वर्षः, चत्रत्य व वर्षः, चत्रत्य प्रत्ये (२५८) इतारस्वीयः। विश्वात् स्वियं वर्ष्यित। उभ-यव उदाइर्षे चनेन प्रत्ययं, (२५८) इकारस्वीयः। विश्वात् स्वियं दीवंसक्ष्यो, सर्गनाचौ। दीवंसक्ष्ये इति मकटस्य प्राणिताभावादिति भावः। एवं स्यूलाविदिषुः। इति, परमसक्षित् परमाचि। पाथिनिः ५।४।४।११३।

[†] षजुलिशस्त्रात् यः स्थात् हे, दाकणि वास्यै। दाक कार्छ। पश्च प्रकुलयो यच तत् पश्चाङ्गुलं दाकः प्रकुलिसहमाश्यवं धानानां वित्तेपणकाष्ठमुस्यते'' इति गीथीचन्द्रः। स्त्रियान् वित्तादीपि पश्चाङ्गुली सिनत्। दावणि किं, पश्चाङ्गुलिइन्तः। एवं पश्चाङ्गुला शिक्षा, इत्यव (३६०) सङ्गाव्यादिति प्रस्तये, स्त्रियाम् पाप्। पाणिनिः ५।४।११४।

[‡] विश्व निश्व तत् तकात्। विनिध्यां परात् मूर्जुः वः स्थात् हे। पाणिनिः ५।॥११५॥।

[§] न च उच नृतयो: । कोषच भोत् च कोषोती । भच्च यथ भचंतिकान, ते इत्यस्य विशेषणम् । दो मूर्दानी यस्य सः दिम्दैः, (३३६) षप्रत्यये, भनेन नलोपे, (२५८) भकोषः । एवं चयो मूर्दानी यस्य स निमूर्दः । स्त्रियां विमूर्ते निमूर्त्वो राचसी । दिनेः किं, वहुमूर्द्धां । (४३१) न दंतसः वित्यनेन दाललानिषेषात् (१०८) नो लुप्फेऽधानित्यस्यापाप्ती नलोपार्थनिदम् । भोत्यया—वाइविः, वासस्य द्रव्यादि । केवित्न सात्यया—स्तायमुकं धान । पाणिनिः ६।धार४४,१४६ ।

३३८। सङ्ग्राया डोऽवहो:।

(सङ्गाया: ५।, ७: १।, भवशी: ५।)।

बहुवर्जायाः सङ्घाया डः स्थात् ही पञ्च षट् परिमाणं येषां ते पञ्चषाः, उपगताः दम्म येषां ते उपद्माः । बहोस् उप-बहवः । ॥

३३८। नाभेनीनि। (नाभेः प्रा, नावि अ)।

३४०। लोमीं उन्तर्विष्टिभ्यां।

(लोस: प्रा, चनार-वहिर्भ्यां प्रा) I

श्रन्तर्लीम: वहिलीम: । ‡

पद्मनाभः । 🕆

[⇒] नास्त बहुर्यंत सा भवहस्तस्याः । बहुयन्दस्य (१०१) सङ्गाविद्यानेन सङ्गाता-तिदिगात् भाभी निषेषः । पश्चपाः इति जमत्ययं (१२६) टिलीपः । एवं हिन्नाः भतुःपश्चाः इत्यादि । उपगता विंग्रतिर्यस्य स उपिक्षः, (१२६) उपत्यये विंग्रतिसे-लीपः, (१५६) ययीलीप इत्यकारलीपः । उपगता बह्वी येषां ते उपवहतः । एवस् उपगणाः । बहुवर्कनात् सङ्गोशत्तिसङ्गाया एव यहणं, तेन भटाभिः सह वसंते या सा साष्टा पश्चागत् इत्यत्न सङ्गोशित्तात् न स्यात् । भतप्य पाणिभी संख्ये इत्युक्तस्। श्रीभनं प्रातयंश्यतत् सुपातसित्यत्न "भव्ययादिरिति वक्तत्यम्" इति वार्त्तिकात् उपत्ययो वक्तव्यः । पाणिनः ५।४।७३ । भत्र "उप्तमकरणे संख्यायास्तरप्रविध्योप-संख्यानम्" इति वार्त्तिकस्वात् निर्गतानि जिंग्रती निस्त्रिशानि वर्णाणं, निर्गतस्त्रिंग्रती ऽङ्गिलियः निस्त्रिंगः खड्गः इत्यपि वक्तव्यम् ।

[†] नाभे: परी ड: स्रांत् ह संजायाम्। पर्जा नाभी यस्य, पद्मवत् नाभियंस्य इति वा, पद्मनाभी विष्यः। एवं वज्ञनाभः। ज्ञणी नाभी यस्य स ज्ञणीनाभः, ज्ञणीनाभि-रिस्त्ये, प्रव ज्ञणी इत्यस्य निपातनात् क्रस्तः। नामि किं, गभोरनाभिः। परिनदः नाभिरिति तु समासान्तविधेरनित्यलात् प्रसंजालाहा। "प्रच प्रस्थलवपूर्व्वात् साम् लीखः" (पाषिनिः ५।४।०५) इति सूवे 'प्रजिति योगविभागाद्यचापि, पद्मनाभः' इति सिज्ञानकीसुदी। क्रविद्याचापीति क्रमदीयरस्वम्, "एतदुपलचणम्, पद्मनाभिरिष् भवति' इति गोगीचन्दः।

[‡] पृथग्थीगात् नास्त्रोति नानुवर्त्तते। चन्तर्विक्थीपरात् कीस्रोडः स्रात्

३४१। नञ्दुःसोः सक्ष्मी वा।

(नञ्दु:सी: ४।, सक्यू: ४।, वा ।१।)।

द्यसक्षः चसक्षिः। 🕸

३४२ । ऋस् प्रजायाः । (भन्।१), प्रशायाः ५)।

श्रप्रजाः सुप्रजाः । 🕆

३४३। मन्दाल्यांच तु मेधाया:।

(भन्दान्यात् ५।, च ।१।, तु ।१।, सेघायाः ५।)।

श्रमधाः सुमेधाः मन्दमेधाः । ह

है। भ्रम्तर्गतानि जीमानि यस्य सः भ्रमालें।मः, एव विद्विं।मः। भ्रमालें.मा नासिका इति क्रमदीश्वरः। भाग्यां किं, दोर्घजीमा। पाणिनिः ५।४।११९।

- अ नञ्च दुय गुयिति तक्षान्। एभ्यः परान् सक्यो डः स्वाहा है। मान्ति सक्यि यस्य भीऽसक्यः भसक्यिः। एवं दः भक्ष्यः दः सक्यः, सुसक्यः सुसक्यिः। भव भस्ताद्धं एव यहणं, स्वाङ्गेतु (१२४) पूर्वेषैव घः। (भव सक्यि शब्दस्याने श्रक्तिः। क्षेत्रदेश प्रति कंषिन् पतन्ति इति भद्दो जितः। क्षेत्रदेश सक्तिः प्रवक् पदं स्वीकुरते)। जयदित्यादिमतन्य अस्ते व व पदिवेग लिखितम्। पाणिनिः ॥।।१२१।
- † नञ्-दः सभ्यः परस्याः प्रजाया अस् स्थान है। वेति नानवर्तते पाणिनिस्वे निस्यसिति कथनात्। नास्ति प्रजा यक्ष्याभी अप्रजाः, असि क्रते, (१५८) ययोर्लीप क्रयाकारक्षीपे, (१८५) अतसीऽधीरिति दीर्घः। एवं दुण्जाः, सुप्रजाः। इह नञादेर-व्यवक्तिकारसम्पेचितं, तेन सुगुणिप्रज कथादी न स्थान्। पाणिनः ५।४।१२२।

‡ मन्दय चलाय तद्यात्। मन्दाल्याथ्यां चकारात् नज्दःस्थय परस्या भेषायाः चस् स्थात् है। नास्ति मेषा यस्य सः चनेषाः, मृन्दरी भेषा यस्य सः सुनेषाः, मन्दरी भेषा यस्य सः सुनेषाः। मन्दा नेषा यस्य सः सन्देषाः। एवं दुर्श्येषाः। चनेन चस्. (२५८) चालीपः, (१८५) दीर्षः। इषापि नजादेश्यविद्वतीत्तान्तम्भिष्तं, तेन मन्दवहर्भषः इत्यादौ न स्थात्। लन्तवात् मन्दादौनां परच नानुकत्तिः। "नित्यमिष्यं प्रनामेषयाः" (५।४।१२२) इति पाणिनिम्वे 'नित्यग्रहणं क्राचिद्यवापि विधानार्थम्, चन्द्यमेषाः" इति तहीक्ताः। "मन्दान्याथां सेषायाः" इति चन्द्रवर्षमानस्वम्। चत्रपव "चन्द्रवर्षा दिर्थतः, यथा "यावि-पर्योगे दर्थतः, यथा "यावि-पर्यवेव ते राजन् मन्दवस्थान्यभेसः। चनुवाकहता वृद्धिनेषा स्वापदिर्थनी॥"

३८८ । धन्मदिन् । (धन्मात् ४।, धन् ११))।

सुधना । *

३४५ । नञ्सुनिव्युपाचतुरोऽः।

(नज्रु-ब्रिधि उपात् प्रा, चतुर: प्रा, म: १।) ।

एभ्यसतुर: ऋ: स्थात् हे। चनतुर: सुनतुर: । 🅆

३४६ । भान्तेतः । (भात् ४।, नेतः ५।) ।

नचत्रात् नेत्रयञ्दात् भ्रः स्थात् हे । सगनेत्रा रात्रिः । 🕸

क पूर्वपदामावि बहुवीहिरंव न स्वादित्यतः पूर्वपदात् परात् धर्मादन् स्वात् है। स धर्मी यस्य म सुधर्मा,—भनेन भन्, (२५८) भकारकीप, (१६४) दीर्घः। एवं सधर्मा विधर्मा बहुधर्मा इत्यादि। भव मतभेदो हस्यते यथा—"धर्मादिन्य् कंवलात्" (५,४।१२४) पति पाणिनित्त्वस्य "केवलात् पूर्वपदात् परो यो धर्माश्रन्दः तस्मादिन्य भवति न पदमस्दायात् भतिस्वदे बहुवीही न भवतीति" चन्द्रवंशान-ज्यादित्यादिकता व्याच्या। भहीनिदौवितोऽप्येवमाह। तत्मते परमः स्वी धर्मी यस्मात विपदे बहुवीही माभृत्; किन्तु परमः स्वधर्मी यस्मेत्य पत्तः स्वः स्वभीयो धर्मः स्वधर्मं प्रति कर्मधारयेण स्वधर्माग्रस्य धर्मान्तवात्। क्रमदीन्यरित्त त्यास्त्रते परमः स्वधर्मे वर्तते परमः स्वधर्मे त्यात्त्रते धर्मात्त्रते धर्मात् "चक्रत-समाद्यां विद्वत्याः" प्रति कर्मध्यप्तः, भत्तात् समादीन्यर्थः द्विव स्वात् स्वात् स्वात् परमः स्वधर्मे वर्तते परमसुधर्मः, भत्तपावितकुष्वधर्मः प्रत्येव स्वात् न तृ भन्। 'परमः स्वाभने धर्मोऽस्वित विपदे बहुवीही तृ परमसुधर्मा द्विव सवतीति' गीबीचन्दः। वस्तुतस्तु पाणिनिस्वस्थकेवल-श्रद्धी पर्मादित्यस्य विशेष्वपं, केवलात् भवतिमाभान्तरादिति तस्यार्थमिति कमदीभ्रतनं प्रतिभावि। योपदेवमतमित तथिति निक्षपपद्धभ्रवेष्ट्ययोगादनुभीयते।

[†] भन् च सुय विश्व विश्व विश्व विश्व विश्व विश्व ति कात्। एथ्यः परात् चतुर्वव्यात् चः स्थात् हे । म धन्ति चलारि यस्ताधी भचतुरः, मृष्टु चलारि यस्ताधी मुचतुरः । एवं चौषि चलारि वा परिभाषं येशं ते विचत्राः । विज्ञताश्वारों यस्य स्व विचतुरः । उपगताश्वारों यस्यः सा उपचतुरा । पाषिनिः ५।४।७० । "बुःपाध्यासुपसंस्थानम्" इति वार्त्तिकस्तः।

[‡] नचवात् नव्यववाचकादित्यर्थः परात् नेव्यवन्दादः स्वात् हे। स्रगः स्वामिरी नव्यवं नेता प्रापको यस्थाः सा राविः स्वानेवा, च-प्रत्येथे (१४८) जाप्। एवं प्रधानेवा

३४७ । सङ्घरासूपमानात् पात् पादोऽ हस्यादे:।

(सङ्ग्रा मु जपमानात ४।, पात् ।१।, पादः १।, श्रष्टस्यादेः ४।) ।

एभ्यः पादस्य पात् स्थात् हे, न तु हस्यादेः । दिपात् सुपात् व्याघ्रपात् । हस्यादेल् हस्तिपादः । *

३४८। कुसारेरीप। (कथारे: प्रा, ईपि ०।)।

कुक्थादेः परस्य पादस्य पात् स्यात् हे ईपि परे। (२२३) पात् पत् पौ। कुक्थपदी सतपदी। ईपि किं, कुक्थपादः। प

इमनेवा इत्यादि । यिग्रान् भववे उदिने गाविः प्रवर्त्तते तत् तस्या नेत । "नेतुनं धव उपसच्चानन्" इति वार्त्तिकम् ।

मह्या च सुय उपमानस्य तथात्। न इस्यादि रहस्यादिसस्यात्। एथः परस्य भकारान-पाद-भन्दस्य पाद स्थात् ही, न तु इस्यादिः परस्य। उपमानतया प्राप्ती इस्यादें। विश्वः। दौ पादौ यस्य स दिपात्। श्रीभनौ पादौ यस्य स सुपात्। स्थाप्तस्य पादौ यस्य स ख्याप्तपात्। स्थाप्तस्य पादौ यस्य स इसिपादः। इस्यादि-र्थया—इभी कटोलः कच्छोलो गच्छोलो गणिका सहान्। दासी कुग्रल इत्यष्टौ इस्यादौ परिकौत्तिताः॥ कटोलयख्डालः, गच्छोलो घान्यादाधारिवभिषः, डील इति भाषा। पाणिनिमते—कुद्दाल भज भज गच्छ कपीत— एतेऽपि इस्यादिगयपिताः। भव गृटादपीति वक्तव्यं, तन गृटपात् सर्थः। पाणिनिः प्राधारुष्ट्र, १४०।

[े] भव मूंपीति विषयसप्तभी, द्रीप कर्त्तव्यं प्रत्यथं:। क्याविव पादी यस्याः सा क्यापदी, प्रतं पादा यस्याः सा जनपदी, भनेन पादस्य पाद. (२६५) द्रेप्, (२२३) पदिवः। क्यादिर्धया—क्याष्टनालाः जनस्वापेषाः विष्णः जितिहींण-कृषी च क्याः। निराद्रम्चीणकदिकदास्यी विः ग्र्कारी वै कलसीऽपि विति ॥ "क्याष्टनालणतः सिनित्वकण्यक्षिणितिकलसाः। विनिर्द्धसक्तस्यीग्रकरदास्यकद्रीणगोधाय॥" दित गोयीचन्द्रः। भव भादंशस्स्याने भवंशव्यः विष्णुणव्यस्थाने स्विनाव्यय पिततः, सक्तत्यव्यः द्रत्यादिष्य। भयं गयी-विश्वतिसंख्यकः, पाथिनीये गयपाठे तु हाविष्णत्रस्थाः। पूर्वस्वेषवे पाद-भादेशिको नियमार्थाऽयं, तेन दूर्पीऽभावपचे न पाद-भादेशः। पाथिनिः प्राधारहर ।

३४८ । व्यतीहारे चिः पूर्वे वेंाऽनचा वा।

(स्वतीहारे का, चि: १।, पूर्ज: १।, घं: १।, धनवि छा, आ।१।, वा।१।)।

व्यतीहारे यो हस्तसात् चिः स्थात्, पूर्वस्य च घीः स्थात्, श्रा वा नलचि ।

क्रीषु क्रीषु रहीला यत् युदं प्रवत्तं — क्रेयाकेशि। दण्डैय दण्डैय प्रद्वत्य यत् युदं प्रवत्तं — दण्डादण्डि। मुष्टामुष्टि मुष्टीमुष्टि, बाहाबाहित बाह्नबाहित। अपि तु, अस्यसि। *

द्रति हः।

बहुनुहो, (पाबिनि: ५।४।१३४) नायाया नानि:, (पाणिनि: ५।४।१३२) धनुषी धन्तन्, (५।४।१३३) वा संज्ञायाम्, (पाणिनि: ५।४।१२६) प्रसंभ्यां नातुनी जुः, (५।४।१३०) नहाँविभाषा, हत्यादि प्रयोगानुसारात् वक्तव्यम्। यथा—युवनानिः, विश्वधन्ता, सत्यन्ता सत्वधनः, प्रथमना प्रथमनः, प्रज्ञानिः, व्यक्तिः

[#] परस्परमेकजातीयिकयाकरणं व्यतीहारः, तत्र यो बहुवीहिलत्यरपदात् विः स्थात्, चकारित् श्रव्याय्यं (८४), दकारस्थितिः । चौ क्रते पूर्व्यपदस्य श्राकारः, पर्वे दीर्घय्, श्रांच परेतु न श्राकारः, नापि दीर्घ दत्ययंः । कीशाक्रीय द्रष्टाद्राष्ट्र स्थाय पूर्व्यपदस्याकारः, परपदात् चिः, (२५८) श्रकारलीपः, (२४६) कीर्नुक् । एवं सृष्टिभिर्मृष्टिभिः प्रहत्य यद युद्धं प्रवत्तं सुष्टासृष्टि सुष्टीसृष्टिः वाहभिर्माह्मिः प्रहत्य यद युद्धं प्रवत्तं सुष्टासृष्टि सुष्टीसृष्टिः, वाहभिर्माह्मिः प्रहत्य यद युद्धं प्रवत्तं वाह्यव्यस्य तु विश्वेषत्त्रत्तात् (२३०) स्वतारस्य श्रोकारः, पचे दीर्घः, परपदात् चिः, वाह्यव्यस्य तु विश्वेषत्त्रत्तात् (२३०) स्वतारस्य श्रोकारः, (३५) श्रीकारस्य श्रवः । स्थिभिः श्रवः यद युद्धं प्रवत्तात् । स्वत्यहार्षे श्रवः परपदात् चिः पूर्वेष्टस्य तु न श्राकारः नापि दीर्घः श्रच्यत्तात् । स्वत्यहारम् श्रवः यद्धं व्यतौद्यारे यो हस्तवेषायं विधिरिति, तेन कायस्य कायस्य रग्रदीता रघे च स्थिता स्थादी न स्थात् । स्वत्यवं समासः । तनापि सध्यत्तस्य प्रस्वविषये च स्थात् स्थात्वार्थः समासः । तनापि सध्यत्तस्य स्थाविषये समासः । तनापि सध्यत्तस्य स्थाविषये हत्ते तिनेदिनिति सद्ये श्रवः प्रवत्तस्य स्थाविषये । सद्ये किं, हत्येष सुष्ववेषदं युद्धं प्रवत्तम् । स्विते किं, हत्येष सुष्ववेषदं युद्धं प्रवत्तम् ।

विभाषास्य-समासः (य)।

परमयासावाला चेति -- परमाला। संयासी चित्रासा-वानन्दयेति --- सचिदानन्दः । अ

३५०। कोङादिः पुंवत् यजातीयदेशीये तत्वे त्वजात्याच्यः।

(को झादिः ११, प्रंवत् ११), य जातीय देशीये अ, तले अ, तु ११।, प्रजालाख्यः १।)। को ङ्पूरण्यादिः पुंवत् स्थात् यादी, तलयोस् जातिसंज्ञावर्जाः। पाचकस्त्री पञ्चमभार्य्याः। पं

मयूरव्यंवकायाः, (पाणिनिः २।१।०२) माकपार्थिवायाय (शाक्रपार्थिवानेनां विद्यये उत्तरपदस्त्रीपसंख्यानमिति वार्त्तिकम्) निपायने। व्यंस्यति इत्तयतीति व्यक्ति पुर्तः, विपूर्वादंसभातीर्थकः, मयूर्यासौ व्यंसकस्ति मयूर्यंसकः। एवं उद्धर उत्तरं इति यसां कियायां सा उदरीत्स्त्रना, उद्धनविभमा, उत्पतिपता, भश्रीतिपवता इत्यादि। याकः प्रक्तिः वत्सरो वा प्रियो यस्य सः माकप्रियः, माकप्रियः पार्थिवः माकपार्थिवः, निपातनात् मध्यपदस्तेषः। एवं श्रीइर्धनामा स्थातः श्रीइर्धन्यामा स्थापिकः, निपातनात् मध्यपदस्तेषः। एवं श्रीइर्धनामा स्थापिकः श्रीइर्धन्यामा स्थापिकः, निपातनात् मध्यपदस्तेषः। एवं श्रीइर्धनामा स्थापिकः श्रीइर्धन्यामा स्थापिकः स्थादि। स्थाप्तः, भेदनामा सङ्गीधत् सेवन्द्रस्तिः, सुख्युक्ता नासिका सुख्यनास्तिः स्थापिका इत्यादि। स्यूर्व्यस्तादः। प्राक्तपार्थिवादिय भाक्तिगणः, प्रथोगात्रसारेण वोद्यसः, तेन भव्यो राजा राजान्तरम्, प्रक्रियनः, भक्रतोभयः, उद्यावचं, विदेव विश्वाविक्तियादि स्थूर्व्यस्ति। स्थाप्तावादार्यादम् स्थापिकादम्यस्तिम् ।

† क उक् यस स कोङ्, कोङ् भादिर्धस स कोङादिः। यस नातीयक देशीयम तमकिन्। तस लय तलंतिकान्। जातिस भास्याभ नाकास्थे, न विस्ते

^{*} उत्तरपदिवगु-इन्द-बहुनीहि-वनं पदवहले समासी नासीति दुर्गसिंह-क्रमदी-यरी । तन्मतमस्त्रीकृत्रनं विभिः पटैरिप सर्गक्षाग्यमाह सिंददानन्द ६ति । भानन्द-यतीति भानन्दः इति विशेष्यं पदं, त्रयाणां विशेषणले समासानुपपत्तेः । कुलकुत्तः पटुविस्पष्टः इत्यादावुभयस्य विशेषणलेऽपि विशेषपित्रीवणभावस्य सामचारत्वात् एकस्य विशेष्यत्वं कन्याते । विशेषणस्य तु पूर्व्यस्थितिरैव, तेन ब्राह्मणदीर्घः ,एवं न स्थात् । कडारादिश्रन्दासु वा पूर्व्यं प्रयोज्याः, (पाणिनिः २।२।३८) तेन कड़ारजैमिनिः जैमिनि-कडारः इत्यादि । कड़ारादिश्रंषा—कड़ार जठर गडुल काण्यां स्वीड़ खन्नः कुत्र स्वति ।

३५१। दित्रप्रष्टाधिका दात्रयोऽष्टा-स्तिद्गा-द्येऽन्यषटके त्वनशीतौ वा।

(दिचाप्रशिधिका: १॥, दाचयीऽष्टाः १॥, विद्यायी ७।, भन्यषट्को ৩।, तु ।१।, भनभीतौ ७।, वा ।१।) ।

एषामेते क्रमात् स्युः दशादि निके, चलारिं श्रदाद् िषट्के श्रशीति-वर्जे तुवा।

हाधिका दम हादम, चयोदम, अष्टादम। हाचलारिंमत् हिचलारिंमत्। अनमीती किं हामीति: ।

जात्याख्ये यत्र क्षोङादो सीऽजात्याख्यः। (३२०) पृंवत् स्तुग्रत्यं स्वेयनेन जक्रपृंक्तः य कोङादेः पृंवद्वावप्रसक्तौ, (३२८) नीशाककोङित्यनेन निर्धेषे, कर्म्यधारयादौ पुनरनेन विधिः कियते, तेनायमण्यः—तिहतस्य क्षकस्य वा केन कक्षारीङ्, प्रचौप्रत्ययानस्, क्षाख्यास्तम्, इम् जम्-रत्नायं-विकारायंवर्के पिनद्वितानं, जाति-स्वाद्व-विदित्वन्त परं यदः जक्षपृंक्तः भवति, तदा एकथिं स्वीनिङ्गे परे कर्म्यधारयादौ पृंवत् स्यात्, जातीय-देशीय-प्रत्यये च परे पृंवत् स्यात्, तत्वथीः पर्यान् जातिमं ज्ञावजं जक्षपृंकः कोङादिः पृंवत् स्याद्त्वयंः। जातीयप्रत्ययं पृंवद्वावप्रसङ्गाभविऽपि क्षमेन विशेषविधानम्। यया—रिवता चासौ भायो चित पञ्चमभाय्यो। एवं दत्तभाय्यो, मेथिनभायो, वाक्षप्रभायां, पञ्चमी वासौ भाय्यो चित पञ्चमभाय्यो। एवं दत्तभाय्यो, श्रिष्टः) रिक्ततः रिस्किभाय्यो, (४६०) रिक्ततः प्रत्याम्यायां, (४६०) रिक्ततः प्रत्याच्यां, वोङ्गावियाः (४००) रिक्ततः प्रत्याच्याः स्वादि। क्षाद्याच्याः स्वादि। क्षायाः स्वादि। क्षायाः स्वाद्यः पृवद्वावित्यादि। किचित्रु कोडादिरित्यनेन येषां पृवद्वावे निषद्कि राह्यने, तेन (३२८) पूर्णोप्रिथेत्यादौ निष्येऽपि कर्म्यारये पृंवद्वाव द्वावः, यथा कल्याणपञ्चभौ महारमी महानवभौ कल्याणप्रिया द्वादि।

कोङादिः (३२८) नीमाककोङ् इत्यादिस्त्वे ये पाँउताः, पूरण्यादिः (३२८) पूरणी-प्रियेत्यादिस्त्वे थे पाँउताः, ते प्वत् स्युः ये नातीयदेशौथे च परे, तः ते परे ग् आतिवाचकस्य मजावाचकस्य च न स्थादित्ययः इति रामनक्वागीशः। पाणिनिः हाश्वररा ''त्वतक्वोगीयावचनस्य'' इति वात्तिकस्।

दौच चयय षष्टचते दिवाष्ट्र, दिवाष्टिभः सहिता ऋषिकाः दिवाष्टाधिकाः,
 शाक्षपार्णवादिलान् भद्रितपदस्य श्रीपः, दन्दान् परस्याधिकश्रव्यस्य प्रस्येकीन सस्वत्यात्

३५२। वैकोनस्वैकाटुकान्त्रौ सङ्घरायां।

(वा ।१।, एकीनस्य ६।, एकाइ-एकाझी १॥, सङ्घायां ७।) ।

एकाइविंग्रति: एकाव्यविंग्रति: एकोनविंग्रति: । *

३५३। सख्यहोराज्ञः षः षगे च।

(सन्बि-अहन्-राज्ञ: ४।, ष: १।, ष-गे ०।, च ।१।)।

एभ्यः षः स्थात् ये षे गे च। प्रियसखः परमाहः महाराजः। १

द्राधिक-वाधिक ष्रष्टाधिका दृश्यं ♦ दाष्यं चय्य ष्रष्टाय दाव्योऽष्टाः, दृश् षाद्रो येषां ते दृशाद्याः, व्याणां दृशाद्यानां समाद्वारः विद्रशाद्य तिसान्। षसा समृद्दः षट्कं. यत्यञ्च तत् षट्कञ्चेति तिसान्। न त्रशीतिरनग्रीतिकस्याम्। विद्रशाद्यकर्दन दृश्-विश्वति-विश्वत्-श्रव्दानामेव यहणम्, ष्रम्यथा षत्यष्ट्रके षश्रीतिवर्जनमनथेकं स्थात्। तेन द्राधिकव्यधिकाष्टाधिकानां स्थाने कमात् दा व्यम् षष्टा दृश्येतं श्रादृशा भवित्य दृश्यक्टं विश्वतिश्रव्दे विश्वत्यक्टे च परं, प्रकरणात् कस्त्रंधार्यः; चलारिशत् पञ्चायत् षष्टि सप्तति नवतीति पञ्चस् परेष् वा स्थित्यर्थः। द्राधिकायते दृश्य चिति दादश, वाधिकायते दृश्यचिति त्रयोदश्यष्टाधिकायते दृश्यचित्रति त्रष्टादश्याकपार्थिवादिलात् श्राधिकायते दृश्यचेति त्रयोदश्यष्टाधिकायते दृश्यचित्रति, द्राविश्वति, प्रश्वति, प्रश्वति, द्रावितिः। द्रिष्ठाविश्वति, द्राविका द्रश्य यत्र सद्राविकद्रश्यद्रशादी न स्थात्। श्रन्यस्वद्रक्षेद्रिति किंत्र, द्रिश्वतं, दिस्द्रसिन्यादि। पाणिनि: (१३।४०,४८,४८। प्राक्शतादक्रव्यक्तिवाित्यातिक्षते, द्राविकावः।

ु एकीनस स्थाने एकाइ-एकाद्री स्थातां सङ्गावाचके परे थे। एकीना चाभी विंग्रतिस्ति एकाइ विंग्रत्यादि। वाग्रन्टस्य व्यवस्थ्या सङ्गा इह विंग्रत्यादिरेव, तेन एकीनास्य ते दम चेति एकीनदम इस्त्रेव। 'ययि संख्यायासिति सामान्येनीकं तथापि विंग्रति विंग्रत् सल्वारिंग्रत् पञ्चाम् विष्ट सप्ति स्थाति नवति मत सहस्रा- दावेव परेऽनाझावादेशी भवतः, नलन्यस्थान् संख्याग्रस्ट परेऽनाभधानात्" इति गोयौचन्दः। थ किं, एकीना विंग्रतिर्थव स. एकीनविंग्रतिरित। पाणिनिः ६।३।०६।

† सस्ताच भाइय राजा चेति तस्नात् । प्रिय्यासी सस्ताचेति प्रियसस्तः, भानन सः (२५८) इतारलोपः । स्त्रियां क्लियां क्लिय्दौपि (२५०) प्रियसस्त्री । परमञ्जतत् ऋइयेति

३५४। सर्वेकरेगसङ्घातसङ्घाव्यान्त्रकान्त्रे-कोऽङ्गोऽङ्गः।

(सर्च-व्यात् ४। म ।१।, एकात् ४।, न ।१।, ऐक्ये ७।, भक्त: ६।, भक्त: १।) ।

एभ्य: परस्य अहन् इत्यस्य स्थाते अज्ञ: स्थात् यादी नलेकात् न चैक्ये। *

३५५। प्राग्वत नो गोऽतोऽक्लस्य।

(प्राग्वत् ।१।, न. ६।, या: १।, श्रतः ५।, श्रप्तस्य ६।) ।

सर्वाह्व: पूर्वाह्व:। एकान् एका है:।

यत इति किं, विभिरहोभिर्जातः वाक्रः। †

परमाहः, पप्रवैि, (२२०) नलीपे, (२५८) अकारलीपः, भहानागां पुस्तमिश्वानात्। महांयाशौ राजा चिति महाराजः, (२२६) महतसस्य भाकारः, वप्रत्यये, नःलीपे, भकारलीपः। स्त्रियां महाराजी, "महाराजी तु प्रायो नामयहणे स्त्रीलिङ्काषापि यहणित्यस्य प्रायिकलात्" इति कमदीश्वरः। "महती चासौ राजी चिति" इति गोयीचन्दः। "लिङ्काविश्रिष्टपरिभाषया भित्रिलात्रेहं मद्राणां राजी मद्रराजी" इति भद्रीजिदोचितः। एवं कृषस्य सखा कृषस्यः, नयाणां सखीगां समाहारिक्षसस्यं। यादौ किं, कृषाः सखा यस्य स कृष्यस्यः, कृष्णसखा इति तु भाष्यकारः (१२६ म्वटीका द्रष्टया)। भत्रप्त "वायुः सखा यस्य स वायुसखा" इति गोयीचन्दः। पाणिनः ५।४।४९।

* सर्वय एक देशय सङ्गातय सङ्गाच व्यय समाहारे तसात्, न एको मैक-ससात्, न ऐकं नेकं तसान्। चक्र एके कभागे वर्षमान: पूर्व्वादिरेक देश:। एथः परस्य चहन् शब्दस्य चक्र दत्यकारान्त चादेश: स्थात्, नतु एकात्, न च समाहारे दिगी। पाचिन: ५।४।८८।

† प्राव्यदिखनेन (१००) षु : चन्कुपूनरियौति च प्राप्तं, तथाच — वकार-रेफसदयं-युक्तात् चरन्तात् परस्य चक्र दलकारानस्य भी यः स्थात् चन्कु-पु-धन्तरिप्रयोव्ययः । सर्व्यद्य तत् चहचेति सर्व्यादः, पूर्वयः तत् चहचेति चूर्वाहः । एवं
प्राहः चपराहः दलादि (१५१,१५४,१५५)। एकच तदहचेति एकाहः (१५१,
११०,२५८)। चप्रक इति तद्वितायेदिगुः, प्रत्युदाहरवायेमिहीकम् । चक्रसेलकारान्

३५६। कौटग्रामात् तच्णः।

(कौट-ग्रामात् ५), तथ्या ५।)।

कीटतचः, (ग्रामतचः)। *

३५७। जातमहर्षेडादुच्णः।

(जात-महत्-ब्रह्मात् ५८, उत्था. ५१)।

जातीचः, महोचः, वृदोचः । १

३५८। शुनोऽत्यप्राग्थुपमानात्।

(ग्रन: ४।, पति-प्रप्राण्युपमानात् ५।)।

अते: प्राणिवर्जादुपमानाच ग्रनः षः स्थात् यादौ । त्राक्षषे दव खा त्राक्षषेखः। प्राणिनस्तु,व्याघदव खा व्याघ्रखाः

इति किं, दीर्वाणि चड़ानि यस्यां सा दीर्घाको अरत्। प्राग्वदिति किं, सङ्गाताङः व्यक्तः। पूर्वव नैको इति किं, दयीग्क्रोः समाचारः डाइः। एतेषां पुस्तमभिधानात्। पुण्याहमिति, तुनपुंसकं "चपथपुण्याहे नपुंसके'' इति जिङ्गानुशासन विश्व स्वात्। एवं सुदिनाइमिति। "पुण्यसुदिनाभ्यां क्रीवें" इति असटीश्वरस्वस्। पाणिनः ८।४।०।

* प्रान्यां परात् तचन्त्रव्यात् षः स्थात् यादौ । कृष्यां भवः कौटः कौट्यासी तचा चिति कौटतचः , ''स्वतल्लकर्मको तो न कस्यचित् प्रतिवज्ञः' इति गोथीचन्द्रः । यानस्य तचा ग्रामतचः ''बङ्गा माधाग्ण इत्यथैः'' इति गोथीचन्द्रः कौट्यामात किं राजतचा । पाणिनिः प्राधास्प्र ।

† एभ्यः परात् जवन्मन्दात् षः स्थात् यादी। जातयासी जव। चेति जालीव एवं सडीचः, तक्कीचः । यादी किं, सडान् जवा यस्य स महीवा थियः। पाणिनि.५।४।००।

‡ न प्राणी भ्रप्राणी, भ्रप्राणी चासी उपमानश्चित भ्रप्राण्युमानं, भ्रतिय भ्रप्राणु-प्रमानश्चिति तक्षात्। भाक्षणतेऽनेनिति भाक्षपं, भाकुड्सी इति ख्यातः। भाक्षपं श्रव्देन सम्राणु-प्रमानात् प्रात् अनुशब्दात् यः। भतेन्, ज्ञानमतिकान्तः भ्रतिश्चः वराष्टः, भितशी सेवा। व्यावशब्देन सम्याय व्याव्यत् उप्यते, व्याव्यासी शा चेति व्याव्या, भाष्युप्रमानात् न षः। पाणिनिः ५। ॥ १८ १८ १८ ०।

३५८। पूर्वीत्तरसगाचानतेः सक्षः।

(पूर्छ-उत्तर-स्मात् ५।, च ।१।, भनते: ५।, सक्षु: ५।) ।

एभ्यः पूर्व्वोत्ताच त्रतिवर्ज्ञात् सक्यः षः स्यात् यादौ। पूर्व्वसक्यं। *

् ३६०। देशात् ब्रह्मणः कुमहद्भगान्तु वा।

(दिणात् प्रा, ब्रह्मणः प्रा, किनमहद्वां प्रा, तु।१।, वा।१।)।

कुलितो ब्रह्माकुब्रह्मः कुब्रह्मा। 🕆

३६१। सरोऽनोऽयोऽस्मनः संच्याचात्यी:।

(सरम् अनम् अयम् अस्मनः ५ा, मजा-जात्यो. ०॥)।

महानसं उपानसं लोहितायसं पिण्डाश्मः श्रमताश्मः । 🕸

्र प्रविय उत्तरथ सगय तथात्। नामि भतिर्यंत मोऽनितससात्। पूर्व्वी-त्तरसंगेश्यः अप्राण्युपमानाच सक्ष्यं षः स्थात् यादौ । पूर्वेच तत् सक्ष्यं चिति पूर्वे-सक्ष्य । एवम् उत्तरसक्ष्यं । पूर्वीत्तरश्रन्दौ अवयववाविनौ । सगस्य सक्ष्य सगसक्ष्यं । फलकमित्र सक्ष्य फलकसक्ष्यं, शिलाधक्ष्यं । प्राण्युपमानात्त् व्याघसक्ष्यं । भतेमु सक्ष्य प्रतिकान्त. अतिसक्षिः । पाणिनि. ५ । ४ । १८ ८ ।

† देशवाचकान् परान् बद्धाण: ष. स्थान् यादी, कुमडद्वाां परान् वा / भवन्तिप् बद्धाः भ्र-न्तिबद्धाः, सुराष्ट्रवृद्धाः । देशात् किं, देववृद्धाः नारदः । सहायामौ बद्धाः चिति सहाबद्धाः सहाबद्धाः । बृद्धन्थञ्दाऽत बृाद्धायवाची । पाणिनिः ५।४।४००,१०५।

‡ सरम् च चनम् च अयम् च चयम् च चयम् च चित तसात्। सभा च नातिय समानाती तयीः। संज्ञानचणमाह गीथीचन्टः "थी यीगवित्तिभितरवापहाय विभेषे वर्तते स एव संज्ञाच्यां नाभती च । नातस्य सरः जालमरमं संज्ञा। ननस्मिति तु भहीजिद्दीनितः। चन्द्रसरो हैतवनभरः चन्नीटमरः इत्यादी तु न भवित। मन्द्रक्सरसं ज्ञातिः। महच्च तत् चन्येति सहानमं सजा। उपगतमनः उपानमं ज्ञातिः। सिह्तक्सरसं नातिः। सिह्म तत् चन्येति सहानमं सजा। उपगतमनः उपानमं ज्ञातिः। सिन्द्रक्ष च्यम प्रिकारमः संज्ञा। चन्द्रसर्था क्रातिः। पिन्द्रक्ष च्यम प्रिकारमः संज्ञा। चन्द्रस्य चन्द्रस्य स्थापिकः। प्रिकारमः संज्ञा। चन्द्रस्य चन्द्रस्य स्थाप्तः। स्वानात्याः नातिः। संज्ञानात्योः नितं, दीर्धसरः हृत्। इत्स्वायः सम्राग्रमा। पाणिनिः ५।॥८४।

३६२। सर्वेकदेशसङ्घातपुख्यवर्षादीवाद्राचेः।

(सर्व-दीर्घात् ५।, रावे: ५।)।

रावेरेकैकदेशे वर्त्तमानः पूर्व्वादिरेकदेशः।

पूर्वरात्रः ग्रपररात्रः। *

३६३। गोरतार्थे। (गी: ५१, अतार्थे ७)।

गोग्रव्हात् ष: स्थात् यादी,'न तु तार्थे । परमंगवः। 🙌

३६४। नाबोऽङ्गीत् ग्रेच।

(नावः प्रः, चर्जात् प्रा, गे छा, च ।१।)।

त्रर्डात परात् नीयव्हात् षः स्थात्, श्रतार्थं गेच । श्रर्डनावं । क्ष

३६५। खार्थी वा। (खार्था: ५१, वा ११)।

अर्डखारं अर्डखारी। §

इति य:।

मर्ब्य एकदेशय सङ्गातय पुख्य वर्षाय दीर्घय तक्षात्। एथ्य: परस्या: रावे: ष:
 स्थात् यादी । सर्व्या चासी राविकेति सर्व्यरातः । रावानानां पुंच्यतिभागात्।
 पूर्व्या चासी राविकेति पूर्व्यरातः रावे: पूर्वभाग इत्यर्थः, एवमपररातः, मध्यरातः,
 सङ्गातरातः, पुख्यरातः, वर्षाणां राविः वर्षारातः, दीर्घरातः । पाणिनिः ५।४।८०।

[†] परमधासी गौबेति परमगवः। एवं पुनांघासी गौबेति पुंगवः। राज्ञी गौः राजगवः। चयाणां गवांसनाइ।रः तिगवं, षचां गवांसनाइ।रः षङ्गवं। पच गावी धनमस्य पचगवधनः। चतार्थे किं, पचमिगींभिः कौतः पचगुः। पाण्यिनिः ५।४।८२।

[ू] अब सूर्व परच च यादेरतुइत्ताविष भिभ्रानात् चर्छात् परात् नौशब्दात् ये एव सः स्नात्, पुन. गे च इति स्वथनात् नौशब्दात् यः स्नात् भतार्थे गे च इत्यपरोऽधीं वोद्यतः। भत्रपत् पाणिनौ सूचदयम्। चर्द्यच तत् नौश्चित चर्दनावं क्रीव्यमिभ्रानात्। चर्चात् किं, दौधेवी:। एवं विनावं दिनावधनः। तार्थेत्, पद्यभिः नौभिः क्रीतः पद्यनीः। पाणिनः ५।॥८८,१००।

श्रद्धात् परात् खारीशव्दात् ष: स्वात् वा ये । खारीशव्दात् ष: स्वात् वा पतार्थे
 गे प इति च पर्थ: । पर्वक्क तत् खारी चेति पर्वखारं, कीवलमिभागात् । पर्च पर्व-

तत्युदव-समासः (व)।

क्षणामायितः क्षणायितः। * .

३६६। व्यं पूर्वं। (वंश, पूर्वंश)।

परं व्यं पूर्वं स्थात् से सति।

खारी । एवं विखारं विखारि, हिखारधन: हिखारीधन: । तार्थे तृ, हाश्यां खारीश्यां क्रीतः हिखारि: । पाणिनि: ५।॥१०१ ।

* हितीयादिविभन्न्यलपदपूर्व्वकाणां समासक्तपुक्ष इत्युक्तं (३१८), क्रमेणीदाइरित क्रणमात्रित इति । एवं क्रियाविश्वेषण हितीयालादिरिय यदा — नित्यभीकः, सन्दगामी, मासं व्याप्य स्थितः मासस्थितः इत्यादि । पाणिनमते तु क्रियाविशेषणस्थले सुप्सुपेति समासः, क्रियाविशेषणस्य कारकलेनानद्वरैकारात् ।

नञ् इत्यययस्य स्यायनेन सइ समासी नञ्तत्पुरुषः (पाणिनिः २।२।६), स च प्रथमान्त्यदपूर्वक एव । यथा न बाद्यणः भवाद्यणः । नञ्च दिविधः पर्यदासः प्रसञ्चप्रतिविधय । तथा च — प्रधानतं विधेयं च प्रतिविधेऽप्रधानता । पर्यदासः स विशेयो यवीत्तरपदेन नञ् ॥ भप्रधानतं विधेयं च प्रतिविधेऽप्रधानता । प्रसञ्चप्रतिविधेऽपी कियया सइ यव नञ् ॥ भप्रधानतं विधेयं च प्रतिविधे प्रधानता । प्रसञ्चप्रतिविधेऽपी कियया सइ यव नञ् ॥ भप्रधान्यत्वम्, भत्रत्व परपदार्थसङ्गायंकतान् विधेः प्रधान्यं, प्रतिविधं क्षेत्र तात्यर्थाभावात् प्रतिविधस्य माथान्यम्, भत्रत्व प्रसादौ विध्यं तात्यर्थाभावात् विधेरप्रधान्यं प्रतिविधस्य च प्रधान्यम्, भत्रत्व प्रसञ्चप्रतिविध-नञः कियया सइ सम्बन्धात् स्यायनेन सह सपिचलाभावात् न समास इति । "प्रयंस तृत्वस्तवानां सैन्यविवेऽप्यसम्भूमम्" इत्यादौ केशिषु समास इत्यते । प्रायस्तु नञ्चरं यड् विधः — तत्साङस्यनभावय तदन्यतं तदल्यता । भ्रप्रमन्त्वं विरोधय नञ्चाः यट् प्रकौतिताः ॥ यथा — च बाद्याः, भ्रपापं, भ्रघटः, भनुदरी कन्या, भ्रक्तेशी, भत्ररः इत्यादि । भन्न वक्रवं — स्वाद्याः इत्यादौ नञ्चत्वपः समासः, नातिशौतीच इत्यादौ तु सुप सुविति समासः । भनितशौतीच इत्यादौ तु सुप सुविति समासः । भनितशौतीच इत्यादौ तु सुप सुविति समासः। भनितशौतीच इत्यादौ तु सुप सुविति समासः। भनितशौतीच इत्यादौ तु सुप सुविति समासः।

एवञ्च ज-मादिभिः सङ स्वायनस्य नित्यसमासः स्वात् (पाणिनिः २।२।१८, 'प्रादयः गतायर्षे प्रथमया', इति वार्तिक्षः)। नित्यसमासे खपद्वियक्षे नासि, पदानरिष भर्षक्षनम्। जुत्सितः पुरवः जुपुरुषः, दूषित् नलं कानलं, प्रकृष्टो गतः प्रगतः, दृष्टी जनः दुर्जनः, ग्रोभनी जनः सुकृनः इत्यादिः त्रिष्टप्रयोगानुसारिण नित्यसमासी त्रेयः। राजानमतिकात्ता श्रतिराजी, श्रतिस्ती, श्रत्यक्रः, श्रतिस्तिः।

३६७। सङ्घाव्याद्राचाङ्गलिभ्यामः।

(सङ्गा-व्यात् ५।, रामि-चङ्गुलिभ्यां ५॥, त्रः १।)।

सङ्गाया व्याच पराभ्यां रात्राङ्गुलिभ्याः सः स्थात् यादी, न तु तार्थे। त्रतिरातः अत्यङ्गुलः । १

हरिणा नाती हरिनातः । विणावे दत्तं विणादत्तं । प्रकृतात् जातं प्रकृतजातं । क्रणस्य सखा क्रणासखः, महाघासः, यामतचः, स्गसक्यं, जालसरसं, मण्डूकसरसं, राजगवः, वर्षारानः । 🕄

⁽५४८ मूर्च ट्रष्टव्यम्)। स्थायुत्पत्तेः प्रागिप कदन्तेन सङ्घ उपपदस्य नित्यं समासः, यथा—क्तर्भं करोति इति कुभकारः, श्राक्तयणः, धनकीतौत्यादि।

^{*} समासान्तप्रयानामेव निमित्तीभृतस्य यादेः इड पूर्वनिपाते प्रत्तिनांक्ति, तिन समासमाविऽत्य विधानात् उपक्षणम् इत्यव्ययीभाविऽपि पूर्व्यानपातः । प्रति-राजीति (३५३) ष-प्रत्ये, (१६०,२५८) नकार-चकार-स्पेपे, (२५०) विस्तादीप् । यानमतिकान्ता पितवो (१५८) ष प्रत्ययः, श्रेषं पूर्व्यत् । पहर्रातकान्तः प्रत्यः (१५६) षः, (१५४) पकादेशः । स्त्रियमतिकान्तः प्रतिस्तः, परपदार्थस्याप्राधान्यात् (११०) कस्तः, एवम् प्रतिमायः, प्रतिवामोदः । राज्यनमतिकान्ता प्रतिराजीखदाहरता प्रत्यादिभिर्दितीयान्तस्य समास इति म्चितं (प्रत्यादयः कान्तायर्थे दितीयया इति वार्त्तिकम्), तेन वेनासुद्गतः उद्देशः, ज्यामधिष्दं प्रध्यां, सुस्तमभिगतः प्रभिसुखः — इत्यादि विध्या । प्रव प्रयोगानुसारेष प्रत्याभिद्यस्यापि पूर्व्यानपातो वक्त्यः, यथा— वनस्याये प्रर्थवनं, राजीवां गणः गणरावं, दन्तानां राजा राजदन्तः दत्यादि । पार्यिनः राश्रः ।

⁺ सङ्गा च व्यच सङ्गाव्यं तकात्. एकवचनं यथासङ्गः निरासार्थे। भव मन्दू कमुताधिकारात् यादेरगृहिनः। राविमितिकानोऽतिस्वः, भङ्गुलिमितिकानोऽखङ्गुलः,
छभयव भनेन भगव्यये (२५८) इकारलीपः। एवं तिस्त्यां राभौकां समाद्वारः
विरातं, द्यीरङ्गुल्कोः समाद्वारः दाङ्गुलं। तार्थे किं, द भङ्गुली पिस्मावासस्य दाङ्गुलि
(चैवं)। दाङ्गुलं चेवं, दाङ्गुला सूमिरित्यादि तु यवोदरपरिमाणार्थकाङ्गुलयस्देन
समास्ति विद्यं, तयाच—भङ्गुलम् यवो मतः इत्यमरमाला। पाणिनः ५।४।४-६,८०।

[‡] स्वीया-तत्पुरुषमांह---इरिणा नात इति। एवं खड्गक्तिः, रथत्रज्या,

३६८। मुख्यायोरसः। (मुख्यावे-जरमः ४।)। मुख्यार्था-दुरस्थन्दात् ग्रः स्थात् यादी। त्रकोरसं, मुख्योऽख इत्यर्थः।

पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः, श्रवन्तिषु ब्रह्मा श्रवन्तिब्रह्मः । * इति षः ।

मासपूर्वः, मासोनः, वर्षावरः, गुड़मित्र इत्यादि । दक्षा मित्रित-पीदनः दध्यीदनः, गुड़ेन मिश्रिता घाना: गुड़धान।:, इन्तिना युक्ती र्रंथ: इन्तिरय:, एवं अञ्चरय: इत्यादी श्राकपार्थिवादिलात् मध्यपदलीपः । चतुर्थीमाइ —विचावे दत्तमिति । एवं गोभ्यो हितः गोहित:, यूपाय दाद यूपदाद, कुछलाग्न सुवर्ण कुछलसुवर्ण, दूखादि । श्रव वक्तव्यं — केषाश्चित्याते प्रकृतिविक्ततिभावस्थले एव चतुर्थीतत्पुरुषः, ऋन्यत्र तु षष्ठीसमासः। यया भवस्य घास: अवघास:,नतुभवाय घास:। एवं रक्षनस्थाली इत्यादि। पञ्चमीमाइ — चच्तात् जार्तामिति । एवं व्याचमीतः धर्मामीतः, चत्रपतितः, चर्जुन-पराजितः, सर्परचितः, घटभिन्न इत्यादि । षष्ठीमाइ—क्रणस्य सखा क्रणसखः (३५३), महतो देशस्य सहस्या भूस्या वा घामः सहाघामः (३२६), सहतः तकारस्य तीकारस्य वा भाकार:। गामस्य तचा गामतव: (३५६) घ-प्रत्यय:। सगस्य सर्काय सगस्य (३५८) । जालस्य सर: मख्डुकस्य सर:, जालसरस मख्डुकसरसं (३६१) । राजी गी: राजगव: (३६२)। वर्षायां रावि: वर्षागव: (३६२)। एवं मासस्य जात: मासजात इत्यादि । घव वक्तव्यम्—''क्रयीगा षष्ठौ समस्यते इति वाच्यम्'', ''प्रति-पदिविधानाषष्ठीन समस्यते इति वाच्यम्"— इति वार्त्तिकद्वयम् । यथा इभानी वस्रनः इभावयन: ; सिंपेवी ज्ञानम्, मातुः व्यरणम्, पधीदकस्य चपस्तरणम्, घौरस्य वजा, सर्पिकी नाधनम्, चौरस्रोज्जासनम्, ग्रतस्य पणनित्यादि ।

* सुर्खाऽघाँ यस तत् सुख्यायं, सुख्यायंच तत् उरचेति तद्यात्। षत्रस उरः प्रधानं षत्मीरसं। उरस्यस्टी इदयवाचकः, षत्र तु लचणया प्रधानायः। ''षत्रानासुर इतः इति भद्दोनिदीचितः। सुख्यायादिति किं, इदस्य उरः इवीरः इदस्य वच इत्ययः। सप्तमीतत्पुक्षमाइ—पुक्षोत्तमः। षत्र उदाहरणज्ञापकात् पुक्षाणासुत्तमः इति न वशीसमासः ''न निर्दार्षे" (पाणिनिः १।२।१०) इति स्तेण निषेधात्। षवनिवद्वा इत्यत्र (३६०) षप्रस्थयः। पाणिनिः ५।४।८१।

दिगु-समासः (ग)।

तस्यार्थे—विषये, वाच्ये अपलार्थेणिकादिकं प्रोज्भ्याजादेः, समाद्वारे, गस्त्रिधोत्तरदे परे । पञ्चभिगोभिः क्रीतः पञ्चगः । *

३६८। गैक्यादतोऽपात्रादेरीप्।

(गैक्यात् ५।, भतः ५।, वर्षात्रादेः ५।, ईप् ।१।)।

गैक्यादकारान्तादीप् स्थात्, न तु पात्रादेः। त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी।

पात्रादेलु, दिपात्रं त्रिपात्रं, त्रिभुवनं, चतुर्युगं । *

३७० | वानाप: | (वा ११), चन्-प्रापः ४।)।

त्रनन्तादापस ईप्स्यात्वा। पञ्चनर्सी पञ्चनर्से, त्रिखडी त्रिखडें।†

३७१। तार्थे मानरत् कार्यहात्तचे । व (तार्थे ७), मानात् ४।, कार्यक्षत् ४।, तु ।रा, क्यंवे ७))।

त्रगढ़की, तिकाण्डी रर्जुः। चैत्रे तु, तिकाण्डा भूमि:। 🕸

३७२ । पुरुषादा । (पुरुषात् ४१, वा ११)।

^{*&#}x27;गस्य ऐकां गैकां (समाक्षारित गुः) तस्त्रात्। पात्रमादियंस्य स पात्रादिः, न पात्रादिरपात्रादिः तस्त्रात्। समाक्षार-दिगुनां (६२२) क्रीवलिऽपि कूंपी विधानात् नित्यस्त्रीलं स्थितं। क्योः पात्रयोः समाक्षारः दिपात्रं। प्रादिना विगुणं चतुर्गण चतुःसतं चतुष्य चतुर्मुलं पद्मात्रं प्रस्तात् क्षेत्रं। प्राप्तिनः प्रदेशितः क्षेत्रं। प्रति क्षेत्रं।

[†] वाशव्दीऽत समुख्यायं:, तथाच — चनतात् षावनाय गेकात् ईप् स्थात्, समुद्धयेन (३६०) सङ्गाव्यादित्यतः मञ्जूकात्या चनुड्रत्य पथ स्थादित्ययं:। समुद्धयात्रष्टं भोत्तर इति न्यायात् परत्र षप्रात्यस्य नातुड्डिचिति। पञ्चानां कर्म्यणां समाहारः, धनेन ईपि (३३०) न-लीपे, (२५०) षकारः लीपे, पञ्चकक्यौं। पने चननेव समुद्धयः सभीऽप्रत्ययः, (३२२) क्रीवलं। एवं नितची वितचं इत्यादि। "वावनः", "अने नसीप्य वाच स्त्रियान्" इति वार्तिकहयम्।

[‡] तदितार्थिक्षिौ परिमाणवाचकात् क्र्रंप् स्थान्, कास्क्रबन्दानु चेत्रभिन्ने वार्थः इत्यर्थः | त्रयः भादकाः परिमाणमस्याः द्वादकौ धान्यसंक्रतः । एवं दौ द्रोणौ परिमाण-मस्याः दिद्रोणौत्यादि । त्रयः कास्काः (त्रलाः) परिमाणमस्याः द्विकास्की रज्यः । चेत्री विकास्का भूमिः वेत्रैकदेगः । पाणिनिः शशीरुरुरुः ।

हिपुरुषी हिपुरुषा। विसखं त्रिगवं त्रिनावं, त्रिखारं त्रिखारि, त्राष्टः। *

३७३। दिवेर्बोञ्जलेरः।

(दिने: ५१, वा ।११, अञ्चले: ५१, अ: १।) ।

हाञ्चलं हाञ्चलि, हाङ्कुलं, तिरातं। १ पञ्च गावो धनं यस्यासी पञ्चगवधनः हिनावधनः हिखारधनः, हाङ्कप्रियः। १३

द्रिति गः।

^{*} परिमाणवाचकात् पुरुषणश्दादीप् स्थात् वा तिल्लावों हिगी। ही पुरुषी परिमाणमस्थाः हिपुरुषी हिपुरुषा भितिः। वशाणां सस्धीनां समाहारः विसर्खं (२५३)। वयाणां गवां समाहारः विगवं (२६३)। तिस्धणां गवां समाहारः विगवं (२६४)। तिस्धणां स्थारीणां समाहारः विस्थारं (१६५), पित्रे विस्थां स्थारीणां समाहारः विस्थारं (१६५), पित्रे विस्थां स्थाराः वाहः (१५३), स्थानात् पृंत्वं। (१५४) स्थैकिदेशेयव समाहारवर्णनात् पक्तादेशः। परिमाण्यभित्रे तु हाथा पुरुषाध्यां कौता हिपुरुषा इत्येव। पाणिनिः ४।११४।

[†] विचित्रां परादञ्चलेः त्रः स्वात् वा तिष्ठतायें विगी। दावञ्चली परिमाणमस्य दाञ्चलं नकं, पर्च त्राव्यवाभावे जलविशेषणलात् कीवलं। एवं त्राञ्चल त्राञ्चलि। विलोचमस्त्र तिष्ठतार्थभित्रं दिगी दिविधामञ्चलेरात्ययं विद्धाति, तनाते दयोरञ्चल्योः समाहारः दाञ्चलं दाञ्चलं, एवं दावञ्चली प्रियौ यस्य स दाञ्चलिभयः दाञ्चलिभियः इति समाहारोत्तरपद्परयोगदाहरणं। तिष्ठतार्थे तृ दास्थामञ्चलिभ्यां कौतः दाञ्चलि-रिति। सत्तपद 'त्रतिञ्चलोक्ष्यं र दित भद्दीजिदोचितः। दयोरञ्चलेशेः समाहरः देशकुलं, तिस्त्रणां रात्रोचा समाहारः विरात्नं, समयव (६५०) सङ्गान्यादिति त्रमस्यः। पाषितिः प्रकारः २, संस्थापूर्व्वं रात्र कीवम् दित वात्तिकस्त ।

[‡] उत्तरपदे परे उदाइरति—पद्मगवधनः, चत्र धने उत्तरपदे परे विगी, (१६१) चमलयः, वे नावौ धनसस्य विनावधनः (१६४) चमलयः। वे खार्थो धनसस्य विखार-धनः विखारोधनः (१६५) विकल्पेन चः। वं चडनो मिये यसासी वाक्रमियः, (१५१।१५४) चः, चक्रादेशस्य।

मञ्जयीभाव-समासः (व)।

वः कसामीप्यसादृष्य-साकत्यानुक्रमिष्ठिषु । वीपापर्थ्यन्तयोग्यत्व-पद्यादर्थामितिक्रमे । ग्रन्द्रपादुर्भावाभाव-यौगपदीष्वनेकथा ॥ *

३७४। वात् क्तेर्माऽतीऽष्याः।

(वात् प्रा, त्री: ६१, म: ११, चत: प्रा, चाया: ६१) ।

अकारान्तात् वात् परस्याः त्तेभैः स्थात्, नतु प्याः । पे कृष्णमधिकत्य प्रवृत्ता कथा, श्रिष्ठिष्णम् । श्राप्याः किं, कृष्णस्य समीपात् गतः, उपकृष्णात् गतः । कृ

३७५। चीप्त्रोवी। (वी-प्रती: ६॥, वा ११।)।

उपक्त पांउपक्त पोन कार्यः। उपक्र पांउपकृषी स्थित:। §

क वः अध्ययीभावः — कं कारकं, साभीयं, साह्यं, साकल्यं नि भेषतं, अनुकमः, स्रद्धः सस्तिः, वीप्ता युगपत् व्यापुनिच्छा, पर्यन्तः भेषभीमा, योग्यतं, प्रवादयः, अनितिकाः, श्रव्यपद्भांवः अन्तितकाः, श्रव्यपद्भांवः अन्तितिकाः, अभावः, यौगपदाम् एककालतं — एषु प्तर्द्शमः अर्थेष भवति. प्रयोगानुसारादनेकथा च भवतीत्ययः। स च अव्ययश्रव्यां स्थायनेः सङ्गित्यसमासः स्थादिति। पाणिनिः २।१।६।

[†] प्रकारान्त्रश्चरस्य प्रव्यवीभावषमासे कते, (११९) क्रेलुंक् त्ये चेत्रणेन क्रेलुंकि, पुनर्लिङ्गसंज्ञायाम्, उत्पद्मागविभक्षीनां स्थाने मः स्थान्, नत् पद्यस्याः स्थाने दल्लाः।

[‡] क्रणामिक स्थिति ययपि क इति सामान्यनी क्रं, तथापि दितीयास प्रयोधिष क्रेयः। अत्र क्रम्पिति कर्मार्थे अधिक स्टेन (१६६) व्यं पूर्व्वसिति अपिः पूर्व्वसिति अपिः पूर्व्वसिति अपिः पूर्व्वसिति अपिः पूर्व्वसिति अपिः पूर्व्वसिति अपिः प्रवासि क्रमा या कातस्य सेः स्थाने अनेन स् एवं सब्बेच। सप्तस्य येतु स्वीविश्वकत्य प्रवत्ता या काया सा अपिस्ति इत्यादि। उपक्रमादिति अथाः इत्यस्य उदाइरणेनेव सामीयोहाइरणं दर्शितं। एवं कुम्बस्य समीपस्य अपित्वस्थः। पाविनः राधात्र। अपित्वस्थः समीपस्य अपितः स्थानः इत्यस्य समीपस्य स्वीपन

३७६। लुक् परात्। (लुक् ११), परात् ४।)।

भकारान्तादन्यस्मात् वात् परस्याः त्तेर्नुक स्यात् । *

३७७। सहः सोऽकाले।

(सह: ६।, स: १।, भकाले ७।)।

सहस्य सः स्थात्, न तुकाले । इतः सदृशं सहरि । काले तु, सहपूर्वाह्नं । 🅆 ं

खणेन सह सकलमत्ति सखणं। ज्येष्ठमनुक्रस्य अनुज्येष्ठं। मद्राणां सम्रद्धिः सुमद्रं। विष्णुं विष्णुं प्रति प्रतिविष्णु। अग्नि-यन्यपर्थन्तमधीते साग्नि। रूपस्य योग्यं अनुरूपं। श्रिवस्य पद्यात् अनुश्चिवं। श्रिक्तमनितकस्य यथाश्रक्ति। हरेः शब्दः प्रादुर्भूतः इतिहरि। पापस्थाभावः अपापं। चक्रेण युगपदेहि सचक्रं। यावन्तः श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामाः यावच्छ्लोकं। हः

कार्यं (येय इति भेषः) इत्ययं उपक्षणं उपकृषीन । सप्तम्यान्, क्रिणस्य मभीपे स्थितः, साधुरिति भेषः, उपकृषां उपकृषो इति । एवं उपगङ्गं उपगङ्गंन (३२२,१६०) इत्यादि । पाणिनिः २१४।८४ ।

चकारान्ताद्यस्मात् इननात् इसनाच कीः सर्व्वासां विभक्तीनामित्यर्थः नित्यं लुकस्थात्। पाणिनिः २।४।८२।

[े] भ अयथीभावे पूर्व्वतिनः सडशन्दस्य सः स्थात्, म तु कालवाचिणन्दे परे इत्यथः। सहरि इत्यव सडशन्दस्य सादृश्यं भर्यः, इकारानात् र्क्तृक्षः सहपूर्वोक्षमित्यव कालवाचि-पूर्वोक्षे परे सहस्य न सः, पूर्वोक्षस्य सदृशमित्यथः। पाणिनिः ६।३।८१।

[‡] साकल्यादी कमेथोदाइरति— तथे सड सकलमत्ति तथमि न त्यनतीलयेः सत्यां, भव सहमन्दस्य साकल्यम् भर्यः। ज्येष्ठ-मनुकाय ज्येष्ठस्य डीनो भृता गच्छतील्यथः भनुज्येष्ठं, भव डीनाथें न भनुना थोगे (२८६) ज्येष्ठमिति डितीया, भनु-भन्दस्य भनुकमीऽथः। मद्राणां मद्रदेशानां सस्तिः समद्रं वर्भते द्रत्ययं, एवं सभिचं वर्षते, भव सुभन्दस्य मस्तिर्थः। विश्वं विश्वं प्रतीति (२८६) डितीया, प्रतिविश्व द्रत्याव समस्ति वौद्याया उक्तलात् न हिलं। एवं परिविश्व चनुविश्व द्रत्यादि। सामि द्रत्याव प्रतीविश्व द्रत्याव समस्ति वौद्याया उक्तलात् न हिलं। एवं परिविश्व चनुविश्व द्रत्यादि। सामि द्रत्याव प्रयंनावेऽत्ययीभावः, सहमन्द्रस्य सः, भग्नियस्थात् परं किमपि नाधौते

३७८। शरद्विपाड्यस्रेतोमनोविडुपान-द्धिमविद्विद्विनडुह्म्स्चित्र्यंत्तरोऽ:।

(श्ररद-विधाश-च्यास-[? चनस्]-चेतम्-मनस् विश्-उपानह्-हिसवन्-विद-दिव्-चनकुह-दिश्-चतुर्-यद-सदः ४।, घः १।)।

एभ्यः यः स्थात् वे। उपगरदं। *

३७८। जराया जरंस च।

(मराया: ६।, नरम् ।१।, च ।१।)।

उपजरसं । 🕆

इत्यरं:। योग्यलार्थं चनुरुपं ददातीत्यादि। चनुभिविमिति पषाद्यें, भन्नाः चनुभिवं तिष्ठलीत्ययं:। एवं चनुरुषं पादाताः इत्यादि। यथाभिक इति चनितकमार्थं ददातीत्ययं:। एवं चनुरुषं पादाताः इत्यादि। यथाभिक इति चनितकमार्थं ददातीत्ययं:। एवं यथावकं धारयतीत्यादि। चनापि चितियन्द्येगे वितीया (२८६)। इतिइदि इत्या इतिमन्द्यः प्रादुर्भावे।ऽषंः, इतिदिति मन्द्रे। लोके प्रकाशित इत्यरं:। यपापिमत्यंच नज्यें।असावः, स च संसर्गाभाव एव, न तु भेदः। (३२५) नजः स्थाने घः। एवं निर्माचकांमत्यादि। चकेष युगपत विद्याच एक मुदाइरणमाह—यावच्छीकं मन्द्रा द्यायः, सहस्य सः। धनेकधा इत्यस्य एक मुदाइरणमाह—यावच्छीकं चनुतप्रवामाः योकानाम् इत्यत्त्या प्रणामानां इत्यत्ता प्रवाम् ताः यथात्यं, ये ये यथाभृताः यथात्यं, ये ये यथाभृताः यथाययं। तिष्ठनि वहित षायान्ति गावो यक्ति काले, यथाकमं तिष्ठद्गु वहद्गु चायतीगवम—इत्यादयो ज्ञेयाः (पार्थिनः २।११९०)।

- भरच विपाट्च भयय वितय मनस विट्च उपानच हिमवांस विद्च यौस आनड्वांस दिक्च चत्य यस तच तत् तथात्। भरदः समीपं उपशरदं, एवं उपविपासं, उपायसं, उपमनमं, उपविद्यं, उपोपामः, उपहिमवतं, उपविद्यं, उपदिवं, प्रत्यन्तुः, प्रतिदिशं ('चतुर्दिशमित्यसाध' इति कमदौसरः), उपचतुरं, उपयदं, उपतदं इति । पाचिनिः ५।४।१००। भाष पाचिनिम्चे 'भरत्प्रस्तिन्यः' इत्युक्तगणे भयस् इति स्थाने भ्नस् इति पठितस्, हिस्क् सद हम् स्यद् कियत् एतानि चातिरिक्तानि हस्याने । कमदौसरोऽपि भनस् इत्येव यठित, न त्यस् इत्यनुस्तेयस् ।
- † अरायाः ष: स्थात् वे, तिस्यन् जरसादेशयः। नरायाः सभीपम् उपजरसं।
 याणिनिः ५।।।१००। श्ररत्मस्तिमणानार्थनं स्वभीतत्।

३८०। सरजसोपशुने। (सरजस^{.खपग्रने १॥)}

निपात्ये। *

३८१। सम्परःप्रत्यनुखोऽन्णः।

(सम्-परम्-प्रति-चनुभ्यः ५॥, चच्यः ५।)।

समर्चं। 🌵

३८२। ऋनः। (भनः ५०)।

अनन्तात् भ्रःस्यात् वे। अध्यासं। ‡

३८३। स्तीवादा। (कीवात् ४।, वा ।१।)।

उपचर्मा उपचर्मा । §

^{*} रजसा सह समलमत्ति सरजसं, निपातनात् मः। ग्रनः समीपं उपग्रनं निपात-नात् वृत्रमञ्ज्या वस्य उ', भग्रथययः। "मरजसं पद्ममित्यसाधुः" इति क्रमहीवरः, सरजः पद्ममित्यव साधु। भत्रपव "सरजस्तामवनेरपां निपातः" इति किराते चिन्यम्। पाणिनिः ५।४।२०।

[†] सम् च परय प्रतिय भन्न स्रोधः। एथः परात् भच्छः भः स्यात् वे। भच्छोः समीपं समर्वं, अच्छोः परः परोत्तं, परश्च्दात् निपातनात् अस्-क्रते परस् इत्यव्ययं। "प्रतिपरसमनुभ्योऽच्छः" इति स्वे अच्छाः परिमिति विग्रष्टं निपातनात् परस्य भौकारा-देशः इति भद्दोजिदौतितः। कमदीअरस्तु "परेः परस् भ" इति स्वं विन्यस्य परि-भच्दात् परस्यदेशं वदति। अच्छोरिभमुखं प्रत्यचं अन्वच्छ। एषु भिच्छान्दात् अप्रव्ययं (२५८) इकारखीपः। प्रत्यचः परीचः इति तु इन्द्रियवाचिना भकारान्तंन भच्छाव्दंन, भचाणां प्रति प्रत्यचः, भचाणां परः परीचः इति वष्ठीसमासे (२६६) व्यं पूर्वमिति पूर्वनिपातः। भथवा भश्चमादितादन् इति भद्दीजदीवितः। पाषिनिः प्राधार००। सरत्प्रस्तिनणान्तर्गतं स्वभेतत्।

[‡] पृथक् योगात् समादेर्गानुइति:। चालप्रानमधिक्तत्य चध्यालां (३३०,२५८) । एवम् चिधराजम् चिधपूर्वमित्यादि । 'चनव्ययोभावे तुपरमाला' इति क्षमदीचरः। पाणिनि:५।४।१०८ ।

[§] क्लीविलिङादनन्तात् च: स्वतदा चव्ययीभावे । चक्तं च: समीपं उपचर्म उपचर्म । एवम् चहरह: प्रति प्रव्यहं प्रत्यह: इत्यादि । पाणिनि: ५।४।१०६ ।

३८४। अप्नदीपौर्णमाखाग्रहायणीगिरेर्वा।

(भाप-गिरी: ५।, वा ।१।)।

उपसमिधं उपसमित्, उपनदं उपनदि । *

द्रित वः।

षट् समासाः।

३८५ । पथ्यप्पुर: से । (पियन् अप्-पुर: प्रा, से ठा) ।

एभ्य: ग्रः स्थात् से सित । सिखपयी,रम्यपयो देशः, महापयः, दिचिणापयः, चतुष्पर्यं, उपपयं, विमलापं सरः, विणापुरं । '।'

३८६। दान्तर्गेर्वोऽपोऽनात्।

(दि-मन्तर्-गे: ५।, ई. ।१।, अ.: १।, अ.ए: ६।, मनात् ५।)।

एभ्योऽनवर्णान्तेभ्योऽपोऽकार ई: स्थात्।

^{*} भप् प्रत्याहारभदनात्, नदी-पौर्णमाधी-षायहायणी-फिरिभ्यस ष: सात् वे वा। श्रव वा-यहणं परव निवस्ययंम्। सिनिधः समीपं उपसमिधं उपसमित्, एवं उपतिहितं उपतिहित्। नयाः समीप उपनदं उपनदि। एवं उपपौर्णमास उपपौर्णमास । उपितिरं उपितिर। श्रमत्याभावपचे दीर्यान्तानां क्रीवे स्वः (१६०); पाणिनिः ५।४।११०—११२।

[†] पत्थाय भाषय पूत्र तत् तकात्। से इति सर्व्यसमासप्राप्तार्थं। षट्स्ताइरति—
सक्षा च पत्थाय तौ (च:)। रम्यः पत्थाः यत्र सः (इ:)। महांचासौ पत्थायिति (यः)।
दिवापसां दिशि दिविषे देशे वा पत्थाः (वः), दिखणा इति तु (५२०) समस्याः स्थाने
आ, तिव्वतिदेशकात् (६१८) न भाकारखीपः। एवं उत्तरापथः। चतुणां पथां समाहारः
(गः)। पथः सभीपे (वः)। एथं पथिन्थव्यस्यः भप्रव्यये (३२०) न-छोपे, (२५८) इकार-खीपः। विमला भाषो यिक्षान् तत्। विण्योः पूः विण्युरमिति भभिधानात् क्रीवलं।
यद्यपि अदन्तपुरशब्दीऽष्यमि तथापि पुर्शव्यन्तानिष्टवारणार्थमिदं। पाणिनिः ५।४।०४।
'प्यः संख्याध्ययादैः' इति वार्त्तिकस्य।

हीपं अन्तरीपं समीपं। अनात् किं, प्रापं। *

इटि । समापानुपौ। (समाप-पन्पौर॥)।

निपात्वौ । समापो देवयजनं, अनूपो देशः । 🕆

३८८। सम् तम् मन:-कामे ज्वश्यम् त्ये जन्यनोपं सम-मांसौ तु हित-तते पाक-पचने वा।

(सम् ।१।, तुम् ।१।, मन:-कार्मे था, अवश्यम् ।१।, ल्ये था, अवत्यलीपं २।, सम्-मांसी १॥,तु।१।, दिततते था, याक-पचने था, वा ।१।)।

सम् तुम् च मनः-कामयोः, श्रवश्यम् त्ये, श्रन्यत्वोपं याति ; सम् हित-ततयोः, मांसः पाक-पचनयोर्वा।

समनाः सकामः, रन्तुमनाः रन्तुकामः, श्रवश्यसेव्यः, सहितः संहितः, सततः सन्ततः, मास्याकः मांसपाकः, मास्यचनं मांसपचनं । 🕸

^{*} ही च स्रत्य गिय तत् तस्रात्। न सः स्नस्तस्रात्। हिग्रन्टात् स्रत्यस्य स्वर्णान्तिस्त्रः गेय स्वप्रव्टस्य स्वतार्देः स्थात् इत्यर्षः। ह्योदि शोगपो यत्र तत् (''हिग्रेता स्रापोऽस्थित्रिति हीपः" इति क्रमदीयरः ; हीपमिति महोजिदीचितः), स्वर्णाता स्रापो यत्र, सस्यक् स्रापो यत्र इति वाक्यानि। एवं स्वतीपं प्रतीपं इत्यादि। प्रगता स्रापो यत्र तत् प्रापं। पाषिनिः ६।३।८०। ''ई त्वमनवर्षादिति वक्तव्यम्" इति वार्त्तिकस्र।

[†] ससीचीनाः (समा इति भट्टोजिदीबितः) आषो यत्र स समापः देवयज्ञनं (यज्ञः)। (''समापंनाम देवयज्ञनम्'' इति तुक्रमदीखरः ।) चनुगता आषो यत्र सः भनूपः देशः। एतयीदेवार्थयोनिपातनं, चन्यत्र समीपं चन्वोपनिति। पाणिनिः ६।३।८८ । ''समाप ई्लप्रतिषेषः" इति वार्त्तिकछ ।

[‡] सम्तुम् इति पदभेदः मनः-कामाश्यां यथासङ्ग्रानिरासार्थः । मनस्य कामस्य तिक्षान् । सम्च मांस्य तौ, दितचाततचा तिक्षान्, पाकस्य पचनचा तिक्षान् । सम् सनः-कामशोः, तुम् सनः-कामशोः, भवश्याम् ल्ये भन्यजीपं याति से सति । सम्

३८८। घुरोऽनचसाः।

(धरः ५।, यनचस्य ६।, घः १।)।

राजधुरा। अवस्य तु अवधूः। *

३८० | स्व: | · (स्व: ४।)।

ऋचः परः ग्रः स्थात् से। ग्रर्डमें। †

३८१। नञ्बहोर्माणवक-चरणे।

(नञ्-वही: ५।, साणवृक-चरणे ७।)।

भट्नो माणवनः, बहुनः चरणः। अन्यत्र भट्न साम, बहुक् सूत्रां। భ

हित-तत्यी: मांसः पाक-पचनयी: घन्यलीपं याति वा से सतील्यंः । स्यक् मनी यस्य, स्थक् कामी यस्य, इति वाक्यं । तुम् इति (१९६४) चतुम् । रत्तु मनी यस्य, रत्तुं .कामी यस्य, इति वाक्यं । तुम् इति (१९६४) चतुम् । रत्तुं मनी यस्य, रत्तुं .कामी यस्य । ल्यक्तव्यादिः (६८६) । भवस्य सेव्यः अवस्यकेवः, एवं भवस्यकरणीय इत्यादि । सम्यक् हितं यस्य, सम्यक् ततं यस्य । मांसस्य पाकः, मांसस्य पचनं । सर्व्यं भव्यक्षीपः । भवस्य पचनं । सर्व्यं भव्यक्षीपः । भवस्याजीकरणीय इत्यादि । "सभी हित-तत्यीर्ग लीपः ।" "संतुमुनीः कामे लीपो वज्जव्यः ।" "मन्सि च वज्जव्यम् ।" "भवस्यमः क्रव्यं लीपौ वज्जव्यः ।" एतानि वार्षिकानि । काशिकानिष्य यथा — "लुपो दवस्यमः क्रव्यं लीपौ वज्जव्यः ।" एतानि वार्षिकानि । काशिकानिष्य यथा — "लुपो दवस्यमः क्रव्यं लीम् काममनसोरिष, सभी वा हितत्त्वयीभीं सस्य पवि युड् खजीः ॥"

अधुमारः । धरः मः स्थात् समासे, नतु मचसम्बन्धियाः । मधी रयनक्षं। राज्ञीधः राजधरा, एवं महाधरा द्रत्यादि स्त्रीतादाप् (२५०) । मनस्य धः मचधूरित्यव न मप्रत्ययः । पाणिनिः ५।४।०४।

† भार्रञ्ज तत् सन्त् चेति, सःचीऽतंमिति वा भार्रचे, (मार्जचीं वा पाणिनि: २।४।३१) ; एवं सप्त मःची यिद्यान् स सप्तर्थीं मन्तः । पाणिनि: ४।४।७४ ।

‡ नञ्च बहुच तत्त्वात्, पुंग्वं भौवात्। साणवक्तय चरणय तिक्रान्। नञ्-वहुभ्यां परस्थाः च्यः चः स्थात् कमात् साणवक्त-चरणयोवांच्ययाः। नाति च्यक् यस्य सोऽष्टची साणवकः शियः। बह्याः च्यची यत्र स बहुचः चरणः विटेक्तरेशः। न च्यक् चरुक्। सास, बहुक् इति पूर्व्वत, स्क्रां, साम स्क्रच वेदांस्थविशेषी। पाणिनिः प्राधा०४ — काशिका ''भरूची साणवकं जयी बहुचयस्णास्त्रायास्।''

३८२। प्रत्यन्ववात् सामलोनः।

(प्रति-पत्-पवात् ४।, साम-लोस: ४।) ।

प्रतिसामं प्रतिलोमं। *

३६३ | ऋच्णोऽचच्चित्र । (अकाः ५।, अवनुषि ०।)।

गवामचीव गवाचः । चत्तुषि तु, विप्राचि । पं

३८४। ब्रह्महस्तिराजपण्यात् वर्चसः।

(बद्ध-पखात [१ पल्छात्] ५।, वर्चमः ५।)।

ब्रह्मवर्चसं हस्तिवर्चसं राजवर्चसं पख्यवर्चसं । 🕸

३८५। समवान्धात् तमसः।

(सम्-अप्व-अन्धात् ५।, तमसः ५।) ।

सन्तमसं । §

अप्रतिश्व चनुत्र चन्छ तस्त्रात्। एथ्यः पराभ्यां सामन् स्तीमन् इत्तेताथ्यां चः स्थात् सं सति। साम साम प्रति, लीम लीम प्रति, वीम्नायां वः। एवं चनुस्तीमं चनुसामं। पाणि निः प्राधाञ्य।

[†] न चतुः श्ववज्ञासान्। श्वविशब्दात् श्वः स्थात् समाने, श्रवचुित्र वाचे। गवाची वातायनं। विशस्य श्वि। विशालाचः पद्माचः इति बहुबीही चच्छित्रे वाच्ये श्वः। लवणाचं प्रकाराचं गवाच इति क्षमदीश्वरः चदाहरति। पाणिनिः ५।४।०६। श्रवः "श्रपास्यद्वः।दिति बक्तस्यम्" इति वार्त्तिकम् भट्टीजिदीचितेन न स्ट्हीतम्।

[‡] ब्रह्माच इसीच राजाच पण्यच तसात्। एथः परात्वर्धः इः स्थात् में । तेजः पुरीषधीवर्धं इत्यमरः । ब्रह्मणी वर्धः, इतिनी वर्धः, राजी वर्धः, पण्यच तत् वर्धयित वाक्यानि । अत्र , वार्त्तिते संविप्तसारेच पण्यस्थाने पत्य इति पाठी दृश्यते । गोधीचन्द्रश्च "धत्र पलालरञ्चा ब्रीहं वेष्टियता स्थापयन्ति तत् किल पण्यमुच्यते इति सातुपारायण्यम्" इति वद्ति । पाणिनि. ५।४।०८ । "पल्यराजभ्याचित वक्तव्यम्" इति वार्तिकस्य ।

९ एभ्यः परात् तमसः पः स्थात् से । सन्ततं िस्तीर्धं तमः सन्तमसः। पवचीर्याः तमः पवतमसं, पश्चयतीति पचाहित्वात् चन्, पश्चं तमः पश्चतमसं। पार्थिानः ५।४।७६ ।

३८६। स्त्रीवसीयस-खःश्रेयस-निःश्रेयसं।

(श्रीवसीयस-- नि.श्रेयसं १।)।

एते निपात्याः। #

३८७। तप्तान्ववाद्रहसः।

(तप्त-भनु-भवात् ५।, रहस: ५।)।

तप्तरहसं । 🌵

३६८। प्रत्युरसानुगवे। (प्रत्यस अनुगवे १॥)।

एते निपास्ये। 🕸

३६६। गेरधनः। (गेः पा, अध्वनः पा)।

प्राध्वी रथः। §

[#] भ्रज्ञयानामनेकार्थत्वात् (श्व:भ्रष्टः आशीर्यातकः) श्व: भीभनं वसीय: ग्रभं (वसमत-द्रंयस) (वसभन्द प्रश्नमावाची) श्वीवभीयमं कल्याणं, श्व: श्राभनं र्यथ: श्वःश्वयमं कल्याणं, निर्निष्यतं श्रेयो निःश्यमं निर्व्वाणं। भ्रत्न वसीय इत्यत्न भ्रवसीय इति कीषास्तितम्। पाणिनिः ५।४।७०,८०।

[†] एथा: परान् रहनः याः स्थान् से । तप-धाती: कर्त्तरि क्षः तप्नं, तप्तस्व तन् रह-येति, चक्षयं यन् भवेन् वाकां तन् तप्तरहम विदुः ; षण्यवा ''परंणानिधगस्यं हि यद्ही वक्तित्रवन् । तप्तच तद्रहयंति तन्तरहस विदुः ॥'' इति । रहोरहः चनुरहसं, चवगतं रहः चवरहसं । पाणिनि: ५।४।८१।

[्]र उरिं प्रतिवत्तते प्रत्युरसं, चिवकरणार्थे ऋवयोभानः । गवां अनु भागतं अनुगवं भकटं। ऋवत्र प्रतिगतसुरः प्रत्युरः, गवां पद्मात् अनुगु इति । पाणिनिः ५।४।८२,८३ ।

[§] नी: परान् चध्यन: च: स्थान से । प्रगतः चध्यानं, प्रगतीऽध्या शेन इति वा, प्राप्यः रषः । पर्वप्रत्यध्यं धकटं। नी: किं, उत्तमाध्या । पाणिनि: धू।श∣⊏धू ।

४००। पागडूदक्कष्टात् भूम:।

(पारु उदक्-क्रष्टात् प्रा, सूमे: प्रा)।

पाण्ड्भूमो देश:। *

४०१। सङ्ख्याया नदीगोदावरीभ्याञ्च।

(सङ्गाया: ४१, नदी-गीदावरीभ्यां ५॥, च ११।) ।

पचनदं, सप्तगोदावरं, हिभूमं: प्रासाद: । 🕆

४०२। निस: ग्रुतो ड:। (निम: प्रा, मत: प्रा, ड: १।)।

निस्तिंगः, नियतारिंगः। 🕸

४०३। सूत्सुरभिपूतेर्गन्वादिर्वातूपमानात्।

(स. उत् सरिम-पूते: प्रा, गन्धात् प्रा, दः १।, वा ।१।, तु ।१।, उपशानःत् प्रा) ।

सुगिन्धः, पद्मगिन्धः पद्मगन्धः। §

अ उदक् इति उत्पूर्वात् श्रधातीः कर्त्तिष्, क्रष्ट इति क्षप्याती. कः। एथः परात् भूमेः श्रः स्थात् में। पाष्डुर्भूमिर्यक्षिन् म पाष्डुभूमां देशः। उदीची घरगता भूमिर्यक्षित् स उदग्भूमी देशः, पुंवडाबाइदक्स्थितिः। श्रव उदक्स्थाने उदक्तिति भाष्यकारः। कष्टा भूमिर्यक्षित् स क्षष्टभूमां देशः। कष्टस्थाने कृष्य इति. केषित्। पाणिनाये ५।४।४५ भू में "क्षणोदकपाख्डमंख्यापूर्वाया भूमेरिजयिते" इति इष्टिः।

[†] सङ्गायाः पराभ्यां नदौ-गोदावरीभ्यां भूनेथ च. स्थान् से। पञ्चानां नदीनां समाहारः, सभानां गीदावरीणा समाहारः, हे भूभी यत्र सः इति वास्थानि। चन्न नदौधन्देन (१६) स्वीक्तपारिभाषिकानदौसंज्ञको न बाध्यते, नापि च स्वरूपयहणं किन्न नदौपर्यायवचनम्; चतः सभाकः हिथामुनमित्यादि। पञ्चनद्भित्यादौ संज्ञायाम् च्रत्ययोयवचनम्; हित पाणिनिः। पाणिनिः २।१।२०।

[‡] निसः परात् भत् इत्यन्तात डः सात् से। निर्गता विभित् यस्य स् निस्त्रियः, एवं नियलारियः निष्पद्याभः । ''निर्गतानि विभित्तो निस्त्रियानि वर्षाणि चेवस्य । निर्गत-स्त्रियतीऽङ्गुलिस्या निस्त्रियः खड्गः ।'' इति भद्दानिदीचितः । निसः किं, दुस्त्रियत् इत्यादि । ''डच्पकर्ण संख्यायासत्पुरुषस्थोपसंख्यानं निस्त्रियाययंम्'' इति वार्त्तिका।

^{\$} सच उच्च सुरिभिष पृतिष तसात्। एख: परात् गलात् इ: स्थान् से, उपमान

४०४। नार्चायां खते: सख्यादेर:।

(न ।१।, पर्चायां ७।, सु-भतेः ५।, संस्कादः ५।, पः १।) ।

खितिभ्यां परात् सख्यादेरी न स्यात् पूजायां। शोभनी राजा सुराजा, श्रितिग्रयेन राजा श्रितिराजा। अर्चीयां किं, गामितकान्तः श्रितिगवः। *

४०५ । किम: चोपे। (किम: ५।, चेपे ७।)। किराजा। प

8०६ । नजोऽह्रवे। (नजः ४।, घ ह वे ७।)। नजः परात् सख्यादेरो न स्थात्, न तु इ-वधीः।

वाचकात् परामु वा इत्यर्थः । श्रीभनो गसी यस्य स सगितः, एवं उदगितः सुरिभगितः पूतिगितः । पद्मस्वे गसी यस्य सः पद्मगितः पद्मगितः । पद्मन्यः सम्वायसम्बर्धेन वर्त्तमानात् गर्यात् इः स्थादिति मग्यदायः, तेन सगित्यो वायुरिति, वस्तुतः शिष्टपर्यागानसारिणैव । किञ्च गुणवाचिनी गस्यादेव इः, तेन श्रीभनानि गस्यद्र्याणि यस्यां सा सगस्या विपणिरिति । पाणिनिः अ। ४१ ११ १५, ११० । "गस्यस्यं व वदंकान्तग्रहण्यन्" इति वार्त्तिकम् । तद्ययं "तद्वयव इयाविभागेन कृत्यमाणी यो गुणकादाची गस्त्रद्रो रुद्धते, न तु द्र्यवाची।"

- * स्य पतिय तथान् खते:। प्रशंसाय वर्णमानाभ्यां सु-प्रतिथां परात्, (१५१) सम्बद्धाराज इत्याग्थ (१८१) गेरध्वन इत्यतेषु येथ्योऽप्रव्यागे विहितः स न स्वादिव्यदः। सुराना जितराना जमयन प्रभंसाया खती। प्रतएव "सुराजि देशे राजन्वान्" इत्यमरिव्यन् । एवम् चित्रग्रेन या प्रतिया, सुगीः सुरानः सुपयाः इत्यादि। प्रनराजः जन्मराजः इत्यादि। परमराजः जन्मराजः इत्यादी प्रविधि खत्यभावात् भवव्येव। पाणिनः ५।४।६९।
- † निन्दायां वर्षमानान् किमः परान् सख्यादिरो न स्थात् । कुलिश्तो राजा किराजा, यो न रचित प्रजाः । एवं किंगौः, यो न वक्षति भारम् । निन्दायां किं, केषां राजा किंराजः, कियां थीः किंगवः क्रवादि । "स किंससा साधु न प्राक्षि योऽभिपम्" कित कियति । पाणिनिः ५।४।७०, २।१।६४ ।

असला। इवितु—अनपंसरः, अधुरं। %

8001 पयो वा। (पषः प्रा, कारा)।

अपयं अपन्याः । इ-वे तु—अपयो देगः, अपयं । †∙

४०८। कत कच्चिरथवदे।

(कत् ।१।, क ।१।, भच्-वि-रध-वदे ०।)

को: स्थाने कत्स्यात् मे अजादी परे। कददं कचयः। 🕸

8°६। कार्चे। (का श, अर्चे ण)।

कार्च । §

इय वय इवं, न इवं षइवं तिखान्। इ-व-भिन्न-समास नजः परात्ं सख्यादेरी
न स्थात्। अस्यखा दति नञ् तत्पुरुषः। न सन्ति चापी यत्र तत् घनपं सरः, चत(३८५)
भ-प्रत्ययः। धरीऽभावः अधरं, चत्रापि (३८८) घ-प्रत्ययः। पाणिनिः ५,१४।०१।

[†] इन्बन्सिन्न-समासी नज: परात् पष: च:स्यादा । न पत्याः इति तन्पुरुषे चपषं जपत्याः । नास्ति पत्या यखिन्द्विन्ति चपथो देशः, पषोऽभावः इति चपथं, चभयव (३८५) निव्यम् च-प्रव्ययः । पाणिनिः ५१४।७२ ।

[‡] भव्य तथय यथय पर्य तथिन्। अप कु इति शब्दः कुत्सितवाची, तेन की: (पृथिव्यः:) उद्यितः कृत्थितः इत्यादी न स्थात्। कुत्सितममं कदमं, एवं कदाकारः कदीयधन्। कुत्सिताम्कयः कस्यः, एवं कद्रषः कददः। अस्य सृत्रस्य कर्मधारय एवासिधानात् कृत्सितोः रयो यस्थेत्यादी नःस्यात्, यतः पाथिनिम्चे "तत्पुक्षे" इत्युक्तम्। भव वक्तव्यम् "व्यषे च नाती" इति (पाणिनिः ६।३।१०३) स्वेण कनृष-मिति। पाणिनिः ६।३।१०२,१०२। "कक्षावे वाबुपसंख्यानम्" इति वार्तिक्षः।

[§] अन्तर्थस्ट परिक्षी: का स्थान से । कृत्कितमचं (इन्टियं) कार्च। अन्न इति सामान्यतो यहणात् कृत्किते अन्तिणो यस्य स काची विष: इत्यत्र अन्तिशस्ति (३२४) व कृतेऽपि स्थान । "अन्यसन्देश तत्पृक्षः, अपिशन्देश बहुत्रीहिवीं' इति सर्टीजिन् सीनित.। पाणिनि: ६१९१८%।

8१८ | पश्चिपुरुषे वा | (पश्चिपुरुषे था, वा ।१।) ।

कापयः कुपयः, कापुरुषः कुपुरुषः। *

४९१ | कोरीषदर्थे। (को: १1, देषदय ०)।

द्रेषज्जलं काजलं। 🌵

४१२। कत्कवौ चाम्तुप्रणो।

(कत्कवी १॥, च ।१।, अग्नि-उणी ७।)।

कदिग्नः कवाग्निः काग्निः, कदुर्णं कवीणं कीणां । 🖇

[•] की: का स्यात् वा पथि-पुक्षपे: परथी: । कुत्मित: प्रयाः,, कुत्मित: पुक्षः, इति वाक्यद्ववं । अव द्रष्टव्यम्— 'का पथ्यवयं.'' इति पाणिनिम् वे (६१३१०४) पथिन् भ्रव्यत्त नित्यं कापथः इति पदम् ; पथात् "पथि च च्हन्दिति" इति मृ वं (६१३१००) वेदे कवपथः कापथः इत्यप्यः इति पदचयं दर्धितम् । वंपदेवेन तु लौकिकालौकिकमतं लौकिकवेन प्रयुक्तम् । विचार्यव्यात्त्यत्— कापथः इत्यच पुंम्तं वार्णिकमतेनास्त्रकं, "पथः संख्याव्ययादेः'' इत्यव क्षीवत्यमुक्तम् (२८५ मृतं द्रय्व्यम्) । भ्रत्यव कमदीयरः— "कुत्तितः प्रयाः कापथम् । कृपथिनित्यसाध् ।'' इति । "पथिभ्रव्यन् समामे नित्यं कारिशः । पथिभ्रव्यनमागर्थेन पथभ्रवेनापि क्षीवत्यामावः'' इति गोयीचन्द्रः । एतस् द्रय्व्य-तर्कवाचस्यतिप्रकाशितायां निद्यान्तवौम्यां कापथः इति पाठो द्रयति ; श्रिव-रामगर्भाणा भीधितायान् तस्या कापथम् इति पाठः । वीधिविद्रप्रकटीकतं अष्टकं पाथिनीयं च कापथः इति पुंलिङ्गमेवाक्ति । सुपद्यं तु समासप्रकरणस्य "पथः संव्यान्ययान् क्षीवे" इति ८० मृ वे कापथमित्रकं, भ्रत्वक्ष्यत्यते तु सम् सूवे कापथः इत्यक्षम् इति स्वीकविद्याः । शेथीकम् चटीकायान् "वार्षिकभाष्ययानं सतमेतन्, भ्रदन्तपचे तु कुपथः" इति चिखितम् । पाणिनिः ६।३११०६।

[†] ईपटर्थं वर्त्तमानस्य की: का स्थात् मे। कीर्यहर्षं पथिषुक्षयोरनतुवर्त्तनार्थम्। प्रयोगान् सारिण यिखान् किसाविष परे इत्यर्थः। एवं ईषदतं कात्रमित्यादि । भारती च ''देव कानिनि कावार्दं — काकारे भभरे'' इत्यादि । पाणिनिः ६ । ३। १०५।

[‡] ईषदर्थं की: स्थाने कत्-कवी, चकारात् का च स्थात् पश्चि-खणायी: परयोः । ईषदग्निः, ईषदुणामिति वाशादयं। परिणिनिः ६।३।१०७।

8१३। ज्योति र्जनपद राचि नाभि बन्धु गन्ध पिग्ड लोहित कुच्चि वेगी ब्रह्मचारि तीर्थ्य पत्नी पच्चे समान: स:।

(च्यीति:-पचे ०।, समानः १।, सः १।)।

समानं ज्योतिर्यसासी-सज्योतिः। *

४१४। इत्प नाम गील स्थान वर्ण वयो वचन धर्मा जातीयी दर्थे वा।

(६प-उदर्थे १।, वा ।१।)।

सरूपः समानरूपः। 🌵

द्रति स-पादः।

एष चत्र्यम् परेष् समानः सः स्थात् से सति । एवं सजनपदः, जनपदपर्याय-यहणात समानी देश: सदेश: । सराजि: सनाभि: सबस्य: सगन्य: सपिण्ड: भलीहित: सक्ति: सवैणीक:। ब्रह्मचार्यादिसम्बन्धेन समानगब्द: एकार्यएव ल तु तुल्यार्थ:. समानं एकं ब्रह्म वेदं चरतौति वार्क्य (१८३) ग्रहादिलात् णिनि, ब्रह्मचारिन् शब्दे परे समान: स:, एक ब्रह्मवताचारा नियः सब्ब्रह्मचारिया इत्यमरः। समाने एक स्मिन तीथें ग्री वसतीत (४२६) शाप्रत्यये तीर्थ्यशब्दे परे समान: स: ; निर्यकारपर्च (पाप्रवाधे) समानं तीर्यं यस्य इति बहुबीहि:। तीर्थ-स्विज्ञ जले गुरी इति, सतीर्थायेक-गुरव इति चामर:। पाणिनी संचित्रसारे च सयकार तीर्ध्यक्षद एव दृष्ट्यते । समान-एक: पतिरस्था इति बाकी निपातनात पत्यः पतादेशे ईपि भमानस्य मः सपत्री (पाणिनि: ४।१।३५)। एवं समानः पचः (सहायः) सपचः। पाणिनि: ६।३,८५,८६,८०। एषु सूत्रेषु परसूत्रे च गन्ध पिरुङ लीहित कुचि वेशी पत्नी पच शब्दान दृश्यने "वामनस् पुनः पचधर्माजातीयान्यपि पठति'' इति क्रमदीयरः । सेतुभन्दोऽपि संचिप्तसारे दृश्यते । † एषु दशसु परेष समान: स: स्यात् वा । समानं दपं यस्याधी सदप: । समानभिकं नाम यस्य स सनासा। एवं सगीत: सस्थान: सवर्ण: सवया: सवचन: सधसा (३४४)। समानस्य प्रकार: इति (४८०) सनातीय:। समाने एकस्मिन् उदरे भवतीति (४२८) उदरशब्दात् शाप्रवये सोदर्थः। सीदर-सहीदरशब्दी त उदरेण सह वर्त्तते योऽभी द्रति (३१३) मूर्त्रण सिद्धी। एषु विकल्पपत्ते समानस्थिति:। पाणिनिः ६।३,८५,८८। उदये वर्जीयला सन्धे पाणिनिमते नित्यम्, चान्द्रमते तु विकल्पः।

४र्थ पाद:--तिबत: (त) I

४९५। बाह्वाद्यतोऽत्रप्राबादेर्गर्गादेर्न डादेः पिटष्यसादे रेवत्यादेः श्रेषिशवादेः ष्णि-ष्णेय-ष्ण्य-ष्णायन-णीय-ष्णाक-ष्णा स्रपत्ये।

(बाह्वादात: ५१, भवर्गवाटे: ५१, धर्गाटे: ५१, नड़ाटे: ५१, पिढव्यसादे: ५१, रेक्साटे: ५१, भेषभिवाटे: ५१, चि.—चा: १॥, भपत्थे ९५)।

एभ्यः परा एते क्रमात् स्वर्पत्यार्थे । *

[•] बाहुगिरियंख स:, वाहादिय चा स तसात्। चिय चाप् च ती चाटी यस स: चनानिरिससात्, चनाहिः चानिर्यस्य तसात्। पिट्चम चारियंस्य तसात्। रिवते चारियंस्य तसात्। पिट्चम चारियंस्य तसात्। रिवते चारियंस्य तसात्। चनाहिः, भेपय भिनादिः तत् तसात्। स्वतात् भेषभिवादिवने सर्वेत पंत्रसात्। स्वतात् भेषभिवादिवने सर्वेत पंत्रसात्। स्वतात् स्वाभिवादिवने सर्वेत पंत्रसात्। स्वतात् स्वाभिवादिः (कत्या च) उच्चते (पाणिनिः ४।१।१६२)। क्रमस्य वाहादिः चनाः प्रवादिः स्वादिः स्वादः स्वाद

४१६ । णित्ते विराद्यत्तः सुभग-सुपञ्चाला-द्योस्त द्वान्त्रदानां।

(णित्ते था, त्रि: ११, भाग्यवः ६१, सुभग-सुपचालायीः ६॥, तु १११, द्रान्यदानां६॥)। अ**चां मध्ये त्रायचो त्रिः स्यात्, णिति ते परे, सुभगादे**सु इयोर्दयोः, सुपच्चालादेसु अन्यस्य दस्य । अ

· (३३७) न्वोर्लोपीती तेऽचे। बाहोरपत्यं बाहिवः, उप-विन्दोरपत्यं ग्रीपविन्दविः, उडुर्लोम्बोऽपत्यं ग्रीडुर्लोमिः, ग्रामि-ग्रामीचोऽपत्यं ग्रामिग्रामीः। श्राणस्थापत्यं काणिः। पं

४१७। योर्यम् रान्तेऽखङ्ग व्यङ्ग व्यव-हार व्यायाम खागत खध्वर गनः।

(योः ६॥, युम् ।१॥, दान्ते ७।, प्रखङ्ग — पनः ६।)। .

^{*} मूद्रंत्य थ इत् यस्य स णित्, णिवासी तथित णित्तः तिकिन्। षादियासी प्रमृ चिति षायच् तस्य। सुमगय सुपञ्चालय सुमगसपञ्चाली, नी चादी थयीसी मुमगमुपञ्चालादी तथीः। हे च चत्यथ हान्यानि, हान्यानि च तानि दानि चिति हान्य-दानि तिषां। पूळां (६) अच एव इिड्स्थानिलेन निर्हेंग्रेऽपि षत्र अची गृहणं परस्वे षाद्यची हितुहत्त्वय्ये। सामान्यतः सळींवां भव्दानां चर्चां मध्यं षाद्यची इिद्वः, सुमगादे-देशोः पद्यांराद्यसी इिद्वः, सुपञ्चालादेनु केवलम् अन्यपद्यायची इिद्वः स्यात्, थिति तिद्वि पदे इत्यर्थः। पाथिनिः शराहरु, ४।११२६।

[†] बाह्रादीनाह — बाहुनामकस्य कस्यचिटपत्यं इत्यर्थे, बाहीरिति पदात् िष्णः, ष च इत्, इकारस्थितः, (११६,३३०,३५) बाहिति इति भागस्य पुनर्लिङ संज्ञायां स्यायुत्-पितः, एवं सम्बंद । यया विभन्न्या वाकां तिहमन्न्यत्तात् प्रत्ययः। एवम् श्रीपिवन्दितः। श्रीडुलीमिरित्यच विषप्रत्यये, (३३०,२५८) नलीपः भकारलीप्य। एवम् श्राप्रिशर्मिः। कार्षिरिति (२५८) भकारलीपः। बाह्रादिस् — बाह्र उपवाह्र उपित्र उडुलीमन् श्रिप्राम्मं नृक्षण् युविष्ठिर अर्जुन ग्रास्थ गट प्रयुक्ष राम सत्यक प्रश्रेतः।

त्राद्यचः स्थाने जातयोदीन्ते स्थितयोर्थवयोः स्थाने क्रमादि-मुमीस्तो णितिते परे, नतु खङ्गादेः। *

४१८। द्वार खर ख: खिस खादुम्दु व्यन्तम ख: खन् स्फांडात ख खाध्याय खग्रामे-कत्यग्रोधानां खापदन्यङ्कोस्तु वा निविति खादे:।

द्वार—न्यग्रीधानां ६॥, यापद-न्यद्वी: ६।, तुःशा, वाःशा, नःशा, तुःशा, द्वाःशा, नःशा, तुःशा, द्वाःशा, नःशा, तुःशा,

द्वाराटेरिदतीयस्य न्यगोधस्य च योृर्युम् स्यात्, स्वापदन्यङ्गोस्तु वा, न तु स्वाटेरिकारादो ते । १

^{*} यच वच यौ तयो: । इय उप यू ताथां स्युम् इति लृतप्रथमा दिवचनं यथाक्रमार्थं। स्वङ्गय व्यङ्गय व्यङ्ग व्यवहार्य व्यायामय स्वागतय स्वध्वर्य सन् च तत्,
प्रयावज्योगे तस्य । स्वङ्गार्यः भप्त भच्छाः, सन् इति (११४१) क्रत्पत्यथः, तेन तदसस्य ग्रह्मार्थः प्रयाद इति स्विते इति च प्रवृतेते । इसुमीर्भस्वादादौ । शिति ते
पर चादौ इसुमि क्रते प्यात् इदिः । पाणिनिः ७।३।३,०,५,८ । चव द्रष्टव्यम्—पाणिनिये स्वागतादिगणे व्यायामश्रान्दो नाभ्ति, स्वपतिभव्दलु द्रस्ति ।

[†] एकीऽदिनीययासी न्ययोधयित एकन्ययीधः । एकीति किं, न्ययीधम् लेकावाः न्यायीधम् लाः भालयः इति भटानिदीचितः । न्यायीधम् लिकिसित (४३२) सृतं स्वयं वस्यति । द्वारच स्वर्थ स्वरिति रीपान्तमन्ययच स्वमीत्यन्ययच स्वाद्वर्य व्यक्तस्य स्वम् दृति सान्तमन्ययच चा च स्प्राक्षत्य स्वयं स्वाध्यायच स्वयाम्य एकन्ययीधयत्ते तेवां । व्याद्वयं न्यदृष्टित तस्य । वा भादिर्थस्य स व्यादिसस्य । द्वाराटीनां यवयीरहान्तवात् भाद्यच स्थाने भ्वातत्वाच पूर्व्यवाप्राप्ती वचनिन्दं । दाराटियं-वयीरिसुमी स्थातां चिति तद्विते परं, व्यापह्यद्वीम् वा, व्यन्यस्तीनां (वार्त्तिकीतं —व्यदंप्रव्यवधीय) इकागदी तद्विते परं तृ न स्थादिन्ययः । स्व स्वः अध्यायः स्वाध्यायः इति व्यत्पत्तिः, न तृ (स्) श्रीभनः भाष्यायः स्वाध्याय इति काशिका । स्वाद्वयः द्वित परं केषाचित् सते पृथक् पदद्यम् । स्याभभवस्य द्वारादिगणं न हम्यते । पाणिनिः ७।३।४,५,६।

वैयखि: सौविख:। खङ्गादेस खाङ्गि: व्याङ्गि: व्याङ्गि:। *

४१८। व्यासादेई क् व्याौ।

(व्यासार: ६।, जब ११, ची ७।)।

वैयासिकः सीधातिकः। १

मात्रेयः गौभ्रेयः। गाङ्गेयः माहेयः यौवतेयः। 🕸

४२०। च्योर्लोपोऽकद्रुपागड्डोरेये।

(भो: ६।, खोप: १।, भकटु-पाख्वी: ६॥, पर्य ७।)।

* पूर्वम्त्रीदाइरणमाइ—विगतीऽत्री यस सः व्यत्रः तस्यापत्यं वैत्रत्रिः, ण्टनतात् चित्रत्यये यकारस्य इति क्रते तसीय विदि:। एवं क्रीभगीऽत्री यस सः सन्नः तस्त्रापत्यं सीवितः, वकारस्य उति तसीव विदि:।

चादाच: स्थाने जातयी: किं, दिधिषय: चत्री वस्य स दध्यय:, मधिपयीऽची वस्य स मध्यय:, तस्य तस्य चपत्यं दध्यवि: मध्यवि: इत्यादी इस् उस् न स्थात्। दाले स्थितयी: किं, दधाती: बट वत् इति बच्दः, यतः इदं यातमिति, एवं दयी-वैर्धेयोभवं दिवाधिकं इत्यादी इस् उस्व स्थात्।

खङ्गादेनु श्रीभनं भङ्गं यस्य स खङ्गः खङ्गस्यापत्यं खाङ्गः, विगतं भङ्गं यस्य सः ध्यङः व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गः, व्यङ्ग्सापत्यं व्याङ्गः इत्यादौ यवयोर्दान्तवादायनः स्थाने जातत्वाद्य प्राप्तौ निवेधः । यनन्तस्य तु व्यावक्रीशौ, व्यव-कुत्रधातोः (११४१) यन्पत्यये, व्यवक्रीश-शब्दात स्वायं को ईपि सिङ्गम । पाणिनः ७१३।६ ।

† व्यासादिश्व्रस्थ स्थाने क्ष्म् स्थात् विषम्बये परे, क्षित्वादन्यस्य स्थाने । भन्-स्थितिः । व्यासस्थापव्यं वैयासिकः, व्यासभव्दात् षिः यकारस्य (४१०) रम्, (४१६) रकारस्य इक्षिरैकारः, भनेन क्ष्म् । एवं सुधातुरपत्यं सौधातिकः, सुधादणव्दात् षिः, भायची इक्षिः, सस्थाने क्ष्म् । व्यासादिसु — व्यास वद्य निषाद च्याल विश्व सुधाद प्रस्तिः । पाथिनिः ४।१।८०, वार्त्तिक्य ।

‡ चत्रात्नैनाइ — चत्रेरात्यं, ग्रभस्यापयं। चावादौन् चाइ गङ्गाया चपत्यं, मच्चाचपत्यं, युवत्याचपत्यं, सन्तेत्र चीयप्रत्यथे यद्यायीग्य (२५८) इतर्यावर्णये चिंपः। चत्रादिल् — चति ग्रभ पूक् सकस्डुपाच्डुकादू ब्राह्म कुमारिका रोडिणी विमाट विधवाचन्यिका क्रिकाणी गोधाग्रक नटी प्रस्तिः। पाणिनिः धारारे २३। जवर्णस्य एये परे लोपः स्थात् नत्वनयोः। कामण्डलेयः।
तयोन् काद्रवेयः पाण्डवेयः। *

४२१। कल्याणी सुभगा दुर्भगा बन्धकी रजकी बजीवदी ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमा परस्यनुस्च्यनृदृष्टि कुलटाभ्य दुनेयः।

(कल्याची---कुलटाभ्य: प्र्श, इनेय: १। ।

सीभागिनेयः दीर्भागिनेयः। १

४२२। जुद्रागोधार्थ्यो वैरारौ।

(चुद्रा-गोधाभ्य: ५॥, वा ११।, एरारौ १॥)।

नाटेर: नाटेय:, गौधेर: गौधार: गौधेय: । 🕸

ः कमण्डलीः कमण्डला वा श्रपत्यं कामण्डलेयः, णोये प्रानेन उनर्यलीपः। कद्रा प्रपत्यं, पाखीरपत्यं — उभयत उनर्थलीपाभाषे, (३३०) उनर्णस्य प्रीकारः, (३५) श्रीस्थाने प्रन्। कमस्डलुः चतुषाज्ञातिविशेषः। पाणिनिः ४।१।१३५; ६।४।१४०।

‡ चुद्राय गोधा च ताथ्य: ; (पाणिनौ ''गोधाया दृक्'' इति एकादचननिर्देशात् ''चुद्रास्यो ना'' इति वक्ष्वचननिर्देशाक) । एरच चारव एरारौ । चुद्रा: कुलशील होनाः

[†] सर्वयमान् विभक्षं विपरिणामः इति न्यायान् एये इति सप्तस्यन्त पदं प्रष्ठानं भूला सन्वर्णते। कल्याणीति नयीदमस्य परस्य णियस्य स्थाने इनेयः स्थान्, स्थानि-क्लात् वृद्धः, स्वयामीप् च। कुलटा इड कुलल्यक्ता सती भिन्नुको, भस्तीवाच्ये द्व (४२२) परम्त्रमाप्तिः। कल्यास्या भपत्यं काल्याणिनेयः, स्थियां काल्याणिनेयः, सभगाया भपत्यं सीभानिनेयः, दुभंगाया भपत्यं दीभागिनेयः, सभय (४१६) सभगादिलाद्भयपद्विद्धः। एवं परस्तिया भपत्यं पारस्त्रेणेयः इत्यन् (२५८) ईवर्णः लोपप्रसक्ताविष, सभगादिपाठ-समर्थान् (२५८) ईकारकीपाभावे, भयतः सभी, पयात् तस्येव वृद्धः। सभगादिय-सभगा दुभंगा सुद्धः सक्त्रसिम् भनुशतिक भनुभंवतस्य कुरुष्या स्वयं स्थिते चतुर्विद्या भिन्नस्य स्थितस्य सुद्धानगर कुरुण्यक्तं परस्त्रो राजपुर्वे प्रसिम् परिद्धेन चतुर्विद्या भिन्नस्य भन्नियस्य सुद्धानगर कुरुण्य स्थयातस्य इत्यादौ दिक्तयः। यथा, भन्नीचं भागीचमित्यादि। पाणिनिः धारारर्द, १२०। भन्न पाणिनीये कल्याग्यादिगणे रजनकौष्यस्याने जरतीयन्दो द्याते।

गार्ग्यः वात्यः जामदग्न्यः पाराग्रर्थः । *

४२३। योदौतीऽज्वत तसदय-काङ्यः।

(भीत्-भौतः ५।, भचनत् ।२।, तक्तदयक्य-ख्याः १॥)।

श्रीदीद्वाां पर-स्तसंज्ञः कत्संज्ञकस्य यः काब्यी च श्रज्वत स्वात। पं बाभ्रयः। ह

नाडायनः गार्ग्याक्णः दाचायणी । पेतृष्वस्रीयः मातृष्वस्रीयः । रैवतिकः भ्राष्ट्रपालिकः । यादवः श्राङ्गिरसः । §

भक्तकीनाथः। "का: चुटा नाम ? भनियतपंक्ता भक्तकीना वा" इति भाष्यसः। "व्यङ्गाद् भी नाभ्याचः" इति क्रमटी चरः । गीधामब्दः ग्रुमादिगणान्तर्गतः । अस वामञ्दस्य व्यक्ष्यावाचित्वात चुद्राभ्यः परस्य णीयस्य एरः स्थादा, गोधायाः परस्य णीयस्य एरारी स्यातां वा इत्यर्थ:। कुलभीलहीना यथा—नक्या चपत्यं नाटेर: पर्व नाटेय:। एवं कुल टाया अपत्यं कौल टेर; कौल टेय:। सतीवाची तुपर्वमुवादिनेये कौल टिनेय इति । एवं दास्या चपत्यं दासेर; दासेय: इत्यादि । चक्र हीना यथा-- काषाया: भापत्यं कार्णरः कार्णय इत्यादि । गीधाया भापत्यंगीवेरः गीधारः गीधेय इत्यादि । पाविनि. ४।१।१२८,१३०,१३१।

- गर्गादीनाइ—गर्गस्थापत्थंः वसास्थापत्थं, जमदग्रेग्पत्थं, पराग्रस्थापत्थं, मर्व्वव गर्गादिलात पाप्रत्यये, चाराचो हजी, (२५०) यथासम्पर्यासम्गावणं योलींगः। स्त्रियां (२५८) यलीपे गार्गीत्य।दि। गर्गादिय-गर्गः वत्स अजः अगस्ति पुकस्ति चमस्रीभ भग्नियेश शह शक धनम्रय लोहित बस मण्ड मन्तु बतग्ड कग्व. यजनन्त शख्डिल चयक सुद्गल कसद्ग्रिपराश्रर उल्कादण्ड प्रस्ति:। पाणिनि: ४।१।१०५।
- † भीच भीच तकात्। अभ्य ६व भज्यत्। तथाकसती, तयोर्णः तकदयः, तकदयय काय उपायाते। पाणितिः ६।१।७८,८०।
- ‡ बसीरपत्यं बासव्यः, अत्र बस्त्राच्टात् भी कर्तः, (३३०) एकारस्य श्रीकारे, अभेन यस्य भज्यक्षात्रे, (३५) ऋषिकारस्य भव्। (पाणिनिः ४।१।१०६)। एवं नावासार्य्य नाव्यं, (४२८) पाप्रथये, घनेन धच्तुल्यले, घौस्याने धाव्। स्रती यकारे. सन्धं भाव्यक्तियादि । गामिक्कति गव्यति, नाविभिक्कति नाव्यति (८४३) कामलाग्रे अञ्चतः । गौरियाचरति गन्यते, नीरियाचरति नाव्यते, अभयत्र (८४८) बाप्रत्यये, अञ्चत्।

§ नडादि-चतुष्टयसाह -- नडस्थापत्यं नण्डायनः, नाग्येस्थापत्यं गाग्यायणः, दच-स्थापत्वं स्त्री दाचायणी, सर्वेत्र नड़ादिलात् प्रायन:। नड़ादियः (पाणिनिः

४२४। मन्वर्जान्वर्योः चर्यनोऽनोऽध्वातानो-ऽपत्यज्योऽविकारव्याभावकर्यय देने न न-स्रोपः।

(सन्वर्णान्-वर्षे। चर्छनः ६।, चनः ६।, चप्तासनः ६।, चपस्यक्रेश, चिवकारक्षः-सावकसंग्रेशः ।, देनेशः, नः।१।, नःकीपः १।)। *

मन्वर्जस्थानी वसंगः उत्तरः स्थात् परस्थेनय श्रवत्थार्थ-ची, श्रनी विकारार्थवर्जे स्थी भावकसंगर्थवर्जे ये च, श्रध्वास्मनीरीने, न लोपी न स्थात्।

याज्वनः भाद्रवर्माणः श्रीत्रणः चाक्रिणः । 🌣

धाराहर, १००, १०१) नद नर तीप काम्य दिखन् इसिन् बदर षम्यल दख्डा प्रभृति:। पिटलसुरपत्यं पैतृलसीय:, सातृष्वसुरपत्यं मातृष्वसीय:, उभयन पिटलसादिलात् षीय:। (पांचिनि: धारारचर, १३४)। देवत्या ष्पत्यं देवतिकः, प्रम्यन रेवत्यादिलात् चित्रः। एवं डारपालिक इत्यादि। देवत्यादिस्य—देवती षम्यपासी मिणपाली वारपाशी वक्षवस्य वक्षयाहः कर्षयाह दख्याहः समरवाह प्रभृति:। यदोरपत्यं यादवः, प्रक्षिपसीऽपत्यं षाक्षिरसः, एवं रघोरपत्यं राववः इत्यादिसु प्रेयलात् चाः। (पांचिनि: धाराटर) सूवे प्रेयः = ष्रपत्यादिस्यतुर्थः नादनीऽथः। षम् त वाह्यादिम्यान्याकंतिभन्न इत्यादः।

अ सनं वर्णयतीत सन्वर्णः (१००२), सन्वर्णधासी चन् चिति सन्वर्णान् । स्थः संयोगः, स्यादिन् स्थेन् । सन्वर्णान् च वर्णः च उचा च स्थेन् च सन्वर्णान्वर्थे। वर्षः च उचा च स्थेन् च सन्वर्णान्वर्थे। तस्य । प्रत्य च प्रतिकार चः प्रतिकार चः प्रतिकार चः प्रतिकार चः प्रतिकार चः प्रतिकार च प्रभावकर्षये च प्रभावकर्षये च प्रभावकर्षये च प्रभावकर्षये च प्रभावकर्षये च प्रतिकार च प्रभावकर्षये च प्रभावकर्षये च प्रतिकार च प्रतिकार च प्रभावकर्षये च प्रतिकार च प्रत

[†] भव (४३३) विकारायेवर्ज-णे परे सब्बेंपा-मनलानां न-लोपनियेषे, भपत्याये खे परे सनलस्य न-लोपायंसाह सन्वर्जानिति, भपत्याचे परे सन्-वर्जस्य समलस्य न-लोपनियेषः। निवंधः, सनलस्य तु न-लोपनियेषः। सनलवर्जनात् वर्ष्याचेऽपि न-लोपप्राप्तो तस्य न-लोपनियेषाधे पुनवंद्यंचोऽपि न-लोपप्राप्तो तस्य न-लोपनियेषाधे पुनवंद्यंचोश्वरणम्। छत्त्वानु इह यहचं नियमायंभेव, तंत छत्त्वाः भपत्याचे एव न-लोपनियेषः, भन्याचे उनन्लोपः स्थादेवेति। यज्यनोऽपयं याज्यनः, भद्रवसंगोऽपयं भाद्रवसंगः, छभयव

श्रैवः वाश्रिष्ठः । 🔅

४२५। सङ्ग्रासंभद्रात्मातुर्ङ्र् यो।

(सङ्ग्रा-सं भद्रात् ५।, मातुः ६।, खुर् ।१।, परिः)।

हैमातुर:। 🕆

४२६ । नन् पुंस्तियोः । (नन् १२, पुंक्तियोः ६॥)।

पींस्रः स्त्रेणः। #

विषवात् चाः, चनेन न-लीपनिषेधः । मननस्य तृ सुमान्तीऽपत्यं मौसामः इत्यादि । प्रत्यक्षं इति किं, चर्म्मणा परिवतो रयः चाम्मणः । उत्लोऽपत्यं चौत्यः (४३५) उद्विताः, भपत्यार्थभित्रक्षेत् उत्त्य इदं चौदां चर्मः । चित्रणोऽपत्यं चाक्तिषः, एवं क्षाक्षिनः शिष्टनः ष्टासिनः इत्यादि संयोगः दिनो न-खोपनिषेधः । चनोऽविकारचे यूया— क्रक्षाः नानाति वाक्षणः । सास इदं सामनिभत्यादि । तिष्टं कथं वद्याणेऽपत्यं बाह्मणः, वद्याद्वर्यागः । उत्तय्ते—"बाह्मोऽनातौ" (६।४१०१) इति पाणिनि-देवेष निपातः । "योगविभागोऽन कर्त्तव्यः । बाह्म इति निपात्यते चनपत्येऽचि । वह्यं चित्राः । चपत्रे जात्वाचि वृह्यं चितः । क्रमावक्षंये । वह्यं चितः । वह्यं चितः । क्रमावक्षंये । व्यत्यं किं, बाह्मो घोषिः ।" इति भट्टोजिदीचितः । क्रमावक्षंये । व्यत्यं किं, बाह्मो घोषिः । अस्ति स्वादः । द्यापिनः ६।४११६४— । । व्यत्यं किं, वह्यं । द्यापं च्यानं कर्त्तव्यस्" "मपूर्व्यात् प्रतिषेधे वा हितनाद्यः । । विवस्त्यस्यः इति वार्त्तिकद्यस्य ।

- श्रीवादीनाइ । श्रिवस्थापत्यं भैवः, विश्वस्थापत्यं वाश्रिष्ठः । श्रिवादिसु श्रिकः
 श्रीत म सनुविश्ववण स्रकः कञ्जत्यः इत्याकु कुद्धा सूमि सपती कर्षनाभाष्टिः । पाणिनः ॥११११२ ।
- ां सक्का च सम् च भद्रय तकात्। सक्कावाचकात् सभी भद्राय नाटण्डस्य जुक् यात् चे परे, कि खादत्यस्य स्थाने। वयोगांचीरपत्यः दैमातुरः, चन तद्वितार्थे विषये देगी, शेषलात् चे कते एकपदीभावात् दे-रिकारस्य (४६६) ब्रद्धिः। एवं तिस्यणाः गतृणानपत्यः नैमातुरः. वचां मातृषानपत्यं वाच्छातुरः। संमातुरपत्यं सांमातुरः, वं भद्रमातुरः। पाचिनिः ४।१।११६॥।
- ‡ पुम्स-स्त्री-शब्दयी: नन् स्थान् ची, निचादनी, घदनानकारस्थिति:। पुंचीऽपत्यं ों सः, स्त्रिया चपत्यं स्त्रैणः, चीननि चक्रते (२५०) चकारसीपः। एवं इदमादांबे

४२७। कुञ्जादेणीयन्योऽस्तीःवेऽपत्वे।

(क ज्ञादे: ५।, चायन्यः १।, अस्ती व्व ०।, अपत्ये ०।)।

कुज्जादेरपत्यार्थे णायन्यः स्थात्, नतु स्त्रियां नच ब्वे । कोज्जायन्यः ब्राप्तायन्यः । स्त्रीब्वे तु कोज्जायनी कोज्जायनाः ।*

़ ४२८। गर्गयस्कविदादि-स्टग्वचि-कुत्सा-ङ्गिरो-वशिष्ठ-गोतम-क्रढांत् लुक् व्वेऽस्त्रियां।

(गर्ग-कदात् ५।, लुक् ।१।, व्वे ७।, अस्त्रियां ७।)।

देशतुल्बाख्यः चित्रयोः रुडः। एभ्यः परेषामुकानां त्यानां व्वे विचितानां तुक् स्थात् नतु स्त्रियां। पे

गर्गाः वलाः, यस्ताः लम्चाः, विदाः उर्व्याः, श्वगवः अत्रयः कुल्लाः अङ्गिरसः विष्ठाः गीतमाः, अङ्गाः वङ्गाः कलिङ्गाः। स्त्रियांन्तु भार्गव्यः । ध

चिकतेऽपि यया—पंस दर्दं पैंसिं, स्त्रीणां समूहः स्त्रीणं, स्त्री दंवता प्रस्य सीणः। पाणिनिः ४।१।००।

^{*} स्त्री च व्यञ्च स्त्रीव्यं, न स्त्रीव्यं पस्त्रीव्यं तिसान्। णायनीन णायनी वाप्यते। कुञ्चस्थापत्यं, दाभ्रस्थापत्यं, णिस्तान् पाद्यको हिति:। कुञ्जस्थापत्यं स्त्री, कुञ्जस्थापत्यः।नि प्रमानः, इत्युभयत्र नज्ञादिलान् प्यायन एव । कुञ्चादिलाु—कुञ्च बक्ष श्रद्धालोन भस्य ग्रभ विषाग् प्रस्ति:। पाणिनि: ४।१।८९ ; ५।३।११३ ।

[†] गर्गं य सक्त य विदय ते चादयी येथां ते गर्गयक्त विदादय:, चादिशब्दस्य प्रत्येक निस्त्रस्य गर्गादि-यक्तादिः विदादय इत्यर्थः। ते च स्रग्य चित्र कृत्मय चित्रस्य विशादय गीतमय इत्याद्याः दिश्व तृत्याः चार्याः यस्य मः देशतु त्याः व्याद्याः यथा वडी देशविशेषः, वङ्गं पातौति (४२६) चण्यत्यं यङ्गाराजा इत्यादि । ''जनपदवचनः चित्रः" इति पाणिनिः। जक्तानां त्यानामिति चपत्यार्थप्रत्ययानामित्यर्थः। जुक्-कर्णात् (६३) त्यक्षीपं त्यानचणिति चाथेन इडाइदिनं स्थात्।

[†] गर्भस्थापत्थानि क्लास्थापत्थानि, उभयत्र गर्गादिलात् चास्य लुक्। यस्कत्याप-स्थानि सञ्चास्थापत्थानि यस्कादिलात्, विदस्थापत्थानि उर्जस्थापत्थानि विदादिलात्

४२८। ढघे कात् ष्णीककण्णीनेयास्रानितस्।

(ढ-वे ७। कात् ५।, णीक कण्णीन-६या: १॥, घ ।१।, घनितः १॥, घ ।१।)।

कात् परा एते पूर्वे च सेतोऽनितश्व खुः ढे घे च वाची। *

तर्को वित्ति अधीते वा तार्किकः; पदकः, क्रमकः; वैया-करणः; वाचा कतं वाचिकं; पाणिनीयं; यत्त्या युध्यतेऽसी भाक्तीकः, याष्टीकः; तिथेण धुता राचिः तैषी, पौषी; चत्तांय साधुः चित्रयः; यज्ञाय हितं यज्ञियं; मथुराया आगतः

एवं स्गोरपत्यानि एतेषु णस्य लुक्। यस्तादिर्यंणा — यस्त पुक्तरस्य वर्षुक सम्यक्त लक्ष (लुज्ञ वा) रधीसुख कीष्ट्रपाट प्रस्ति:। विदादिय — विद् पुत्र उन्ने कस्यप क्षिक भरहान उपमन्यु प्रापत्तस्य प्रश्वतः। विदादिय — विद् पुत्र उन्ने कस्यप क्षिक भरहान उपमन्यु प्रापत्तस्य प्रश्वतः। विदादिय — विद् पुत्र उन्ने कस्यप क्षिक लक्ष । कृत्रस्यापत्यानि प्रति प्रश्वतः। स्थादिषु णस्य लक्ष ॥ किन्तम् प्रसिद्वत्वत्यिर्धापं रुद्धा वृत्ता। ति उद्दरः। प्रश्वतः। प्रश्वतः। स्थाविष्ठ क्षित्रयः। स्थाविष्ठ किन्ने स्थाविष्ठ किन्य स्थाविष्ठ किन्ने स्थाविष्ठ किन्ने स्थाविष्ठ किन्य स्थाविष्ठ किन्ने स्थाव

^{*} टख यथ टचं तिक्यन्। खीकथ कण्च खीनथ इयस ते। नास्ति इत् येयां ते चितः। खीनेयासित चकारेण पूर्वीकाः िष्णप्रस्तयः प्रत्ययाः समुधीयत्ते। स्वितः स्ति विशेषणान्तरं समुधीयते। तत्य— इह चतारः पूर्वेकािष सप्त इति एकादश प्रत्ययाः सर्वकारकेश्यः कथाणि कर्तर च वाची स्यः, ते च प्रयोगानुसारेण कचित् इदिलाः स्य्रियथः। इत्-रहिता इति कथनात् (४१६) चिति ते परे हिंदिनं भविष्यतीति। स्थ्यिभेषे प्रत्ययिभेषन् स्थिधानात् च प्रयहति।

माधुरः ; इह भवं ऐहिसं ; कादाचित्तं ; ग्रामीणः, ग्राम्यः ; मूर्जन्यः ; नादेयः ; ग्रानीयः ; नागरः ; श्रग्राः । *

४३०। व्यटेर्नीपोऽनाराच्छाखतोऽच्येऽयौ।

(य टे: ६।, खोप: १।, चनारातृ-मधत: ६।, भच्-यं ७।, भयौ ७।)।

अ तर्कम वेलि अधीते वा इत्येषे एव तर्कम इत्यक्षात कर्मकारकात कर्मरि वाची शिंकः । (पाणिनि: ४।२।६५) । एवं -- पदं थेति पधीते वा पदकः, क्रमं वेति पधीते वा क्रमक:, अभयत्र अनित कण । (पाणिनि: धारा ६१) । व्याकरणं वित्ति अधीते वा वैद्याकरणः, व्याकरणप्रश्टात् णप्रत्ये (४१०) यस्याने इ.म्, तस्य वृद्धिः । (पाणिनिः ৪। २।४८)। बाचा तर्तवाचिकम्, अत्र वाची इत्यस्नात् करणकारकात् कर्माण वाची चिषकः, (४३१) न टंतसावित्यनेन दान्तत्वनिषेधान् (२११) विरामाभावे कुङादिनं क्यात । (दाणिनि: प्राक्षात्र । पाणिनिना प्रीक्षं पाणिनीयम्, अत्र पाणिनिना इति कर्सकारकात कर्माण बाची चीय:। (पाणिनि: ४।३।१०१)। एवं प्रव्यंवर्माणा प्रोक्तं श्राञ्चविद्यांकि सित्यादि। श्राक्षीक रत्यच करणकारकात कर्भरि वाच्ये चौक:: यध्या युध्यते वासी बालीकः। (पाणिनि. ४।४।५८)। पाणिनिमते तु शक्तिः प्रहरणमस्य, यक्षिः प्रकरणमस्य इत्याकारं वाक्यम्। तिष्येण नववेण युक्ता राविः तैषी. एवं पुष्येण न तमेण यक्ता रामि: पौषी, उभयन तिथीण पृथीण इति कर्मकारकात् कर्माण वाची चों जाते ब्रुडी. (२६०) यकारलोपे, (२५०) विस्तादीय । (पाणिनि: ४।२।३) । चित्रियः, यित्रयम् इत्यभयन ताद्यें हितप्रब्द्यीगे च चतुर्य्यनादकारकादिप इयप्रत्ययः, सूने कार-कादिति तुप्रधानेन व्यपदेशा भवन्तोति न्यायादुर्ता। (३०८) स्वामी श्रराधिपती त्यभेन सम्बन्धविववायानेव षष्ठीसप्तमीविधानात्, चलाय साधरित्यत्र निमित्तार्थे चतुर्थी। (पाणिनि: शाशाश्च - अन सूत्रे नाती घः न तु साध्वर्षे । पाणिनि: प्राशाप्र) । सायुर द्रति मधरायाः दति चपादः नकारकात् कर्त्तरि वाची षाः। (पाणिनिः ॥ ॥ ७४)। इ.इ. इ.ति ऋधिकरणात् कर्लरि वाच्यं णिको ऐडिकां, एवं कटाचित् भव कादाचित्कं, भाजकाण । (पाणिनि: ४।३।५३)। यामे भव: याभीण , भाज गीन: एवं यास्य इत्यत्र च्याः । (पाचिनिः ४।२। ८४ ; ४।३।२५)। मुर्द्धन भवी मूर्कचः, अपत्र चीत्र कर्ते (४२४) न-लोपिनिवेध:। (पाणिनि: ४।३।५५)। नद्यां भवी नादेश:, भव खेयः, (पाणिनि. ४।२।६७)। श्रालायां भवः श्रालीयः सत्र गौयः । (पाणिनि: ४।२।११४)। नगरे भवी नागर:, चत्र च: (पाणिनि: ४।२।१२८)। चग्रे भव: चग्र:, चत्र चार:, (पाचिनि: ৪।৪।११६) । एतेषु उदाहरचेषु (२५८) यथासम्बन्ध इवर्णावर्षलोप: प्रत्यगास सेतीऽनितस क्रीया:। एवं प्रथीगानुसारेण कारकात् कर्माण कर्त्तर च वाची प्रस्था-भवनीति ।

पौन:पुनिकः, वाह्यः वाहीकः। #

४३१। न दं तसौ त्वस्त्रधें च।

(न । १।, दंश, त-सी १॥, तु।१।, भल्य थें ०।, च ।१।)।

चय।विच ये चते पूर्वे दसंद्रां∙न स्थात् तान्त-सान्ती तु प्रस्थर्थे च।

श्रारातीयः शाखतिकः। १ ॰

* व्यख टि: व्यटिस्ख। चाराच शयम तत्, न तत् चनाराच्छ्यत् तस्य। चय चय प्रचं तिलन्। नास्ति युर्यक्षित् चैयुत्तिक्षित्। चारात्-श्यत्-विजितस्य चय्यस्य टेलें।पः स्थात् प्रकरणवलात् तिहितसं क्षले चित्रि ये च परे इत्यर्थः। पुनःपुनःभैवः इति वाक्ये (४२८) चिक्ते. (४१६) इती, चनेन टिलीपे पौनःपुनिकः। विह-भैवः इति वाक्ये च्यां चौकं च इती, टिलीपे वाच्यः वाहीक इति। एवं सायंप्रातःभैवः सायं-प्रातिक इत्यादि। चयौ किं, अंयुः चहंयुः। चारात् श्रयत्ते विद्ययस्य टिलीपाभावज्ञापनाये, तेन सुष्ठुभावः सौष्ठवं, श्रं विद्यते इस्यं श्रं, एवं क्षय इति। "च्ययानां भनावे टिलीपः। चित्रियोऽस्यन"। इति सिद्धानकौस्दी।

† तथ सथ तसी। चिति चर्थी यसाति शित्। तिश्विविद्देष्टे पृर्व्वस्थिति न्याया-दाइ -- पूर्व दसंजंन स्वादिति। घचेऽयौ इत्यनुवर्णते। (३१८) प्रस्वे परे र्ते-र्विक सप्तिमितिमात्रिय पद्वे भनेन निषिध्यते। भारातीय इति भारात् भव इति वाक्ये (४२६) ईये, भनेन पदलनिषेधात्न (५८) चपीऽवे अम। एवं शयत् भव इति वाको विवास भाषातिक इति। ये परे यथा— लच इटंलाचं, दिश्रि भवं दिश्यमित्यादौ धनेन दानत्वाभावात (२११) विरामे परेन कुङादिः । एवं धानङ्कः मधुलिह्यं गीद्रह्मं भीपान इमियादी क्रमेख न, दङ्ढ च घङ (१८२,१७५,१७६,२३०)। ताल साली यथा-तिइती भाव: ताड़ित्यं, भस्त्रयें तिड़त्वान् इत्यादी न (५८) तस्त्र द। एवं म्बर्गी विकार: पायस्यं घतादि, पायसं परनाव्नं, अस्यर्थे पयस्वान् पयस्वी तेजस्वी म्बादी घटान्तवात्, स्थादीयसस्परताभावादिति केचित्, न सस्य (१०२) विसर्गः । मधी किं, अंयु: च इंयु: च च दानत्वात् (५३) मस्यातुस्वारः। चर्च किं, वासर्य दिसाचम् इत्यादी दालालात् (६४) विरामविद्यितं कार्यं स्थादेव । किञ्च नञा निर्दिष्ट-निवासित न्यायात भवदीयमिलादी दान्तवात् (५८) जब, भंग दलादी (५३) "बब्ययतीर्ष्यीत्तरपदीदीच्यग्रामकोपध-नस्यानुस्त्रारः। पाणिनिः १।४।१८,१६। वेधे वैद्याच्छी विप्रतियेधेन'' इति वार्त्तिकस्रा

४३२। श्रङ्गीऽङ्गोऽनीने।

(चक्र: ६।, चक्र: १।, चनीने ७।)।

त्राक्तिकं। ईनेतु दाहीनः। श सुपाञ्चालकः यर्षपाञ्चालकः। ११

दीवारिक: सीवरं सीवं सीवस्तिक: सीवादुग्रदवं वैयल्कसं भीवं भीवनं स्फैयकतं सीवं सीवाध्यायिकं सीवग्रामिकं नैय-ग्रीधं। एकेति किं, त्याग्रीधमूलिकं। भीवापदं खापदं, नैयङ्गवं न्याङ्गवं। खागंणिकं। ध

^{*} न ईनोऽनीनसिक्षिन्। अइन्-शब्दस्य अक्षः स्थात् अचि ये च तितिते, न तु ईने अयौ च। त्वन्ततात् अस्तये इत्याय मानृवित्तः। अक्षि भवं आक्षिकं (४२८) चिक्ते, अनेन अक्षादेशे, (४१६) वृद्धिः। ईने तु, द्वयोरक्षोभंवः इति तिद्वितार्थविषयदिगौ (४२८) ईने कृते, अकादेशनिषेधात् (३३०,२५८) द्वयद्वीनः। पाणिनिः ५।१।०८, ८६, ८०: ६।४।१४५।

^{+ (}४१६) सुपञ्चालादी तुदाइरित — सुपञ्चाले (देशे) भवः, श्वर्षपञ्चाले भवः, उभयव (४२८) कण्, परपदस्य बिहः । सुपञ्चालादिन् — सुपञ्चाल सञ्चपञ्चाल श्वरंपञ्चाल पूर्वपञ्चाल दिविषयञ्चाल उत्तरपञ्चाल गृहलचु पितृपितासङ वातिपत्त वातश्चेष एकपुष्प पूर्वपञ्च पूर्वपञ्च अपर डायन हिसंबत्तर हिवर्ष विस्पति हिनिष्क हिस्वर्ण प्रोष्ठपद भद्रपद स्थादि । अत्र दृष्ट्य्यम् — पाणिनैः ७१११० — १८ स्वाणि उत्तरपद- ब्रुग्धं कानि ; ७२११८ — ११ स्वाणि समयपद्वज्ञायेकानि । त्र प्रश्चनीकानि स्वाणि वीपदेवमते सुपञ्चालादिगण्घटकानि ; भेषीकानि तु तन्त्रते सुमगादिगणप्रयोजकानि (४१६ सृतं दृष्ट्य्यम्)।

^{‡ (}४१८) दारादी हदा हरित — बारे नियुक्त: दीवारिक:, (४२८) चिक्त:, वस उम, तस उम्र, दिन द्वारि नियुक्त: द्वारिक दित। (पाचिन: ४।४।६८)। स्वरे भवं सौवरं, स्वरमधिकत्य क्रतीययः सौवर: दित वा, चा:, उम्, तस उद्घः। (पाचिन: ४।३।८०)। एवं सर्वम। सः (स्वों) भवं, सौवं, चाव स्वर्यस्तात् चा:, (४३०) टेडोंप:। (पाचिनि: ४।३।२५,५३) स्वलौति विक्त सौविसकः, स्विच यथा स्थान्या विक्त, वस्यित दित वा—चिक्तं,

४३३। विकारसङ्घभावेदंश्वितखार्थादौ।

(विकार-सार्थादी श)।

एखर्षेषु चते त्याः स्युः।

हेन्त्री विकार: हैम: त्राप्य: त्रानिय:, भित्ताणां समूह: भैतं श्राक्तं गाणिकां राजकां, गुरोभीव: गौरवं यीवनं साम्यं वैरूप्यं राज्यं सीहाईं, विणोरिदं वैश्यवं ब्वदीयं माघवनं गीवनं। *

टेलींप:। खाद सदना कर्त. खादसदैनि संकर्त वा. (भक्तं) सीवादसदवं। व्यक्त भी-ऽव्यत्पन्न: व्यल्कासे भवं वैयल्कास। केचित्त व्यल्कासभव्दं द्वारादी न पठिना ते पुन:, विगतीऽर्क: व्यर्क: तं स्थित व्यर्कसः, किपिलिकादिलात रस्य लः तत्र भवः वैयल्कस इति चाद्यच: स्थानजातलात् (४१७) यस्य इम् तस्य बहिरिति बदन्ति। य: (परदिने) भवं शौवं, को टेलेंगि:। शौविभिक्तलमिति अहिकाळी—्य: परदिनं तेकते गच्छतीत श्वस्तिक: (११६) कामत्यय: श्वस्तिक एव श्रीविक्तिकसस्य भाव इति व्याख्या, भन श्वसम्बद्धः वस्य उम् । मुनि भवं भौवनं, (४२४) भविकारका परेन-लोपनिषेधः। (१८४) खयुवनधंगामिति तडितपरे वर्जनात न वस्य छः। सप्राकते भवं स्फैयक्ततं, स्प्राः खादिरः खड़गः, तेन क्रतमिति त्तीयातसपुरुषः। स्वे (धने चाला (न वा) भवंसीवं। स्वाध्याये वेदे भवंसीवाध्यायिकां वेदाध्ययनं। स्वयासि भवं सौवगानिका । खान्य हणे नैवेष्ट सिखी खाध्याय खगामयो ग्रंडणं चन्य ब्रह्मादिस्थित स्वत्र च्रत्य निवेधार्थे, तेन खगन्दसद सामन्द्रं, स्वीदरं पूरवतीति स्वीदरिक इत्यादि । नागंधे भवं नैययोधं, न्ययोधी वटहच:। एकंकि किं,न्ययोधमुले भवं न्यायोधमुलिकन। चापरे भवं शौवापरं चापरं. न्यडौ (स्रगे) भवं नैयडवं न्याडवं, उभयव विकल्पेन दस्य उस्। ग्रनां गणः अरगणः अरगणे भवं अरागिक कं, (पाणिनौतु अरगणेन चरतीति यागणिक: यमणिक इति ४।४।११) भन (४१८) यादेखिकारादी तिस्ति परे निष्धात न वस उम । इकार कि, महंदायां भव: शौवादए: इत्यादी उम स्थादेव। अव (३४) मनीवादिलात् (पाचिनि: ७।३।६—"पदालस्यान्यतरस्थाम'') चकारदीर्घ. ।

* खस पातानीऽयं: प्रभिषेयः खायं:, खार्थ प्रादिश्य म खायांदिः। निकार्य सहय भावय इदम् प हितस खायांदिश समाद्रारं तिकान्। प्रकृतेरवस्थान्तर विकारः, (पाणिनि: ४।२।११४), सङ्घः समूहः, (पाणिनि: ४।२।२०), भावोऽसाधारणवर्षः, (शब्दम्बन्तिनित्तं भावः, प्रकृतिनम्यवो धेमकारो भाव इति वा) (पाणिनि: ४।१।११६), इदिनिति सम्बन्धीपल्यक्षं, (पाणिनि: ४।१।४)

838 | स्टट्रो ये। (स्त्।रा, र: रा, वे का) ।

पित्रंग । 🕸

४३५ । इन्षन्धृतराज्ञामुङ्लोप: **ष्णे।**

(इन्-यन्-धतराज्ञां हा।, खङ्खोपः १।, खे ०।)।

वार्त्तेन्नं पीणां धार्त्तरात्तां। एषां किं, सामनं। 🕆

स्वार्थः प्रकृतार्थ।नितिरिक्तः ("स्वार्थं 'उपसंख्यानम्' दित वार्त्तिकम्)। एषु चर्येषु ते पूर्वीता: (४१५) थि खेर खा खारन गीय किन था, (४२८) शीन नण् यीन इस, एते एकादश प्रत्ययाः सेतः भनितम स्वृत्तियथैः । मतापि यस्मान मन्दात् यस्मित्रर्थेयः प्रत्ययः सेत् चनित्, वा स्थात्, एतत् सर्व्ये प्रयोगातुसारेणेव क्रीयं। चादिपदेन "सास्य दंवता" (पा. ४।२।२४), "तदस्य पर्ण्यम्" (पा. ४।४)५१), "भ्रिल्पम्" (पा. ४।४।५५), "प्रहरणम्" (पा. ४।४।५०), "शीलम्" (पा. ४।४।६१), "तत्र नियुत्तः'' (पा. ४।४।६८), "'तस्येत्ररः" (पा. ५।१।४२) इत्यादयी वहवीऽर्या बीध्याः। हैम इति चनेन खप्रत्यये, (४१६) हिंदि: (३३७,२५८) नस चकारस च लीप:। एवं चपां विकार: भाष्य: चत्र चारः। चग्ने विकार: चाग्नेयः, चत्र चोयः। भिचाचां समूहः भैचं (पाणिनि: ४।२।३८), चन्नां समूद: चान्नं, (वार्त्तिकम्), चन चौ (४३२) चन्नादेश:। गणिकानां समूह: गाणिकां, चन चाः। राज्ञां समूह: राजकं, चन कच्। यूनां भाव: यौवनं, (४२४) ऋविकार-च्छे परे न-सीपाभाव:, (१८४) सञ्जितवर्जनात् न वस्र **उ:। (पाणिनि: ५।१:१३०)। समस्य भाव: साम्यं, विष्ठ**पस्य भावी वैष्ट्यं, उभयव च्याः। (पुरीहितादिगवान्तर्गतस्य) राज्ञी भावः (पाविनिमते भावः कम्प्रवा) राज्यं (सप्ताङ्गवचनं), क्याप्रत्ययं, (३३७, २५८) नस्य चकारस्य च लीपः। सुद्धदी भावः सीहाई पा:, (४१६) सुभगादित्वात् समयपदव्यति:। वैचाविमाणव पा, (११७) चवर्णस श्रीकारे, (३५) भव्। तव इदं लदोर्थ, भन **गी**य:, (२१५) लदार्दश:। मघवत दूरं माघवनं, (१८१) तुङ्पचे माघवतं, ग्रन दरं शीवनं, छभयव पी, (१८४) न वस्य उ:, (४२४) चविकारची न सीपनिषेधसः।

च्यतारो र: स्थान निज्ञत-यकारे परें। पितृरिदं पित्रंग, (४३३) भनित् चाः।
 (पितृरागत इति तुपाणिनि: ४।३।७६)। ये किं, पैतृकं, सेत् कण्।

† इन् च घन् च धतराजन् च तेषां। घन् इति घन् भागान्तः, सेन उचन्-पूषन-प्रश्रतीनां ग्रहणं। (११७) सदालीऽस्नोप इत्यनेनैव चान्नोपे सिन्ने इदंनिग्रनार्थे, तेन

४३६ । युषादसार्त्वनारां युषाकासाक-तवक्रममकाः व्याणीने।

(युषाद--मदां ६॥, युक्ताक - ममकाः १॥, पाणीने अ)।

यीषाकं यीषाकीणं, श्रास्माकं श्रास्माकीनं, तावकं तावकीनं सामकं सामकीनं। *

सर्व्याय हितं सौरीयं त्रागस्तीयं त्रात्मनीनं। चोर एव चौरः त्रैलोक्यं रामकः। 🕆

ची परे एवानेव उन्डलीप: स्थान नान्यस्य इत्यर्थ:। व्यक्त इट इति वाकी (४३३) ची कते वनहन् द्रवस्य उङ्लीपे, (१८८) ऋख्याने घः. (४१६) चायची वृद्धिः, वार्त्तघः । एव' पूर्ण इटं पीर्ण, धतराज इटं धार्मराजं। उत्तानु ऋपत्यः धें गो, भीत्ता इति (४२४) पूर्वसुटाइटतम्। एवां किं, सास्र ६टंसामनं, घव पूर्वेणापि (११७), उङ्लोपी न स्थात । सर्व्यंत्र ऋविकार-ची न लीपाभाव: (४२४) । पाणिनि: ६।४।१३५ ।

युप्पट भन्मद ल्व्ट सद् एषां स्थाने क्रमान युप्पाक भन्नाक तवक समक एते भादेशा: स्यु चो चोने च परे । युक्साकानिदं इति वाक्ये ची चीने च कोर्लुकि युक्साका-देश्रे बड़ो यो माकं यो माकी गं। एवं घास्नाकं भास्नाकी नं। तव इटंडरित बाक्ये चे क्योनि च युक्त स् एक लात् (२१५) लदादेशे, चनेन तवकादेशे हडी तावकं तावकीनं, एवं सामकं सामकौनं। स्त्रियौ सामकौ (इट्टिनि), सामिका(खीर्वि)। पाणिकिः धाशार,र,र्।

^{† (}४३३) दितार्थे चटाइरति सौरीयमित्यादि । स्ट्यांय इत्यसात् याये विभित्त-लोपे, (२६०) बलोप:। एवं चागक्षीयं। चालाने दिलं चालानीनं, चत्र चीने (४२४) न-लोपनिवेधः । (पाणिनिः प्राराटः, ६।४।१६८)। स्तार्ये छदाइरति, चीर इति । एवं चिलोकी एव चैलीका अपच को हडी (२५८) द्रेकारलीप:। स्वार्थप्रत्यप्राना: पूर्व्वतिङ्गाप्वेति नियमेऽपि घस्य क्रीवलामीभधानात्; घतएवोक्तं कवित्स्वार्धिकाः प्रत्यया खिङ्ग्वचनान्यतिवर्त्तनी । राम एव रामकः, ऋव कर्ण् । कप्रत्ययोऽन्यार्थेऽपि भवति, यया— भज्ञाने कुर्त्सिते चैव संज्ञायामनुकस्पने। तट्युक्तनीताबयःचे वाच्छे इस्से च क: स्मृतः ॥ इति प्राञ्चः । तट्युक्तनीतौ चतुकम्पायुक्तनीतावित्यर्थः । पाणिनिः "चज्ञाते'' (प्री १।०३), ''कुलिसते'' (७४), ''संजायां कन्'' (७५), ''चनुकम्पायसम्' (७६), ''भौतौ च तदयुक्तात्'' (७७), ''बर्खे'' (८५), ''ऋखें" (८६)।

४३७। केऽक: स्वी हे तुवा।

(के ७।, भक: ६।, स्त्र: १।, क्षे ७।, तु ।१।, वा ।१।) ।

कन्यका, सुकन्यकः सुकन्याकः। *

बिवो देवता यस्यासी ग्रैवः, ग्राक्तेयः। 🌣

8३८। त्वतौ भावे। (ब-तौ १॥, मावे अ)।

साधुलं जड़ता, पाचकलं, बाह्मणीलं । 🕸

* भक्तः प्रत्याद्वारस्य स्वः स्यात् कथि परे, बहुनी ही तुवा। कन्या एव कन्यका, भव भनित-कथि कते, भनिन इस्ते, स्वाधंपत्ययानास्त्रिङ्का एवेति (२४८) भाग्। एवं स्थालिका रामोक्का, सेनानिका द्रत्यादि। श्रीभना कन्या यस्यित बहुनी ही सुकन्यकः सुकन्यक, भव वा इस्तः। भक्त इति किं, नीरेव नौका द्रत्यादि। पाथिनिः ७।४।१२,१४,१५।

इसे परेऽपि कृचिन् इस्ती वक्तव्यः यथा—कालिदासः, वेदेश्विन् ,केतिकदन्तुरितं, नाडिनचत्रभित्यादयः प्रयोगानुसारात् ।

- † (४३३) ऋादिपदस्य उदाहरणमाह भैव:, ऋत णः। (पाणिनि: ४।२।२४)। एवं म्रक्तिदेंवता यस्यामी भाक्तेय:, भन भोयः। एवं माक्तः वैष्णवः गाणपत्य द्रसादि। प्रयोगानुसारेण अर्थविभेषे तिज्ञिपत्यया भविष्यनौत्यादिपदेन मृषितमिति।
- ‡ स्यायतात् त त इति इयं स्थात् भावेऽषें। चिभिषात् तात्तस्य क्रीवतं, तात्तस्य च स्वीतं स्थात्। भावसु प्रवितिनिमिनं, येन घभीष चयं गौरित प्रतीतिः स्र धमी गीजन्दस्य भाव इत्यथे:। साध्याः भावः साधुतं, नड़ाया भावः नडता, उभयव (३२०) पंवडावः। पाचिकाया भावः पाचकतं, चव (३२०) पंवडावः। पाचिकाया भावः पाचकतं, चव (३२०) पंवडावः। सेथिलत्वित्यादिः। स्रवे षष्ठा भावः पष्ठतं, मेथिल्या भावः सेथिलत्वित्यादिः। प्राच्चाय्या इत्युक्तः न पंवडावः, एवं दत्तात्व-मियादि। त्व त इत्युभयस्य भावविद्यतः प्राच्चायस्य च सामान्यविश्वभावाभावात् वाध्यवाधकत्वाभावे नडस्य भावः नड्तं भड्ता नाडंः। गुरोभिवः गुक्तं गुक्ता गौरविमियादि स्थादेव। चव वक्षव्यम् —'दिवात् तत्वं' (५।४।४२०) इति पाचिनिम्वं पदि पदिवता इति सार्थे तन्त्रस्यः। पाचिनः ५।१।११८।

४३८। **जीकोऽर्घात् सः ष-स्ति।**

(लि-इक: प्रा, च-घांत प्रा, स: ६।, ष: १।, ति ७।)।

म र्घात् लीकः सः षः स्थात् ति ते। यज्ञ हं, र्घात् गीस्तं। अ

880। चृत् सास्ये। (वृत्।रा, सासे०)। उपमानार्थे चृत्स्यात्। कष्ण इव कष्णवत् पं

88१ | मतुरस्टार्धे | (मतः ११, श्रास-श्रेष्ण)। श्रीरस्ति यस्यासी श्रीमान्, विदुषान् दीषान् । क्ष

अं लिस्स् लीक् तस्त्रात्। नास्ति घें। यत्र सीऽर्धसस्त्रात्। दीर्घवर्णात् लिङ्गस्र दकः परस्य सस्य षः स्थात् तिज्ञत-तकारि परे। यज्ञुषो भावः यज्ञुषः, एवं इतिष्टं। गिरी भावः गीस्तं, एवं घूस्तं, श्रव (२२८) दीर्घे, रेफस्य (१०२) विसर्गे, (६५) विभगस्य सकारे, षत्वप्राप्तौ दीर्घपरत्वाद्विषेषः। सीकाः किं, वसुत्तरां। पाणिनिः प्राहा१०१।

[†] समस्य भाव: साम्यं तिस्मन्। स्यादानात् चृत् स्यात् उपमानिऽयें। चकारोऽ-स्ययार्थः (६४)। क्रमण इत्र कृष्णवत् शिवी भातीति श्रेवः, एवं कृष्णिनत कृष्णवत् शिवं सन्ये इति श्रेवः। एवं सर्व्विभक्त्रनात् चृत्पृत्यये क्रिलेक्। उपमानं क्रियाविश्रेषणीय-सेव, तेन पुत्रेष तुल्यः स्यूल इत्यादौ क्रियाभिज्ञसास्य न स्यात्। पाणिनिः ५।१११९५, ११६,११७। एषु मुचेषु द्वितीयाटतीयावडीसप्तमीविभक्त्यनादिव वितः स्यादित्यक्तम्।

[‡] प्रति प्रथो यस यसिन् वा सः प्रस्तर्थो विद्यमानस्यस्मसिन्। प्रयमान-पदात्, प्रति प्रस्त प्रसिन् वा इत्ययं, (प्रस्त प्रसिद्धित पाणिनिस्ते धतलात्), मतः स्वात्, एकार इत् (१८२) तृष्यंः, (१८५) दीर्घार्यः, स्त्रियां (२५०) ईवर्षयः । तेन त्रौमान् त्रौमती। एवं त्रौरिक्ष यसिद्धिति वाक्येऽपि त्रौमान्। विदान् प्रसि यस्य यसिन् वा इति वाक्ये विद्यान्, पत्र (२२६) मतौ परे वसीवंत्रास्य एकार-विधानसामस्योदित, (४४२) प्रकारीक्त्वेन प्राप्तस्यं वतुं वाचिता, मतः स्वात् । तत्य वस्य एते, (४२१) न दंतसाचित्यनेन दान्तलिवेधात् विदामामावे, (१८२) दकीऽपात्री, (१११) पत्नं। एवं दोरिक्ष यस्य सदामान्। पत्र व्यक्तिन्तंत्रक्ष्यः, यवादिय—यव किमं स्निक्तिम द्वादा इति, ककुत् गहत् प्रस्तः। पाणितिः धाराव्यः, ८४।

88२। मो**ङ्म-भ्र**पात् वतु:।

(म्-भ-छङ्-भ-भ-भाषात् ५।, वतु: १।)।

मकारोङोऽवर्णोङो मकारान्ता दवर्णान्तात्, भाषान्ताच, वतुः स्यादस्यये । लच्चीवान्, य्यस्वान् भास्वान्, किंवान्, ज्ञान-वान् विद्यावान्, विद्युत्वान् । *

४४३। सङ्मेघास्**मःयात् विन्**वा।

(स्रज्-मेधा-चम्-मायात् ५।, विन्।१।, वा।१।)।

स्रावी मेधावी तेजस्वी मायावी। पचे स्रावान् इत्यादि। १

"न कर्म्यारयान्यत्वींगी बहुनी ६ वेटवेंगिति पत्तिकरः" इति प्राञ्चः, तेन, भीभना बुद्धिति कर्म्यपारंगे सुर्वुद्धरत्वयस्थित सुर्युद्धमान् जन इति न स्थान, भाभना बुद्धि- वंस्थासी सुर्युद्धिति बहुनी ६ भैव तद्यंप्रतिपादनात्। मत्वादीनां स्थानमाङ दुर्ग- सिंहः, सूम-निन्दा-प्रश्नंसासु नित्ययोगेऽतिश्चायने। संसर्गेऽकिविवचायामभी मत्वादयो मताः॥ यथा— भूषि गीमान्। निन्दःयां पाषी। प्रशंसायां कपवान्। निन्दःयोगे भताः॥ संसर्गे दृष्णी पान्यः। स्तिस्थायने उद्श्वती कन्या। संसर्गे दृष्णी पान्यः।

* मच घर मी, मी उडी यथोजी मोडी, मोडी च मच घर भाग् धित तथाता। अध्य प्राचार । सद्मार स्थार प्राचार स्थार प्राचार स्थार काम सद्या काम सद्या काम सद्या किम् घर्ष्य प्राचार स्थार विद्या घर्ष्य व्या विद्या घर्ष्य काम स्थार स्थार किम् घर्ष्य विद्या काम किम् वाका नि । यथावान भास्तान विद्यान एतीषु (४६१) हाना तनि विधात न सस्य विस्ताः, न च (४८) तस्याने द । परमाधनन पूर्वत्त्। पाणिनि ८। २। १०।

कसुर-वितस नड़ादीनाम् चकारखोषी निषात्यः, तेन कुमुद्दान् वेतस्वान् नडुान् इस्यादि । (पाणिनिः प्राश्वः । एतन्त्राते स्तुप्) । राजन्वान् इस्यच न-खोषाभावो निषात्यः । (पाणिनिः प्राश्थः) । उदन्तातुदंधौ चर्यं निषात्यः । (पाणिनिः प्राश्रः) । चष्ठीवत् चक्षौवत्-चर्यांखदादयम् निषात्याः (पाणिनिः प्राश्रः) ।

† सक् च मेधा च घम् च माया चिति समाहारे तथान्। एथीऽस्पर्थे विन् वा स्थात्। पच पूर्वेण वतः। सक् घस्यस्य सन्यी, अव दास्तलनिधेधाभावात् विरामे परे (१११) कुड्, ततः (१८८) दीर्घः, (११८) न लृप्। एवं मेधा घस्यस्रीत्यादि। घामगीऽस्यस्य घामगावीति निपातनात् चकारस्य घाकारः। पाणिनिः ५।२।१२१। "आमग्रस्थीपसंख्यानं दीर्घय" इति वासिक्षाः।

888 । नैकाजादिन वा _।

(नैकाजात प्रा, इन । शा, वा । १।)।

यनेकाचीऽवर्णान्तादिन् वा स्याद्त्यर्थे। ज्ञानी ग्रिखी। *

४४५। शं-कंग्यां य-यु-त-तु-ति-व-भा:।

(ग्रं-कं स्या ५॥, य—भाः १॥)।

ग्रंयः ग्रंयः गन्तः ग्रन्तः ग्रन्तः ग्रंवः ग्रंभः । 🕆

88ई। गी त्या मेधा दन्त का गड द्युवल विल पर्व चूड़ा फोन लोम पाम प्रच्या मधु केश रज: फलोणी शृङ्ग निद्राशी वातादे— मिन् सेरोरेर मोलेभ तलेल शन गर व वलेन यारका लंकिन् वा।

(गी -वातादी: ॥।, मिन्-किन् ।१।, वा ।१।) ।

[%] न एकी नैक:, नैकी उच्यस स नैकाच, नैका चासी भवेति नैका ज: तस्मात्। प्रानम् प्रस्यस्य ज्ञानी, शिखा प्रस्यस्य शिखी, एवं माखी दस्त्री दस्यादि। पर्वे प्रानवानिस्यादि। नैकाच: किं, संधनम् प्रस्यस्यिति न स्ती, परन्तु स्ववान्, खामीति स्यं वस्त्रति। पाचिनि: प्रारा११५। "दिनिठनीरिकाचरात् प्रतिवेषः" दिति वार्त्तिकः ।

⁺ अम् कम् इति मानाव्ययाथाम् एते सप्त प्रवयाः खुः चस्वथें। श्रं कत्वाधं विद्यतेऽस्य श्रंयः, चन टिलीपाभाववीजं (४३०) द्रष्टव्यम् । एवं (४३१) नजा निर्दृष्टमनिव्यमिति न्यायात् दान्तत्वनिषेधाभावे (५०) मस्यानुस्वारः । एवं श्र्युरित्यादि ।
कं वारिषि च सूर्वनौत्यमरः । पाणिनिः धारारद्रः च चन द्रष्टव्यम् — वीधलिङप्रकाशिते चष्टके पाणिनीथे शिवरामप्रकाशितायाच वैयाकरणि ज्ञान्तकौ सुद्यां वप्रवयी वर्म्यत्वेन खिखितः, तारानाध्यकतं वाचस्यतिप्रकाशितायान् निष्ठान्तकौ सुद्याम् चनः स्थलेनेति प्रभेदः । "यो वः प्रत्यसस्विजः" इति नियमान् चनः स्थप्य भवितुमहाति ।

एभ्य एते क्रमात् स्युः अस्त्यर्थे वा। गोमी। *

४४७। नाम्त्रस्यर्षेऽचो र्घः ।

(नामि ७।, पर्यये ७।, पत्र: ६।, र्घ: १।) । †

स्वामी, त्यपसः, मिधरः' रिष्यरः, दन्तुरः, काण्डीरः श्रण्डीरः, युमः दुमः, बलूलः वातूलः, बिलभः तुन्दिभः, पर्वतः मक्तः, चूड़ालः मांसलः, फेनिलं पिच्छिलः, लोमशः रोमशः, पामनः श्रङ्गना, प्राज्ञः श्राजः, मधुरः कुच्चरः, केशवः मानवः, रजस्वला कषीवलः, फिलनः विर्णिः, जणीयुः श्रष्टंगुः, श्रङ्गारकः वन्दारकः, निद्रालुः, द्यालुः, श्रश्मः वैजयन्तः, वातकी श्रतिसारकी। इ

[⇒] क्रमीयद्या-~-

कारुड द्यु बल बलि पर्व्य चुडा फीन सीम दन उर् ईर म जल इभ केश रजस फल কৰ্মা निद्रा पर्श्वस वात वस 37 य चारक वातादेरित्यादिपदं सर्वेत्र योज्यं। भव यद्यपि सामान्येनीक्षं तथापि भर्धविभेषे ज्ञातयः। गावी विद्यन्तेऽस्य गीमी, पर्व गीमान्। पाणिनिः ५।२।११४ ; ४।२।८० ; "मेधारणा-भ्यामिरब्रिरची वज्ञाची'' दति वार्तिकाम ; ५।२।१०६ ; १११ ; १०८ ; "बलाचील:" इति वार्त्तिकम्; प्राराश्वरः; "पर्व्यमब्ह्यां तप्" इति वार्त्तिकम्; प्राराट६; रहः १००; १०१; १०७; १०८; ११२; ''फलवर्डास्वामिनच्'' इति वार्त्तिकम्; धारा१२३,१४०; "प्रज्ञवन्दाध्यामारकन्" दति वार्त्तिकम्; निद्रालु: द्याल्रिति निपूर्वद्राधातोः दयधातीय चालुच्प्रत्ययेन सिश्चं (पा. ३।२।१५८) न तु ति ब्रतप्रत्ययेन ; प्रारा१२०; १२८।

[ा] भची दीर्घ: स्वात् प्रस्थर्यप्रत्ययेषु, नास्त्रि वाच्ये । पाणिनि: ६।३।१२०।

[‡] स्त्रोऽस्थास्त्रीति स्वमस्त्रीति वास्त्र इत्यस्त्रात् मिन्, घनेन होर्घः, स्वामी ईत्ररः। त्यस्यस्य त्यसः, एवं नेधा घस्यस्य मेधिरः इत्यादि वाक्यं। यवास्त्रभवं (२५०) इत्यावर्षकीपः। सर्व्यत्र घक्षिधानान् स्त्रीपुंतिङ्ग-स्थवस्या।

88८। वाग्मि वाचाट वाचाला:।

(वाग्मि - वाचाला: १॥)।

वाचीऽस्त्यर्थे एते निपात्यन्ते। *

88र । जन-खलादि-गो-रघ-वातात् तेन्-चकडोलं सङ्घे।

(जन--- बातान् ॥।, त-इन्-च-कडा-जलं १।, सद्दे ৩।)। '

जनता बन्धुता, खिलनी इलिनी, गीता, रथकद्या,वातूलः । १

एतिह्वानि — चूड़ादिलान् — ('सिमादिस्यय'' इति तृपाणिनिः ५।२।८०) मांमलः भंगलः पांग्रलः स्वामलः पिङ्गलः कपिलः कष्टूनः पृथुलः पण्यलः मञ्जलः सदृतः चटुलः पेग्रलः ग्रकलः तृन्दिलः भीलः कुम्रलः घारालः भीतनः पृप्कलः श्रम्भलः। रीमादिलान् कपिमः कर्कमः गिरिधः। पामादिलान् —वानः दृष्णः लक्षमः। प्रज्ञादिलान् —वानः प्रार्करः सैकतः वैद्यः वाभवः। मध्वादिलान् —पैषिरः जषरः पृप्करः सुखरः खरः नखरः पाखुरः बन्धुरः कुम्ररः नगरं। केमादिलान् —विषवः राजीवः गाख्डीवः भ्रप्यवः मिषवः हिर्ग्यवः। रजभादिलान् —दनावलः ग्रिखावनः पर्वदलः जर्जस्वलः साववलः पुत्रवलः उत्पाहवलः। मलादिलान् — मौलनः। जर्णादिलान् —गभेवः। निद्रादिलान् —तन्दालः लज्ञालः श्रदालः क्षपालः हृदयालुः, भीतालः खणालः इस्थिलः — इत्यादीनि प्रथीगानुसारान् भ्रयानि।

* वाच्यान्त्रस्य स्थाने एते निपात्यन्ते भारत्यें। निपाती द्वार्थविशेषे इति वास्मीति प्रशंसायां, वाचाटवाचाक्षो निन्दायां, बहुसाषित्वादस्ययं इति। ''यो हि सस्यग्वह भाषते स वास्मी''। यो तुकृत्वितं वहु भाषेते तो वाचाटवाचानो । च्यतएव पाणिनौ (५।२।१२४,१२५) स्वहयं, परस्वे च ''कुत्वित इति वक्तव्यम्'' इति वार्त्तिकम् ।

† जनस खलस तो आदी यस स जनखलादिः, सच गौय रथस वातस तत्तसात्। तस इन्च चस कदाय जलस तत्त्। समूहायं जनदिसः खलादिदिन् गोधन्दात् वः रयात् कदाः वातादृलः स्वादित्यथः। जनानां समूहः जनता, एवं वसुता गजता। स्वानां समूहः खिलनी, एवं इलिनी विधिनी पिदानी कुसुदिनी। जनादिः खलादिस प्रयोगतो श्रेयः। गवां समूहः गोवा, रथानां समूहः रथकदा, वातानां समूहः वात्तः। जलप्रस्वानस्य पृंस्तम् भनेषां स्वोतस्य मिधानात्। पाणिनिः ४।२।४३, ५०,५१; 'वातात् समूहे च' इति 'खलादिश्वः इतिः'' इति च वार्त्विम्। अन्त रथकद्या इत्यपि पाठानारं द्वायते।

४५०। सङ्ख्याया डट् पूरणे।

(सङ्गाया: ५।, उट् ११।, पूर्ण ०।) ।

एकाद्यानां पूरणः एकाद्यः। 🏶

४५१। नोऽसङ्ख्यादेर्मट्।

(न: ५१, भरजादि: ५१, मट् ।१।)।

त्रसङ्गादेनान्तसङ्गाया मट् स्यात् पूर्णे । पञ्चमः। 🌵

८५२। तमट् षष्ट्यादेः। (तमट् १११, षष्ट्यादेः ५१)।

असङ्घादेः षष्टादेः पूर्णे तमट् स्थात्।

षष्टितमः सप्ततितमः। सङ्गादेसु एकषष्टः। ईः

84ू३। श्तादि-मास-संवत्सरात्। (*)

एभ्यस्तमट् स्थात् पूरणे। यततमः एकयततमः, मासतमः

संवसरतम: | §

[•] सङ्गावाचकेस्यो उट्स्यान् पूर्ण । उटावितौः श्वकारस्थितिः, डिस्तान् (१२६) टिलीपः, टिस्तान् (२५०) ईप् । पूर्यंते सम्पद्यते भनेनेति पूरणः करणेऽनट् । दशपर्थं- नानां विश्वपप्रस्थिन वाधितलान् नान् विहाय उटाहरित, एकादशानां पूरणः एकादशः इति, एकादश सङ्गा धेन करणेन पूर्णं भवति स एकादशः पुतः, दशपुत्रेभ्यः पर- इत्यर्थः। एवं दादश इत्यादि । स्त्रियास् एकादशो इत्यादि । पाणिनिः प्राराधः

⁺ सङ्कार धादिर्यस्य स सङ्गादिः, न सङ्गादिरसङ्गादिससमान, न प्रत्यस्य विशेषणं। पञ्चाना पूरणः पञ्चमः (११८) नस्य लुप्। टिस्नात् (२५०) पञ्चमौत्यादि। एवं सप्तमः घष्टमः नवमः दशमः। धसङ्गादेः किं एकादशः द्वादश द्वादि। एषां सुख्यानासिव ग्रद्यणं, तेन घतिपञ्चानाः पूरण द्वादौ न स्थात्। पाणिनिः ५।२।४८. ।

[‡] परिरादिर्थस्य म प्रधादिलस्यात्। षष्ट. पूरणः, सप्ततेः पूरणः। एवं कनपष्टि-तमः, ऋषीतितम इत्यादि। एकपष्ट इति (४५०) उट्। पाणिनिः धाराध्रद।

[,] १ प्रतादिय मासय संवत्सरय तत्तकात्। प्रथक् योगात् असङ्गादिरिति

848 | विंशत्यादेवी | (विंशत्यादेः प्रा, वा ११)) !

विंगतितमः विंगः, त्रिंगत्तमः त्रिंगः। *

८५५। चतु:-षड्-डित-क्रिययात् घट्।

(चतु:-कतिपयात् भ्री, बट् ।१।)।

चतुर्धः षष्ठः कतियः कतिपययः । 🌵

८५६। बद्ध-गण-पूग-सङ्घातोस्तिषट् तलोपश्च।

(बहु-मती: ४।, तिबट्।१।, तसीप: १।, च ।१।)।

बहुतियः यावतियः। 🕸

नानुक्तंते, तेन सङ्गादिश्वीऽसङ्गादिश्वी वा एश्व इत्ययः। श्रतस्य पूरणः, एकश्रतस्य सूरणः, नासस्य पूरणः, संवत्सरस्य पूरणः। एवं एकमासतमः एकवत्सरतम इत्यादि। पाणिनिः प्राराप्रकः।

- * विंगतिरादिर्धस्य म तसात । चादिपदेन नवतिपर्थनं व्यवस्थीयते । सङ्गादे-रसङ्गादेवां विंग्रत्यादं नमट् स्थादा पूरणे । विंग्रते: पूरणः विंग्रतितमः, पर्धे (४५०) डट्, (१२६) तेलींपः, (२५८) चकारलीपः, विगः। एवं विग्रत्नमः विंगः इत्यादि । सङ्गादं सु एकविंग्रतितमः एकविंग्र इत्यादि । पूर्वेण (४५२) सङ्गादि-वर्जनेऽपि, चनेन सङ्गादेः पत्यादेः पूरणे तमट् वा वक्तयः, तेन एकपष्टितमः एकषष्ट इत्यादि । पाणिनिः ५।२।५६ ।
- † चतुर् च षष् च उतिथ कतिपयय तसमात्। उतिथिति प्रत्यः (५०८), तेन तदनाना किति-यित-तिनां ग्रहणं। एथः पूरणे थेट् स्यादित्यंः। भतुणां पूरणः चतुर्यः, एवं पष्ठ इत्यादि। विद्यमानिविभिक्तिकाना पदलं स्वाभाविकं, लुप्तविभक्तिकानाना पदलं स्वाभाविकं, लुप्तविभक्तिकानाना पदलं स्वातिदिश्किमेव, तत्य त्रातिदिश्किमनित्यभिति न्यायात्, चतुर्थः पष्ठ- इत्युभयत्र पदलाभाविन विरामाभावात् (१०२) रस्य न विसर्गः, (१५५) पस्य च न उदिश्वि। पाणिनिः प्राराधः ।
- ‡ बहुय गणय पूगय सङ्घ पात्रय तत्त्वात । अतुरिति प्रत्ययः (५०८), तेन यावत् तावत् एतात्रन कियत् इयत् इत्येतेषां ग्रहणं। एभ्यः पूरणे तियट् स्यात्, तियट् परे श्रव्यवहितपूर्ववर्ति-तकारस्य लीपय इत्यर्थः। बह्रनां पूरणः इत्यादि वाकः। पार्विनिः ५।२।५२,५३।

840। हितीय हतीय तुर्ये तुरीया:। (रा)।

एते निपात्याः। *

४५८। सङ्घाया धाच् प्रकारे।

(सङ्गायाः ५।, श्राच् ।१।, प्रकारे ७।)।

चतुःप्रकारं चतुर्दा । 🕆

ं ४५६ | देघं हेघा नैधं नेघा षोढ़ैकाध्यं वा।

(हैध-ऐक्ध्यं।१॥, वा।१।)।

एते निपात्यन्ते वा प्रकारे। पत्ते दिधा त्रिधा षड्धा एकधा ।

४६०। सङ्घराया ऋवयवे तयट्।

(सङ्ग्राया: ५।, श्रवयत्रे ७।, तयट् ११।) ।

चतुरवयर्वं चतुष्टयं। §

* दयो: पूरण:, चयाणां पूरण:, चतुर्णां पूरण:, इति वाक्येष क्रमेण एते निपात्या: । तुर्थ दूरेवत्र (२२८) तद्वितयकारवर्जनात् न दीर्घ: । पाणिनि: ५।२।५४,५५; तर्थतरीयेत्यत्र ''चत्रण्ड्यतावायचरलीपच'' इति वार्तिकत्रः ।

† सक्षायाः इत्यनेन (१०१) सक्षातुल्यानामिष यहणं, तेन सक्षावाचितेन्यः छत्यतुबहुगणेन्यय धाच् स्थात् प्रकारे। चकारीऽव्ययार्थः। प्रकारी भेदनाद्य्ये इत्यनरः। चतुःप्रकारिनित चतारः प्रकारा यस्य तत्। एवं कतिधा इत्यादि। सर्व्यविभक्तययें एवायं प्रत्ययः, तेन चतुःप्रकारान् सुङ्कोः चतुःप्रकारौः सुङ्को इत्यादौ चतुः सुङ्को इति। पाणिनिः ५।३।४२। ऋषिच (५।४।२०) इति पाणिनिस्त्रेण वहीः क्रियान्यावृत्तिगणने वर्षमानान् स्वायें धाप्रत्ययो वा स्थात् ; यथा, वहुधा दिवसस्य सुङ्क्ते, बहुवारानित्यर्थः। सत्यव्य वान्यर्थेऽपि घा इति जीमराः। यथा, तिह्नतपरिभिष्टे "वहीरविप्रकर्षे धा वार्" इति स्वकृता गीयीचन्द्रेण "वहुश्रन्दाद्विप्रकर्षे वारे वाच्ये धा वा स्थात्" इति विचित्वता।

‡ दिप्रकारं, विष्रकारं, षट्ष्रकारं, एकष्रकारमिति यथात्रमं वाक्यानि । षड्षेति (१५५) डे क्रते, दान्तटवर्गपरलात् न (४०) घस्य ढ:। पाणिनि: ५।३।४४,४५,४६; योद्रेत्यव ''धासुवा'' प्रतिवात्तिकस्य ।

§ पुन: सङ्गायदणं डत्यतुवहुगणानामप्राप्तायः । भवयववत्तः सङ्गायाः तयट् स्वात्,

8६१ | द्विनेवीयट् | (दिने: प्रा, ना ११, पयट् ११।)।

हयं हितयं, त्रयं तितयं। *

४६२। तरतमौ दिबह्रनामेकोत्कर्षे।

(तर-तमी १॥, दि-वह नां ६॥, एकोत्कर्षे ७।)।

दयोरेकस्यातिगये तरो बइनां तमः स्यात्।

त्रयमनयोरतिययेन विदान् विदत्तरः, त्रयमेषामतिशयेन

विदान् विदत्तमः। ग्रुभतरा ग्रुभतमा। पृ

४६३। रूपकाल्पे चेबूप् खंवा वित्तु पुंवच।

(६.प कर्ल्य ७।, च ।१।, द्वैप् ऊप् ।१।, खंश, वा ।१।, त्रित् ।१।, तु ।१।, पुंतत् ।१।, च ।१।)।

ट इत्। इयीर्विभाषयीर्भध्ये विधिर्नित्यः। चलारीऽत्रयवा यस्य तत् (कुलं) चत्रवयवं इति वाक्ये चतुष्टयं, (१०२,६५,४३८,४०)। स्त्रिया चतुष्टयो। पाणिनिः प्रारा४२।

^{*} दी च त्रयस्र तत् तस्त्रात् दिवे:। भाग्यां अप्यट् स्यादा भवयवे। दावयवं त्राययवं द्रांत वाकादयं, दिः बि-सब्दाग्यां अप्रट्, (२५८) द्रकार-लीप:। पत्ते पूर्वेण तयट। स्त्रियां दयी, बसी। पाणिनि:५।२।४३।

^{ां} तरय तमय ती। दौ च वहवय दिवहवसीयां, (३१३) निर्दारणे यशी। दिवहनामिति वहवयनान्तेऽपि श्रन्थसाम्यात् तरतमाभ्यां कमी श्रेयः। उत्कर्षीऽतिश्रयः। एवम् उत्कर्षाय-प्रत्ययान्ताः पूर्वेलिङ्का एव । विद्वन्तरः विद्वन्तमः, उभयव
विद्याया उत्कर्षी गम्यते, (१८३) टङ्, (६४) टस्य त। द्र्यमनयारितश्रयेन यमा
ग्रम्थतरा, भासामितश्रयेन ग्रम्था ग्रभतमा, (३२७) पुंवदभावः। एवं भतिश्रयेन साध्यी
साधुतरा द्रव्यादि । भव द्रष्ट्यम्—स्वे उत्कर्षश्रम्थ प्रयुच्य वन्तौ भतिश्रयश्रस्यः प्रयुक्तः।
भस्यायमितिगयः—विद्वतरः विद्वन्तः दिवन् मृर्वतरः मृर्वतमः द्रव्यपि भवति।
निर्द्रिकर्षमावे एव तरत्भी, परन् भवक्षस्य भतिश्रयेऽपि। गुणानामुत्कष्टापकष्टलेऽपि
तदितश्रय एव तरतम्प्रयोजकः। भत्यव तिश्वतपरिश्रिष्टे श्रीमता गोधीभन्देष
"दिवहभीऽस्वर्थे तरतमी" दित मृत्र विश्वस्य "भतिश्रयस्य समानद्रपपिच एव भवति"
दिति जन्नम्। पाणिनिः श्राम्रप्रप्रथः।

चकारात् तर-तम-रूप-कल्पेषु दैवन्तमूबन्तञ्च स्वं स्थादा उट-दित्तु पुंवच । स्तितरा स्तीतरा, वामोक्तरा वामोक्तरा। विदुषितरा विदुषीतरा विदत्तरा, सतितरा सतीतरा सत्तरा

४६४। त्यादेश क्षाः। (बादेः प्रा, च १२१, रूपः ११)। सिख्यादेशीत्कर्षे रूपः स्थात्। पट्रुक्पः, पचतिकृषं। प

8ईपू। किमेव्याचाद्रव्ये चतरां चतमां।

(किम्-ए-व्यात् भ्रां, च ।१।, श्रद्रव्ये ७।, चतगां-चतमां ।१॥)।

किम एदन्तात् व्यात् त्याद्यन्ताच दिवहनामेकोत्कर्षे चतरां चतमां स्त: नतु द्रव्ये । किन्तरां प्राह्लितरां उच्चैस्तरां, पचिति-तरां। एवं चतमां। द्रव्ये तु उच्चैस्तरस्तरः । ः

[ः] रुपय कल्यय रूपकल्यं तसिन्। ईप् च कप् च देवप्। उय स्था ह, ह इत यस्य वित्। ईक्तं कवन्तस्य पटं इक्तं वा स्थान् तरतमरूपकल्पेष् परेषु, उकारित् स्वकारिनु पुंचस वा इत्यर्थः। (३२०) पुंवतस्त्रक्तेत्यनेन नित्ये प्राप्ते अपनेन विकल्प-निधानं। इयमनयोरतिभयेन स्त्री, इयमनयोरतिभयेन वामीरूः, इति वाक्यदयं। स्वस्य स्त्रियाः मौन्दर्यगत उत्कर्षो गस्यते। अपनेन वा इन्दः। विद्धातोः भट (१९०३) तस्य स्थाने कसु प्रत्यये, (२५०) ईपि, (२१८) वस्य उः विद्धी इति, ततः इयमनयोरतिभयेन विद्धी, एवं अस धातोः (१९००) अस्टप्रत्यये ईपि सती, ततः इयमनयोरतिभयेन सती इति तरप्रत्यये, अनेन वा इन्दः, पत्ते पृंवसा।पाणिनिः इ। इ। इ। इ।

[†] येन विविधादन्तस्विति न्यायात् त्यादः त्यायनात् चनागत् लिङाच ६पः स्थात्। घच एकप्रत्ययस्य चर्यद्येन कमान्यसम्भवात् किवलम् छत्क्षे द्रश्येव चनुवर्त्तते। चित्रभ्येन पटुः पट्र६पः, चित्रभ्येन पट्वी पट्र६पा, (१२०) पुंवहावः। चित्रभ्येन पचति पचितिरूपं, त्रव कियाया चत्त्रपं:। एवं चित्रभ्येन पचित पचित्रद्रपं द्रत्यादिषु कर्नवेचनानुस्विरेण तिवादयः प्रयुज्यन्ते, पग्नु कियायाः पुंस्तायभावेन ६पान-कियापदस्य निङ्गनिर्णयाभावे सामान्यतान्नपुंसकं, एवं कियायाः सङ्ग्राभावेन च प्रयमीप-स्थितमेकवचनभेव। पाणिनः प्।श्विदः ; १।१।३८।

[‡] किम्च एयः व्यञ्ज किमेव्यं तक्षात् । न द्रव्यमद्रव्यं तक्षिन् । घतरांच घतमां चतो । मण्डूकगत्या दिवङ्गमिकोत्कर्षे इति भनुक्तेते । चक्कारात् त्याद्यनायः।

४**६६ं। गुगादे**चेयसू।

(गुणात् ५।, वा ।१।, इष्ठ-ईयम् १॥)।

गुणवाचिनो दिवहनामेकोलर्षे क्रमादिष्ठेयस् ईयस्विष्ठी वा स्तः।

४६७। जीमंश्च डिन्नेकाच:।

(जि-इसन् ।१।, च ।१।, डित् ।१।, नैकाच: ५।)।

जि-रिमन् इष्ठ ईयसुष अनेकाची लेः परी डित् स्थात्। स्रविष्ठः, स्रवीयान्। १

किन्तु चानुक्रष्टं नीत्तरच इति न्यायात् व्यायान् विव्यय्ते जीनक्षयं चतरां, वहनामेकीत्क्षयं चतमामिति कमः । चकारित् प्रव्ययायं। प्रव किमादीनां मध्ये ये गुणादिवाचिनी द्रव्यवाचिनय तेथ्यो गुणादी वाच्ये एती प्रत्ययो कः, द्रव्यवाच्ये तु न स इत्थयः ।
इदमनथोरितश्येन किम् किन्तरां, किम्श्रव्योऽच कुक्तिनाथः । इथोरितश्येन प्राप्ते
प्राप्तित्रयोन जवैः चवैक्तरां (श्रव्यः), एवं नौचैक्तरां, सुतरां नितरामित्यादि । इदमनयोरितश्येन जवैः चवैक्तरां (श्रव्यः), एवं नौचैक्तरां, सुतरां नितरामित्यादि । इदमनयोरितश्येन पचित पचितितरां, प्रव पचनिक्रयाया जन्कर्षः । जवैक्तर इति, ययादि
द्रव्ये (जातौ च) प्रकर्णामावक्तयायि गुणाक्षयाप्रकर्षे। यदा द्रव्ये प्रारोध्यते तदैवायं
प्रतिविधः, पूर्वेष (४६२) तरतमाविति । एवमेव गीथीचन्द्रचित्रतपरिश्रिष्टे—"नातिद्रव्ययी: प्रकर्णामावात् गीतरो डित्यतम इति न भवित । यदाचापि क्रियाग्रयप्रकर्षी
विवन्यते तदा तरत्नमाथां भवितव्यमेव।" पाणिनः १।१।२२ ; ५।४।११।

- * गुणवादिन इति मुणवदाचिन एव यहणं, नतु गुणमाचवाचिनः, तेन गुक्तीयान् घटः इति स्थान्, नतु घटस्य ग्रुक्तीयानिति । चत्रप्त ''गुणवचनेभ्यो मतुषी लुगिष्टः'' इति भाष्यलिखनम् । ''ग्रुक्तीगुणीऽस्थाक्षौति ग्रुक्तः पटः'' सिज्ञान्तनौसुदी । दिवङ्ग-नामेक्षीत्कार्षे इति चतुवर्त्तते । यदापि पाणिन्यादिन्याकरणेषु (पाणिनः ५।३।५५, ५७,५८) दिवङ्गनासित्यनेन द्यासिष्ठयोः कसी दृष्यते, तथापि, वीपर्वेन कमविपरीत-प्रयोगदर्भनान्, इष्टेयस् द्रयस्तिष्ठी वास्त इति वत्तौ कमाभावः कथितः।
- † जिस इसन् चतत् जीमन्। चकारादिष्ठेयस् च। गाला एकोऽच्यस्य स नैकाच् तस्रात्। इसन्साइचर्यात् जिरच खेः पर एव, तेन जागस्वतीस्य।दीन मसक्षः। चयमनयोरियां वाचितिस्रवेन् खष्ठः सिष्ठः, इष्ठे, चनेन तस्र खिडहाने,

8६८। लुङ्मद्वद्विनां । (लुक् ११),मत्वत् किनां (॥)।

मतिष्ठ:। मेधिष्ठ:। *

४६८ | हन् लोप्यः । (हन् १११, लोपः ११) । करिष्ठः । 🌵

8%। वाढ़ान्तिक स्थूल दूर युव चिप्र चुद्र प्रिय स्थिर स्किरोक गुक् बज्जल त्यप्र दीर्घ ह्रस्व इड इन्दारका:—साध नेद स्थव दव यव चेप चोद प्र स्थ स्कावर गर बंह नप द्राघ ह्रस वर्ष इन्दा:।

(बाद्र-- इन्दानका: १॥, साध--- इन्दा: १॥)।

एषां खाने क्रमादेते खुः ज्यादिषु।

साधिष्ठः नेदिष्ठः स्थविष्ठः द्विष्ठः यविष्ठः चीदिष्ठः चीदिष्ठः

⁽१२६) टिजीप:। एवं लघीयानिति वाः। पचे चघुतरः चघुतम इति । पाणिनिः ६।॥११५५।

[•] सच वच विन् च तंत्रां। चर्षवक्षात् विभन्नेविष्टिचाम इति न्यायात् आहेः समस्यन्यनेवानु इति:। तेन — जि इसन् इष्ठ चूंयमु एषु परेषु मत्-वत्-विनां सुक् खात्। चित्रक्षेत्र मतिमान् मतिष्ठः, चनेन मतीस्तृंति, जिल्लात् टिन्लोपः। चित्रक्षिने सेधावान् मेधावी वा इति वाक्षद्ये वतु-विनोर्ल्कि डिल्लात् टिलोपे मेधिष्ट- इति। एवं मतीयसी मेधीयसीखादि । पाचिनिः इ। इ। ६५।

[†] हन् लोष्यः स्थात् ज्यादितु । चितिष्यमे कर्ताक्तिः, चान्न हणी शोपे, त्यलीपे त्यलचणमिति त्यायात्, (५४२) मुक्षे एकाच्लात् न जिन्द्रद्वादः । एवं करीयान् । कर्त्तर्भावः करिसा। कर्त्तरसामच्छे कारयित, चान हणी लीपे, तत्व्यनगुणसः निहत्ती, स्त्रीपरी पुनः (५००) ब्रद्धः । पाणिनिः ६।४।१५४ ।

प्रेष्ठ: स्थेष्ठ: स्थेष्ठ: वरिष्ठ: गरिष्ठ: वंश्विष्ठः चिष्ठः द्राविष्ठः इसिष्ठः वर्षिष्ठः वस्दिष्ठः । ≉

8७१। प्रमुखः यः। (ममसः रा, मः रा)।

श्रेष्ठ:। 🕆

४७२। ज्यो दृदस्यस्याः।

(ज्य: १।, हर्ड: १।, च ।१।, ईयस्वी ।१।, मा: १।) ।

हतः प्रयस्यस ज्यादी ज्यः स्थात्, तस्मात्रियसीरी त्राः स्थात्। ज्येष्ठः ज्यायान्। क

वाट्य अन्तिक्य प्रत्यादि, साथय नेटयेत्यादि च दत्तः। स्फिरी वह्नये , उदर्मः इ। थं:, त्रप्रोतीति त्रप्र: भीषादिकारिफ:। तन्दारकी देवी सुख्यी वा। क्षमी यया---चिप्र-दूर युवन य व चेप घीद स्यव दव साध टीर्घ त्रप्र क्रख विद बन्दारक बहल स्फिर लक ग र द्राघ इस गर ब ह चप वर ₹4 एषां मध्ये ये गुणाबाचका न भवन्ति तेथ्याऽपि इ.इ.।दथी भवन्ति, इ.झादिषु परेषु चादेशविधान-सामर्थात । अधमनधीरेवां वा चित्रियम बाढ्: साधिष्ठ:, एवं सब्बंब प्रथमान्तेन बार्का। इष्ठप्रत्यये चनेन साधादि-चार्दश्रे (४६०) जिल्ल (१२६) टिसीप:। प्रेष्ठ:स्थेष्ठ: स्फ्रेष्ठ: एतेषु एकाच्लात् न डिक्तं। एकाच-वर्जनसामर्थादव (२५८) यथीरिति न चलारलीप:। राभतर्कवागीमलुप्रस्थ स्कान् विनासर्वे इसलाहिया: एकाच्लात् ञ्रादीनांन डिस्तमिति वदति । एतन्नातद्य पाणिनिसम्प्रतम्, धर्गर् बंद्धि वर्षि द्राघि वप् दस्यादि-इसन्तादेशप्रयोगात्। पाणिनि: ५।३।६१,६।४।१५६, 1 649

भूप्रयस्यः यः स्थात् ज्यादी । चयमनयोरीषां वाचितव्ययेन प्रवस्यः श्रेष्ठः । एवं चैत्रान् । प्रवस्यस्य भावः चेनाः । पाचिनिः ५।३।६० ।

[‡] ईयसीरी ईयस्त्री इति जुप्तमयमेकम्। चयमनयीरेवां वा चित्रयेन इद्धः प्रश्रस्यो का ज्येष्टः। एवं ज्यायान्, चच ज्यादेशात् परस्य ईयधीरीकारस्य च्याः। पूर्वेण (४९०) वर्षिष्ठः वर्षीयानिति च भवति । पाणिनिः प्राराद्दर्भरः।

४७३। पृथु चढु द्या सम दृढ परिष्टढ्खर्ट्री

(प्रयु-परितदस्य ६।, चटत्।१।, रः १।)।

एषासकारस्य अग्रादी रः स्थात्। प्रशिष्ठः। अ

808 । युवाल्पौ'कन् वा I

(युवाल्पी १॥, कान् ।१।, वा ।१।) ।

कनिष्ठः, यविष्ठः श्रत्यिष्ठः । एवमीयसः । 🌵

४७५। गुणादिमन् भावे।

(गुषात् प्रा, इसन् ।१।, सावे अ)।

गुणवाचिन इसन् स्थात् भावे। लिघमा। \$

८७६। भूयोभूमभूयिष्ठा:।

(भूयस-भूमन्-भूविष्ठा: १॥)।

[#] पृथ्य सटुकेत्यादि इन्हें तस्य । भयमनयोरियां वा भतिमयेन पृथुः प्रविष्ठः । एवं सदिष्ठः क्रमिष्ठः समिष्ठः द्रदिष्ठः परिवृद्धिः, प्रयोगान्, प्रथिमा इत्यादि च । पाचिनिः ६१४।९६१ ।

[†] युवा भल्यस कन् स्थाडा जागदी। भयमनयोरीयां वा भित्रध्येन युवा भल्यो वा कनिष्ठ: इति युवाल्ययोक्दाइरणं, पत्ते युवन्धस्टस्थ (४००) यविष्ठ:, भल्यसन्दस्य भल्यिष्ठ:। एवं कनीयान्, पत्ते यवीयान् भल्यीयान्। पाणिनिः ५।३।६४।

[‡] गुणवाचिन इति गुणवाचिन इत्यथे: । तेन कपस्य भावः कपत्वं, रसस्य भावः रसत्विमित्यादि, न तु कपिमा रसिमा इत्यादि । यिक्तमा कालिमा जीलिमा इत्यादि । यिक्तमा कालिमा जीलिमा इत्यादि तृ ग्रक्तादिगुणवती घटादेरैव धर्माः । सघीभावः, सघ्या भावः, सघुनो भाव इति वाकावधेऽपि लिघमा, (२२०) पुंवहावः, (४६०) जिल्लं, (१२६) टिस्तोषण । इमन् प्रत्ययातः पुंलिङ्गप्य चामिनात्, कोवसं प्रियस्य भावः प्रेमा प्रेम इति पुंलिङ्गः क्रीविस्तिः प्रामा प्रिम इति पुंलिङ्गः क्रीविस्तिः प्रामा प्रिम इति पुंलिङ्गः क्रीविस्तिः प्रामा प्रिम हिन इत्यापातः । पाणिनः प्रामा प्रिम हिन इत्यापातः । पाणिनः प्रामा प्रिम हिन इत्यापातः ।

बही-रीयस्त्रिमितशासस्य क्रमादेते निपास्त्रसी । *

४७७। त्यादेश्चोने कल्पदेखदेशीयाः।

(चादे: ४।, च ११।, चीने ०।, कल्प-देखा-देशीया: १॥)।

नेस्याचन्ताच ईषदूनेऽर्धे एते स्युः ।

र्द्रषटूनो विद्वान्—विद्वलास्यः विद्वद्देग्यः विद्वद्देगीयः । तार्विकनः टेग्रीया। पचतिकार्षा १५४

४७८। लेवेड: प्राक्। (वे: ४१, वह: १४, माक्।११)।

ईषटूनः पटुः बहुपटुः । 🕸

४७६। पाशः कुत्सायां। (पामः १।, कुत्मायां ०)।

कुलितो भिषक् भिषक्पायः । §

चित्र प्रोत वहारित वहायव्यादीयसम्बद्धे भृयः, इष्ठप्रविधे भृयिष्ठः । वहोभाव इति इसनप्रत्ये भृमा इति । पाणिनिः ६।४।१५८ १५८ ।

[†] ति चादिर्धमा स त्यादिसमात्। चा (ईषत्) जनः चौनसिमन्, (२६) चकारलीपः। कत्यम देश्यम देशीयम् ते। विदन्तन्त्य इति (१८३) विरामे परे दृष्ट् । एवं विदद्देश्यः विद्वदेशीयः। एषां पूर्व्वितद्वते । ईषट्ना दीर्घा दीर्घकत्या दीर्घनेश्या दीर्घनेशीया, एषु (३२७) समन्तत्रादिलात् पृवद्वावः। ईषट्ना तार्किकी तार्किकदेशीया, (३५०) पृवद्वावः। ईषट्ना त्याकिकते तार्किकदेशीया, (३५०) पृवद्वावः। ईषट्ना यथा स्थानया प्रचित प्रचितकत्यं, एकं प्रमतःकत्यं, प्रमत्वितकत्यं, पर्मतःकत्यं, प्रमत्वितकत्यं, प्रमतः

[‡] ली: पुनक्पादानं त्यादिनिहस्त्ये । स्यायनात् वहः स्वात्, सच वहः परच नातः सन् पूर्वः स्वादित्ययः । बहुपटुरिति विभक्तेणुं कि कते, पुनर्खिङ्गसंज्ञायां विभक्तिः । ईवद्ना विद्वी बहुविद्वी, भव वहुप्रत्ययस्य ग्रसन्तरादितिऽपि परस्याधिताभावात् न (१२०) पुंवत् । पाणिनः ५।३।६८ । भव द्रष्टव्यम्—वीधितङ्गिवरामनते वहुप्रत्यये वस्पेवकारादिः, तक्ववाचस्पतिमते तु स्वतःस्थादिः ; प्रत्ययत्वेन स्वतःस्थादिरेवास्य विद्वितः । ४४५ स्वटीका द्रष्टस्य ।

[§] स्थायनात् पात्रः स्थात् कृत्सायां । कृत्सिता विद्वे विदत्पात्रा, मसनतरा-दिलात प्वदावः । पाणिनिः ५।३।३०।

८८०। चरट् भूतपूर्वे। (वस्ट्।रा, स्तपूर्वे ७)। भूतपूर्वेऽधे वरट् स्थात्। भृतपूर्व बाह्यः बाह्यचरः। ॥ ८८१। स्था क्रस्यस्य। (धाः ४।, वधः रा, व।रा)।

यम्तात् रूपः चरट् च स्यात् भूतपूर्वे धे । क्षणस्य भूतपूर्वो गीः —क्षणरूपः क्षणचरः । ग्रभारूपः ग्रभचरः । प

४८२। बह्वल्यार्थात् काचग्रस्वा।

(बह्नत्यार्थात् ५।, कात् ५।, चग्रम् ।१।, वा ।१।) 🕨

बह्नर्थाद्यार्थाच कात् परसगस् स्यादा । बहुगो देष्टि भूरियः, ऋल्याः स्तोकगः । ‡

अ भूतपूर्व्वः प्रागभृतः, तिकावधे स्थायनात् चरट् स्थात्, ट ईवथः। भूतपूर्व्वः चाद्यः (नतु सम्प्रति वर्षते), भूतपूर्व्वा चाव्या चाव्यचरी, भूतपूर्व्या विदुषौ विद्वषौ विद्वषौ विद्वषौ विद्वषौ विद्वषौ विद्वषौ विद्वषौ व्यवस्तात् प्रभूत्र वर्षत् । पूर्व्वयद्वणात् यत्र वर्षमागृता प्रतीयत तत्र न स्थान्, यया दंषि ने भूत इति । पाणिनिः भार्भः ।

⁺ ष्यत्तात् षष्ठात्तात्। यसायाः (गीः) भृतपूर्वो गौः ग्रभाष्यः, भव (३२०) ष्रयवर्जनात् न पुंत्रावः, यसचरः भव पुंतत् स्थादेव । साणिनिः ५।३।५४।

[‡] वहुष भन्यस वहुती, ती वया यस स तमान, कात् इत्यस विशेषणं। चकारित् भव्ययायम्। प्रयक्षियान् भृतपूर्वे इत्यस्य, त्या इत्यस्य च नातृवत्तिः। वहुस इति वहुत्व देवीलणं कर्याकारकात् चमन्। भृरिष्यः इति भृरि भव्ययं वहुत्यः। एवं सद्धः पृत्रमः वृत्यः इत्यादि। वहुभिनेतैः पर्यात, वहुभ्यो देहि, वहुषु तीर्थेषु स्नातः इत्यादी वहुन्यः। भन्यं देहि भव्ययः, एवं सीक्यः। क्षम्य इति तु वक्तव्यं। कात् किं, वहुनां स्वासीलव न स्वान्। पाणिनः ५।४।४२। भव पाणिनित्वे स्वार्थं सस्सात्, परस्वे च वौसायाम्। चमसी वारायेसु टीकालक्षः प्रयुक्तित यणाः, "क्षमाचार्ये सहायतां वहुन्यः सीन्य गतस्वमावयोः" इति कुनारे वहुन्यो वहुनारमिति मिल्लिनाथ्याख्यानम्। भटिकाव्ये "चनक्त्रीऽसी मप्यानग्रस" इत्यव भनेक्रम इति पदे जयमञ्जलाद्योऽस्थेवम्।

४८३। सङ्खेत्रकार्थात् वीभायां।

(सङ्गा-एकार्थात् ५।, वीसायां ७।)।

कति कति कतिगः गणगः यावच्छः तावच्छः, दिगः, पादगः। *

8८8। चकल्यस् वरि। (चक्रत्वस् ११, वार श)।

कति वारान् भुङ्को कतिकलः, गणकलः पञ्चकलः । 🕆 🗼

४८५। सुच् चतुर्दिने:।

(सुच् ।१।, चतुर-दि-वे: ५।) ।

एभ्यः सुच् स्थात् वारे। चतुः दिः तिः। ह

8८६। **मयट् तदूपे।** (मयट् ११, बहूपे, ७।)।

[♦] एक: एक भागः, एक: प्रथी यस्य स एक विंः, सङ्गाच एक विंख समाहारे तस्त्रात्। सङ्गात्य क न्यात् विकात् । कित कित दिहि किति सः. एवं गणं गणं दिहि गणमः, यावलं यावलं यावच्छः, तावलं त

[†] सङ्ग्राभिन्नस्य वारोऽयों न सम्भवतीत्याङ्कतिवारानिति । विच्वादव्ययं। एवं गण्यकत्यः। (१०१) सङ्ग्रावच्यं। पञ्च वारान् पञ्चकत्यः, एवं दशकत्व द्रत्यादि । (१४६) विभक्तेर्श्विक, (१८५) न दौर्यः। याणिनिः ५।८।१७।

[‡] चतुम दिस निम तत्तकात्, पुंत्तं स्वतात् । सुचा चक्रतम् वाध्यते । सुच-छकार छचारवायः: चकारोऽव्ययायः । वारः क्रियाभ्यावित्रगणनम् । चतुरिति, चतुरी वारान् इत्यये सुच् (१०२) रस्य विवनः, (६०) विवनंत्र सः, (२१३) सस्य क्षीपः, ततः सुचः सस्य विवनः । एवं वी वारी दिः, चीन् वारान् विः । पावितिः प्रामाहितः

तदासानि उर्धे मयट् स्थात्। विश्वासमा विश्वमयं। वास्तयं। अ

৪८७। प्रकारे जातीय: । (पकारे अ, जातीय: १।)। तार्जिकजातीया । প

४८८। वित्ते चुञ्जुचयो।

(वित्ते ७।, चुघु चयौ १॥)।

विद्याचुन्नः विद्याचणः । 🕸

8दर। निर्हत्ते भावादिम: I

(निर्भृति ७।, भावात् ५।, इ.म: १।)।

पाकिम:। §

- * तदेव द्वपं घात्मा यस्य तत् तद्वपं तिक्षान्। प्रवग्योगात् तिकापि नानुवर्तते, प्रकरणवलात् स्यायन्तादेव। विष्युत्मकाभिति विष्युत्मका यस्य तत् विष्युन्धं जगत्, एवं वागात्मकं वाद्ययं ग्रास्तं। ''एकाची नित्यम्'' इति वार्तिकेन वाद्ययभिति। इत्यायकां हिर्ग्यायकां हिर्ग्यायकां हिर्ग्यायभिति निपातनात् यलीपः। टिच्लादोपि तेजीमयी। पाणिनौ वह्रस्याऽयेंस्यो मयट् इस्यते। यथा, चागतायें ४।३।८५; विकारायें चवयवार्ये च ४।३।१४३,१४४,१४८; ददनयें गीग्रच्दात् पुरोषे ४।३।१४५; विकारायें ४।३।१४६,१४८; वकारायें निपातः ६।४।१८४।
- † स्थायन्तात् जातीयः स्थात् प्रकारि । प्रकारशन्दः 'सादृश्यवाची पुंलिकः, तयु-जार्थे इत्थर्थः । "सामान्यस्य भेदकी विशेषः प्रकारः" इति पाणिनिटीका । तार्किकाः प्रकारः तार्किक जातीया, (१५०) पुंबहावः, तार्किक तृत्या स्त्रीत्यश्चः । एवं पटुजातीयो स्ननः, सदुजातीयं फर्लः । किञ्च विद्याः प्रकारः विद्योजातीया, चन्न जातीयस्य स्यन्ततरादिभिन्नत्वात् (१९०) न पुंबहावः । पाणिनः ५।१।१९ ।
- ‡ स्याद्यन्तात् (''तृतीयान्तात्" इति तुपाणिनिः) चुसु-चणी स्थातां वित्ते (तेन स्थाते) पर्थे। चुसुः पञ्चमस्तरहयवान्, चणी मूर्डन्यवान्। विद्यया स्थातः इति वाक्ये। पाणिनिः ५।२।२६।

§ भावविद्यितकदन्तात् इस: स्थात् निर्वृत्ते (तेन निष्यक्ते) भर्थे। पाक्तेन निष्यक्तः पाक्तिमः, (१५८) भकारलीपः। प्यनभिति भाववाची (११३४) घर्ण, पाकाः। ''वैर्मस्

८८०। पश्रुखः स्थानिद्वषट्को गोष्ठगोयुग-षड्गवं।

(पश्च्यः पू॥, स्थान दि घटकी ७।, गोष्ठः गीयुगः षङ्गवं १।) ।

गोगोष्ठं गोगोयुगं गोषड्गवं। * ,

४८१। गुग्डोचभ्योऽपकर्षे रष्टरौ।

(ग्रुष्डी चभ्य: ५॥. प्रमाने के ०।, र-एरी १॥)।

त्रपक्षष्टा ग्रण्डा ग्रण्डारः ग्रमीरः कुटीरः, उचतरी । 🕆

८८२। पीलुति लोमाकणादेः कुणतैलकट-जाइं पाकसेइरजोमूले।

(पीलु -- कर्षांदे: प्रा, कृष -- जाहं रा, पाक -- मूले श)।

पीलुकुणः, तिलतैलं, उमाकटः, कर्णजाहं। इ

- स्थानच ती च पट्कच तिवान्। गोष्ठच गोगुगच वङ्गवच तत्। पग्रवाचकिस्यः स्थानि वाच्चे गोष्ठः, दिक्किलवर्षे गोगुगः, षट्किलिवर्षे वङ्गवः स्थान्। गवां स्थानं गोगीष्ठं, एवं महिषगीष्ठं। गीदिकं गीगीगुगं, एवं इत्तिकीगुगं। गवां षट्कं गीपङ्गभं, एवं इत्तिकीगुगं। यथां बट्कं गीपङ्गभं, एवं इत्यावह्यः स्थानादिष् पग्रनानस्यः'' "दिल्वे गोगुगन्' "षट्ले षङ्गवच्" दित वार्तिकवयम्।
- † ग्रष्डाय उदाषय ते तेथः । उभयत वहुवचनं गषायं । रय प्रस्य ती । ग्रष्डादेः रः, उचादेः प्ररः स्थात् घपकषेँऽयेँ (इस्तले, तनुले इति पाणिनिः) । ग्रष्डा मदिरास्थानं । घपक्रप्रा ग्रष्डा ग्रष्डारः, एवं घष्या श्रमी समीरः, घन्या कुटी कुटीरः । सम्बंत पुंत्तमभिधानात् । घपकष्टा (गतयीवना) उचा उचतरी, एवं घपकष्टा (वालिका) वनसा वनस्तरी इत्थादि । पाणिनिः ५।३।८८,८१।
- ‡ पीलुच तिलय चनाच कर्णय ते चादबी यस तस्रात्। कृषय तैलय कटस जाइय तत्। पाक्य सेक्ष्य रजय मूलच नत्तिल्। पीलादे: कृष: पाके, तिलादेलैल:

नित्यम्'' इति पाणिनिस्ते (४।४।२०) "एवं तर्हि भाव इति प्रक्रत्य इसव्यक्तव्यः'' इति वार्त्तिकस्य ।

८८३। स्तेने शाकटशाकिनौ।

(चेत्रे ७), शाकट-शाकिनौ १॥)।

द्रचुगाकटं द्रचुगाकिनं। *

८८४। इतोऽस्य जाते।

(इत: १।, अस्य ६।, जाते ७।)।

फलितं। 🅆

स्नेहे, जमादे: कटो रजसि, कर्णाटेर्जां ही मूले स्थादिस्य है:। पी श्री: पाक:, तिलस्य सेह:, छमाया (मिना) रज: कर्णस्य मूलं इति क्रमेण वास्थानि। कृषकटाल-यो: पृंग्लं, तिलजाहास्पर्या: क्रीवलचा भिषानात्। पाणिनि. प्राराप्तश्य। ''झेहं तैलव्'' "कटच् भक्तरर्ण प्रलावृतिशोमास्यो रजस्युपसंख्यानम्" इति वार्त्तिकदयस्य।

* स्वत्यान्तादेती सः: तस्य चेत्रसित्यर्थे। द्वी: चेत्रसिति वाकां। यद्यपि सामान्येनोत्तं, तथापि द्वीरंदेति केचित्, द्वमूलकाभ्यासिति परे, ''संभवने चेत्र प्राक्षटश्रन्द् प्रत्ययो वक्तव्यः'' ''शाकिनश्रष्ट्यप्रत्ययोवक्तव्यः'' इति वार्त्तिकदृष्टे तुन तथा नियमः ; य्या, द्वश्राकटं, सूलशाकटं, कीरशाकटं, वासुशाकटमित्यादि । एवं इत्तराकिनसित्यादि ।

† स्थायनादितः स्थान् ऋस्य जातमित्यर्थे । फलमस्य जातं फलितं वनं, फलिती इ.च., फलिता लता । फलाव्देरैवायं विधिः । फलादिन्तु (पाणिनिमते तारकादिः, कौमरसर्वेऽपि तथा) —

फल पुषाकुरपक्षव गब्बै काएक मृत्र शर् कक्षीलं।
इर्ष कृत्इल किसलय गर्य इसका कच्चक सुख सीमलं।
तन्द्रा तिलकं ग्रेवल रोगं कज्जल कृद्धल कीरक वेगं।
विद्रा सुद्रा सह गल रोगं कइंस कन्दर कुसुस तरहं।
संज्ञा तारक सूत्र पुरीषं पुलक विचारं ज्ञण श्रुहारं।
स्वक पिपासा खज्जा टीइ निष्कृमण ज्वर दु:ख द्रीहं।
पश्च दीचा वर्षा सुक्कां रण प्रका द्रमा चुना:।
सुकी बाह्मा रोगाच प्रवाल व्यापि चन्द्रका:।
पिर्श्वीतृक्षयं व्युक्षा च खरीत्करूटे च सक्करी।

यतदातिरिका चन्येऽपि गर्भादयः अन्दा सन्ति । बुसुदित-पिपासित-अन्दी न कान्ती सकर्मकलात् । पाणिनिः ५,२।३६।

४२५। चि. क्षंसस्यभूततङ्गावेऽस्वावीर्घा-वव्यस्य।

(कि रा, क्र.मू-बन्स आ, बमूततहात आ, बन्सी रा, ईवीं रा, बजस रा)। अभूततद्वाविजये क्रभ्वस्तिषु परेषु चिः स्थात्, तिसंसावर्ण-स्वयो-रीकार-घीं स्तः नतु व्यस्य। *

४८६। त्यो बमात्रो लोषः।

(त्वः १।, वसात्रः १।, खीम्यः १।)।

वकारमात्रस्यो लोष्यः स्थात्।

त्रक्षणं कृषां करोति कृषांकरोति, कषाीभवति कृषाीस्यात्। ф

क्षय भूष वस् च ते तेष् । चसूबस्य चनातस्य तद्येण भाव उत्पित्तिस्तृततहावः ।
"प्रागवस्थावर्ताऽवस्थान्तरेणाभूतस्थाजातस्यानन्तरं तदाक्षनीलाभाऽवस्थान्तरेण जन्म चभृततहावः" इति तद्वितपरिणिष्टे गीर्योचन्दः । काष्ठं भस्य करीति इति तु न चभृततहावः,
किन्तु भभस्य भस्य करीति इत्थेव । ("भग्ययकर्त्तरि" इति पाणिनः ।) कथातै
स्थातौ चस्थातौ वा परे चभृततहार्वऽर्षे स्थायनात् चिः स्थातः चौ पर्ग प्रकृतेरनस्थितथीः भवणे इस्वयीः कमेण ईकार-दीर्षो सः, नत् भव्ययस्य ईकार-दीर्षो, अव्ययात्
निष्प्रथयस्तु स्थादेव चव्यस्थति षष्ठान निर्देशात् । चिष्प्रथयस्य इकारियङ्गायं, चकारित्
चव्ययायः। पाणिनः ५।४।४०; ५।४।३२।

[†] व चाभौ मार्चयति वमातः। वकारमावाविश्वष्टस्यथो लीयः स्थात्। तेन त्रि, (१०२०) विण्, (१०२०) विट्, (१०३२) विच् क्विप् इति पञ्चानां कीपः। अनुष् स्थां करोतीति वाक्ये साथ-अन्दान च्विः अर्वन अविष्टस्य वकारस्य लीपे, पूर्ववित्तः अकारस्य देवारः। एवं अज्योभवित साथिताः। अत्र अक्षीति परं दिला स्थादित क्यातात् स्वोविभक्यते अस्थातौ परं दिः स्थादिति स्थिते। अत्र प्रत अर्थनात् अर्थातिः अन्दर्शातस्य भागीतः। अन्दर्शातस्य भागीतः अन्दर्शातस्य भागीतः। इति तक्षित्रपरिश्चि गोयीचन्द्रः। वन्यमाणस्विष्यि असीः प्रयोगे एवं व्यास्थियं। एवं अमालां माणां करोति, माणी करोति — आकारस्य देवारः। अश्वानि अत्यानां करोति शानीकरोति — इकारस्य देधि। अर्थन्यस्य स्विभ्यस्थलं तु अम्बन्नां महानं करोति महत्त्वरोति इत्यादि। अर्थन स्वभी

१८७। यङ्ङाको चद्री।

(यङ्-ङ्ग-को ७।, च ।१।, ऋत् ।१।, री ।१।)।

ऋकारो री स्थात् यक्डिकी की चीच। मात्रीकरोति। क

४८८। मनस्र सुर्से तोऽक्र को रही उन्त लोपस्ते।

(मन:--रइ: ६।, घलसीप: १।, ची था)।

मनीकरोति । 🌣

४८८। कार्त् स्रायत्त्रोः सम्पद्यकादौ चसादा।

(कार्त् स्त्रायच्यी: आ, सम्पद्ध कादी आ, चसात्।१।, वा ।१।)।

साक को अधीन त्वे च सम्मदाति कृष्वस्तिषु परेषु च चसात् स्यादा।. कृत्स्रं लवणं जलं सम्मदाते — जलसात् सम्मदाते। राजायत्तं सम्मदाते — राजसात् सम्मदाते। क्ष

करीति कसींकरीति, भज्ञानिनं ज्ञानिनं करीति ज्ञानीकरीति, इत्यादी (११८) नख लुपि, नजीऽत्यायंतात् तदादिविधिनिवधामावे, भक्षारस्त्रश्रीरोक्षारधीं स्वातां। भव्ययस्य तु भव्या व्या कता इति वाक्षे व्याकत्य इत्यादी विमन्ययान्तस्य (५४८) समासे, (११०६) क्वाची यवादेश:। साचौकत इति तृ नजा निर्देष्टमिनव्यमिति न्यायात् दीर्घः। पाणिनिः ५।४।५०; ०।४।२६,३२, ''भ्रव्ययस्य चावौतं नित वाच्यम्'' इति वार्तिकस्र।

[#] भागतरं मानर कां।ति—मातृभव्दात् चित्रलये ऋकालस्य री। यिङ—चेकी-यते। छो को, (८४८) मातेवा परति भावोयते, पितरमिवाचरति (८४०) पिनीयति। पाणिनि: १४१२०।

[†] मनय चत्त्रय चितय **भर्य रजव रहव तत्त्रस्य ।** एषाम् चनस्य लीप: स्थान ची परे । चमनो मनः करोति मनौकरीति, स-लीपे चन्त्रारस्य ई । एवं चन्त्र्करीति, ष-लीपे दीर्षः । चेतौकरीति, भरकरोति, रजीकरोति, रहीकरोति । पाथिनि. ५।॥॥१ ।

[‡] त्रत्यं सकलं तस्य भाव: कार्नकां। आयश्चिरधीनलं। कार्नकाच चायश्चिक कार्नकायशी तयी:। संपदाः संपूर्णका-देवादिक-पदधातुः, सम्प्रदाय कादिय तत्

पू०० | देये नाच । (देवे ण, पाण्।श, माश) ।

देयेऽर्थे त्राच् चसाच स्थात् सम्पद्यादौ । देवाय देयं करोति—देवत्रा करोति देवसात् करोति । क्ष

पू०१। नैकाचोऽव्यक्तानुकरणात् डाच् बानितौ दिञ्च। (नैकापे: प्रा, पव्यक्तानुकरणात् प्रा, डाच्।रं।, वा ।रा, प्रनितौ ७।, वि: रा, प्र।रा)।

श्रनेकाचोऽव्यक्तानुकरणात् सम्पद्यादी डाच् स्थादा, निविती, तिस्रं विर्भाव: । १

प्०२। त लीप्याऽतष्टिस्तितौ हेस्त्रन्ता वा।

(त ।१।, लीप्य: १।, चलः ६।, टि: १।, तु।१।, इती ७।, दे: ६।, तु।१।, घलः १।, वा।१।)।

तिसान्। सम्पदी च इत्यनेनैवेष्टसिद्धौ पुनः कादिग्रहणं प्रच चानुवर्त्तनार्थं, चानुकष्टं नोत्तरच इति न्यायेन धानुवर्त्तनवाधात्। चसात्प्रत्ययस्य चकारीऽव्यवार्थः। कर्द्सं खवणं जल करीति जलसान् करीति, एवं जलसात् भवति, जलसात् स्थात्। पचै तद्वंण स्थिति:। पाणिनि: ५।४।५२,५३,५४।

इति। प्रकारोऽव्यवार्थः । क्यांचि वाच्ये यप्रव्यये देशं तिस्रान् चर्थेः । क्यारोऽव्यवार्थः ।
 देवचा सन्यदाते देवसात् सन्यदाते इति च । सन्यदादीनां परस्थित्यन्वयेऽपि स्थात्,
 तेन "सक्तरोदिचिरेवरः चितौ विषदारम्यप्रसानि सम्यसात्" इति । पाणिनिः ५।४।५५ ।

[†] एकोऽच् यस्य स एकाच्, न एकाच् नैकाच् तस्मात्। घन्यको ध्वन्यासकः-भन्दः. तस्य घनुकरणम् घन्यकानुकरणं तधात्। न इति घनिति तस्मिन्। हती — तिस्मिदित डाचि सति पृश्वस्य डिलघ स्यादित्यर्थः। वाशस्ट्रस्य व्यवस्यया इतौ परंऽिक कस्य डिभावी वाच्यः। पाणिनिः प्राधार्थः, इतिहरिट्ट।

तस्यादन्तस्य त लोप्यो डाचि, इतौतु टिलीप्यः, देसु अन्तो लोप्यो वा। *

पटपटाकरंकि। एकाचसु—स्क्क्करोति। इतौतु पटस्ति करोति—पृटिति,पटल्पटेति पटल्पटिस्ति।

पू०३। तीय सम्ब वीज सङ्घ्यादिगुणात् क्षञि क्षप्रो। (तीय-गणात् था, क्षणि था, क्षप्रो थ)।

एभ्यः करोती डाच् स्थात् कृषी। दितीयं कर्षणं करोति दितीयाकरोति सम्बाकरोति, वीजेन सह कर्षणं करोति वीजाकरोति, दिगुणाकरोति । क्ष

प्०४। समय निष्मुल दुःख ग्रल सत्यात्— यापन निष्मोष प्रातिकूल्य पानाशपथे।

(समय-सत्यात् ५।, यापन- अ शपदी ७।) ।

[#] तस्यादनस्थिति तस्य भनेकाभीऽस्यकानुकाग्यस्य, भदनस्य भन-भागानस्य पटत् भनन् इत्यादेनकारी लीयः स्थान् डाभि परं, इतिगृद्धे परंतृ ताद्यस्थेव शदस्य टिलीयः स्थान्, एवं इती दिर्भृतस्य तस्थेव शस्टस्य अनवर्षा लीयो वा स्थादित्यर्थः। पाणिनिः ६१२/८८।

[†] पटत्यत्यात् डार्चि, चनिन तकारकीपे पटदत्यस्य दिले पटपटाकशीति । अनिन टिलीपे पटिति, स्यानिबच्चात् न (५८) चपी जयु । देलु चन्ती वा सीध्यः पटत्पटेति पटतपटदिति । पाणिनिः ६।१।१००।

[‡] तीय: प्रत्यय:, तेन दितीय: हितीयय । सङ्गा आदियेष्य स सङ्गादिः, स चाभी गुणयित सङ्गादिगुणः । तीयय सम्बय तीजञ्च सङ्गादिगुण्य तस्मान । क्रिज परे एथां डाच् खात् कर्षणेऽयां । दितीयाक नित दिनारं की कंपतीलायाः, एवं सम्बर्भ कर्षणे करीति । दो एकार्यों । दिगुणं कर्षणं करीति दिगुणाक नित, एवं चिगुणाक करीतीलादि । पाणानि: प्रामुष्ट,पूर्व

एभ्यः क्रमादेतेष्वर्धेषु डाच्स्यात् क्षञ्जिपरे। समयाकरोति निष्कुलाकरोति दुःखाकरोति भ्र्लाकरोति सत्याकरोति। *

पृ०प् । सपत्रनिष्मत्रात् प्रियसुखात् मद्रभद्रात् पौडानुकुल्यवपने ।

(मपच-निष्यचात प्रा, प्रियसुखात् प्रा, सद्रभद्रात् प्रा, पीडान्कुल्खवपने छा) ।

एभ्यः ज्ञमादितंत्र्ववेषु डाच् स्थात् कृत्रि। सपत्राकरोति निष्यत्रा-करोति सगं। प्रियाकरोति सुखाकरोति। मद्राकरोति भद्राकरोति। 🕆

अ समयय निष्कुल च दु: ख च म्लाच सत्यच तथाता । यापन च निष्कुषिय प्राति-क्ल्यच पाकय अग्रायच तिथान्। समयात् यापने, निष्कुलात् निष्कुषि, दुखात् प्रातिक्ल्ये, स्वात् पाके, सत्यात अग्रायं अर्थं डाच्स्यात् क्रांञि परे। समयाकरीति समयं यापयतीत्ययं:। निष्कुलाकराति, द्रांडिस निष्कुषियतीत्ययं:। अन्तरवयपस्य विष्किरणं निष्क्रीय:। निष्कांषिभिन्नार्थे अन् निष्कुलं करोति। दुःखाकरीति, अर्थु पौड्यतीत्ययं:, अन प्रातिक्ल्यं। स्थाकरीति मांसं स्थान पचतीत्ययं।। सत्याकरीति सुनि: सत्यं कथ्यतीत्ययं:, अन म अपथ:। अपथे तु सत्यं दिन्यं करोति। पाणिनिः प्राधाद ०, ६२,६४,६६।

[†] सपत्र निष्यत्राध्यां पीडायां, वियस्रावाध्यां षातृकुल्ये (चित्ताराधने), सद्रभद्राध्यां वपने (सुष्डने) डाच् स्थात् क्रजि । सपत्राकरीति स्थां, व्याधः सपत्रं अरं स्थणरीरे प्रवेश्ययतीत्यर्थः ; निष्यत्राकरीति स्थां, स्थणशौरात् श्रथ्मपरपार्थे निष्कृास्यतीत्यर्थः । "सपुङ्गश्यय भपरपार्थे निर्धाननात् निष्यत्रं करोति व्यवः । स्थत्र सप्य भपरपार्थे निर्धाननात् निष्यत्रं करोति व्यवः । प्रथत्र सप्यत्रे करोति प्रावटः, निष्यत्रं (पत्रपृक्षं) करोति प्रावटः, निष्यत्रं (पत्रपृक्षं) करोति प्रावटः, निष्यत्रं (पत्रपृक्षं) करोति योषः । स्थायत्र व्यक्तिति श्रेषः । प्रियाकरोति सुखाकरोति स्यायं, संख्यरातुकृष्यं करोतीत्यर्थः । सद्र भद्रौ सङ्कार्थों, सद्रावरंति सद्रावरोति वासं नापितः, सङ्कलपूर्यं वपतीव्यर्थः । पार्षिनिः ५।४.६१,६९,६०, "सद्राचिति वासं नापितः, सङ्कलपूर्यं वपतीव्यर्थः । पार्षिनिः ५।४.६१,६९,६०, "सद्राचिति वासं नापितः, सङ्गलपूर्यं वपतीव्यर्थः । पार्षिनिः ५।४.६१,६०,६०, "सद्राचिति

पूर्द्। दन्नमाचद्वयसट् माने।

(दब्ब-माच-इयस्ट्।१।, माने ७)।

परिमाणार्थे एते खः।

गजपरिमाण:--गजदन्नः गजमात्रः गजदवसः। 🕸

्प्०७। सङ्ग्राशन्यतो डिन्।

(सङ्गा -- मन्-मतः ५१, डिन् ।१।) ।

दगी, तिंगी। १

प्रदा कति यति तति यावत्तावरेतावत्-कियदियन्तः।

(कति-- इथन्त: १॥) 1

किं-यत्-तदां डत्यन्तानां यत्-तत्-एतत्-किम्-इदमां वलन्तानां एतं क्रमात् निपालान्ते माने । 🕸

पूर्र। दशादेडी युते शतादी।

(दबादी पा, ड: १।, युती वा, बतादी वा) ।

दन्नय माच्य दयस्य समाहारे, तस्त्रात् ट। टकारस्य प्रत्येकीन सम्बन्धः, दम्नट् मापट् दयसट्। परिमाणभिष्ठ ऊर्दपरिमाणं। गत्रः ऊर्दपरिमाणमस्य गत्रपरि-माणः — एवमचे एते प्रव्ययाः । टिक्तादीपृच । पाणिनिः ५।२।३० ।

[†] भ्रम् च भ्रत् च,भ्रम्भर, सङ्घाचासौ भ्रम्भत् चेति तस्मात् । भ्रम्भतीः केव-स्तयोरसम्भवात् तदलयोर्बंडणम्। शङ्घावाचकात् शननात् (दशन् चादेः) शत्-चनाइः (श्रित् चादेः) डिन्स्यात् परिमाणार्थे, ड इत्। दग्र परिस्थणमस्य दशी, एवं विश्री (सास:), डिन् (१२६) टिलोप:। ''शन्श्रतोडिंनिर्वक्तम्यः" इति वासिकम्।

[‡] किं परिमाणमेवां कति, (का संख्या परिनाणनेवानिति तुपाचिनिः), ए४ सर्वेषां वाक्यानि । पाणिनिः ५।२।७१।

एकाद्यं यतं, विंशं यतं। #

पूर्व। किंयत्तदेकान्यात् दिवह्मनामेकिनिद्वीरे डतरडतमौ।

(भि--श्रवात् ४।, दि व्ह्रनां ६॥, एकनिहारि श, उतरंडतभी १॥)। श्रनयोः कतरो वैष्णवः, एषां कतमः ग्रैवः। १

पूर्र | तस् ती: । (तम् ।१।, र्कः ६।)।

त्ती: स्थाने तस् स्थात्। कृषातः सर्व्वतः श्रमुतः। 🕸

^{*} दश पादिर्यस स दशादिनस्थात्। पत्र पतदगुणसंविज्ञानवहुवीहिणा दस्र हिला एकादशादीनां ग्रहणं। (भतएव पाणिनी दशानादिख्कान्)। एवं उभयत्र पादिशब्द्योर्श्ववस्थावाचितात् दशादेशित विष्ययंनानानेव, धतादाविति अतसहस्रथीरेव ग्रहणं। तेन, एकादशादः विषयंनान उः स्थान युते (प्रिक्षे दित पाणिनिः) भयं, धते सहस्रे च वाच्ये इल्पं:। एकादश्रभियंतं एकादश्र धतं, (एकादशाधिका प्रस्तिन भते दित पाणिनिः), जिल्लात् (१२६) टिलोपः। एवं विश्वर्था युतं विश्वं स्तं, पत्र (१२६) विलोपः। एवं विश्वर्था युतं विश्वं स्तं, पत्र (१२६) विलोपे ध्राध्य, १६६।

[†] कथ यथ सच एक य भन्य सन्तात, ही च व इवस ते सेषां। जातिमुणिकिया-दिभिर्स्यव च्छिदी निर्दारः, एक स्थानिर्दार एक निर्दारः तिवान्। उत्तरय उत्तमस् ती। एस्यो इयोर्क्यच्ये एक स्थानिर्दार्णे उत्तरः, वक्षनां भर्ष्य एक स्थानिर्दार्णे उत्तमः स्थात्, जिति टिलीपः। चनयीर्क्यच्ये कः कतरः, एषां मध्ये कः कतमः। एवं यतरः ययम क्रस्यादि। पाणिनिः ५ । ३। ६२, ८३, ८४।

[‡] प्रथग्योगात् पूर्वात् किमिष नातुवर्तते । सर्वेद्यात् जिज्ञात् सर्वेविभिन्नेः स्थाने तस् पादंत्रः स्थान्, इति सामान्येन उक्तेऽिष शिष्टप्रयोगातुसरिण प्रयोक्तव्यमेव । भत्तत्व "साम्बेदिभिक्तिकस्वसिः" इति साम्बे । ज्ञच इति, क्रच्यमिति, क्रच्येने इति, क्रच्याय इति, क्रच्यादिति, क्रच्यस्ति, क्रच्येति, क्रच्यस्ति तसी विभिक्तिस्वानं क्राव्ये स्थादेव, तेन (१२१) टैः स्थाने पः, (२०४) दस्याने मः, (२१४) इस्त्रस्ताने सः। विभक्तिविभेषविद्यत्तिन्तु सम्बद्धाने मः, (२१४) इस्त्रस्ताने सः। विभक्तिविभेषविद्यत्तिन्तु सम्बद्धाने तसे क्रवेदेशस्त्रस्तान्यस्त्रस्ति (१२२) ग्रचादिर्भे स्थात्। एवस्य विभक्तिस्थाने तदादयो वे भादेशस्त्रस्तानामन्यवत्तनित प्राचः।

पूर्व। देवादेहीप्तरोस्त्राच्।

(देवादी: ६।, दीश्यी: ६॥, वाच् ।१।)।

देवचा वन्दे रमे वा। *

पूर्व। खिनहोस्त्रोऽह्यादेः प्रयाः।

(खि-कड़ी: ४।, वः १।, भद्यादेः ४।, प्राः ६।)।

स्रेवेशोध परखाः खास्तः खात्, नेतु दासाद्युषदः । सर्वेक्षिन् सर्वेत्र, तत्र बहुत्र । १

पूर्8। सर्वेकात् काले दा।

(सर्वेकात् प्रा. काले अ, दा ११)।

सर्विद्यान् काले सर्वदा । क

(पाचिति: "तिहितयासर्वेशिक्तिः"?।१।३८)।) त्राष् याच् भिन्नानानासव्ययतं नासी-स्रोके। पाचिति: ५।३।७,१४।

- अ देवादे: परयोधिंतौधा-सप्तस्थीस्त्राच् स्थान्। देवं देवी देवान् वा वन्दे देवचा
 वन्दे। देवे देवथी: देवेषु वा दभे देवचारसे। देवादियेषा—देवी वह: पुनर्मर्सी
 सनुष्य: पुरुषय घट्। पाविनि: ५।४।५५,५६।
- † सिय वहत्य तत्तवात्। सङ्गायंवहृष्यस्य यहचं। हिरादियं स दादिः न दादिः दादिः प्रदादः प्रदादः प्रदादः प्रदादः प्रदेश स्वादः प्रदादः प्रदेश स्वादः प्रदादः प्रदेशः स्वादः प्रदादः प्रदेशः स्वादः प्रदेशः स्वादः प्रदादः स्वादः प्रदेशः स्वादः प्रदेशः स्वादः प्रदेशः स्वादः प्रदेशः स्वादः प्रदेशः स्वादः प्रदेशः स्वादः स्वदः स्वादः स्वदः स्वादः स
- ्रं स्थलंब एक्स कवात्। काले वर्त्तनानाम्यालामा परका: वश्या दा सात्। एक्सिक काले एकदा। यादिणि: ५।३।१५।

प्रप्। किमन्ययसदोर्हिया

(किमन्ययत्तदः ५।, हिं: १।, च ।१।)।

एभ्यः स्यार्डि दाच स्थात्। किसन् काले कर्डि कदा। *

ष्र्€। तदो दानीं वा।

(तद: ५1, दानीं ।१।, वा ।१।)।

तदानीं तर्हि तदा। 🌵

पूर्छ। पूर्वान्यान्यतरेतरापराघरीत्तरोभया-देद्युसिक्क।

(पूर्व- उभयात् ४।, एवुस् ११।, पत्रि ७)।

पूर्विसिमक्ति पूर्वेद्यः। 🌣

पूर्दा दिक्षाग्दाहिग्देशकाले स्तात् प्रीपीप्तत्री ऽचो लुक्।

(दिक्-मच्छात् ५), दिग्-दिय-कार्ख ७), सात्।११, ग्री-पी-प्तप्रः १॥, भवः ५।, सुक्।१।)।

क्षं भ्रम् च यस सच तत्तकात्। भ्रमिक्तृ काले भ्रमहिं भगदा, यहिं यदा,
 तिईं तदा। पःचितिः पः। श्रः।

[🕆] काली वर्त्तनानात् तदशस्दात् सप्तवा दानी वा सात् । पाणिनिः धाशास् ।

[‡] पूर्वम प्रमाय धानारक इतरक अपरव वाद्य उत्तरक उत्तरक तत्तामात्। एस्मीइडम्सः प्रत्याः सप्तम्य एद्युन् सात् कत्ति वाची-। पूर्वेद्युरिति चन, (५२०) भादिस इस्मीन तिवत्तवकरकीकादियानामि तिवत्तवक्तानिकार (२५८) भावार-स्वीयः। पाणिनिः ५।३।२२, 'पूर्वामान्यत्तरतरावराधरोभयीत्तरेस्य एयुम्प्' इति ''युकोक्यान्यतः' इति कन्नथम् इति व वार्तिकम्।

परस्तात्, प्राक्। *

पूर्ट। वैनोऽपी। (ना ११, एनः ११, पन्यो ११))। पूर्वीण। पं

पूर्व। दिच्चणोत्तरादाही।

(दिवियोत्तरात् ५।, मान्याधी ।१॥)।

द्विणा द्विणाहि। उत्तरा उत्तराहि। \$

पूर्श वाधराचात्ताः।

(वा ११।, अधरात् ५।, च ११।, भात् ।१।, ताः १॥)।

श्रधरात् श्रधरस्नात्, दिवणात् दिविषस्नात् । §

^{*} दिशि वर्णमानः श्रन्दो दिन् श्रन्थः, सच पूर्वादः प्रागादिकः । दिशि देशे काले च वाच्ये दिश्वाचकश्रन्दान् परासां प्रथमा-पद्यमी सप्तमीनां स्थाने सात् स्थान्, अन्च धातोः किप्रथने सावितात् स्थाः परस्य साते। जुक् स्थादित्यंः । यन्यकारेण तिस्त्यां विभन्नौनाभेकसुदाइरणं प्रयुक्तं परसादिति, परा दिक् परी देशः परः कालः, परस्या दिशः परसात् देशः परस्थान् देशे परस्थिन् स्थान् देशे परस्थिन् कालं, इति वाव्यानि । प्राक् इति प्राची दिक्तं, प्राक् देशः, प्राक् कालं वा इति प्रथमस्थाने सात् तस्थानं तस्य लुक् । मनौषादितात् पृवत् । एवं पद्यमीसप्तस्थोरिप वीष्यं। पाणिनः प्रावः १९३० ३० ।

[†] दिग्देशकाले वर्त्तमानेभ्यो दिक्शब्देश्यः प्रीप्तग्रीरेनः इराहा। पूर्व्वेणिति पूर्वः पूर्व्विसन् बादत्वर्थः । पाणिनिः ५।३।३५, ।

[‡] भाष भाहिष तौ भाही, विवचनं यथासङ्गानिरासाय। दिन्देशकाले वर्भमानाभ्यां दिविषीत्तराभ्यां प्रथमा-सप्तयीः स्थाने भा भाहिष स्थान् । विशेषलात् साती वाधकावेतौ । दिविषः दिविषात्वन् या, उत्तरः उत्तरास्ति वाकः । पाणिनः प्रश्र (१९) १६,१७,१८ ।

[§] ताः प्रीपीप्ताः । घथरप्रस्टात् चकारात् दिविधीत्तरश्रद्याः दिग्देशकाले प्रयमा प्रवसी-सप्तमीस्थानं चात् स्थात् वा । घथरः अधरस्वात् चथरस्थिन् वा अधरात् ।

पूर्वा प्रवाधरावराः पुराधावाः स्तादसोः। (पृव्यांधरावराः १॥, पुराधावाः १॥, सादसीः ०॥)।

पुरस्तात् पुरः, अधस्तात् अधः, अवस्तात् अवः। अतएव अस्। *

पूर्ह। चवत् याच् प्रकारे।

(चवत्।१।, याच्।१।, प्रकारे ७।)।

येभ्यस्य उक्तस्तेभ्यः प्रकारे याच् स्यात्, सच तद्दत्। सर्व्य-प्रकारंसर्व्वया। †

प्रथ। कुतः क कुछ कुनेती ऽता ऽले छ सदै-तर्द्धधनेदानीं पञ्चादुपर्य्युपरिष्टात् परेद्यवि सद्योऽ-द्यैषमः परुत्परारीत्यं कथम्। (कृतः — कथम्। १॥)।

दिविष: दिविषक्षात् दिविकस्मिन् वा दिचिषात् एवं उत्तरात् । विञ्जलपचे प्रधरकात् दिविषसादिति । पञ्चस्यकोदाइरणं वहुलप्रयोगदर्भनात् । परिवित: ५१३।३४ ।

- पूर्वय पधरय प्रवर्श ते। पुरय पध्य प्रवश्च ते। साज्ञ पम् च तौ तथी:।
 पूर्वस्य पुरः पधरस्य प्रधः प्रवरस्य प्रवः स्थान साहसी: परथी:। पुरसाहिति पूर्वशब्दात् (५१८) प्रथमादैः सातः प्रादेशे, प्रनेन पुर पादेशः। पम् परे पुर पादिशे,
 (२५८) प्रकारलीपे पुरः। एवं पधरशब्दान् पधसान् पधः, प्रवरशब्दान् पवसान् पवः,
 प्रतप्त, प्रमृविधायकस्त्राक्षावऽपि प्रनेन प्रमृपरे पादेशविधानादेव, एतेथः प्रथमादैः
 स्थाने पस् स्थादिति वक्तव्यं। पाणिनिः प्राहा १८,४०।
- † चन्द्रवत् सुखितिलुक्ते यथा चन्द्रस्य चाझादक्तिन सायं ग्रह्यते न तु धावल्या-दिना, तथाचापि चनदित्युक्ते (५१३) चन्द्रादिसिनद्वनन्तरज्ञातलेनैन सायं ग्राह्यं, न तु केवलं सप्तमीस्तानजातलेन । चतप्य-चन्न्यादिसिनदृष्यां परासां (छदाहरण-प्रापकात्) वितीयादिविभक्तीनां स्त्राने याच् स्थात् प्रकारे । प्रकारः साद्यां । चकारः चन्ययार्थः । सच तन्ददिल्यनेन, (३२०) प्रत्यये परे पुंतद्वावादिकं स्थादिति स्वितं । सन्य प्रकारं, सन्त्रेण प्रकारेण सर्वां प्रकाराय, सन्त्रेष्यात् प्रकारात्, सन्त्रं स्व प्रकारस्य, सन्देश्यान् प्रकारे-सन्त्रं इति । द्वतीयाया एव याच् इति पाणिनिः ५ १३१३ ।

एते निपास्त्रकी।

कस्मात्—कृतः, कस्मिन्—क कृष्ट कुष, अस्मात्—इतः, एत-स्मात्—प्रतः, एतस्मिन्—धष, अस्मिन्—इष, सर्वदा— सदा, अस्मिन् काले—एतर्ष्टि अधुना इदानीं, अपरस्मिन्— पयात्, कर्षे—उपरि उपरिष्टात्, परस्मिन् प्रक्रि—परैवावि, समानेऽक्रि—सदाः, अस्मिनक्रि—अदा, अस्मिन् वर्षे—ऐवमः, पूर्विसिन् वर्षे—परत्, पूर्वतरस्मिन् वर्षे—परारि, इदस्मकारं —इसं, किस्पकारं—कथम्। *

पूर्प । त्यनाद्य चिर दिचणाद्यादे—स्य-ष्टनस्न-त्यण्-मा भवादौ। (लच-पायादेः प्र, ल-माः १॥, भवादो १॥)।
एभ्य एते क्रमात् स्युः भवाद्यधै। त्यनत्यः तनत्यः, श्रद्यतनी
श्रास्तनी; चिरतः परुष्ठः, दाचिणात्यः पाश्चात्यः, श्रादिमः
मध्यमः। ११

कचादिति। एवा तावत् टीका, सक्यें व पुत्तकेषु,त स्त्वमध्ये सितिविष्टा हम्मते।
 पाणितिः प्रश्चित्र,०,१२,१३,१०,३,५,११,६,१६,१०,१८,३२,२१,२२,२४,२४,८५,२५,१०४,१
 १०४,१०५।

[†] त्यवय चयय चिरव दिवाय कादिय ते चादयी: यस स तकात्। त्यव प्रवाद वय त्यव्य च सव ते। चाव विम्नितानगाहत्य सन्देशित कामस्व हवं, त्यष्टम्बत्यक्तं इति पाठी वा। त्यवादेः त्यः, चयादेः एनः (तगट् इति जीमराः), चिरादेः वः, दिच्चादेः त्यः, चयादेः त्यः अव क्याय्ये। त्यच भवः त्यच वस्ति वा इत्ये त्यचतः, एवं तवतः। चयाभवा चयात्री, (२५०) विच्चादीए, एवं चाः (पूर्वेदिने) भवा च्यानी। चयादितात्—वस्तनः, विद्यानः, दिवातनः, दोषातनः, सायनामः, सदातनः, सगतनः, स्रातनः, स्रातनः,

प्र६। किमः तार्यनात् चित्रनी।

(किस: ५।, क्यलात् ५।, वित-धनी १॥)।

कस्यचित् कदाचित्, कस्यचन कदाचन। *

पूर्ण | श्रादिस्त: | (पादिः १।, तः १।)।

(३२३) चैक्याच्द्रषष्टीऽः दूलोतमकारमारभ्य यस्य उक्षः स तसंज्ञः स्थात । 🕆

इति तपाद:।

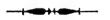
इति खाद्यन्ताधायः।

स्यायनाधिकारः समाप्तः।

दाचिषात्यः, दिचिया इति (५२०) षा:। यिक्तात् (४१६) वृद्धिः। एवं प्रयात् भवः पादान्व:। चादिना पौरस्य इत्यादि। चादौ भवः चादिनः, मध्ये भवः मध्यमः। "घवान्तपश्चाती डिसः" इति क्रमदीश्वरः । तेन घविमः, घन्तिमः, पश्चिमः । "घवादि-पश्चात् जिनच" "भलाच" इति, वार्त्ति तदयम् । पाणिनि: ४।२।८८,१०४, ४।३।८,२३।

- * 'प्रसाकल्ये तु चित्रन' इत्यमरीतयी: चित-चन-इत्यव्ययग्रन्दयीयाँगेन कचित की-चित कीचित् काचित किखिदिलादिपदे सिकेऽपि एतत्मूवकरणं कथित् कदाचिदि-लादेरेबपद्वनिर्वाष्ट्राये, तेन बादाविकानित्यादी (४१६) पूर्वपदस इस्मादि सादिति।
- । चचादिर्यस स चादि:। प्रधानेन स्थपदेशा सवनीति सामात्, तदित-प्रकरचीक्क-विभक्तिस्थाननातानामादेशानामपि तद्वित-संग्रा स्थादिति, तेते (५१८)-पूर्वेष इत्यादो (२५८) पौ पर चकारखीपादि विदं।

व्याद्यन्ताधिकारः।



पूम:। स्वाद्यध्याय:।

-->00000~--

१म पादः—संजा।

पुरुष्ट। घो:—

तिप् तस् श्रान्त सिप् थस् थ मिप् वस् मस्—
ते श्राते श्रान्ते से श्राये ध्वे ए वहे महे (की)
यात् याताम् युस् यास् यातम् यात याम् याव याम—
ईत ईयाताम् ईरन् ईथास् ईयाथाम् ईध्वम् ईय ईविह ईमिह (खी)
तुप् ताम् श्रन्तु हि तम् त श्रानिप् श्रावप् श्रामप्—
ताम् श्राताम् श्रन्ताम् खश्राथाम् ध्वम् ऐप् श्रावहेप् श्रामहेप्(गी)
दिप् ताम् श्रन् सिप् तम् त श्रम्प् व म—
त श्राताम् श्रन्त थास् श्राथाम् ध्वम् इ विह मिह (घी)
दि ताम् श्रन् सि तम् त श्रम् व म—
तन् श्राताम् श्रन्त थास् श्राथाम् ध्वम् इ विह मिह (घी)
याप् श्रत्म उस् थप् श्रथुस् श्र यप् व म—
ए श्राते इरे से श्राथे ध्वे ए वहे महे (ठी)
ता तारी तारस् तासि तास्य तास्य तास्य तास्य तास्य है (डी)

यात् यास्ताम् यास्त यास्त यास्त यासम् यास्त यासम् यास्त यासम् सीट सीयास्ताम् सीरन् सीष्ठास् सीयास्त्राम् सीध्वम् सीय सीविह्य सीमहि (ढी)

स्थित स्थतम् स्थन्ति स्थिति स्थयम् स्थय स्थामि स्थावम् स्थामम्— स्थते स्थेते स्थन्ते स्थमे स्थेथे स्थावे स्थावहे स्थामहे(ती) स्थत् स्थताम् स्थन् स्थम् स्थतम् स्थत स्थम् स्थाव स्थाम— स्थत स्थेताम् स्थन्त स्थाम् स्थियाम् स्थायम् स्थे स्थावहि स्थामहि (धी: ११, तिष्—स्थामहि।१॥)। (धी) *

एतानि सामीतिमतसङ्घाकानि घीः पराणि प्रयुज्यन्ते । १

पूर्र। की खी गी घी टी ठी डी टी ती प्यो ऽष्टादम्म:। (की -प्य: १॥, षष्टादम्म:।१॥)।

तान्यष्टाद्याष्टाद्य अमादेतत्संज्ञानि स्यः। 🕸 🤺

 [&]quot;पःन-णा दिस्तीन्काग्येतः" इति वार्त्तिकस्वम्। पाणिनिः ३।४।७८। अत्र म्वे चलादशानाभेव विभक्तीनाम्ब्लेखः । पयात् लकारस्थाने भादेशा भवन्ति । यथा, २।४।८५. ३।४।८२, १०२, १०८ इत्यादि ।

[†] धीरिति पश्चयनं तिवादीनां प्रव्ययत्तज्ञापनार्थे। सद्द भणीत्या वर्णते यत् तत् भाशीति, तच तत् शतखेति भाशीतिश्रतं, तत् सङ्गा येषां तानि साणीतिश्रत-सङ्गकानि वसनानीत्यर्थः।

[‡] ष्रष्टादम ष्रष्टादम इति वीसायां (४८३) षम्रस्, ष्रष्टादममः । तानि तिवा-दौनि ष्रष्टादम ष्रष्टादम भूला, क्षभान की-प्रादिसंज्ञकानि स्पृरित्ययः । भगवता पाणिनिना तु ययाक्षमं खट् (३।२।१२३), विधितिङ् (३।३।१६१), छोट् (३।३।१६२), षङ् (३।२।१११), लुङ् (३।२।११०), तिट् (३।२।११६), लृट् (३।२।१५), पामीर्लिङ् (३।४।११६), लृट् (१।६।१३), लृङ् (३।३।१३६), एतत्संज्ञकानि क्षतानि ।

पूरुग पञ्चर: शिचा

(पश्च १॥, र: १।, शित् ।१।, च ।१।)।

ताः पञ्च रसंज्ञाः स्यः, शिच। #

प् ३१। नवश: पमे जितोऽन्य ङिद्भगं घे।

(नवम: । १।॥, पसे १॥, जित: ५॥, चन्य कि इत्रां ५॥, घे ৩॥)।

तानि नव नव क्रमात् प-म-संधानि स्युः, तेच जितो धोः परेस्तः, तदन्य-ङिद्ध्यान्तु क्रमेण स्तो घे। पृ

भू३**२ । ङिद्पिट्र: । ं**(ङित्।श, पित्।श, रः श)। अपित् रो ङित् स्थात्। ः

पू ३३ । कित् ठी ढीपं। (कित्।श, दी।श, दीपंश)

अपित् ही च्या: प च किसं मं स्यात्। §

ता: पञ्च की स्वी नी घो टी इति पञ्च, प्रथमीपस्थितपरित्यागे प्रमाणाभाषात् ।
 त्या र मंत्रापलानु प्रभूदिलादी (५५४) वसीऽग्रेश्येश्यनेन न इस्, प्रियद्विन डिल्वात् (५३२) न गुण्य (५४२) । प्रकारित्प्रत्ययस्य ग्संत्रया (तदी अ प्रव्यथे) तुद्तीलादी न गुण्यः, सवन् दीव्यन् इत्यादिषु घटप्रथये परि प्रप्रक्षमृदिष् । पाणिनिः ३।४।११३,११४। न: सार्व्यक्षातुक्षम्, परः - सार्व्यक्षातुक्षम् ।

[†] नव नव ९ ति (४८९) नवशः । पञ्च मञ्च पसे, पंपरक्षेपदं, परोहेश्यकफल निष्म स्वरूपियां, मं पात्मनेपदं पात्मोदेश्यकफल नो भग्न स्वरूपियां। ज इत् यस्य मं जित्त तस्यात् जितः । उत्तर्यस्य मं जित्त तस्यात् जितः । उत्तर्यस्य मं जित्त तस्यात् जितः । उत्तर्यस्य निष्म प्रात्ते तास्याः । तानि तिवाहीनि । तेव पसे जानुबस्थातीः सः, तदस्यकात् जानुबस्थान्तात् पातोः पंस्पात्, उत्तरस्य निष्म मं स्वर्णात् स्वर्णान्त्रस्य स्वर्णान्त्रस्य स्वर्णानुबस्थान् स्वर्णान्त्रस्य स्वर्णानुबस्थान् स्वर्णानुबस्थान् स्वर्णानुबस्थान् स्वर्णानुबस्थान् स्वर्णान्त्रस्य स्वर्णानुबस्थान् स्वर्णान्त्रस्य स्वर्णानुबस्थान्त्रस्य स्वर्णानुबस्थान्त्रस्य स्वर्णानुबस्थान्त्रस्य । पाणिनिः १।४।८८,१०० ।

[‡] रूर्यस्य संक्रित, पदत्यस्य संपित्, न पित् चिपित्। चिपिदिति क्षित्रं पदंपरच चतुक्तस्यो। पाचिति: १।२।४।

[§] क्याः पं दीपं, यात् यासामित्वादि नव । पाविनिः शाशार • ४, वार्त्ति बचा

पू ३८ | दा-धा दा | (दा था।१।, दा।१।)।

त्रिपत् दाधा च दासं द्वः स्यात्। *

पूर्पा यलोऽचेक् जि:।

(यल: ६।, भवा'३।, इक्।१।, नि: १।)।

श्रचा युक्तस्य यलस्य स्थाने दक् क्रमास् निसंत्रः स्थात । 🕆 🔻

प्रइ€। सञ्चत्, दिस्तु वा।

(सक्तत्। १।, वि: १।, तु। १।, वा १।)।

जिः पुनर्ने स्थात्, दिसु वा स्थात् । 🕸

ॐ दा घा इत्युभयं स्वर्ष, तेन — दा ख खूनी, दा त दाने, खुदा ज् बि च, खुधा ज् खि च इति चतुर्या. एव देख पालने, दी य केंद्रे, घे ट पाने इति चयाया एचीऽशिल्या (६० प) इति चाकारे क्षते दा-मज्ञा, श्रिति परे चाकाराभातात् दालंजा नानीति । चिथिद्यनेन देप शाधने इत्यय्य दासंज्ञा निवंध:। दासज्ञाफलन् (५४८, ५५२,६१२,८११) एतेषु मुचेषु दट्या । पाथिनि: १।१।२० । चाच दा द्याः।

[†] प्रचास्त्रवर्णेन युक्तानां य व र ल इत्येषां स्थाने क्रमेण-इ उ ऋ ल इत्यादेशाः जिमेचाः स्युरित्यर्थः। फलान्तु (६५१,६६१) इत्यादिषु ट्रष्टकः। लक्षारस्य जिने सम्यवित, यल्मेच्यानुरीधादन्तःपतनं। पाणिनि. १।१।४५। श्रव जि: - सम्प्रमारणम्।

[‡] सक्षत एकवारं, जिरित्यन्वर्षते । यावत् सम्यवसाविधिरिति न्यायात् पृतः मामयोसमाधानेऽपि, तिः पुननं स्थात् । तेन, व्यय व्यध व्यव व्या क्यांद धानृता एकवारं य स्थाने इक्ते पुनः वि इत्यस्य स्थाने उर्ने स्थादिति । दिन् या इति वागव्दः समुचयार्थः, दिवस पुननं स्यादित्यथः । तेन, कितप्रश्ति-धानीः भिन क्रते दिवि चिकित्स धातोः, विकित्त् सित्ति क्रिते ति पुनः सित क्रवे चिकित्पियतो व्यादी पुनिदेलं न स्यादिति । एवं क्रधातीर्थेङ दिले चेक्षीयधानाः भिन चेक्षीयधने स्थादित । एवं क्रधातीर्थेङ दिले चेक्षीयधानाः भिन चेक्षीयधने स्थादित । एवं क्रधातीर्थेङ दिले चेक्षीयधानाः भिन चेक्षीयधने स्थादित । एवं क्रधातीर्थेङ दिले चेक्षीयधानाः प्रवि चेक्षीयधने स्थादित्य पुनर्भ दिल्वसित द्र्यादास्थानि विक्तिन्ति द्र्यादास्थानि विक्तिन्ति द्र्यादास्थानि विक्तिन्ति द्र्यादास्थानि विक्तिन्ति द्र्यादास्थानि प्रविद्धं स्थादित्यवं । पाणितिः स्थात् स्थादित्यवं । पाणितिः स्थात् स्थादत्यवं । पाणितिः स्थात् । पाणितिः

पूर्छ। प्रागच्कार्यादिचि दि:।

(प्राक ।१।, पचकार्थात् ५।, पचि ०।, डि: १।)।

त्रिच परे अच्-कार्यात् प्राक् हिः स्थात्। *

पूर्वः पूर्वः खि:। (देः ४।, पूर्वः १।, स्वः १।)।

देधी: पूर्वी भागः खिसंत्रः स्थात् । क

पूर्ट। स्वा वृद्धाः (सःवीशा, व.कश)।

स्त्री घ्रसंज्ञी घी रसंज्ञ: स्थात् । क्ष

पु80 | खः स्थे तः । (सः ११, से ७।, रः ११)।

स्ये परे खो रसंजः स्यात्। §

इति संज्ञा-पादः।

अन्नः कार्थं अच्कार्थं तसात्, प्राक् शब्द्योगे (३००) पश्चमी । यत्र स्व स्व पे परे स्वरवर्णस्थाने कित् भादेशः समाविष्यति, दिल स्व समाविष्यति, तत्र प्रथमं दिलं स्थात्, प्रयात् स्वरकार्यं स्थादिल्यंः । यथा — निनायं लुहाव हल्यादौ भादौ दिलं प्रयात् विहससी । यत्र एकदा अच्कार्यं दिलयंः प्रसक्तिस्वैवायं नियमः । नियम- भायं प्रायिक एव, तेन अरिरिषतौलादौ भादौ गुणे ससी प्रथात् दिलमिति । पाषिनिः १।१५६ ।

[†] देशित धीरित्यस्य विशेषणं, धीरिति मधिकारप्राप्तम् । स्वारं स्नारं ननतौत्यादी धातुत्वाभावात् पूर्वभागस्य न खिलं। पाणिनि: ६।२।४ । भव खि: = मध्यास:।

[‡] लघ्गुरुसंत्रयी: फलं (५८२,६३६) द्रत्यादी द्रष्टव्यं। पाणिनि: १।४।१०,१२।

[§] स्थे क्रियने नैवेष्टसिडी स्व इति कथनं कदाचित् कल्दसि संयोगे परे गुक्ने ऋषाः दिति सूचनार्थे, ऋतएव प्रक्रेवेशिह पिङ्गलस्वम् । पाणिनिः १।४।११।

२य पादः - पवत्।

(१) भू सत्तायाम्।

भू-तिप् इति स्थिते—

प्र8१ | विश्वाप्रे। (विश, शव्। १।, रेश)।

रे परे घो: गप स्थात् घेऽघेँ।

प्४२। गुर्घङयाकिकित।

(णु: ११, घुड: ६१, च ।११, श्र-कडिति ०।)।

त्रत्यस्य घुमंज्ञोङय णुःस्यात्, नतु निति ङिति । भवति भवतः । पं

^{*} घं प्रधें कर्नि वाचे। प्रयः प्रप् इत्, प्रकार स्थितः। ,शिचःत् (५२०) स्यादानेत्यादिना तिष्ठाद्यादंगः। (८२१) द भावयो यंका बाधिताविशिष्टे सुतरां कर्मव्यं प्रयात्, तेनाच घं इति व्यथंमिति चेत् उच्यते,—कर्माकर्तर वाचे (८२०) द्वदद्वघ इत्यनेन यगादातिदेशात् श्रवादेवधि, चिक्रीषंत इत्यादी (८३१) क्न्यस्य-त्यादिनिषेषे, प्राधिककर्भृवाच्यतात् श्रवादयः स्पृण्ति। नच श्रवादे विषकस्य यगादिनिषेषे, प्राधिककर्भृवाच्यतात् श्रवादयः स्पृण्ति। नच श्रवादे विषकस्य यगादिनिषेषे सुतरां ध्वादिना भाव्यमिति वाचं, स्क्रद्रगती विप्रतिष्धी यदमाधित तद्वाधितमेवित त्यायात् पृनः श्रप्सङ्गाभावात्। प्रतएव प्रगृद्ध इत्यच (६५०) सक्तांऽप्रातिपचे सेनिषये श्रवादिति। पाणिनिः श्राह्म ।

[†] गाग्णः, घुयासी चक्किति घुक् तस्य। कच कच कडी, कडी इती यस स कित्, न कित् भकित् तिसान्। खघी कडः (६१) चकारात् (८) भन्यस इड य गुणः, याहरजातीयस्य विप्रतिष्धो विधिर्ण ताहग्जातीयस्येति न्यायात् किति कित् प्रस्थयास्यो भिन्ने भन्यस्मिन् प्रस्थये परे इत्स्ययः। निमित्तास्यवित पूर्ववर्त्ति-धात्ना, धात्तर्जातयोः श्रुग्रपोय गुणः स्यात्। एवं (८४२) कास्यकप्रस्थयः कित्तकरणान् कद्मित् खिद्रस्थापि गुणः स्थादिति, यथा सुदमाचष्टे मीद्यतीस्यादि। सृतिप् इति स्थिते, भप्, ककारस्य गुण भीकारः, (२५) अव्। एवं भवतः इत्यादि। पाणिनः धाइ।८४,६६—१।१।५।

पूरुहा लोपोऽतोऽदेचोः।

(स्रोप: १।, चत: ६।, चत-एची: ७॥)।

श्रकारस्य लीपः स्यात् श्रकारे एचि च परे। भवन्ति, भवसि भवयः भवयः।

(१०८) श्रा तिमभवि। सवामि भवावः भवामः। %

प् १८८। मुब: प्राप्ती वा मं।

(सुव: ५।, प्राप्ती ७।, वा ।१।, मं १।)।

प्राप्ती भुवी मं स्थादा वि । भवते । 🌣

पृष्ठपू । याचातोऽतः।

(द्रीशः, आ।१ः।, भाष-भात: ६ः।, भत: ५ः)।

अकारात् परयोरायातोराकार देः स्यात्। भवेते भवन्ते, भवसे भवेथे भवध्वे, भवे भवावहे भवामहे । क्ष

अ भव अदिवीसित प्रकरणवलात् थी: परव नातयीसि वहणं, अथा भविन भवे भवन वुभूषंतीत्यादि, मुरारि: क्रणोक्तविम्लादौ न प्रसङ्घः । नीपीऽतीऽदेतीरिश्व पाठः साधः. एकारभिद्रानामनावण्यकतात्, अदिधीरिति तृ लिपिकारप्रसादागत इति । भविन इत्यव अपीऽकार्लीप. । पाणिनि: ६।१/८० ।

⁺ भू मनायामिति गणपाठात् भूघातीः सन्ना एव कथः, सन्ना च खत्तिर्वियः सामता च। क्रिकार्यं (५३१) परक्षेपटभीव । यदा तृ प्राप्तिरयः तदा क्राप्तम् नेपटभी भवती वित्रत्व व्याप्त प्रति सृत्रं । क्राप्तमे पटभी विति कि वित्र । चे कर्मित वाच्ये दित भण्डक्ष सृताधिकारात् क्षन्वर्मते । चात्रसीपटभ प्रकर्णं दिता क्षेत्रेतस्व कार्यं िरनप्रभारता प्रवाय प्रयम्पयुक्त स्थातीः पटभभुदायः प्रदर्भनार्येच । पाणिनिमते सृथातुः परक्षेपदी सन्नार्यः ।

[्]रे द्वा इति भिन्न पटं। भाष च चात चेति तस्य। चाथ चात विते कोबलयोरसम्भवात् तदादि विभन्नीनां यहणं, तेन चाथे चाते चाथां चातां इत्यंतियां सहणं। भवेते भवेथे — उभयत चानेन चात चाथयोराकार ई, (२३) गुणः। भव

५४६ । स्था या-युस्-यामा-मीयुसीयम् ।

(ख्या: ६।, या-युस् यानाम् ६॥, ई-ईयुस-ईयम् ।१॥) ।

अकारात परेपां ख्याः या युस् याम् एषां खाने-

ई ईयुस् ईयम् एतं क्रामात् स्यः। अ

भवेत भवेतां भवेयु:, भवे: भवेतं भवेत, भवेयं भवेव भवेम। भवेत भवेयातां भवेरन्, भवेयाः भवेयायां भवेष्वं, भवेय स्वे-वहि भवेमहि। भवतु भवतां भवन्तु।

पूरुण। हेर्नोपोऽस्यामोस।

(इं: ६१, कीप: ११, अस्योद्री: ५१, च ।११) ।

श्रकारा-दस्याभ्या-सुपृतुभ्याच हेर्लीपः स्यात् । 🕆 भव भवतं भवत, भवानि।

प्8दा व्यस्य ग्यनुकार डाच् च्रिक्रगोऽनं सनानोऽदाऽन्त:प्रो ऽस्तं तिर: कारिकार्यादे धौ (ब्बख ६।, गि--ज्यांदे: ६।, घो ०।, स: १।)।

एषां व्यानां धी परदेसः स्यात्। 🕸

इकारकरर्णनापि पदसिद्धौ (५स्ते) दिमाववर्णेन सङ्घ एकमाववर्णस्य सास्यमयुक्तमिति क्रला दिमाचकरणं; एवं परचापि बीध्यम् । पाणिनिः ७। शप्तः । अप्रच इयु इति इस्तः ।

^{*} स्त्राइति ग्रह्म व्यदन्तभातीका विप्राप्त्रये। पाचिनि: ७।२।८०।

[†] स्थः संथोगः, नास्ति स्थी यत्र सीऽस्थः, उप्च नुत्रति उप्नः, अस्यवासावप्नुत्रेति पसीप्नुस्तवात्। चकारादकाराद्य। उपनुभ्यां यथा—तनु हिनु। पसाभ्यां किं, भाष्र्रक्ति। पाचिनिः ६।४।१०५,१०६।

[‡] भनुकारी भनत्यटिंदलाबनुकरणग्रन्दः। गिम्न भनुकारम डाच् च चित्र कथे च चलम् च सत्च मनस्च च दस्च चलार च पुरस्च चलाम् च तिरस्च

पृष्ठर । प्राग्वन्ता गो उन्तरदुर्गे गोदि इन मीना चिन्वानिष् शान्तानशो,-गद नद पत पद दा मा सो इन वा या द्राशा वष वह शम चि दिहान्तने,-बी लन निंस निन्द निच मवान्ता- ' हने।,-ऽकाखाद्यषान्तान्त-ने:।

(प्रास्तत् ।१।, न: ६।, च: १।, घननर्-घदर्गी: ५।, चादि—नग्र: ६।, गद—नी: ६।, वा ।१।, तु ।१।, घन —हन: ६।, घक—नी: ६।) ।

णादे धीं हिन्ते मीनाते हिनोते रानियः यान्त-नयो गदायन्त-नेय नस्य अन्तरो दुर्वर्जगेय परस्य णविधिहेतौ सित णः स्यात्, अनादे मीवान्त-इन्तेः कादि-खादि-वान्तवर्ज-ध्वन्त-नेय वा स्यात्। अन्तर्भवाणि प्रभवाणि। दुरन्तु दुर्भवानि। भवाव भवाम। भवतां भवेतां भवन्तां, भवस्व भवेथां भवध्वं, भवे भवावहे भवामहें। *

कारिका च उत्यादिशित तस्य । डाच् वि दित ही प्रत्यथे (५०१, ४८५), अव तदनानां यहणं । अव्ययानानेषां प्रज्ञानां धाती परपदे सित समासः स्वादित्यथं । यथा — प्रणस्य, सनत्कत्य, पटपटाक्रत्य, क्षणीभ्य । कणे मनम-भदी तृहायें, कणेक्रत्य मनःक्ष्य, पयः पिवतीति शेषः । भलकृत्य । सत् चाटं स्कृत्य । नज्पूर्यं विदिश्य सत्क्र्य । चटः चनपटेशे — घटःक्ष्यः अन्तगैत्य प्रस्क्रत्य । असमियपच्यी, भलकृत्य । तिरीभ्य । कारिका स्व्यादायव पीडास्, कारिकाक्त्य । उरीक्रत्य, भादिना उरि करी पश्रतीनां यहणं । एषु समामात् (११७६) क्वाची यप् । अव समाधः पक्षयदीभावमावं, दलादिसंज्ञा त स्वायनानामेव, अतः समानप्रकरणे एतत् स्वं नक्तां । धात्यकरणावित-पत्वविधः पूर्वं समामकरणात् समासाभावे एत नस्यादित स्वितम् । पाणिनः १ । ४।६१,६२,६३,६४,६६,६०,६८,०००,०१।

श्रीस दुर्यव कोऽदः, भद्यासी गियेति भदुर्गिः। भन्तर्च भदुर्गियेति
तक्षात्। सूर्वय णादिय इन च मीनाय हिनुस भानिष्च तालयः शाना-नश चेति तस्त्र,

पूप्रा वीटी बीष्यम् घोरमा।

(ची-टी-चीव अम, मम्।१।, धी: ६।, ममा।३।)।

श्वासु परासु धोरम् स्थात् न तुमा योगे। श्वभवत् श्वभवतां श्वभवन्, श्वभवः श्वभवतं श्वभवत, श्वभवं श्वभ-वाव श्वभवामः । श्वभवत श्वभवेतां श्वभवन्त, श्वभवद्याः श्वभवेद्यां श्वभवध्वं, श्वभवे श्वभवावहि श्वभवामहि । *

मूइन्यणादिश्ति (५००) णोपदेशं क्रला ज्ञेयः । (५६६) पुनर्देन्यतप्राप्तिः स्वादिति । ग्रह्म नद्येत्यादिहन्ते गद—दिहाः, ते चन्ते यस्त स गद—दिहानः, सचासौ नियेति गद—टिहान्ति। सवी चन्ते यस्य स सवानः, सचासौ इन चेति सवानहन, चन्त्र निन्दच निवच सवानहन चेति तस्य । कातौ चायौ येषां ते कात्वायाः, मूईन्यपेऽने येषां ते पानाः, काखायाय पानाय काखायपानाः, न काखायपानाः सचासौ नियेति तस्य ।—

यथा — प्रययित प्रहणिष्यति इत्यादि । मीना इति प्रायुक्तस्य भीषातोः, हित् इति प्रयुक्तस्य हिंधातीर्यहणं । भानिप इति विभक्तिः । प्रयास्यति इति भाननभलात् णलं, प्रमण्ण इति न णलं । गदायन्तर्विष्णा — प्रणिगदतीत्यादि । दाइति दासंज्ञक्सस्य यहणं, तेन — प्रणिशक्कति प्रणिदशति प्रणिदशति । देङ दी घेट इति नयाणां (६०८) भाकारे प्रणिदास्यते इत्यादो यलं स्थान्, भिति परे तु भाकाराभावान् दासंज्ञाभावे न प्रलं । दीङ इत्यस्य (२०४३) ङादेश्चे यलं स्थादेव । मा इति स्वरूपयहण्ण नि माइति स्वरूपयहण्ण नि स्वरूपयहण्ण नि स्वरूपयहण्ण नि स्वरूपयहण्ण नि स्वरूपयहण्ण नि स्वरूपयहण नि स

* णादिक्वभीनादीनामनुइतिमाबद्धाह धीरिति। मा इत्यनेन माख-श्रव्स्सापि यक्षं। योगसुभयेन, न तृभव्यविह्नत्वेन। भम् इत्यागमः, म इत् (१०) भादौ स्वादिति। भभवदिति मुख्यादिष, भनेन भम्, (५४१,५४२,३५,६४) श्रष्, गुणः, भोस्ताने भव्, दस्याने त्। एवं सर्वेतः। पाणिनिः ६।४।०१,०४। पूप्र। व्यांसि:। (श्वां अ, वि: १ः)।

धोः सिः स्यात् व्यां। #

पूप्र। भूस्थापिबदेनी लुक्षे।

(मू-स्था-पिब दा-दन: ४१, सुक्।११, पे ७)।

रभ्यः सेर्नुक् स्थात् पे। अभूत् अभूतां। 🕆

पूप्र। सुवो वन टीळाचि।

(भुव: ६।, वन् ।१।, टौकाचि ७।)।

भूवी वन् स्थात् टीर्क्वोरचि परे । अभूवन् । क्ष अभूः अभूतं अभूतं, अभूवं अभूव अभूम ।

पूपूष्ठ। वसोऽरखंमनौदितः।

(वस: ६।, भरस ६।, इस् ।१।, भनौदित: ५।) ।

अनीदितो धीः परस्य ऋरस्य वसस्य इम् स्थात्। § अभविष्ट अभविषातां।

[#] पर्यगतिविश्वेषात् निभित्तगतिविश्वेषस्य बलवस्त्रात्, प्रय श्रप्शनादीनां यकीऽपि बाधकः। तंन कत्तेरि प्रभविष्ट, कर्माण अभाविषातानित्यादि। पाणिनिः ३।१।४३,४४।

[†] भूष स्वाय पिवय दाय दन चेति तथात्। पिवदित निर्देशात्पा स रचये पै शोधे दखेतथी: अपाधीत । दादित दासंज्ञकः, तेन दैप शोधने दखस्य घटासीदिति। अभूदिति द्या रतात् (५५४) वधीऽरस्थेति न दम्। किस्तात् (५४२) न नुषः। सुक्करपात् (५०४) न डिजि:। पाणिनि: २।४।७०।

[‡] भृव इति षष्ठानस्य भूषातीर्वन्तरः धालवयवतात् तिस्त्रान् परै भूषातीः (५४२) वृष्णविष्यं स् । वनीऽकार उदारवार्थः, न इत् (१७) पनी । भू-भन् (५५०,५५१,५५१,५५२) भभूवन् । पाण्यिनः ६।४।८८।

६ न रोऽरलस्य । नास्ति चौत् इत् वक्त सः चनौदित् तक्यान्। वस्त प्रति कनाःस्थवकारादिः प्रत्याकारः, चक्सोति (५३०) पच रः ब्रिकेति स्पीक्रसिकस्य ।

पूपूप् । मान्तोऽदनतः।

(मान्त: ६१, ऋत्।११, ऋगतः ५।)।

मस्यान्त् इत्यस्य चत् स्थात् नत्वकारात् परस्य । *
चमविषत्, भभविषाः चभविषायां ।

पूर्६। घं स-लोपो वा । (वे का, स लोपः रा, स (राहा)। चे पर सस्य लोपो वा स्थात्। क

प्पू ७। टी ठी ढीं घो ढिच: सेमस्त इलो वा।

(टी-ठी-ढी-घः ६।, ढारा, इच. ५।, सेम: ५।, तु ।१।, इल: ५।, वा ।१।)।

इतः परस्थासां धस्य ढः स्थात्, सेम्हलात् परस्य तु वा स्थात्। श्रभविद्वं श्रभविध्वं, (६४) भ्रम्भसोरिति सस्य दः—श्रभ-विद्ध्वं, ‡ श्रभविधि श्रभविष्वहि श्रभविष्यहि ।

स इत् (१९) फादौ। इसी वस्त्यानजातलेन तत्तृत्यालात् वसी गुणिताग्रणिलेन इसीऽपि गुणिलागुणिलं, तेन विवरिय इत्यादौ गुणः, दुद्दिव इत्यादौ न गुण । फौदितक्तु कविकल्पटुमात् क्रियाः। पाणिनिः शराक्ष्य— ७.२।१०। स्रव सौदित्-स्थाने प्रगुदाभेतृकयनम्।

मस्य भाक्षनेपदस्य भन् मान्यस्य । अन्दर्शिष्टमनस्य यष्ठयं, तेन भन्तः
 भन्ते भन्तां द्रस्थेशानिष्। भन्त दति निं, एधर्ने, (५४३) छीपीऽसीऽद्विगेरिस्यकार-सीपस्य स्थानिक्ताकीकारान्। पाणिनिः २१।५।

⁺ पाणिनिः =|२।२५ ।

[‡] टी-ठी ढोनां घ टीठीढीध तस्यः। सङ्घ इता वर्त्ततेसी सेम् तमात्। आसां टीठी-ढीनां। इल् प्रत्यादारः। स्—ार्च (५५०, ५५१, ५५४, ५४२, २५, ५५६), ततः भनेन धस्य वा ढ, असविद्वं असविष्यं। सलीप्राभावपचे सस्य द असविद्धानिति। पारितिः हाराज्य।

पूप्द। धुर्दिष्ठाहिः। (४: १), वि: १), चिक्टि ७)। कां अक्टिच धुर्दिः स्थात्। *

पूप्र। सम् खय् ह व क्षृणां जब चप् ज ख चाः खः। (कम्-इ-ऋषां ६॥, वर्-चु-भाः १॥, खः ६।)।

खेर्भभ् खय् इकार घे कावर्ग ऋवर्णानां क्रमात् जब् चप् जकारस्य चवर्गाकाराः स्यः । 🌵

पूर्६०। भवोऽङ् गां ढ-भावे तु वा।

(भुव: ६।, चङ् ।१।, क्यां ७।, ढ-भावे ७।, तु।१।, वा .१ः)।

भुवः खे रङ् स्यात् क्यां ट-भावयोस् वा । 🕸

बभूव बभूवतुः बभूवः, बभूविय बभूवयुः बभूव, बभूव बभुविय बभूविम ; बभूवे बभूवाते बभुविरे, बभूविषे बभूवाये बभूविद्वे बभूविध्वे, बभूवे बभूविवहे बभूविमहे। टे भावे च—बभूवे बभूवे इति प्रयोगी।

[#] टी च चङ्च काङ् तिकान्। प्रकरणादंत भी: प्राप्ती पुनक्षादानं, का कव्यक्ति प्रक्रियां के स्वादित ज्ञापनार्थं, तेन इन्दान्यभून इत्यादी इन्दादेनं दिलांगितः। वीक्षाययें पदानां दिलमिप वक्तव्यम् (विद्वालाकी सुदी-दिक्तप्रकरणं इष्टब्यम्।) पाणिनि: ६।१।८,११।

सब्चप् म स्व चु च

पाणिनि: ८।४।५४,--०।४।५८,६२,६६ ।

[‡] पाणिनि: ७ ४। ७३ । वार्मिकञ्च।

भविता भवितारी भवितारः, भवितासि भवितास्यः भवि-तास्य, भवितास्यि भवितास्यः भवितासाः; भविता भवितारी भवितारः, भवितासे भवितासाये भवितास्वे, भविताहे भवि-तास्त्रहे भवितासाहे।

भ्यात् भ्यास्तां भ्यासः, भयाः भ्यासं भ्यास्त, भ्यासं भ्यास्त, भयासं भ्यास्त भ्यासः, भविषीष्ट भविषीयास्तां भविषीरन्, भविषीषाः भविषीयास्तां भविषीय भविषी-विष्ट भविषीमितः।

भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति, भविष्यसि भविष्ययः भविष्यय, भविष्यामि भविष्यावः भविष्यामः ; भविष्यते भवि-योते भविष्यन्ते, भविष्यसे भविष्येषे भविष्यक्षे, भविष्ये भविष्या-वहे भविष्यामहे ।

त्रभविष्यत् त्रभविष्यतां त्रभविष्यन्, त्रभविष्यः त्रभविष्यतं त्रभविष्यत्, त्रभविष्यं त्रभविष्याव त्रभविष्यामः; त्रभविष्यत त्रभविष्येतां त्रभविष्यन्त, त्रभविष्ययाः त्रभविष्येषां त्रभविष्यः, त्रभविष्ये त्रभविष्यविष्टि त्रभविष्यमिष्टि ।

भवतिक भवतकः। प्रशिभवति प्रनिभवति । *
एवं चेततीत्वादयः। १

म वस्व इत्यादि, दिले, खेर्भय व, चनेन चक् । भविता इत्यादि (५५४, ५४२, १५१) । स्वादित्यादि कित्वात् न गुणः । भविषौदुमिति चामां घस्य टः स्थादिति कथनेन स्यवधानेऽपि टः । भविष्यतीत्यादीनि सुगमानि । भवतकीत्यादी (२०८) टं. पूर्ले चक् । प्रणिभवतीत्यादि (५४८) चकखाद्यवानान्तनेर्वा खलं ।

[†] एवं चेततीत्वादय इत्यमेन येष विशेषकार्य्याणि न सन्ति ते एवमित्ययः। विशेषकार्याये स्वार्णाः कदायसीत्वादि।

(२) चिती संज्ञाने। *

चित घातु: ई चनुवन्ध:, संज्ञाने प्रक्रष्टज्ञाने (पर्धे) वर्षते इति ।

प्रसङ्गात् गणपाठीका अनुबन्धास्तत्प्रयोजनानि च लिख्यनी।

```
न-ज्वलादिः। (१०००)
च-सुखीद्वारणार्थ:। (४)
मा--- निष्ठाभावादिकमं वेट ।
                                   ज-- उभयपदीः (५३१)
    (१०७०, भावे कियारमी च वाची
                                   জি--- খঘ-ন: |
    क्तःक्तवतुःस्थाने वादट्)।
                                      (१०८५, वर्त्तभानकाली काः)।
                                   ट - सागु:। (११४२)
प--- नुण्वान् । (५६८)
                                   डु--विसक्तयुतः । (११४३)
द्रर्---वा चङ्वान् ।
                                   च-फवादि:। (५०६)
    (५६५, ७ इ.ति खमते)।
र्दू---श्रनिङ्गिष्ठ:।
                                   त--- घटनः । घन्-धनः । (७०५)
   (१०७१, का-कवतुस्थाने न इट्)।
                                   द-तनादिः। (६८८)
                                   ध-रधादि:। (७३८)
च--कावेट्। (११७२)
                                   न-स्वादि:। (७३८)
क-बेट्। (५०३) वेस्।
                                   प-सुचादि:। (७४१)
च्ट—चङि पद्गतः । (६३८)
                                   भ-- भमादि: । (०४०)
म्ह---चिक्तिया ऋख:। (७०८)
                                   म-घटादिः। (७६८)
लृ—चङवान्। (५६५, ङ)।
                                   मि- विचि इष्-चर्माः वा इस्त । (७६६)
ए--- सिचि महित्रः। (५७६)
                                   य-दिवादि:। (७३८)
ऐ-यजादि.। (६५१)
भी--- निष्ठात न।
                                   र - वैदिनः । (वेदीन धातु:।)
   (१०५२, क्ता-कवस्वी: त-स्थाने न)।
                                   स-षदादि:। (६७०)
भौ--भनिट। (५५४) भनिम्।
                                   लि-हादि:। (७२६)
                                   लु—स्वपादिः। (६६१)
क-चुरादि:। (७०३)
कि--वा चुरादि:। (७७३)
                                   ब---ब्रतादि:। (६४८)
                                   म-तुदादि:। (७३८)
ग---क्यादि:। (७३८)
गि-प्रादिरपि (७६८)।
                                   मि—कटादि:। (७५५)
                                   ष---क्तदङ्वान्।
   पूषातुभित्रधेत खादिय। (१०५२)
घ-कदादिः। (४६१,६८५)
                                      (११५६, क्रदर्ने उङ)।
                                   च--जचादिः। (१७४)
জ---त ज्वान्।
   (५६१, कर्मार वाची त्रावानेपदी)।
```

पूर्ध्। रदाद्यस्तिसे-र्दिखोरीम।

(कदादि श्रील-से: प्रा, दि-स्यो: ६॥, ईम् ।१।)।

एभ्यो दि-स्वोरीम् स्वात्। #

पूर्द्र। अस-स्वात् असीम ईमि सेलीपः।

(भस खात् ४।, भसि ७।, इमः ४।, ईमि ७।, भेः ६।, खोपः १।)।

भासात् खाच परस्य भासि, इमः परस्य ईमि, सेर्नोपः स्थात्। श्रनेतीत् श्रनेतिष्टां। 🕆

पू६्र। अनुस् सिहरसवः।

(धन्।१।, खस्।१।, सिर्वः ४।, असवः ४।)।

सेर्डेंच परस्य घन उस् स्थात् नतु सुव:। घर्चेतिषु:, घर्चेती:। 🕸

[†] भास् च खबेति तकात्। भास् प्रत्यादारः। चिते—वित—व्यादि (५५०, ५५१, ५५४, ५४२, ५६१, ५६२)। चितिष्टां— चन दसः परस्य ईस्पेनेति विशेषिनय-भात् इस्तान् परस्यापि संर्वे लोपः। चिष्ट चलीष्ट इत्यादौ लोपस्वरादेशयोज् स्वरादेश-विधिनंतीति न्यायान् चादौ गुणे सिलीपो न स्वादिति। पाणिनिः ८।२।२६,२०,२८।

[्]री सिम दिय विदिक्षचात्। से: परस्य क्या चन् उत्, देसु घ्यापत्। यणा चनित्रः। चस्यः चपुः चदुः चगुः एषु (५५२) सेर्सुकि, त्यसीपे त्यसमयनिति नायात्से: परतात् चन् उस्। देसु चजनुरित्यादि। पाणिनि: १।४।१०८।

५६४। खेराद्यची जोषोऽनु ग्रम्खपाद्य-नान्यस्थाद्यन्तौ।

(खं: ६।, भायच: ५।, खोप्य: १।, भनु ।१।, प्रस्-भनौ १॥)।

खेरायनः परो भागो लोष्यः स्थात्, पश्चात् प्रसादि-खपान्ती यदि स्थोऽविषष्टस्तस्थादिलीप्यः, यद्यन्यादृशस्तस्थान्तो लोष्यः। चित्रेत चित्रिततुः चित्रितः। * '

(३) चुतिर् चरगे।

५६५। शासु जिट्दात्पषादे र्ड ष्टीपे—ज खि सन्भु विषु मुचु म्लुचु गुचु ग्लु ज्विदितस्त वा।

(शास-पुषादी: ४१, कः ११, टीपे ७१, जू-इरितः ४१, तु ।११, वा ११) ।

यासी र्जुकारेती युतारे: पुषादेश डः स्थात् टीपे, जारेसु वा। प्रश्रुतत् अच्छेतीत्। चुच्चोता पं

^{*} पादिवासी पच्चित पायच्तकात्। पादिरत घषां मध्ये इत्यथः। यस् च खत् च यस्वपी, पादिष पन्य पायनी, यस्वपी पायनो यस्य स मस्वपायनाः, सच पन्य तो प्रस्वपायनाः सो, तो च तो स्थो चिति प्रस्वपायनान् स्थो, तथीरायनी यस्य तो प्रस्वपायनान्यः तो, तथीरायनी प्रस्वपायनान्यस्थायनी। पन्न पद्यादर्थः। पद्यात् पायचः परभागाभावे इत्यथः। तेन यस्य स्थः पायचः परभागो वर्णते तस्य तक्षोपामन्तरं, यस्य तु न वर्णते तस्य प्रसम्तपन्, प्रमादिन्द्यपान-संयोगस्य पादिवर्णी लोप्यः, प्रन्यविषसंयोगस्य प्रन्तवर्णी लोप्यः, प्रस्वित विचेत इति चित— चप् (५५६) विलं, प्रनेन स्वः तलीपः, (५४२) वृषः। पाणिनः वाह्यः, ११।

[†] लृ रत्यस्य स लित्। युत् च प्रवृ च युत्प्रधी, ती चादी ययोसी युत्प्रधादी। भास्य लिच युत्प्रधादी चेति तत्थात्। स्तमते लिटिस्तिनैव विश्वे युत्प्रधायी-र्यं हर्ष प्राचासन्तरीयात्। इर् इत् यस्य म इरित्। जृष विश्व सन्सुष विश्वे सुच्य सुच्य युच्य खुच्य इरिवेति तथात्। शासुप्रध्यतीनां स्वकारित् विक्रार्थः। युतादय चात्रमनेपदिनः, चत्र तुटी-पे स्विधानसामर्थात् स्वां सक्षयपदिनः खुरिति।

(8) मन्य विलोड्ने ।

प्रईई। खात् ग्रिपत् किदा।

(स्थात् ५।, ठी ।१।, चपित् ।१।, कित् ।१।, वा ।१।)। 🌣

पूर्ध। इसङ्गो लोपोऽखौ।

(इसुङ्न: ६।, 'लोप: १।, प्रणौ ७।)।

भीर्हस उङी नस्य लीपः स्यादणी।

ममथतुः ममन्यतुः । मर्थांत् । १

जुतादयस जुत हत स्थ स्वन्द क्रम सित निद लिद क्ष घृट क्ट लुट लुट लुठ स्थ स्थ नम तुम सन्म धन्म सन्स सन्स सन्म दिन स्थोविंगिति:। प्रपादयस प्रम एम तुम दिन दिय स्थाविंगिति:। प्रपादयस प्रम एम तुम दिन दिय स्थाविंगिति:। प्रपादयस प्रम एम तुम दिव स्थाविंगिति:। प्रपादयस प्रम ति तुम दिव सिंदि। स्थाविंगिति:। स्थाविंगिति स्थाविंग

- * संयोगात परा आपित् ठी कित स्थादा। परमुत्रे इमुङ्नी लोपोऽणी ब्यान्तु वा इति क्रसे, आपित्ब्यां नखोपिवक्तले सिर्डे प्रथक् एतत्मृतकरणं अस्ज्ञधातीः (०५१) भस्जोऽरेखो भर्ज वेल्यभेन वभर्जे इत्यत्र भर्जादेशार्थे। आसंयोगासु निल्यम् यथा — पाणिनिः १।२।५।
- † उक् चासी न चेति उक्त, इसी इसनधातीरक्त इसक्त तसा । नासि सर्यक्षिन् (परे) सीऽग्रसिवन् । मध्यधातीः चतुम् पूर्वेष कित्, कनेन न-बीपः। पचे किचामावान् चमुखलाभावे न न-बीपः। मध्यादिति (५२१) निल्पक्षिचे निल्पं न-बीपः। पाणिनिः ६।॥।२४।

(५) कृषि हिंसा-संक्षेत्रयो:।

पू६्ट। नेदित्पूजार्थाञ्जोः।

(व ११), इदित्-पूजार्याची: ६॥) ।

इहितो भी: पूजार्थस्याञ्चतेस न-लोपो न स्यादणी। श्रतएवेदितो तुण्। प्रनिकुत्यात्। (५४८) कादिलात णः। क (६) विश्व शत्यो।

पूर्र। भ्वाद्यादिष्ण: स्रो ऽश्चीव्यव्यविषयां।

(भादादिषा: ६।, सः १।, भ-छो-लक-छिवां ६॥)।

स्वादेरादी स्थितयोः व-णयोः स-नी स्तः, नतु छौ-खक्कष्ठिवां । व

प्राची सेक सीक स्प स् स्ज स्तृ स्यान्ये दन्याजनासादयः शोपदेशा धवः, खब खित् खत् खञ्ज खप सिड्य । गोपदेशा स्वनृज्यद्दं नाय नाध नन्द नक्क नृ नटः।

इत् प्रकार: इत् यस स इदित्, पृजावंशाधी, चन्च चेति पृजावंशन्य, इदिव
 पृजावंग्वच च तयो: । इकारानुवन्धधातीर्गकार एव नास्ति कवं तस्य लोपी निविध्यते
 भतमाइ चतपतेत्वादि, (पाचिनि: ७।१।५८) चतएव न-सोपनिवेधादेव । पाचिनिः
 (४।४।४,३०।

⁺ भू: चादिर्यस्य स भादिः, भादिरादिः भाषादिः, षच चच च, भाषादी च भाषादिच तस्य । भादिरिति भूसत्तायानित्वादिर्दयगणात्मकः, तथाय—भाषदादी सुद्दीणादि दिवादिः स्वादि-रेव च, तुदादिच बधादिय तनक्रादिचुरादय इति । धीरिधकारिऽपि भृदियद्वचं नामधातुनिरासायै । पाणिनिः द्वाराद्वश्रद्ध । वार्तिकच ।

(सेला— घनो १॥, दन्याणन्तसादय: १॥,षोपदेशा: १॥, घन: १॥, सकाः — सिण्डः १॥, च ।१७, षोप्तदेशा: १॥, तु ।१।, घ-वतः — नट: १॥)।

सेंधति। %

पू ७१। व्याच्छ स गत्र वैवदे स:।

(व्याक्तस्य ४।, गलर्थत्रदे ७।, सः १।)।

गत्यर्थे वदे च भी परदे वास्यां च्छत्य सः स्यत्। प्रच्छ वेशति। 🕆

प्७२। गीकः सुसुभ सो सुवास्त्रान्त-सुझां स्वासिन सन्ज स्वन्जा अतिसेधा अतिसदा

वीपदेश-कोपदेशी दर्शयति बार्डवा भार्थ्या।

सेन प सीन च छव च स्या छन च सुष स्याय ते, नियोऽणे । स्या इति स्थेषातः (६००) ऐ स्थाने फान दस्यक पश्च दत्याची, ती प्रने यस स दत्यांननः, स चासी स पित दस्याजनसः, स पाद्येषां ते दत्याजनसारयः । दत्यवर्षानाः प्रजना वा ये सनारा-सदादिला घातवः थीपदेशाः, सस्य उपदंशी थेषु, धातुमंत्राकाले मूर्वं व्यादिलंक पिततः द्रश्यः। सेनादीना मजनसादिलान स्व स्थे द्रश्येतयो दंन्यानसादिलाक पात्री निवेषः। स्वकादीना मत्यालात् प्रयमुपादागं। छट्टी यच विधेते यो वः प्रथयसिका, प्रनः स्थं तं विजानीयान तदथी वर्षे छच्दी इति वधनात् स्वप्राप्तीनंकारस्य दत्यलेऽपि प्रयक् यह्यं कचित् वीपदेशाभावकापनाय, यथा सान्व क सान्वने द्रश्यादयः। षोपदेशपलन् तुष्टाव द्रश्यादी कृतस्यकारलात् (१११) घलम्। पाणिनिः द्रश्यं व विदेश निवेषात्रम्।

रुच नह्च राष्ट्रादि इच्छः, न सन्ति रुत् नहं नाथ नाथ नच्च नकः नॄ नटः सेवु धातुषः ते। रुत्प्रस्तिवर्जिता नादयो धात्रवः कोपदियाः, धातुमंचाकाले स्टब्सादिलेन पठिताः इत्यर्थः। कोपदियाजना (५४८) इत्यनेन कलं। पाचिनिः हाराह्य स्वे वार्तिकाम्।

सेधतीति विश्वधातुः योपदंशः, (५६०) वस सः।

† व्यक्त तत् घच्छः चेति व्याच्छक्तस्य'। नश्यभ्य वदय'तिष्णण्। घच्छः इति घनि-सुस्तार्थो निपातः । घच्छ-सेधित घभिसुस्तं गच्छतौत्यर्थः । एवं घच्छः वदति घभिसुस्तं वदति । (५४.८) व्यस्य ग्यनुकारिकस्य विशेषीऽयं । पाचिनिः र।४।६८ ।

ऽयङ्सिचा उनङ् सस्मा उन्तव्यवस्वन परि नि वि सेव सुम उनङ् सिवा उनोऽङ् सन्तां सः षो उस्यपि दश् स्थादेस्त देश्व। *

(गि-१क: ५१, सु—सुर्जा ६॥, स्था—सङ्गं ६॥, सः १।, यः १।, पनि ७।, विव ।१।, दश-स्थादे: ६।, तु ।१।, दे: ६।, च ।१।)।

स्वादे-रस्यान्तस्ञः स्थादे-रगत्यर्थ-मेघी ऽप्रतिपूर्व-सदी यङ्वर्ज-सिची ऽङ्वर्जस्तमो ऽन्नार्थव्यवपूर्व-स्वनः पर्यादिपूर्व-सेव-सम ऽङ्वर्ज-सिव श्रोऽङ्वर्ज-सहाञ्च गैरिकः परः सः षः स्थात् श्रम्यन्तरेऽपि, द्यानां स्थादीनान्तु दिस्तानाञ्च।

निषेधति न्यषेधत्। गतौ तु-गङ्गां व्यसेधत्। ф

[†] भव मुब इति तौदादिकस्य षूष्र चिपे इत्यस्य ग्रहणं, नतु यू उत्तल सूबी उट्टालियीः। मिनिरिति नामधातः सेना-शब्दात् (८५८) जि:। निषेधतौत्यत्र भगत्यर्थलात् वर्लं, च्या दिष्य न्यथेवदित्यत्र भम्व्यवधानेऽपि वर्लं। गत्यर्थे तु व्यसेधदिति न वर्लं। संध इति निर्देशात् दैवादिकस्य निसिध्यतौत्यादौ न वर्लं। भवस्यपतौत्यत्र व्यवस्थन-

(७) विध् गास्ते माङ्गली च।

५७३। वेमूदित् खर चाय स्फाय प्याय सूति सूय धूञ रधादि निष्मुषोऽरवसो रुदुसुनोस्त्वश्याः।

(बा ११), इन् ११), कदित्—िनष्कुषः ४।, घरवनः ६।, बदुसुनीः ४।, तु ११।, अब्धाः ६।)।

एस्यो वसस्यारस्य दम् स्यात्,वा, रीत्यादेसु ठीवर्जं ।
असेधीत्।

५७४। वजवदरं सजिनमो ऽजिश्विजागु वि:

(वन वद भर-अल-अच-अनिम: ६।, अजिधिकागुः ६।, वि: १।, सौ ७।, पे ७।)।

इत्युक्ती: गीकिभिन्नादिषि पत्नं । सुम् इति सुम्-भागमः (७५३, ०६६) । (१११) किला-दिल्यनेन प्राप्तं चपमगैनिमिक्तकमेव घलं भ्रमेन नियम्यते, तेन विसीति प्रतिस्नाति इत्यादी न घलं; तीष्ट्रयते इत्यादी खि.निमिक्तकं पलं स्थादेव । किलादित्यन यथा, तथा इष्ठापि विसर्गत्यवधानेऽपि पत्नं स्थात्, यथा नि:ष्टौतीत्थादि । पाणिनिः प्राश्चिद्रप्त, ६६,६७,६८,६८,००,११३, वार्त्तिकानि च ।

^{*} जत इत् यस्य जंदित्, रघ मादियंस्य स रघादिः, निमः कुष निष्कुष ; जिदिस स्वर्थ चायस स्मायस प्यायस मृतिय ग्यस घूजन रघादिय निष्कुष चेति तमात्। रुष दुष सुष नुष तमात्। स्वर इति स्वृ ज शब्दीपतापयीः, सजातीय-घालन्तराभावात् स्वृग्रहणे नैवेष्टिसिडौ स्वर्ग्यहणं किचित् निर्भेषं वाधिला निकल्पीऽयं प्रवर्षते इति ज्ञापनार्थं, अत्रव्य (६१६) नेस्तरस्य प्रत्यनेन दम्निषेधेऽपि सस्वरिष्य सस्वयं इति भनेन वा दम्। मृति स्य इति भदादिःदिवाधीग्रंहणात् षू श चेपे दलस्य भसावौदिति निल्मिम्। रघादिनु रघ त्य दप दप सुद्ध दुह सुद्ध सिद्ध निश्च प्रत्यते भष्ट। स्वमते किदिस्तेने सिद्धौ स्व-रघायांदिइ पाठः प्राचीनमतानवादार्थः। चेदुसतः इत्येतेषां ज्यां विकल्पस्थेन वर्णनं (५८४) नेमसम इति नियमात् निल्पं इम् स्यादिन । पाणिनः ०।२।४४,४५, वार्त्विकं "किति तु निल्पः प्रतिषेषः। स्वृत्या। मृत्या। धूत्या।" इति।

व्रजे वंदे-ररन्तस्यालन्तस्याजन्तस्यानिमयः सौ पे विः स्यात्, न तः जि-स्वि-जागृगां। भसैस्तीत्, भरेधिष्टां। अ

प्७प्। ढभात् तथीघीऽघः।

(ढभात् ५), तःयोः ६॥, घः १।, चघः ५।)।

टभात् परयोक्तवयोर्धः स्थात् नतु धानः। श्रसेंडां। 🌣 (८) खद स्वैर्धे वधे च ।

पू ७६ । इसादे: सेमा ऽद्धारे दित्चणखस-वधा वोङत: सौ पे बि:।

(इसादे: ६।, सेन: ६।, घ-इ-म-य-एदित्-चण अस वध: ६।, वा ।१।, छङत: ६।, सौ ७।, पे ७।, ति: १।)।

हमयान्तादेकारेत: चणादेबान्यस्य सेमी हसादेकङोऽका-रस्य त्रिः स्यात् वा सौ पे। प्रन्यखादीत्, खादिलान णः (५४८), त्रखदीत्। ध

[•] नास्ति इ.म् यसात् सीऽनिम्। त्रजय वदय घर्ष घत् च घत् घिन् चिति तस्य। जिय यिय जारक्षित तत्, न तत् घिजियजार तस्य। घर् घल् — एतदल्यीयंहणं। घत् इति स्वरवर्णाः। त्रजेवेदिति, धातीः स्वरुपकयने इप्रत्यथी वक्तत्यः। घनिम् इति स्वर्ष इम् स्थात् तदैव, तेन घनिसीदिति, इनी विकल्पपचे घनिम्तात् िध इकारस्य वृद्धिः ऐकारः(८) घचघारास्तेज् विरिति नियमात्। व्रजसाह- घर्यात् वद इति दल्यवकारादिः। (६८६) जायोऽणविति गुणभाषाविष इह जारक्ष्यं वर्जनं विशेषविधानात् प्राप्ताया वृद्धिनिविधायः। पाणिजः ७।२।१,२,३,४। निविधनु प्रमुवि प्रदत्तः।

[†] उभ इति प्रत्याद्वारः उघ घभ इति । भ्रमेत्रामिति विकल्पपचे भ्रमिल्लात् इन्दी, (५६२) सि-लोपे, भनेन तस्य भः । घाञलुभत्ते इति । पाणिनिः घारा४० ।

[‡] इन् मादिर्थस्य सातस्य । सइ इना वर्तते यः संसेम् तस्य । एत् इत्यस्य स्र एदित्, इत्त नचयत्त्र एदिस चणाच अस्य यक्षयंत्रत्, न तत् चल्लीप्रदित्चणाचन्द्रवा

प्७७। ञ्णिलन्येजुङ्तीः।

(ञ्चिति ०।, भन्येजुङतो: ६॥)।

धोरन्यसीच उङोऽकारस्य च तिः स्यात् जिति णिति च। चखाद। अ

पू७८। **गण्यन्ये वा।** (विषि का, धन्ये का, वा ११))। चखाद चखद। गं

(८) गद भाषे।

प्रणिगदति। \$

(१०) बद खैर्थे ।

पू ७ १। तृ फल भज चप यथ ग्रथ दभादा-न्तास्य इसां खाः कित्-सेमथपदेः खिलापसा-मम

तस्य । उङ्चासी पञ्चिति उङ्ग्तस्य । इन्तादिनु पच हीत् पक्षमीत् पहयीत् पकः टीत् पच थीत् पत्रभीत् पत्रभीत् पत्रभीत् पत्रभीत् पत्रभीत् पत्रभीत् पत्रभीत् प्रभीत् वा इति: । पाणिनि: ९।२।५,९।

^{*} अच याच ज्यो, ज्यो इती यस स ज्यात ति त्या स न्यासी इसित मन्येच्, सक् चारावित सकते प्रकृत, मन्येच सक वित्त । मन्येच्यात् इसादिति ति तात्वर्तते । तेन धातुमानस्य मन्येच सकत्य ति: स्यादिति । सकत्त प्रकृति वित्त स्वादिति । सकति यह या ति वित्त स्वादिति । सकति यह या ति वित्त स्वादिति । सकती प्रवित्त प्रकृती वित्तः सकति वित्तः । सन्य वृत्ती धीरिति यह यात् त्वय्यतीत्यादौ जिसमेतस्य (६२१) धातुमंत्रायामिति त्य-स्वस्य धातुलाभावात् सकती न वृत्तिरिति । नागर्यतीत्यादौ (६८८) गुणे, एक निस्ति सं कार्यो कार्यान्तरस्य वाधक मिति न्यायात् पुनर्भ वृत्तिरित । च्याद इस्त सक सकती वृत्ति । पाणिनः अश्रिष्य,११६।

[†] अपन्ये (चत्तसपुरुषेकवचने) चपि परे धोरन्यस्थेच छक्कीऽकारस्यचि वि: स्थादा इ.स.चै:। पाणिनि: ७।१।८१।

[‡] प्रविगदतीत्वत्र (५४९) गदावलनिर्वतं ।

दद वाद्यन्यथा-िख णुनलोपिनां जूवम स्वम चस फणादि वधार्थ-राधान्तुवा।

(तॄ—इसं ६॥, ठ्याः ६।, कित्-सिमयपि ७।, चत्।१।, एः १।, खि-खोपः १।, घ ।१।, घः ग्राग्र—नक्षीपिनां ६॥, जॄ—राधां ६॥, तु ।१।, वा ।१।) ।

नादीनामाद्यन्तस्थितास्यहसानाञ्च अकारः ह्याः किति सेमष्टिप च एः स्थात् खिलोपय, न त प्राग्ने देदे विकारादे रन्ध-ष्टाभूतखे णुमतो नलोपिनय, जूवमस्थमनसफणादीनां हिंसा-र्थस्य राधिय वा स्थात्। बेदतुः बेदुः बेदिष । अन्यथाभूत-• खेस्तु चखदतुः। ॥

(११) एट ग्रब्हे।

(५६८) भ्वाचादीति णो नः। नदति। प्रणिनदति। १

तृथाती प्रेमच्वात् पलभनी र थया खिलात् चपः संघी गादिलात् यथयथीः संघी गादिलात् निलोपिलाच दभी निलीपिलात् चप्राप्ती प्रथातिः। फाणादिच फण राजधान भागभाग्र स्थम स्वम इति। चन फणादिपाठ सामच्योदिन चाकारस्यापि एत्वं, एवं वधार्थराधीऽपि।

बेदतुरित्यादि वर्ग्यंवकारादित्वात् न निषेध: । दत्त्यादेनु ववजतु: ववनतृरित्यादि । चस्त्रदतुरिति (५५८) स्तस्याने च-करणादन्ययास्तितं । पाणिनिः ६।४।१२०,१२१,१२२, १२३,१२४,१२६,वार्तिकानि च ।

[ं] सः संयोगः, न स्रोऽसः, भस्यवासी इस चेति भस्यइस्, भायान्तयीः भस्यइस्
येषां ते भायान्तास्यईमः। तृथ फलय भन्य नयय यथय गयय दभय भायान्तास्यइस्य
तेषां। सह इसा वर्षते यः स सेस्, सेस्चासी यप् चेति सेस्यप्, किन्न सेस्यप्च तिका। भनः स्वान्य वकार भादि यंस्य स वादिः, भन्यवा भन्यकारो नातः खिर्थस्य भोऽन्ययाखिः, स्व नलोपय तौ सन्तोपौ, तौ विद्येते ययोन्तौ सन्तोपिनौ ; प्रश्य (पासिन्तते तु दन्यानः।) ददय वादिय भन्ययाखिय सन्त्योपिनौ च ते, पसात् नञ् समासे तिषा। वधार्ययासी राधचेति वधार्यरास्, जृथ वस्य सन्य चस्य फ्यादिय वधार्यरास्च ने तेषां।

[†] प्रणिनदति (५४८) गदादान्तनेर्थलं।

, (१२) ऋई पीड़ायां।

प्रदर्ग स्थान्तादाद्यृदाद्यश्रोः खेरान् कां वा लाक्ये:।

(स्वानादादि-मदादि पत्री: ६।, से: ६।, पान्।।।, न्यां ६।, वा ।।।, तु ।।।, पाञ्के: ६।)।
स्यान्ती योऽकारादिस्तस्य ऋकारादेः ग्रश्नोतेष्य खेरान् स्यात् व्यां
श्राञ्कतेस्त वा । प्रानद्दे। *

(१३) इदि परमैखर्थे।

पूट्र । भूयोऽमजादे: । (भूयः ११।, भनारा, भनादेः ६।)। भजादेरिम कते पुनरम् स्थात्। ऐन्दत्। पं

पूट्र। विजादि-दयायासत्यानेकाचोऽनृच्छू-र्गोष्ठियामाम्।

(विजादि - भनेकाच:, पा, भनुकार्षीः पा, खां था, भाम ।१।)।

[#] स्थः संघीगीऽनी यस मृ स्थानः । चत् चादिर्यस्य सः चदादिः । स्थान्तयासी चदादियिति स्थानादादिः । ऋत् चादिर्यस्य स ऋदादिः । स्थानादादिष ऋदादिय चयुचिति तस्य । चत्र चदादिरिति चन्तवर्षि वर्षान्तरसहित-ऋकारादिरैव, तेन ऋधाती-नैयहणं । चानई इति चई-यप्, दिलं, खेः स्थाने चान् । पाणिनिः ७।४।०१,०२, वार्तिकस्य ।

[†] अष् (खरवर्षः) चादियंख सीऽजादिसस्य। जीम कते इति (५५०) घीटौथी-ष्यम् इत्थनेन । ऐन्दत् इद चतएवेदिती तृण् इन्द्र, ष्या दिप् (५५०) चिन, अये धातीरिकारेण सन्धी, प्यात् चनेन पुनरम्, ततः पुनः मिनः । जये चम्हयस्य सन्धी पुनरम्करणस्य वैयर्थात् । (५०५) घीटौथीष्यम् धीरमा चनादेर्त्रिय, इति कते सिडी पुनरतन्म्यकरणं चादिष्टस्यापि चनादेः पुनरम्विधानार्थे, तेन यज्ञधातोः पैज्यस्, वय्धातोः चौष्टामित्यादि सिडां । पाणिनः ६।४।७२।

वसंज्ञेजादेरीय श्रय श्रास एभ्यस्थान्तादनेकाचय श्राम् स्थात्, नतु ऋच्छूणीः। *

पूद्श स्वस्क्रन्यामः। (भु-भस्-क्राश्ण, भतः।रा, भामः धा)।

भू अस् क एते आमन्तादनु प्रयुज्यन्ते । इन्हास्त्रभूव इन्हामास इन्हाञ्चकार् । 🕆

प्र⊏8। नेम ऽसुम्झ स्टस् सुद्रुश्रु सो-रेव

ठ्या: । (न।१।, द्रम।१।, चमुन्क-सी: ५।, एव।१।, व्या: ६।)।

एभ्यएव ळा इम् न स्थात्, अन्यसादनिमीऽपि स्थात्।

कर्न्दः। कथासी इच् चिति विच्, विच् चार्दिध्य स िनादिः, विनादिः
स्थय चयस चामस अय चनेकाचिति तसात्। सटक्कच ऊर्ण्य सटक्णुः, न सटकुर्णः
तसात्। त्यः प्रत्ययान्तः। त्यानानामनेकाचलनेव प्राप्ती प्रथक् यक्ष्यं खामास
(८४८) इत्यादार्थम्। पाणिनिः १।१।६५.२६,३०।

[†] मूच भम्च क्रवेति भूसक्त । त्रान इति पद्याया एव परतः प्रयोगे थिन्ने अनुवन्न क्रियाविश्विष्णीपमर्गव्यवधानिऽपि प्रयागायाः तेन तं पात्रयाम्प्रयममास इति, एचाम्पवक्षिरित च रघुभष्टीः (इटन्तु न पाणिनिम्स्यतम्)। प्रवंतोऽनुवनाविष पुनरामी यहणं सामान्याम्प्रप्रायाँ, तेन (६००) द्रिदालाशिति, (०२८) प्रयाम् विति आमीऽपि भृदिरनुप्रयोगः। भव भाक्षनिपदिधानुस्रोऽस्मुवी-रनुप्रयोगे कत्तरि कतस्य भाक्षनिपदस्य स्थाने परस्रोपदादेशी वक्तवः, करोते रनुप्रयोगे तु (क पृगेऽपि क्रियापत्रे) मूल्वधानीर्व परस्रोपदाक्षमिपदे तिष्ठतः (पा. १।३।६१)। इत्यामासिति, भक्तेः अनुप्रयोगविधानसाम्प्रादेव (६८२) न मू-भादेगः। पाणिनः १।१।४०, भव त्वे "प्रयुच्यते इत्यतेनेन प्रयोगे सक्षे अनुपदीपादानं विप्रवासनिवस्ययं व्यवहित्तिवस्ययं इति वार्तिकक्षारास्यः; तेन तं पात्रयां प्रयममासेलादिकमपाणिनीयमिति मिन्निनायः।'' "तं पात्रयां प्रयममास पपात प्रयाद्वित्याधं' इति क्रमदीवरः। एवां प्रकृतिस्य उद्यान् प्रयक्ति केवित् समाद्वित दित गोयोचन्दः। "भानः क्रजनुप्रयुच्यवे' इति कातकस्वन् । "व्यवधानेऽपि दस्यते, तं पात्रयाम्प्रयममास पपात प्रयात् अनुप्ते इति गोयोचनः । "पात्राम्प्रयममास पपात प्रयात् । इति प्रात्राम्प्रयममास पपात प्रयात् । इति प्रात्राम्प्रयममास पपात प्रात्रात्रयाः । इति प्रात्राम्प्रयममास पपात प्रात्रयन्ते । स्थानाभः। ।

इन्टाञ्चकर्ध । 🔅

(१४) विदि कुकायां।

प्रणिन्दति प्रनिन्दति । 🌣

(१५) उख गती ।

प्रप्। खेर्या रियुवर्णे।

(खं: ६।, यो: ६।, इयुव ।१।, वर्षे ७।) ।

स्वेदिवर्णीवर्णयोः क्रमादियुवी स्थातां त्रर्णे परे। छवोख। त्रर्णे किं, जखतुः!। ध

(१६) अन्तु गतिपूजनयोः ।

(५६८) नेदित्पूजार्थाघोरिति, यञ्चात्। गतौ तु प्रचात्। §

(१७) सुचु इर् गत्यां।

(५६५) शासुलिद्ब्दिति को वा, श्रमुचत् श्रमोचीत्। ग

^{*} नास्ति सुम् यस्य सः भस्म, भस्म भासी क्षेति भस्मकः. भस्मकस स्य इस्य स्य स्य द्वय प्रय स्थिति तत्तात्। (५८०) नेसेका नादित्य व वर्जनात प्राप्तस्य इसी निवेधार्थिन इन्यइर्णः। भर्त्यां सप्तानां एका चलेन भिन्मानि इस्य दर्णान्यसार्थः। नियसय भानिभेषात् सेलेन लेग्लं एथ्य एव क्या इस् न स्यात् स्तरा एव-कारिण भन्यस्यादिनिसीऽपि धातीः क्या इस् स्थादिति । इन्दाञ्चकर्षे इत्य अस्मृत्रला-दिस्निवेषः। पाणिनः शरारह, "क्षत्रीऽस्टः" इति वाक्तिक्षेष ।

[†] प्रशिन्दति प्रनिन्दतीत्यचः (५४८) वा गलं।

[्]रिय उद्याय तस्य यो:। इष्च उत्व तत्। चर्चे घष्ठभानवर्षे परे। उत्योख इति उद्धा चप् दिलं, खुलोपः, स्वस्य उकारस्य गणाचीकारः, (वर्णादाङ्ग वसीज इति न्यायात् चादीन (२२) दोर्घः।) ततः चनिन स्ते. उस्थाने उत्। ऊखत्रित्यका किति गुणाभावे समानवर्णलात्न उत्, सन्धिः। पाणिनिः ६.४।९८ ।

[§] भधात् भन्व दी सात्, पूनायेक्षात् म नर्लापः । गत्येषे भचादिति न लीपः । ๆ असुनदिति सुन टौ-दि, चादिकात् ङ,डिति गुणाभावः । पचे व्यां सिरिकाटि ॥

एवं (१८) स्नुषु, युषु, म्बुषु । (१८) श्राह्य श्रायामे ।

সাৰাক্তমাক্ত।

(२०) वज गती।

ववजतुः, ववजिद्य । (५७८) वादित्वात्र ए: । 🕫

(२१) वृज गती।

(५०४) वृजवदेति वृ:। अवुाजीत्।

(२२) अज गती चेपणे च।

पूद्ध। व्यजोऽरे वा त्वनवस्ववजनकापि।

(वी ।१।, भन: ६।, भरे अ, वा ।१।, तु ।१।, भन-विध अ, भ घज्-मल्कापि अ)।

श्रजते-ररे वी खात्, श्रन-त्ये वसे च वा स्यात्, न तु घञादौ।†

पूट्छ। नेमेकाजाद्युदतोऽश्वि यि डी शी यु र गु सु चु च्या वु:।

(न ।१।, इस् ।१।, एक। च्-मात्-इ-उत्-ऋतः ५।, कत्रि-- वः ५।) ।

^{*} सुनुप्रस्तयोऽपि व्रतुवसाः गलार्थाः । श्रामाञ्च श्राञ्च प्रति श्राञ्च पप् (५५०) वा खेरान् । वजधातुदैन्यवकारादिः, श्रतएव म खेलीपः नघ श्रकार एकारः ।

[†] अनस्य तस्य तस्यिन्। घज्य अल्च काप्च घजल्काप् ति सन्। अन इति (११३४) मलयः। वस् प्रलाझारः। घज् अल्काप् एते च (११३४,११४०) प्रलयाः। 'वी' इति दीर्घीचारणं किं—प्रवीतः, वीला, वीतिः इलायर्थम्। पाणिनिः साधाप्रदुप्रः।

खादिरत्येभ्य एकाज्भ्य चादक्तेवर्णाक्तीदका-ऋदक्तेभ्य इम् क स्यात्। चवैषीत् चाजीत्। विवासः। #

पूट्ट। सुध्वोरणुचीयुव्यो व्याँ त्वस्यान्त्रै-काचो व्याः।

(त्रु-ध्वी: ६॥, प्रस्तिचि ७।, इयुत् ।१।, यी: ६।, व्यी १॥, तु।१।, प्रस्यात् ५।, नैकाची: ६॥, व्यी: ६॥) ।

श्रीर्घीय द्रवर्णीवर्णयीरणाविच द्रयुवी स्तः, श्रानेकाचीसु श्रस्थात् परयोः क्रमादुवर्णेथर्णयो व-यो स्तः। विव्यतः विव्युः। 🕆

* एकोऽच्यस्य स एकाच्। भागच इय उत्च चृत् चित भागुटन्, एकाझासी भागुट्येति एकाजायुट्त् तसात्। यिश्व श्रिय जीय भीय युष क्य ग्रम सृय कृष चृष चृष्य इय ते, न विद्यले ते यत्र तत् भिष्य श्रिय जीय भीय युष क्य ग्रम सृय कृष चृष्य इय ते, न विद्यले ते यत्र तत् भिष्य श्रिय जी भी यु क ग्र सृ चृष्य इ तसात्। सामान्यविधिमाप्तस्य इसी निष्धकीऽयं, विभेषविधिना तु स्थादेय, यथा (५८८) यमस्मिति भागसीत्, (६२३) सृक्षभीरिति भागिति, (६१०) स्थाईन दित कारियातीयादि। यु इति यु ल सित्रणे युक्त ग वसी इत्युस्थीः, एवं इति स्थादीय-क्षादीययोः च स्थादेव प्रतिप्रस्यः। भव क्षणु इति द्योग्रेष्ठ के निष्पेम्प्राप्त्रप्र्यमिति केवित्। भवैषिदिति भाग-टीदि, पूर्वेण वसी परि वी भादंभी, एकाजिवर्णान्तवान् इत्तिचिक्षः, (५०४) भनिस्वात् ब्राह्मिः। पर्चे भाजीदिति न इस्निविधः। विवाय इति चण्, भरे परि निष्यं वी-भादेशः, इत्वं, (५५०) इत्वः, (५००) वृद्धः, सन्तः। कारिका।

विव्यतुः विव्युः सभयन घनेन इस्याने यः । एवं विव्यिन विव्यिम ।

पूट्र। स्जद्यस्पाठात्वती नित्यानिम्तु-स्थपो वेमन्व्येऽदः।

(सृज दश चर्षाठ-चलतः ५१, निष-चनिन्तुः ५१, घपः ६१, वा ११।, ६म।१।, चन् ऋ व्ये ऽदः ५।)।

स्रजिर्दृ भेरजन्तात् भ्वादिपाठे श्रकारवतो नित्यमिम्रहितहत्वात् थप इम् वा स्थात्, नतु ऋ व्येज श्रद एभ्यः । विवयिष विवेष । #

(२३) चि च्ये।

पूरः । द्वींऽज्यरे । (र्धः ११, बच् १११, वि ०), वरे ०)। त्रजन्तस्य र्धः स्थात् बरे ये परे । चीयात् । र्वः

^{*} यतः प्रस्यस्य पतान, पाठे (दशिष्णणपाठे) जातान् पाठालान् । स्त्राच्य प्रस्य पद्म पाठालांक्षिति तस्मात् । नित्यम् प्रानिम् व(प्रत्ययो) यस्मात् म नित्यानिम्ता तस्मात् । नित्यानिम्तारिति प्रजन्तस्य पाठालतस्य विशेषणं । ऋस् व्यय पद चिति च्रत्येऽद् म च्रत्येऽद पर्वेऽद तस्मात् । पाठकाले प्रकारवत्ते यथा पच—पेविष्य पपक्ष, वच—चविष्य चवक्ष प्रत्यादः । पाठवाले प्रकारवत्ते यथा पच—पेविष्य पपक्ष, वच—चविष्य चवक्ष प्रत्यादः । पाठवाले प्रवान क्षेत्रस्य पत्र वित्र क्षेत्रस्य पित्रस्य पित्रस्य पित्रस्य पित्रस्य पत्रस्य पत्रस्य च्रत्यादः । नित्यानिम् । नत् च्रत्येऽद वत्य च्रत्रच्या चवणानिम्तः किं—प्रस्ययिय पिठिय इत्यादो नित्यमिम् । नत् च्रत्येऽद वत्य च्रत्रच्या चवणानिम्तः वित्रिप्तः । प्रम्हान्स्य च्रत्य च्यत्य च्रत्य च्यत्य च्रत्य च्यत्य च्रत्य च्यत्य च्रत्य च्यत्य च्रत्य च्रत्य च्यत्य च्रत्य च्यत्य च्रत्य च्रत्य च्यत्य च

[े] न र: घरलक्षिन् घरे, यि इत्यस्य विश्वष्यं। घत्र सामान्याजन्ति हेशात् जिवइवाचरित्, इरिरिवाचरित श्रिवायते इत्योदते इत्यादी लिङ्गानस्थापि दीर्धः। घाती-रन्तस्थात्य प्रकृतिर्वक्रतिरित घची दीर्धः, यथा, क्षि — इयात्, क्षि — स्यादित्यादी सौ क्षतिऽति दीर्धः। सियात् क्षियादित्यादी तु (६२०) सम्याने इत्यान-रि आदिश्वामय्यात् न दीर्धः। विश्वात्, दीर्घः, चीयात् । पाणिनः अधार्म् ।

(२४) कटे वर्षावरणयोः।

चकटीत्, एदित्तात्र विः (५०६) । *

(२५) गुपू रचणे।

पूर्श। कम ऋतो गुपू घूप पण पनो जि-ङीयङाया घु:।

(कमः ४।, ऋतः ४।, गुप् घूप-पण पनः ४।, जिङ्-ईयङ् भायाः १॥, धः १।)। कमो जिङ्, ऋतेरीयङ्, गुपादेरायः स्थात् स्वार्धे, तदन्तथः धुसंज्ञः । गोपायति । पं

पूर्र। वारे। (वा ११, वरे ७)।

एभ्य एते वा स्यु: अरे विषये। अगोपायीत् अगोपीत् अगोपीत्। गोपायामास जुगोप। क्ष

[ः] कट--ए इत् सिचि श्रश्रद्धिः, वर्षये भावरये च वर्तते । सकटीत् टी-दि, (५৩६) एट्स्वात न ब्रद्धिः ।

[†] गुपूच धूपच पणच पन चेति तक्यात्। जिङ्च द्रेयङ्च पायच ते। जिङी स्रक्तारो वत्रार्थः, क्कार पात्मनेपदार्थः। द्रेयङो क्कार पात्मनेपदार्थः पगुणार्थय। पर्थविभोषानिभिधानात् खार्थे एव स्षः। गुपधातोः त्रायप्रत्यथे, गुणे, धृतधायां, गीपाय-धातीकिष्। पाय द्रति पदनिनिर्देशात्, गोपायधातीकीं क्रते, (००५) प्रकारकीषे, गोपायि-धातोः द्यादि, पात्रायदिति प्रन्तीपित्वात् (६२८) न इस्तः। पाणिनिः १।१।२८,२८,३०।

[‡] भरे इति विषयसप्तभी, तेन, व्यानिव सिप्तस्तिप्रत्ययः सभाव्यते इति टोप्रस्तु-त्यत्तेः प्रागेव भादेशाः, ततो धातुसंज्ञायां टीप्रस्तिविभक्तुत्पत्तिः। भगोपायीदिति भायान्तत्वेन धातुसंज्ञायां धात्वन्तरतात् (५५४) नित्यमिम। पचे कदित्तात् (५०३) वा इम् भगोपीत्, भगौभौदिति भनिमतात् (५०४) इतिः। गोपायामास इति (५८२) प्रत्ययान्त्वादनेकाथलादा भाग्। पाणिनिः ३।१।३१।

यवं (२६) धूप ताये। अ (२७) तपी सन्तापे।

(५५४) चीदित्वात् नेम्। चतापीत्।

(२८) चमु श्रदने । १

· पूर्ह। छिवुक्तमाचमोऽपि र्घः।

(ष्टितु-क्रम-चाचन: ६।, षपि ७।, र्घ: १।)।

एषां घी: स्यादिष । श्राचामित । श्राङ: किं, चमित विचमिति। (५७६) मान्तलात् न ब्रिः, श्रचमीत् । क्ष

(२८) क्रमु पाद्विचेपे।

प्रंश। क्रम क्रम मास मास नास नुर लाप यंस संयस: खन वा रे बै।

(क्तम — संदर्भ: ५१, ग्यन् ११।, वा ११।, वे ७।, घे ७।)।

एभ्यो धेऽर्धे प्यनुस्यातुवारे परे | क्राम्यति | §

भूपधातोद्दित्वाभावात् टी दि अधूषागीत् अधूपौदिति (५५४) नित्यनिम् ।

[†] चम-धातुः चकारामुबस्यः क्वा-वेट (११७२)।

[‡] ष्टित्रय क्रमच पाचनच तस्य। पिदिति (५४१) ऋष् परे। पाडपूर्वस्यैव चनो दीर्घः, नतु केवलंख पन्दीपसर्गपूर्वस्य च। पाणिनिः श्रह्मशुर्धस्य च। पाणिनिः श्रह्मशुर्धस्य च। पाणिनिः श्रह्मशुर्धस्य च। पाणिनिः श्रह्मशुर्धस्य च।

[§] क्षमय क्षमयं त्यादि दन्दं तथात्। श्रव सास भामी दन्यानी तालव्यानी प । तालव्यानी दित कमदीवरः । पाणिनिन्नु भाग्न भाग्न दित्यानी तालव्यानी प । श्रवीपसर्गनिरासार्थे । ग्रानः ग्रव दती यकारिव्यतिः । ग्रपी वाधकोऽयं । ग्रिकात् (५२०) र संज्ञायां, (५२२) डिकात, वृद्यतीत्यव व (५४२) ग्रवः । नकारसु वृद्यनी द्रवादी (२४५) तुष्यं: । ग्रानि परेऽपि दीर्घदित गीविन्दमहः, तन्त्रते क्राम्यतीत्यादि । श्रवी विकल्यपचि तत्तदगणीयः प्रत्यय दति । पाणिनिः श्रि।००००१,०२।

प्रप्। ऋमः पेऽपि र्घः।

(जम: ६।, पे ७।, अपि ७।, र्घ: १।)।

कामति। %

ं ५१६। सु-क्रामोऽमे ऽरवस इम्।

(सु कन: ५१, चर्न ०।, घरवस: ६१, इम् १११) ।

श्राभ्यां वसस्यारस्य इम् स्यावतु मे । श्रक्रमीत् । १

(३०) श्री यस उपरमे।

पूर्ण। स्थादान पा जा घा ध्मा सा-ित्त द्या प्रत् सद् गिमष् यम जनां—ित्र यच्छ पिव जा जिघ धम मनच्छे प्रश्य शीय सीद गच्छेच्छ यच्छ जा: शिति। (सा-जनां दा, तिष्ठ-जा: १॥, गिति श)। एषामेते क्रमात् स्थु: शिति परे। यच्छति। क्ष

[•] क्रमी र्घः स्यात् पे भपि परे। पे किं, विक्रमते, भपि किं, क्रमिष्यति । पाणिनि: ୭।३।७६ ।

[†] सुक्रमाध्यामिम् (५५४) सिङेऽपि पुनरिम्विधानं, सिङे सत्यारको नियमाय इति वायात् भात्मनेपदे न स्वादिति नियमार्थं, तेन कर्माण वार्धे क्रमधातीसिन भक्तामि इत्यन् सेमत्वाभावात् (७४४) न इत्यः। यादग्नातीयस्य विप्रतिषेधी विधिर्पि तादग्नातीयस्य ति ग्यात् सुधातीः परस्येपदे एव भनेन इमि सिङे, पुनः (५८०) नेभेकानिस्यन सुधातीः प्रतिप्रस्वः सुवितः सुवितवानित्यादौ इम्प्राप्त्र्यः। पाणिनिः भराइ्

[‡]स्थाच दा-न चेत्यादि इन्हें तेषां। तिष्ठच यच्छ चेत्यादि इन्हें ते। दान इति नका-रेत्-दाघातुग्रहणं चन्य-दाधात्नां श्रद्धशानयोर्यच्छादेश निष्ठच्ययं। पा इति पानायं-गि-सहणं। चन्नीति चट गती चट खिंगत्यामित्युभयी:। इष इति तौदादिकस्थैन।

प्रद। यम-रम-नमातः पे सेरिम् सन् चैषां।

(यस-चात: ४।, पे ७।, से: ६।, इम् ।१।, सन् ।१।, च ।१।, एवां ६॥) ।

यमादेरादन्ताच सेरिम् स्थात् पे, तेषाच सन्। त्रयंसीत् अयंसिष्टां। *

(५८८) सजहमेति वेम्, येमिय यसन्य।

ववं (३१) गमी प्रव्यनत्वीः ।

(३२) इय नती।

ग्रह्यीत् (५७६) याम्तलाव विः।

(३३) दल मि भेदे।

(५०४) व्रजवदेति बुः, श्रदासीत्।

(३४) जि फला विसर्धे।

फेलतुः फेलुः फेलिय। 🌵

कान इति देशदिकस्येव। चान्न रिइति नीक्षा श्रितीति कथनं, इयक्तींत्य (६००)
प्रापीनृति, रेपरे स्टब्कादेशनिहस्यये। क्रमसु--- '
स्या दान पा जा मा चा सा सर तिष्ठ यच्च पिन ना निष्ठ धम सन सर्चक हम जत सद नम इष यम जन प्राय श्रीय सीद गच्च इच्च यच्च ना पाणिनि: ९।६१९९,९८,९८।

यम चरन चनन चचात् चतवात्। तेवां यमाङ्गीनां स्थाने सन्स्थात्, म इत् चने। पे किं, चरंस चदास इत्थादि। पाविनिः ७१।७१।

+ फल भातुः, जिः भयकः (१०८५), भा निष्ठाभावादिककं वेट् (१००२), विष्ठ रचं छत्पादनं। फीसतुरित्यादि (५०८) खिलीपः, मकारस्य एकारः। (३४) खर **इज्ञगती** ।

प्रकारीत्।

(३६) ष्ठितु जिरसने।

(খু ১ ২) ष्ठिवुलामिति र्घः, ष्ठीवति ।

पूर्ट। डिवजाद्यी: खेडक्रीस वा।

(डिंग-पनाची: ६ा, खे: ६१, ठ-को: ६॥, तः।११, वा ।१।)।

तिष्ठेव टिष्ठेव, ष्ठीव्यात्। #

(३७) जिं भवे।

६००। जेिन: सन्-छो:।

(जी: ६।, सि: १।, सन्-व्यो: ७॥)।

जिगाय। 🅆

(३८) रच पावने।

प्रनिरचिति, पान्तत्वाच ए: (५४८)।

(३८) यच् ब्याप्ती।

६०१। वाच-क्रगार्धतच: सुधे रे।

(वा ।१।, भच क्रमायंत्रवः प्रा, त्रुः १।, चे ०।, रे ०।)।

क छित क भनादियः तथी:। ठ च क च तथी:। छित्रभाती: खी: ठकारस्य भनादिभाती: खी: क्रकारस्य भ तकार: खाडा। यथा तिष्ठेव टिष्ठेव, जितिक्तिति खिविक्षिति। ष्ठीव्यादिति (२१८) दीर्थः। "भस्य-दितीयस्थकारष्ठकारोविति" वृत्ति:। "उक्की: तुरू" इति च सिद्धानकौसुदी।

[†] केशि: स्थान् सनिक्यास्य । वा-इयमध्यवत्तिंबाइस्य निव्यता । यथा जिगाय, जिगीवत्तीत्यादि । जेनुबन्बोन्तिक्षीति वक्तव्य । जित्रतीः तुम्स्याने तिष्, भन्तु स्थानं स.भन्ति भवतौत्ययः । पाणिजिः ७३५७ ।

भाग्यां रे परे त्रुः स्यात् वा घेऽवैं। अस्त्योति अचिति । अ (५८८) श्रुध्वीरित्युव्, अस्त्युवन्ति । (५७३) जदिलादिम् वा, आचीत् । (२१३) स्यादेः सी लोपः ।

६०२। षढ़ी: का: सी। (ष-ड़ी: ६॥, मा: १।, में ०।)।

ष्ट्रस्य उस्य चकः स्थात् सकारे परे। चाचीत्, चाचिष्टां चाष्टां, चाचिष्ठः चाच्चः । पे

एवं (४०) तच्चू कार्थे।

क्षणार्थ: किं, निर्भर्तसने सन्तचित ।

(४१) णिच चुम्बने।

(पू ४८) प्रणिचति प्रनिचति ।

(४२) कषी विलेखने।

६०३। क्षत्र स्था स्था त्या हम स्पः सिष्ट्रां वा।

एभ्य: सिर्व्वा स्वात् व्यां । 🕸

^{*} त्रजार्थयासी तच चिति त्रवातम, षचय त्रधायेतच चिति तसात्। यया तच्योति तचिति कार्धतचा, तन्त्रकरीतीव्यथः । क्रमार्थः किं, सनचिति चीरं साधः, निर्भत्स्यतीव्यथः । षच्याति षच प्रपथयस उन्नारस ग्रुषः । ट्यां घाचीदिति (५०३) इस्पने, पनिस्पचेऽपि याचीदिति वस्यति । पाणिनिः ३।११७५,७६ ।

[†] भाचीदिति यनिमपत्रे, व्यां सि:, (४६१) ईम्, (२१३) कलीपे, यमेन प्रय कः: (१११) पत्नं। भाष्टामिति भनिमपत्ते, (४६२) सि-लीपे, (२१३) कलीपे, (४०) तस्य ट। भाचुरिति भनिम्पत्ते कलीपे, षस्य कः, से: सस्य घत्ने, (४६३) अन् स्थाने उम्। पाणिनि: ८।२।४१।

t क्रय च स्था चेत्यादि तस्थात्। पचे क्रय स्था (६०५) सका-प्राप्तिः,

६०४। वर्द्रोऽनिज्यासे दशस्जोस्त नित्यं।

(वा ।१।, ऋत् ।१।, रः १।, चिकत्-भत्ते ७।, दशस्त्रीः ६॥, तु ।१।, नित्यं १।) ।

कषादीनाम् ऋकारो रः स्थात्वा श्रकित्भसे, द्रशस्त्रोस्तु नित्यं। श्रकाचीत् श्रकाचीत्। *

६०५ । इग्रषो ऽनिमिजुङो ऽद्द्यः सक् व्यां स्थिपस्वालिङ्गने । (इ-म.चः ४), अनिम् रज्ञङः ४।, अन्द्रमः ४।, सक्

भनिमिजुङो इ य-पान्तात् दय-वर्जात् सक् स्थात् व्यां, श्चिषतेस्वालिङ्गनेऽर्थे। भक्तचत्। १

(४३) रुष हिंसायां।

६०६। वेम् सङ् लुभ सः सुग्रुच वस लगः रुष रिषिषो स्तोऽरस्थ।

(वा ।१।, इस् ।१।, सह—इषोः ५।, तः ६।, घरस्य ६।) ।

तृप दा स्पां (५६५), डः-प्राप्तः। "स्थयस्यकत्रत्वपद्यां चूी: सिज्वा बाच्यः" इतिः वार्त्तिकम्। अत्र स्प्न दश्यते।

[•] नासि नित् यथिन् घोऽिकत्, स चासौ भस् चेति तिथिन् । क्रवाद्योऽनुवर्भने । वायहणं परतानु अत्तिनि क्रव्यं । भिकत्-भसं इत्यनेन मुणिनि भसे इत्यथंः, तेन दिहचते सिख्ति इत्यत भनिम्-सिन (८०४) भगुणत्वे, न स्वतारस्य रः । केचिन् भिकत् कथनं ङित्भसप्राध्यं, तेन हग्र-यङ्नुकि दरौद्रष्ट इत्यादि । भकाचौदिति क्रव-टोदि, सिः, इन्, भनेन प्रथमं स्थ्याने रः, ततः (५०४) भकारस्य विज्ञः, पश्चे स्वकारस्येत विज्ञः, भकाचौदिति । जभयन (६०२) षस्य कः, षत्वं । पाणिनिः ६।१। ५८,५८।

[†] इय तालव्य-श्रम्र मूर्डन्य-प चेति तथात्। नासि इम् यथात् चीऽनिम्, इच् एङ् यस्य च इजुङ्, चनिम् चासौ इजुङ्चित तथात्। चनिमिजुङ इति इशकी

एभ्यस्तस्यारस्य दम् स्वादा। रोषिता रोष्टा। अ

एवं (४४) रिष हिंसायां।

(४५) उष दाहै।

€०७ । दरिद्रा काम काम जागुषो वाम् छां।

(दिव्हा- सव: ४१, वा ११।, चाम् ११।, व्यां ७।) ।

एभ्य ग्राम् वा स्थात् छां। (५८३) भ्वस्त्रन्वाम इति। श्रोषा-स्वभूव उवीष। पं

(४६) यय प्रतगती।

(यथाय) यथयतुः ययशिय। 🕸

(४७) मिष्टी सेचने।

(६०५) इयषोऽनिमिति सक्। (१०५) होडोभी। श्रमिचत्। (७०) द्रोदिर्घयानुरिति, मेटा। §

विशेषणं। नास्ति हण्यव भीऽहण् तकात्। ऋथं (५५१) सेवीथकः। ऋजविदिति (६०१) सेविकत्य-पत्ते भनेन सक्षस्य कः, वस्यं। पाणिनिः १।२।४५,४६,४०।

अस्ड लुभच स्थ कुथ ग्रचव यस्य त्य अथच कथच रिषव रूप्य तस्रात्।
एषु कंपाचित् अभाग्नी केपाचित् निथे प्राप्ते अर्थ वैकल्पिकविधिः। एथ्यी रिमझस्य
सकारस्य दम् वा स्थादित्यर्थः। दथु ग्रइणात् द्रथु श्र वाञ्के दश्यस्यैव विकल्पः।
पत्र गाभीक्षा दृष्य सर्पयो द्रश्येत्रयोतिस्थीन । पाणिनिः ९।२।४८ ।

[†] दिग्दा जारधाजी: (५८२) नित्ये प्राप्ते, षव विकल्पार्थे ग्रहणं। श्राम्-विकल्प-पर्वे उनीय इति (५८५) खे: स्थाने उव। पाणिनि: ३,१३८।

[‡] शशशतिस्वादौ (५८) शशवर्जनात् न खेलें।पादि । अन्त शशाश इति परं निर्धकं पूर्वस्वेरेव तत्सिक्षे:।

(४८) दही भस्नीकर्षे।

(९०६) दारेर्घः । (१७०) मामानस्येति दस्य धः । ग्रधाचीत् ।

(४८) चह कल्कने।

भचहीत्, (५७६) हानालात् न विृ:।

(५०) शुच शोकी।

(६०६) योचिता ग्रीता।

(५१) ग्लै हर्षचये।

६०८। एचोऽभिला:।

(एच: ६।, पशिति ७।, पा: १।)।

धोरेच आः स्थात् अधिति । *
(५८८) यमरमेतीम्सनौ । अखासीत् । .

६०८। गावातो डो। (पप्।रा, वात. ४।, डो: रा)। श्रादन्तात् परी गाप् डो: स्वात्। जग्बी। वं

अ एव इति धातीरत्यावयवस्थै , तेन चाटौकी दिल्यादी न स्थात् । एवं चक्रतस्थै व एव इति, तेन कोष्यतीत्यादी न स्थात् । चित्रति इति विषयसत्र मी, तेन चादौ चाः, पशात् प्रत्ययोत्य त्तिः, चतएव सामग इत्येच चाइनात् (१८९०) उप्रत्ययः । चच चरे इति नोक्का चित्रतेति वयनं धे-धातीः व्यादि चथादियच लोपविधेवं लवन्तादादी सेलुंकि रे परेऽपि चा-प्राप्तयः । लेखातीः यङ्लुकि खो-यात् ज्ञान्तायादित्यादी च रे परेऽपि चा-प्राप्तयः । (६६५) व्यंधाती लु व्यां न स्थात् । पाणिनिः ६।१।४५ ।

[†] डी इत्यस्य उ इत् (१२६) टि. लोपार्थे। भी इति न कला डी-करणं क्वचिटेक-पदेऽपि सिथनं स्थादिति स्वनार्थे, तेन तितत्तः (चालनी) भसुसुईची भदसुईची इत्यादि सिद्धं। नन्ती इति न्वै-ज्या-थप्। पाणिनिः शिहाइ४।

६१०। उसे ची स्य गुराचि लोप:।

(उसि ७), एचि ७), इमि ७), श्रन्तराचि ७।, सौप: १।)।

उसि एवि इसि ऋणोररस्थाचि घोरातो लोपः स्थात्। जग्लतुः जग्लुः जग्लिथ जग्लाथ। क्ष

६९१। स्थादेडेंऽस्थो वा काणौ।

(खादेः ६।, ॐ ।१।, षस्यः ६।, वा ।१।, व्यक्षौ ०।) ।

स्यादेरादन्तस्य स्थावर्जस्य ङेस्यात् वा व्यणी। ग्लेयात् ग्लायात्। पं

(५२) गै मध्दे।

६१२। दा मा गै हाक पिव सो स्थोऽर हसे त्वयपि डी। (दा-सः ६।, घरहवे ७।, त ।१।, घवपि ७।, डी।१।)।

एषां काणी डे स्थात्, ऋरहमे लाणी यप्वर्जे डी स्थात्। गेयात् \$

अन रोऽर:, नास्ति णुर्यस्थिन् सोऽणः, चल्यासावरंथित चल्वरः, तस्य चल् चल्यराच् तस्थिन्। प्रथक्षपदकरणात् जस्यादौ चलानांच्यः। जिस्त यथा चम्रु, एचि—ददेदघे, ६िन—जिल्ल्य, चल्यराचि—जन्ततुः, चलर्डिः (११४५)। खेन्यप् (५८८) वादम्। पाणिनिः (।४।६४।

[†] स्य भादिर्यस्य स्थादिलस्य । ब्या भण ब्याणलस्यिन् । रू इत्यस्य रू इत् (१७) भ्रत्यस्य स्थाने । परमृत्रे स्थायकणेने व स्थाधातीरपाप्ती पुनस्य स्थाधनेने परमृत्रे भरक्षे लयपि कीति भ्रेषभागेनेव स्थायक्रयस्य सार्थकले, संयोगायादललात् भनेन क्यायी स्थाधाती: विकल्पापितिनिवारणार्थे । क्यायत् क्यायादिति क्यायात् । पाणिनि: १।४।६८ ।

[‡] दाच मायेलादि इन्हें तस्य । धरमाधी इसचेति तस्य न्। काणी इस्यन्तनंते, ततस्य विधिदयं। यप्वजनादेव धरहमें इत्यस्य भणी इति विशेषणं लस्यं, याहग्-जातीयस्येति न्यायात्। दा इति दासंज्ञकः। मा इति मास्वर्णं, तेन मा स माने,

(५३) छाँ संहती ध्वनी।

ष्यायति । 🕾

(५8) दै-प ग्रोधने।

(५३४) पित्वान दासंज्ञा। ऋदासीत्। दायात्। १

(५५) धे-ट पाने।

(२५७) ट ईबर्घ: । \$

६१३। जि त्रि सु दुकमाऽङ् वे त्यां श्विधेट ध्वन्येल्यदू नेस्त वा । (लि—कमः प्रा, षङ् १२१, षे अ, व्यां अ, वि-धट-धिन-पिक-पिक्षं-कनेः प्रा, तु १२१, वा १२)।

ञान्तादिभ्यद्यां श्रङ् स्थात् चेऽयें, खाादेलु वा। (५५०) धुर्दिष्ठाङीति, श्रद्धत्। §

मा ङ ्लि शब्दे, मा ङ ्य च, मे ङ प्रतिदाने एषां ग्रहणं। गै—टी-यात् गेयात्। पाणिनि, ६।४।६०,६८।

श्वायतीति (५६८) श्री वर्जनात न पस्य सः।

ተ भदासीदिति (५६८) यमरमेति इस्मनौ। दायादिति दासंज्ञाभावात् न के।

[‡] ट र्नुवर्ध इति, तंन मुझस्यी, सनस्यीयादि (१०१०)।

[§] जिस सिय सुय हुय कम चेति तथात्। सिय धेटय ध्वनिय एलिय पहिंय किनियेति तथात्, स्वलात् पुंखं। सुरिति दन्यादिः। ध्वनादिकानः, ध्वनिरिति घटादिलात् (७६०) इस्तः, भदन चुरादिय । भदधिति धे-धातीः च्या-दि, भनेन चङ्, (६००) ए-छाने मा, (५५०) दिलं, (६००) मा-लीपः। चे किं, भकारियवातां कटौ दैवदत्तेन। (५४१) घं सप्रेदित सूत्रे उक्रलेऽपि भव चे इति पुनः कथनं माची-नात्वादार्षे, ''विश्वद्रसुध्यः कसंरि चङ्" इति पायिनियासनात्। एवं (६१०) स्वेऽपि। पायिनिः इ।१।४८,४१।

६१४। वेशाच्छासाधः सेः पे लग्वा।

चे--- प्र: प्रा, से: द्रा, पे अ, सकाश, बा।श) वे

श्रधात श्रधासीत्। #

(५६) पा पाने।

(५८७) खादानिति पिव। पिवति। (५५२) भूखापिवेति सेर्ल्क। अपात्, पेयात्। 🌵

(५७) घा गसीपादाने।

जिन्नति। अन्नात् अन्नासीत्। ध

(५८) भा मन्दानिमसंयोगयोः ।

धमति। अधासीत।

(५८) ष्ठा गतिनिहसी।

तिष्ठति । न्यष्ठात् । नितष्ठी । स्थेयात् । §

(६०) सा अभ्यासे।

मनति ।

^{*} घे भी की सी चा इत्येतेभ्यः सेलुंक स्थादा पे। घे गइ गं (५५२) सेल्कि प्राप्ते विकल्पार्थे। पशादिति पड़ी विकल्पपचे छां सिः, प्रतेन सेर्जुक, पत्रे (५८८) इम्सनी, प्रधासीदिति। पाविनः २।४।७८।

⁺ विवतीति विवादेशस्य भदनासात् न गुणः । वैयात् (६१२) के ।

[‡] चन्नादिति चनेन वासेर्लुक्।

[§] न्यष्टादिति (५०२) प्रमागमन्यवधानेऽपि वलं । नितष्ठी इति विकत्तसापि वलं। स्येयादिति (६१२) के।

(६१) दा-न दाने।

प्रणियच्छति। प्रख्यदात्। देवात्। *

(६२) हुकी टिखे।

६१५१ स्याद्यक्तृतो णुर्यङ्यक्ठी व्यणौ स्कुस्तु ग्रां।

(स्वादि प्रति-स्वतः ६।, षः १।, वङ्यक्-डोब्बणो ७।, खः ६।, तः ११।, व्यां ७।)। स्वादेरत्ते ऋकारस्य णः स्यात् यङि यिक ठोळ्योरणो च, स्कुस्तु व्यामिव । जञ्चरतः । पे

६१६। नेस्तस्यो ऽवृस्तुः।

(म । १।, इ.म् । १।, चरतः ५।, घरः ६।, भ-इ-चर-स्तुः ५।) ।

ष्ट-ऋ-स्कृ-वर्जात् ऋकारान्तात् घप इ.म् न स्यात् । जन्नर्थः। 🕸

^{ं *} प्रणियच्छति प्रग्यदादिति (५४९) गदायमनेर्णतं।

[†] साः मंयोग चादियस्य स स्थादिः, स्थादिव चित्तं स्थायत्तीं, तयीः स्त् स्थायच्वृत् तस्य । मंयोगादिधातीः , सः धातोष स्वकारस्य इत्यथः । सः साइनद्यात् स्थादेरिति सदनस्थैव, तेन सः अप्रस्तीनां म प्राप्तः । नास्ति स्वर्थम् सोऽसः ठीक्योरसः
ठीक्यसः, यङ्च यक्च ठीक्यसभित तस्मिन् । क्यस्थित ठी-परस्थैपदस्थैव यइसं,
तेन मृत्रीष्ट इत्यादी चात्मनेपदं (६५६) कित्त्वेऽपि चनेन न गुषः । स्कुरिति (७६६)
सुम्युक्त-क्रज इत्यर्थः । पाषिनिः ७।४।१०,११,२८,१०, वार्तिकञ्च ।

[‡] इय ऋष स्तृष ते, न विद्याने ते यस सः चृत्का तकात्। (५८४) नैमसुनित्य-मेन इधातोष्ठीमातस्य इम्निपेषेऽपि भास इयद्यान स्प इम्, तेन ववरिष इति, भागव तुवडव इत्यादि। स्वृधातोष्ट्रिस्तेऽपि (५०३) वेस्ट्रिट्या स्वर्यद्वणात् मस्व-रिय सस्त्रयं इति वा इम् स्यादेव। भात इ ऋ स्तृवर्जनादेवात एव निषेधी मन्त्यः, केन जनावरिष इति। जन्नयं इत्यत्र (५८४) नेमसुनित्यनेन भाषानिम्तादिम्प्राप्तौ भानेन निषेष:। पाणिनिः शरादशः।

६१७ । सम्बर्डनः । (सस्र १), चत्र इतः ४।)।

ऋदन्त-इन्तिभ्यां खख इम् स्थात्। इतियति। अ

(६३) खु ज शब्दोपतापयोः।

(५०३) वेमृदितीम् वा। अखारीत् अखारीत्। पं सस्रिय सस्र्थे।

(६४) स् गती।

६्१८ । वक्ताय्य ख्या लिप सिच हो डो घे व्यांस्तुवा लिक्यसुमे।

(विकि—्ह: ५१, ७:११, घेञ, व्यांञ।, सः ५१, तु ।११, वा ।११, लिव्स्यः ५॥, तु ।१।, मेञ)।

वक्त्यादेर्घेऽर्घे रू: स्थात् ठ्यां, स्टक्त्रभ्यान्तु वा, लिपादेसु मे वा स्थात्। क्षं

[#] सद्य इनव तसात्। स्यस्य इति स्यस्वरूपस्य ग्रहणं, तेन स्यति स्थतम् स्थलोता-देरैव। इमः क्षेवलस्य भनुवतिः, नतु नञ्चिषेषणस्य, स्वाभाविकानिम्-इनः धार्मारिम्-निर्पथवैपल्यात्। स्वधाती-रूदित्वात् वेमलेऽपि, विशेषविधानादनेन निर्यामम्, तेन स्वरिष्यतीस्थेव। पाणिनिः ७।२।७०।

⁺ अस्तारीत् अस्ताधीत् (५०४) अञ्चलतादुभयत्र ऋ इत्यस्य विक्तिः चार्, (१९९) इलात् पास्य सस्य घलं।

[्]विकिय प्रस्थय खाय लिप्य सिचय हाथ तन तस्यान । स्वय स्वय मृतस्यान् स्वः । विकिरिति प्रदादिगणीय-वच-घातः (ब्रुची वचादेशेऽपीति केषित्) । प्रस् किति दिवादीथोऽसधातः । लिब्स्यः कित बहुवचनं गणार्थे, लिप सिच केकित । प्रस्थातीः क्रिस्तान् परस्थेपदे कः (५६५) सित्त एव, कक्षान्तभेपदार्थः । तेन (८०६) प्रात्मनेपदे निरास्थत कति । पाणिनः श्राप्त, १९,५३,५४।

६१८। दखोर्ण:। (हयो: ६१, ष: १।)।

द्योक्तवर्णान्तस्य च णः स्थात् ङे। असरत् असार्वीत्। अ

६्२०। ऋद्रिः शयक्ढीपे।

(चटत्।१।, रि: १।, भ्रायक्-ढीपे ७।)।

स्रियात्। 🌣

(६५) ऋ गती।

ऋच्छिति। ग्रारत् ग्रापीत्। ग्रार, ग्रारतुः, ग्रारिष्ट। त्रय्योत्। ः

(६६) यु यवणे।

६्२१। यो: सुर्धे रे जिया।

(यी: प्रा, यु: १।, घे ७।, रे ७।, जि: १।, घ ।१।)।

युनी घेऽर्धे युः स्यात् रे, युवव जि: । युणीति युग्रतः युग्रत्ति । §

इसच चस्य तौ तयो: । अर्थवशात् के इति सप्तस्यन्तवेनानुवनिः । असर्दिति
 उ-पचे गुण:, ङाभावपचे अनार्थोदिति (५०४) वृद्धिः । पाणिनिः शक्षाश्कृ ।

[†] मस यक्च दीपच तिसन्। इन्त-ऋकारी रि: स्थात् में यांक दी-पेच परे। सियादिति इन्तान-रि-निर्देशादेव (५९०) न दीर्घः। पाणिनिः ७।४। रू।

[‡] भारतः भर्यादित्युभयत्र (६१५) सु:। त्रारिधिति (५८८) ऋवर्जनात् न वेस ।

[§] यु-धाती: स्रो कते युद्रवस्य (५३५) जि: उकारयुक्त रेफस्य च्हः । स्रु: प्रणी वाधकः । युद्रत्, तुस्यितिः । युधातं स्वादिनपीयभक्तवा भादिष् पाठात् कचित् यवती-त्यपि । स्रणोतीत्यत्र त्रीककारस्य नुषः । स्रखनीत्यत्र (५८८) सुधीरिति व, (१०७) चलं । पाणिनिः ६।१।९४ ।

६्२२। नूपाऽखखान्नोपा व्सि वा।

(न्प: ६।, भस्यस्य ६।, चन्नोप: १।, व्नि ७।, वा ।१।) ।

श्रस्यस्य नो-रूपच उकारस्य वा लोपः स्यात् वमयोः परयोः। मृखः मृणुवः मृग्यः मृगुमः। (५४७) हेर्लोपोऽस्थेति, मृगुः। शुश्रुव। 🌣

(६७) सुगती।

६्२३। सुस्तुधाः सेरिम् पे।

(सु-स्-धी: प्रा, से: ६।, दम् ।१।, पे ७।)।

त्रसावीत्। सुपविथ, सुप्रविव। सविता सीता। 🕆

(६८) सुगती।

(६१३) जिथीत्यङ्। असुसुवत्। सुस्रोय, सुसुव। ः

(६८) दु गती।

चरावीत् अदौषीत्, दुदुविव । §

[🛊] तुक्ष उप चेति तस्य । न स्थोऽस्यमस्य । उती लोपः उद्वीपः । व च म च वम तिखन्। नुरत्र श्रुः, उप् तनादिभ्य क्रतः (≰प्र्यः) ग्रुप्। ग्रूगोनि तनी-भीलादी, लीपखरादेशशीलु खरादेशविधिवंलीति न्यायात् चादी ग्रण एव । शृतुव द्गति क्याव, (५८४) नेममुम इति नियमात् न इम् । पाणिनि: ६।४।८९।

[†] सुय सूत्र ५व तकात्। सु सुधुधातुभ्यः सेरिम् स्थात्पे। सुधातीः (५,०३) विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थं ग्रह्णां। भ्तु धु द्रश्येतयी: (५,८०) एकाजुटलालीन निधेर्घ ग्रहणं। पे किं, असर्विष्ट असीष्ट, अस्तीष्ट अधीषानां। (५०३) कटुसुनी-स्तक्या इति नियमेन मुष्विय सुषुविव इत्यादौ निन्धीनम् । स्वितासीता इति (५०३) बादम्। पाणिनिः ७।२।७२ ।

[‡] ऋसुस्रुवदिति (४८८) उतं। एवं ऋदुटुवत्। सुस्रीधेति नेमसुमिति नियमेन (५८१) सृज्दशेत्यस्य वाधितत्वात् न इस्।

[§] चढाबीत् चढीपीदिति (५०३) कटुसुनोस्तव्या द्रयुक्ते:वाद्रम्। टुटुविवैति नेमसुमिति नियमात ऋत्यत्र नित्यमिम्।

(%) द्र गती।

श्रदुद्वत् । दुदुव ।

(७१) गन्ती गती।

गर्च्छोत । (५६५) तिदित्वात् ङः, श्रगमत् । जगाम । (२३०) हनगमेत्युङ्तोपः,जग्मतः जग्मः । जगिमय जगन्य ।*

६्२४। गमाऽमे स इम् मार्हात्त् वा।

(गमः ५१, भमे ७।, सः ६।, इम् ।१।, मार्हात् ५।, तः ।१।, वा ।१।) ।

गमः परस्य सस्य इम् स्थात् न तु मे, मयोग्यात्तु वा। गमि-ष्यति। १

(७२) सम्भी गती।

श्रसापीत् श्रसाप् सीत् श्रस्पत् । क

(७३) स्कन्दिरी गति-शोषणयो: ।

६२५ । विस्तामा निर्वन्ति-सु-निर्दुःखपः सः षो:,-निनिविस्मार-स्माल परिविस्तान्दाऽप्राणिघ-निपरिनिर्व्यभ्यनु-स्थन्दस्तु वा ।

(विस्त्रभा -खपः ६।, सः १।, वः १।, निनिर् -खन्दः ६।, तु ।१।, वा ।१।)।

 ^{*} दुदुवेति नेससुमिति नियमात् न इम्। जगिमय जगन्य इति (५८६) वा इम्।

[†] मं भाक्षानेपदं भर्डतीति मार्डलाखान्। (८०५) सभीगरुक्तियोनेन भाक्षानेपद-विधानान् समर्गला संगंखते इयादी न इस्। भाक्षानेपदयीग्यक्शले तु संजिगनिषु: संजिगंसुरत्यादी वा इस्। पाणिनि: ७।२।५८।

^{‡ (}६०३) क्रयस्य इति, (६०४) वर्द्रति चल्लासीत् भसार्यसीत्, सि-विकल्पपचे (५६५) विदित्तात्रः भस्यत्।

विस्तभाते वे वर्जे व्यादिपूर्विश्व स्वपद्य सः षः स्थात्, न्यादि-पूर्व-स्मुर-स्मुलोः परिवि-स्तन्दतेः श्रप्राणिष-न्यादिपूर्वेस्य स्वन्द-तेष स्याद्या । परिष्कन्दति परिस्तन्दति । *

(७४) तृ प्रवन-तरणयी:।

६५६। च्टृतो णुः कित्र्या।

(ऋत: ६।, गु: १।, बित-क्यां कः)।

तेरतुः। 🕆

६्२७। वृता वेमार्घाऽठीढीपसे:।

्वृ-स्रतः ५।, वा ।१।, इनः ६।, र्षः १।, भ-ठी-दी-पर्सः ६।)।

हुङो हुज ऋदन्ताच इमो घी स्थात् वा,न तु त्याः त्याः परेष। तरीता तरिता। ठी टी परेसु तरिष, तरिषीष्ट, अतारिष्टां कि

^{*} वे: स्कमा: विस्वारं, विश्व सुध निर्च दुर्व तेथः स्वप, निर्गतो वः यद्यात् स निर्वः, निर्वशासी विसुनिर्दः स्वप् वेति, पथात् विस्कमाथ निर्ववसुनिर्दः स्वप् च तस्य । निथ निर्च विश्व ते, तेथः स्कृर स्कृली, परि विष्यां स्कृतः परिविस्कृतः. निथ परिय निर्च विश्व भाश्य अनुध ते, तेथः स्वन्द निपरिनिर्वश्यन् स्वतः, प्रशाणी घः (कतां) यस्य सः अप्राणिषः, सचासी निपरिनिर्वश्यन् स्वतं ति अप्राणिष्विपरिनिर्वश्यन् स्वतः, पश्चात् निनिर्वः स्कृरस्कृती च परिविस्कृत्यः अप्राणिष्विपरिनिर्वश्यन् स्वतः स्वप्यातोः स्कृषा दित त्रान्ति निर्वश्यात् विस्कृषीती स्वयं वस्तं न स्थात् । निर्व दित यदा स्वप्यातोः न स्थादिस्थयः । अप्राणिष्य इति स्वन्दिश्येषणात् निस्यन्दिते (सदं सुचिति) इस्ती स्वव न स्वतं । पाणिनिः पाश्च १ति स्वन्दिश्येषणात् निस्यन्दिते (सदं सुचिति) इस्ती स्व

[†] किञ्चासी ठीचेति कित्ठी तस्यां। तेरतिरिति भनेन गुणे, (५०६) भकारः एकारः खिलोपसः। दीर्घन्दत इति किं, चकतुः। पाणिनिः ०।४।११।

[‡] तथ च्यय तकात्। पे निः पनिः, ठीच ठीच पिछिति, न ठीटीपनिः श्वादीदीपनिस्सा। इ इति वृङ इञीग्रंडणं। तृता (५५४) इस्. (५४२) गुणः, भनेन इसी वा दीर्घः। तिरिय इत्यच गुणादनन्तरं (५०८) भकार एकारः, खिलीपय। भतारिष्टानिति (५०४) भक्तनत्वात् इदिः। व्युन्तसीदा इरणन्तु स्पीकानियेषकातान् सारिष्टा । पाणिनिः, २०१२ , १८,४०।

६२८। ऋदिरणावुर्लेष्ठियात्।

(ऋत्।१।, इर्।१।, प्यो का, उर्।१।, ता।१।, श्रीष्ठप्रात् धा)।

ऋकार इर् स्यादणी, म्रोष्ठ्यात् परसु उर्। तीर्थात्। अ

(७५) षन्जी जि सङ्गे।

६५८। षन्ज दन्श ष्वन्जोऽपि नलोप:।

(षन्ज-दन्भ-ष्वन्ज: ६।, ऋषि ७।, न-स्रोप: १।)।

निषजति । न्यषाङ्चीत् । निषषच्च, ससजतुः ससञ्जतुः । विषयः । (१) दृश्यिरी प्रेचणे ।

पण्यति । अदर्भत् । (६०४) वर्द्रीऽिकदिति, अद्राचीत् । क्ष (५८८) सजहभेतीम् वा, ददर्भिय दट्ट ।

^{*} भव थी: इति नीक्वा भीष्ठादिति कथनं दत्त्ववकारस्यापि प्राप्तर्थे, तेन वृधाती: सनि बुव्यैतीति (८०५) दोर्घे, भनेन भीष्ठापरत्वादुर्। भीष्ठादिति धालवयवादेव, तेन सम्पूर्वकस्य ऋषाती: सभीर्यादिखेव। लाचिषिकस्यायव ग्रहणं तेन भश्चिकीर्थात (८०५) स्वं द्रष्ट्यम्। तीर्यादिति तृधाती: ढी-यात् भनेन द्रर्, (२२८) दीर्घः। पाथिनि: ७।१।१००,१०२।

^{ां} पन्त्रस दन्शस घन्त्रच तस्य। एषां नस्य लोप: स्यादिष। एभ्य: प्रप् ितत् इति न ज्ञाला नलीपिवधानं, दिश् कङ् दर्शे इति इदन्बन्ध-चुरादीय-दशधाती: ॐ-विकालपत्तं दशते इत्यत्र (५६८) नलापिविधेषेऽपि, चनेन नलोपाधे। निपज्ञतीति (५०२) षत्वं। न्यवाङ्वीदिति (५०४) वृद्धिः, (२११) कुङ्, (५०,५१) नस्याने अनु-स्वारत्तस्य च ङ। (१११) कवर्गात् सः षत्वं। (५०२) चन्यवधानेऽपि षत्वं। निषयञ्ज इति द्विदेषि द्यो: षत्वं। सस्जतुः ससञ्जतुः (५६६) वा किङ्कावः, (५६०) कित्यचे न-लोपः। पाणिनिः ६।४।१५।

[‡] पद्मति (५८९) दशस्याने पछा। भदर्भत् (५६५) ङः, (६१८) गुणः। ङः विकत्यपचे भद्राचौदिति भनिमलात् (५७४) विज्ञः, (१५४) वङ्, (६०२) वस्य कः, (१११) वर्लं।

(७७) इन्गी इंगने।

त्रहाङ्चीत्। #

(७८) कित निवासे रोगापनयने संग्रये च।

६३०। जित्तिज्युपः सन्तेम् मान शान दान बधस्त खेडी च। (कित्-प्राः शा, सन्।११, मन१।, इन्।१।, मान-वधः शा, तु।११, खे: ६१, की।१:, च।१।)।

कितादेः सन् स्यात्, इम् न स्यात्, मानादेलु खेर्ङी च ।

क्रमादेतेऽत्र सन्देहे चान्ति-निन्दा-विचारणे ।

नियानार्जवनिन्दासु क्ग्जयेऽपि कितो मतः ॥ कृ

६्३१। सन्ञ्यादि र्घुः। (सन् अप्रादः ११, ४: ११)। सनन्तां ज्यायन्तय धुसंज्ञः स्थात्। ध

भदाङ्बीदिति दन्म-धार्ताः ठो-दि, वृद्धिः षङादिक्ञ ।

⁺ कित्च तिज्व बुप्य तक्षात्। मानय ग्रामय दानय वधच तक्षात्। प्रति हिंष्टार्थतात् सार्थे एव अन् भवति। एतेषां सप्तानां धात्नामणांन् निर्हिशति। क्रमा-दिति। यत्र अन्वधिने एते कितास्यः सप्त क्रमात् सन्दं हादिष सप्तस् पणेषु सताः, क्षितः क्रन्जयेऽपि सतः। तेन कित—सन्दं ह-क्रजययोः, तिज उ चान्तो, गृप उ निन्दायां, सान उ विचारणे, ग्रान उ निग्राने, दान उ पार्जवे, वध उ निन्दायां सित्यथः। सन्दं हः विक्तानिकक्षोटिविषयकं ज्ञानं, प्रक्षित्रस्यं प्रकर्मकः यथा—ग्रास्त्रे विकित्यति। क्रान्थो रोगप्रतीकारः। चान्तः सहने। निन्दा दोषवस्याख्यानं। विवारणं इद्शियां न वेति प्रमाणानुसन्धानं। निग्रानं तीच्योकरणं। पार्जवं पन्तिहिलोकावः। एखर्षेषु सक्षमीका एव। पाणिनः श्रीः। ६।१।५,६।

[‡] आहिस—जि (৩৩৩) सन् (८०३) यङ् (८२०) कास्यक् (८४२) का (८४१) का (८४८) कि (८४८) कि (८४८) का समा। सन्व्यायनानां धुसंभाकरणं (५२८) तियादिः समनार्थे। पाणिर्नः ३।१।३२।

६३२ । सन्यङन्तो दि: । (धन-यङ् धनः १।, वि: १)।

विकिसति। अविकिसीत्। विकिसामास। अ

पति पवत् पाद: । +



३य परदः -- मवत्।

(७८) एध ङ हडी।

एधते। ऐधिष्ट । एधाचाक्री। 🕸

(८०) दद ङ दाने।

(५७८) ग्र-माग्रद्देल्की:, दद्दे।

(८१) व्यक्त उन्सर्पणे।

(५६८) अ स्प्रैषको त्युती:, षकती प्राथको ।

अ सन् च यङ्च सन्यङी, ती त्रले यस्य स सन्यङलः। तदगुणसंविज्ञान-वहत्रीहिणा सन् यङ् ससेती बिः स्वादित्ययं.। कदाचिदतदगुणसंविज्ञान-वहत्री ही कीवली घातुरिप हिः, तेन सीचते इत्यच सनं हिला सुचधाती ईली, (८७५) सीचा-देयः। चिकित्सतीत्यादि, कितः सन्, इनिषेधे, (८०४) खनौनिसीति वत्त्यमाणात् मुणनिषेधे, दिली चिकितस इति सागस्य धातुसज्ञायां तिवादिकं। त्यान्तलादान, ततः (५८२) चसप्रथीतः। पाणिनिः ६।१।८।

[†] पवतां परस्मैपद्वतां धातूनां पादः एकार्याविक्तिन्नम् ममूहः इत्यर्थः।

[‡] एघ-ते (५४१) श्राप्। एघतन् (५५०,२३,५५१,५५७,१११,४०) ऐधिष्ट । एघ-ए (५८२,५८६)। चात्कनेपदिलात् कीवर्णकप्रयोगः।

(८२) ऋज ङ श्राजीवे।

आवृजे। %

(८३) तिज ङ चमा निमानयी:।

तितिचते। १

(८४) खन्जी ङ सङ्गे।

निष्ठजते। 🕸

६३३। निविपरि खन्ज सुमादेः सः षोऽमिवा।

(नि-समादेः हा. सः हा, षः शा. प्रानि वा शा) ।

न्यषङ्का न्यसङ्का। सस्त्री सस्त्री। §

६३४। सत्खञ्जोष्ठां नाखे:।

(मद्रस्तच्ची: ६॥, क्यां ०।, न ।१।, अस्ते: ६।)।

खिवर्जस्थानयीः सः षो न स्थात् व्यां। विषखजे विषखन्ते। १

चारने इति ऋज-ए (५८०) ऋकारादिलात् खेरान्।

⁺ तितिचते इति तिज्ञः (६३०,६३२,२११,६३१,) तितिच इति धातु:। (६३६) चालानेपटं।

[‡] निष्वभते (५६८,६२८,५७२)।

[§] सुम षादिर्थस्य स सुमादिः, स्वन्त्रय सुष्ठ सुमादिश्वेति। निष्ठ विष्ठ परिष्ठ ते, तेथ्यः स्वन्त्रसुमादिः तस्य । सुमादिः (५७२) सुम, ष्रनङ् सिव, ष्रनोङ् सह इति। निविपरिथ्यः परिपामेणां सः षः स्थान् वा ष्यमि सित । न्यत्रङ्क्त इति नि-स्वन्त्र-तन् (५५०,५५१,५६२) सेलीपः, (२११,५०,५१) ष्रनेन वा पत्नं । सेः स्थानिवस्तात् (५६०) म नत्तापः । सन्त्रे सस्त्रे इति (५६६) वा कित्सं न्यायां, (५६०) मलीपः तदभावौ । पाषितिः ८।६१०० ।

[¶] सट्च स्त्रज्ञच तौ तथो;। न खिरखिलस्य भर्छः। विशसके विषख^{क्ष}

(८५) तपूषङ् लज्जायां।

श्रविष्ट श्रवप्त । वेषे। *

(८६) जभ ङ् जभने।

६३५। नुण् जभोऽचि।

(नृष् ।१।, नभः ६।, पचि ७)।

त्रजिभष्ट । 🕆

(८७) हुम ङ स्तमे।

विष्टोभते। व्यष्टोभिष्ट। \$

(८८) पण ङ व्यवहारे स्तृती च ।

(५८१) कामऋतित्यायः । पणायते ।

६्३६। सन: पमे धार्वा त्वायात्।

(सन: पू।, प-मे १॥, घो: ६।, वा ।१।, तु ।१।, भाषात् पू। ।।।

पणायति । अपणायिष्ट अपणिष्ट । पणाया चन्ने पेणे । §

इति इपनेन निवेधात् म्लस्य न वर्लखेलु (५०२) वलमेव । व्यामिति किं, विवाख-च्यते इत्यत्र उभयोरिव वर्ला पाणिनिः, पा३;११८, काशिका वार्धिकानि च ।

^{*} श्रविष्ट इति (५०३) वा इम्, पचे (५६२) सिलीपः श्रवप्तः। विषे इति (५०८) सिलीपः, श्रकार एकारसः।

[†] जभी तृष् स्थादिच परे। गिल्लाट्ल्याचः परः । प्रकरणवलादात्मनेपदिन-प्रवेति बोध्यं, अपभ जभने इत्यस्य तुजभतीत्यादि । अजिन्नाष्ट इति इसि, अवि परं तृष्। एवं जन्मनित्यादि । पाणिनिः भाराहरै ।

[‡] विष्टीभते, सुभधाती: (५०२) वलं | व्यष्टीभिष्ट इति श्रम्यपि वलं ।

[§] धी: म्लधातुसम्बन्धिनी प-मे सन: सनलात् सः, त्राथालात्तु वा। तथात्र परक्षेपदिधाती: सनलात् पं, भावानेपदिधाती: सनलात् मं, समयपदिन: सनला-

६३७। विच्छास्तृतिपणो वायः।

(विच्छ-चस्त्तिपचः ५।, वा ।१), चायः १।)।

पणायते पणते। %

एवं (८८) पन ङीड़े । १

(८.) वमुङ कान्ती।

कामयते। (६१३) जान्तवादङ् । क

६३८। ञाङ्गङः खो उनग्लोपिशासृहितः।

अम्बोपिनः शासी ऋकारितथान्यस्य उङः स्वः स्थात् जेः परे ग्रङि परें। §

टुभयपदिमिति। आयाल् वेति वाण्डदो व्यवस्थितविकल्पार्थः, तेन आयालानेपदिन-श्रायान्तान पसे सः, परसंपदिनस्नुपसेव । अतो गुपधातीः गीपायतीक्षेत्र । पणाय-तीति भाषान् वैत्यस्य विकल्पपर्न उदाइरणं। भपणायिष्ट भपणिष्ट (५८२) वारे द्रवसीदाहरणं। पाणिनि: १।३।६२।

🗴 न सुतिरसुतिः, चसुतौ पण चसुतिपण, विच्छय चसुतिपण चेति तस्मात्। विच्छ घातीः ऋल् त्यर्थात् पण्यः चायः स्यादाः। सुतिवर्जनात् स्यवद्वारार्थे भवती वर्षः। व्यवहारमाक्रयविक्रयस्वरूपः। पाणिनिः ३।१।२८८,३१।

- 🕂 एवं पन इत्यनेन (५८१) भाषप्रत्येय पनायते पनायति इत्यादि ।
- ‡ कानयते द्रति (५८१) जिङ् ज़ते, (५००) इंडी, कामि-घातोले विभित्त:।
- § जे. परी ऽङ् ञाङ् तिधिन्। भाको लोपः श्रम्लोपः, चेऽस्यासौति भम्लोपौ । च्छत् इत् यस्य म च्छदित्। ऋग्लीपीच शासुय च्छदिचेति, पक्षात् भञ्गीगैतस्य । जः परे प्रक्रि परे इति कथनात् जे: पूर्वविधिभागसीय उकः स्वः स्वादिति । अस्तीपि-भास ऋदिताल — भनुकूटत् अभ्रभासत् भडुढीकदित्यादि । पाणिनिः अधार,र ।

६३८। खेः सन्बद्घी, घेर्म्हसारे र्घञ्च, त्यानेकाचोस्वकलिङ्खेर्वा।

(खि: ६।, सन्वत् ।१।, घौ ७।, घो: ६।,इसादे: ६।, घं: १।, च ।१।, स्थनेकाभी: ६॥, तु ।१।, भविष्ठलः ६।, वा ।१।) ।

श्रनग्लोपिनः खेः घो ध्वचरे परे सन्वत् कार्य्यं स्थात् ञाङि, घीच खेर्हसारेः घेः स्थात्,ृकलि हिल-वर्जस्य लेः श्रनेकाचय सन्वदास्थात्। क

६४० । ख्यस्येत् सनि । (ख्यसः ६१, दत् १२१, सनि ७) । खेरवर्णस्य दत्स्यात् सनि परे । पं

६४१। जेर्ने पो उनात्विष्णुायान्ते ह्यामिम् शित्।

(जे: ६।, लोप: १।, अनालु— भिति ৩।)।

त्रालु इण्ड आय्य अन्त द्रतु आम् इम् ग्रित् एभ्योऽन्यत्र जेर्लोपः स्थात्। इ

^{*} सन्दर्व सन्तर्, लिय अनेकाच तौ तथोः, किलिय इलियेति किलि-इलिः, न किलिइलिः अकिलिइलिनस्य। अनर्गापि-शास्त्रृदितामन् वर्गनेऽपि शास्त्रृदिता लघु-स्त्युक्तधात्ववरपरलाभावादपाप्तो, अकास्त्र च लृदीभी इत्यस्य ऋदितीऽपि अनेकाच्-स्वात् विश्वेषे वाधितलात्, केवल-सनर्गापिनः इति व्याच्यातं। अनर्गापिधातोः स्तिः सन्वत् कार्ये स्थात् ञाङि, लघुधालचरे परे। तवैत इसादेधीतोः खियंदि लघु-भविति तदा तस्य दौर्यः स्थात्। किलि इलि-भिन्न लिङस्य अनेकाच-धारीय स्तः सन्वत् वास्यादिस्थयः। पाणिनि ९१८८३, यार्त्तिकानि च।

[†] खे: प: ख्यसस्य। पाणिमि: ७।४।७६।

[‡] भाजुय ६ ज्ञायय भन्य इतुय भाम् व इम्च शिव ते, न वियत्ते ते यत्र स तिक्षित्। भाजादी तु—स्प्रस्यालुः, कारिये जुः, स्पृष्ठयाय्यः, मज्ययनः, सनियितुः, कारयामास, कारिये थिति, कारियतीत्यादिः। (१०७०) स्त्रे सेम्कादी परे तु श्रेलीपः। पाचितिः ६ । ४। ५९,५२,५३,५४,५४।

अचीकमत अचकमत । कामया चुक्री चक्रमे। अ

(८१) अय ङ गती।

यायिदुं प्रायिध्वं यायिद्वं। ययाञ्चली।

(८२) एवं, दय ङ गती।

(८३) स्मायी ङ हडी।

भ्रस्माधिष्ट । 🕆

६४२। योर्लीमो इस्यये।

(यो: रं॥, लाप: १।, इसि ७।, भये ०।)।

अस्पास्त । 🕸

(८४) श्रोप्यायी ङ हडी I

ई ४३ । पदस्तनी स् घे प्याय ताय दीप पूर जन बुधस्तुवा।

(पदः ५, तनि ७, इण् ।२।, घे ०।, प्याय-नुषः ५।, तु ।१।, वा ।२।) ।

^{*} अप्योक्तमत इति कम धाती: (५८२) जिड्, (५००) बर्डि:, कामि इत्यस्य (६११) धात्मं आ, तत: तन्, (६१३) घडः, (६१८) अस्तः, किम इत्यस्य दिले मि इथस्य खोपे, कस्य चकारे, खे: सन्तत्वात् (६४०) घकारस्य इकारे, लघुखंदीं अपनेन जेलींप:। जिङो विकत्यपये, अर्ङ् दिलादिकस्य। कामयास्त्रीः इति कामि धाती: (५८२) त्यान्लादाम्, तत: क्रप्रयोगः। जिङोऽभावे चकसे।

[🕇] चायिद्वनिति (५५६,५५०) सर्खापः, घस्य छ.। भस्मायिष्टेति (५०३) वा इन्।

[‡] यच वच यौ तयोः । वकारी दन्यः । यवयोर्जेषः स्यात् भाग्ये इसि परे । भस्कासीति भनिभपचे य-लोपः । एवं स्काताध्याता । दिवी यङ्कुकि ऊटोऽप्राप्ति-पर्चे देदेति भाग वकीपः । इसि विजं, स्कायते चेवते । भये किं, दौव्यति । वार्षिकम् ।

पदी घेऽर्थे इण् स्थात् तिन, प्यायादेसु वा। अ

६४४। द्रणसन् लोष्यः।

(इ.स. ५।, तन् ।१।, लीयः १।)।

श्रयायि श्रयायिष्ट श्रयास्त । 🕆

६्८५ । प्याय: पी र्यङ्को:।

(प्याय: ६।, पी: १।, यङ् खी: ०॥)।

पिप्ये। ‡

(८५) तायु ङ सन्तानपालनयीः।

चतायि चतायिष्ट । §

(८६) यल ङ चलने।

श्रमलिट्' श्रमलिध्वं श्रमलिद्वं। ग

इ.णी च इत् ब्रह्मार्थः ! सेर्बाघकोऽयं। पाचिनिः ३।१।६०,६१।

[†] इ.ण.: परः तन् लोप्यः स्यात् । इ.ण.: इति सामान्याये, तेन (६२१) रतनी-र्यगिणावित्यनेन कृतादिषोऽपि तनी लोपः। पदस्तनीण् चे इत्यत्र तनः स्थाने इ.ण. कृते लाघवेऽपि, व्यां सेरापत्तिः, तन्स्थानजातत्वेन इ.णी जिस्तात् अवीपीत्यत्र गुणाभावस्य स्थात्। अप्यायिष्ट इति इ.णी विकल्पपचे (५०३) वा इ.स् । अप्यालेति इ.मी. इ.भावपचे यक्षीपः। पाणिनिः ६।४।१०४।

[‡] प्याय-स्थाने पी: स्थात् यिङ क्यास्त । पिछो इति (५८८) यः। पाणिनिः ६।१।२६।

[§] श्रतायौति तायधातो: तनि (६४३) इष्। पचे (५५४) श्रतायिष्ट।

[¶] भग्रालिदृनिति (५५६,५५७) वा-इधेन पदत्रयं।

(८७) पेह क सेवने।

परिषेवते, नाषेविष्ट, विषिषेवे। प्रतिसेवते। *

(८८) काम्र ङ दीप्ती।

काशामास चकाशे। क

एवं (८८) कास ङ कुमन्दे।

(१००) ईह ङ चेष्टायां।

ऐहिदुं ऐहिध्वं ऐहिह्नं। क्ष

(१०१) क इन्वधे गत्यां।

अर्विष्ट अरोष्ट । कक्विषे । §

(१०२) दे ङ पालने।

६४६ । दे देंडो दिगिष्ठां।

(है: ६।, देड: ६।, दिगि: १।, व्यां ०।) ।

दिगतस्य देङो दिगिः स्यात् व्यां। दिग्ये। श

 ⁽५०२) परिषेत्रते, नावेतिष्ट ६ति अन्यापि, विषिषेते इति देश षत्ं। परि-नि-वि-पृत्रेत्वासातान प्रतिसेत्ते इति न षत्ं।

[†] काशामास दति (६००) वा चाम्।

[‡] ऐडिंद (५५६,५५०)।

षरिष्ट भरीष्ट (५७३) वा दम् । क्विविषे द्यति ठीवर्जनात् (५८४) नेससुमिति
 दम् । (५८८) खव् ।

শ दिग्ये इति दिवलस्य देधातीः (दिगि-मादेशः, (५८८) इ-स्थाने यः। पाणिनिः গাধান।

(१०३) भ्रो डी ङ नभोगती।

श्रडयिष्ट । %

(१०४) गुप ङ गोपन-कुलनयोः।

जुगुप्रते।

(१०५) मान ङ विचारे।

मीमांसते।

(१०६) बध ङ निन्दायां।

बीभसते। 🕆

(१०७) खुत ङ ए दीप्ती।

(५६५) शासु लिद्युदिति ङ:। तेनैव पं। अयुतत्, अयोतिष्टाः

६४७। दात्-खाषी: खेर्जि:।

(द्युत्-स्वार्धाः ६॥, खेः ६।, जिः १।)।

दिखुते। §

(१०८) वृत ङ वॢ वर्त्तने।

६४८ । इद्घो नेम् पे खसनो वीलमे ।

(बदस्य: ५॥, न ।१।, इस् ।१।, वे ७।, स्य-मनी: ६॥, वा ।१।, तु ।१।, प्रामे ७।) (

^{*} শত্যিত হবি (১ু৯৬) ভী-वर्जनात् न दुम्निषेध:।

[†] जुगुप्तते, सीमांसते, बीमवाते, इति (६३०) मन्, सान-वधी: खंडींच। मुपधाती: (८०४) प्रनिम्सनि न ख । (१९०) वध-घातीर्वस मः।

[‡] तेनेव पं (५६५) टीपरकोपदे उट-विधानसामव्यांत् बुतथाती: व्यासुसयपद-मिल्ययः।

[§] बुद्ध स्वापिष तथी:। बृतो जानस्वपय खेर्जि: स्थात्। दिब्बुते इति खे: (५१५) यस इ:। पादिनि: ৩।৪।६०।

हतादे: ख-सनोरिम् न स्थात् पे, मादन्यत्र तु वा । त्रतएव पं। वर्तस्यति । मेतुवर्त्तिथते । अ

(१०८) सम्दुङ वृ चर्गे।

निष्यन्दते निस्यन्दते घृतं। निस्यन्दते हस्तीति प्राणिघलात षः। 🕆

(११०) क्षपूङ बॢ काल्पने।

ईश्वर । जपः क्षृपो ऽज्ञपादौ । (क्षपः ६।, कृषः १।, चक्रपंदौ ०।)।

क्रपः स्थाने कृपः स्थात् न तुक्तपादौ । कल्पते । 🕸

ई्पू०। नेम् पे खा:। (नाश, इम्।श, पे भ, बा: ६।)। क्रापी द्यादम् न स्थात् पे । अत्रत्य पं। कल्प्षा। पे किं, कल्पिता कल्प्ता। कल्प्स्यति, मेतु कल्पियते कल्प्-स्यते। §

^{*} ब्रह्मा: दूति बहुवचनं गणार्थे। भतएव पिनति इतादेशायानेपदिन: परसीएदे स्य सनोरिम्निविधादेव स्य सनोक्तभयपदिलिनिवर्षः । यथा वर्तस्यति । सनि विवत्-स्ति। मे तुवर्त्तिप्यते, स्नि विवर्तिषते । मादन्यव तुविवर्तिषा विव्रत्सा इत्यादि । इतादिय-इतुर्वेषः ऋषः खन्द्रः क्रप्ः पञ्च इतादयः । पाणिनिः शराप्रधः शराधर ।

[†] घृतं निष्यन्दते द्रवीभवतीयथः, (६२५) प्रप्राणिघलात् वा घलं। इसी निस-न्दते चीको भवतीत्वर्थः, अव प्राणिपत्वात् न षतं।

[‡] क्रपाचादि: यस च क्रपादिः, नज्योगे तिसन्। क्रप: स्थाने क्रप: स्थान् नत् রুपा-प्रसृतितृ। त्रुपादिर्थेषा— कृपा कृपाणः कृपणः कृपीटञ्च (कर्पटञ्च) कृपः कृपी दात। कल्पते दति क्राप्रचादेशे ग्रापि खकारस्य गुणः भल्। पाणिनिः माराधिन "क्षपणादीनां प्रतिषेधः" द्रति वार्त्तिकाचा

[§] अवावि अतएव पं। तत्व - युतादेः व्यासुभवपदिलं। इतादेः गुतायनः

(११९) व्यथ पाङ् पीड़ायां।

६५१। व्यथ ग्रह ज्या वय व्यध वश व्यच प्रच्छ वृक्ष भ्रम् च खप वच यजादेः सीर्जिध्यां।

(व्यथ - यजादेः ६।, खं: ६।, जि: १।, न्यां ०।)।

एषां खेर्जिः स्थात् ळां। विश्यथे। *

(११२) जि तरा पङ् स्वरे।

त्रवरिद्वं त्रवरिध्वं त्रवरिद्वं। 🕆

इति मवत्-पादः।

र्गणतात्र्यां स्थानीय उपयपदिलं। क्रपनु युतादिलात् वतादिलात् नेम्पे आः-इत्यनेन च, य्यां स्थानीः खाख उभयपदिलमिति, अन्यत्र मर्थे एवासानेपदिनः। काल्पा परसौपदे अनेन दम्निषेधः। काल्पसतौति वदस्योनेम्पे इत्यनेन निषेधः। आसानिपदेतु (५०३) वादम्। पाणिनिः ७।२।६०,१।३।८३।

* व्ययस्थादि—यजादियिति इन्हेतसा। वय इष्ट वेज स्थाने (६६१) वयादेश:।
तस्य च वेजस्थानजातलेनैव यजादिलात् कौ सित्ते पुनिष्ट यक्षणं (६६२) व्याने निष्कामिति जिनिवेषस्य वाधनार्थे। यह प्रच्छ तथ सम् म इति चत्णां खेजाँ कते, (५५८) सकारस्य सकारे, जी फलामावेऽपीह ग्रहणं यहादिगणार्थं, तेन यहाते पृच्छाते इत्यादौ (६६१) यहादिलात् जि:। यजादिन् —यजि विप वेहिसैव वेज् वेजो क्षयतिस्या, वदि वैसिय ययतिस्रेते नव यजाद्यः। विव्यय इति विधिवलात् सिरायचीलीपात् प्यात् न स्थानलीपः। व्य इत्यस्य भौ कते, सकत् विकृ वैष्येन विद्वस्य प्रति विश्वा । पाणिनः अधिह्म, हीरारेश।

† पलरिद्धमित्यादि (५५६,५५०) विकल्पहर्यः।

8र्थ पाद:--मिय: I

(११३) पत ल ज गत्यैखर्ययोः।

६५२ । वच्चस्य-िख-पतां वोचस्य-ख-पप्ता छ।

(वचि-षास्य-श्वि-पतां ६॥, वोच-षास्य-श्व पप्ताः १॥, उंहे ०।)।

एवामेते क्रमात् स्युर्ङे। प्रख्यपत्। *

(११४) ण ज टुवंम उहिरणे।

वेमतुः ववमतुः, वेमिय वविभय।

(११५) भ्रमु ज ए चलने।

(५८8) क्रम क्रमेति खन्वा। अय्यति अमिति। श्रेमतुः वश्रमतुः।

(११६) सह ज ङ शती।

व्यषहत व्यसहत । (६०६) वेमसहेतीम् वा । परिषहिता । 🕆

६्पूइ। सन्द-वन्नोऽदो दिः।

(सह-वह: ६।, चत्।१।, ची।१।, ढि ७।)।

^{·ः} विश्व श्रद्धश्च श्रिष्ठ पत्त**च** ते वेषां—

कोच च अस्थ्य यथ पप्तच ते स्थः। विचितित घटादिक एव, भीवादिक कान उपायामानात्। अस इति दिवाटिक एव, अन्यसात् उपायामानात्। पाणिनिः भते असस्यातोः थुक् आगमः। प्रस्थपप्तदिति प्र-नि-पत्त—टौदि, (४६५) लृदिस्वात् इ., अनेन पप्ताटिशः। (५४८) गदायानाने र्यात्वं। पाणिनिः अधार०, १८, १८, २०।

[†] वेमतुरित्यादि (५०६) जृवमसमिति वा खिलीपः चकारस एकारस । व्यवहर्तिति वि.सइ.—घीन्त, (६३३) वा पर्लं । परिषष्टिता (५०२) निलं पर्लं । •

सहवही: त्रकार श्री स्थात् है परे। निसीढ़ा, (५०२)

(११७) षद स्ट जी विषादेगती। निषीदति। न्यषदत्। निषसाद। प्रतेतुप्रतिसीदति। पै

(११८) गद् ऋ जी गाते।

६५८। शहोऽपि मं। (भदः प्रा, पि था, मं रा)। शीयते। अभदत्। क्ष

(११८) फण मि ण गती।

फेणतः पफणतः, फेणिय पफणिय।

(१२०) राजु ज ग दीप्ती।

रेजतुः रराजतुः, रेजे रराजे । (५७८) विधिबलादातीऽप्येतं।§

[•] निसोटा पित नि.सह.— जी-ता, इ.सी. (१०५) इस टः, पनेन पका-रस्य फीकारः, (५०५) तस्य घः, (४०) घस्य टः, (००) टजीपः। एवं सीटन्यः। भीटा, बोटन्यः। पाणिनिः ६।३।११२।

[†] निषीदिति, नि-सद-तिप्, (५६०) सीदादेश:। (५०२) षलं। न्यथदत् — टौदि, (५६५) लृदिस्तात् ङ:। षम् व्यवधानेऽपि षलं। निषमाद — टौषप्, दिला-दिकं, (६३४) खिभिन्नस्य पलिभिष्धः, खेलुषलं। (५०२) प्रतिवर्जनात् प्रतिशीदतीति न पलं।

[‡] भप्विषये भदो मं स्थात्, यत्र यत्र अप् तत्र तत्रात्मनेपदिनित्यर्थः। भौयते (५८५) भौयादेश:। भपि किं, भगदत्, भत्र टौ-दि (५६५) छ:। पाणिनिः १।३।६०।

^{\$} फोचतुरित्यादि (५৩১) फचादित्वात् वा एलं, खिलीपश्च। विधिववात् राजृ- স্থা प्रभतीनां फचादिपाठवलादाकारस्थापि एलं खिलीपश्च।

एवं (१२१) टु स्नामृ ङ ण दीप्ती।

साखते भागते। सेगे बसाये।

एवं (१२२) टुभाष्ट ङ ण भासि । क्ष (१२३) खन ण ग्रब्दे ।

विष्णिति श्रवष्यणित मांसं, व्यष्यणत्, विष्णेणतः विषष्णतः । विस्तनित वीणा, निस्तनित श्रवं, (५०२) श्रवव्यवेत्युक्ते ने षः।

(१२8) खनु च विदारे।

(२३०) इनगमेत्युङ्लीपः, चखृतुः चख्रे।

६ॅपूपू । खन-सन-जनां ङा आसे, ये तुवा।

(खन-सन-जनां ६॥, ङा।१।, भारे ७।,ये ७।, तु।१।, वा।१।)।

खायात् खन्यात्। ध

अध्यक्षित दित (५१४) यसन्वाः। सेशे दिति फणांदिलात् भातोऽष्येलं। भाग-भाशो दन्यसानौषः।

[†] सम्बद्धं सांसं सुङ्क्ते इत्यर्थः, श्ववष्यातीति विधानवत्तात् श्वकारात् परस्यापि घलं। व्यष्यपदिति घी दिप्, श्वनव्यवधानेऽपि घलं। विश्वेषन्रिति फणादिलात् वा एलं, खिलोपस, दिकतस्यापि घलं। वीषा विस्तृति मन्दायते, श्वनायंभिन्नलात् ; श्रमं निस्तृति सुङ्क्ते, वि-श्वविभन्नपृञ्वेलात्, न घल।

[‡] एषां उत्तान् अभि परे, येत्वा, ङिक्ताह्न्यस्य स्थाने। पत्र विति अभि परे न स्थादिति बोध्यं, तेन यङ्नुकि चंखन्ति चंखंसीत्यादि। (प्रतापव किति ङिति अभवादौ परे दित पाणिनिः)। एवं घ्यण्भिन्ने ये परे बोध्यं, तेन जन्यमित्यादि। पाणिनिः ६।४।४२,४३।

(१२५) चायृ ज निग्राने ग्रर्चे । ग्रचायीत्, (६४२) योृलींप द्रति, श्रचासीत् ।

(१२६) लष ज स्प्रहायां।

लायति लापति।

(१२७) गुह्न ज संवर्णे।

६५६। गुहो गोरू:। (गुहः ६।, गी: ६।, ज: १।)।

गुहो गोरुः स्थात्। गूहति गृहते। अगृहीत् अष्ठचत्। १

६५७। गुहदुइदिहिलिहां टीमदन्ये न सि: सक्वा।

(गृह-दृह-दिह-लिझं हण, टीमदत्त्वे था, नारा, मि: रा, मक् ारा, जारा)।
एषां टीमदन्त्वे परे सिर्ने स्थात्, सक् च वा स्थात्।
अगूढ़ श्रष्ठचत । धै

अपचायौदिति (५०३) ब्राइम्। चष्यतौति (५८४) ग्रान् वा।

[†] क्रति (८८३) गुद्धं गोद्यामिख्दाहरता भवि परे एवायं विधिरिति स्चितं, तेन ग्रिता गोट़ा, ग्रिट्यति घोच्यतीत्यादि । भग्दीदिति (५७३) वा इ.स् । पर्च भनिम्लात् (६०५) सक्, (१०५,१७०,६०२,१११) भघुचदिति । पाणिनि: ६।४।८८ ।

[‡] ग्या मं टीमं, टीमे दन्यः टीमदन्यसिम्। एषां सिर्मं खादिति पद्यभी हिला प्रषी-निर्देशेन, गुड्धातीः सेम्पचे जातः सिः टीमदन्येऽचरे परे न तिष्ठेत्, सेर्जातलेन सपी न प्रसङः। धनिम्पचे (६०५) डयष इस्केन जातः सक् च वा तिष्टेदिस्थयः, धतः सकोऽभावपचेऽिय सपी न प्रसङः। तथा दुड्-दिइ-खिडां धनिमि- जुङ्डान्तलात् सिप्राप्तिरेव नासि, सक्तु वा स्थादेव, सकोऽभावपचे सपी न प्रसङः, सकदमती विद्रतिषेधी यद्वाधितं तद्वाधितभीवित न्यायादिस्थैः। अगुद् इति गुड्-

६५८। सकाऽस्तोषो उचाने।

(सक: ६।, चत्-लीप: १।, चिच ०।, चर्व ०।)।

सकोऽकारस्य लोपः स्यादवे ग्रवि परे।

अगृहिषि अघुति। अगृहृहि अघुत्ताविह। दन्ये किं, अगृहिषहि अघुतामहि। अञ्जे किं, अगृहिषत अघुत्तन्त। ॥

(१२८) ह ज हत्यां।

ईपूर। इगुङ् माठीखनिम् किदगमस्तु वा।

(१गुडु: ५), म-ढीसि ।२।, त्रनिम् ।१।, कित् ।१।, गम: ५।, तु ।१।, वा ।१।)।

टौतन्, बनेन सेरभावे, (१०५) इस दः, (५०५) तसाने घः, (४०) घस दः, (००) दलीपः पूर्वस्य च दीर्घः। ष्यमुचत इति सक्, (१०५, १००, ६०२, १११)। सकी विकल्पपचे तुष्पगृद इसीत। से किं, श्रमुचत्। (दल्योष्टगीऽपि वकारी दल्यगर्धन स्टक्षते, तेन षगुह्रदि प्रमुचाविह इति सिद्धानकौमुदी)। पाणिनिः ०।३।०३।

* भती लीपः पत्नीपः । न वं यन्नं तिमन् । वहनवनिमिन्ने चिन विषये इत्यथः । अगृहिषि—टी इ., (५०१) इस हः, (१००) गस्य नः, (६०१) उस्य कः, (१११) षतं । विकल्पपत्ते प्रमृति (६०५) उस्य कः, (१११) षतं । विकल्पपत्ते (१०५) उस्य कः, (१११) षतं । विकल्पपत्ते हि सैनिविधः, वकारस्य इत्यत्ने भन्नतामावात् होहोभावित्यस्याप्राप्तिः । सम्पत्ते (१०८) भानोऽदनत इति प्रत्यत्वभावात् न सिनिविधः । इसी विकल्पपत्ते सक्। प्रगृहिष्यहीति मकारस्य इत्यत्वभावात् न सिनिविधः । इसी विकल्पपत्ते सक्। प्रगृहिष्यहीति मकारस्य इत्यत्वभावात् न सिनिविधः । इसी विकल्पपत्ते सक्। प्रगृहिष्यहीति मकारस्य इत्यत्वभावात् न स्वत्यत्वभावात् । परन्तु (५४६) लीपीऽतीऽहिपोरित्यकारक्षीपः, तस्य स्थानिवल्वात् न प्रत्यस्यावित्यति प्रवे इति क्षयं आवर्षति—(१६) लीपीऽतीऽस्थोनाक्षीरिति, (५७६) लीपीऽतीऽदिपोरिति, (७०५) हमान्नोपीऽशिल्यद्यीरित्यतेभ्योऽत्यत्वेष प्रकारस्थीपस्य स्थानिवल्वं नाम्नीति । तेन (६००) लुगद्योऽप इत्यादिना प्रकारलोपे स्थानिवल्वात् (५५५) नानोऽदनत इत्यस्य प्रवृत्ती दृष्टते विहते विहते इत्यादि सिदं । पाथिनिः ०।३।०२।

इगुङ च्टवर्णान्ताच परा ने स्थिता अनिम् टी सिय कित् स्थात्, गमसुवा। श्रष्टत श्रह्मातां। हृषीष्ट। *

(१२८) दु डु स च सृतिपुष्यी:।

बस्व। 🕆

(१३०) दान ज ग्राजीवे छिदि।

दीदांसति, दीदांसते। क्ष

एवं (१३१) गान ज तेजी।

थीयांसति ।

(१३२) भजी ज भागसेवयो: ।

भेजे, भेजिय बभक्य।

(१३३) श्रिज सेवायां।

(६१३) जित्रीत्यङ्, श्रिमियत्। त्रयिता। §

इत् उङ्यस स इगुङ्— भिट्र वुध स्त्र प्रस्ति: । इगुङ्च ऋष इगुङ्ग तथात्। दी च सिथैति, सं (चालानेपदे) दी धि, मदीसि । ना खि इन् यस सोऽनिस् इति सदीमिर्विशेषणं । गमसु चालानेपदे (८०५) समगत समगंस । अद्भत इति सन्, सि:, अनेन कित्, (४६२) सेलीपः । पाणिनिः १।२११११२११।

[†] बस्य इति (५८४) नेससुम् इति इम्निपेधः।

[‡] दौदांसतीलादि (६३०) सन्, खेडीं च।

[§] भेजे इति (५०८) घ: ए:, खिलोपय। भेजिय इति (५८८) वा इम्। पर्व वभक्ष (२११) कुङ्। अभिवियदिति अङ् दिलादिकं, (५८८) द्रयः। ययिता (५८०) यिवर्जनात् द्रम्।

(१३४) रन्जी ज रागे।

ईई०। रन्जो ऽपष्रकानास्तिणनौ न-लोपो जौतु स्रगरमणे। (रनजः दा, अप्-पक अन-अम्-धिणनो ७), न-

सीप: रं।, जी ७।, तु । १।, सगरमचे ७।)।

रजति रजते। ररजतुः ररञ्जतः। *

. (१३५) विषी ज कान्ती।

त्रिविचत्। विचीष्ट। 🕆

(१३६) यजैं जी देवार्ची-दान-सङ्गति ।

(६५१) व्यथयहीत जि:, द्याज।

ह्हिं। ग्रहस्वपाद्योः कडित्-कितो र्जिः।

(यह खपायो: ६॥, कडित कितो: ०॥, जि: १।)।

यहारे: किति ङिति, खपारे: किति, जि: स्यात्। ईजतु: ईजु:, दयजिय दयष्ठ । 🕸

^{*} अप्च षकथ अनय अम्च स्थिनिश्चिति तसिन्। एतेषु प्रत्यथेषु परेषु रन्नः म-स्वीपः स्थात्, औ परे तृ स्गरमणेऽये। स्थिनिश्चित क्षत्मत्ययो वक्षत्रः, तिस्व रागीति। रञ्जनिमिति क्षत्रक्षेत्र। रजति रजति इति अपि नलीपः। ररनतः रञ्जति (४६६) वा कित्संज्ञायां, (४६०) किति नलीपः। पाणिनिः ६।४।२६, श्वारित (४६६) वा कित्संज्ञायां, (४६०) किति नलीपः। पाणिनिः ६।४।२६, श्वारित (४६६) वा कित्संज्ञानं कर्त्त्यम्", "चितृषि च रञ्जेरपसंस्थानं कर्त्त्यम्", "वितृषि च रञ्जेरपसंस्थानं कर्त्त्यम्", "दिनुषि च रञ्जेरपसंस्थानं

[🕇] भितवदिति (६०५) सक् । विधीष्ट (६५८) किलात् न गुणः ।

[‡] ग्रह्म स्वपम् ग्रह्मपी, ती भादी ययोशी तथी:। कडी इती यस स कहित्, कडिंच किच कडित्किती तथी:। (६५१) व्यथगहेति सूत्रे पठिता: ग्रहादय: खपादयम जिया:। यज-मृत्म दिलादि, व्यथगहेति खेजिं, भनेन मूलस्य जि:। एवं ईशु:। इयिज्य (५८६) वा इम्। पर्व (१५४) पड्, (४०) म्या ठ:। पाणिनि: ६।१।१५,१६।

(१३७) हुँ वपी ज मुण्ड वीजोप्तगी: ।

प्रख्वाप ।

(१३८) वहै जी प्रापणे।

प्रख्यवाचीत्, अवीढ्। उवाह, जहे। *

· (१३८) वै जै स्यूती।

ई ६२। यांन वे-प्रच्छां।

(य्यां), न ।१।, वे-प्रच्छां ६॥).।

वैज प्रच्छि व्रिष्ठ भ्रम्जीनां जिनेस्थात् व्यां। ववी, ववतु:। 🕆

६६३ । वेजो वय् वा । (वेजः ६१, वय् ।११, वा ।१।)। वेजो वय् स्यादा व्यां। उवाय जयतः । क्ष

^{*} प्रस्पुवाप प्र-नि-वप-पप्, दिलादिनं, (६५१) खेर्जिः । (५४८) गदायत्तनेर्णलं । प्रस्थवाचीत् प्र-नि-वहः टोदि, '(१७५) इस ढः, (६०२) ढस्व कः, (५७४) श्रानिम्लात् हिंडः, गदायत्तनेर्णलं । स्वीट वह-टीतन्, (५६२) सिलीपः, इस्र ढः, (६५१) सकार स्रोकारः, (५०५) तस्य घः, (४०) घस्र ढः, (००) ढलीपः । उवाह वह-टी-सप्, दिलादिनं, (६५१) स्विस्त (६५१) स्विस्त ।

[†] प्रच्छां इति बहुवचनं गणार्थ। विजी जिनिधेधेऽपि तदादेशस्य वयी न जिनिधेधः, प्रत्यथा तत्र (६५१) वयीग्रहणस्य वैयर्थात्। विजीणप् (६०८) एकार श्राकारः, दिलादिः, (६०८) षप् डौः, ववी, पत्र स्वेर्णनः। एवं ववतः, पत्र स्वेर्णस्य च जिनिधेधः। पाणिनिः ६।१।४०, वार्णिकच।

[‡] जवाय इति भनेन वयादेशे, (६५१) खेर्जिः । जयतुरिति खेर्म्लस्य च जिः । पाणिनिः राक्षाधर,६।राइर ।

ईई8। यव: किति। (यारा, व: रा, किति ।)।

वेजो यस्य वः स्थादा व्यां किति। जवतुः। *

(१४०) व्ये जै हती।

ृ६६५ | नाव्येष्ठग्रां | ्^{(नारा, घारा, वी: ६ा, खां अ)।} वैज्ञानसात् खां। विव्याय | पं

६६६। जिंवान्य: किति।

(जिं २।, वा।१।, भन्यः १।, किति ৩।)।

द्वेचेंजोऽत्त्यो भागो जिं वा प्राप्नोति व्यां किति। विव्यतुः विव्ययतुः, विव्ययिष्य । इः

^{&#}x27; अविजी यस प्रमधवात् तदादेशस्य वयएव यकारस्थेत्यर्थः । जवतुरिति जयतुर् रितिवत् सार्ध्यं, कंवलमनेन यकारस्य वकारः । पाणिनिः ६।१।३८।

[†] व्येजै बतावित्यस्य व्यां विभक्तों (६०८) भा न स्यात्। भनुवनाविष व्यामित्यु पादानं, कितीत्यस्य वा इत्यस्य च निवस्यये । विव्याय इति भा निविधे (६५१) यज्ञादिलात् स्वेजिं:, (५००) बिडः, (३५) ऐस्थाने भाषः। पाणिनिः ६।१।४६।

^{‡ (}६६१) यहस्वपाद्योरित्यनेन प्राप्तस्य निर्वेकन्यविधानं। जिं वा कितीति सति आदौ निःविधाने पद्यात् वि इत्यस्य हिले,, यनादिलात् (६५१) खेनिं-विधाने ज्ञात्रित्यानं स्थात्, (५३६) निः पुननं स्थादित्यस्य नात्र विध्यः हिभूतस्य वेः प्रक्रात्यत्तरतात्। विव्यत्रिति व्ये व्ये इति हिले, (६५१) खेनिंः, भ्रमेन मूनस्य निः, (५८८) इस्थाने य। विव्ययत्रिति भ्रमेन मूनस्य निर्वेच (५५१) ए-स्थाने भ्रय्। विव्ययिष्य इति (५८९) व्यंज-वर्जनात्, (५५४) निल्विमम् सर्वेच (५३६) पुनर्जिविधान-निय्धात् विद्यस्य न उ.। "उभयेषां यहण्याम्यर्थात् हस्वादिः भ्रेषं वाधिला सम्प्रसार्यम्" इति वित्तः।

(१४१) ही जै सादीयां मन्दे च।

श्रहत्, श्रहत श्रहास्त । *

ईई७। ह्वी हेर्जि:। (हः ६।, हि. ६।, जि: १।)।

देर्हें जो जि: स्यात्। जुहाव जुहुवतु:। 🕆

(१४२) ऐ वसी निवासे।

ईईट। सत्खरे। (मृादा, त्रारा विशा, परेशा)। सस्य तस्यादरेसे परे। अवासीत् अवात्तां, उवास जपतुः । ईः

(१४३) वदे वाचि।

श्रच्छ-वदिति । (५०४) व्रजवदिति विः । श्रवादीत् । उवाद जदतुः । §

^{*} महदिति है-टी-दि, (६१८) छः, (६१०) मा-लीपः। ऋहत महास इति, (६१८) लिब्स्यस्तु भेवा द्रव्यनेन वा छः।

[†] जी: पुनकपादानात् कां, किति, वा, इति चयाणां नानुवृत्ति:। हि धाती येंच दिलं तच खेर्मूखस्य चित्रः स्थादिश्यर्थः। यथा भागृहवत् जुह्नवि द्रश्यादि। सुहाव इति भनेन सभयच जि:, (५००) वृद्धिः, (३५) भौस्थाने भाव्। जुहवतुरिति (५८८) सस्थाने सव्। पाणिनिः ६।१।३३।

[‡] भवात्सीत्, भनिम्लात् वृद्धिः, भनेन सस्य त । भावात्तामिति भनारङ्गलात् निरवकाश्चलाच भादौ सस्य तकारे पद्यात् सिलीपः । उनास जवतुः (६५१) यनादि-लात् खिनिः । (६६१) किति परे मृलस्य जिः । पाणिनिः ७।४।४९ ।

[§] पक्क-वदति (५८१) समासः, समुखे वदतीलर्थः। छवाद जदतुः, यजादिलात् जि:।

(१४४) टुँ भी खि दर्गति-हद्योः।

(५६५) प्रासुनिद्युदिति ङ: वा। श्रखत्। (६१३) जित्रीत्यङ्वा। श्रमिखियत् श्रखयीत्। *

६६१। खोर्ज वी यङ - को अंग्रङ सनी:।

- (ब्रि: ६।, नि: १।, वा ।२।, यङ्क्यी: ७॥, न्राङ्सनी: ०॥) ।

खेर्जि वी स्थात् यिङ क्यां जेः परे श्रिङ सिन च । ग्रमाव भिष्वाय, ग्रग्रवतुः भिष्वियतुः । श्रविता । श्रूयात् । पै

इति भिश्रपादः।

इति खाद्यध्यायः।

^{*} प्रश्नत विटीदि, ङ:, (१५२) विस्ताने या ङ-विकल्पपचे पङ्, हिलादि, (५८८) वृध्वीरिति इय् पश्चित्रयत्। पङ्विकल्पपचे व्यां चिः, (५५४) इ.स., गृषः, (१५) एस्थाने पर् पश्चयीत्।

[†] यङ्च टीच ती तथी:। षङ्च सन् च भङ्भनी, जी: परी भङ्भनी, तथी:। ग्रभाव प्रति भादी जि: पथान दिलादिकां। पचे भिषाय। एवं अतुप्ति (५८८) यथा-योग्यं उव्प्रय्। ग्रथादिति (६६१) जि:। (५८०) दीर्घः। पाणिनि: ६।१।३०,३१।

६ष्ठः । १म-चतुर्गणाध्यायः ।

१म पादः-श्रदादिः।

(१४५) यद ली भच्छे।

६७० । लुगद्धिरो ऽप: । (लुक् ११), यहस्य: प्रक, पप: ६१)।

यदादे: परस्यापी लुक्स्यात्। यत्ति। *

६७१। इससो हे घि: । (इ.स.स. था, हे: ६१, थि: ११)।

हो भी साच परस्य हे धि: स्यात्। श्राह्य। 🌵

६७२। इसाद्वां दिसे लेंगियामी।

(इस-षदभ्यां ५॥, दि-से: ६।, लीपामी १॥)।

हसात् परवी र्दिखी जीपः स्वात् श्रदः परवीरम् स्वात् । क्ष श्रादत् श्रादः ।

[•] भद्रभ इति बहुवचनं गणार्थं। घे शप्रे इत्यच भदादिवर्जनं न कला भच लुक् करणं कदाचित शपः स्थियत्रें, तेन अइनिदियादि। भिष्म, (१०६१) भप्विशिष्ट-धातीर्गुणिविकत्ये, भदादिगणीयकदधातीः रीदितं कदितनियादि सिखं। लुक्कर-शात् युतः युवन्तीत्यादौ (८३) लुक्किन तचेति निषेधात् न गुणः। पाणिनिः २।४।०२।

[†] इ.— लुड्घि। षदः — पश्चि। दधः — दिया वसः — छङ्टि। घकासः — वकाञ्चि इत्यादि। (८५६) विशेषविधानात् तातङादेशस्यक्षे न स्थात्, तेन लंपनं पत्तात् पश्चिता। पाणिनिः ६।४।१०१।

[‡] दि-मेरिसेकवचनं क्रमनिरामार्थे। दि-मेरिति च्या एव, य्याना सिन्यय-।।नादमक्षय:। पाधिनि: ६।१।६५,०।३।१००।

६७३१ वसूरः सन्चल्वजि।

(घम्लः ।१।, चदः ६।, सन्-टी चल् घित्र ०।)।

अदो घस्त्रः स्थात् सनि व्यामिल घिचि च। (५६५) लिलात् ङ:। श्रघसत्।अ

६७८। यांवा। (क्यां ७।, वा ।१।)।

जवास ब्राद। (२३०) हनगमेत्युङ्लोपः। जचतुः ब्रादतुः, जवसिय ब्रादिय। १

(१६६) पा ल भचणे।

प्रिपाति । 🕸

६७५। दिषविदाती उनुस्वा।

(दिष विद-स्रात: ५१, भन् ११।, उस् ११।, वा ११।)।

द्देष्टे वेति रादन्तांच परोऽन् उस् स्यादा। अपुः अपान्। \$

[#] सन्च टी च ऋल् च घञ्चिति तस्मिन्। सनि निष्यति। व्यां श्रघसत्, (२३०) ड-वर्जनात् न उङ्-लीपः। ऋनि घत्रि च प्रघसः घासः। (पाणिनिः ३।३।६०) न्याद इत्यादी सुन घसादेशः। पर्यापनिः २।४।३०,३८।

[†] भदी घस स्थात् वा व्यां। जनतः उङ्लीपे (६४) घस्य कः, (१११) गास-वसम्बेति बलं। भद्र घस इति हाभ्यां भातभ्यां भाद जवास इत्यादि सिद्धाविष् एतत्म् वक्षरणं घसधातीस्थपि भदतुल्यलज्ञापनार्यं, तेन (५८८) भदवजनादेव घसवर्जने सिद्धे, घसधातीः जवसिय इत्यव (५८४) नित्यमिम्। पाणिनिः २।४॥४०।

^{‡ (}५४९) गदनदेति चलं।

[§] श्रव श्रम् इति घ्या एव, छान्तु दिष: श्रम् व्यवधानात् न प्रसङ्घः, तेन र्घा श्रद्धिन्। विदाशीम् सिन्यवधानात् श्रनेनाशृशी, (५६१) नित्यसुस् श्रवेदिधः, श्रप्तासिष्ठः। पाणिनि: ३।४।१०८,११०,११२।

. (१४०) वम स काम्ती।

वष्टि । (६६१) यञ्चलपाद्योरिति जि: । उष्टः उग्रन्ति । अवट् । उवाग्र । 🌣

(१४८) इन सी हिंसा-गत्थी: ।

६७६। वनतनाद्यनिमां अम्लोपो अस्-यपतिक्यणो।

(वन-तनायिनमां क्षा, जन-लोप: ११, भन-्यिपः २०, भितिक २०, भषी २०)।
एषां जम्लोप: स्थात्, अणी भन्ने यिपः, नतु तिकि ।
प्रिण्डतः । (१८८) इनो क्लो प्रः। प्रन्ति । प्रहण्डः प्रहन्वः,
प्रहस्सः प्रहन्मः । ः

६७७। जन्नेधि-माधि इन्यस्ति-मास्ति हिना।

(जिहि-एधि-माधि ।१।, इनि पिलि-मास्ति ।६।, हिना ३।)।

रवां हियुक्तानां क्रमादेते स्थः। 🛮 🛊 हि । 🖇

कान्तिः कामना, इचिति यात्रत् ।

[†] वस-तिष्, (१५४,४०) वङ्, तस्य टः । भवट् इति घी-दिष् (६०२,१५४,६४) । ठी-वष् जवास (६५१) खं-जिः ।

[‡] तम पादिर्यस्य स तमादिः । नास्ति इस्यक्षात् सः । वनसः तनादिस पनिम् पैति तेषां । ञन् भत्तस्य प्रत्याद्वारी । यप् इति (१.१७६) क्वाप-स्थाननातः । तिक् (१००७) प्रत्ययः । नास्ति युर्धेस्वन्, स तस्मिन्, प्रणौ इति भत्ती विशेषणः । एषा-मिति बनधातीसनादेरनिमास्त्र । प्रणि इत इति पनि न जोप्रः ; (५४६) गदायस्ते-र्णतं । एवं प्रद्वारक्षादि म-वास्त्वनी वा यत्वं । पाषिनिः ६ ।४।३०,३८,३८ ।

ई७८। इनो वघष्टीकालि टीसे तु वा।

(इन: ६।, वध: १।, टौबालि ७।, टौमी ७।, तु ।१।, वा ।१।)।

इनो वधः स्थात् व्यां व्यामलि च, टी-मे तुवा। अवधीत। *

६७८। खे हो वो अणिति च।

(खं: ४१, इ: ६१, घ: ११, ञ्चिति ०।, च ११।) ।

खेः परस्य हनो हस्य घः स्वात्, ञिति णिति च । जघान, जन्नतः । हन्ता । वध्यात् । प्रहणियति । 🕆

(१४८) यु लिभसर्पणे।

६८०। रिपडस्रुता उद्देतिः।

(र-पित्-इमि ०।, उत: ६।, भदेः ६।, ब्रि: १।)

श्रद्धे भी रकारस्य विः स्थात् पिति इसे रे। स्वीति सुतः सुवन्ति । 🕸 _

^{*} टी च टी च भन् चित तिधान्। भन् पति (११६४) प्रत्यः। द्यादी हन्ते प्रयोगं निष्यं भौवादिक-वधधातः प्रयुक्ति दित तात्पर्यम्। भवधिदिति हनी वधदिभे वधधातीरनीदिक्तात् (५५४) दम्, सतः (५६१,५६२) द्रेम, सिलीपय। एवं वध्यात्, (भन्) वधः। टीने तु—भाविष्ट भाहत द्वादि। (पाणिनिः १।२।८४) परिच द्वादी तुन वधादेगः। पाणिनिः २।४।४२,४६,४४।

[†] चकारादयेहयं, खे: परस्य इनो इस घः स्थादिति, जिति चिति च परेऽपि घः स्थादिति च। खे: परतात् जधनिय जिधां भरौत्यादि। जिति घातयित, चिति घातक इत्यादि। जप्ततिरित (२३०,१८८) उङ्लोपी प्रादेशय। प्रइषिष्यतीति (६१०) इस्। (५४८) नादिहनमीनेति चलं। पाणिनिः अश्वरुप्य ।

[्]रक्थाओं पिश्वासी इस्चिति तक्षित्। न दिरदिभस्य। यथा बौति बौति रौति। ऋदेः किं, जुदीति। युक्ति (५८८) उत्। पाणिनिः शश्रास्ट।

(१५०) युल मियणे श्रमियणे च।

यौति। यविता। #

(१५१) गु ल खुती।

श्रनावीत् श्रनीषीत्। नुनुविव। *

(१५२) च्यु ल तेजने।

च्छविता।

(१५३) णा स प्रसुत्यां। अ

(५८६) स्क्रमीऽमे इति इम्। श्रस्रावीत्।

(१५8) इ-न स गती। 🌵

६८१ | यिनाऽचाणी | (य ।श, दन: ६।, यवि ०), षषी ०।) ।

द्रनी यः स्थादणाविच । इ यन्ति ।

६८२। गाव्यां। (गारा, यो ण)।

दनो गा स्थात् व्यां। अगात्। द्रथाय। §

^{*} यथिता, च्लाविता इति (५८०) प्रतिप्रमवात् (५५४) इम् । चनावीदिति (५०१) वा इम् । चनत्त्वात् (५०४) वि: । नृत्विव, (५०३) चन्या इत्युक्तीः, नेमसमिति (५८४) नियमात्, नित्यमिम् । मचपाठे च्लु इति पोपदेशभिद्धेशः । (५६४) भ्वायादीति षस्याने सः, सृ इति धातुः ।

[🕂] इ.न घाती नंकारः (५५२) मुख्यापिवेत्यादियु विभेषज्ञापनार्थः।

^{‡ (}५८८) ऋष्वीरिति प्राप्तव्यस्य द्वयो वाधकः। पाणिनिः ६।४।८१।

[§] इ.चाप्, दिलं, (५००) सूलस्य इंडिः। (५८५) खे. स्थाने इय। पाणिनिः; राधाध्या

६८३। खे: किति घे:। (खे: ६), किति ७), घं: १।)। इन: खे: घें: स्थात् किति छां। ईयतु:। ≉

ं ६८४। अगे क्यां। (पने: e1, ब्यां का)।

अमेरिनो र्घ: स्थात् निति व्यां। ईयात्। अमेः निं, अन्वियात्। पे

(१५५) अधीक ल सारणे। इ

€ द्यू । इंनवदिका: । (इन्वत्।१।, इक: ६।)।

इन इव इक: कार्य्य स्थात्, रूपच तदत्। §

(१५६) या ल गती।

प्रणियाति । श

एवं (१५७) वा ल गमन-हिंसयी:।

[#] विभूतस्य दन धाती: क्या चन्यत्र कितीऽसभावात् वृत्ती क्यामिति त्याख्यातम्। ईयतुरिति, (६८१) यकारे, चनेन दीर्घः। पाणिनः 'श्राहरु।

^{† (}५६०) घाँऽज्यरे इत्यनेन दीर्घे सित्तेऽपि, भयं नियमार्थः, तेन व्यां किति भगेरिन एव दीर्घः न तु सगेरिति। पाणिनिः ७।४।२४।

t र-क: ककारशिक्षार्थः। अधिग्रहणं अन्यपूर्वस्य केवलस्य च प्रयोगनिरासार्थे।

[§] इनधातीरिव इकधाती: कार्यं स्थान्, रूपच तद्दित्यनेन सर्व्वेवेव स्थादिति स्पष्टं, तेन (८०६) गमीनिङोरित्यवापि यहणं, भतएव इक् धातीरिप भिधिजगीमप-तीति । ससीतयी राघवयीरधीयत्रिति भटी, भातिदेशिकस्थानित्यत्वेन इनतुःख्यता-भावान् (६८१) य चादेशं वाधिता, (५८८) इय भादेशः । "इण्विदिक इति वक्तव्यम्" इति वार्त्तिकम् ।

[¶] प्रवियाति (५४८) गदनदेति पर्ल ।

(१५८) द्रा ल खप्रे पलायने च।

(१५८) खा ल खाती कथने।

अख्यत्। 🕸

(१६०) मा ल च माने।

प्रिमाति। मेयात् : * .

(१६१) विद ल जाने।

६८६। वेत्ते: कीपंठीपंवा।

(वैत्ते: ५१, कीपं ११, ठीपं ११, वा । ११)।

विद: परस्य काः पस्य काः पं स्थादा।

वेद विदतुः विदुः, वेख विद्युः विद, वेद विद्व विद्या । पत्ते सगमं । प

६८७। ङाम् वा ठ्यां ग्यान्त क्रनु।

(खाम्।१।, वा।१।, व्यां ७।, ग्यां ७।, तु।१।, क्र ।१।, श्रनु ।१।)।

वैत्तेष्ठां ङाम् वा स्यात्, ग्यान्तु क्षत्र एवानुप्रयोगः । 🕸

^{*} प्रव्यदिति (६१८) जः, (६१०) पालोपः। प्रविनाति (५४८) गदनदेति पत्नं। भेयादिति (६१२) छे।

[†] स्थानिवदार्दशः इति न्यायात् ठीपस्य कीप-तृज्यत्वात् न दिलं, (६८०) न उत्तम्, नेवावेत्यः इत्यादाविम्। कोवलं कोपरस्मैपदविभक्तीन।नाकारभेदः इति। पाणिनिः १।४।⊏३।

[‡] ग्यानु इत्यनेन गीपरेऽपि छाम् वा स्थात्. तस्यात् क्रञ एवानुश्योगः नतु स्रम्-तुभीरिति । ज्यस् सगुषः । पाणिनिः ३।१।४१ ।

ईदद। तन्यः ग्रुप्रे वे।

(तन्भ्यः ५॥, ग्रप्।१।, वे ०।, चे ०।)।

विदाङ्गरीतु वैत्तु। *

६८१। बजी उदगौरे।

(क्रजः ६१, धन्।।।, च।१।, वर्षी ०।, रे ०।)।

क्षजो आतार उ: स्थात् अपो रे। विदाङ्गुरुतां वित्तां। अविदुः अविदन्। पं

६्८०। घ्यां सौरवादघो:।

(घा ा, सी ा, र ।१।, वा ।१।, द-धी: ६॥)।

द्धो रेफ:स्यादासी घ्यां। अवेः अवेत्, अवित्तं अवित्तः। विदास्वभूवं विवेदः। 🕸

तन्थ्य इति वह्वचनं गणार्थे, तमादिथ्य दल्यर्थः । शुपः शपावितौ जकारिस्यितः, अपपी वाधकीयं। विदाङ्करीत् इति क्र-पर्यागे, क्रञमनादित्वात् श्रप्, शपि परे (५४१) क्रञी गुणः, पुनः तुप परे ग्रप जकारस्य गुणः। पाणिनिः ३।१।९६।

[†] नास्ति णः (गुषौ प्रत्ययः) यक्षात् सीऽणुलिखन्, चणौ इति दे द्रवस्य विशेषणं। अगुविप्रत्ययपूर्व्वर्तिनि रेपरे इत्ययंः। विदाङ्गक्तामिति ग्रपि परे ज्ञ इत्यस्य ग्रणे, विदाङ्गर् इति स्थिते, भनेन अकार उकारः। चिवदुरिति च्या चन्, (६०५) दिव-विदेति उस् वा। पाणिनि: ६।४।११०।

[‡] अप्रेतिति विद-घौ-सिप्, (६०२) सिपी लोपः, त्यक्षोपे त्यलत्तवासिति न्यायाः इनेन दस्य रेफः, (१०२) रस्य विसर्गः। विदान्त्यभूव (६८०) विकल्पेन उद्यास् (५८२) सृप्ययोगः। एवं विदासास, विदासकार । पर्च विवेद । पाणिनिः ८।२।०५।।

(१६२) श्रस ल भुवि।

६८१। लोपो उत्यसो डिंद्रसो रघ्यां।

(लीप: १।, श्रस्ति-श्र-सी: ६॥, क्रित-र-सी: ०॥, श्रद्यां ०।) ।

श्रस्तिरकारस्य ङिति रे, सस्य च से, लोगः स्थात्, नतु घ्यां। स्तः सन्ति, श्रसि, एधि, श्रासीत् श्रास्तां। *

६८२ । भूररे । (मः रा, बरे का) । अस्ते र्भूः स्थादरे । अभृत् । क

६्ट्र। प्रादुर्गीक: स: षा उच्चे।

(प्रादुर्-गि-इक्तः ५।, सः ६।, वः १।, भच्-घे ७।) ।

प्रादुःषन्ति, प्रादुःष्यात् । निषन्ति । क्ष

[•] मघ सच मसी, मसेरसी मास्यसी तयो:। ि हासी रशेति ि इट. ि इट्रय सचती तयो:। स इत्यनकारान्तगृहणात् सि से ख इति नयाणां ग्रहणं। भरे परे (६८२) सूम्ब्रिटिंग मस-स्थित्यसम्भगत्, कीवलं ि त्यहणेन सिदी, रग्रहणं भरे परे "लावस्य स्ताद्य इतास यवः" इत्यादी कटाचि-द्रसभातीर्भू-मादेशनिभेषाये। सः सनि सभग्रत ङिति रे परे म-लीपः। मसि इति से परे स-लीपः। ग्या इि (६००) एषि । स्या दिप (५६१) ईन। पाणिनिः ६। ४११,०। ४। ५०।

[†] भारविषये भासभातुस्थाने सूभातुरादिस्थते, तेन सूभातु-निमित्तं सब्बे कार्यो स्थादिति । पाणिनि: २।४।५२।

[‡] गेरिक् गौक्, प्रादुष गौक्ष तस्रात्। प्रादुर्गन्दात् गेरिक्य परस्र असः घातो: सस्य य: स्थात् अपि येच परे। अपि येच किं, प्रादुःक्ष: इत्यादौ न पलं। पाषिनि; ८।३।८०।

(१६३) सजूस म शही।

६८४। सना उनिङ्ति विवीलस्याौ।

(म्ब: ६।, मक्डिंगि ७।, ब्रि: १।, वा ।१।, तु ।१।, मचि ७।, भणी ७।) ।

श्रकाङिति सृजो ति: स्थात् श्रणाविच तुवा। मार्ष्टि सृष्टः, मार्जीत्त सृजन्ति। *

(१६४) वच ली वाचि। गं

(६५२) वचस्यिष्वपतामिति वीच । भवीचत् । उवाच जचतुः ।

(१६५) रुदिर् ल घ रोदने।

६८५। रद्भो ऽयो इसस्येम्।

(६दभ्य: ५॥, भय: ६।, इस रख ६।, इस् ।१।) ।

क्टादेः परस्य श्रयस्य इसस्य रस्य दम् स्थात्। § रोदिति क्टितः। श्रयः किं, क्दात्।

^{*} क- की इती यस्य स का कित्न, न का कित् चका कित् ति स्वा । स्च इति घरादीय-भुरादीयथी देथी गंइ थं। स्व की भी विश्वित्ते कि की घका किती ति कथ नं निमार्चती-त्यत्र चिनि सिन (८०४) चगुणेऽपि बिद्विशासार्थे। मार्ष्टि चनेन बिद्धः, (१५४) पड्। पाणिनि: शारा १४। वार्तिकञ्च।

[†] एतचात् धाती: चिन्त-चनु-प्रयोगी नासि ।

[‡] भवीचदिति (६१८) छ:। छवाच (६५१) जि:। जचतु: (६५१,६६१) जि:।

[§] बदम्य इति बदादिगणेभ्य इत्थर्थः, गणसु (५६१) स्वे उक्तः। इस् चासी रथेति इसक्तस्य। रिवथये चप्राप्ती विधिग्यं, तेन रीदिव्यतीत्यारी (५५४) इस् स्थादिन। पाणिनः १२१०६।

ई८ई। दिखोरम् वा। (दि-स्रो: ६॥, घम।रो, गारा)।

रूदादेः परयो दिस्योरम् स्यादः। अरोदत् अरोदीत्, अरोदः अरोदीः। *

(१६६) जिष्पी घलु सप्रे।

विस्तिपिति, (६२५) सवलाव मः। विसुत्वाप, दुःषुषुपतुः, (६२५) निर्व्वलात् मः। 🅆

(१६७) अन घ लु प्राणने।

प्राणिति प्रानिति । क्ष

(१६८) खस घ लु प्राणने।

खसिति। अष्यसीत् (५०६) चणादिलात्र विः।

(१६८) जच च लु घ भच-हासयी:।

जिति।

६८७। अन्तोऽट्हे:। (पतः ६।, पतः ११।, वे: ४।)।

[#] दिस्रोरिति च्या एव, व्यान्तु सि-व्यवधानादसम्भवः । असी स इत् आदौ । अरोदिदिति अस्, पर्वे (५६१) ईस् अरोदीत्। एवं च्याः सिपि । व्यान्तु, (५६५) वा क्षेत्रसदन अरोदीदिति । पाणिनिः शहाटट ।

[†] विसुष्याप इत्याव (५०२) दशस्यादेरिति नियमात्, भव खेर्न घलं, खिनिमित्तकं स्लब्स पलं (१११) किलादित्यनेन स्यादेव । दुःपुषुपतुहित्यकः बलवस्वादादौ (६६१) जो क्षते, पले च क्षते, पसात हिल्सिति ।

[‡] प्राणितीति (५४८) भननिंसेति वा चलं।

हे: परस्थान्तीऽत्स्यात्। जचित । अ (५६३) अनुस्सिद्देरिति । अजचुः।

(१७०) जाग्ट च सु जागरणे।

ईश्। जाग्री ऽणव्वीण्डिति कसुकाने तु वा।

(कायः ६।, च-चप्-वि-इःण्-डिति २।, ज्ञसु-काने २।, तु।१।, वा।१।)।

जागर्तें पुःस्थात्, नतुणपिवी इणि ङितिच, कसीकाने तुवा। जजागरतः। 🕸

अन् इति इमलिन्देंग्रात् चिल चल् चला मिल्यादीनां ग्रहणं। देरिति
 (१०४) स्व कथितात्। जच-चिल जजति, एवं ददति। चिकीर्षनीत्यादी, (५४६) ग्रपी लीपे स्थानिवचात्र चलोऽत्। पाणिनिः ७।१।४।

[†] भनागदरिति जाग्रःच्या भन्, (५६३) भन उम्, भनेन गुण:। व्यानु जुहुतु:। भजाग:—च्या: सिप्, (५४२) गुण:, (६०२) सिपी लीप:, र विसर्ग:। भनागरीत् (५०४) न हरि:। नागरामास (६००) वा भाम्। पाणिनि: ७।३।८३।

[‡] जाग इति स्वलात् न दः (१४१)। णप् च विष इण्च िक विति तत्, पथात् नज्योगे तस्मिन्। णप्मस्तिष् गुणनिविधात् भन्यत्र सर्व्वते गुणः स्यादित्यर्थः। जो जागरयति, प्रांज नागरः, यक्ति कागर्यते, यपि प्रजागर्यः, टी-यात् कागर्यादित्यादि। णवादी तु जनागर, नाग्यविः (१९६१), भनागरि, नाग्यतः नाग्यतीत्यादि। कसुकाने (घ) जनागर्वान् जनाग्यवान्, (हे) जनागराणः जनाग्याणः। पाणिनिः ०।६।८५।

(१७१) दरिद्रा च लु दुर्गत्यां।

७००। दरिद्रो ङि ईस्व ऽणौ हाग्योस्त वा।

(दिरद्र: ६), डि: १), इस्रे थ, अणो थ, हाक्योः ६॥, तु ।१।, वा ।१।)।
दिद्गिते र्डि: स्थात् अणी हमे रे परे, हाग्स्योसु वा ।
दिद्गित: । *

७०१ | ऋाद्वारा लोप्यो ऽणो हसे त्वादः ।
(या-को: ६॥, चा १२, बोप्यः ११, चर्णो ०, क्षे ०, त १२, ई १२, घरः ६।)।
या द्रत्यस्य देश्व श्रा लोप्यः स्थात्, श्रंणी हसे तु दावर्ज-मी
स्थात्। दरिद्रति। पं

७०२। दरिद्र त्रालोपोऽसनकानेऽरे त्रान्तवा।

(दिरद्र: ६१, घालीप: ११, घ सन् घक घने अ, घरे अ, घा अ, वं ११,वा ११)। द्दिद्र आलोप: स्थादरे, नतु सनि अने अने च, व्यान्तु वा । अद्दिद्रीत् अद्दिद्रासीत् । द्दिद्रामास द्दरिद्र । द्रिद्रात् ।

हाक्च भीय तयो: । उत्कर्त (१७) चल्यस्य चाकारस्य स्थाने । पाणिति:
 ६।४।११४,११४,११६ ।

⁺ ग्राय दिय तौ तयी:। चन चणी रे इति नक्तळां, तेन ख्याघाती ग्रीड चाख्या-.यते इत्यादी न प्रसङः। चणी इसंतु कीणीते जहीते इत्यादि। दा-धा-धालीसु दसे, धसे। दरिद्रति (६६७) चन् चत्, चनेन चालोप:। पाणिनि: ६।॥११२,११३।

[‡] सन् च अक्ष अनय तत्, न तत् असनकार्श्वसन्। यया दिदरिद्रास्ति, दरिद्रायकः, दरिद्राणं। णिप दरिद्रामास (६००) वा आस्, पर्च अन्तरङ्गलादादौ आ-लीपे ददरिद्र, पाणिन्यादयमु जौ आदेशं यलवनं मला ददरिद्रौ इत्युदाहरिन । "यमु णिल ददरिद्रीत तिन्नर्भूलभेव" इति सिद्धान्तकौसुदौ। वार्त्तिकदयम्।

(१७२) चकास च लु दीप्ती।

(६०१) हुभसो हेर्घि:। चकाघि। (६४) भाष्भसोरिति सस्य इ:। चकादि। #

७०३ । घ्यां दौत सः। (व्यां अ, दौ अ, तारा, सः ६।)। घ्यां दी परे सस्य तस्यात्। श्रवकात्। प

७०४ | सौवा | (धीण, बाश)। भवकात् भवकाः। ध

(१७३) गास च लु गासने।

७०५ । ग्रासिङ इस्ड ऽणौ कौ त्वाग्रासः । (भाष-उड़ारा, इत्।रा, इस्ड ०ा, वणो ०ा, को ०ा, तारा, वागास हा, वारा)। यास्ते रुडं इत्स्यात् वर्णो इसे डे च, को तु आगासय। ग्रिष्ट:। ग्राधि। व्रशिषत्। §

[🌣] चकाधि (५५६) सलीप:, पचे चकाहि।

[†] विभाषादयमध्यवर्त्तिताद्वित्यं। अपचकात् (६०२) दिंपी लीप:। अपनेन सस्य त् । पाणिनि: ८।२।०३। तन्मते सस्य दः।

[‡] सस्य तस्यादाच्यांसी परे। भाचकान् भाषकाः (६७२) सिपी लीपः । पाणिनिः ८। २। ১४ ।

[§] प्रास उर्ज् प्रामुङ् तत्। इस् च उत्य तिसत्। चयी इति स्तरां इसी विभिन्नं। प्राम इति प्रास च लु प्राम ने इत्यस्येव। कौ तु भाषासय इति भाषू र्वकः श्राम उत्त भाषि इत्यस्य कियि एव, भयौ इसे तु भाषाके इत्यादौ भाक्षिपदीयस्य इत् न स्थात्। कियि यथा, मित्रं भाक्षीति मित्रभीः, भाषाके इति भाशौः (१०३३)। श्रिष्ट इति भाकारस्य इः, (१११) भासवमेति वलं। श्राधि (६९०)। स्थादि, (५६५) मित्रवित्। पाणिनिः ६।॥॥३॥। तार्तिकानि च।

(१७४) चच ङ ल वरे।

चष्टे। 🗱

७०६। चचः क्साञ्खाञ् ऽरेऽत्यागाससने।

(चच: ६।, क्साञ्च्याञ् ।१।, भरे ७।, भलागीसमने ७।)।

चचः क्साञ् ख्याञ् स्थादरे, नतु वर्जने उसि ग्रसि ग्रने च । श्रक्सासीत् ग्रक्सास्त, ग्रस्थत् ग्रस्थत। त्यागे तु समचर्चिष्ट । 🕆

७०७। व्यां वा । (उगं का, वा ।१।)।

चक्सी चक्से, चख्यी चख्ये. चचते । 🕸 ·

(१०५) ईड़ ङ ल सुती।

ईहे। §

७०८। सध्वो रखेम् जनीड़ीगः।

(स-ध्व: ६।, रख ६।, इम् ।१।, जन-ईड़-ईंग्न: ५।)।

[🛊] वदः कथनं। चष्टे इति चच्ते (२१३) का-लीपः।

[†] क्साञ् च ख्याञ् च तत्। न रोऽरसितिन्। खागय उस्च चस्व चन्य तत्, नञ्योगे तिखन्। क्साञ् ख्याञं रत्युभयो जीनुवस्यादुभयपदं, वर्षे इति विषय-सप्तभी, तेन विभन्नात्पत्ते: पूर्वं एतौ स्यातामिति। वर्जनेऽये उसादौ प्रत्यये च न स्यात्। क्साञ् द्रति तालव्यभध्य दति पाणिनि-कमदौष्वरौ। सतानरानुरीधात् शेपदंवेन दन्यमध्यः कथितः। र्न्ययदादेशविधानसामध्यीत् षत्ं न स्यादिति। मक्सासौदिति (५८८) दम्सनौ। चक्सास्त (५८०) एकाजादन्तवात्रेम्। प्रस्थत् प्रस्थतं दति (६१८) डः, (६१०) षालोपः। समचिष्ट स्वन्नवानित्यर्थः। उसादौ तु वद्यः, वच्चाः, विचचषः। पाणिनिः राष्ठाप्रधा वार्त्तिकानि च।

[‡] चत्रः क्षाञ्ख्याञ्च स्थादा ढग्रां। विषयसप्तभीयं, तेन पादावादेशे ञातु-वसादुभयपदं। पाणिनि: २।४।५५।

[§] ई.ड ते, (४०) तस्य ट·, (६४) इस्र ट:।

एभ्यः परस्य सस्य ध्वस्य च रस्य इम् स्थात्। ई ड़िषे ई ड़िध्वे। 🕸

(१७६) ग्रास ङ ल उपवेशन ।

ग्रास्ते। (५८२) र्व्विजादीत्याम् ग्रासाञ्चक्रे।

(१७७) वस ङ ल श्राच्छादने।

वसितः वस्ता । गं

(१७८) निसि ङ न चुखने।

प्रणिंस्ते प्रनिंस्ते । 🏗

(१७८) सू ङ ल प्रसवे।

सूते।

७८ । सूते न गुर्ग्या । (मृते: ६१, न ११, गः ११, ग्यां ०)।
सुवै। §ं (५०३) वेमूदितीम् वा। असविष्ट असीष्ट।

(१८०) भी ङ ल भयने।

७१०। शीको रे गुः। (बीकः ६।, रे ७।, गः १।)।

^{*} जन इति १८८ मं व्यक्तस्य जुडी त्यादिरेव, न तु २३४ मं व्यक्तस्य देवादिकस्य, तस्य ग्रयना व्यवधानात्। भागाशी विधिष्यं न तुनियमः, तेन जनिता ईडि़ता इत्यादी (५५४) वसी ऽरस्थेतीम् स्यादेव। ईडि़पी ईडि़पी इति क्याः से खे भ्रतेन इम्। एवं ईग्रड ऐश्वर्यों, ईष्टी इत्यादि। पाणिनिः ७२।७०,७८। तन्मते व्याः स्वमि ऐडि़ष्यम् ऐड्ष्म इत्युभयम्। इति मिद्धानकौमुदी।

[†] वसितावसा इति (६०६) वा इम्।

[‡] प्रचिक्ते प्रनिक्ते द्रति (५,४६) चन निक्ते निन्देति वा चलं।

[§] स्ङ ख धाती र्णुर्नस्थात् ग्यां। सुवै स्-ऐष् भानेन भागुणाले (খুদদ) छव्। पाणिनि: ৩।३।দদ।

श्रीते ग्रायाते । %

७११। मान्तो रम् विदस्त वा।

(मान्त: ६ा, रम्।१।, विद: ५।, तु।१।, वा।१।)।

भीडः परस्य मस्यान्तो रम्स्यात्, वेत्तेसुवा। भेरते। अभयिष्टापे

(१८१) ग्रघी ङ्ल ग्रध्ययने । 🕸

ऋधीते ।

७१२। गौङ ष्टीय्यो वर्ग।

(गी ।१।, इ.स. ६।, टी-ध्यी: ७॥, वा ।१।)।

इङोगीस्थात् वाटी-प्योः परयोः। घेलान गुः। अध्यगीष्ट अध्येष्ट । §

७१३। ठ्यां गा अप्रङ्सनोस्तु वा।

(ब्यां ७।, गा ११।, व्याङ्-सनी: ७॥, तु ११।, वा ११।) ।

श्रीखी ग्रः स्थात् रे पेरे, गुणनिमित्ते अगुणनिमित्ते चित्यर्थः । पाणिनिः ७।४।२१ ।

[†] मस्रान्त् सस्त । विद इति श्री क्र-साइचर्यात् भदादिपितस्थैव ग्रहणं। श्रेरते इति श्री-भन्ते, भनेन भन्तस्थाने रम्, मिल्लादादौ, एकदेशविक्रतमनन्यवत् भवतौति न्यायात् पूर्वेण गुणः। विद्रतु संविद्रते संविदते, (८०५) भान्नानेपदं। भश्रिषट श्री-टी-तन् (५८०) सुवस्य प्रतिप्रस्वात् (५५४) इम्। पाणिनिः ०।१।६,०।

[‡] गणपाठे चिषपूर्व्यकस्य इड-धातो निर्देशात् चिषपूर्व्यकस्यैव प्रयोगः न तु केवलस्य। चाते घधौयाते (५८८) दय।

[§] घंतात्र ए:, गी इति दीर्घनिर्देशात्र गुण इत्यर्थः । अध्यगीष्ट, अधि-इ.टी-तन्, गी-चादेशः, एकाजिवर्षांकत्वात् न इत्। गी-चादेशस्य विकल्पपचे (५०१) पुनरमागमे अध्येष्ट । पाणिनिः २।४।५० ।

इङोगास्यात् क्यां, जेः परे प्रक्ति सनि च वा। प्रधिजगी। अध्यगीयत प्रधेयत। *

(१८२) दीधी र्ङ च सु देवने दीप्ती।

७१४। दीघीवेच्यो न गु:। (दीधी विचाः ६।,न।११,गः १।)। दीध्यै । १

७१५ | लोपो उन्तो य्यो: । (बीपः श,पनः १,यो: अ)। दीधी-वेब्यो-रन्तो लोप्यः स्थात् यकारेवर्णयोः । अदीधिष्ट । क्ष

(१८३) एवं वेवी र्ङ च लु ई-ल-वत्।

(१८४) दिषी ज स वैरे।

(६৩५) दिषित्रातो ऽनुस्या। ऋदिष्ठः ऋदिषन्। ऋदिष्ट। ऋदिचत्। §

^{*} फङ्च सन् च चङ् सनी, जें: घङ्-सनी जाङ्-सनी तथीः। घिष्ठनी अधि इ-स्ता ए, गा-मादेशे दिलादी, (६१०) घालांपः। घी-स्र्यंत, (०१२) गी-मादेशे अध्य-गीव्यत, विकल्पपचे मध्येव्यत । जाङ्-सनीलु षध्यजीगपन् षध्यापिपन् घिषितिगाप-यिषति अध्यापिपयिषति । पाचिनि: २।४।४९,५१।

[†] दीधी च वेदी च समाचारे तस्य, दिवचनान्तते परम् वे चतुवर्त्तमानशी र्थया-सङ्कालप्रसङ्कः स्वात्। एतथी खुं नं स्थात् सर्ववः। गी-ऐप् (५८८) दीध्ये, एवं दीध्यनीयमित्यादि। पाणिनिः १।१।६।

[‡] यच इस तौ यो तथी: यो:। व्या-त्तनि सेरिम्, पनेन र्द्रलोप पदीधिष्ट। पाणिनि: ৩।৪।५३।

[§] भदिपुरिति च्या भन्, उस्विकल्पपचे अदिषन्। भदिष्ट घ्यान्ता। भदिचदिति टग्रादि, (६०५) सक्, (६०२,१११)।

(१८५) दुही अ ल दोहने।

श्रध्चत्, श्रध्चत श्रद्धः। *

(१८६) एवं दिही ज ल लेपने।

प्रशिदेग्धि। १ अधिचत्।

(१८७) जर्षु ज ल श्राच्छा हने।

७१६। वार्णी: पिइसे णुः।

(बा ११), कर्षे: ६।, पित-इस् रे ७।, गः १।)।

जणीं णुः स्थादा पिति इसे रे। इ जणीति, जणीति। (६८०) रिषदस्युत इति वृि:।

७१७। घ्यां। (घां ।)।

जणी णु: स्यात् पिति हमे घां। श्रीणीत्। §

७१८। गुव्कि छ्यां। (ग-उव्कि: १।, यां ०।)

भ भध्वत् दुइ-टी दि, (६०५) सक्, (१०५) इस्य टः, (१७०) दस्य घः, (६०२,
 १११) दस्य कः, पलचः। टा।सन् भध्वतं भद्रम्प (६५०) गृहदृहंति न सिः सक् वा।

⁺ प्रणिदेनिध (५४८) गदायन्त-नेर्णलं।

[‡] पिचासी इस्वासी रचेति तिबान्। (६८०) रिविड्सृत इति प्राप्तक्षेतिभेषीऽयं, निकल्पचे हर्डित। पाणिनि: ७।३।८०।

[§] निवाधे प्रथक् विधानं। पाणिनि, शश्रद्धः।

जणीं णुं: उव बि: एते स्यु-ध्यां। श्रीणवीत् श्रीणुंवीत् श्रीणीवीत्। *

७१८। नाजन्तादेरादि दिः।

(न ११।, चजनादे: ६।, चादि: १।, वि: १।)।

अन्तादिस्थिताची घी-रादि हिं र्न स्थात्। †

७२०। खादौ नवद्रोऽये।

(सादी ७), न-व-द र: १॥, प्रये ७।)।

स्रादी स्थितान वदरादिन स्थुर्नतुये। जर्णुनाव। 🕸

७२१। ङिदिम वार्णाः।

(डिल् ।१।, प्रम् ।१।, वा ।१।, ऊर्थोः प्रा) ।

जर्गी: पर इम् ङित् स्यादा। जर्गुविता जर्पविता। §

अ गुश्च खब्ख विद्य. समाद्वार पुरुवं सीवात्। गुर्धे त्रीर्णवीत्. छिव त्रीर्णवीत्, छिव त्रीर्णवीत्, छिव त्रीर्णवीत्। पाणिनः १।२।३,०।२।६।

[†] भन्तस्र भादिस्रतो भनादो, भनो भनादो यस्य सृतस्य। यस्य भातोरादौ अने च स्वरवर्णः, तस्य भादिवर्णे हिला दिलं स्थादिल्ययः। पाणिनिः ६।१।२।

[्]रै स्थः संयोगलस्थादिलिधिन्। न चवचद चरचते। चये इति परस्थित-यकारेण संयुक्ताः पूर्व्वतिनी न वद राः दिः स्युर्वेलयेः। अवापि चलन्तादेधीं-रित्यन्वर्णते. अन्यया दुद्राव ददौ इत्यादौ दकारस्य दित्वनिषेधापितः। जर्णुनाव इति कर्णुधातोः, स्वद्येन ककारं रकारस्व दिता, तु इत्यस्य दित्वं। पाणिनिः ६।१।३। वार्तिकदथ्या।

[§] ऊर्ण्**विता इति अनेन इसी क्षित्ते (५**५५) उत्। पचि **उप**ः। पाणिनिः १।२।३।

(१८८) षु च स सुती।

७२२। पिद्धस्यम् ब्रवे। यङ्नुग्रतुस्तास्तु वा।

(पित्-इस-रस्य ६), ईम् ।१।, ब्रुवः ४।, यङ्खुक्-इ-तु-स्रोः ४।, तु ।१।, वा ।१।)।

हुव: परस्य पितो इसी रस्य ईम् स्थात् यङ्नुगादेनु वा। स्तवीति स्तौति, श्रभिष्टौति। न्यष्टावीत् न्यस्तावीत्। श्रस्तोष्ट। तुष्टुव। स्तविता स्तोता। *

(१८८) टु चु न चुते।

चविता। 🕆

(१८०) त ल धनी।

रवीति रौति। रविता रोता। पै

(१८१) तु ल हत्ति-हिंसा-पूर्तिषु ।

तबीति तीति। तविता तीता। १

^{*} पिश्वासी इस्त्वासी रियेति पिडस्तस्य। यङ् लुक् यस्यात् स यङ् लुक्, सक रस तुस सुयेति तस्यात्। स्वीति सु-तिष्, अप्, तस्य सुक्, भनेन ईम्, उकारस्य गुणः, भा-स्थाने भव्। पर्व (६८०) इति: सीति। भिभिष्टीत (५०२) वर्त्वः। न्यष्टावीदिति (६२३) इ.म्, भनन्ततात् (५०४) इति:, (६२३) निविपरीति वा वर्त्वः। भनीष्ट इति भासानेपदं (६२३) न इम्, भादी गुणे, इस्तपरताभावात् न (५६२) विश्वीपः। तुष्टुव इति द्याव, (५८४) नेमसुमिति न इम्। स्विता स्वीता (६०६) वा इम्। पाणिनिः ७।३।८३,८४,८४। एतन्त्रते पुनः सार्वभातुक्रयस्थात् भपिशस्यपि वा भवित। तेन रवीतः इताः इत्यादि।

[†] चितिता इति (५८०) प्रतिप्रस्तात् (५५८) इ.म् । रिवता रोता (५०१) रुदुसुनी-स्कट्या इति बाइम् । तिवता तीता इति (६०६) वाइम् ।

(१८२) ब्रू च ल उत्ती।

ब्रवीति।

७२३। पञ्च तिए पञ्च गाववा हमा

(पचारण, तिष् ।रण, पचारण, चप्।रण, वा।रा, घाषः २१, चारा)। ब्रुवः परेषां पञ्चानां तिबादीनां पञ्च खबादयो वा स्युः, ब्रुबः याष्टः स्थात्। श्राह श्राहतुः श्राहुः। ॥

७२४। हस्त थि। (इ: ६।, न।१।, वि ७)।

श्राही इस्य तः स्थात् थे परे। श्रात्र श्राह्यः। पत्ते सुगमं। 🌣

७२५ । वचें ऽरे। (वयः ११, परे ७।)।

ब्रुवो वत्तः स्थादरे । अवीत्तत् । उवात्त, जते । 🕸

^{*} तिप् षप् च एतयो बँह्वचनानालं गणार्थं, तिवादवः पञ् ष्वादयः पञ् दत्यर्थः । षाडादंशी स्ववादायदेशप्चे एव । तिवादि-स्थाने सवादिकरणात् न हिलं, न दम, नापि षतीतकालप्रतीतिः । (किविभिन्न "किमिक्कसीति स्कुटमाह वासवः" इत्यादौ वामनमतेन बाडादिकां भूते प्रयुक्ताते ।) तिपी षप्, तसीऽतुम्, पनीः उम्, सिपस्यप्, धसीऽयुस् इति क्रमः । षाड इति ब्-तिप्, षप् षाडय चादेशौ, एवं बाइतुरिखादि । पाणिनः १।४।८४ ।

[†] श्राष्ट्र इत्यस्य विभक्तिव्यत्ययेन श्रनुत्रक्तिः । श्रात्यः 'इति निषः स्थाने थप्, श्राह श्रादेशः, श्रनेन इस्यतः । (७२२) पिहसस्येमित्यत्र ब्रुवः स्वरूपयङ्गात् श्रतः न ईम् । पाणिनिः १०१३५ ।

[‡] विभित्तिव्यत्यभेन ब्रायस्थानुइति: । यर इति विषयमप्तमी, तेन वाणं इत्यत्र ब्र्धातोः वच्-षादेशं सम्याव्य (८०१) इसम्तवात् व्यण् । एवं व्यां (६१८) वक्त्यस्याति उपस्यो भविष्यतीति सम्याव्य उपस्यात् पूर्वमेन वचादेशः । एवं सर्व्यत्र अरमस्थावनायामेन वचादेशः । ततः सर्व्यत्र ब्र्जो जानुबन्धात् उभयपदं, तेन प्रवीचत् प्रवोचत इत्यादि, (६१८) उपस्यो, (६५२) वोचादेशः । उवाच इति यप्, (६५१) खें:, (६६१) मुनस्थापि जिः । पाणिनः राधाप्रः ।

ह्वादि:।

(१८३) इ लि होमे।

७२६। ह्वादी रे दि:। (हादि: ११, रे ७), हि: ११)। हादि हिं: स्थात्रे परे। जुहोति। *

७२७ | ह्वी वच्चागौ | (हः ही, व् १२।, वि श, व्रवी श) । ह्वी क्वारस्य व् स्थात् अणाविच रे । जुह्वति । जुहुधि । पे

७२८। पशाम् वा भी-ह्नी-स्ट-हो छतां।

(पश्राम् ।१।, वा ।१।, भी-क्री मृ-ही: ५।, व्यां ०।) ।

एभ्यः प्रयाम् वा स्थात् त्यां। जुह्नवामास जुहाव। 🕸

[•] इ: (धातः) भादिर्थंस्य स हादिः। गणपाठे लि-इतां धातृनां श्रदादिलं इ।दिलञ्च। जुद्दोति इ-तिप्, (५४१) भए, (६००) तस्य जुक्, दिलं, (५५९) से ईस्स जः, (५४२) स्लस्य गुणः। (६८०) रापिडस्यृत इत्यत्र दिलवर्जनात् न बाँदेः। पाणिनिः २।४।०५,६।१।१०।

[†] कोब इक्षः तस्य इतः। (५८८) मुख्यारिति उपवृप्तप्तिकोधकोऽयं। जुह्नति, ऋन्ति (६८०) भन्तोऽत्, भनेन व्। भणौ किं, जुह्नवानि। रेकिं, जुह्नवतः। जुङ्कि ६०१) हे धिः। पाणिनिः ६।४।८०।

[!] पमामः पिचान् गुणः, शिचान् रसंज्ञायां (७२६) हिलं, चाम-स्थिति.। गुडयामास इति इ-षप्, पभास्, हिलादि, (५८३) चस्प्रयोगः। एवं सूक्त प्रयोगेऽपि। शामो विकल्पपचे नुकाव। पाणिनिः ३।१।३८।

(१८४) जि भी लि भीत्यां।

विभेति । (७००) दरिद्रो ङिरिति, विभितः विभीतः, विश्वति। विभयामास विभाय । *

(१८५) इती लि लज्जायां।

जिन्नयामास जिन्नाय । अ

(१८६) पृ लिं पालने।

७२८। पृभादे कि:,खेरे।

(पृत्तर-भृषादे: ६।, जिः १।, र्वः ६।, रे ७।)।

पृ-ऋ-भृ-माङ-हाङां खे डिं: स्यात् रे। पिपत्ति । ф

. ७३०। पुर्देश वा। (पु: ६।, र्ष: १।, वा।१।)।

पिपूर्तः पिप्रतः। पपरतः पप्रतः, (५०८) सुमत्तान एः। \$

^{*} बिभेति भी तिप् दिलादिकां। तम् विभितः, ङी क्रते ङिच्लादन्यस्य ईकारस्य स्थाने रः, पर्वे विभीतः। भन्ति विभ्यति (६८०) भन्त भत्, (५८८) ईस्थाने य। णप् विभयानास, पशाम् भन्प्रयागम्, पर्वे विभाय। एवं क्री-णप् जिक्रयानास जिक्षय।

[†] पृ लि पूर्नो इति पाठमु कविकाल्यहुमविशेषिलात् न ग्रहीतः । एव ऋष भादिय सत्त्रस्य । भादिमु २०५-२०० संख्यक स्याप्यति द्वादिगणसमाप्तिपर्यनः इत्यतः पाइ स्थान हाङामिति । यथा—पिपर्त्तं दर्यात्तं विभित्तं सिमीते जिहीते इति । रेकिं, पपार वभार द्वादि । पिपर्तीति दिले खं: स्थाने जिः, उ इत् खेरन्यस्य स्थाने इ: । पाणिनः ७।४।०६,००।

(१८७) भी हा-क लि त्यागे।

जहाति, जहितः जहीतः, जहित । *

७३१। हाकीऽन्तलोपः खां।

(हाक: ६।, भन्नखोप: १।, ख्वां ७।)।

जह्यात्। 🕆

७३२ । हो डांबा। (धी था, खा । १।, वा । १।)।

ष्टाको ङा स्थात् वा हो। जहाहि जहिहि जहीहि। हेथात्। ‡

(१८८) ऋ र्लि गलां।

द्रयर्त्ति । §

(१८८) जन म लि ङ जनी।

जित्रवे, जित्रकी। ग

^{*} नहित: इा-तम् (७००) दरिद्रोङितित वा ङिः, पचे (७०१) त्राह्योरिति ई । चिन नइति, त्राह्योरिति चा-लोपः, (६८७) चन चत ।

[†] डाक-धातोरालीप: स्थात स्थां। डाको इ स्थामिति कते सिञ्जाविष, भादी डिलंपसादनलीप इति भाषीय भनलीप: इति कथितं, तेन लक्षादिति भादी डिलंपसाद मुलस्य भालीप:, भन्यथा (५३०) प्रागच्कार्थादिवि दिस्ति विश्वनेन इमे परेपसात् दिलंखिदनलव्याघात: स्थात्। एवं जड़ित इत्यादी भादाविव दिलं। पाणिनि: ६१४।११८ ।

[‡] जहादि इत्यादि भादौ दि: पश्चात् ङा, ङि:, ईश्व । ब्या-यात् हेयात् (६१२) ङे। पाणिनि: ६।४।११७ ।

[§] इयर्त्ति, (৩२८) पृक्षादेरिति खे ङिः, (॥८५) इयः, मूलघाती र्गृषः। एवं इयृतः इयृति। च्यादिप्तां चन्, ऐयः ऐयृतां ऐयकः इत्यादि।

[¶] निश्चिषे जन क्या: सें, (৩০৯) इ.स्. (२३०) उङ्लीपः, (४६) नस्य স। ध्वे শিश्चिषे।

(२००) निजिरी ज लि पीषणे श्रीधने च।

७३३ | निजां खेरे गु: | (निजां सा. की: सा, रे श, ग्रः रा) | निज-विज-विषां देखे भुं: स्यात् रे। नेनेकि नेनिकः । *

७३८। न द्युङोऽचि। (नारा, द्राङ: ६ा, पवि ०।)। देरुङो ए न स्थादचि परे। नेनिजानि। १

एवं (२०१) विजिरी ञ लि विवेकी।

(२०२) विषि र्लि जी व्याप्ती ।

श्रविषत् श्रविचत् । 🕸

(२०३) डु दा ज लि दाने।

प्रणिददाति । चिद्र द्रत्युक्ते-रालीपः । दत्ते । §

निक्तामिति वहलंगणार्थं, गणाय गणपाठे ह्वासुप्रधपित्समापकपर्यंतः: इत्यत-णाष्ट्र निक-विज्ञामिति। निज-तिप् नेनेक्ति (२११) कुङ्। एवं विज्ञ वेर्वाक्त, विष वेविष्ट इत्यादि। णव विज्ञानीरिक स्वेर्ण्टिति वक्तव्यं। पाणिनिः ०।४।०५।

[†] इंश्इट्ड्राइ्तस्य। भात्र अघि इति इ विषये एव । निज आ निष् दिलादिकं, भानेन सूलस्य गुणनिषेधे नेनिजानि, एवं वेविजानि । यङ्क्ति लेलिङीति सीस्चीति इत्यादि । चङ: किं, जुइवानि । देकिं, निनेज । अघि किं, नेनेकि । पाणिनिः ९।३।८०।

[‡] विष-टौदि, (५६५) दृश्लि।त् वा ङः। पत्ते (६०५) सक्, भविषत् भविचन्।

[§] प्र-नि-दा-तिप्, (५४९) गदाबन्त-ने र्णलं। ते दर्भ (००१) चा-लीपः दा-वर्जनात् न र्द्र,।

७३५ । द्यो दी-धा दें-धे हो।

(द्यी: ६॥, दा-घी: ६॥, दे-घे ।१॥, भी ०।)।

दे दीनो देर्घानो दे घे च स्यात् हो। देहि। #

७३६। स्थादो कि ष्टीमे न गु:।

(स्थादी: ६॥, जि: १।, टीमे ०।, न ।२।, मः: २।)।

स्था-दो र्डि: स्थात् टीमे,तस्य च न शु:। श्रदित श्रदिवातां । १

(२०४) डुधा ज लि धार्णे।

प्रणिद्धाति ।

७३७। घो द घो उन्तलोपे तिथ।

(घ: ६।, द।१।, घ: १।, घन्तलीपे ०।, त-यि ०।)।

धाजी दस्य धः स्थात् तथयोः परयोः, श्रन्तकोपे सिति। धत्ते । धेडि । श्रधित । क्ष

١,

^{*} दास धाय तौ तथी: दाधी:। टि.च धेन इति लुप्तप्रथमा-दिवचनं क्रमार्थ। चच खुदाञ् लि, जुधाञ् लि इति दयोरिव ग्रहणं, चन्येशं टामंज्ञकानां की परे दिलासम्प्रवात्। दा-दि दिल, दिक्तस्थैव दे-चादेग्र: देहि, एवं घेहि। पाणिनिः दाक्षारश्ट।

[†] स्थाय दाय ती तयी:। उट इत् चन्यस्य स्थाने। चच दा इति दामंजकः। दा-टीतन् चदित (५६२) इस्तात् असि सि-खोप.। चातां चदिपातां अतस्परला-भावान् सिक्षोपाभाव:। पाचिनि: १।२।१०।

[‡] धाजी दकारसभावना खेरेन । चन्तालि (७०१) चालि पे सित । घने पति धाती दिखं (५५६) संबंध्य द:, (७०१) मूलस्य चालिपः, चनेन खे दंख्य घ:। एवं धतः धत्य प्रत्यादि । धत्यं घंद्वे प्रत्यादे तु (१००) भाभानस्यति दस्य घ:। चन्न भूषी तिष्य दित क्राते सिहावि चन्तलीपे प्रति क्रयनं, यङ्गृतिः क क्रवली: दाधीतः साधीतः प्रति क्रयनं, यङ्गृतिः क क्रवली: दाधीतः साधीतः प्रति क्रयनं (६१२) डी प्रादिशे दस्य धकारापतिनारणार्थं । पाणिनिः प्राराहिष

(२०५) टुडु स ज नि सति-पुद्यी:।

बिसतः, बिभ्रति। बिभरामास बभार। #

(२०६) मां ङ लि ग्रव्हे।

प्रणिमिमीत मिमात मिमते।

एवं (२०७) भ्रो हा-ङ लि गती। अ

इति घटादि-पादः।

२य पादः-दिवादिः।

(२०८) दिव्यु क्रीड़ायां

७३८ | दिव-स-तुद-त्थ-क्रादे र्यन न्वन ग्नाः श्राहे पेन न्वन ग्नाः श्राहे पेन न्वन ग्नाः श्राहे प्राहे क्राहे था, यन नाः श्राहे प्राहे क्राहे था, वे च्राहे विद्याति। #

विश्वति स-ष्मि (६८९) षत्र षत्। षप् विभागमाम, (७२८) वा प्रशाम,
 (७१८) खेडिं:। मार्ङ्-ते निमौते खेडिं:, (७०१) ई:, षाते क्रमें (७०१) षालीपः
 निमाते निमते इति। पर्वं इा-ङ-- जिहीते जिहाते जिहते।

^{*} दिवय सुत्र तुद्य कथय कौयेति, ते भादयो यस्य तस्यात्। भादि श्रन्दस्य प्रश्लेकेन सम्बन्धः। यन् चतुर्यभय नण्चनाय ते। श्र इत् येषां ते श्रित् इति वहुवचनानं। तेच श्रितः इत्यनेन दिवादेः श्रव्, स्वादेः श्रुः, तुदादेः श्रः, कथादेः भ्रण्,कप्रादेः श्रा इति। श्रित्करणात् (५३०) रसंभायां, भपिद्रलात् (५२२)

(२०८) षिच्यु तन्तुसन्तती ।

निषीयति। न्यषेवीत् न्यसेवीत्।

(२१०) तृती य नर्तने।

७३८। नृत् कत् चृत् कृत् हृदे ऽरसे ऽसे रिम वा। (क्त-हदः ४।, भर्मः ६।, भमेः ६।, ४न ।१।, वा।१।)।

एभ्यः परस्यारस्य सिवर्जस्य ,सस्य इम् स्यादा। निर्मिष्यति नर्तुस्यति । सीतु अनर्त्तीत्। पं

(२११) त्रसी य भये।

(५८8) क्रमक्रमिति ध्यन् वा। नस्यति नस्ति। तनास निसत्: तनसत्:। क्ष

िक्सि, प्रक्षनादी परे (५४२) न गुणः । एते भपी नाधकाः । यण् इति चकारात्त-वसात् (१०) कथादेरत्याचः परो अनद्विष भणं नाधते । भिष्य कथादेशिति षष्ठा-नत्तेन भयों नोध्यः, विरुक्षभंसमयाये भूयमां स्यात् सधर्माकतमिति न्यायेन च पक्ष-स्थनत्त्वेन प्रयुक्तः । दीन्यित दिव-तिषु, म्यन्, (२२८) दीर्धः । पाणिनिः ३।१।६१, ७१,७०,०८,८१।

- निषीव्यिति (५०२) वर्लं । न्यवेवीत् (६३३) वाषलं।
- † वृद्ध इत्यादि इन्दः। घरषासी सयति तस्य घरसः। वृत्-स्वति वा इन्। घनभौदिति टीदि, (५५४) नित्यमिम्। पाणिनि: ७१२५७।
- ‡ चसित इसन्विकलपचे प्रप्। चस-चतुम् (५०६) वा खिलीपः, चकार एकश-स्यः। पचे तनस्तः।

(२१२) जृ दर्ध जरायां।

जीर्थिति । अजरत् अजारीत् । जेरतुः जजरतुः । जरीता जिरता । *

(२१३) भो य निमाने।

- ७८०। यन्याशमादिमिदा लापर्वणु।

(यनि ०।, श्रां भमादि मिद: ६।, खीप-र्घ ॥ १।) ।

श्रोकारस्य लोपः श्रमादे घी मिदे आुँ: स्थात् यनि । 🅆 स्थित । श्रशात् श्रशांसीत् । 🕸

एवं (२१४) की य लूनी।

(२१५) षीय नागी।

प्रणिष्यति । न्यषात् न्यषासीत् । सेयात् । §

क्रीर्थंभीति जॄ-तिप्, ग्रान्, (६२८) इर्, (२२८) दीर्घं:। प्रजरत्, टी-दि,
 (५६५) वा ख्टः, (६१८) ग्रायः। पर्ने घनारीत् भी पे (५०४) ब्रांडः। जिरतः कनगतः,
 (६२६) ग्रायः, (५०८) वा खिलीपः ऋष्य। कारीता इति (६२०) इमी वा दीर्घः।

[†] भीय ग्रमादिय मिद् च तस्य। लीपय घंय गाय तत्। उभयत्र स्माहारी क्रमान्यः। गणपाठे भ इत् शमादिः, सच—शम श्रम दम चम तस यस मद् क्रम इति घष्ट। पाणिनिः २|३।२१,२४,८२।

[‡] उसति, शी-तिप्, शत्रन्, चीलीपः। ष्रशत् टीदि, (६०८) पीस्थाने चा, (६१४) वासेर्लक। पर्च (५८८) इन्सनी षशासीत्।

[§] प्रक्रिय्यति प्र-निसी तिप् (५४८) गटायन्त-ने र्णलं। न्यपान् न्यनासीत् (५०२) भाष्यपि पलं। सेयान् ढीयान् (६१२) डी।

(२१६) दो य च्छेदे।

प्रखदात् । देयात् । *

(२१७) राध्यी ग हिंसे।

रेधतुः रराधतुः । वधार्धः निं, ग्रारराधतुः । अ

(२१८) व्यध्यी ताड़े।

विध्वति । विव्याध, विविधतुः । १

(२१८) पुषी ल्ह पीषणे।

(५६५) गासुलिद्यादिति ङ:। अपुषत्। 🕆

(२२०) श्लिष्यौ चि एट श्लेषे।

यक्षिषत्। यालिङ्गनेतु यक्षिचत्। 🕆

(२२१) रध्यू ऌ पाकहिंसयो:।

७८१ | नृण् रधा मुचां नश्मस्जी रभलभी रनठीमच्ये अस्यर्श्वचि । (नण् १२), रघः ६१, सर्चा ६॥, नश्

मम्त्र: ६।, रभ लभ: ६।, धनठीमचि ७।, ए ७।, भामि ०।, धरळाचि ७।)।

^{*} प्रग्रह्मत्, प-निदी-टी दि, (६०८) घीम्याने चा,(५५२) में लेक् दामंज्ञकलात्, (५४८) गदायन्त-ने र्णलं। देशत. (६१२) उटें। रेधतः, राध (वधार्थ) ठी चतुस्, किलं, (५०८) विधिवलात् वा खिलीपः चा एच। पचे रराधतुः। चाराधनार्थे तु भारराधतुः भवन ए:।

[†] विध्यति, व्यधःतिष् (६६१) जि:। णप् विव्याध (६५१) खेर्जिः। श्रतुम् विवि-धतु. खे. मूलस्य च जि:। पश्चिषत्, पृषादिलात् (५६५) ड:। श्रश्चित् (६०५) सक्।

रधष्ठीवर्जिम्वर्जेऽचि, सुचादेरत्वे, नम्मस्जी भेसे, रभ-लभी रठीवर्जेऽचि, नुण्स्वात् । घरस्वत् । रिवता रदा । ळान्तु ररस्थिव रेख, ररस्थिम रेथा। #

(२२२) लप्यू जिल्ह प्रीयने।

अतर्पीत् अवासीत् अताप् सीत् अखपत्। पे

एवं (२२३) दृष्यु दुर्जि हर्षाहङ्कारयोः।

(२२४) मुद्धू जि ॡ वैचित्ते।

(१७८) मुहां घडिति, मीम्बा मीटा । ह मोहिता।

न ती घठी, घठ्या इम् घठीस्, नासि घठीस् यत्र सः घनडोस्, घनठोस् घासी चद्वेति अवठीमच् तक्षिन्। रयठीचरक्यौ,नरक्यौ घरक्यौ, तथीरच् घरक्यच त्तिबित्। रघपातीः क्या इसि सामार्क्य घचिच परि नुष् स्रात्, क्या इस्भिन्ने प्रत्यस्मिन् इनिन स्वादिति ताल्य्यम् । ठीनचि इति क्रतित् क्रस्थतृहित्यादो ब्याचिनुची ऽप्रापिकपमिन्दं स्प्रःत् । सुचामिति वहवचनं गणायं, तेन सुचादेरिति, सुचादित्र — पकारानुबन्धा धातवः — मुच सिच लिप लुप कत विदादयः । पर्ल्य इति तुदादिलाच्चाते च प्रत्यये परेदल्यंः,तेन घित्र सीक दति। अपने दित अपस्पत्याद्वारी। रठीवर्जे Sनीति रक्षित्रं टीक्षित्रे चिच परे इत्यर्थे.। ऋरस्रदिति, रध-टीर्दे पुषादिलात (५६५) डः, तिस्त्रान् पवि परे पनेन नृग्, विस्तात् (१०) प्रत्याचः परे, न-स्थितिः, उकार-चिक्रार्थः। तुस्करणादेव (५६०) इन्सुङ् च इत्यनेर्नन नलोपः। रिता इति रघ-डौता, (५०३) रघ।दिलात् वादम । ठी-व रस्तिव, अव ऋादमि नुण् । दमी विकल्पपचे (५०६) खिलोपः, भकारस्य एकारः। एवं ठीम । पाथिनिः ०१।५८ €0,€8,€8,€8 1

[†] ऌप-टीदि, (६०३) वा सि: (५०३) वा इ.स., चसपौत्। इ.सीऽभावपची (≰∙४) ऋस्वाने दा र:, घनिम्लान् (५०४) घकारस्त्र हर्तिः घनासीन्। विकल्पपचे, ऋकारस्य इडि: भतार्प्भीत् । सेविकल्पपचे (५६५) ङ: भट्टपत् ।

[‡] मीहिता, सुइ-डी-ता, (५०२) वाइम्। इसी विकल्पपचे मीन्धा, घ^डं विकत्यपचे सीटा, चलरङ्गल।दादौ गुणे, (१०५) इस्र ट⁻, (५०५) तस्र घः, (৪९ षस्य ढ:, (७०) ढलोप:।

(२२५) गग स्ट यू नामे।

98२। नम् नेम् वा को (नमारा, नेमारा, वा रा, के जा)।

प्राणियत् प्राणयत्। निश्चिता प्रनंग्धा प्रनंष्टा, श्रयाम्तलात् (५८८) न णः। ॥

(२२६) शमु स्य द्रव् उपश्रम ।

प्रणिशास्यति । 🌣

(२२७) लम्यु भिर्ग्लानी।

क्लाम्यति क्लामति। १

(२२८) श्रस्यु द्रर् चेपे।

श्राखत्। 🅆

(२२८) यस्य दर् यति।

यस्रति यसति, संयस्रति संयसति । अन्यत्र प्रयस्रति । 🕸

(२३०) लुभ्य द्रग् गार्डेग।

लोभिता लोब्धा। 🕸

(२३१) जीर् मिद्या सिहै।

मैद्यति । \$

(२३२) स्यो ङ स्ती।

त्रसविष्ट त्रसोष्ट । 🕸

 [•] नश्च धातो नेंश्व स्थात् वा खें। नश्च-टीदि (५६५) ङ:, वा नेश्व-श्वादेग:।
 (५४६) श्वान्तत्वात् नस्य ग्यत्वं। डी-ता (५०३) वा इम् निश्वता। इसी विकत्यपची प्रपूर्वं नश्च-डी-ता (०४१) तृण्, (१००) घड्। घडो विकत्यपची (१५४) षड्,
 (४०) तस्थाने ट:। "निश्वसन्धीरिचिटीलं वक्तव्यम्" इति काश्विका।

[†] प्रियासयित, (७४०) श्रमादिलात् दीर्घः, (५४२) गदायत्त-ने र्णलं। स्नास्यति '(५८४) वा स्यन्, श्रमादिलात् दीर्घः। विकल्पपचे श्रप् (५८३) विद्यक्रमेति दीर्घः, सामित। सास्थत सस-टीदि, (५६५) छः, (६५२) पर्स्थादेशः। पर्चे त्रासीदिति।

^{*} यस-संपूर्वक यस घाती: (५८४) धान्या, संपूर्वकादन्यत्र (७३८) निर्शेष्यन् प्रयस्ति । लुभ डी-ता, (६०६) वा इम् लीभिता लीखा । मिद-तिप् छान् (७४०) मिदंशुंष: मेदाति । स्-तन्, (५७३) वा इम्, अस्विष्ट घसीष्ट ।

(२३३) भी दी छ य चये।

98३। दीङ्घ्यां यन् यन्गौ ङा सनि तुवा।

(दीक: ६।, व्यां ७।, यन् ।१।, यप-व्यो ७।, उत्तारा, सनि ७।, तु ।१।, ना ।१।)।

दीङ ह्यां यन्, यिष गौ च ङा, सनि तु वा स्थात्। श्रदास्त । दिदीये। क्ष

(२३४) जनी म्य ङं प्रादुर्भावे।

जायते। 🌵

७८४। जनवधः सममी ऽक्रमवमाचमो ज्णित्-क्रदिणि खो ऽमयमविश्रमस्तुवा।

(जन-वध: ६।, सेमम ६।, घ-कमवकावम: ६।, ञ्**षित्-क्रदिषि ७।, स्व:१।,** इपन-यम वित्रम: ६।, तु।१।, वा।१।) ।

जनी वधः सेमोऽमन्तस्य च कमवमाचम-वर्जस्य स्वः स्थात् ज्षिति कति द्रणि च, श्रम-यम विश्रमसु वा। श्रजनि श्रजनिष्ट। जज्ञी । धः

^{*} यप् च त्य समाइ। रेतिक्षान्। यप् इ.इ. (१९७६) काव्स्याने जातः प्रस्यः। ग्रारिस गुगप्राप्तियोग्य इत्यर्थः। सनितु ङावास्यादिति। ज्यदास इति दी-टीतन्, सिः, प्रनेन ग्रिपित परे ङा, ङिक्तादन्यस्य स्थाने। व्या ए, हिलं, प्रनेन यन् निक्षा- सने। जौ (गुणयोग्ये) दापयति। यपि प्रदाय। सौ किं, दीयते। सनि दिदासते दिदीवते। पाणिनिः ६।४।६१,६।१।५०।

⁺ जायते, जन-ते, ग्यन्, (५६७) जादेश:।

[‡] जनस्य वध्य तत्तस्य । इसा सङ्घर्षभानः सेम्, सेम् चासी चम् चेति तस्य । कमस्य वसस्य चा-चम्च ते, न सन्ति ते यच स तस्य । जच्च च ज्यो, तो इती यस्य स ज्यात्. ज्याचासी कर्षति ज्यात्कृत, ज्यित्कृत इत्य तत्तस्य । चमस्य समय विश्व च तत्तस्य । चम्मस्य समय विश्व च तत्तस्य । चम्मस्य समय विश्व च तत्तस्य । चम्मस्य स्ति सेमम इत्यस्य विश्व च । ज्याति कृति, ज-इत्य -इत् कृत्यस्थे परि इत्यस्ः । यथा — व्यय्, जन्यं वस्यं । चक्, जनकः

(२३५) दीपी छत्र ऋ दीपने।

यदीपि यदीपिष्ट । #

एवं (२३६) पूरी ङा प्यायने । (२३७) पद्यौ ङ गतौ।

(६४२) पदस्तनीण् चे द्रति । प्रख्यपादि, अपसाता । *

(२३८) बुध्यो ङ अवगमने।

श्रकोधि श्रवुद्ध । *

(२३८) नहीं जा बर्से। (२३९) नहीं घङ्भी। ज्ञानासीत्, ग्रनद्व। *

इति दिवादि-पादः ।

३य पादः—स्वादिः।

(२४०) षु जन बन्धे।

सुनोति, अभिषुणोति, सुनुतः सुन्वन्ति । (६२३)सुसुधोरितीम् । व्यवावीत् । असविष्ट असीष्ट् । सुषुविव। विसविष्यति विसोष्यति, (५७२) स्थान्तवात्र षः । 🕆

बधक इत्यादि। ऋजनि, जन् टीतन्, (६४७) इ.ण्. (६४४) तन्लीपः, (५९०) बर्दिः, अनेन इ.स्तः। पर्चे त्यां सिः, अजनिष्ट। ठीए, जक्की दिलं, (२३०) छङ्लीपः, (४६) नस्थाने ज। पार्खिनः ९।३।३४;३५। वार्त्तिकं भाष्यद्य।

[#] दोप-टीतन् (६४३) दण् वा, (६४४) तन्कोपः, भदौषि । द्रयो विकल्पपचि भदौषिष्ट । प्रस्त्रपादौति (५४८) भालं । भवुद्व द्रति वृध-तन्, द्रसो विकल्पपची सि:, (५६२) सिक्षोपः । भनात्सौदिति भनिम्लात् (५०४) वृद्धः ।

[†] सु-तिप्, (७६८) खादेः यु, (५४२) गुज़ः, सुनीति । ष्मिभुणीति, (५०२) षतं, (१००) षतं । सुनुतः किलाझ सः । सन्विन्त, (५८८) उकारख वः । व्यवावीत, वि-सुटी हि (५७२) षत्यपि वतं । टी-तन् (५७३) वा द्रम्, ष्मधविष्ट ष्मभीष्ट । ठी-व सुप्विव, (५७३) बदुसुनीस्वउमः द्रित दम् विकल्प मिषेषात् (५८४) नेमभुमिति नियमेन नित्यमिन् (५८८) उव. (१११) षतं ।

(२४१) डु मि ज न चेपे।

७८५। मियो र्यन्गौ ङाऽखललि लियसु वा।

(तिस्योः ६॥, यप्-चौ भ, जा ।१।, भ खल्-घलि था, लियः ६।,छ ।१।, बा ।१।)। श्रमासीत । प्रस्यमास्त । *

(२४२) चिजन चित्यां।

७४६। चे: कि की सन्छो:।

(चे: ६।, कि: १।, वा ।१।, सन्-ठग्ने: ०॥)।

विकाय विचाय। विक्ये विची। 🕆

(२४३) स्तृ ज न स्तृती।

७४७। स्याद्यृहृदु-रस्कु वेंम् सन्मढीसे:।

(स्यादि-ऋत्-ऋत्-वु: ५१, घस्कु: ५१, वा ११।, इम् ११।, सन्-मडीसे: ६१) ।

स्तवजे-स्यायृदन्ता-हदन्ताच हजो हङ्य सनो मे स्थितयो-टीस्रोय दम् स्यादा। यस्तरिष्ट यस्तृत। स्तरिषीष्ट स्तृषीष्ट ।

मिन्न, सी ख्य, मी जग, मी ति, एवां खा स्थात् यपि गुणसाधन यीयी स, नतु खिल प्रति च, लीधातील वा, ख इत् प्रत्यक्ष स्थाने । प्रमासीत्, टीदि, सि, प्रज्ञन खा, पाइन्ततात् (५८८) इत्समी। प्रस्तमास, गदायन्त-ने र्थलं। पाणिनिः इति ११५०,५१। वार्तिकञ्च।

[†] सनि—चिकौषति विचौषति । पाविनिः शश्यूद ।

[‡] स्य चादि ग्रंस स स्थादिः, स्थादिशाधी स्टेबित स्थायृत, स्थायृव स्वय हथेति तसात्। नासि स्व ग्रंसिन् सोऽस्कलकात्। दी च सिय दीसिः, में (चात्सनेपदे) दीभिः मदीसिः, सन्च मदीसिय तस्य। स्ववजं संयोगादि-स्टन्तात्, दीर्घ-स्दरनाय, उभयपदि-इष्ठः, चात्सनेपदि-इष्ड्य दूल्यंः। चलिष्ट इति स्नु-टौतन्, चनेन सेरिम्, प्रथात् गृणः। इसो विकल्पपचे चलृत, (इप्र) सेः किस्तात् न गृणः, (५६२) सिलीपः। एवं दी सीष्ट। पाणिनः शराधः, ४२,४२।

(२४४) ह च न हती।

स्रादि: ।

श्रवारीत्। श्रवरीष्टश्रवरिष्टश्रवतः। ववरिष्ठ, वहवः। वरिषीष्ट व्रषीष्टः। अ

(२४५) धुजन कम्पे।

(६२३) सुलुधीरितीम्, श्रधावीत्।

(२४६) हिन वर्षने गती।

प्रहिणोति । १

७४८। हे: खेरनङि वि:।

(ई: ६।, खें: ५।, भनिङ था, घि: १।) ।

खे: परस्य हे घि: स्यात त त्र कि । जिघाय । क्ष

(२४७) कविन कतौ हिंसे।

७४६। ज्ञविधिव्योः ज्ञधी स्रौ।

(क्रवि-धिच्यो: ६॥, क्र-धी १॥, स्रौ ७।)।

कणीति। अकखीत् (५६८) अतरवेदिती नुण्। चक्रणः। कण्विता। कख्यात्। §

^{*} भवारीत्, व-टौदि, (१८७) व दलस्य प्रतिप्रस्वात् (५१५) इस्। भविष्ट, व-टौतन्, सि:, भनेन वा इस्, (६२७) इसी वा दौर्धः, दौर्य-विकल्पपेचे भविष्ट, इसी विकल्पपेचे भवतः, (६५८) से: कित्तात् न मुणः, (५६२) सिलीपः। वविष्य, व-दौः खप् (६१६) प्रतिप्रसवात् (५५४) इस्। ववव ठौ-व, (५८४) इस्निपेषः। ठौ-सीष्ट विषयिष्ट वषीष्ट, भनेन वा इस्। इसीऽभावपेचे (६५८) कित्संश्रा।

^{† (}५४८) इनमीनाहिन्वानिविति गलं।

[‡] पङितु, पनीइयत्। पाणिनिः ७।३।५६।

[§] अप्ति-धिच्योरिकारातुवश्चात् विभक्ष्युत्पत्तेः पूर्वे तृष् अते अन्व धिन्व इत्येतयीः श्रीपरेक्क धिषादेशी स्वातानित्ययेः। श्रक्षणीदित्यादी वकारस्य दत्त्यवेन भासता-भावात् तक्षिन् परे (५०) न नस्यानुस्तारः।

(२४८) दन्भुन दभी।

देभतुः ददस्यतुः। 🌣

७५०। अन्य-ग्रन्थ-इन्भां धिप न-लोपो वा It

(यय गय दनमां ६॥, वपि ०।, नखीप: १।, वा ।१।)।

देभिय ददिभिय।

(२४८) धिवि न प्रीती।

धिनोित ।

(२५०) अशुङ न व्याप्ति-संहत्योः।

(५८०) स्थान्तादिति खेरान्। श्रानग्रे।

ं इति खादि-पाद:।

→◆

8र्थ पादः — तुदादिः ।

(२५१) तुदौ ज म व्यथे।

तुद्ति तुद्ते।

(२५२) सम्जी जगपाकी।

भृज्ञति। अभाचीत्। क्ष

७५१। सम्जो ऽरे गौ मर्जवा।

(सम्जः दा, चरं ७), सौ ७।, सर्भ।१।, वा ११)

[ः] देभनुरिति (५६६) वा कित्संज्ञायां, (५६०) नलोपे, (५०८) दभगद्रणात् खिलोप:, पकार एकारयः।

[†] अत्र थप् किहा इति कते, दिभि यथि इत्येतथोश्यित्वसयोः थप् विभन्नौ (५६८) मृखोपनियेघापत्तिः स्थात्। "यत्यियस्थिदिभासञ्जीनां लिटः किस्तं विति स्थाकरणानरम्" इति भटोजिदौषितः।

[‡] तुदतीत्यादि (७३८) श्राप्तत्ययः, तस्य डिच्चात् न गुणः। स्ट्च्चिति (६६१) निः, त्रर्थात् रस्य म्हः। श्रक्षाश्चीत्, सम्ल-टीदि श्रनिम्लान् (५०४) हडिः, (२१३) स्रादेः सलीपः, (१५४) परु, (६०२) पस्य कः, (१११) सेः सस्य मर्लं।

वभर्ज बस्रज, बस्रजी बसर्जी। *

(२५३) मुच ली ज य प मीचि।

(७४१) नुण्रध इति नुण्। सुञ्चति। अमुचत्, असुक्त। 🌵

(२५४)। जिलिपी जगप लेपने।

श्रालिपत्। श्रालिपत श्रालिप्त। 🕸

(२५५) षिची जगप उचगे।

निषिञ्चति। न्यषिचत्। न्यषिचतन्यिवता। निषिषेच। ई

(२५६) क्रती गप च्छिदि।

(৩३८) न्टत्कदितीम् वा। कर्त्तिष्यति कर्त्स्यति। (२५७) षूग्रचेपे।

विष्वति। व्यषावीत्। §

अ नास्ति रो यस्त्रात् स: घरमस्तिन्। सस्ती अर्जवा स्थात् घरे खौ गुणसाधन-योग्वे इत्सर्थः । घरं इति कथनात् अभाजीदिश्वत्र सिरूप गुणिनि परंऽित तहत्तरं टौँदि-रूप-रस्य विद्यसानत्वात् न भर्जादेशः । बभर्जे बभज्ञ इति ठौ णप्, वा भर्जादेशः, (६४) सस्य दः, (४६) दस्य जः । बभर्जे, ठौ ए (५६६) किच्छिऽिप (६६२) व्यां न विष्क्यासिति जिनिषेधः । 'किच्चाभावपंते गुणसाधनयोग्यत्वे सति भर्जादेशः । पाणिनिः ६।४।४०।

[†] अप्तुचत्, सुच-टीदि (५६५) लिदिलात् ङ: । अप्तुक इति आत्मनेपदे ङखाप्राप्ती सि:, औदिल्लादिमीऽभावे (६५६) में: किलात् न गुण:, ततः (५६२) सेलीप.।

[‡] लिप टीदि, (६१८) डः, चित्रत्। टीतन्, चात्रत्य देतेनैव वा डः। पर्चे छि: (६५१) कित्संज्ञा, (५६२) सेलींपः। निश्चिति, नि-धिच-तिष् (०४१) तृष्, (५०२) षतं। टीदि, टीतन्, लिपवत् साध्यं, चम्व्यवधानेऽपि घलं। ठीषण् निषिषेच, (५०२) दिस्तस्यापि वलं।

[§] विषुविति, वि-स्तिष् (५८८) छव्, (५०२) षतं। व्यषावीत् (५०३) वेस्टिति स्वे त्ति त्य ग्रहणात् प्रकात् (५५४) नित्यमिम्, (५०४) चनन्तलात् इद्धिः, प्रस्यपि घतं।

(२५८) ब्रम् म च्छेदे।

ष्टयति। अत्रथीत् अत्राचीत्। वत्रयः वत्रयतुः। 🕸

(२५८) ऋच्छ य गमनमोहकाठिन्धेषु।

७५२। ऋच्हो गुष्ठ्यां। (स्व हा, णु: ११, व्यां ०) श्रानर्च्छ। व

(२६०) कृ भाविचेपे।

(६२८) ऋदिरणाविति इर्। किरति । चकरतः । करीता करिता । \$

७५३। प्रत्युपोपात् काः सुम् हिंसाच्छेदे।

(भित-उप-छपात् ५।, कः ६।, सम् ।१।, हिंसा-कंटे ०।) ।

प्रत्युपाडिंसायां उपाच्छेटे किरतेः सुम् स्यात् । प्रतिस्किरति उपस्किरति । §

(२६१) तन्प म प्रीणने।

[•] त्रय-तिप् (६६१) ति:, इयति । टीटि (५०३) किटच्चात वा इस् । पचे (५०४) चिन्स्वात् वित्रिः, (१५४) षङ्, निमित्तस्थापिये नैमितिकस्थाप्यपाय इति न्यायेन चकारनिमित्तकस्य गस्य पुनर्दैन्यले (२१३) स्वाटे: स-चीप:; (६०२) षस्य कः, (१११) कवर्गत् पलं। बत्रयतुः (६६२) निनिवेधः।

[†] ऋष्को षः स्थान क्यां। ऋष्क पाती लंबृङीऽभावान, भनुसादिविभक्तौ प किस्तात् गुणावाप्तौ विधिरयं सामान्यतीविषयः। तेन पानकं पानकंतुरित्यादि, (५८०) स्टेःस्टाने पान्। पाणिनि: ७।४।११।

[‡] चकरतुः (६२६) ग्रुषः । करीताकरिता (५५४) इ.स. (६२०) इ.सी वादीर्घः । § प्रतिश्व उपयाप्रमुपं, प्रम्युप्य उपयाप्रमुपोयं तक्षात् । हिंसाच केट्य हिंसा-च्छेटंतक्षिन् । प्रतिक्तिरित हिनक्षि, उपिकारित हिनक्षि किनति वाइस्पर्यः । (५०२) परिनि विसेव सुमेगुक्तेः चय प्रतिपूर्वस्य न यलस् । पाणिनिः ६/१/१४०,१४१।

७५४। त्रन्पां न-ल्क्वा ग-णौ।

(तृन्पां ६॥, न।१।, लुक्।१।, वा।१।, ग्र-णो ७।)।

ह्यन्प तुन्प ह्यन्फ तुन्फ रिन्फ गुन्फ ह्या उन्भ श्रन्भां नकारस्य तुक्वास्यात् श्रेणीच। ह्याति हस्पति।

(२६२) च्ती य प हिंसे।

चत्ति चत् स्थति । 🌵 •

(२६३) प्रच्छी य ज्ञीप्से।

प्रच्छति। अप्राचीत्। पप्रच्छपप्रच्छतुः। 🕸

(२६४) सजी य विसर्गे।

त्रसाचीत्। ससर्जिय सस्रष्ट। §

(२६५) ट् मस्जी ग स्नाने।

मज्जित । अमाङचीत् । ¶

(२६६) सृगी म सृगि।

यस्पाचीत् यसाचीत् यस्पचत्।

^{*} वहवचनं गणार्थम् । गणाया वन्तो नत्रमदाकः स्वयं स्वयं स्वयं हित गणा-साधनयोग्यप्रत्यये दृत्यये: । यथा, तर्पयति तृन्पयतीत्यादि । तृपतीति श्रे परे न-लुक् । विकत्यपचि (५०) नस्यानुस्वारः, (५२) चनुस्वारस्य मः । वार्षिकम्, नाव छन्पः ।

^{† (}७३८) वा इस्।

[‡] प्रच्छतीत (६६१) जि:। अप्राचीदित (१५४) षङ्, (६०२) **पर्स्स कः,** (५०४) अर्थानम्लात् बडिः, (१११) पलम् । पप्रच्छतुरित्यत्र (६६२) न जि:।

स्टज-टोदि, सि:, (५६१) सिस्याने देंम, (६०४) निर्वं स्टस्याने र:, (५०४) भिकारस्य हिंदिः, (१५४) षङः, (६०२) षस्य कः, (१११) पत्नं। ठी-यप्, (५०८) वा दम्। दमिवकल्यपचे षङ्, (४०) यस्य ठः।

[¶] मस्ज-तिष् (६४) सस्याने द, (४६) दस्याने ज। टौदि, (७४१) तुण्, (२१३) संबोप:, (५०) नस्यानुस्वार:, (५१) अनुस्वारस ड:।

[∥] स्प्रय-टौदि, (६०३) सि:, (६०४) चटरः, सतः बिडिः, षङ्, सस्य काः, पत्वं। र-विकल्पपचे चटकारस्य बिडिः। सि-विकल्पपचे (६०५) सक्।

(२६७) विच्छ गगती।

विच्छायति विच्छति। अविच्छायीत् अविच्छीत्। *

(२६८) सभी ग सभा।

यमाचीत् यमाचीत् यमचत्। 🕆

(२६८) इषु भ वाच्छे।

इच्छतिँ। (६०६) वेमसहेतीम् वा, एषिता एष्टा। 🕆

(२७०) कुट मि कीटिल्ये।

७५५। कुटां गुत्री जिगति।

(क्टां हा।, गु-ब्री १॥, ज्यिति ७।)।

कुटारे मुंबिर्व स्थात् जिति णिति च, नास्यत्र। श्रक्कटीत्। चुकोट । इ

(२७१) व्यचित्रव्याजे।

विचति। विव्याच, विविचतुः। §

^{*} विच्छ-तिप् (६३०) चायः, (६३१) धातुमंत्रा, ततः भृृादिलात् तिप्मपौ। चाय-विकन्पपचि तुदादिलात् मः। टीदि खप्टं।

[†] सभाटीदि, स्पृणवत्। ६पःति (५६०) दक्क-आदेश: ।

[्]रेज च पा च ज्यो, तो इतो यस्य म ज्यात् तक्षान्। जित्थितीः परथीः गुषवृद्धीः सिंडौ पुनर्विधानं नियमार्थं, तेन क्टादीनां जित्थिकामस्य गुषवृद्धी न सः इति नियमः। जित्थितोन् गुणभामस्यां गुषः, वृद्धिमास्यां वृद्धिरित्ययः। धात्यतः, भक्टीत् कुटियिति कुटनिमत्यादी न गुणः। नू मि स्वने इत्यादीनां अनुवीदित्यादी न गुणो नच वृद्धिः, भगणताद्व च। एवं तृविधातीत्यादि। कुटादिभ च कुट पुट कुच गुन गुड डिप कुर स्कुट सुट नुट कुट कुट कुड कुड कुड सुड गुर पुट तुड युड स्युड सुड कुड सुड गुर तु पुगु भु (भुन) कु (क्)। जिस्स निल इति हो विकल्पेन कुटादिमध्यगती भवत इति प्राचीनाः। पाणिनः ११२।१।

[§] विचति (६६१) जि:।

७५६। व्यचो जि-रञ्णिदसि।

(व्यच: ६।, जि: १।, श्रञ्णिदिस ०।)।

विचिता। *

(२७२) च्ट गिच्छेरे।

ब्खाति बुटति। १

(२७३) स्पुर शिस्पूर्त्ती।

निष्प्रति निस्पुरति । 🕸

एवं (२७४) म्मु'ल गि म्मू ति चलनयी:।

(२७५) नू शि स्तवने।

ऋनुवीत्। नुनाव। §

(२७६) मुङ ग मृतौ।

७५७। स्ड ष्टीको मं। (सङ: ५१, टीका अ, मंश)।

व्यां क्या-मत्ये च मुङो मंस्यात्। ११ (६२०) ऋदिः ग्रयक्दीगे।

अच णाव ञ्णो, तो इती यस्य म जित, जिध यम् च लिटम्, ने ञ्योगे तिसिन्। व्यची जि: स्थान् ने तृ जिति णिति प्रसिच। यथा विचित्रा विचिथाति विख्याति विख्याति विख्याति विख्याति विख्याति विख्याति विख्याति विख्याति विश्वति जिति णिति असि तृ व्याचर्यात व्याचका उद्यास्थाः (१०३२)। (पाणिनिमते तृ किति डिति परे एय जि: नान्यत्)।

^{† (}५.८४) क्रामक्तर्भति ग्यन् वा।

^{‡ (}६२५) विस्तर्भेति ना घलं।

[§] मनुवीदिति कुटादिलान गुग्रवृत्त्वी निषेत्रे, (५८८) मृथ्वीरिलुव्।

[¶] टीच द्वीच अब टोब्सं तस्मिन् विषयमप्तमं। सङो डिल्क्डिय स्वांत्कास् अप्रत्यये च विषये संस्थादिति नियमः, अभवतं परसीपदमेव। आस्मनेपदिनिक्ति परसीपदिनां कविदिति स्वायंन अदाविद्यदस्यदि स्पादिति केवित। पासिनिः १।श्रद्धः।

स्त्रियते, असत, स्वीष्ट। एषु किं, ममार, मरिष्यति। क

(२७७) चो विजी ङ ग्राभी-कम्पे।

৩ খু দ। विजे र्णु ने मि। (विजे: ६१, णः ११, न।१।, ছদি ৩।)। विजे र्णु ने स्थादिमि। স্পবিजিष्ट। †

इति तुदादि-पाद:।

१म चतुर्गणाध्यायः।

७म:। २य-चतुर्गणाध्याय:।

१म पाद:--क्घादि:।

(२७८) रुधिरौ ध जि जावरणे।

क्षांडि । *

७५८ | नणो ने ऽणौ | (नणः ६।, न ११।, र ०।, पणो ०।) । नणो नकारः स्यादणी रे। कस्यः कस्यन्ति । नं

[#] सियते (५८८) इस्थाने इय । अस्त स्वीष्ट, सभयत्र (६५८) कित्संजा।

[†] विज: किदिस् इति कते सिद्धाविष स्प्रष्टार्थभेवं कृतं । पाणिनि: १।२।२।

६५-ति (०३८) त्रण्, णकाश्चित् (१०) भन्याच: परे, भ्रदन्तनकार-स्थिति: ;
 (१००) गलं, (५०५) तस्थाने घ:, (६४) घस द: ।

[†] भरं नणां ऽसमावात् भव र इति स्पष्टार्थं। एवं परस्वेऽपि । ऋरन्त-न-स्थाने नृस्थादिल्थंः। कल इत्यादौ, चयो यवैकवर्यीया मध्यममव लुष्यते इति प्रमाणात् गध्यर्शन-त्रकारस्य लोपः। तवर्ययुक्त-नकारस्य ग्रालामावः। पाणिनिः ६।४।१११।

अक्षत्, अक्षः अक्षत्। अक्षत् अरीत्नीत्। *

(२७८) छुदु च धिर् देवने।

(७३८) छहिषाति छत्सात ।

एवं (२८०) हृदु ज धिनोंदरे। (२८१) हृह ध हिंसे।

९६० | तह द्रण् पिद्धस् । (तृहः ६।, दण् ११।, पितः हैम् रे ०।)।
हही नण द्रण् स्थात् पिति हमे रे। तृणेढ़ि त्रण्टः तृहिन्त ।
अतहीत् अत्वचत्। पे

(२८२) हिसि ध कि हिंसे।

9ई१। नगो न लोप्य:। (नगः प्रा. न ।रा, बीपाः रा)।

हिनस्ति। 🏗

(২८३) श्रन्जू ध ञि व्यक्ति-गति-स्रचणे। ' श्रनिता। 🕸

^{*} अक्षपदिति व्यादिष्, (६७२) देलें।पः, (६४) घस्य त (द वा) । व्याः निष्, (६८०) घस्य रेफे, रस्य विसर्गः, रेफि विकलें (६४) घस्य त्। व्यार्ग्दि, (५६५) इरिस्तात् इटः। डिविकलें अनिम्लान् (५७४) वृद्धिः, अरोक्षीत्।

[†] पिश्वाभी हस्वाभी रथेति तिस्ति । इणी णिलात् नणः भन्यावः परे स्थितिः । तृह-तिप्, (७३८) नण्, तृन्ह, भनेन इण्, तृनंह इति स्थिते, (१०५) इस्य ढः, (५०५) तस्य घः, (४०५) सस्य ढः, (७०) ढलीपः, (१००) णलं, तृणिढि। तृह-तस् वर्ण्डः, (७५८) नणी नकारे (४०) नस्य णकारः, अस्यत् पूर्ववत्। भनि तृंहन्ति, (५०) नस्यानुस्तारः । टीदि, (५०३) कदित्तात् इम् भतर्भीत्, इसी विकल्पपचे (६०५) भनिम्लात् सक्, (१०५) इस्य ढः, (६०१) दस्य कः, (१११) घलं। ढहधातीः सुदादिगणीयस्थैव कदित्तिकातनाः । पाणिनः ७।३।८२।

[‡] नयो नः पूरो नकारी कीष्यः स्थात् । क्षिमः तिप्, भातप्वेदिती नुण् हिन्स्, ततः क्षादिस्तात् नण् हिनन्स इत्यस्य भानन नणः परी न कीष्यः क्षिनिति । एवं भ्रम्भ भानति, सन्ज सनिति । पाणिनि ६।४।२३।

७६२। अनुज: से रिस्पी।

(अन्जः ५।, सः ६।, इम् ।१।, घे ०।) ।

अन्जः परस्य सेरिम् स्थात् पे। आञ्जीत्, आनञ्ज। अ

(२८४) जि इसी ङ ध दीप्ती।

इस्थाञ्चक्री। 🕆

इति क्घादि-पादः।

२य पाद: - तनादि: ।

(२८५) तनु ज द विस्तृती।

तनीति तनुतः तन्वन्ति, तन्वः तनुवः तन्तः तनुमः । *

७६३। से लुक्त त- घासो स्तन्स्यो ऽक्कारी।

(से: ६', लुक् ।१), त-याधी: ७॥, तन्थः ५॥, ऋकु: ५।, वा ।१।)।

कवृर्जात् तनादेः सेर्जुक् स्यादा तः यासोः परयोः । अतत अतनिष्ट, अतयाः अतनिष्ठाः । १

^{*} भन्तधातीकदिस्त्विदिमत्वे नियार्थे विधानं। सेरन्यत, अज्ञिता अङ्का, भक्षियति अङ्स्यति इत्यादि। आनश्चेति (५८०) स्थान्तादिति स्वरान्। पाणिनिः शराश्रा

^{† (}५८२) र्व्विजादीत्याम्, (५८३) क्रप्रयोगः।

श्र तनोति (६८८) ग्रुप्, (५४२) ग्रुप छकारस्य गुण । तल्वक्तीत्यादी (३५०) उस्थानेव। तन्व द्रत्यादी (६२२) छकारकोषोवा।

[†] तय थाम् च ती तयी:। थाम्माइचर्यात् त इति भाव्यनेप्रहसीतः। भव्यथा परकीपदस्य तांतंत एष अतानिष्टां अतानिष्टं अतानिष्ट एम्बपि प्रसत्ती:। तथी-रयुक्ते चित्राविष थाम्यदणं स्रष्टार्थः। भवतः भत्यथाः इति, भनेन संसुंकि, सुक्

(२८६) षतु ज द दाने।

सनोति । असात असनिष्ट, असाधाः असनिष्ठाः । सायात् सन्यात् । *

(२८७) चणु ञ द वर्षे।

श्रचणीत्। 🅆

(२८८) चिणु घ द हिंसायां।

७६४। नोष्युङों गुर्का लृतः।

(न ।१।, उपि ७।, चङ: ६।, गु: १।, वा ।१।, तु ।१।, ऋत: ६।) ।

चिणोति। इ

(२८८) ऋगु ज द गती।

ऋणोति अणीति । क्ष

(२८०) डु क़ ञ द करणे।

करोति। \$

७६५ । कुरुब्लोपो व्यये । (कः प्रा, खब्-लोपः शा, व्यथे ०)।

कुर्व्य: कुर्माः, कुर्यात्। चक्तव। §

करणान् (८३) त्यक्षीर्य त्यक्तवणिमिति न्यायेन गृणि-सौ परे कार्यानिषेधे, पगृणिनी: तथामी: परत्री: (६०६) ञम्कीपः। प्रकुः किं, श्रकृत श्रक्तयाः उभयत्र (६५८) सी: किस्तान् गृणाभावे, (५६२) निर्व्य सिलीपः। पाणिनि: २१४१०८।

श्वसातिथादि अनेन सेर्लुकि, (६५५) खनसनित ङा, पर्चे (५५४) सेरिस्।
 सायात सन्यादिति विकल्पेन ङा।

[†] भवणीदिति (५०६) चणवर्जनात् न इडि:।

[‡] उपि चडो गुर्नस्थात्, उड च्यकारस्य तुवा। विगति, (६८८) उप् तिस्मिन् परे विग्र उड इकारस्य न गुणः, तिपि परे उप चकारस्य (५४२) गुणः। इष्णेति भर्णोति इत्यत्र उड च्यकारस्य ना गुणनिर्षधः, एवं द्यगीति तर्णे।ति इत्यादि। उड:किं, ज्ञ-तिपृकरोति, भन्न भन्य-च्यकारस्य नित्यं गुणः। पाणिनौ मतभेदः।

[§] बचमच यच ब्स्यंतिधान् । क्रजः परस्य उपी जीपः स्थात् वे मे ये चपरे। कुर्म्यः इत्यादि व म य परेषु उपी खीपः, (२२०) व्यंनच्तयीका इत्यव कुर्वजनात् न

७६६। सम्परेः सुमुपात्तु भूषा-सङ्घ-प्रति-यत्न-विक्रताध्याहारे।

(सम्-परे: ४।, सम् ।१।, जपान् ४।, तु ।१।, भूषा-सङ्ग-प्रतियव-विक्रताध्याद्वारे ०)। श्राभ्यां क्षञः सुम् स्थात् उपात्तु भूषादावर्धे । संस्करोति, सम-स्क्रषातां, सञ्चस्करिय, सञ्चस्करिव, संस्क्रियात्, संस्क्रषीष्ट । परिष्करोति, पर्यय्कार्षीत् पर्यस्कार्षीत्, उपस्करोति ।%

७६७। इस्ते पाणौ प्राध्वं जौविकोपनिषदो व्यख क्रञि स-स्तिरी मध्ये पदे निवचने मनस्यर-स्यपाजेऽन्ताजे साचादादेस्त वा । '

(इस्ते—उपनिषद: ६।, व्यस्य ६।, क्रजि ७।, स: १।, तिरम्—साचादादे: ६।, तु ।१।, वा ।१।) ।

इस्तेकरोति, तिरस्त्ररोति करोति-तिरः।

ं इति तनादि पादः।

दीर्घ:। करोमीत्यत्र, लीपस्वरादेशयां लुस्वरादेश-विधि वैसीति न्यायेन गुणएव। ठीव चक्कव (५८४) नेससुमिति निर्धात्न इ.स.। पाणिनिः ६।४।१०८,१०८।

^{*} सस्-पिश्यां क्रजः सम् स्यात्, सम जकार्यत् चिद्रायः, मकार्यत् (१०) क्रषाती-रादौ सकारस्थितः। प्रधानिभिषानेऽपि पाणिनिमतेकवाक्यत्वात् सृषासद्वयोरिवः; "सम्पूर्वस्य कांच्ह्रपणेऽपि सुट्" इति भिद्यान्तकोमदौ । जपान् भृषादावर्षे । स्था प्रभादार्थे । सद ममूदः । प्रतियती गृणान्तराषानं । विक्रतं सद्धप्रयान्ययाभावः । ष्याद्यादारो वाक्यस्य प्रधुताकाङ्कित-प्रस्तिपादानं । समस्तृषातां टी-प्रातां, (०४०) स्तृवर्जनात् न इम् । (६५६) कित्मंश्रायां न गृणः । सघस्त्रार्थ ठी-प्रप्, (६१६) स्तृवर्जनात् द्रम । सद्यक्तित् ठी-व, (५८४) असुनिति कथनादिम् । संस्त्रियादिति टी-यात् (६१५) स्तृष्तु व्याभेविति जक्तः गृणनियेषः । (६२०) स्रस्याने दि: । सस्तृषीष्ट (६५६) कित्मंत्रायां न गृणः । परिकारीति (५०२) षत्वं । टी-दि (६१३) विकासीन

⁺ इसी इत्यादे: उपनिषदनस्य भव्ययस्य क्रञधातौ परपटे नित्यं समासः स्थात्

३य पादः -- क्र्यादिः ।

(२८१) डुकी ज ग द्रव्यविपर्थये।

क्रीणाति। (७०१) यादगोरिति, क्रीणन्ति।

(२८२) स्तु ज ग न उडुती।

७६८। खु खान्भ खुन्भ सन्भ स्तृन्भथः अग्रे हो रो। (खु-सुन्भथः अग्रे वा रे वा रे

एभ्यो घेऽर्धे युः या च स्यात् रे परे। अः

खुनीति खुनाति, विकामीति (६२५) विकामीति षः—विकामाति । एवं विक्षुमीति विक्षुमाति, विष्टमीति विष्टमाति, व्यष्टमीत्, वितष्टमाति, व्यष्टमीत्, वितष्टमा । सुमीति सुमाति । पं

(२८३) मी ज ग वधे।

(७४५) मिर्म्योरिति ङा, यमासीत् यत्रास्त ।

तिर:प्रश्वतिम् वा। एष समाम: एकपदीमावमावं नतु बन्दरिक्तमः। समाम-करणच (३६६) पूर्व्वनिपात-नियमार्थे क्वाची यवधंच। इसे पाणौ स्वीकारे। प्राध्वं वस्त्रनातुकूल्ये। जीविकीएनियदौ उपमायां। तिरोऽन्नधाने। मध्ये पढे निवचने मम्मि उरित प्रच चनुपर्शेष एव, उपश्चेषि तु उरित क्वाच हसं शेते, पढे क्वा मम्मकं शेते था, इत्यादौ न समागः। उपाजि अन्वजि वलाधानार्थे। साचादादेरसूत-तक्कावं। पादिना—भिष्या अञ्चा नमम् याविस् प्रादुम् विस्त् वशे इत्यादि। पाणिनिः १।४।०१—०६, वार्त्तिकच।

अ स्त्रन्भ स्तुन्भ स्तुनभ सुनभ सुरोधने इति चलागः सौवा धातवः। पूर्वः धात्पाठे ये न दृष्यने पदविश्रेषस्थनार्थं न्वे तु दृष्यने ते सौवाः। स्तुत्रादयः पद्यं स्वितिशोधाः क्रादिगणीयाः क्रादिगणीयाः नार्यादगणीयाः । पाणिनि ३११।८२।

[†] विस्तरभूति स् चे क्षा-प्रत्ययस्य यहणात् विस्तरभूतिविध्य न पत्वं। विष्टर्भूति विष्टभूति उभयत्र (५०२) गीक इति पत्वं। व्यष्टभदित्यादि (५६५) डी वा, उभयत्र प्रस्यपीति पत्वं। वितष्टभंति खिव्यवधानेऽपि षत्वं।

(२८४) पूज गि ग्रोधने।

७६८। पादे: खो ने व्यादेस्त वा। (प्-त्रादे: हा, ख: ११, भे ७।, बी-त्रादे: हा, तु।११, वा।११)।

ष्वादीनां स्वः स्थात् ना-त्वे परे व्यादेशुवा। पुनाति।

(२८५) कु ज गि हिंसे।

अकरीष्ट अंकरिष्ट अकीर्छ। करिषीष्ट कीर्पीष्ट प

(२८६) धूज गिकम्पे।

धुनाति । अधावीत् अधीषीत् ।

(२८७) ग्रह ज गादाने।

ग्रह्माति ।

७७०। इसान्तानो हो।

(इसात् प्रा, ना ।श, श्रानः १।, ही ७।)।

इसात परी ना आनः स्थात् हो परे । रुहाण । अग्रहीत्। जग्राह जग्रहतु: जग्रहिय । 🖇

^{*} ने न्नाप्रत्यये पर्वदस्यः। पादिन्तु—पूलूष् कृत्वम् स्वस्पवट धन भ म गज ऋ च्यारी ली ल्यी (सी) क्री न्वी (ची) भी दित । च्या गि अपराया-इंटर्ड इंटर्ड भित्यस्य पादिभालन् -- जीनः जीनवानित्यव लादिलान् (१०५२) तस्याने न । पाविनिः 013,001

⁺ भक्तरीष्टेत्यादि (७४०) इम, (६२०) वा दर्मा दीर्घः, इमो विकल्पपचे (६५८) कित्मज्ञायां, (६२८) ऋकारस्य ९२. (२२८) दीर्घः । एवं डो-मीट वा ९म, पर्वे चहुद्र, तस्य दोर्घः।

^{🗼 (}५०३) वसूदिति वा इम्, पचे (५०४) चनिम्लान् बिहः। यस्नाति (६६१) **जिः, रस्था**ने ऋ ।

[§] ग्रह-गी-हि (६६१) जि:, घनेन नास्थाने चान, (५४०) चकारास् हेर्लीप:। एवं वधान पुषाय सुपाय इत्यादि । इसात् कि, जानीहि । भग्नहीदिति (५०६) इन्तितात् न त्रि.। जग्रस्तुः (६६१) जिः। पाणिनिः ३।१।५३।

७७१। ग्रहीरमी घीँऽखां।

(गर्ह: प्रा, दम: ६।, घं: १।, पद्या ७)।

यहै: परस्य इमी घै: स्थात्, न तु खां। यहीता।

(२८८) मृ ज गि हिंसे।

७७२। शृपूद्रां खो वा किट्यां।

(गृ-पु-द्रां ६॥, स्तः १।, वा ।१।, कित-रधां ७।)।

एवां स्थात् किति व्यां वा। प्रयतुः प्रथरतुः । प एवं (२८८,३००) चिप् गिपालने, ह गि विदारे।

(३०१) ज्या गि जरायां।

जिनाति. जिज्यो । 🕸

(३०२) ब्री गि वलां।

विणाति बीणाति ।

(३०३) जा ग बीर्घ।

जानाति ।

(३०४) श्रय ग मोचे।

यथाति। येथतु: प्रयत्यतु:, येथिय प्रयत्थिय ।

[🌞] एवं ग्रहीतुं यहीव्यति इत्यादि । ठ्यान्तु नग्रहिय जग्रहिव । पाणिनि: ७१२१०)

[†] ग्रामरतुर्गित इस्लाभावपचे (६२६) गुण: । एवं पत्रतुः पपग्तुः, दद्रतुः ददरतुः । पाणिनि. ७।४।१२ ।

[‡] जिनातीत्यादि (६६१) जि: या स्थाने इ:। निषातीत्यादि (७६८) वा इस्तः। जानातीति (५८०) जा-मादेशः। यथातीति (५६०) न-लीपः। यथपुरित्यादि (५६६) कित्पत्ते न-लीपः, (५०८) खिलीमादियः। यप् (७५०) यस्थस्येति न लीपः पर्व खिलीपादि ।

एवं (३०५) ग्रन्थ ग हर्भे ।

(३०६) कुष ग निष्कोषे।

(५०३) वेमूदितीम वा। निरकोषीत् निरकुचत्।

(३०७) श्रम ग भोजने।

अभिता अष्टा 🕆

(३०८) हजगवरणे।

अवरीष्ट अवरिष्ट अवृत । वहपे। वरिषीष्ट वृपीष्ट । 🕸

द्रति क्यादि-पादः।

8र्थ पाद:—चुरादिः ।

(३०८) चुर कि स्तेये।

७७३। चुम्यो जिवी। (चुर्थः ४॥, जिः १।, वा ।१।)।

चुरादे जिं: स्वाहा स्वार्धे। चीरयति चीरयते। अनृचुरत्। चीरयामास। चीर्थात्। पत्ते चीरतीत्वादि। *

निर्कृवदिति चनिम्पचे (६०५) सका, (६०२) षस्य कः, (१११) पलं।

⁺ अधिता अष्टा (६०६) वेमसहतीम वा, (१५४) पङ्, (४०) तस्थाने ट।

[‡] भवरीष्टेत्यादि (७४०) वा इम्, (६२०) इमी वा दीर्घः, भविम्-पर्च (६५८) के: कित्त्वं, (५६२) निम्हीपः। ठी से वबषे, (५८४) नेम्हिमिति इम्-निषेधः। वरि-पीष्टत्यादि (७४०) इम्, पर्च (६५८) कित्मं ज्ञायां न गुणः।

वा ग्रन्टस्य व्यवस्थावाचित्वात् चुरादिस्यो जिर्निसः, चुरायन्तर्गणात् (किकारातु-वसात्) युनार्दिज्ञ्चा स्थादित्वर्यः । पचि गणान्तरित्यमाभावात् सामान्धगणो स्वादि-रित्थर्यः । यतु चुरधातोः कि कारातुवस्थवरणं पचि चौरतीत्युदाइरणच तत् कदाचित् चुरार्दे जेरिनयलग्रापनार्थे । अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवनीति न्यायात् चुरादेः

(३१०) कृत का संग्रव्हे।

७७४। कीर्त्त: कत:। (कीर्त्त: ११) कृत: ६))।

कृतः कीर्तः स्थात् जी। कीर्त्तयति। क्ष

(३११) गण त्क सङ्गाने।

७७५। इसाद्वीपोऽभित्यद्योः।

(इसात् प्रा, लीप: १।, षशिति ७।, अत्-थी: ६॥)।

इसात् परयोः अकार-यकार्योर्लोपः स्थादिशिति । गणयित । पं

७७६। वेङ् गणक्यः खेर्जप्रिङः।

(वा ।१।, र्देङ् ।१।, गण-कय: ६।, खे: ६।, ऋाङि ०।) ।

स्वार्थे जि: । चुरादिस्यो जे जिंच्छे पि उभयपदं न स्यात्, अव्यया स्वास जंक् वितर्के इत्यादे जीनुवसी व्यथः स्थात्, तेन ङितयुरादि रास्त्रेनपदं, जितयुरादि क्षस्यपदं, जभय-भिन्नचुरादेः परस्मैपदिभित । यनु अव उभयपदो दा इरणं तत् कहा चिहासमे पदिस्विद्यार्थे। चीरयती त्यादि चुर-जि:, (५४२) गुणः, चीरि इति (६३१) घाउँ संज्ञायां, तिष् प्रष् गुणाः । चीरि-टोदि, (५४०) अभागमः, (६१३) जिथी त्यङ्, (५५०) चीरि इत्युक्ष डिले, (५६७) खेरायवः परभागस्य रि इत्यस्य लीपः, (५५०) खेः चीनारस्य उकारे, (६३८) आङ्गुङः ख इति मूलधाती राकारस्य इत्ते, (६३८) खेः चिन्दिति खेरकारस्य दीर्घं, (६४१) जेलींपः, अचूच्रदिति । ठी-णप्, (५०२०) आमा, अस्-प्रथीगय। ढी-थात्, जेलींपं, त्याचीपे त्याचात् गुणस्थिती चीर्यादिति । पाणिनः इ।११२ । तन्त्रते आध्यीयगणात् विभाषा ।

- सर्विच कीर्तादिशे, गणपाठे कृतवातुकारणं कराचित् कीर्तादेशी न स्थादिति
 ज्ञापनार्थं, तेन अचीक्रतदिखपि। पाणिनिः ७१।१०१,८१८।७८।
- † भत् च यथ तौ तथी: । प्रकारणवलात् धातु मंत्रक स्थित भकार-यकारयो लें।पः, तेन इसतौ खादी न स्थात् । इसात् किं, वीभूयिता । अधिति किं, ईर्ष्यंति । भरें इति नीक्वा अधितीति कयनं, मन्य वस्य इति धातीर्यञ्जुकि स्वीयात् मंगन्यातः इत्याय यकार लीपार्थम् । गण्यतीति जी भनेन भकारलीपे, लीपीऽप्यादेश उच्यते इति माथेन स्थानिवच्यात् न वृद्धिः, एवं कुण त् काभाष-मन्त्योरित्यादीनां कुण-यतीत्यादीन गुणः । पाणिनिः ६।४,४८,४८ ।

गण-कथयोः खेरीङ् स्थात् वा चार्डिः। अजीगणत् अजगणत्, (६३८) अग्लोपित्वान पः । अ

(३१२) कथ त् क वाक्यप्रबन्धे ।

त्रचीकथत् यचकथत्। 🕸

इति चुगदि-पादः।

२य-चतुर्गणाभ्याय: ।

८म: । ३य-चतुर्मणाध्याय: ।

-4831.4E302-

.१म पाद:--- त्रान्त: ।

७७७। जि: प्रेरणे। (ज: ११, प्रेर्ण ७)।

धो र्जि: स्यात् प्रेरगेऽर्थे । *

- * ईड: डानुबस्थात् भन्येवर्णस्थाने भवति । भन्नीगणदिश्यादि गण जि: पूलेभ्वेण भन्नारक्षीपे गणियाती: टी-दि, (६१३) भङ्, ततः दिलादि, अनंन खे: स्थाने ईडः, ततो (६४१) जे लेंगिः। ईडो विकल्पपचे अजगणदिति। (६३८) खेः सन्वरिति स्वै मन्तेषियर्जनात् खेः स्थाने न इ:। एवं अचीकथत् अवकथदिश्यादि । पाणिनिः ७।४।८०। अव सूबे गणधातुरेव पठितः नतु कथयातुः।
- ♣ ल्येंतत् क्रियतामित्यादि कियामु नियोजनं प्रेरणं। यथा धर्मं कार्य-तील्यादि। प्रचितने तूपचारः। यथा परित्रमः चुधां वर्ज्यतीत्यादि। धीरिति व्याख्यानं मुल्येमकारधानुपाप्तार्थं, तेन भवनं प्रेरयित भावयित, कामयमानं प्रेरयित कामयित, चिकित्सन्तं प्रेरयित चिकित्सयित, चीरयन्तं प्रेरयित चीरयित, चिकी-र्धन्तं प्रेरयित चिकीर्षयित, चिकीयमाणं प्रेरयित चिकीययित, चरीकुव्वनं प्रेरयित चरीकारयित, पुवकाय्यनं प्रेरयित पुवकाय्यतीत्यादि। प्ररणार्थजीः परोऽपि जिः, यथा पिता पुवेण शिष्यं वृदं पाठयतीत्यादि, श्रव पुतः पाठयतेरेव कर्त्तां निर् पठतेः, तेन (२०४) पुवस्य कर्मालं न स्थान्। जे जिंचात् ज्यन्त्यातोरुभयपद्माक्षिः। पाणिनः इ।र।रहः।

कुर्बन्तं प्रेरयित कारयित । अचीकरत्। *
अग्रयासत् अडुटीकत्। अग्रयवत् अग्रिखयत्।
व्यतस्तभात्,पर्य्यसीसिवत्,व्यसीसहत्। (५७२) साङ्वान षः। । ग्रे अचीचकासत् अचचकासत्। भ्रीन्दिदत् भ्रीजिजत् भ्राडिडत् आर्चिचत्। अररभात् अललभात्। अजीहयत्, (७४८) अनङीत्युक्ते ने घिः। अदिश्वनत् अध्वनयीत्, ऐलिलत् ऐल-यीत् आर्दित् आर्दित् आर्द्यीत, भ्रीननत् भ्रीनयीत । । ।

^{*} कारयभीत्यादि, क्र. जि. (४००) श्रान्येची हिंदिः, काँगि इति (६३१) धान्मंत्रा, ततिनिप् प्रपादि । कर्लनं प्रैग्रित् श्र्योक्ष्यत्, (४३०) प्राग्चकार्थाद्वि दिगिति म्वात् (८१६) श्राप्यकार्थाद्वि दिगिति म्वात् (८१६) श्राप्य जौ दिले विगिति बच्चमाणित्यभेन, क्षड इति धानुमंत्रायां, टौ दि, (४५०) श्रमागमः. (६१३) जियोत्यङ, (४५०) क्षद इत्यन्य दिले, (५६४) खेरायव इति विग्कारस्य जीपे, (५५०) स्वकारस्य श्रकारि कक्षारस्य च चकारे, ततः (४००) हिंदः, श्रप्यकारि इति स्थिते, (६३०) श्राकारस्य इत्वे, (६३१) सल्वे, (६४०) खेरकारस्य इकारे, पुनः (६३८) लघुक्वे दीधें (६४१) जे लीपः। एवं सर्वन साधनप्रकारः।

⁺ प्रामतं पेरिरत् प्रयामिटिया (६३८) प्रामवर्जनात् न इन्द्रः । देविकानंनं प्रेरिरत् प्रदृद्धौकिदियव (६३८) स्टिइर्ड गत् न इन्द्रः । ययन्त प्रेरिरत् प्रयामविद्याव विज्ञः, (५३०) पागचकार्थादिति नियमान् पादौ दिले, (६६१) विजिति वाप्रवृद्ध्य व्यवस्थ्या स्वर्मे लस्य च जिः द्रयुक्त-वस्थानं उः, तती बद्धादिकं । जि विकल्प पर्वे प्रशिव्यत्विते । विष्यमानं पेरिरत् व्यतसम्भत्, परिधीव्यन्तं पेरिरत् पर्यमी सिन्वत्, विषद्दमानं पेरिरत् व्यमी सहत्, एषु (५०२) साडलात् न षः । पर्यादिनि सत्तिले स्वादं वलं न स्वात्, खिनिसत्तकन् मूल्यातीः पत्तं (१११) किलादियनेन स्वादेविति वीपतिदत्तः ।

[‡] चकाभतं प्रैरिरत् यचीचकामत् यचककामत्, चिटित्वात् (६२८) उङी न क्रसः, भनेकाचलात् (६२८) या सन्वद्वायः। उन्द घी क्रंदे, उज गार्गवे, भ्रदेड भार्भयोगे, पर्यं ज् पूर्ज—रित चतुर्णां धात्नां—उन्दनां, उजनां, श्रदेडनां, भर्मनञ्ज प्रेरिरिद्ति वाक्यो, जी उन्दि उजि भट्डि यधि इति स्थिते, (७१८) नाजनादिरिति भादावरं हिला, (७२०)स्थादौ नवद्र इति नव द रांय हिलादि जिडि चि एषां दिलं,

७७८। सृदृत्वरप्रथमदसॄसमोऽङ् खेर्जिऽङि चेष्टवेष्टोसु वा ।

(मृ—समः ६१, भङ् ११), खे ६१, बाङ था, वेध्वेष्टीः ६॥, तु ११।, वा ११।)
एषां खेरङ् स्थात् चाङि चेष्ट-वेष्टोलु वा ।
श्रमस्मरत् श्रद्दरत् श्रतखरत् श्रपप्रथत् श्रमस्तद्त् श्रतखरत्
श्रपस्ममत्, श्रवचेष्टत् श्रविवेष्टत्, श्रववेष्टत् श्रविवेष्टत् । %

. ७०६। भाज भास भास भाष दीप जीव मील पीड क्रण वण भण यण लप लुप लुट हेठां वोङ: ख:। (भाग – हेठां ६॥, वा ११।, वड: ६।, ख: १।)।

⁽५०१) पुनरमागम्य, भौत्रित् भौजित् त्याइडिडत् यार्धिपदिति । रम्भाणं सम मानच भौरित् भररमत् यलनगत्, (६२८) गुरुधालचरपरत्वात् न सन्द्रावः । हिनन् भौरित् भौष्ठी । मिलन रवं, इल म भग्ने, भई पौडायां, जन त्व परिहार्य — प्रति चतुर्या — ध्वननं, प्रतमं, भईन् जनयनं भौरिरिति वाको जौ कते ध्वि एति यदि जनि इति चतुर्यः (६१३) वा पङ् एति जनि इति द्योः (७१८) भायच् दिला दिलं, पर्दि दलस्य (०१८,०२०) भायचं रच हिला दि दलस्य हिले । अडी ऽभावपने (५५१) व्यां मः, दमादिनं, दिन परे न जिलीपः, (५०४) निषेधात् व हिला । ध्वनि दलस्य (५००) नृद्यां, (६८८) घटादिलात् कस्तः ।

[†] स्पृ इत्यनेन स्पृ स्पृती, स्पृ म श्रीत्कं इति हथं; हृ य नि विदारे; जि तर पाड् स्पद; प्रथ म ष क् व्याती; सद म पड् चीदं; स् ृ ज नि कादने; स्प्रश ष ग्रय-वाधयी:; एपां भगानां खंरह्विधानात् (६४०) स्थ्येत् सनीति इ नं स्थात् (६३८) धीय के हमादे ध्यात् प न स्थादिक्षी:। चेट वेटो स्तु खिरडी प्राप्तिप हे खंच परतात् (६३८) सन्द्रशाया प्राप्ति वे देधि न स्थात्। श्रमस्य दिव्यादि स्थातं, दीर्यनं, त्यामानं स्थानां, स्थमानं, स्थमानं स्प्रमानं सानं, वेट सानं, दीर्यनं, त्यामानं सा, चेट सानं, वेटसान प्रेरियित वाक्यानि। श्रव ह ङ शादरे इति इस्थान-ह्याती प्रविचित्ति किष्यान, दियमाणं प्रेरियदिति वाक्यं। स्वान स्वृती इति इस्थान स्वृत्याद्व न रहतीतः, तस्य तु श्वानस्थित दिव्ये पदं। पाणिवः श्वाध्य, ८६ ।

एषामुङ: स्व: स्थात् वा जाङि। श्रविसजत् श्रवसाजत्। *

७८० । वर्दु ङो धुः । (वा ११, ऋदङ: ६।, धः १।)।

ऋदुङो धो र्धुरव स्थात् वा अप्रक्षि । श्रवीहतत् अवव [ी]त्। पृ

७८१। खपो जि:। (खपः ६।, जि: १।)।

खपो जि: स्थात जो ङि । असुषुपत् । क्ष

७८२ । ग्राच्छासाह्वाव्ये वे पांजीयन् ।

(गा--पां हाँ, जी था, यन ।१।)।

एषां जी परे यन् स्यात्। भाययति पाययति। §

^{*} टु साजूङ ण भाित, टु सासू ङ ण भाित, भागू ङ दीती, भागू ङ वाित, दीपी ङ ऋ दीपने, जीव ऋ प्राणने, नील्द निभेषे, पौजूक बाधे, कणू भार्तसरे, ऋ वण ग्रन्दे, ऋ गण अर्ब्दे, यण क टाने, ऋ लप भावे, लुप ऋ ग्राप ल जौ हेंदे, लुख ऋ विलीड़ने, हेठू ज बाधे, धीड़ग्रेते। टु सागू ङ ण'भाित देंति तालव्यानोऽपि अत्र ग्रद्धीत:। इह क्विधातमपि व्यासकारः पठित। भत्र वाग्रद्धणं वाद्यमध्यवित्वेन निव्यवनिवारणार्थम्। एतेषु गणपाठे सासधातीर्क्रक्षऋदनुवन्धः यणधातीय ऋदनुवन्धाः भावः कस्यविदनुरीधादिति दुर्गादासः, वस्ततसु प्रामादिक-एविति। भविभनदिव्यादि, साजनानं प्रैरिरदिव्यादि वाक्षं। पाणिनिः ०।४।३, वार्त्तंकच। भत्र सासधातुर्ने दृश्यते, साध्ये च रणधातुरिधकीऽस्ति।

[†] ऋत् उड्ड यस स ऋदुड् तस । जानस इतम्मित ऋदुङ्भातोः टीविभक्तौ, गुणनिवृत्ति व्या स्थादिलयैः । क्रपधातोः (६४८) क्रृपादेभेऽपि ऋदुङ्भक्रतिकलात् भभोकृपत् भचकत्पदिति दयमेव स्थात् । अत्र वायद्दर्णं परत्रानुवृत्तिनिवस्ययंत् । भवी-वृत्तदिति वर्त्तमानं ग्रैरिरत् । पाणिनः ०।४।०।

[‡] भस्पुपदिति स्वपनं ग्रैरिरत्, स्वप-जि: स्वापि धातः, टीटि भड् भनेन जिः, सुपि इत्यस्य दिलं, (६१८) घोष स्वेद्धसादं घः, (१११) वलं। पाणिनि: ६।१।१८।

[§] शो य निशाने, को य लूनी, पी य नाशे, हे बै स्पर्डे, व्ये जै इती, वे जै स्पृती, पापाने पै शोपे दति स्यं। यनी न दत् अन्ते। श्वनं प्रेरयति शाययति, पियन्तं पायनं वा प्रेरयति पाययति । पाणिनिः ०।३।३०।

७८३। दे: पिबः पीषो जत्रिङः।

(वे: ६।, पिष: ६।, पीप्य: १।, आईड ०)।

ग्रपीप्यत्। *

७८४। ही वी री क्र्यू द्धायातां पण् गुम्र जो। (की- बातो सा. पण्।रा, गः रा, पारा, जो ठा)।

क्रिपयति व्विपयति रेपयति क्रोपयति अपैयति स्नापयति स्थापयति। पे

৩८५ । खोढो ञाडी: । (खोड: ६१, আরি ৩), द: १।)।

तिष्ठतेरुङ दः स्यात् चाङि । अतिष्ठिपत् । 🕸

७८६। घोवा। (प्रः ६।, वा ११)।

श्रजिघिंपत् श्रजिघ्रपत । §

इन्द्रक्तस्य पापाने द्रत्यस्य पौष्यः स्थान् क्याङि । पिवन्तं प्रैरिस्त् ऋषीय्यत् ।
 पिवः किं, पै अपपीपयत् पाल रचणं अपपीपलन् । पाणिनिः ७।४।४ ।

⁺ की लि लर्ज, वी गिगलां. भी री उन्य चरणे री गिरवे दित दयं, क्रुयी उ द्रांसे, स्ट में हिंसे स्ट लिंगलां स्ट प्रांप च इति वयं, जाशी उन विधृतने द्रित पणां भारत्तानाञ्च औ पण स्थात, ण इत अल्याचः परः, यद्यासस्थवं गुण्या। क्रेपयतीत्थादी पणि कते, पकारस्यापि धालक्यवलात् अष्ट्रडीऽभावात् (५४२) अप्राक्षी गुणानिधानं । क्रोपयित चापयतीत्युभयत्र भान्याचः परंपकारिक्षत्या तस्थात् परत्या (२०५) इसा-स्रोप दित य-लोपः। भार्टिण भारत्ना भाष्, तेन टे उन्यालने (६०८) दापयति, इकी जग द्रश्यविषय्ये कापयतीत्यादि, (२०३) ईस्थाने भा। निक्रियतं, बीननं, रीयसाणं रीणनं वा, क्रूयसानं, स्रखन इत्रतं स्टब्बनं वा, चायसाणं, तिष्ठलव प्रस्थतीति वाक्यानि। पाणिनः श्रव्यह्म

[‡] स्था इत्यस्य उङ्क्षी ड्तस्य । पिष क्षते स्थाप इत्यस्य उङ: इ: स्थान जाडी-त्यर्थ:। ऋतिष्ठिपदिति स्थाप इत्यस्य भाकार इकारे स्थिपि इत्यस्य दिलादि, (१९१) पतं। पारिणनि: ७।॥॥ ।

[§] प्राधाती: पणि करी प्राप-भागस्य उङ इ. स्वादा अम्बि। अजिप्रिपदिनि

७८७। पाति-स्फाया र्लन-वङ्गे औ।

(पाति स्कायी: ६॥, लन् वडी १॥, औ ०।)।

पालयति स्मावयति । #

و একে। মী-খুন্সা नेन বা। (গী-খুন্সা, হা, নন্। হা, বা হা)। গীঅয়নি সায়য়নি, খুন্যনি ধাৰ্যনি। প

७८१ रह: पङ् वा । (रुह: ६१, पङ् १११, वा ११)। रोपयति रोहयति । क्ष

७६०। ग्रदोऽगतौ तङ्। (भंदः हा, अ गतौ का, तङ्।१।)।

श्वातयति। गतीतु, गाः श्वादयति गीपः। §

जिन्ननं प्रेरिरिदिति वाक्षे जी पणि न्नाप इत्यस्य चा इ:, तत: न्निपि इत्यस्य दिलादि। इकाममावपने न्नापि इत्यस्य दिलादी, (६१८) उन्हें। इत्वे, (६१८) सन्दन्नवे, (६४०) स्वेरिते, संगुरुलात् (६१८) दीर्घामावे, (६४१) जेलींपे, व्यजित्रपदिति। पाणिनः अधाद्।

- पा ल रचणे दलस्य लन्, स्काशी ङ बद्धी दलस्य वङ्स्यान् जी। लनी नित्तादन्ते, वङी ङिक्तादन्त्यस्य स्थाने। पानं प्रेग्यति, स्कायमानं प्रेरयतीति वाकादयं। पाणिनि: ०।६।४१, ''पातेर्लुग्नवनम्" दति वार्त्तिक्य।
- † प्रीय धूय प्रीधवी, तीच तीजी (ञानवयी) चिति तथी:। प्रीजृतर्पणे प्रीगञकानी इति दथी:, घृजगिकस्पे इत्यस्य चनन् स्यादाजी। निचादर्ना। धूज इति ज्ञानुवस्यप्रचात् नासंपानित्यर्थः। प्रीखन्तं प्रीयन्तवा प्रेरयित, धूननं प्रेरयित इति वाक्यदर्थ। ननीऽभावपचे (५००) अस्त्यची द्वतिः। "ियच्प्रकर्णे धूज-प्रीजीर्लुग्वचनम्" इति वार्त्तिकम्।
- ्रे जि न कही निन्यानित्यस्य पङ्स्यादा जी डिलादत्यस्य स्थाने । अन वा सहस्यं परनानुवृत्तिनिवस्थये । कप-धातोः रोपथतीति निजायपि, रोपथतीत्यस्य उत्-पादनायंत्रोधनार्थं कहः पङ-विधानम् । रोहनां प्रेरथतीति वाकाम् । पास्तिनः ०।३।४३।
- श्रम् तृ जी माते इत्यस्य तङ्खान जी, न तु गती । भीयमानं प्रेर्थात भावयित, पात्रभतो लये: । गत्यवस्य तु माद्यति गमयती लयें: । पाणिनिः अञ्चर ।

७८१। लाल्यो र्लन्ननौ सोहद्रवे वा।

(ला-ल्या: ६॥, लन्-ननी १॥, सेइंड्रवे ०।, वा ११।)।

साते र्लन् सियो नन् स्थात् से इद्रवे ऽर्धे जो वा। विसासयित विसापयित । विसीनयित, (७४५) मिम्योरिति ङा वा, विसापयित विसाययित घृतं। से इद्रवे किं, सौ इं विसाप-यित विसाययित । *

9८२। वा जन्धूतों। (वः हा, जन् ११, धूनी छ)। वाते र्जन्स्यात् कम्पने जो। वाजयति। धूती किं, केप्रान् वापयति। पे

७१३। क्रीजीङो उजा चि स्पर प्रजनार्थ-वीनान्तवा।

(की-कि-इंडः ६।, षच् ११।, था ११।, चि स्कृर-प्रजनायंवीनां ६॥, तु ११।,वा ११।)। एषामच श्रास्थात् जो, चारिसु वा। क्रापयति जापयति अध्यापयति। ढ़ो .

^{, *} संहस्य घृतादेर्द्रवीकरणं सेहद्रतः। "सेहिविपातने? इति पाणिनः। "सेहिद्रयद्रावणं?' इति क्रमदीयरः। सा ल च ग्रेहे, ली कि द्रावणे इत्येतथीग्रेहणं। ''लीलोडोः'' इति क्रमदीयरः (तिङन्तपादे ४५० म्वे)। विलानं प्रेरयित विलाल-थित, पर्चे (०८४) श्वादन्तलात् पण् विलापयिति। विलाययन्तं प्रेरयित विलीनवित। उभायस्य घृतं द्रावयतीत्वर्थः। पाणिनिः अश्वाद्रः।

[†] वां च गमन- डिंस बोरित्यस्य वान्तं प्रेरंश्तीति वाक्ये वाज्यति कस्ययतीत्यर्थः। कीक्षान् वापयति परिकारोतीत्वर्थः। पाणिनिः शः श्रम् । अत्र वैभातग्रहणं न तुवा-भातः, यती वजभातीवां जयतीत्यादि किंद्वो वे द्रत्यस्य पुक् (पण्) मा भूत्, द्रति पाणिनिटीका।

[‡] क्षीय जिल्ल इक् च समाहारे तस्य । प्रजनी गर्भयहणम् वर्षो यस्य सः प्रजनार्थः, सचारी वीचिति प्रजनार्थवीः, विष स्कृत्य प्रजनार्थवीय तेषां। वीनामिति (११०) नृक्षात्रभः मृत्रवात्। दुक्षी ज म द्रश्वतिपर्याये, जि ज्ञाये, प्रभी क्ष्ण प्रध्ययेने, एषामित्ययः। वापयतीत्यादि —क्षीणनं ज्ञायनम् अवीचानच प्रेर्यतीति वाक्यानि। अनेन यथः स्थानं आ, ततः (०८४) प्रादन्तवात् पृष्। पाण्यानः इ।१।०५,५४,५५।

अध्यजीगपत् अध्यापिपत्। चापयित चाययित। चपयित चययित (७८८) मित्वात् इस्व इति प्रक्रियारित दृष्टं। स्मार्यित स्मोरयित। वापयित वाययित, गाः पुरीवाती गर्भे ग्राह्यतीत्वर्थः। अ

८८४। सिस्यो घीत् खर्षे मञ्जा

°(सिम्यो: द॥, घात् ५१, खर्थं ०१, मं ११, च ११।)

अनयोरच आ स्थात् घात् ध्वर्धे जी मञ्ज। विस्नापयते भाषयते सुग्डः। घात् किं, कुञ्जिकयैनं विस्नाययति भाययति । 🕆

७८५ । भी भीष्वा। (भी: ११, भीष्।११, बा ११)। भियो घ-भन्ने भीष् स्थादा जी मञ्च। भीषयते मुख्ड: । क्ष

^{*} भध्यत्रीगपदिति भिष्टि रेटी दि, (०१३) गा-मादिशे, पण्, ततः गापि इत्यस्य हिलादि। गा भादिशस्य विकल्पपचे भनेन र स्थाने भा, ततः पणि भापि इति स्थिते (०१८) पि रत्यस्य हिले भध्यापिपदिति । चापवतीत्यादि भिन्नेनं प्रेरयित, चि-नि, भनेन र स्थाने भा, ततः पण्; पचे (५००,३५) छद्यादि । प्रक्रियाग्यं वैयाकृरण-ग्रथविशेषः । स्कृत्नं प्रेरयित भनेन वा छकारस्य भा । विनन् वियनं वा प्रेरयित वापयित, भनेन सा, ततः पण्। पचे छद्यादि । प्रीवातः पूर्वदिग्वायुः । वर्षास् प्रकेववयौ वाति गावी गर्भे एक्षनौति प्रसिद्धिः ।

[†] सि इ सिते, जि भी लि भीत्यां, अनवीरणी यदि जानकर्तां तर प्रतीयते तदर अस भा, आत्मनेपदस स्थादित । अत्य आ न स्थात् आत्मनेपदस स्थादित । विस्तयमानं विभ्यतस प्रीरयति भनेम आ, ततः पण्, आत्मनेपदिन । सुष्डः सुष्डित-मस्तकी जन इति दुर्गादासः। एवं विद्यापयते आपयते व्याप्तः उत्यादिष् कर्मृतः एवं वाल्यंप्रतीति.। भन्यत कुस्तिक्या मत्स्य विभिष्णे करणेन एनं अनं किश्चित् विद्याययित भाययित एवं खड्गादिना विद्याययित भाययित इत्यादिषु करण्तारकात् धाल्यंन्यत्तिः नतु कर्मृतः, अतएव असः स्थानं आ न स्थान्, भानानेपदस्त स्थान्। पाणिनिः द्राराष्ट्रद्रुष्ठ, राहाद्द्रा

[‡] घमधे कर्नृतीमधे निष्यत्नं इत्यर्थः। पत्ने पूर्व्वस्त्रीण भाग्यते इति। एवं स्रीपयते भाष्यते व्याघः। घान् किं,खङ्गेन तंनायथितः। पार्शिन शश्युरुः।

९६। दुषेरोदू: । (इथे: ६१, चीत ११), कः १।)।
दुपेरोकार कः स्थात् जो । दृषयित । कः

७८७ | चिद्धिकारे वा | (चिहिकारे था, वा । ११) । दूषयित दोषयित चित्तं । १

७८८। घटादि जनी जूष क्रस रजाम मारतोषनिशान निशामार्थ-ज्ञां खो ऽक्रमामचमो जीसमोस्तु देश्च जागुश्च।

(घटादि—क्षां ६॥, खः१।, घंकमामचमः ६।, ञीखमीः ०॥, तु ।१।, घं: १।, घ ।१।, कागु: ६।, घ ।१। ।

घटाबादे-रमन्तस्य माराबर्ध-त्रथ जो स्वः स्यात् नतु कमाम-चर्मां, जेः परयो रिण्णमीमु र्घय जागुष स्वो र्घः । क्ष

इर्द्ध्यौतिकते इत्यस्य जिन्निमित्तके गुणे कते दोषि इत्यस्य भोकारस्य जः स्थादित्यर्थः । दुषेर्घः इति कतेतु, दोषः दोषणं इत्यादि पदं न सिध्यति । दूषण-सितितु ज्यानस्यैव । दुष्यनं प्रेर्यतीति वाक्यं । पाणिनिः ६।४।८० ।

[†] चित्र मन: तस्य विकारियदिकार:, तस्मिन्नर्थे दुवे की क्री कीर का स्थादा इत्यर्थ:। दूषयति दोषयति चित्तं, क्रीघद्दति ग्रेष:। पाणिनि: ६।४।८१।

[‡] मारस तीयस निणानस निणामधंत्राः। घटादिस जनीस जृष्य तस्य स्वामी जासित मारतीयनिणानिणामाधंत्राः। घटादिस जनीस जृष्य तस्य रज्ञ समय सारतीयनिणानिणामाधंत्रास ते तेषां। कम च सम च सम च समामचम, न कमामचम स्रक्षामध्य तस्य। इण्(८२१) च णम् (१९८३) च इण्मी, जी: परी इण्यमी जी स्वी तथीः। गणपात मकारान्यसी घटादिः, स्वत्य घट प इः पेष्टे इत्यस्य ग्रहणं, नत् घट क हिंसे इत्यस्य। सादिना यावतीयानां मान्यस्यानां ग्रहणं। जनीयहणेन जनी स्यङ्गाद्रभावि दत्यस्य प्राप्तः, जन म लि च इत्यस्य मान्यस्यविधिन प्राप्तः। ज्यसः इत्यनेन समन्यस्यानां साच्य ग्रहणान् जृषि कि ज्ञानि इत्यस्याप्राप्तः। स्वाः इत्यनेन समन्यस्य ग्रहणं, का स्वा स्वा स्वान द्वा सम्बन्धः स्वान स्वान

घटयति व्याययित प्रथयति, जनयति जरयति क्रासयति, रज-यति सगान् रमयति, जापयति । जामादेख, जामयति श्राम-यति चामयति । ॥

७६६। ज्वल ह्वल ह्वाल ग्ला सा वन रम नमो ऽगे व्वा । (ज्वल-नमः ६१, चर्गः ६१, वा ११)।

एषामगीनां सः स्यादा जो। ज्वलयति ज्वालयति, ग्लपयति ग्लापयति ।

अगेः किं प्रज्वलयति प्रग्लापयति । 🕆

८००। वा शम यम फण गिस्वदां।

(वा ।१।, भ्रम यम फण गि-खब्दां ६॥)।

- घटमानं, व्यवसानं, प्रधमानं, नायमानं, जीर्थनं, त्रस्वनं, रननं, रममाणं, नामनं, सामयमानं, प्रमनं, चमनख, प्रवेकं प्रेरयतीति बाक्यानि । रनयतीत्यस्य स्गान् रमयतीत्यर्थः, तेन (६६०) सगरमणार्थं न-खोदः। रमयतीत्यर्थः, तेन (६६०) सगरमणार्थं न-खोदः। रमयतीत्यर्थः, तेन (६६०) सगरमणार्थं न-खोदः। रमयतीत्यर्थने स्नानोदा स्गानि स्वितं । जोग्रमु प्रनागरि
 प्रतितं । जोग्रमीमु अघि अघािट, घटं घटं घाटं घाटमित्यादि । आगुमु प्रनागरि
 प्रनागरि, नागरं नागरं नागरं नागारं ।
- + ज्वल न स बल- त्विषीः, हल इतन स च चाले, रखे कासे, चाल क्षीधने, यन स व्याप्ती, रसु इत् जो की दे, नसी शब्द नथीः । पूर्वमूत्री रला सीरप्राप्ती अन्वेषाधा निव्यप्राप्ती विकलाः । अत्र पर्यक्षवयती व्यादित्यात् निव्यं इत्यः, प्रग्लापयति प्रस्तापयती व्याप्यक्षेत्र । उत्तलनं ग्लायन्तव प्रस्तापयतीत् वाकादयं । रस इत्यत्र वस इति कि नित्पाठः । भाष्यम् ।

पितीपणं, निमानं तीक्णीकरणं, निमानी दर्भनभरणं। क्रमेण यथा - ज्ञपयित भवं वीर:, ज्ञपयित एवं पिता, ज्ञपयित खड्गं कम्प्रंकारः, ज्ञपयित रूपं कार्मिनी। निमानी ज्ञानभरणमिति कमदीयरादयः, अतएव विज्ञापनार्थं विज्ञप्तिरित्यपि प्रयोगः। एति इंद्रियं ज्ञापयित। पाणिनिः इ। ४। ६२, ६३, ७।३। ३४, वार्त्तिकञ्च।

एषां खः स्थाद्या जो। श्रमयति श्रामयति, यमग्रति याम-यति, फणयति फाणयति, परिस्खदयति परिस्खादयति । *

८०१। इनस्तङ-ऽणविणि ञ्णिति।

(इनः ६।, तङ् ।१।, भ-षप्-द्रणि ०।, ञ्षिति ०।)।

त्रिति णिति च परे हन्तेस्तङ् स्थात् नतु णिप दणि च। घातयति । पं

८०२। यि: सन् वेष्यी दि:।

(थि: १।, मन् ।१।, वा ।१।, ईर्ष्यः ६।, वि: १।) ।

ऐर्षियत् । क्ष

इति ञान्त-पाद:।

गी: खबर गिखबर, शम च यम च फण च गिखबर च तेवां। चुन वाशव्स्य व्यवस्थ्या शमुभिर्ध शमे दखस्य नित्यं इस्तः, शम क कालीचे दल्यस्य नित्यं इस्तः भावः। चौ यम चपरमे दल्यस्य नित्यं इस्तः, यम क मि परिवेशने दल्यस्य तृ विकल्पन। एवं चव प्रिपूर्वकस्येव सत्तरस्य वा इस्त दित कातन्त्रायाः, चन्यपूर्वकस्य केवलस्य च घटादिलात् नित्यमेव इस्त इति। शास्यनं शामयमानं वा, यमयनं, फणनं, परिस्तदः मानच प्रेरयुतीति वाक्यानि। माप्यम।

[†] साप्च इष्च थियण्, न पविष् भनियण् तिकान्। जच या घ ज्यो, तौ इतौ यस्य स ञ्थित् तिकान्। तङी ङ इत् अन्यस्य स्थाने। प्रनां प्रेरयतीति वाकी इन-जि, भनेन इनो नस्थाने त, (६०९) इन्स्थानं घ, (५००) इति:, घाति इति (६९१) धातु:। यावियोम्नु जघान्, भघानि। पाणिनि: श≷।३२।

[‡] जो कित दिलहिंगी सित ईप्यंत्रातीः यिरेव दिः स्यादिल्येकीऽयः। सिन किते तृ यि वा दिः स्यात्, मन् च वा दिः स्यादिल्यपरीऽर्थः। ईप्यंनं प्रेरिरिट्ति वाको ईप्यं जि, (००५) य लीपस्य निल्वेदिष येदिंत्विधानज्ञापकान् यलीपाभावे ईप्यं द्रत्यस्य (६२१) धानसंज्ञायां टी दि, (६१३) भङ्, ततः चनन के क्लं यि द्रत्यस्य दिले, (६४१) जे लीपि ऐप्यियदिति। सिन तु (५५४) इमि. यि द्रत्यस्य दिले ईप्यंयिषित, सनी दिले ईप्यंविषति। ''ईप्यंतेस्टतीयस्येति वक्तव्यम्' दिति वानिकम्।

२य पाद: - सनन्त: ।

-00000a-

८०३। सन्तिच्छायां। (धन्।१।, इच्हायां ०।)।

धीः परः सन् स्थादिच्छार्थे । अनुमिच्छित जिघसति । दिदा-सते दिदीषते, दिद्योतिषते, उतिच्छिषति उचिच्छिष्ति, श्रिध-जिगापियषति अध्यापिपियषति, श्रुमाविषति ग्रिष्वायिषति, जुद्दाविषति । *

^{*} यस धाती येँ। ऽर्थनिविषयाया-भिकायां तस्मात धाती सन स्वादित्वर्थ:। अत-निक्कतीति वाक्येन, इक्छायां तुमगर्भायामेव, नतु अदनमिक्कतीत्यादिकपायां। गर्भादिच्छायां'' सित्रति भीमरात्र। इच्छासननात् पुन नै सन्, इच्छाया इच्छान्तरासमः-वात । स्वार्थमननात्त्र स्थादेव, विकित्सिषतीत्यादि । भवेतनस्य दक्काया अमुक्तवेऽपि नदी कुलं पिपतिषती त्यादी विवचार्या सन्। सन्प्रत्ययश्च वक्तरिच्छ्या वैकाल्तिक एव. पची वाका खेव स्थितिरिति । सनी न इत् चिक्रार्थः, घदन्त-स-स्थितिः । जिघतसती खादि-भद-सन्, (६०३) घस-भादेश:, (६६८) सस्य त, घला इति, ततः (६३२) दिलादि, जिघलस इति (६३१) धातुसंज्ञा, ततः तिष्, थए, (५४३) सनी ऽकार-लोपः। सनन्त्रधाताः (६३६) सनः पनि इत्यनेन परस्रोपदादिनियमः। दातुमिक्कति दी-सन (०४३) ङा वा, दास इत्यस्य दिलादि, पचे दीस इत्यस्य दिलादि। यीतित्तिकृति युत-सन्, (४५४) इ.म्, दिलं, (६४०) खेर्जि:। एक्छितुनिकाति उक्छ-सन् इ.म् चिक्तप इति श्विते. (७१६) चकारं हिला किए इत्यस दिले, (५८६) खेल्कस वात्। भध्यापियतुमिच्छति मधि-इ.जि-सन्, (৩१३) दुङो वागा-मादेगः, (৩८४) मादल-लात पण, गापि घातः, ततः (५५४) इ.स., गुणः, एस्याने चय, गापियव इत्यस्य दित्वं जिगापिश्यम धातः ततः तिबादि । पचे (৩ ং ২) इ स्थाने द्या, पण्, भापिश्य इति स्थिते (৩१८) चाकारं दिला, पयिष इत्यस्य दिलादि। স্বাযयितृनिकाति স্থি-জি-सन्, (६६८) श्विभाती विकल्पेन जि:, (५३०) प्रायच्कार्व्यादिति नियमेन ग्रुइस इत्यस्य दिले, तत: (५००) बद्यादि, इमादि च। जि-विकलपचे शि इस इत्यस्य दिवादि। हाययित्मिक्कति है जिसन् (६०८) ए खाने चा, हाइ स इत्यस्य दिले (६६०) विवत-ते धाती जि:, हा भागस्याभावात् (७८२) यनीऽभावे, बद्धादि, दमादि घ। पाणिनि:३।१।७। भात्र सूत्रे विकल्प:।

८०४ | खुर्नोनिमि | (गःश, न ११), चिनित छ।। ग्रनिमि सनि ग्रुर्ने स्थात्। विद्वस्ति विवर्त्तिषते, निरुत्सिति निनर्त्तिपति, तितरीपति तितरिषति तितीर्षति । *

८०५ | द्वा ऽज्कानिङ्गां । (र्व: ११, अन्मिनङ्गमां ६॥)
यजन्तस्य हन्ते-रिङ: स्थाने जातस्य गमय र्घः स्थात् अनिमि
सनि । दुध्वूर्षति दिध्वरिषति, वुवूर्षति विवरीषति विवरिषति
सञ्चिष्कोषति, जिगीषति, चिकीषति चिचीषति, जिघांसति।

८०६। गसीलिङोः। (गमि।१।, इन्-इडो:१॥)।

क गासि इस् यस्य सः चिनिष् तिस्तिन, सिन इत्यस्य विशेषणं। सन् इत्य विभितित्यत्ययंन चन्तिः। यत्र गुणस्थानं समावित तत्रेव सनीऽगृणित्वं, वं जिघांसतीत्यादौ (६७६) न जम् लीपः। वित्तिनिष्किति विवन्भिति (६४८) चत्र पस् इत्यन्न भाविष्यस्येपदे, (६४८) बद्धारी नेस् पे इति इभिनिष्धे गुणनिषेषः, व इत्यस्य दिलादि। चालानेपदं तु इसि, गुणः। निर्तिनिष्किति निज्त्मिति निनिर्तिष (७३६) इसीऽभावपचे गुणाभावः, इस्पर्चे गुणएव। तरीतुमिष्कितीति पदः तू-सन् (७४०) वा इस्, (६२०) इसी वा दीर्घः। चिनिष्पर्चे अगुणलात् (६ः स्रस्थानं इत्, (२२८) तस्य दीर्घः। पाणिनिः १।२।१०।

[†] इस्रो गम इक्षम, अच् च इन् च इक्षम् च तेयां। दुष्वृषैतीत्यादि ष्वर्त्तिम् च् मन् (०४०) अनिम्पचं अनेन दीर्थं, पन्तरक्षतादादी (६२८) उर्, ततो दिला (२२८) दीर्घः, दुष्वृषै धार्ताक्षिणादि। इम्पर्च दिष्वरिषति। वरीतुमिच अन्न दीर्घं, ऋष्याने उर्, ततो दिलादिकां। इम् (६२०) इमी वा दीर्घः। सकत्तीत्वक्ति मंस्यासन् (०४०) स्क्रार्जनात् म इम्, इ दीर्घं, (६२८) ऋष्याने इर्ग, तस्य दार्घः। जेत्मिक्किति जिन्म् (६००) गि-आर्द्धं भिन्न दीर्घं गोष इत्यस्य दिलादि। चेतुमिक्किति जिन्म् (७४६) वा कि-आर्द्धं भनेन दीर्घं । इन्तुमिक्कित इन्-चन्, अनेन दीर्घः, इन्स इत्यस्य दिलादि, (६ इस्य इ। पाणिनः ६।४।१६।

द्रनिङोः स्थाने गिमः स्थात् सिन । जिगमिपति, श्रधिजि-गांसने । *

८०**) नेम्गुहग्रह:।** (नारा, इम्वारा, खगुइन्यहः प्रा)। उवर्णान्तात् ग्रही ग्रहथ सन इम् न स्थात्। जुङ्घिति, बुभूः षति, जुष्ठचिति। पं

८०८ | ग्रहस्वपप्रच्छा जि:। (गडसप मध्या रेण, जि.स)। एषां जि: स्थात् सनि । जिष्टचिति, सुपुप्तति । क्ष

८०१। स्मिङ पूङरन्जभ्र क्विर गिर द्रिय प्रच्छ इस्। (विक्ष पूड-भ-वन्ज-वय्-प्रच्छ ४।, उस ११)।

‡ गडौतुमिक्कति ग्रहसन्, पूर्वस्वेण दम्निष्धः, प्रश्नेन जिः, स्थ्य हः, गस्य पः, दक्ष कः, प्रव द्रत्यस्य दिलादि । स्वृप्तिक्कतिः साप प्रन् वीदिलादिमः, अनेनः जि , सुप्स दत्यस्य दिलादि, (१११) वर्ले । पाणिनि कास्त्रिम्सर्यः

[•] गमिरित इकारानुबस्यन गमधालादेश: स्वादिव्यथं: । गमधातुनैव पदिमिन्नी दन: स्थानं गमग्देशकरणं, गमनार्थस्य इन-धाती गमादेशः स्थात्, ज्ञानार्थस्य न स्थादिति ज्ञापनार्थे, तेन ज्ञानार्थे प्रतीविध्वति (५२६) मनुभागेके स्वयमुदाहतं। एत्मिन्किति इसन्, गमादेशे (६२४) गमोऽभे स इस् इति इस् गमिष इव्यस्य दिलादि। अर्ध्वत्मिन्किति अधि-इ-सन्, गमादेशे (५०५) दीघें, इङ: स्थानिवच्चादाब्यने-पदिवये, गमोऽभे स इमित्यन आत्मनेपदन्तर्भनिहिमीऽभावे, गांस इव्यस्य दिलादि। पाणिनि: २१४१४०,४८। अन वक्तव्यम् --(२१४१४६) इति पाणिनिएनेण इन्धानी: सन्वत् त्राम्नेऽपि गमादेशः, बाधनार्थे तु न भवित। यथा गमधनीति। बीधनार्थे तु मल्याययित।

[†] ख्य गृहस् यहस्य तस्यात्। उ: जनणांनः। हीत्रीस्किति सन्, (८०५) हीचें ह्रव इत्यत्य हिलादि। एवं ह्वानुसिक्किति, ह्य भन्, (६०°) एस्थाने या, श्वास इत्यस्य हिली, (६६०) हिक्तस्य जि:, ततः दोधें जुह्यति, अवापि उदललादनन इम्-निवेधः। भिवत्रिक्किति बुभूषति दोधींदलन्वादिग्निकिधः। गृहिन् मिक्किति वुभूष्य दि, (१०५) उस्य कः, पुष्य द्वास्य हिलादि। पाणिनिः शहारि ।

एभ्यः परस्य सन इम् स्थात्। सिसायिषते पिपविषते श्रदिर-षति श्रिक्काजिषति श्रीमिषते चिकारिषति पिप्रिक्किषति। अ

८१०। स्रम् च स्व स्व यूर्ण भर दरिद्रा सन तन पत ज्ञपर्डिंदिन्भिवो वा। (सन्न-रण: १५ वा ११)।

एथ्यः सन इम् स्यादा। विभिन्निपति विश्वजिषति विभन्निति, शियथिषति शियीषति, सिस्तिपिति सुसूर्षति, शियविषति युगूषति, जर्गुनुविषति जर्गुनविषति जर्गुनूषति, विभित्ति वुभूषति, दिद्दिषति दिद्दिद्रासति, सिस्ति-षति सिषासति, तितनिषति तितंसति,—तितांसतीत्येके। पिपतिषति। गं

^{*} सिक्ष च पूड च स्य अनुल च भग्र विरच गिरच दियच ियय प्रच्छ च तथात्। सिक्ष पूडी छंकार: भाक्षनेपदिल-जापनार्थ:। भग्र इति जकारानुबन्ध:। किर गिर दिय प्रिय इति कृ गृह घृद्येपां यहणं। सिक्ष स्ट ह ए एषां (५००) एकाजिवणां-नत्वात् एकाजृवणांनत्वाच् , पू इत्यस्य (६००) खवणांनत्वात्, प्रच्छ इत्यस्य भौदित्वाद्य इति कृ गृ एतयोष (७४०) विकत्य-प्राप्तो, लिखार्यं विधानं। सिक्षयिवतं इत्यच (५२०) जिल्होरिति नियमेन सूलधाती-नेपतं। सिक्षयिवते इत्यच (५२०) जिल्होरिति नियमेन सूलधाती-नेपतं। विप्रविवते इति पू इ स इत्यस्य (५२०) प्रागच्कायादिच विरिति नियमेन भारी दित्वे, (६१०) वस्यमाण-जयत्योरियनेन स्वेक्कारस्य इ:। भरिरियति स्ट इ स इत्यस्य स्थानं हित्वे। दिवते वस्यस्य स्थानं हित्वे। पिष्ठ इत्यस्य पायचं (०१०) क्याचं हित्वा तिष इत्यस्य वित्वं। भिक्षतिवित इत्यस्य वित्वं। भिक्षतिवित इत्यस्य वित्वं। भिक्षतिवित इत्यस्य वित्वं। भिक्षतिवित इत्यस्य वित्वं। पिष्ठाचिति इति इत्यस्य वित्वं। पिष्ठाचिति इति इत्यस्य वित्वं। पिष्ठाचिति इति इति प्रकारोविति वित्वरिवित इत्यस्य वित्वं। विवितिवित इत्यस्य (६२०) इसी दीघें चित्ररिवित इति भवारे इति । विद्यासित विविति इति इति । एवं जित्ररोविति निगरिवित, दिदरिवित, दिवरिवित । पिष्ठच्चित्वरित (६००) सूर्वसूचेण जिः। पार्थिनिः ०१२४,०५ ।

[†] अस्त च त्रिय खृष युष जर्ष्य मरय दरिद्राय समय तनस पतस प्रव क्रिया दन्भ प दव च तत्तवात्। सस्ती अ ग्रापाके, यि अ सेवायां, ब्हुज ग्रब्दी

८११। मि मी मा दा रभ लभ शका पत पद हिंसार्थराघोऽचोऽनिमसनीस खिलोपस्।

(मि-राधः ६।, भवः ६।, भिनम्सनि था, इस् रि।, खिलीपः १।, च ११।)। एकामच द्रस् स्थात् खिलोपञ्चानिम्सनि । (२१३) स्थादेः सी लोपः । पिस्ति । जिज्ञपयिषति । *

पतापयो:, युल नियाणे, कर्णाञाल श्रीष्कादने, सुञ भरणे इति भीवादिकस्य ग्रहणं नतुभा लि भृतिपुद्योरिति जुड़ी खादे: प्रस्य तुबभूषंती खेव। टरिटाचल टर्गला षन दुञ दाने, तनुञ द विचारे, पत ऌ ज गथां, पत्य उँध्ये इति इयं, जातन मारणादी, ऋध्य निर्वंदी, दन्भु न दन्भे, द्रव इति द्रवानाः दिव विव ष्टिवादिः । स्व-भाती वेंसर्लंडिंग अब सहयां. क दुस नो स्वच्या इति (५०३) एषां वेसामित सनि वेनलं नासीति जापनार्थे, तेन नेस्युइयह इति इस्निपेधे रूढवित दुदृषति सुसूषति ननपतीत्येव। सप्टसिच्छति सस्ज-सन्. अनेन इम् (०५१) वा भर्जादेशे दिलादि। पचे भसन इ.स. इति (६४) संस्थ द, (४६) दस्य न, मिक्किप इत्यस्य दिलाटि। इसी विकासपची (११३) स्थादी: स-सोपे, (१५४) वह, (६०२) वस्य का अच इत्यस्य हिलाहि। श्रयितुमिक्कति इमीऽभावपचे (८०५) दीर्घ. श्रीष इत्यस दिलाहि। स्वितं स्तर्ते वा इक्ति पनिमपचे चरकारस दोघें, (६२८) उर, (२२८) तस दीघें, स्वर्ध इत्यस्क दिलादि। यवितुमिक्कति युद्र ष द्रत्यस्य (५३७) प्रागचकार्यादिति नियमेन आदी दिले तती गुणादी युयविष इत्यस्य (८१६) खेवकारस्य द:। ऊर्णवितृति च्छति ऊर्ण द्रष इत्यस्य (७२१) इमी डिव्लं, (५८८) उकारस्य उव, कर्णविष इत्यस्य, (७१९,७२०) कं रख डिला सःविष इत्यस्य हिलाटि। इसी डिक्लविकल्पपचे गुस:। अनिसपर्चे षनिमसनि (८०५) दौर्घ: । भर्माभिष्कति, षनिमपचे ऋकारस्य दौर्घ: ऋस्याने घर. तस दीर्घ: अर्थ इत्यस दिलादि । दरिद्रितृ निकाति, अनेन इ.म्, (६१०) आ लोप:, दरिद्रिष इत्यस दिलादि। चनिमपचे (७०२) सन्वर्जनात्राकार लीप:। सनितु-सिच्छति (=१८) जिन्नोरिति नियमात न मुलस्य पर्लं। चनिमपर्चे (६५५) ङा, सा स इत्यस्य दिलाटि । तनित्ति च्छति, चिनमपचे (५०) नस्यानुस्यारे तंस द्रत्यस्य दिलाटि । (८०४) सुर्गानमोत्यन कुर्यस्कावनायामेव धनिम्सनीऽगुक्त. धतएवान अगुर्यताभावे (६०६) न अमुखोप:। एके इति पाणिनीय-जीमरा:, तनोतेरनिम्सनि वादीर्क-मिक्कनीत्यथः (परक्तिनः दाशश्च)। पतित्तिमक्ति पिपतिषति । पाणिनिः कश्शिट. वासिक्छ।

* जुनि ज न चेपे ; भी जगवधे, भी कि गत्यानिति दयँ; मादति माल च माने, माख्र लि शब्दे, माङ य च, ने ङ प्रतिदाने, मे इट य तुच दति पच; दाद्रिक ८१२ | ज्ञपङीपामीयः। (जप-सध-आवां इण,ईर्यः १॥)।
एषामच ई ईर् ई एते क्रमात् स्युः खिलीपश्चानिम्सनि।
जोमति। यहिं धिषति ईति सति। दिदिभाषति। अ

८१३। दभा यो । (दमः ६१, यो १॥)।

दन्भे-रच द ई च स्यादिनिमि स्नि खिलोपय। धिसिति धीसित अनकारिनिईयात्। दिदेविपति। पं

८१८। क्योः भ्रष्टावणौ अस्कौ यङ्खुकोस्त वा। (क्वीः ६॥, प्रश्रो १॥, पणौ ०।, जम् कौ ०।, यङ्खुक् वीः ०॥, त । ११, व। ११)।

दा-मंज्ञकाः, तेन दा-न लूनी, दा त् दाने, डुदा ज लि च दें ड पालने, दो य च्छेदे. डुधा ज लि धारणे, धे ट पाने इति सत्त ; रमी ड रामस्रे ; लमी ड लामि ; मक छ्य भक न ज मकौ दित दयं ; पत लुज गत्या पत्यडेग्य द्वति दयं ; पत्यो ड गती ; राध्यौ सिद्धौ अव तु हिमाथं.। एषामच द्रम् स्थादित्यथं:। भक-धाताः स्वमते जिद्दिलात् वैनर्लंडिप बहुशदिना मतं अनिम्ल । पित्यतीत्यादि, पतितृमिच्छिति पूर्वस्व च भिन्मपचे पत्त स दत्यस्य दिले, अनेन खेलापे, अकारस्य इम् पिस्तस द्वित स्थावें स-चौपः। जपयितृमिच्छित जपि सन् पूर्विण दम्, गुणादौ अपयिष द्वस्य दिलादि। पाणिनिः १ १ ४ ४ वार्षिकः।

[•] ज्ञय ऋष च भाप च तपां। ईस ईर् च ईयु ते द्याँ:। ज्ञप द्यस्य यच: स्थाने ई, ऋष: देर्, भाप. ईदित कमः। जीमतीत (८९०) त्रानिम्पचे त्रानेन खिलीप: अस्थाने देश, (६४१) कें लें।प:। भार्यविभिच्छति ऋष सन् (८१०) सम्ज दति दम्, अधिप द्यस्य त्र रख दिला धिष द्यस्य दिलादि। त्रानिभपने (६४) ऋसा द्यस्य ऋ' हिला सा द्यस्य दिले, भानेन खिलीप:, ऋस्थाने दर्भ। दिशित-मिच्छति दम्भ सन् (८१०) सम्ज दति दम्। पाणिनिः ७।४।५५,५८।

[ा] इय देव दें, ती थी। घिमतीत्यादि, दन्भ-धन्, (८१०) अस्ज इत्यनेन इभी ऽभावपत्ते, घव मूर्व दभ इति घ-नकार्गनदेंशात् गुणसम्भावनाभावऽपि घनिस सनि न-लीप:, ततः (१७०) दस्य घ, (६४) सस्य प, घम इत्यस्य दिलं, घनन खिलीपः धकारस्य इ, देंच। देवितुसिक्किति दिव धन्, अस्त इत्यनेन इवन्तलात् वा इस्। पारिणित, ऽ।४।४६।

क्रकार-वकारयोः प्रकारोटो स्थाताम् अणी जसे क्वी च, यङ्-लुकि वे च वा स्तः । दुद्यूष्रति । * मित्सिति दित्सिति धित्सिति, रिफ्ति लिफ्ति, शिचति, पित्सिते, प्रतिरित्सिति, हिंसार्धः किं, श्रारिरात्सिति । ईसिति । पै

८१५। मुचीऽढे हे में।च वा सनि।

् (मुच: ६।, भंडे ०।, इ: ६।, भीच ।२।, वा ।२।, सनि ०।)।

अटस्य मुची दे: स्थाने मीच वा स्थात् सनि । मीचते मुमुचते । 🏗

^{*} क प व च कृ तियोः। भ य जट्च तो। अस् च तिथ तियान्। यङ्-लुक्च व प यङ्च्यां तयोः। जम् प्रत्याहारः। क स्यान् भः, व स्थाने जट्— इति कमः। पाणानिति पृथक्षद्वारणात् यङ्च् कि तत्रसम्बन्धासावे गुणिःन चगुणे च जसे वा मः, वकारित् यङ्च् कि चन्यत्र च मर्थ्यां धान् वकारि वा मः; किषः पृथक्षज्ञहणात् कंवनं किभी वकारि नियमित्ययेः। द्युपतीति दिवसन्, इमीडभावपर्ध-अनिम् सनीडगुणावे, अनंन वस्थाने क, युष इत्यस्य दिवादि। पाणिनि द्राधार्थः, भाष्यः।

[†] सम्जाशित्यशोदाहरणान्यृतानि, सिमीमाहित्यस्यै छदौहरणात्याह — सित्यती त्यादि, मेतुं मातुं वा इक्ति सि भी मा एतिथः सन्, चिनम्मिन चचः स्थाद्धे इस् सिस्म इति (६६०) सस्य त, खेलींपः। चात्रमिप्पदिनान्त सित्यते इत्येव। दातु-मिक्कित दा-सन्, धातुमिक्कित धा सन्, मित्यतिवत् साध्यं। रखुमिक्कित लक्षु-मिक्कित रभ-लभाश्यां सन्, च्लाग्स्य इस् (२११) स्थादेः मलीपः, (६४) भस्य प, रिष्म इति दिलं, खेलीपः। प्रकृतिक्कित प्रक सन्, चचः स्थाने इस्, स्थादेः सलीपः, सनः सस्य (१११) चलं, शिच इत्यस्य दिलं, खिलीपः, श्रिचते इति च। पत्तृमिक्कित पदः सन्, इस्, स्थादेः सलीपः, पत्म इत्यस्य दिलं, खिलीपः। प्रतिराह्मिक्कित, प्रतिराध-धातुः हिंसागः, चत्रपत चचः स्थाने इम् खिलीपय। चाराध धातुराराधनार्थः चत्रीन इस्खिलीपय। चाप्रमिक्कित वाप सन् (८१२) चा स्थाने द्रं, द्रेष इत्यस्य दिलं, खिलीपय।

[‡] ढस्याभावी ऽढ़ंतिकिन्। चन्नमंत्री सतीव्यथः। इनौ चढस्य इति मुची विश-षणं। चढस्य देमुंची भीच वास्यात् सनीति न्नथनात् सनं हिला केवलस्य सुची हिल्लिमिति ताल्ययं। भीजुनिच्छति चढविवचायां पापात् स्वयं मुक्तो भवितुनिच्छती-त्यर्थः, मुच-सन् श्रीदिलान्नेम्, दिक्तास्य सुची मीचादेशे (२११) कुछं, (१११) पल,

८१६। जयत्योः खोर्ये।

(ज-यल्पो: ५१, ख्यो: ६१, ६ ११।, ए ७१)।

खेतवर्णस्य जकार-यल-पवर्गात् परे श्रवर्णे परे दः स्थात् सनि । जुगती, जिजावियपति । रिरावियपति, पिपावियपति विभाविषपति । जयल्पोः किं, नुनावियपति । श्रतएव जो दिले वि: । *

८१७। यु सु सु रु प्रसु चुङां वा।

(गु—चुङां ६॥, वा[°]।१।)।

शियावयिषति श्रयावयिषति । १

भीच इति धातुः, पचे सुसुच-धातुः। कर्म्यकर्नृत्वादात्मनेपदं। षढे इति किं, सुसु-चिति वत्संगीपः, अव न पददयं नात्मनेपदछ। पाणिनिः ७।४।४७।

क्ष जय यल्च प्रय तक्षात्। खेदः ख्युतस्य। ए इति भः शब्दात् सप्तमी। जकारात् य व र जातू पवर्गाच परिस्तिती थेऽवर्ण किस्तिन् परि खेदवर्णस्य इः स्थात् भ्रथ्यविक्तिस्तानं उत्तर्भवात् व्यवहिते सनोत्यवं:। ज्ञानाविति पानुपाठः। जावितिन् मिक्ति जुः कि द स्थस्य विक्ते प्रयात् इद्घादी जुजाविष इति स्थिते, भनेन जकारात् परे ऽवर्णे परे खेदवर्णस्य इः। एवं राविष्नितिमक्ति, पाविष्यतिमक्किति, भाविष्यतिमक्कितीलादि । नाविष्यतिमक्कितिलास्य नकारपरिस्थातवर्णे परे न स्थादिति । एवं सुवाविष्यविक्ति जुहाविष्यक्तीलादिषु न स्थात् । जवन्तं धैरिरदिलादि वाक्षे भजीजविद्यादिष्यिष (६३६) खेः सन्व- इति अनेन खेदवर्णस्य इः। भन्यत्व जो, दिले, पद्यात् विरिति प्रागच्कार्थादिलस्य स्वरूणांदः। पाणिनः ९। । । ।

1 युव सुय सुय दुव पुष सुय खुङ च तेवां। यु यवणे, सु गती, ण स प्रसुत्यां दु पुङ सुङ खुङ च गती, एवा सतानां खेरवर्णस्य द: स्थादा सनि, षव्यविद्वतावर्णस्थासभ्यवात् वर्णदयवदिते ऽवर्णे परे इत्ययं:। यु प्रश्वति धातुगद-णात् अयल्पोरिति नानुवर्षते। याविष्ठिनिक्कति यु जि सन् दिलादौ खेरवर्णस्य वा द:। एवं प्रस्त्वनं प्रेरिरिद्ति वाक्ये यु-जिटी दि, षङ, यु द दलस्य दिलादौ, खः सन्वद्वति, पनेन खेरकारस्य वा दः समियवत् त्रग्रयवदिलादि। पाणिनि: १४८१ । पव सुव सुधातुनं दृष्यते।

८१८। व्युङो ऽवा इसादे: सेम: क्वाच किहा स्ट्विट्म्षस्त नित्यं।

(ब्युङ: ५१, घ-व: ५१, इसादे: ५१, सेम: ५१, क्वाच् ।२।, घ ११, कित् ।२।, वा ।२।, बद-विद-सुष: ५१, तु ।२।, निल्बं २।)।

हसारे: सेम उकारोङ इकारोङय वान्तवर्जात् सन् क्वाच कित्वा स्थात् रुद्धादेसु नित्यं। रुरुचिषते रुरोचिषते, लिलि-खिषति लिलेखिषति। रुदादेसु रुरुदिषति विविद्धिति सुसुषिषति। वान्तः किं, दिदेविषति। *

द१६। जिस्तोः खेः सः पः षग्यस्वित्स्वत्-सहः । (जिन्लोः ६॥, खेः ४॥, मः १॥, षः १॥, षणि ०॥, ष-धिद्-खद्-चहः ६॥)। विः परस्य जान्त-स्तौत्योः सस्य षत्वभूते षणि षः स्थात्ं, न तु स्विद-स्वद-सहां। सुष्वापिष्यषित तुष्टूषित। जिस्तोः किं, सिसिचति। षणीति किं, तिष्ठासित। खेः किं,प्रतीषिषित। पं

इति सनन-पादः।

^{*} उस इय वी, तो जङी यस म व्युङ तसात्। नासि व (वकारानः) यत्र सः भव तसात्। इकारोकारोङ् गर्यं कारानः भातोरभावात् सत्र व इति दत्व एव। इस- आदि र्यस्य तसात्। इमा सह वर्तमानः सेम् तसात्। ज्ञाच इति चलारेण प्रकरणवणात् सन् आक्रयते। रोचित्मिच्छति कच-मन् इप, भनेन सनः किन्तं गुणाभावः, रुचिव इत्यस्य दिलादि। एवं लेखितुनिच्छति। रोदितुनिच्छति वेदितुनिच्छति। पर्वे तेसित् । एवं तेसित् । पर्वे तेसित। रोदितुनिच्छति वेदितुनिच्छति सोवितुनिच्छतीत विद्वानिच्छति। एवं देसिता। पर्वे देसिता। पर्वे देसिता। पर्वे तिस्ता। एवं देसिता। पर्वितः १।२।८,२६।

[†] ष्रत्नप्राप्तौ नियमीऽयं। ष्रत्नभूते षिष खिनिमित्तकं सूल्यातीः पतं ज्यन्त-ष्तौत्योरिव स्यात् नान्यसित्यर्थः। भ्रष्तनभूते सनि, तथा खिरन्यसात् पत्नभूते षर्ण्यपि पूर्त्तनियमो बलवानिति। खिद-खद-सदां ज्यन्तानामेव निषेधः। खोपयितुनिच्छति,

३य पाद:--यङ्ग्तः ।

८२०। मूत्र सूत्र सूचाटमर्जूत्रर्णु हसाद्येकाचे। ऽशुभरुची मुझर्मृशार्थे यङ्।

(मूत-एकाच: ४), षग्रमक्च: ४), सुइसंशार्थे था, यङ् ।१।)।

एभ्यः ग्रभक्चवर्जभ्यो यङ् स्थात् पौनः पुन्ये अतिमये चार्षे । *

 \mathbf{z} २१। गत्यधीर् गृ लुप सद चर जप जभ हें । $(\mathbf{q}, \mathbf{q}, \mathbf{q},$

गत्यर्थात् वक्रे, यारे र्गर्हायां, यङ् स्यात् नतु पूर्वीक्रे, तद्युक्ते तुस्यात्। 🕆

स्वप-नि-सन्, स्वापियम दलम्य दिलं, (६४०) स्वे निं:, (१११) सनः सस्य मूलधातीय पतं। सीतुमिच्छिति नु भन्। ८०५) दीर्घः, स्वूष दलस्य दिलं, उभयव पतं। सेनु-मिच्छिति सिष-सन् (२११) कुंड्, सिक्स दलस्य दिलं, (१११) सनः सस्य पतं, ज्ञान-स्-पु-भिन्नलात् मूलस्य न पतं। एवं सुम्पतीत्वादि। स्थानुमिच्छिति स्था-धन् स्थास दल्यादी, निमित्ताभावात् सनः पलाभावं, एतित्रयमविधिकूत्लात्, (१११) मूलस्य पतं। प्रशेनुमिच्छिति प्रति-द-सन्, (७१८) दकारं हिला कोवलं सन एव दिलं, (६४०) खेरित्वं, सनः सस्य पत्ने, मूलधातृनिमित्तकं स्वः सस्य पत्नं स्थादिन, सनः सस्य पत्ने, मूलधातृनिमित्तकं स्वः सस्य पत्नं स्थादिन, परिस्तिम्लभावादितिव्यविधानिक्षकं स्वः परिस्तितम् स्वादिन स्वः। परिस्ति स्वादिन स्वादे। स्वादिन स्वादे। स्वादिन स्वादिन स्वादे। स्वादिन स्वाद

[•] इसारियाधी एकाविति इसायेकाच्। सूत्रय स्वय स्वय घटन अभव धर्मिय कर्ण्य इसायेकाविति तथात्। न वियेति यभवनी यन तथात्। सृह्य स्वय सृह्मंभी तथीर्यं लिखन्। इसायंकाच इति सामान्यवहणात्, सूत्रमूचाना-सहन्तंत्व सनेकाचलात् यट यथ धर्मि कर्ण्याच धनादिलात् धप्राधी प्रयगुक्तिः। यङी ङानुबन्धः चगुणार्थः धालानेपदार्थय, बदन-य-खितिः। पाणिनिः शाशर, यार्तिकं भाष्यय।

[†] गृथ लुप च सद च चर च लप च अपन च दन्श च दह च तस्मात्। यक्र च

८२२। खेर्पु:। (खे: ६।, प: १।)।

यिङ परे खेर्णुः स्थात्। पुनः पुनरित्रययेन वा सूत्रयित स्रोसूत्राते, सोस्त्राते सोस्चिते। *

८२३। घी ऽनितः। (र्घः रा, भ-नितः ६।)।

अन्नकारेतः खेः यः स्यात् यक्ति । अटाव्यते अयास्यते अरा-र्थ्यते कर्णीनूयते । पे देदीयते मेमीयते जेगीयते जेहीयते पेपीयते सेषीयते तेष्ठीयते । ध

गर्डाच बक्तगर्ड तिखान्। गत्यर्थादिति गृलुगादिश्ति च पृथक् पदकरणं वक्तगर्डान्या यथासङ्घार्थः, तेन गत्यर्थात् वक्षे गाडे गर्डायामिति । न तु पूर्व्वोक्ते इति एन्यो सुद्धर्मशर्थे न स्मात्, तदयुक्ते सुदुर्यन स्टबायेन वा युक्तयो वैक्षगर्डयोज् स्थादित्यर्थः। अत्र गत्यर्थादिति इसाधीकाच एव, पूर्वक्षेत्रे सामान्यती ग्रहणात्। पाणिनिः इ।१।२९,२४।

^{*} पुनःपुनरित्तभयेन वा इत्यान कियाविभेषणे द्वसीया। भूनत्का प्रस्रावे, मूच-धातीयुरादित्वात् जिः (७०५) पकारलीपे, मूचिधातो थेङ् (६४१) जिलीपः, मूचा इत्यस्य (६३२) हिलं, खेरायची लीपे, पर्नेन गुणे, मीन्चा इति (६३१) धातु-सत्तायां, यङो ङिक्तादात्मनपदं चे भ्रष्, (५४३) यङोऽकारलीपः मीमूचाते इति। एवं सूचत् क सीस्चाते, सूचत् क सीस्चाते। पाणिनिः ०।॥ ८२।

[†] न इत्येषां ते नितः (नीन् तुन् रीन्), न विद्यन्ते निती यस सीऽनित् तस्य, खिरियस्य विश्रष्यं। षटास्यत इति, षट गती, पुन.पुनरित्रग्येन वा वर्भ भटिति, (किवलं) वर्भ षटतीति वा, इत्ययं घट-यङ् षस्य इति, (०१८) षकार हिला स्य इत्यस्य दिलं, खिरायच इति यकारलीपे, षनेन षकारस्य दीर्घः। एवं पुन:पुनरमाति, षश्रास्यते। पुन:पुनर्वकं सःच्छति इयिनं वा ष्यरास्यते, स्य यङ् (६१५) गृणः, भय्ये इत्यस्य षकारं हिला, (०२०) ष-थे इति कथनात् स्य इत्यस्य हिलं, खेरायच इति य-लीपे षर्यं इत्यस्य पनेन खेदीर्घः। पुन:पुनद्षणेति कर्ण्-यङ् (४८०) दीर्घः कर्ण्य इत्यस्य (०१८, ०२०) कं रख हिला णूप इत्यस्य दिलं, खेणुं-, रेफसम्बन्धामावात् मूलधाती-नंकारस्य इत्यलं। पाणिनिः ०४४। व्हा

[‡] इसाधेनाच उदाहरणाचार पुन:पुनर्दशति दा-यङ् (६११) डो, ृदीय इयस

भोश्यते शेष्वीयते, साम्मर्थते, चेक्रीयते सचेष्कीयते, विसे-सिचते, यङलान्न पः । * वक्रं वजित वावज्यते ।

८२८। यो र लः। ्रांस, राश, वः १०)।

गिरते रो लः स्थात् यिङ । गिर्हतं गिरति जीगित्यते । लीलुप्यते सासयते । पं

दर्प्। की सुर्वा। (की: ६१, व: ११, वा ।१।)।
की: खेसु: स्यादा यक्ति। चीकूयते,कीकूयते।

दर्ह। नीनं वन्च सन्स ध्वन्स सन्श कस पत पद स्कन्दां। (नीन ११), वन्च—कारां (॥)। एषां खेनींन् स्वात् यिङ। वनीवचिते। §

हिलादि। एवं पुनःपुनमाति, गायित, जहाति, पिवति, खिति, तिष्ठति। सी स्था इति हुयी भेलस (१११) पलं।

^{*} पुनःपुनः स्वयति स्वयङ् (६६२) विकल्पन निः, (५८०) दीर्घ, स्य इत्यस्य दिलादि । पुनःपुनः सारति स्वृत्यङ् (६१५) गुणः, सार्यं दृत्यस्य दिलादि । स-क्त-यङ् (४८०) ऋस्याने री, क्षीय द्रत्यस्य दिलादि । सं-क्त-यङ् (७६६) सुन क्षेत्रे, (६१५) स्तुन् व्याभिवेति नियमान न गुणः । वि-पूर्वंक सिच-यङ् विसेसिच्यते, (५०२) भव गि-निसित्तको खिनिसित्तकमपि पत्नं न स्यात्, दशस्यादेदेय दिति विधानवन निषेधेऽपि तथा ।

[†] गृथ निगरणे, यङ् (६२८) ऋखाने इर्, भनेन र स, गिल्य इत्यस्य दिलादि। हिनौ निरतेदिति कथनात् रणाते जेंगीर्थते इत्येव। गर्हितं सुम्पति सोसुप्यते, गर्हितं सीदति सासयते। पाणिनिः ८।२।२०।

[†] मस्दृक्षमत्या खेरित्यस्यातुत्रसिः। कुङ शब्दे, पुनःपुनः कवते इति कु-यङ्, (५೭०) दीर्घः, भनेन वा खेयु भादेशः। पाणिनिः ०।४।६३।

[§] वन्चुगत्यां, सनसुकृङ संशे, ध्वनसुकृङ गती, धन्युय ङ ঋष:पाते (ताल-व्यानः, पाणिनिमत्त दन्यानः.), कस ज गती, पत कृज गत्यां, पद स्थैथें—पथी ङ

८२७। जम जप जभ दह दन्य भन्ज पश् शपो ऽता नुन लवयस्तु वा।

(जन—भपः ६१, भतः ६१, तन् १२१, ज-व-यः ६१, तु १२१, वा १२१) । जमन्तानां जपादीनाञ्च ऋदन्तस्य खे र्नुन् स्थात् यङि, लवया-न्तस्य तुवा । जञ्जन्यते जाजायते ।%

८२८ | इना वा भी | (इनः हा, बारा, भी रा)। जीप्तीयते जङ्गन्यते । जञ्जप्यते । चञ्चन्यते चाचन्यते, मम्बर्यते मामन्यते, दन्दयते दादयते । 🌵 '

गती इति हमं, स्कल्टिरी गति-भोषणभी: इति । नीनी न इत् भन्ते । अव पत सृष्ठ गत्यामित्यस्वेत ग्रहणं, पत्य उर्देश इत्यस्य तृ पापत्यते इत्येय, तेन (१११८) पापतिरिति स्वयसुदाहरिष्यति । वक्तं यञ्चति, वन्च-यङ् (५६०) न लीपे, वच्च इत्यस्य द्विते, भनेन स्वेनींन् वनीवच्यते, (८९१) न कारिचात् न दीर्घः । एवं सनीसस्यते, दनीध्वस्यते, वनीसस्यते, पाणिनः १४।८४ ।

- * जम् प्रत्याहारः । जमय जपक जभय दृहय दृग्यय भन्जय प्रयय प्रपण तक्कः।
 भव तुनः भिवलं न द्रत् भने, न तु जमार द्रत्, भनो तु-रनुस्वारः, भन्यया ग्रंयस्थते
 रंख्यते द्रत्यादौ भसपरत्वाभावात् (५०) भन्मदारो न स्थान् । येन विधिस्तदन्तस्यिति
 न्यायात् ल व य द्रति लान-वान् -यानाभाभित्यः। ल-य-मध्यपाठात वकारीऽव दन्यः।
 पुनः पुनर्भायते जन यङ् (६५५) ङा-भादेशस्य विकल्पपचे जन्य द्रत्यस्य दिलं, भनेन
 स्वेन्त्, (५१) भनुस्वारस्य नित्यं अम् । जीभराम् भनुस्वारस्य दान्ततं परिकल्पा (५२)
 वा अम् कुर्व्यन्ति (तिङन्तपादस्य ५६० मृत्रे गोयोचन्दः) । नकारित्वान् (८२३) स्वं नै
 दीर्षः। जन-स्थानं (६५५) ङा-भादेशपचे जाजायते द्रति। एतत्म्द्रीटाइरणाव्र
 भादौ ङाभावपची दर्श्यतः। पाणिनः ९।४।८५,८६। भव श्रप्यातृनं दृश्यते।
- † इन-धातः भी स्वाहायकि । पुनःपुनईन्ति इन-यङ्, भीय इत्यस्य हिलाहि । विकत्यपचे इन्य इत्यस्य हिले, पूर्वेण खेन्न, (६०८) खेः परस्य इस्य घः । गहितं जपनि जञ्जास्यते । एवं जञ्जस्यते, हन्दश्चते वस्यस्यते, पन्पस्यते प्रांशस्यते । वकं चलति, पुनःपुनस्यति, वकं दयते, एतेषु पूर्वेण वा नुन् । नुन्पसे खेनं दीर्घ. । "इन्हेडिसायां यक्षि भीभावी वाचाः" इति वार्त्तिकम् ।

८२८। चरफलोरुबोङी न गुः।

(चर-फली: ६॥, उत् ।१।, च ।१।, च छ: ६।, न ।१।, ख: १।)।

चरफलोः खेर्नुन् स्थात् उङ उकारस यङि, तस्य चन गः। चञ्चर्यते पम्फ् स्वते। *

८३०। रीनृत्वतः। (रोन्।११, चलतः ६)।

ऋकारवतो धो: खे: रीन् स्थात् यङि । नरीतृत्यते । 🌵

८३१ | व्येखपखमो ज़ि: | (वी-खप-सम: ६१, नि: ११)।

एषां जि: स्यात् यिङ । वेवीयते सीषुप्यते सेसिम्यते । क्ष

द३२। नवगः। (न।१।, वमः ६।)।

वष्टे जिं ने स्थात् यङि। वावस्थते। §

अर्थुन्दित्भात्वत्तंत्, खेरङोऽभावात् मूल्धातीरङ उकारयः। यङ्लुक्
प्रसक्तस्य गुणस्य निषेधार्ये न णरियुक्तं। वकं चरति चर्यं इत्यस्य दिले खेन्न्,
मूर्धाती रङ उकार: (२२८) तस्य दौर्दः। पुनःपुनः फखित पम्युल्यते। पाणिनि
०।४।८०,८८।

[†] स्तृ विद्यते यस स स्वान् तस्य । स्वतारवत इत्यनेन यदा सकारस्थिति तर्देव सि: रीन् स्थादित्ययः, तेन चित्रीयते इत्यादी (४८६) स्वकारस्य रीभावे न रीन्, यक्ष्मुक्ति तु परीकर्त्तात्यादी स्थादेव । एवं यह-प्रच्छ-त्रयादीनां (६६१) जी क्रां स्वकारवच्यात् रीन् स्यात्, तेन नरीग्द्यते परीष्टच्छाते वरीष्ठयति इत्यादि । पुनःपुन कृत्यति दत्त-यङ् त्त्य इत्यस्य दिले स्वः रीन्, सुभादिलान् पालाभावः । एवं दरीहस्यते इत्यादि । पाणिनः ७।४।८०, वार्षिकस्य ।

^{‡ (}६६१) खपादे: किति जिरिति नियमादमाप्ती विधित्यं। चनिष्टलात् खे रित्यस्य नानुइति:। व्ये औं इती, स्वप घलु शयने, स्वमु ध्वाने, पुनःपुनर्श्वयती व्यत्ति वाक्यानि। व्ये यङ्, चनेन जि:, (५८०) दीर्घः, यीय इत्यस्य दिलादि। स्वप-यड जि: सुष्य इत्यस्य दिलादि, (१११) घलं। स्यम यङ् जि: विस्य इत्यस्य दिलादि पाणिनि: ६।१११८।

[§] यहादिंखात् पाप्तौ निषेष: । वश ख कान्तौ, पुन्:पुन वृष्टि । पाणिनि: ६।१।२०

८३३। चाय: की। (वाय: ६१, की ।१।)।

चायते: की स्थात् यङि । चेकीयते । क्ष

८३४। घाध्मा ङी। (घाषी: (॥, डी ।१।)।

जिम्रीयते देधीयते । १

८३५। ग्रीडो इय येऽगौ।

(मीङ: ६।, ङय्।१।, यं ७।, भणी ०।)

ग्रागयते । 🕸

यङ्नुगन्तः।

८३६। यङो लुग्वापा लुक् पं दि गाँदि च धूक्तन्तु वाऽनि तु नित्यं नातः।

(यक्ष: ६), लुक् १२१, वा १२१, भवः ६), लुक् १२१, पं १२, विः १२, खादि ११, व १२१, पृक्तं ११, तु १२१, वा १२१, भिन् ७), तु १२१, निन्दे ११, निर्दे ११, नित्दे ११, नित्दे ११, वतः ४।)।
यक्षो लुक् स्यादा, लुकि सित अपो लुक् पं दित्वं खेर्णुसित्यनदि
कार्याञ्च स्थात्, ध्रयहणोक्तन्तु वा स्थात्, अनि तु नित्यं लुक्
स्थात्, उदन्तास्विनिन स्थात्। §

चाचिनि: ६।१।२१ ।

⁺ उनी इत्यस्य उत्कर्त् चन्यस्य स्थाने । पुन:पुन जिम्नति, पुन:पुनर्धसतीति वाक्ये । पाचिनि: ७।४।३१ ।

[‡] भौ धातो कैय् स्थात् भयो थे, डिक्तादत्त्यस्य स्थाने, भय-स्थितिः। भयौ ये इति कथनात् कर्मायि वार्च्य यक् भव्यते, क्वाचः स्थाने यप् संभव्य, काप् भव्या इति । पुनःपुनः भेते, भौ-यङ्, उत्युभव्य इत्यस्य दिलादि । पाणिनः ७।४।२२ ।

^{\$} यक्षी लुक-करणेन स्थलीचे त्यलचगमिति व्यायपात कार्यस्य लुकि न तक्षेति निषेषात् (४८०) यङ्ग्रको चर्दीति, (६१५) स्यायक्षृती लुरिति, (५६०) इस्ङ्नी-

बीमवीति बीभीति, बीभूतः बीभुवति। अवीमवीत् अबीभीत् अबीभूतां अबीभुवन्, अबीभूत् अबीभुवीत्, बीभु-वाचकार। *

वनीवचीति वनीवङ्क्ति, वनीवकः, वनीवचित । जङ्ग्मीति जङ्गन्ति, जङ्गतः, जङ्ग्मिति जङ्गमितः, जङ्गमीमि जङ्गन्मि, जङ्गन्मः। जङ्गनीति जङ्गन्ति, जङ्गतः, जङ्ग्मिति जङ्गनित जङ्गनितः,

लोप इत्यादीनि न स्युः, यङ नलंन विहितं कार्थं स्यादेव, तेन घातुमं ज्ञा स्थानाम् च स्यात् । खादि-कार्यस्य यङि परे विहितस्य लुक्तं न तचेति निषेधादमाप्तौ वचनं । धुग्रहणीक्तमिति, यव कचित् स्वं धातुविश्रेषग्रहणपूर्वकं यत् कार्यमुक्तं तदवा स्यादिति । चिन तु इति (८९३) पचादिलादिन क्रते तसान् परे नियंयङो लुक् स्यात्, इस्सीदन्तधातीनु चनि परे न लुक्सात् । पाणिनिः २।४।७४, भाष्यच ।

तिपा ग्रपान् व सेन निर्द्धिं यत् गणेन च। यवेकाच् ग्रहणं कि चित् पर्चेतानि न यङ लुकि। ज्ञाचार्या ग्रङ लुको च्छित् में ट्रक्त मिन्टामिष्॥ इति प्राचीनव चन-मिष् स्थापेगं। (६८६) वेति रिखादी तिषा निर्द्धिलात्, (५०६) स्वर इति प्रपा, (७२०) भीङ इति चन्वसेन, (६८५) कहा इत्यादी गणेन, (५०६) एकाची वक्त स्थात्, तत्तन् कार्थन स्थादिति। ज्ञांनेटां सेट्क्तं (८४१) विभिदिता इत्यादी।

कु पुन:पुनभंवित यङ् लुकि, भू-यङ तस्य लुक, िहलं खे गुँण:, बीभ् इत्यस्य धातु-संज्ञायां तिप्, प्रप् तस्य लुक, (७२२) ईस, गुण:, बीभवीति। ईभी विकत्यपचे गुण:, बीभीति। एवं सन्त्रंव। बीभू तम, िङ त्वात् न गुण:। भित्त (६८७) अन्त-स्थाने भन, (५८८) खव, बीभुवति। घी-दिप् (७२२) ईस् वा, भ्वीभवीत, भवीभीत्, धी-तां भवीभूतां, धी-भन, (५८३) भूवर्जनात न छम्, (५८८) छव, भवीभुवन्। टी-दि (५५२) ध्यहणोज्ञालात् वा सिलीप: भ्रवीभूत्, पत्ते भ्रवीभुवीत्, (८४१) भरे गुणनिवे-धात् उव्। ठी णप् (५८२) त्यानादाम् खय्, ततः (५८३) क्रप्योग:।

न वन्च-यङ्क्क, दिलादि, (८२६) खं नीन् वनीवच भागोतिष्, ईम्। ईमी विकल्पपचे (२११) कुङ, (५०,५१) नस्यातुलारे भनुस्वारस्य ङ । तस्, (५६०) म-स्वीप:। मन्यङ लुक् (८२०) खनस्याने भन्, न-लीप:। गम-यङ लुक् (८२०) खे नृन् लक्षभधातुः, ततिलिप वा ईम। पचे मस्यानस्वारे तस्य न। तस् (६०६) अम्लीप:। भन्ति (२३०) ध्रग्रहणीकात्वात् वा छङ्लीपः, जन्त भन्। सिप् ईम् वा, पचे (२०२) गमी म-स्थाने न। वस् मस् उभयव मस्थाने न। इन-यङ्कुक् गमवन्, भिषकन्त (६०८) इस्र घ।

चत्रुरीति चत्रू ति । चाखातः चङ्कतः, चङ्ख्रुति चङ्कन्ति । जाजातः जञ्जन्तः जञ्ज्ञति जञ्जनि । देदिवीति देदोति देदेति, देयूतः देदितः, देयूवः देदिवः । वेविच्छीति वेवेष्टि, वेविष्यः वेविच्छः । *

८३७। हाक: खेर्न घं:। (हाक: ६१, खे. ६१,न ११।, घं: ११)। जहेति जहाति। १

८३८। दन्शो न-लोपो वा।

(दन्मः ६।, न-लोपः १।, वा ११।)।

दन्दगीति दन्दंगीति दन्दष्टि दन्दंष्टि । 🕸

८३८। जिनेवा। (जि: १।, न ।१।, वा ।१।),।

[्]र चर यङ लुक् (८२८) खे नुंन एङ छकारय, तेनैव गुणानियेधः, ईमीऽभावपचे (१२८) छकारस्य दीर्घः। खन-यङ लुक्, तम् (६५५) धृक्षवात वा छादेशे, जमन्तवाभावात् खेन नुन्, (८२१) दीर्घः। पचे जमन्तवात् खंन । चित्र (१०००) वा छङ लीपः, अन्त अत्। भागमादेशयीर्मध्ये वखीयानागमी विधिति न्यायात् तिप् अधित् प्रस्तिषु भादौ (०१२) ईमि छादेशाभावे चक्षनीति चङ खन्तीत्यादि. ईमी-विकत्यपचेऽपि पिति भासे पर्वे निष्धात् न छा इति बीध्यं। जन-यङ लुक् खनवत। दिव-यङ लुक् दिव धातुः तिपि देदिशैति(०३४) निषधात् न गुणः। ईमी विकत्यपचे (८४४) वस्त्रोनं जट्, तस्य गुणः। जटी विकत्यपचे (६४२) वलीपः, तती गुणः। तम् वम् छभयच वा जट्, पचे वलीपश्च। विकत्यपचे (६४२) वलीपः, तिप्, ईमी वक्ष्यपचे (८१४) छस्य शः, गुणः, (१५४) षङ्। वस्त्र वा कस्य शः।

[†] हाकाथाती: खीं: चीं न स्थात् वा यङ्लुकि । (८२२) घींऽनित इति प्राप्त-दीर्घस्य निषेधीऽयं। जहिति (०२२) ई.म्, सिन्धः। सिद्धान्तकौसुदीसते तु न दीर्घनिषेधः, तीन जाहिति जाहाति इति ।

[‡] दन्य-धाती र्नकारस्य खीप: स्थादा यङ्ल्कि । दन्दग्रीतीति द्रेनपचे वा नकारखीप:, श्रनीक्षपचेऽपि वा नकारखीप:। (८२०) खंनुन, श्रनिन्पचे (१५४) षङ्, (४०) तस्थाने ट। पाणिनिः ०।२।८६, श्रव मुत्रे नित्यम्।

सास्वपीति सोषुपीति समस्यिध सोषोति।

८४०। रीना रिनरनी वा।

(रीन: ६।, रिन्-रनी १॥, वा ।१।)।

रीन: स्थाने रिन्रनी वा स्तः यङ्लुिक । चरिकरीति चर्कारीति चरीकरीति चरिकर्त्ति चर्कि चरी-कर्त्ति । १

८४१। यङ्लुक्कालापे ऽरेन गुत्री।

(यङ्लुक-कालीपे ७।, परे ७।, न ।१।, णु-त्री १॥)।

विभिद्ता मर्मृजिता। अरे किं, वेमेत्ति मर्मार्छि। 🕸

इति यङन पादः।

[•] यङ्निमित्तक एव जिर्ने स्थात् वायङ् लुकि, तेन (८२१) व्यव्यव्यक्षमी जिल्लि स्थैन निषेष: । जिर्वेति ज्ञते जिमावस्थैन निकत्यो स्थयते । वस्तुतस्तु (६६१) ग्रहारे जिनेस्यमेव । सोध्रपीति सीधोति स्थयत् चादौ जि: प्यात् दिलाहि । सीप्रपी तील्यत्र (७२४) गुणनिषेध: । एवं प्ये—वाल्येति वेवथीति वाल्याति वेवति । स्यन्य-संस्थमौति सेसिकीति संस्थित सेसिकि । पाणिनिमते निल्यम् ।

[†] स्वलात् चलाभावः। अत्र वा-यहणं परत निहस्त्यः। रीनः स्थाने इति रीन उत्पक्तिस्थाने इत्ययः, अन्यथा निस्तात् रीनोऽनं रिन्रन्प्रमितः स्थात्। रनीऽकार उदारणार्थः। क्र यङ्कुक्, ईस्पर्च रिन्रन्रीन्, अनीसपर्चेऽपि रिन्रन्रीन्, अतएव षट् पदानि । एवं वत—वरिव्तीति वर्देगीति वरीवितीति वरिवर्ति वर्वेर्ति वरौवर्ति इत्यादि । स्वधानीन् अग्यिरीतं अपरोति अरियत्तिं अर्त्तिं, अत्र (५८५) असमानवर्षे परेस्वेरिय । पाणिनिः २०४। १९९२ ।

[‡] यङ्लुक् च कालीपय तत्तिकन्। यङ्गेलुकि कालीपे च सित घरे स्वती न स्वाता। पुनःपुनरित्यथेन वा भेत्ता केभिदिता, विभिदः छो ता (५५४) इस्, चनेन गुपः निषेधः। पुनःपुनर्गार्जिता सर्वं जिता, पूर्वम् तेच खेः रन्, सर्वं ज-डौ ता, इस्, (६८४) स्वजोऽकि कि तो व्यनेन प्राप्तो चनेन बिद्विनिषेधः। का लीपे तु (८४५) स्विभिता इत्यादि। जौमरास् यङ्लुगलेश्यो जौ कते विकल्पेन वृद्धिं कुर्वेनि, बीभावयिति बीभुवयितीव्यादि (संविप्तसारे तिङ्लपाटे ४६० सूर्व)। पाषिनिः १।११४।

४र्थ पादः—लिधुः ।

-0000000

८४२। ले: कायक खेच्छायां।

(ले: ५।, काम्यक ।२।, स्वच्छायां ७।)।

ले: पर: काम्यक् स्थात् भ्रात्मेच्छायां। भ्रात्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रकाम्यति। क

८४३। क्योऽस्यार् यस।

(क्यः १।, भग्वात् ५।, ई ।१।, भः १।, च ।१।) ।

मान्त-व्य-वर्जात् ले: क्यः स्थात् खेच्छायां,तिसिन्नवर्णे ई स्थात्। कि ज्ञानीयति । (४२३) श्रोदौर्ताऽज्वदिति। गर्यात नाव्यति । (४८०) यङ ख्वको दति। कर्नीयति । (२५८) क्यां ख्री च गार्गीयति । क्ष

अ स्वयं दक्कायाः कर्षम् तं यिक्षः थिद असमसाहिशेषणात आत्मास्त्र-स्विध्यदाहा उत्तर्वा ने स्थात् तदा तस्यात कायक् स्थादिययः, तन सहान्त पुत्रसिक्षिति हत्यादी न स्थात् , समास तु सहापुत्रसिक्षित राजप्त्रसिक्षित हत्यादी न स्थात् । स्थाद्वित । कायकः किक्षात् आत्मनी मुल्लिमिक्षित स्थात् सोत्यतीत्यादी न गुणः। स्थानः पुत्रसिक्ष्यतीति वाय्यवित्यासात् हितीयानात लिरित बीध्यं, तन आत्मनः पुत्र इध्यते इत्यत्र न स्थादिति । पुत्रकाय्यतीति पुत्रसित हितीयानात् कायक, (११८) क्षेल्क् त्ये चिति स्थे परे क्षेल्कि, पुत्रकाय्य इति (६३१) घाषुस्त्रायां, तिप्-प्रपी, (५४३) स्वारक्षीप्र । पाणिनः ११।६।

[†] सच व्याघ न्यां, नालि न्यं। यत्र भोऽन्यालकात्। सकारानं चत्रयस हिला चन्यकात् लिङ्गादिल्यः। चत्र चकारेण काम्यक् च स्थादिति स्चितं। तेन चर्लकात् लिङ्गात् काः काम्यक् च स्थात्, भकारानाटल्ययास्य कोवलं काम्यर्गविति निकार्यः। कास्यकः इन सगुणार्थः, यर्नस्थतिः। पाणिनिः श्रापः,०।४।३३, वार्सिकसः।

[‡] भावानी भानमिकात भानमित्यसात् काः,तिसन् परं अकारस्थ है, भानीय होत

८४४। न-लोप: क्यडेंग्र। (न-लोप: ११, क्व-ङेग्र०)।

राजीयति।

८४५। इसात्तयोर्वारे।

(इसात् प्रा, तयी: ६॥, वा ११।, परे ०।)।

हसात् पूर्यीः व्य-ङायोत्तीपः ,स्यादा अरे। समिधिता रामिज्यिता। वे अस्पात् किं, किंकास्यति स्रःकास्यति । क्ष

धातः । एवं पुत्रीयतीत्वादि । पूर्वम् तेण ज्ञानकास्वतीत्वि । भवर्णस्य ई-कयनात् कन्यामिच्छति, कन्धीयति ज्ञान्न भाकारस्यं ई । कन्याकास्यतीति च पूर्वम् तेण । गा-मिच्छति गव्यति, नाविभिच्छति नाव्यति, उभयत्र कास्य भन्वद्वावात् (३५) क्रमेण भव् ज्ञाव् च । 'व्यातानः कर्तारमिच्छति, च्रम्थाने री,। एव धात्रीयति । गर्गस्यापत्यं गार्यः गर्गभव्दात् एथः, ततः गार्यनिच्छति, व्ये परं भाग्नोपः, अकार ईय ।

 नात्तस्य ले नंकारलीयः स्थात् क्ये ङी च परे। (११८) नील्प फेडिशावित्यनेन विरामि परे नकारस्य लिथि क्षेते (१५) तदादिविधि नं स्थादित्यती लीपिथिधानं।

एवत क्याधी: मलां: विरामितिहितं किमिप कार्थं न स्वादित्य घ्रास्तेष्ठं, तैन विद्यां मिन्किति विद्याति अन न (१०६) दङ्। लिहिमिक्किति विद्याति अन न (१०६) इस्य छ। वापिनक्किति वाचिति अन न (१०६) इस्य छ। वापिनक्किति वाचिति अन न (२०१) कुङ्। पुमां मिन्किति प्रयति अन न (१६९) स्वानल्प्। नमः करोति नमस्रति अन न (१०२) विसर्गः। मिपिरिक्किति धनुरिक्किति सिपियिति धनुष्यति इत्यादौ न (२२०) रङ्। गिरिनक्कित गौर्यिति पुरनिक्किति पूर्यति इत्यादौ न विरामिविहितला-भावात् (२२८) इकी दीर्घः। पाणिनः प्रानकिति प्रयति इत्यादौ न विरामिविहितला-भावात् (२२८) इकी दीर्घः। पाणिनः प्रानकिति प्रयति इत्यादौ न

राजानिमक्किति पूर्वम्वण काः, अनेन न लीपः, ततः पूर्वेण श्रकारस्य ईः।

† विभांकिवियरियामेन का-ख्योरनृष्ठतिः । समिधमेषा द्वित बाक्ये काः, समित्व धातः, डी-ता, (५५४) द्रम्, अनेन वा कालीपः । एवं दृषदमेषा दृषदिता दृषद्विता । इसात् किं, धानीयिता । अरे किं, समिध्यति । पाणिनिः दृष्ठिप्त ।

(८४३) क्वोडस्थादियस प्रत्युदाहरणमाह-किमिक्ति स्वरिक्ति, उभयव पूर्वण कास्यकाः एवं उदीकास्यतीत्थादि।

८४६। धनोदकाशन-ष्टषाख्यले ग्रन्हपानान्त-जाभार्थे ङा डनङ ङा सन् सनसनौ को न ष:।

(धन—ली: ६।, यह— अर्थे था, उत्तारा, उनङ्गरा, उत्तारा, सन्।रा, सन्-अपनी रा, की था, नारा, घ: रा)।

धनस्य ग्रहणे ङा, उदकस्य पाने डनङ्, ग्रग्ननस्य श्रवे ङा, द्वषाख्यीर्जाभे सन्, लेरर्थे काम्ये सन् ग्रसन् च स्थान्, की— सः षो न स्थात्। ॥

धनायति उदन्यति श्रमनायति व्ययस्ति श्रम्भस्ति, दिध-स्र्यति दध्यस्रति। ग्रहादौ किं, धनीयति। १

[•] अषय अयय अष्ठा भन्न उदक्ष अभन्य व्याय विविति तस् । यहस्य पानच अत्र व (भन्ष) जाभस्य अर्थय तत्ति । सन् च असन् च सनस्तौ । धनभन्न यहस्य गहणे कास्ये ङा, ङा, न अत्यस्य स्थाने, उदकस्य पाने कास्य इनङ्, डडी, इतौ
अन स्थितिः, अग्रनस्य भन्नणे कास्ये ङा, व्यायथी जांभे कास्ये मन्, न इत् अत्ते,
जाभी भैयुनं, एति इत- जिङ्गस्य अर्थे कास्ये भन् असन् च स्थात्, क्ये परे इति सर्वेव योजनीयं। क्ये परे इति कथनात् इक्तापापी, पुनर्वतो कास्ये इति कथनात् अतिस्णायासित्यर्षी वोध्यः। सः यो न स्थादिति एतन् भनदिग्रस्येव, तेन धिष्पांति सर्पियतीत्यादौ पत्वं स्थादेव। सर्वेव कर्माकारकादेव स्थादिति। पाणिनिः अ।।।१४, वार्त्तिकं काशिका च।

[†] घनं ग्रहीत्मिक्कित धनायित ङा, घनगन्दस्थायंमङ्गोषनं प्राधीनानां मतं, तेन यस्यं धनायतीयादिप्रयोगः। उदकं पातृमिक्कित उनङ, डिक्तात् उदक्षस्यः प्रत्यस्य प्रवादः स्थानं उन्, डिक्तात् उदक्षद्रस्य (१२६) टि: प्रक्षागस्य नीपः, उदस्य प्रवादः। प्रधानं (प्रज्ञादः) भोजुनिक्कित ङा, प्रवादि प्रयंगदःचे प्रज्ञायित पायसम् इत्यदि प्रयोगः। वधीऽव ग्रक्तः पुरुषः, वषं प्रयं वा जन्तं (सङ्मियतुम्) इक्कितः प्रवादः। वधि इक्कित सन् प्रकातः प्रवादः। वधि इक्कित सन् प्रमन् च, न प्रतं। प्रवादः प्रयोगः। वधि इक्कित सन् प्रमन् च, न प्रतं। प्रवादः प्रयोगः विकादः प्रयोगः। त्रि प्रयोगः। त्रि इक्कित सन् प्रयादः न प्रवादः। प्रवादः विकादः प्रयोगः। प्रवादः प्रयादः विकादः प्रयोगः। प्रवादः प्रयादः विकादः प्रयादः विकादः प्रयोगः प्रवादः प्रयादः विकादः प्रयादः विकादः प्रयादः विकादः प्रयादः विकादः प्रवादः विकादः प्रयादः विकादः विकादः प्रयादः विकादः विकादः प्रयादः विकादः प्रयादः विकादः प्रयादः विकादः व

८४७। ढडोपमानादाचारे का:।

(ढ डीपमानात् ५), फाचारे ७।, काः १।)।

टात् डाचे।पमानात् क्यः स्यादाचारेऽर्घे । शिवमिवाचरति शिवीयति विण्णं, विण्णाविवाचरति विण्ण्यति शिवे । *

८१८। धान्ड प्रकी सलोपस्य वा गल्भ-क्रीव-होटात्तु मं। (वान् धा, डप्रकी १॥, च-कोपः १।, च ।१।, वा,

घादुपमानादाचारे ध्रें ङ्गिकी स्तः, मस्य च वा लोपः, गल्भा-देसु काविप मं। क्षण द्वाचरित क्षणायते क्षणिति, स्वायते स्वति, स्वामास (५८२) त्यान्तवादाम्। पयायते पयस्यते। गल्भायते गल्भते। पं

[•] टघ डघ टडं टडघ तर्पमानवाति टडोपमानं तथात्। उपमानवाचकात् कर्ममद्राद्धिकरणपदाच का. स्थात् पाचारेऽयें। विष्णुं गिर्वामव श्राचरित् शिवं विषो देव श्राचरित् उपथच काः, (८४३) अकारस्य ई, विष्णुवतीत्वच (५८०) दीघेः। कास्यक्प्रस्थीनां कित्करणात् धात्विद्धितं कार्ये लिधौ श्रिप स्थादिति बाध्यं। पाधिकरणीपमानव्य की परं न-लीपो न स्थादिति वक्तव्यं,तेन राजनिद्द्याचरित राजनित युरौ। राजानिभवाचरतीत्वच राजीयतीत्वेव। चीरोदीयलीत्वादि पदम् पान्नानं चौरीदिम्बाचरकीत्थादि वाक्ये कर्म्योपमानात् की साध्यं। पाणिनि. ३।१।१०, वार्तिकच।

[†] कचिदेकदेशस्थिति न्यायात् खपमानादित्यतुत्तस्य, सममस्याममस्तिन नित्याकार्ष्-भेण भक्ततिरिति न्यायात् घाटिस्थिनेन मन्यसः। द्वी क्रतं डिल्वाहास्थिनेपरः का क्रतंऽपि गल्भादेरास्थिनेपरं विधीयतं। क्रणायते इति (५२०) घाँऽज्य्यरे इति दौषः। एव इरीयते विष्यूयते। (४८०) पिचीयते। (४२३) गव्यते नाव्यते। (२५८) गार्गान्यते। (८४४) राजायते दण्डीयते। (१२०) विदुषीवाचरति विदस्थते, सतीवाच-रित मत्यते, मृन्दरीवाचरित मृन्दरायते, ग्रुनीवाचरति स्वायते इति। क्रण्यतीति किः, क इत् अगुणः इकार ज्ञारणार्थः, ततः (४८६) वकारमात्र प्रथयस्थ

८४६। समादे सुप्रधे वा त-स-लोपसा

(स्वादे: प्रा, चूर्ये अ, वा ११, त-स-लीप: १।, च ११।)।

स्रगारे युग्धें डग-की वा स्तः, तिसान् तःस-लीपय। स्रगायते स्रगति स्रगीभवति । चेतायते ग्रन्नायते वेहायते । *

८५०। डाज् लोहितादेः पञ्च।

(डाच् लोहितार्टः ५।, पं १।, च ।१।)।

डाजन्तात् नोहितादेश च्युर्थे ङाकी वास्तः पञ्च। पटपटा-यते पटपटायति पटपटाति पटपटास्यात्। लोहितायते

लीपः। तदल्यत्नेन क्रणा इति (६३१) धान्मंजा, तिप् अप्, (५४३) श्रकारलीपः। एवं इति-रिवाचरित क्रि. इरयित, एवं विणावित पितरतीयादि। खं इवाचरित छाः खायते, क्रि: स्वति । स्व इवाचरार क्रिः (५८२) स्वामास । पय इवाचरित छाः, वा सलीपय । श्रोजायते श्रमगयते दुर्श्यनायते एतेषु नित्य सलीपो वज्ञन्यः। गल्भ दवाचरित छाः क्रिय, उभयवात्मनेपदं। एवं क्रीवायते क्रीवते, इंदियते होदते । गल्भोऽहदारी, क्रीवी नपुंसकः, होदं लीप्वं। पाणिनिः शृहारश्, वारिकस्व।

अध्य षादि यस्य स तसात्। चेर्यथार्थः अभ्ततहातः तस्मिन्। तस सय तौ तयां लाँपः तसलीपः। इतो तस्मिन् इति उद्ये कौ च परंत स लीपां नित्य इत्ययः। अध्यो भवति उः स्थायते, किः स्थाति, पचे (४८५) चिः स्थाभवति । एवं अचेत्रेतो भवति चेतायते उः, मलीपः, (५८०) दौर्यः। किः चेति, पचे चेतीभवति अव (४८८) सलीपः। अग्रयत् ग्रयत् भवति उः-की, श्रयायते श्रयति, पचे चेतीभवति अव (४८८) सलीपः। अग्रयत् ग्रयत् भवति उः-की, श्रयायते श्रयति, पम्यवित्यत् तलीपः, पचे श्रयह्वति । एवं अचेहत् वेहत् भवति वेहायते वेहति वेह-इवति (वेहत् गर्भोपघातिनी गीः)। स्थादिय—स्था भीग्र चपल वहद्रय पष्टित प्रतीप उत्तस्क ग्रवि वेहत् श्रयत् उत्यानम् सुननम् दुर्मानम् चिभमनम् चीत्रस् तिवा परम् स्रजम् वर्मम्, डाच्पलयान्, लीहित धर्मं हित्त नील मन्द फीन भद्र मत्न वर्मान् निद्रा कृपा कह्या दिव्यत्। अव निद्रादिश्वदो धर्मावचनीऽपि श्रव्यक्तिस्थात् प्रसिवन एव, तेन निद्रायते जनः भनिद्रावान् निद्रावान् भवतीत्यथः। पाणिनः शिराहर्

लोहितायति लोहितति लोहितीस्यात, धर्मायते धर्मीयति धर्माति धर्मीस्थात । *

टपृश्। शब्दसुखकष्टादे: क्रातिवेदपापे ङ्यः।

(शब्द सख-कष्टादे: प्रा. क्रांति-वेद-पापे था, ङा: ११) ।

ग्रव्हादे: कती सुखादेरनुभवे कष्टादे: पापार्थे प्रवृत्तिरिख-सिन्नर्धे ङा: स्थात। ग्रन्थं नरीति ग्रन्थायते, वैरायते। सुखमनुभवति सुखायते, दुःखायते। कष्टं नर्मं नरोति कष्टायते। 🕆

८५२। वाष्पोष्मफेनधूमादुद्दाक्तौ। (वाष-धृमात् धा, खदानो ७)।

वाष्पायते उषायते फेनायते धूमायते । 🌣

यदाि (५०१) सम्पदाित क्राम्निष परेष डाच विहित-क्रियाि अव डाजन्तात द्यक्तिविधानसामधीत द्य-कि-विवयेऽपि डाव स्यादिति वक्तव्यं। पश्चेति चकारेण किल्वात प्राप्तनात्मनेपदमपि स्थादिति मुचितं। अपटत् पटत् स्थात् इति वाक्ये হ্যবিषये डाचि डिभावादी पटपटा इति डाजलान् छ। भावानेपटं पर्मीपदञ्च, कि: पटपटाति, विकल्पपर्च चिं। एवं भर्काहिती लीहिती भवति, श्रधर्मी धर्मी भवति। लीहिनादिय-स्मादिभेषा लोहिनादवी हाटम । पाणिनि: ३।१।१३,१।३।८० ।

[†] भ्रब्दय सुख्य कप्ट्य तत् भादि यंग्य तस्मात् । क्रतिय बेदय पापच तस्मिन । बेट इति विट ल जाने इत्यस्य चलि रूपं। पापार्थं पापजनक कर्म्याणाः। कप्ट कर्मा करोति कष्टभनक कर्ण कर्त्तं प्रवर्त्तते इत्ययं:। श्रव्हादि: - श्रव्ह वैर प्रतीपाभ कन्द-भी हारदृद्धिना:, काल ह: मुदिनं भेघ: कोटा ऋहा ऋटा तथा, मीका भीटा च पीटा च मुष्टा ग्रन्थादिशीरतः। सुखादिय-सुखं दु:खञ्च तप्तञ्च क्रपणः करुणस्त्रया, प्रतीपा-लीकमीढास क्रक्रांगाया: सखादय:। कष्टादिय-- कष्टच मन्त्री गहनच कव: क्रक्र्य कष्टादिष् पञ्च शब्दाः । पाणिनिः ३।१।१४,१०,१८।

[‡] एम्यी डा: स्वादुदानी जर्डनि:सारणे इत्यर्थ:। पाणिनि: शशार्द, वार्तिकच।

८५३। रोमन्याच्छणे। (रोमवात् ४।, वर्षणे ७)। रोमन्यायते गौः। क

८५४। नमस्तपोवरिवःकाख्वादिभ्यः क्यः द्यतौ।

(नमस्—कख्वादिभ्यः ५॥, काः १।, क्षती ७।) ।

नमस्तरोति नमस्रति, तपस्रति वरिवस्यति, कण्डूयति कण्डू-यते, चित्रीयते, महीयते, हृणीयते । प

टपूर्वा लेः क्रलाख्याने जिः।

(ले: ५।, क्रति-पाख्याने ७।, जि: १।)।

लेः परो जिः स्यात् कतावाख्याने च। प्रश्नं करोति श्राचष्टे वा प्रश्नयति, जदयति श्रीडिटत्। श्रीजिटदित्येके। (४६८) लुङ् मददिनामिति। ईश्मन्तमाचष्टे ईश्यति। सुखन्तमाचष्टे सुचयति। स्रिवनमाचष्टे स्रजयति। क्षं

पूर्वमादुहानौ इत्यस्यायनुवर्त्तनम् बीध्यं, तेन एदगीर्य-पर्वेषे पर्वे रोमत्यात्
 स्वाहित्यर्थः । रोमत्यायते उदगीर्थं पर्व्वयतीत्वयं: । पाविनिः शाराष्ट्र ।

[†] नसस् च तपस् च वरिवस् च काख्वादिश्व तेथ्यः । एम्यः काः स्थात् कर्तौ भर्षे । वित्वसम्भन्ने सेवा उच्यते । काख्वादिगणमध्ये काख्रुमध्यस्य आनुवस्थेन, चित्रौ मही हृणौ मध्यानां ङानुवस्थेन स्, (कामस्ययेऽपि) यद्यासम्भवं समयपदं भात्मनेपद्य । काख्वादिश—काख्यादिश—काख्यादिश—काख्यादिश्व—काख्यादिश्व—काख्या वित्रोहे मही इत्योडः भास्त सन्त वल्ग् लोट तिरस् सरस्य मनस् पयस् उपस् कुषुभ सगध मेधा सुख दुःख चुरण भरण वरण दूषण भवर सपर भरत भिषज् गृहगद एला वेला खेला लेखा रेखा पन्पण प्रस्तिः । पाचिनिः ३।११९५,१८,१८।

[‡] भनुबत्ताविप क्रताविति कथनं स्पष्टार्थे। लेशित कथनात् दानकार्थे न स्थादिति, तेन लचयतीत्वादी न (२११) कुड्। ज इत् उभयपदं। प्रश्नयतीत्वादि, प्रश्न-जि (४६७) डिच्चात् (१२६) टिचीपे प्रश्नि इति (६३१) घातुसंज्ञा। वद्वधाती:

द्र्ध् । ख्रोताखाखतरगालोडिताह्वरक्या-खतरेतक-लोप: । (श्रेताय-पाहरक्य ६।, पय-क-लोप: १।)। खेताखमाचष्टे खेतयति, श्रखयति, गालोड्यति, श्राह्वर-यति । #

८५७। नाप् सत्यार्थवेदैकाजतः।

(नाप् ।१।, सत्यार्थवेदैकाजतः ६।) ।

सत्यादे रेकाचीऽकारान्तस्य च चो नाप् स्थात्, न इत्। सत्यापयित प्रयोपयित वेदापयित स्वापयित। (४००)वाढ़ान्ति-केति साधादयः, साधयित। प्रयस्माचष्टे यापयित। प

कि: किंडिः, किंडिमाचि इति किंडि-मच्दात् जिं, ि खिता् टिलीपे किंद्रिषादः किंडिमाख्यात्तवान् किंडि-टीदि, भनागमः, (५८१) प्रनरमागमः, (६११) भङ्, (७१८) कतारं दिला दि इत्यस्य दिलाहि, (६४१) कंलेंगि भौडिंडिन्। एके वामनादयः। ईप्पालमिति ईम्पातीः किंप् ईट्, ततः ईट् विद्यते भस्य इति (४४१) मतः, (१५४) यखं (१५४) यस्य ड, (६४) उस्य य, ईप्पान्। भनेन जिः, मतःनिक्तं, या यस्य विश्वस्य पूर्वा प्रकृतिः सा तस्यित न्यायान् पुनसाखन्य-म-स्थितः, ईप्रि भतः। एवं सुत्वनं स्विनस्य भाष्टे, वतु-विनोक्तं, पूर्वावयवस्यितः। (४६८) सुङ् महिना-मिति वह्वचवेन भनट् कत्तु पञ्च भल् भाष्टे, वतु-विनोक्तं, पूर्वावयवस्यितः। (४६८) सुङ् महिना-मिति वह्वचवेन भनट् कत्तु घञ् भल् भाष्ट्यक्तेप्—एषां सुक् वक्तवः, तेन ममनमाचटे गमयित, गतवन्तमाचटे गमयित, वस्माचटे वस्यित, वस्माचटे घात्यित, ब्रह्मापोमाचटे बह्मयित इत्यादि। एवं भन्नरिमाचटे कार्यति (४६८)। "तन् करीति तदाचटे।" वार्तिकइयम्।

^{*} श्रेतायय प्रश्वतर्य गालीडितय पाहरकव तत् तस्य । अथय तर्य इतर क्य तेषां भीपः। एवां कमादितेषागंगानां खोपः स्वादित्यवैः। अश्वतरमावर्धः, गालीडितमावर्धः, आहरकमावर्धः। (उन्त्रादशीले रोगानें मूर्वे गालीडिती मतः। पाहरकमस्यष्टवाकाम्।) भाष्यम्।

[†] एकाचासी पत् चेति एकाणत्, सत्यय प्रयंख वेदय एकालाय तत् तस्य । सत्य-सायक्षे, प्रयंगातके, वेदनायके, स्वमायके दित वास्त्राणि । वादमायके साध्यति ।

८५८ | जि: कल्यादे: । (वि: १), कलादे: ६)।

कल्यादेरपंत्रियेषे जिः स्थात्। कलिं ग्रह्माति कलयिति, अचकतत्। इलयिति, अजञ्चलत्। कतयिति, अचीकतत् अचकतत्। वर्णयिति, त्वचयिति। त्स्तानि विनिञ्चनि वितृस्त-यिति। वस्तं संकादयिति संवस्तयित। अ

वर्माणा संनद्वाति संवर्मायित'। चूणैरवध्वं सते अवचूणैयित।
हस्तिना अतिक्रामित अतिहस्तयित। वीणया उपगायित
उपवीणयितः। त्वैरवकुणाि अवत्वयितः। आकैरपस्तीित
उपस्रोक्तयितः। सेनया अभिमुखं याति अभिषेणयितः।
अभिषिणियिषति। रूपं पश्यति रूपयितः। सोमान्यनुमार्षि अनुसोमयितः। हस्तौ निरस्रति अतिहस्तयितः।

एवं चानिकसायके नेद्यति, स्यूलसायके स्ववयति, दूरसायके द्वयति, युवाने यवयति, (४०४) कन्-चार्यये कन्यति, विग्रं चेपयति, चुद्रं चार्यति, प्रियं प्राप्यति, स्थितं स्थापयति, स्थितं स्थापयति, स्थितं स्थापयति, स्थितं स्थापयति, स्थितं स्थापयति, स्थितं स्थापयति, स्थितं द्वाययति, इत्यं क्ययति, (४०२) ज्य-चार्यये ज्याप-।ति, वन्द्यति। कर्नारं (४६८) त्वन्तिषे कार्यति। (४०२) प्रश्चस्थाने । स्थादेशे ज्यापयति, (४०२) ज्यापयति। त्यापयति, (४०२) ज्यापयतीति च। (४०२) पृष् प्रथ्यति, स्रदं सदयति, स्थां कश्चति स्थां स्थायति, दृष्टं द्वयति, प्रिवृदं प्रत्वद्वयति। (४०४) ज्यापयति स्थां स्थायति, दृष्टं द्वयति, प्रिवृदं प्रत्वद्वयति। (४०४) ज्यापयति स्थां स्थायति, दृष्टं द्वयति, प्रिवृदं प्रत्वद्वयति। (४०४) ज्यापयति स्थां स्थायति । स्थापके सावयति, वहीभूरिति वक्तव्यति। वार्तिकम्।

^{*} काल शादिर्गस स कल्लादि सस्मात्। काल इली कामधेन सन्नार्थवास्वासकादिति । स्वतो आल्लाने च (८५५) पूर्वेण जिविधानात् अत अर्थविभिषे स्मादिश्वकम्। मध्य स्थापितः, कालां रुक्षाती स्थादि। कालिश्रच्यात् जिः, (४६०) डित्, टेलीपः, काला इति धातः। अथलालदिति (६२८) काला इति वर्जनात्न सन्द्रावः। र्यं इति रुक्षाति, त्रतं ररहाति। अधीकतदिति (६२८) विकर्तन सन्द्रावः। वर्षे (वर्णद्रचः) रुक्षाति, त्रचं ररहाति। वितृस्तयित, तृत्वरहितं करोबीलयंः। (तृसं देणे च पापे च नटायास् नपुंसकमिति भेदिशी।) संह्राद्यति परिद्रधातीलयंः। पाणिनः स्वार्थः, वार्षिकानि अ

पुच्छ सुत्विपति उत्पुच्छयते। भाण्डानि संविनोति संभाण्ड-यते। चीवरं संमार्जयति परिद्धाति वा सञ्चीवरयते भिचु:। *

८५१। तिथी यथिष्टं दिः, नग्डायजा-द्योस्त हतीयानाद्यो: ।

(लिधी: ६।, यर्थप्टं २।, बि: १।, कख्डादि-अजायी: ६॥, तु ।१।, वृतीयानायी: ६॥)। पपनीयिषति पतिनीयिषति पत्नीयियिषति, पनीयिषिषति, पुपतित्रीयियिषषति । कण्ड्यियिषति, अभिम्बीयिषति । १ इति लिधु-यादः।

'इय चतुर्गणाध्याय: ।

 वर्माणा कवचेन मंनद्यति बम्नातीत्वयः। चर्णेयर्णद्रव्यै: पवध्वंमते प्रवितर-तीलर्थः, नाशयतीति कथित्। इसिना इत्युपलचर्ग अर्थता अतिकासति अध्वय-तीत्यपि स्थात्। तुलै: परिमापकदण्डैस्वक्षणाति परिमातीत्यर्थ:। मभिषेणयतीति (५०२) गीत इति वलं, (१००) गलं। अभिषेणियिविभिक्तांत इति वाकं सेनिधाती: सन् (१५४) इ.म्, हिलादी, दशस्यादिरिति डिक्तस्य पर्लं। भाष्डानि सूलधनानि सिंजिनीति सिंजितानि करीती वर्ष:। (भाग्छं पात्रे विणाद्मलाधने भुषात्रभूषयीरिति भे किनी।) भन संबर्धायतीत्वादिषु सप्तसूटाइरणेषु करणकारकोश्य एव जि: भतएवैते सक्तमंका: प्रयोगा:, अन्येष कर्माकारकेथाः तेन प्रायशः अकर्माका इति । एष्टा इरणेष् पुक्तिभाखिकीवरिभ्यः भावानेपदं, भन्तेभ्यः परस्रोपदं प्राचीनसमातम्। पाणिनिः 9|8|74.70 |

🕂 चादौ लि: पथान धु: लिघु: नामधातुरिति यानन्, इष्टमनतिकस्य यथेष्टं (क्रिया-विशेषणं)। काष्ट्रादि यथ स काष्ट्रादिः, अव पादिर्यस्य मः अनादिः। काष्ट्रादिय अजादिय तथी: । वतीयस भनादिय तथी: । यथेएमिति क्रमेण युगपदा दस्यं:, तयाच कराचित् प्रथमवर्षस्य, करावित् दितीयार्दः, कराचित भव्वेषा सुगपत्, कस्डुारे मृतीयस्थेन, प्रजादेय पादिनपे हिला हितीयस हतीयादची हिमान प्रस्थः। पुन-শিবাখন নি থিয় ইবি বাকঃ (८४०) का: पुत्रीय-धातु:, तत: पुत्रीयतुमिक्किति सन् (१५४) इ.५, पुची यिष इत्यस्य पुत्रस्रतीनां क्रमेख युगपच डिलां। कर्लं करीतीति वाकी (Cus) का, तत: क्छितितिक्छिति सन्, इन, कर्ष्ट्रिक इत्यस स्तीयवर्षस वि इत्यस दिलं। भन्नभिवाधरति गां (८४०) कः, भन्नोथितुनिक्काीति सन्, भन्नीथिव दौत स्थित दिनीयसी दिलं। ततीयस दिने अभीविधिषति, एव चतुर्धसापि। नात्तिकानि।

१म:। त्याद्यन्ताध्याय:।

→◆

श्म पादः-पं।

प्र-वच्च-परि: स्वपं परानु-क - प्रत्यस्यति-चिप-प्र-वच्च-परि: स्वप- व्यापरिरमो वा तूपरमः।

(चि ७), पं १।, परा-भनुक्त, प्रति-म्यति-चिप, प्र-वह, परि-मृष, वि-म्रा-परि-रम: ५।, वा ।१।, तु।१।, चप-र्म: ५।) ।

एभ्यः पं स्थात् घे, उप-रमसुवा। 'पराक्षरोति अनुकरोति, प्रतिचिपति, प्रवहति, परिसृष्यति, विरमति आरमति परि-रमति, उपरमति उपरमते विश्वाः। *

८६१। कम्पान्तार्थेङबुधयुष्ठपुदुस्जननशे। ऽजिप्राणिदादाच जे:।

(कम्य-नगः प्रा, पञि प्राणिघाड़ात् प्रा, च ।१।, जे: प्रा)।

चलयित भोजयित ऋध्यापयित, बोधयित योधयित प्रावयित द्रावयित स्नावयित जनयित नागयित, ग्राययित क्रणः

^{*} परानुभ्यां तः परानुकः, प्रत्यभ्यतिभ्यः विषः प्रत्यभ्यतिनिषः, प्राव्यहः प्रवरः, परेभृषः परिम्वयः, व्यापरिभ्यो रमः व्यापरिरमः। ततः, परानुज्ञय प्रत्यभ्यतिविषकः प्रवष्टकः
परिम्वयः व्यापरिरमः चिति तसात्। चनिन नियमेन का विष् वषः स्था इति चतुणाः
अर्च्छापि भात्मनेषदं न स्थात्। वैथींग (२०६) हितीया विश्विता तेषाभन्वादीनासिक्षः न ग्रहणमितिः, तेन ब्रथमनुकुषते ध्वापे स्थात्। विष्णः उपस्कृति उपस्कृते
की इतीत्यथः। पाणिनः ११९१०६---८५।

यमोदा। अपाणिघात् किं, मोषयते मालिं। अङ्गत् किं, भित्तं कारयते। अञी किं, रूपयते हरिः। *

इति पःपाटः ।

२य पाइ:--मं ।

द्र। वि-परा-जि --परि-व्यव-क्री-नि-वि-शानुप्रच्छो मं। (वि-पचः प्रा, मं श)।

एभ्यो मं स्थात् घे । विजयते पराजयते, परिक्रीकीते, निवियते, श्रानुते त्राप्टच्छते । *

[•] कम्प्यलनं, पर्तं भोजनं, ते चर्णा येषां ते कम्पादार्थां, तेच इङ च वृध्य युध्य प्रुष दृष स्थ जनस नम् च तथात्। प्राणी घी यस स प्राणिघः, नासि ढ यस सीऽढः, प्राणिघादां मित्र यस सीऽढः, प्राणिघादां मित्र यस सीऽढः, प्राणिघादः मित्र प्राणिघादः स्थापि । एथी ज्ञानीथः पं स्थात् वि, एतेन फलन्त् कर्मयं प्राण्यानेपदं न स्थादिति बीध्यं। चल्यति जन्यतीति च घटादिलात् इस्तः। भाययति क्षणिति, क्षणः भेते इति प्राणिक मृंकीऽकर्म्भकः, ततो ज्ञानान् परस्थेपदं, भालिः ग्रंघतीति प्राणिक मृंकीऽकर्म्भकः, ततो ज्ञानान् परस्थेपदं, भालिः ग्रंघतीति प्राणिक मृंकीऽकर्म्भकः, तेन ज्ञानात् परस्थेपदिनयमाभावे छभयपदं। ६पयते इति ६पत् कत्त्वती निश्च स्थादः, स्तरां भज्ञानदभाया भस्मवात् नैति वियमप्रसङः, भत्र पर्वे परस्थानत्वं उभयपदमेव। पाणिनिः १।३।०६,००,००।

[•] वि-परास्था निः, परि-व्यवेश्यः कौः, ने विंशः, भाङो तु-प्रच्छी। ततः विपरा-निय परिव्यवकीय निविधय भातुष्रच्छी चेति तस्थात्। घे इति पूर्वादनवर्गते। डु क्षो ज ग द्रव्यविपर्थय इत्थादि ञानुवन्धधात्नामात्यनेपद-विधानं भफलवन्तकर्भयंपि भाग्यनपद्याप्तार्थे। एवं सर्वव। नि-विध इत्यनेन प्रस्थिविधनीत्यादी न मंस्थात्। पाणिनिः १।२।१०,१८,१८, वार्तिकस्थ।

दर्इ। श्रा-दाओ ऽखप्रसारे।

(भादाजः प्रा, प्रस्तप्रसारे ०।)।

श्रादत्ते। स्वप्रसारे तु, व्याददाति सुखं क्षणाः। *

८६४। त्रा-गमेः चान्तौ। (षा गमेः प्रा, वानौ ७)। प्रागमयते कालं। पे

८६५। पर्यन्ववाङः क्रीडः।

(परिन्त्रनुत्रव-माङ: ४।, कीड़: ५।)।

परिक्रीड़ते अनुक्रीड़ते अवक्रीड़ते आक्रीड़ते । 🕸

द्द्। समी ऽक्कुजने। (समः ४।, पक्कुणने ०।)।

संक्रीड़ते। क्जने तु, संक्रीड़ित चक्रं। §

दई । क्रो ऽपाइर्षानवासे च्हे चतुषाद्वौ सुम् च।

(का: ४।, चपात् ४।, इर्षाव्रवासेक्के ७।, चतुषाद्वी ७।, सुम् ।१।, च ।१।) ।

अस्तं स्वाक्तं, स्वस्य प्रसारी विक्तारणं स्वप्रसारः, नञ्योगेतिकान्। भाङ-् पूर्वात् दाञीनं स्वात् घे, नतु स्वप्रसारे। भादत्तं ग्रह्माति, व्याददाति विक्षारय-तौत्यर्थः। पाणिनिः १।३।२०। अत्र "अनास्थविद्वरणे" द्रत्युत्तन्।

[†] गिम र्ज्यानः, चान्तिः प्रतीवयं। चाङ्पूर्ञ्ञात् गमयते में स्थात् घेचान्ती (प्रतीवायाम्)। चागमयते कालंप्रतीधते इत्यर्थः। चानयनादी चर्ये परक्षेपदमेव। वार्त्तिकम्।

[‡] परिच भनुष भवस भाङ्च तस्मान्। एभ्यः क्षीड़ित में स्यात् घे। सङ्घर्यका-तुपूर्व्वात् न स्यादिति वक्तव्यं, तेन वालकानतकोड़ित। पाणिनिः १।३।२१। भत्र नावः।

[§] संपूर्व्यात् की इते भें स्थात् घे, न तु कूत्रने । कूत्रन-मस्यक्तशस्दः । वार्त्तिसन् ।

भ्रपस्किरते मत्तः कुक्तुटः म्बावा। श्रन्यव मक्षोऽपिकरित, गजीऽपिकरत्यभः। *

८६८। भ्रपथागीर्गत्यनुकारे भ्रप-नाथ-हुनः।

(ग्रयय-वागी र्गत्यनुकारे था, ग्रप-नाय हुन: ५।)।

कणाय प्रपते गोपी। मोचाय नायते सुनि:। पैत्रकमनुहरते प्रावः। । प

८६८। प्रतिज्ञा-निर्णय-प्रकाशे संप्रव्यवाच स्थः।

(प्रतिज्ञा-निर्णय-प्रकाशि ७), सं-प्र-वि-श्रवात् ५), च ।१।, स्यः ५।)।

^{*} पत्रच वास्य ती, तयीरिक्ता चन्नवासंक्ता, इवंषा चन्नवासंक्ता यस स इर्षास्वासेक्त लिखन्। चन्याच विस्न तत्त्विम्। चन्यान पणः, वि: पणी। इवंहेन्त भन्नवंक्तावित इवंहिन्त-वासेक्तावित वा चन्यादि पित्तिया वा कर्त्तारे सित चपान् किर्त में स्थान्, तस्य सम् चित्यंः। चपिक्तरते, मनी इटः कुकुटः भनार्थी भूमिमालिखति, मनः या वा वासार्थी भूमिमालिखतीत्वर्थः। चन क्षातुरालिख-नार्थे एव बीध्यः। चन्यादी किं. मस्रोऽपिक्तरति ख्लार्ये भूमिमालिखति। इर्षा-स्वासिक्ते इति किं, गनः सभी कलं चपिक्तरित कहें विपतील्यः। चन तृक्षयीग-निर्दिष्टानां सइ वा प्रवितः सह वा निवित्तिरिति नायेन चात्रभिप्रभावपचे सुमिन न स्वादिति। पाथिनिः ६।१।१४५। "किरतिर्दर्शनीविकाकुलायकरपेष् वाच्यन्" इति वात्तिवे इषांदयस्ययो विषयाः उक्ताः, तत्र इर्षो विचेपस्य कारणम् इतरे फल्। वीप-देवसु मतान्तरसवल्बा इषंजनितं विषयस्यमेव लिखितम्।

[†] यपी आक्षाभे इ.चसान यपये, नायृ ङ तापश्चिषीरैध्येऽयेने इत्यसात् पाशिषि, इल इत्यानित्यसान् गत्यनुकारे, सं स्थान् घे। श्रप्थः पुनादिश्वरीरस्पर्शादिना नियानिरसंभं, पाशी-रिष्टार्थाविकारणं, गत्यनुकारो गतिसहशोकरणं। गोपो क्षणाय यपते, कस्यचित् शरीरं स्पष्टा मयेतत्र क्षतिनिति दिस्येन कृष्यं तीपयिनुनिष्कतीत्ययंः। यप्यादस्य नियमाभावा-दुभयपदमेव। सृनि मीचाय नायते मीची से भ्यादि स्थायसि इत्ययं। उभयव (२८४) चत्यां। नायधाती-रास्थनेपदिलेऽपि पाशिषी ऽत्यव परस्थेपदनेव। प्रयः पैटकं पिटसस्यथायं गमनिति यावन् सनुकर्रः प्रकारीति पिटवत् गच्छतीत्थयं।। गतिय इपात् रूपायनुकारे न स्थादित। "श्रा उपात्रस्थे", "साथिषि नायः", "इरतेशैतताच्छीत्ये" इति वार्तिकावयम्।

नित्यं ग्रष्टमातिष्ठते। त्विय तिष्ठते विवादः। रामाय तिष्ठते सीता। सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते वितिष्ठते ग्रवतिष्ठते समस्यित। *

८७० | उदोऽनू ईंच्हे | (घरः ४१, षण्डेंचे वा)।
मुताबुत्तिष्ठते। श्रन्यव श्रासनादुत्तिष्ठति, यामाच्छतमुत्तिष्ठति।

८७१ | मन्त्रेणीपात | (मन्त्रेण २१, छपात् ५१)।

गायच्या उपतिष्ठते अर्का। क्ष

८७२ । मेन्राध्वसङ्गाराधि । (मैबी मध्व-मक्त-भाराधि का)। सन्तमुपतिष्ठते साधुः। गङ्गामुपतिष्ठते पत्थाः। पतिमुप-तिष्ठते नारी । विणाुमुपतिष्ठते वैणावः। §

^{*} प्रतिज्ञादावर्थे तिष्ठते में स्थात्, सं-प्र-वि-भवेभ्यो व्यक्षिन्, किसिन्नपर्यं मं स्थात् घे, चकारात् भर्यदयं। प्रतिज्ञा भङ्गोकारः, निर्णयो निषयः, प्रकाशः स्वाभिप्राय-प्रकटनं। निर्णय भन्दमातिष्ठते, निल्मिति भन्दस्य विभिषणं, भन्दी निल्प इति प्रैतिज्ञां करीतील्पयः, मीमांसक इति भ्रषः। लिथ विवादिसप्रते इति निर्णयः। स्वीता रामाय तिष्ठते स्वाभिप्रायं प्रकाभयतीन्यर्थः। (२८४) चतुर्थी। समस्थित इति (७१६) ज्ञिः। पाणिनिः ११३।२२,२३, वार्त्तिक्षः।

[†] न कर्ज भन्ते, भन्ते इंदा (चेषा) यस मः भन्दें स्विधन्, भन्दें हे इति कर्त्तिविधि । अत्युर्वात् स्थाधाती में स्थात् भन्दं विषये चेष्टमाने कर्ति। सुन्नो अत्तिविधि चेष्टमे कर्ति। स्वामे अत्यादा भासना-दुत्तिष्ठतीति कर्त्तु इंचेष्टलाझ मं। यामात् सत्तमुत्तिष्ठतीति सत्तिविधि स्वय्ये:, शतस्य कर्त्त्वेष्टाया भभावाद्य मं। पाणिनिः १। १। २४।

[‡] सन्त्रकरणके भाल यें उपात् स्थो मंस्यात् चे। गायना मन्त्रेण भाकं सूर्यं उपाक्ते भूलायं:। सन्त्रेण किं, युवित यैंविनेन भार्त्तरसुपतिष्ठति। पाणिनि: १।३।२५।

[§] मित्रस्य भावी भैत्री, प्रध्वा पत्याः, मङ्गः सङ्गनः, पाराध प्राराधनं। एष्ट-येषु उपात् स्थीनं स्थात् घे। प्रध्वनि कर्षरि सतीति भावः। साधः सनं साधुं

조৩३। सिप्तायों वा। (विकास का, वा ११)। भिचु धीर्मिकसुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा। %

८७४। ऋढात्। (भडात् ४))। ज्ञानमुपतिष्ठते। पं

८७५। समी गरक्षप्रक्षसृयुवेत्तरिहराः।

(सम: ५।, गम-ऋष्कः प्रच्छ-खृ-यु-वेत्ति-भर्ति-हम: ५।)।

सङ्गच्छते, समगत समगंस्त, सङ्गसीष्ट सङ्गंसीष्ट। सम्बच्छते, संप्रच्छते, संखरते, संप्रणते, संविद्रते संविद्रते, समिगृते, सम्प-खते। यटात् किं, यङ्गां सङ्गच्छति। इ

ख्यतिष्ठते मित्रं करोतीत्यर्थः। गङ्गासुपतिष्ठते पत्याः गङ्गां गच्छतीत्यर्थे। पयि कर्मिर किं, पत्यानसुपतिष्ठति ∤ पतिसुपतिष्ठते पत्या सह सङ्गं करोतीत्यर्थः। विणु-सुपतिष्ठते चागाधयतीत्यर्थः। "खपाइचियूजासङ्गतिकरचनित्रकरणपथिव्यिति वाच्यन्" इति धार्तिकस्।

रुअविश्वका विद्या। विद्यार्थे उपात् ख्यो मंस्यादा घे। घाशिकसुपतिष्ठते
 उपविषठित वाघाशिकात (धनं) ख्यां मिच्छती खथं:। वार्तिकस्।

[†] उपात् पत्रक्षंतात् स्थी मं स्थात् वि । विभाषादय-मध्यवित्तिलानिल्यं । ज्ञान-सुपतिष्ठते ज्ञानं उपस्थितं भवतील्ययः । पाणिनिः १।३।२६।

[्]र नमच साक्षय प्रकार ख्रुय युव निषय भिष्य हम चैति तकात् । समः परेयः सम्मानं स्वास्त्रं कं सात् चि। एते सक्यं का पि विविधावणादक संकाः । समगति ति सम् गम टीवन्, सिः, (६५८) से कित्सं का, (६०६) अम् खोतः, (५६२) से लें। । कित्सं झाभावपचि (५०) मस्यानुस्वारः । एवं डी-सीष्ट । सम्काते संप्रकाते तृदादिलात् झः, (६६१) प्रकाति निः । संप्रकाते (६२१) त्रुः निष्य । संविद्रते द्रस्यादि भन्ते (५५५) चन्तं, (७२६) खि कैंः, (५८५) विकायन रम् । सिन्यते द्रति चर्ला गस्या (७२६) वितं, (७२८) खि कैंः, (५८५) द्रस्याने द्रत्य । भार्तं-यद्येन भीवादिक स्यापि, तेन सम्बक्ति द्रति च। पार्विवः १।३।२८, (१।२।१३,०)१।०,] वार्षिक ह्यस्य ।

८७६। गे वीसोहो दे च।

(गैं प्रा, वा ११।, चस्सीइ: प्रा, ढे ७।, च ११।) ।

निरस्रते निरस्रति, समृहते समृहति । *

८०७। गेहह: खो ये ऽगौ।

(ग्रे: प्रा, कड़: ६), ख: १।, ये ७।, प्रश्नी ७।)।

बच्चा समुद्यात्। 🕆

८७८। त्राताङ्गढादहाचा-इनयमः।

(भावमाञ्चलात् ५), भटात् ५१, भ ।११, भा-इन-यम: ५१)।

उरग्राहते, पादमायच्छते। ग्राहते ग्रायच्छते। ग्रन्थन ग्रनुमाहन्ति, परिश्रार ग्रायच्छति। इ

८७१ | इन: कित् सि: | (इन: ४१, किन् ११) वि: ११) व

प्रसुद्द्चिपै, कइ उत्तिकों। गै:पराध्यामाध्यां मंस्यादा वे; ढेकर्यापि
 विद्यमाने,चकारात् प्रकर्याणः चाः वार्तिकम्।

⁺ गी: परस्यः कडधाती? स्तः स्यादणी ये परे। बद्धावेदं परभेष्ठरं वा ससुद्धात् बद्धाविषये वितर्ककियादिल्ययेः। पूर्वतृत्वेण भाग्नने पद्विकल्पपचे टी यात्, भव क्रस्तः। पाणिनिः शुक्षारुः।

[‡] भारतमः भन्नं ढं यस्य स भारतान् तस्तात्। नालि ढं यस्य सीऽढतस्थात् । इतः च यस् च इत्यम् भारते इत्यम् भारत्यम् तस्तात्। मस्कूकवत्यः चे मं इत्यन् वस्त्रक्ति । स्वाज्ञकसंकाभ्यासकसंकाभ्यासः भारत्युक्तं इत्यमाभ्यां चे नं स्यात्। स्वाज्ञढादितः नीज्ञा भारताज्ञढादिति कथनं, (२६५) पारिभाविक-स्वाङ्ग-स्थाङ्ग्ययं, भारत्य परिवार भायच्छतीत्यव नातानेपदं। चरीः वद्यः भारते ताङ्गतीत्ययंः, पारं चरणं भायच्छते दीर्घं करोतीत्यथं। कस्त्रांविवचायां भारते ताङ्गती भवति, भाषक्रिते दीर्घों भवतीत्यथं:। पाणिनाः १।१।२८, भाष्यचः।

इन: पर: सि: कित् स्वात्। श्राइत श्रावधिष्ट, श्राइसातां श्रावधिषातां। *

८८०। यमः सूचने वा तूहा है।

(यम: ५1, स्वने था, वा ।१।, तु ।१।, उदाहे था)।

त्रायत । रामः सीतामुपायत उपायंस्त । 🕆

८८१ | व्युत्तपः। (वि-उत्-तपः प्रा)।

वितपते उत्तपते पाणि जनः। 🌣 श्रात्माङ्गढादढाच किं, महीं वितपत्यर्कः।

८८२। तपोढाद् यक् चरे।

(तपीढ़ात् प्रा, यक् ।१।, च ।१।, रे ा)।

तप्यते तप्रस्तापसः। रे किं, अतस। §

^{*..} षाहत इति पूर्व्वेषात्मनेपदं, (६७८) वधादेश-विकल्पपचे अनेन से: कि चा (६०६) अम्लीपः, ततः (५६२) सिलीपः। वधादेशपचे (५५४) इम् भाविषष्ट। एवं टी श्रातां। पाणिनिः १।२।१४,[२।४।४४]।

[†] यम: पर: नि: कित् स्थात् भाक्षनेपदे सूचने भयें, विवाहार्थे तुवा। सूचनम् इक्कितादिना विद्यापनं। भायतः इति भा-यम, पूर्वेषाक्षनेपदे टौ-तन्, सि:, भनेग् से: किक्तं, (६०६) अमलीप:। उपायतेत्यादि (८०८) उपयम इति वद्यमाण सुचेषाक्षनेपदे भनेन विकल्पेन से: किक्तं। पाणिनि: १।२।१५,१६।

[‡] व्युद्ध्यां परादात्माङ्गढादढाच तपो च मं स्थात्। मञ्जूकात्या च मं इत्यमु वर्तते। जनः पाणि इत्तं उत्ततं करोतीत्यर्थः। एवं जनः उत्तती भवतीति श्रद्धादि वितयते उत्तपते। पाणिनिः १।३।२०, भाष्यं, वार्तिकच।

ह तयः ढं (क्यां) यस्य स तपीटलस्थात् । प्रथक्षिशानात् व्युदिति नानुवर्भते तपीटादिस्पनेन आस्थाङ्गढादढाभेति च निरसं । तपःकसंकात् तपी संस्थात् घे, परं यक् च स्थादिस्परः । अत्र यक् अपी वाधकः । तपक्षप्यते तपः अर्ज्जंथतीस्थयः

८८३। सृजः याङवात् तनीस् च।

(स्टन: ५।, याह्यात् ५।, तनि ७।, इष् ११।, च ११।)।

सृज्यते सजं भतः। श्रम्भि। श्राह्यात् किं,स्जिति सजं मालिकः।%

८८४। निसंव्यपह्यः। (नि.सं-वि-चप-ह्व: ५)।

निह्नयते संह्नयते विह्नयते उपह्नयते । 🕆

८८५। सर्दाया-माङः। (खर्डायां ०१, बाङ: ४१)।

क्षणायान्रमाद्वयते । 🌣

८८६। सूचनावचेषणसेवासाइसप्रतियत्न-क्रियोगे थाने अक्षेत्र । (स्वान-उपयोगे था, क्रजः प्रा)।

श्रपकुरुते, श्रीनो वर्त्तिकामुपकुरुते, विश्यां प्रकुरुते, परदारान् प्रकुरुते, एथादकस्योपस्कुरुते, गीताः प्रकुरुते, यतं प्रकुरुते। §

एवं तर्व्यत तव्यतां भतव्यत। भतप्ति टीतन्, निभित्तगतविश्वेषात् सिरेक्, न तु यक्, भौदिचान्नेम्, (५६२) सिकीपः। पाणिनिः ३।१।८०,८८।

यत्पूर्वक-धाधातोर्ङः (११५०) यदा इति, यदा विद्यतेऽस्ति (४४६) प्रज्ञादिवात् षः यादः, यादः घः यस्य सः याद्यस्तमातः। याद्यमात् स्वत्री संस्थात् चे, तिन परे इत्य्, चकारात् रेपरे यक् च स्थादिक्ष्यः। क्षकः यदाविक्षिष्टी जनः सर्जंमालां स्व्यते रचयतीत्ययः। अभजीति तन्, इत्य् सिवाधकः, (६४४) तन्त्वीपः। सालिकी न यदावान्। वार्तिकदयन्।

^{े †} नि सम् वि उप एभ्यः परात् क्षेत्रो मं स्थान् छे। चनिष्टलात् यगिषी-नीनुइतिः। पाणिनिः १।३।३०।

[‡] भाखः: परात् ह्वेञी संस्थात् द्वेस्पर्दायां गस्यनानायां। स्पर्दापराभिभवेष्याः । चानूरं तद्वासकाससुरं। स्पर्दायां किं, पिता पुत्रनाह्वथिति । पाणिनिः १।३।३१ ।

[§] स्वनाद्यर्षेषुक्रजो संस्थात् घे। स्वनं—परदीषाद्याविकारणं, भवर्षपणः— तिरस्कारः, सेवा -भनु∉तिः, साइसं—पद्यादीषमनाखीच करणं हिसा-चौर्थ-

८८७ | श्रधे: गत्तौ । (भवे: ४।, मकी थ)। दैल्यानधिकत्ते कथा: । *

८८८ । श्रव्हाढाहे: । (श्रव्हाडाल् ४।, वे: ४।) ।

स्तरान् विकुर्तते, वायुर्विकुर्तते। अन्यत्र चित्तं विकरोति कामः।

ब्ययेषु नीज: । (भान-व्यवेषु जा, नीज: ५।)।

भास्ते नयते, विष्णुं नयते, दण्डमुवयते, पुत्रमुपनयते, सृत्य-मुपनयते, ऋणं विनयते, द्रव्यं विनयते । #

परदारममनादि, प्रतियवी—गुपालराधानं, कथा—चाल्यानं, उपयोगी—धर्मादाधं द्रव्यविनियोगः। अपकृष्ठते कस्यचित् दीषमाविकरोती-धर्यः। स्रेनो वर्तिकासुपकृष्ठते तिरस्करोतीस्थ्यः। वर्त्तिका-स्रेनौ पचिविश्रेषौ । विष्णुं प्रकृष्ठते सेवले द्रव्यथः। पर्द्रारान् प्रकृष्ठते साहस्रत् त्रि, प्रवर्त्ते द्रव्यथः। एषः काष्ठं तस्य उदकं रसः, एषी-दक्स काष्ठरसस्य उपस्कृष्ठते चित्रयोगेन गुपालराधानं करोतीत्ययः, प्रतियवार्थे (अद्धं, सुन्। गौताः प्रकृष्ठते क्षययतीत्ययः। स्रतं प्रकृष्ठते स्रतं द्रव्याणि विनियुङ्के द्रव्यथः। पाणिनः १। १:३१ । भन्न म्पनित्यन गन्धनपदं प्रयुक्तं सस्यार्थेय प्राण्ववियोगान् तुकृतं स्वनम्। हिंसा दिन भदीजिदीचितः।

* अधिपूर्व्यात् क्रजो मंस्रात् घे ब्रातौ । ब्रक्तिरक्षिभेतः । टैल्यानिधकुरते करणः अक्षिभवतील्ययः । पाषिनिः १।३।३३ । (इस्त्र प्रसद्दनं≔ चनाक्षिभवस्र) ।

† शब्दो ढंग्रस सः शब्दढः, नासि ढंग्रस सोऽढः, शब्दढव भडक तक्तसात्। वेः परात् शब्दकर्माकादकर्माकाच क्रजी संस्थात् घे। स्वरान् शब्दान् विकृषते विशेषेण करोतीसर्थः । वार्थावृक्तकते विक्रतो अवतीसर्थः । पाणिनः शश्श्रः १५॥।

‡ जानं प्रमेयनिषयः, पद्मी पूजा, जरवीप उक्तयनं, उपनयनं यजीपवीतदान-संस्तारः, स्वित्तेतनं, विगणनं ऋणशीधः, व्ययी विनियीनः। एवर्थेषु नीजो सं स्थात् चि। श्रास्त्री नयते प्रमेयनिषयं करीति, विष्णुं पूज्यति, दखसुरिवपति, प्रवं यजीपवीतदानेन संस्तरीति, स्वामुपनयते स्वाय वितनं ददाति, ऋणं शीक्ष्यति, द्रव्यं विनियुक्तो इत्यथः। पाणि निः १।३।१६। ८८० | घस्यामूर्त्तात् । (वस्तामूर्त्तात् प्रा)। क्रीधं विनयति । घस्यं किं, गुरोः क्रीधं विनयति । प्रमूर्त्तं किं, गण्डं विनयति । *

८१। वृत्तुत्रत्साहतायने क्रमः-परोपक्रमः।

(हिन्छत्साइ-तायने ०।, क्रमः ५।, परा-छप-क्रमः ५।) ।

ऋचु क्रमते बुद्धिः । धर्माय क्रमते साधः । सतां त्रीः क्रमते । पराक्रमते उपक्रमते । 🕆

प्रदित | खाङो भोद्गमे' | (षाङ: प्रा, भोदगमे ०)। घाक्रमते वर्ताः । भोदगमे किं, त्राक्रामति धूमः, खं व्याप्रो-तीत्यर्थः । क्ष

८१ वे पद्भिः । (वेः प्रा, पिक्षः रेगा)। ं साधु विक्रमते वाजी। पद्धिः किं,वाजिना विक्रामति राजाः ।§

क्षेत्रभिर तिष्ठतीति घष्यं, घष्यं प्रमुत्ते ढंयस्य च तक्षात्, नीजो मंस्रात्
 क्षे। क्षे। घंविनयते अस्यतौत्यर्थः, पत्र क्षे। कर्तृस्थः। गण्डं वर्षः। पाणिनिः
 १।३।१०।

[†] बित्तिरप्रतिवन्धः, खन्नाइ खद्मनः, तायनं बितः (स्मीतता)। एव्यर्थेषु क्रमः परीपक्षमय मंस्थात् घि । परीपयहण्यमन्योपसर्ग-निराधाय । स्टत्त वेटेषु बुद्धिः क्रमते प्रशित्वका भवति । पर्माय क्रमते खन्नादि । सतांत्री वंदेते । पाणिनिः १।३।३८८,३९८।

[‡] भानीति भानि (१८७) चादनात् चे खः । भानां चन्द्रत्यांदीनासुद्वमे चाङ्-पूर्वात् कसी भंस्यात् चे । चाकमते चद्रच्कतीत्यर्थः । पाचिनिः १।३।४०, वार्त्तिकस्र ।

[§] वै: परात् कमी मंख्यात् घे पिक्ष पिक्ष विश्व निष्यति । वाजी घीटकः पिक्ष विश्व पिष्यति ।

८२८ | प्रोपादारको। (म-खपात् था, भारकी २०)। भोक्तुं प्रक्रमते उपक्रमते। *

द्रश्र | वाऽगे: । (वा १२१, भगे: ५१)। क्रमते क्रामति । पे

८१६। निज्ञवे जः। (निज्ञवे का, जः प्रा)।

श्रतमपजानीते । क्ष

टर्७। ग्रहात्। (भटात् प्रा)।
सर्पिषी जानीते। §

ट्ट। संप्रतेरसृतौ । (सं-प्रते: ५१, प्रवृतौ ०१)। संजानीते प्रतिजानीते । असृतौ निं, पुत्रं संजानाति । ¶

दर्र। अटें आ है। (जे: ४१, डे थ, पर्जो थ, घं थ)। दर्भदते भवी भक्तान्। प्रजी यत् ढं तचित् घ इति किं—

[⇒] प्रीपाभ्यांपरात् कामी भंस्थात् घे त्रारकी । भीकृंप्रक्रमते पारभते दृत्यर्थः पारिवनिः १।३।४२ ।

[†] नास्ति गिर्धिकान् चीऽगि साम्यात् । अप्री: क्रामी मंस्यादा घे । उपसर्गरहित क्रमधातः उभयपदीव्यर्थः । पाणिनिः १।३।४३ ।

[‡] जानाते में स्थात् घी निक्रवे ; निक्रवोऽपलापः। श्रतमपलपतीत्ययः। चप जानाति स्पन्नवार्यः। पाणिनिः १।३।४४।

[§] भक्तम्प्रकात् जानाते घों मंस्यात्। सर्पिषी एतस्य मानीते सर्पिषा करणे प्रवर्त्तते क्रत्यदं:। (३०३) चाऽज्ञाने धे द्रति करणे षष्ठी । पाणिनिः १।३।४५।

यु सं-प्रतिभ्यापरात् जानातं घें संस्थात, न तुस्पृती। संजानीते प्रतिजानी चक्रीकरीतीव्यर्थ:) पुत्रं संजानाति सोत्करुष्टसप्रतीव्यर्थ:। पाणिनिः १।३।४६ ।

दर्शयति यम् भक्तान् भक्तिः। चृतौतु, स्नारयति भक्तान् इरि:। *

१००। ज्ञानयत्रप्रलोभे वदः।

(ज्ञान-यव-प्रलीभे ७।, वद: ५।)।

पाणिनि वेंदते, चेत्रे वदते, शिष्यमुपवदते । 🕆

१८ यनोरढांत्। (भनीः था, भडात् थी)।

श्रनुवद्ते । 🕸

८०२। विमति-व्यक्तसन्होक्तेत्राः।

(विमति-व्यक्तसहीक्यो: ०॥)।

विवदन्ते शिषाः। व्यक्तं किं, संप्रवदन्ति खगाः। §

च्रची (घलानदशायां) ढेकर्मणि चे (जानदशायां मिति यावत्) कर्तर सित, जानाडाती में स्थात् चे, न तुस्तृती । भक्ताः भवं पेश्यन्ति, भवः भक्तान् दर्थयते पासानिति भेषः । भक्ताः सस्तुं पश्चित्ति, भक्तिः भक्तान् सर्थयति । घव घलानिति भेषः । भक्ताः सस्तुं पश्चित्ति, भक्तिः भक्तान् सर्भुं दर्थयति । घव घलान्तस्य कर्म्य श्रमुः, जान्तस्य कर्मी भक्तिः घते नासनेपदं । स्थार्यतीर्ति घव घलान्तस्यायां कर्मेलेऽपि कारणार्थलाद्रासमनेपदं । पाणिनिः र। १। १६०।

⁺ ज्ञानंयव: प्रकीक्ष: (उपमन्त्रणमिति पाणिनिः, र इस्प्रच्छन्दनमिति क्रमदीघरः) एव्ववेषु वदै वाचीलस्मात् मं स्थात् चे । पाणिनि वैदितुं नानातीलर्थः । चेत्रे यवं करीतीलर्थः । शिष्यं प्रकीमसतीलर्थः । पाणिनिः १।३।४०।

[‡] प्रतृपूर्वादक संकात् वदी मंस्रात् घी। घवापि व्यक्तीकौ इति पाणिनिक म-दौत्रती। प्रतृवदती रामस्य कषाः, रामो यथा वदति कषोऽपि तथा वदती व्यथः। घटात किं, पृथ्वीक मनुवदति। पाणिनिः १।३।४८।

[्]रीविविधा मित विनितिः, व्यक्ता चासी सङीकियेति व्यक्तसङीक्तिः, विमितिस्य व्यक्तसङीक्तिस्य ते तयोः। एतयोर्थयो वैर्त्तमानात् वदी मं स्थात् घे। विवदले भिष्या द्वति दयोददाहरणं, विरोधिज्ञानपूर्वकं वदिन, व्यकं सङ्वदिन्ति वा इत्यथेः। संप्रवदिन्ति सस्प्रदं वदनीत्यथैः। पाषिनिः १।३।४०,४८।

८०३ | तद्योगे वा | (तद्योगे वा, वा।१।)।
विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वैद्याः । *.

१०४। ऋबाट्गिर:। (भवात् ४), निरः ४)। अवगिरते। नै

१०५१ सम: प्रतिच्चायां। (सम: ४१,प्रतिवायां ०)। यतं संगिरते। इ

१०६ | उच्चरः सटात्। (अत-घरः था, सटात् था)। धर्मामुचरते। सटात् किं, धूम उचर्रात । §

१०० समस्या । (समः ४।, पा ३।)। प्रखेन सञ्चरते। ¶

रुंदां दांन: सा चेचार्थे।

(दान: ५१, सा ११, चेत् ११, चर्षे ७)।

स्तथी: (विमिति च्यक्तसक्षीक्ष्यीः) थीगसिक्षान्। प्रसिद्धप्रयं वदी मंस्याद्वा घी ।
 वैद्या: विरीक्षिक्षानपृथ्वेतं च्यक्तं सक्ष्यदन्तीत्यथे: । पाणिर्नः १।३।५०।

[†] भव गिर इति कथनात् स्थाति नेति भाष्यम् । पार्थिनि: १।३।५१।

[‡] संपूर्व्यात् शिरतेः प्रतिज्ञायां घे मं स्थात् । शर्तं प्रतिजानीते इत्यर्थः । प्रतिज्ञायां किं, यामं संशिरति ददातौत्यर्थः ; (गासं संगिरति वा) । याणिनिः १।३।५२ ।

[§] छत्पूर्श्वकात् सकस्यंकात् चरो घे सं स्वात् । धर्मसुचरते छ ब्रह्मयति । धृतः छ ছरति छ दगक्कतोत्ययः । पाणिनि: १।३।५३।

क् साधन-व्यतीयालीन योगे सम्पूर्वकात् चरी घे मं स्वात् । हितौ सद्दार्वे च व्यतीययान स्वात्, तेन पुर्वेन सम्बर्धतं, पुर्वेण सम्बर्धतः । "हेतुव्यतीयायुक्ताद्पि अवति, बुद्यासस्वरते वृषः" इति तुगीयीचन्द्रः । पाचिनिः १।१।५४।

दास्या संयच्छते नामी। चर्छे निं, दास्या संयच्छति भिचां भिचने। अ

१ डप-यमा विवाहि । (अप-यमः श्रा, विवाहे अ)। सामः सीतासुपायत उपायंस्त । वृं

१९० | सुजी ऽश्ने । (स्रणः ११, प्रवर्तः १०)। श्रालीन् सुङ्को गीः । अनमने तु, प्रव्यो सुनिक्त राजा । क्ष

८१८ | संच्योः । (संन्योः ४।) । प्रस्तं संच्युते । §

११२। युजिर उदग्यची ऽयज्ञपाने।

(युजिर: ५१, छद्ग्यच: ५१, चयत्रपार्व ७।) ।

[#] सा टतीया चेत् यदि चर्यो चतुर्घयों भवति तदा तेन तृतीयाचीन संपूर्वकात् दानी मंस्रात् । कामी अनः दास्या संयक्ति दास्यै वस्त्रादिकं ददातौत्ययः । दास्या इति (२८३) अध्यक्षसम्प्रदाने टतोया । दास्या संयक्ति भिक्तां भिक्तवे इत्यच द्वास्या इति करके टतीया । उपसर्गान्तर-व्यवधानेऽपि यया, दास्या सम्प्रयक्ति । पाणिनिः राहा ५५।

⁺ उपात् अभी मं स्यात् घे विवाहे । विवाहणव्हेनाव स्वौकारार्थे बीड्रब्य उति सम्बन्तम्, यतः पाणिनी 'स्वकरणे' इत्युक्तम् । ''स्वौकरणे'' इति च कमदीयरः । तेनः ''श्रस्ताण्युपार्थस्त जित्वराणि" श्रकटसुपयच्कते इत्यादि सङ्गच्छते । वीपदेवन तु ''पाणिग्रहणिन्ह स्वौकरणं रुद्धातं न स्वीकरणमावन्'' इति ज्यादित्यसम्बन्धां वन्द्रादोनां मतमनुस्तर्य 'विवाहे' इत्युक्तम् । उपायत इति (८८०) सेः किस्वात् (६०६) अमलीपे, (१६२) सिस्वीपः, किस्विविकत्यपर्वे सस्य (१०) चनुस्तारः । पाणिनः १।३।१६ ।

[‡] भोजनार्थे सुजी मंस्यात् घे। 'चनवने' इति तःपाणिनः, चवनःरचणं तक्ति इतेऽयें इत्ययं:। शालीन् घान्यानि । रचाभिन्ने उपभोगार्थेऽपि कचित् महाकविष्यनेगारी मं स्थादिति वक्तव्यं। यथा—बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव कोवलाम् (रघुमंश्रम्) इत्यादी । पाणिनिः १:३।६६ ।

[§] संपूर्वकात् च्योति में स्थात् वे । संच्युते प्राणयशीत्ययः । पाणिनिः १।३।६७

उद्युङ्के प्रयुङ्के। यज्ञपाचे तु, प्रयुनिक्त सुचं। *

१३ । प्रतारे विन्त-गर्डे: । (मतारे ७), विश्व मर्डे: ५।)। वटुं वश्वयते गर्डयते । प्रतारे किं, ग्रीनोऽिं वश्वयति । १

१८४। पूजाभिभवे च लापे: । (पूजाभिभवे ७), च।११, लापे: ४।)'।

जटाभि र्लापयते। स्थेनो वर्त्तिकामुद्धापयते। पुत्रमुद्धापयति। एषु किं, छतं विलापयति। क्षे

८१५। मिथ्या कारे-रस्थासे।

(निया। ११, कारी: ५१, प्रभ्यासे ७)।

पदं मिथ्या कारयते। मिथ्या किं, साधु पदं कारयति। अभ्यासे किं, सकत् पदं मिथ्या कारयति। §

^{* ,} उत् च, गेरख तत्तकात्। उदो गेरचय परात् युनिरी ज घ युती इत्यकात् मंस्रात् घे, न तु यज्ञपाते। प्रश्निति खुचिनिति खुचं यज्ञे नियोजयतीत्वर्थः। पाणिनिः १। १। ६४, वार्तिकच। "चर्सनिर्दरः प्रादेः" इति क्रमदीवरः।

[†] वन्तु गत्यां, रुषिर्धुं लिफ्के इत्वेताभ्यां प्रेरणज्ञान्ताभ्यां घे मं स्थात् प्रतारे। प्रलक्षनिति पाणिनिसर्ववस्थांगौ, विसंवाद इति क्रमदीश्वरः। वटुं बाह्मण्यक्रमारं बख्यते गर्बयते प्रतास्यतीव्ययेः। ग्रीनः पत्ती क्षित्तं सर्पं वश्चयति परिइरतीव्ययः। पाणिनिः १।६।६८।

[‡] पूजायां भिभने चकारात् प्रतारे च लापयते घें मं स्यात् । लापिरिति ली-धातो जों (७४५) ज्ञापची, ला-धातीय जी, उभयोरादत्ततात् (७८४) पणि ६पं। कटाभि जंटिल केमें: पुषजटाभिष्यां पूजयतीययं:। श्रीनी वर्त्तिना-मभिभवतीययं:। पुत्रं प्रतारथतीययं:। इतं द्रवीकरीतीययं: (७८१)। पाणिनि: १।३।७०।

६ निष्याः ग्रन्दात् परात् कारयते घैं मंस्यात् पौनः प्रयो । परं निष्या कारयते स्वरादिदृष्टं पदं प्रनः पुनक्षत्रारयतीलायेः । साध पदं पुनः पुनक्षत्रारयतीलायेः । स्वरादिदृष्टं पदं सक्षदृत्रारयतीलायेः । पाणिनिः १।३।७१ ।

१६ | व्यतीहारे गतिहिंसाम्बदाय-हसान्य-हृवहो ऽनन्योन्यार्थे | (न्वतीहारे का, गति—वहः धा,मनकीवार्थे का) व्यतिभवते भक्षीमन्दुः, व्यतिहरते व्यतिवहते । व्यतिजन्निष्व व्यतिजन्निष्यं । ॥

१९० | होऽस्तेरेति। (इ.१), मिले १) । अस्ते ६), पित १) । अस्ते हैं: स्यादेकारे परे। व्यति है। १ । ग्रें व्यति स्पिति व्यति स्वित्तं व्यति व्यति व्यति स्वित्तं । अस्ते स्वित्तं व्यति स्वति स्

१८ । सृहश्(ऽ)ननुत्तानाप्रतियोः सनः।

^{*} गित्य हिंसा च प्रव्य गितिहंसा प्रव्य गितिहंसा प्रव्या हिंसा प्रवार । ते प्रवे येवां ते गितिहंसा प्रव्या येहसा । ते ते च इस्य ते गितिहंसा प्रव्या येहसा । ते ते ते च इस्य ते गितिहंसा प्रव्या येहसा । गितिहंसा प्रव्या येहसा च्या येहसा । गितिहंसा प्रव्या येहसा च्या येहसा च विद्या विद्या । च क्यो चार्या विद्या येहसी न्या येह क्यो च व्या येहसी न्या येह क्यो च व्या येहसी च व्या येहसी

[†] व्यतिहे इति व्यति-म्रस-की-ए, मनेन भरस्याने इ-मादेश:। पाणिनि: ७१४।५२।
‡ व्यतिसर्पनीत्यादि गत्यथादिलात् व्यतौद्वारेऽपि न मं। परस्परं व्यतिसुन-नौति परस्परमन्देनेव व्यतौद्वारस्यां जलात् न मं। सम्यग्विनिमयेनीभौ दधतुर्भवन-इयनिति रघुवंभ विनिमय-मस्दस्यापि मन्योत्यार्थकत्यनेन नातानेपदं।

एभ्यः सनन्तेभ्यो मं स्यात्। सुस्मूर्षते हिट्छते जिन्नासते शुयूषते। अन्यत्र अनुजिन्नासति त्राशुयूषति प्रतिशुयूषति। क

ह्१६। जिञ् जान्त-पिव घे नृद्वद वस दम्त्वाद परिमृहायमयसा ऽगिद्धापवदाग्रन्थात्समायम: फिलिनि। १० (जित्-म्बः ४१, पिका-यमः ४१, फिलिनि ०१)।
जितो जान्तिपिवादे-रगिजानाते-रपवदो ऽग्रन्थोदादिपूर्व्यमस्
फलवित घे मं स्थात्। यजते। पाययते धापयते नर्त्तयते वादयते वासयते दम्यते रोचयंते आदयते परिमोह्यते.
आयामयते आयासयते। जानीते अपवदते उद्यच्छते संयच्छते आयच्छते। ग्रन्थेत्, वेदमुद्यच्छति। फिलिनि किं,
यजति याजकः। ६

इति म-पादः ।

^{*} नामि चनुर्यक्षित् सोऽननः, स चासौ जाश्वित चननुजाः । न विद्यते चा-प्रती यक्षित् मोऽनाप्रतिः, स चासौ युविति चनाप्रतियुः । स्मृष हम् च चननुजाय चना-प्रतियुवित तस्रात् । एथः सनन्तेश्यां संस्थात् वि । पाणिनिः १।३।५०,५८,५८ ।

[†] परेम्ंड: परिसुद्धः, चाङो यस-यसी चायसयसी, पित्रव धेय हत् च वदय वस्य दसव तवय चटय परिसुद्ध चायसयसी चेति तत्। आन्त्यासी पित्रधेतृदद-वस्टस् चाटपिस्डायसयम् चेति तत्। जिस आन्तिपत्त- यस् चेति तत्मात। नास्ति गिर्धेक्षिन् सीऽगिः, चिग्यासी चार्थेति चिग्चाः। चपात् वदः चपत्रदः। खद्च सम्व चाय उत्तमाः, तेथां यस् उत्समायम्, न ययो ऽगयः, चग्यं उत्समायम् चमायम् चर्यात्समायम् । ततः चिग्चाय चपत्रय चग्योत्समायम् चेति तसात्। पायितिः १।१।०२ — ७०,८८, वार्तिकदयस्य।

[‡] भाव ञित्पटेन गणपाठे ञानुबन्धाः आग्नास ग्रह्मासी। तेन जिल्लेनैव স্থানদামী স্থান-पिकारे ग्रहणं (দংং) कम्पान्नार्थेङ इत्यादिका विहित-परखेपटस्य वाधनार्थम्। भन्मया पिवधे भाद एषानद्रार्थलाम् भन्येषामञिप्राणिघाढलात् तेन

३य पाद: - ह-भावं।

400

८२० | उ-भावे मं | (ड-भावे था, मं रा)। धोर्डे भावे च मं स्थात्। *

८२१ | र-तनो र्यगिगा | (म्तनो: ७॥, यक्-इपी १॥)।

धोः रे परे यक्, तिन परे इण्, स्यात् हे भावे च। स्तूयते विष्णुः स्तूयेत, स्तूयतां, ऋस्तूयतः। ऋस्तावि। गै

परस्मैपदापत्तिः स्थात्। ततस्य कम्पादार्थेङित्थादि-विशेषविधिरचन्नः सर्जञानिश्वः फलवत्कर्त्तरं भात्मनपदं सिजिमिति। किञ्च स्थान क् वितर्भे द्रत्यादि चुरादि-गणीयस्य ञानुवस्थात च्यादे जें जंकारिण ञानुवस्थित नासीति स्वनात् गणपिठत-जानुवस्थिति च्याने जो देवाचांदो द्रति जित्। पापनि, भे टपाने, नृत्य नर्भने, बदै वाचि ऐवसी निवासी, दम् स्य द्र्यस्य क् ज कु सीतिप्रकाशयीः, भटली भने. मुझू जिल्च वैचित्ये, भी यस्पर्भे, दूर्यस्य यतने, एकादशैते जान्ताः। जा ग वीधे, बदै वाचि, भी यस्पर्भे दित चयः। वेदसुद्यक्ति वेदमवगन्तुसुद्यमं करोतील्थः। यानकी यनतीत्थन्न वेतनदानेन यनसान-एव फलवान्, नृत् यानक द्रत्यश्चः।

(५३१) मनणः पमे इत्यर्नम उभयपदपाप्ती व्यवस्थियं, फलवति कर्णार त्रात्मनेपदं, फफलवति परसीयदिनिति।

^{*} ढं कर्म, भावो भावर्थः, सनाइरि ढभावं तिद्यान्। (८२५) भावे मायिनिति वस्ति, तथाय्यव भावयद्य परवानुबच्चर्थे। बनौ भीरिति कथनं भावमात्रप्राप्तर्थे, तेन पच्चते, चिकितस्वते, कार्यते, पिपस्त्यते, पापच्यते द्रव्यादि। कर्म्याण वाच्चे प्रव्यान कर्म्मण प्रवोत्तातात कर्म्यपदस्य सङ्गा-नाम-युषद्यस्य । यानुसरि कियापदस्य वचनादि भविता। पाणिनिः १।३।१३।

[†] अप्येगत-विशेषापेत्रया निनित्तगत-विशेषस्य वलवस्तान् यां शिकायक् वाध्यते, इ.सा च शिवाध्यते। किस्तात्यकि न गुगः, शिस्तात् इसि बद्धिः। चूयते इत्यादि

८२२। इन ग्रह दशच: सिद्यादेर्मिण वा।

(इन-यह-हम-चच: ४।, सि-बादे: ६।, मिण् ११।, वा (१।) ।

एथः परासां सि-डी-ठी-ती-घीनां निण्वा स्थात् ढ-भावे। श्रस्ताविषातां श्रस्तोषातां इरिइरी। तुष्ट्वे, स्ताविता स्तविता स्तोता, स्ताविषीष्ट स्तोषीष्ट, स्ताविष्यते स्तोष्यते, श्रस्ताविष्यत श्रस्तोष्यत। क्ष स्रार्थते, धर्यते, संस्त्रियते। क्

८२३। नेण् तपो उनुतापे।

(न । १।, इण् । १।, सम् ५।, भनुतापे ०।) ।

श्रन्वतप्त । दीयते । क्ष

६२४। यन् जिणत्कदिग्यातः।

(यन् ।१।, जिचन्त्रदिचि ७।, बात: ६।)।

⁽५.२०), घाँऽज्यरे पति दीर्घः। विख्रिति कर्मा, जनैरिति भेषः। टी-तन् असावि (५.२०) हदः, (६४४) दखनन् लोयः। पाणिनिः ३।१।६६,६०।

[•] इनस यहम हम कम तत्तकात्। भिम्न आदिय (डी टी ती थी) तत्तम्य। मिणी मिलादारी, विल्वात बिहा। इसी वाधकीऽयं। कृटी मातां थि:, सेरादी मिण, लकारस्य (५००) बिहा। पत्ते (५००) भेसेकालादिति इस्नियेशः, (५४२) गुणः। इरि-इरी कर्णः। डी-ता, वा मिण, मिणी विकल्पपत्ते (६०६) वा इस्। एवं टी-सीट, ती-स्वते, थी-स्वत । पाणिनि: ६।४।६२।

⁺ स्पृन्ते, यक्, (६१५) स्वायक्षृत इति गुण:। एवं ऋ-ते वर्धते। सं-क्व-ते, (७७६) सुम, (६१५) स्तुलु व्याभेवेति नियमात् गुणाभावे, (६२०) ऋदिः।

[‡] तपी ऽनुतायार्थे इण् न स्थान् ढभावे। चन्ततिति तन्, इणो निवेधे व्यां सिः, चौदित्त्वाद्रेम्, (५६२) सिलीपः। दीयते इति दा-न दाने, खुदा अलि दाने, दा ल खूनौ, दे उट पालने, दै प भोधने, दीय च्छेदे इत्येषां (६१२) दामागै इति उटी। पाणिनः १।१।६५।

श्रादन्तानां यन् स्यात् विषति क्वति, इषि च। श श्रदायि श्रदायिषातां श्रदिषातां। पे हन्यते, श्रविध श्रघानि, श्रघानिषातां श्रविधषातां श्रहसातां। क्ष ग्रह्मते, श्रयाहि, श्रयाहिषातां श्रयत्तीषातां। क्ष हस्यते, श्रदिश्विषातां श्रद्यातां। श श्रस्यते मोहो मुकुन्देन, श्रयमि श्रयामि, श्रयमिषातां श्रयामि-षातां श्रयमयिषातां। ||

[•] जन पान हणी, ती इती यस्य में जिल्लात, स नासी किसेति जिल्लात्कत्, सन्न इल्ल तिस्ति । यनी न इत् मन्ते । न्यादन्तधातुभ्यो पापः स्थाने (६०६) डी विधानात्, जी न (७८४) पाण्-विधानात् अत्र जिल्लाते इत्यो सिंह के किस्यो ग्रेंह के दिर्दा-धाती पंपि ददरिद्र इत्यत्र यनागम-निषेधार्थे, अन्यया, लीपीऽप्यादेश उच्यते इति न्यायेन लीपस्यदिश्ले, भागमादेश्योमंध्ये बलीयानागमी विधिरिति न्यायात्, (७०२) दरिद्र भालीप इति मुनं वाधिला भानेन यनागमापन्तः। पाणिनिः ७।३।३३।

[†] भदाथीत्यादि दा-तन्, इण्, (६४४) तन्तीपः, भनेन यन् । भार्ता सिः, मिण्, इण्-मिणोरभेदात् यन् । मिणो विकत्यपर्च (७३६) स्थादीरिति ङिः ।

[‡] भवधीत्यादि इन-तन्, रण्, तन्।वीप:, (६०८) वधादेश:, (५००) विद्वः,,(०४४) पुनः ऋखः। वधादेशविकत्यपचे (६०८) विद्वेष घ इति इस्य घः, विद्वः। भातां विः, मिण् इस्य घः, विद्वः। मिणी विकत्यपचे वधादेशः, तस्यापि विकत्यपचे (८०८) इनः कित्विरिति सेः किस्नुं, (६०६) अम्-बीपः।

[ु] राज्ञते इति (६६१) जि:। ठी चातां, सि:, निष्, तिक्:। पचे इम् (७०१) इमी दीर्घः।

[¶] घदमिं, दश-टी-तन्, इष्, गुषः, तन् लोपः। टी घातां सिः, सिष्, गुणः। पचे घौदिस्तान्नेन्, (१५४) षङ्, (६०२) षस्य कः, (६५८) सेः किस्तं, (१११) षतं।

[॥] सस्यते इति समधाती: जि:, (८००) वा समिति निसं इखः, सि इति स्थिते यक्, (६४१) जेलापः। मीइ इति भन्नानकर्त्तुः कर्मालात् उत्तकर्माष (२८०) प्रयमा। सिन-तन्, इष्, (२८०) जीखनीमु धंयेति इखी दीर्घय, ततः तन्लीपः। आतां, सिः (८२२) भन्नत्वात् निष्, जीखनीमु धंयेति इखी दीर्घय। निषीतिकत्यपचे इम्, न जेलापः।

१२५। भावे मादंग। (भावे का, मार्च १।)

मस्यादां वचनं भावे प्रयुज्यते । मृद्या भूयते, श्वभावि, बभूवे हुभूवे, भाविता भविता । यम्यते मृतिना, श्वयमि । श्रकामि श्रवामि । श्रविष । श्रवामि श्रविता । श्रविष । श्रवामि । श्रविष । श्यविष । श्रविष ।

८२६ । भन्जगिलस्रो वेसमो नेलोप:।

(भन्ज-भगिलमः ६।, वा ।१।, इष्यमीः ७॥, न-लीपः १।) ।

अभाजि अभज्जि, अलाभि अलिभ ं गौतु, प्रालिभ । 🌣

[•] भावे क्यादिविभन्नयः प्रकल्पंकादेव घातीः स्यः, कत्मत्ययानु सकर्पंकादि । भावो घाल्यंः, तिस्मिन् वाचे प्राक्ति निरुश्य प्राचं वधनं स्यादित्ययः । घाल्यंस्य वाच्यः लात् युप्पदस्यदोरवाच्यं से-प्रश्नयो न स्यः, प्राप्तच घाल्यंस्य दिलादेरिविवनाती दिवचन वह्वचने न सः, धाल्यंस्य दिलादेविवस्यामिष पुवाभ्यां भूयते द्रत्यादौ दिवचनादि न स्यादिति । भूधते द्रति, स्यादित प्रमुक्तकत्तरि हतीया । भू सत्तायामिति प्रकण्यंकात् भावे की ते, यक् । प्रभावि हो-तन्, द्रण्, इद्धिः । वभूवे बुभूवे द्रति (५६०) भुविद्वः क्यां । दरन्तु पाणिनीया नेच्छितः । भाविता भविता, मिण् वा, पचि दम् । प्रस्तते सुनिना दित प्रमु भियं प्रमे, ते यक् । सुनिः प्रान्तोभवतीत्ययः । प्रमिन, हो-तन्, दण्, इद्धः । प्रार्वः, (७४४) जनवध्य दित प्रसः । त्रवेव कम-वम-षाचम-वर्जनात् तेषु न प्रसः । प्राङ्-पूर्वः चनां वर्जनात् प्रमिन प्रयामि । प्रविव वध्य हतौ हो-तन्, प्रवापि प्रसः । प्रारात्ति, एवं प्रम प्रमि पामि, प्रयमि प्रयामि । प्रविव वध्य हतौ हो-तन्, प्रवापि प्रसः । प्रमागिति (६६८) जायोऽणविति गुणानिवेषः, इद्धः । जो तु (७८८) व्यवसोसा चं व लाग्रवित वा क्रस्ते पद्धां । भाष्यम् ।

[†] नास्ति गिर्धिसान् सोऽगिः, स चासौ लम्भ चित भगिलमः। भन्त च पिनः सम च तत्तस्य। अन्योनेस्य लोपः स्थादा इणि खित च परे। अभाजीति भन्त भौ मोटने टी तन्, इण्, नलोपः, ततः चङ्भकारस्य बिद्धः। नलोपाभावपचे जङ्भकारास्य बिद्धः। नलोपाभावपचे जङ्भकारासावात् न बद्धः। एव सभौ कः य प्राप्तौ टी तन्, इण्, (७४१) तृष्रध इति नृण्, भनेन नलोपपचे हिद्धः, भन्यत्र न बद्धिः। गौ तु इति उपस्गे छपपदे सतौत्यर्थः। पाणिनः ६।४।३३,०।१।६८।

१२७। ढवट् ढिवा ऽढे। (डवन ११, डघ: ११, घंडे ७)।

टच तत् घयेति टघः, भारी ढं पद्यात् घ इत्यथः। टघः कस्मैकतां द्वत् कस्मैवत् भवति, नत् दे कम्मीण सर्ति, दिकस्मैकस्थले एकस्य कम्मेणः कर्तृत्वित्रचायां भन्यसिन् कस्मीण विद्यानाने न स्थादित्यथः। तेन याच्यते राजा स्वयनेत्र मृतिसित्त न स्थात्। द्वदित्यनेन कस्मैवाच्यविद्वितं यक् इ.ण सिण् भात्यनेपद्घ भतिदिस्ति, न तुकस्मैकर्तः कस्मैलं विधीयते। पाणिनः श्राप्ट, वार्तिक्षः।

धालयां: केचित् कर्मस्याः केचित् कर्मस्याय भविन । अत्र कर्मस्यायं धातनाभिव कर्मयाः कर्मृत्विविचा, नत् कर्मृत्यायं धात्नां, तेन पच्यते चीटनः स्वयभिव, भिद्यतं काष्टं स्वयभिव इत्यादि स्वात्, खाद्यते चीदनः स्वयभिव, गम्यते थानः स्वयभिव इत्यादि त्याद स्वात्, खाद्यते चीदनः स्वयभिव, गम्यते थानः स्वयभिव इत्यादि त चीध्यं। तथाच प्राञ्चः—कर्माष्टाऽपि न्व धालयें कर्म्यक्तां च कर्मृत्वत्॥ कर्मम्यः पचते भीवः कर्म्यस्यः भिदादयः। कर्मृश्यो बृध्यतेभीवः कर्मृत्याय गमादयः इति॥ पचते-भिवस्युत्वादीनां विक्रित्तिस्यक्तुत्वादिष्येव भवित नतु पाककर्त्तिः, एवं भिदादि भावी भेदादिः काष्टादिष्येव न तु भेदादिक्तिरि। बुध्यते भावी ज्ञानं प्रिष्यप्येव न तु यत्यादौ, एव गमादीनां भावः पादचालनादिः कर्मृष्येव नत् याभादावित्ययः। एवच— निर्वार्थे च विकार्यो च कर्म्यवद्वाव इत्यते। भ तु प्राप्ये कर्माणीति सिज्ञानांऽयं व्यवस्थितः॥ किञ्च एकियावर्मण्यः कर्मृत्वं विवद्यते इति बीध्यं, तेन पचल्यादनं देवदनः, राध्यते श्रीदनः स्वयभेव इत्यव न स्थात्।

† एक कियायां एक स्व कर्षां कर्णु त्या कथं सभावती त्यत चाइ — कियमाण मिति। कियमाणं साध्यमा में यत कर्षाः कर्णुः सकरैः सखिनिषादौः, खेनिजेः कर्षास्वस्थिनिरिति यावत् गृषैः, स्वयमेव प्रसिध्यति निष्यते तत् कर्षाकर्णा इति विदुर्जानिन बुधा इति श्रेषः। चन्येन भिद्यमानं काष्ठं खयमेव निष्यतं, काष्ठस्यात्मिङ्ग्लक्ष्पगृणेन कर्णुः सुकरेष ख्यमेव भेदी जायते इत्यर्थः। काष्ठमिति चाष्यातेनीकवात् प्रयमा। टौ तन् चमेदि।

< द्र⊏। कुषि-रन्जः श्यन्-पेवारी।

(कुषि-रन्जः ५।, ग्रान्-पे १॥, वा ११।, रे ७।)।

कुष्यति कुष्यते, रज्यति रज्यते। *

८२८ | वेगाज्युहः | (वा १२१, षण् १२१, पण्डुषः ४१) । अजन्तात् दुह्य दण्स्यादा ठवे ।, अजादि अक्षत, अदीहि अदुग्ध । पं

१३०। न तप-कघ-सद्पचदुइ:।

(न ।१।, तप-वध-सढ-पचदुइ: ५।) ।

तपो रुधः सटाभ्यां पचदुद्वाभ्याञ्च इण्न स्यात् टघे। श्रतम, श्ररह। श्रपत्त श्राम्तः फलं, श्रदुष्ध गी दुष्धः। श्रतएवानयो-टेंऽपि टघलं। क्ष

^{*&#}x27;कुषिय रन्त्र च तत्त्रसात्। स्थन् च पञ्जते। मान्यां रै विषये स्थन् परसौपदस्य स्थाद्या कर्माकर्त्तरि वाची। कुष ग निष्कोधे, रेपरे पंस्थन् च, पचे संयक्। एतं रज्यतीति रन्जी ज रागे, (५६७) नलीपः। 'रे किं, मक्कोषि, चुकुषे। मार्गिस, ररने ररखे। पंविति कते सिंडेऽपि स्थन्विधानं, कुष्यत्ती रज्यन्ती इत्यच (२४५) निस्यतुष्ये। पाषिनिः श्राटः।

[†] भव् च दुष च तसकात । भजनभाती टुंडधातीय तिन परे इण् वा खात् ढघे । वा-यहणं वाधिकारनिव्याये । भकारीति क-तन, इण्, (६४४) तन्-खीषः, (५००) वृद्धः । पचे व्यां सिः, (६५८) से किसं, (५६२) सर्वे।पः । भदीहीति इणि गुणः। पचे (६५०) सिनिषेधे सक्तीऽप्रातिपचे भदुन्य । पाणिनिः श्रार्र्, ६३।

[्]रेटन सक वर्तेते यो तो सदी, सदी च तो पचडुकी चेति, ततः तपस रूपस् सहपचढुकी चेति तथात्। धतक्षिति इष-निधेषे व्यां सिः, भौदित्वात् नेम्, सिलीपः। एवं धकत् भव से: कित्सजा। धपक्र भास द्यादि, कालेन फलं पच्चमान भासावः स्वयं फलं भपक्र, एवं गोपन टुग्धं दुश्चमाना गौः ख्वयं दुश्चं भदुग्ध। भव सकक्षकः

६३१। सन यन्य ग्रन्य ब्रुकृ गृ दुह्न नस-भूषायात् यक् च जिसुत्यि-माढात्त्विमण्।

(सन-स्वार्थात था, यक् १११, च १११, जि-माडात था, त १११, चिमक् १११)।
सनन्तारे-रिण् यक् च न स्यात् ढघे, जान्तारेस्तु मिण्वर्जं। *
चिकीर्षते अचिकीर्षिष्ट। यथीते अवस्थिष्ट, यथीते
अग्रत्थिष्ट। ब्रूते अवोचता किरते अकीर्ष्ट, गिरते अग्रीष्ट ।
दुःषे अदुःष । नमते अनंस्त । तंसते अतंसिष्ट । कारयते,
अचीकरत अकारिष्ट अकार्यिष्ट । स्तुते अस्नाविष्ट अस्नोष्ट ।
ययते अग्रियियत अथायिष्ट अश्वयिष्ट । आहते आविष्ट अ

पचदुक्तान्यां इ.ण.-निषेधे व्यां सिः, सिलीपः, खभयत औदिचान्नेम्। अप्तरवेति, स्वे सकक्षीकः पचदुक्ष्यक्षात् अन्यीः कक्षीः चरसचेऽष्टि कक्षीकचृत्वसिति वीष्ये । पाणिनिः ३।१।६४,६५,वार्त्तिकञ्च।

सन् सन्सः । भूषा अर्थे। यस्य स स्वायंः । सन् च यस्य यस्य बूध कृथ रृष दुइय नमय भूषायं स्वित तस्रात् । जि जातः । भे (पात्रानेपदे) षटः (प्रकर्मकः) माटः । जिय सुध विषय माटयेति तस्रात् । न भिण् भिनण् । एथी यक्, चकारात् एण् न, न स्यात्, एथीऽभित्रं तेन मिण् भिन न स्यात् उदे, जात्तादेलु भिण्भितः । इण् म, न स्यात्, एथीऽभित्रं तेन मिण् भिनः । दुइधातीः पूर्वेण इण्-निवेधे भव यहण् यक्नियेषायं । जात्तव्रवो विकर्मक तेऽिय भत्रप्तानयो टेऽपि टघल मिति बीध्यं । पाणिनः १११।८८, वार्तिक वयस्र ।

¹ चिकी वैते इत्यादि, यं कर्त्तुमिच्छति स स्वयमेव विकी वैते इति विकी वै-धाती: यक् निषेधे षांशिक कर्तृवाच्यत्वात् अप्। टी-तन् इत्य्-निषेधे (५५१) सिः, चिनिन्न-लात् मिणीऽपि निषेधे (५५४) इत्। सक्तदगती विव्रतिषेधी यदवाधितं तदवाधितमेवेति न्यायात् सिवाधकस्य इषोऽपि निषेधे पुनः कथं सिरिति चेत् न्यायस्य सर्व्ववास्त्रीकारादिति। यस्य ग मोचे कौ-ते यको निषेधे षांशिकर्तृवाच्यतात् (०१८) त्रा, (००१) त्राहेगादिति ई.ं, (५६०) नलीपः। टी-तन्, इस्-निषेधे सिः इत् च। एवं ग्रस्था दिसे इत्स्यापि।

८३२ | न्यादि-अत्रताढगत्यर्था मुख्ये ढे ढत्यमाप्रयः। गौणे याचादयोऽन्ये त यथेष्टं द्विष्ठधित्रिशः

अभ्यते ग्रस्ते इति भीवादिकौ किवदुदाइरति । ब्रुते यक्निधेघे क्रप्, घदादिलात् भ्रापी सुक्। टी-तन्, इ.च निषेधे, चर-विषये (७२५) वचा देशे, (६१८) वकास्थिति डः, (६५२) बोचारिम:। कृम विचेषे ते यक्-निषेषे, तुदादिलात् (७३८) मः(६२८) ऋस्याने इर्। टी तन् रच्निवेधे, सिः, (७४७) स्वायृहदिति इमीऽभावपचे (६५८) से: किन्त, इर्, (२२८) दीर्घः । इम्पर्चेतु भक्तरीष्ट भक्ति च । एवं स्टूश निगर्णे इत्य-स्थापि। दुर्ग्धेद्रति दुइत्ते, यक्निविधे ग्रप्, प्रापी लुक्, (१७६) दादेवं:। टी तन्, पूर्यमुचे चैव इ.च (निषेधे, (६५०) सकोऽप्राप्तिपचे सि-निषेधे:। नम-ते यक् निषेधे अप। टी तन्, रण्निवधे सिः, पौदिस्तात्रेम्। तस धातुर्भूत्रायः। कारयते इति कजिः कारिधाती: तं, यक्निवेधे भए। टीतन्, इण्निवेधे, (११३) श्रङ्, दिलादिकं, भचीकरतः । भडो नित्यत्वेऽपि भव मिण्वर्जनिति कष्टनन निगः प्राप्तरान्रीघात् স্মাল-ব্যিম্যা पचे व्यां सिरिति, স্থत: भिषि जेंलेंपि, স্থकारिष्ट, सिणीऽप्राप्तिपची इ.मि. जीलोपोभावे भाकारियष्ट। णाल प्रमुधां मुर्तयक्निविधे, प्रप्, प्रपी मुक्। टी-सन्. इण्निविधे, व्यांसिः, निष् बढाादि, श्रक्षाविष्ट। निषीऽपाप्तिपचे, (५८६) सुक्रमीऽभी इति नियमादिन्निधेधः । श्रिज सेवने ते, यक्नियंधे भ्रष्। टीतन् इ्र्वनिवेधे, चङ् दिलांदि, अधियियत। निष्पचे अयायिष्ट, इस्पचे अविथि। चाहते इति चाहन ते यक्निष्धे भप्, भपोलुक्, (६०६) ञम्लोपः। टी-तन्, इसी निवेधे, सि:, निष्, (६०८) वधादेश:, इदि (७४४) इस्तः, भावधिष्ट। वधा-देशाभाव-पचे (६९८) इ.स. घ:, इ.स. १६, आघानिष्ट । निर्णाऽभावपचे (८९८) से: किस्त्रं, तती जम्लीपः, ततः सिलीपः, चार्डतः। चार्ङ्पूर्व्वदन्तरकर्म्मकात् (८०८) षात्मनेपट्विधानान्, सक्तर्यकोऽष्ययं नाटः बोडव्यः घकर्षंक्रस्य कर्षाकर्त्तृतासभावात् ।

* दिक्यंकधातुभ्यः कर्याणि वाचि प्रत्यंगित्पत्ती सुद्धं गोणसभयं वा कर्य छतं भवतीति सन्देई व्यश्खामाइ — न्यादीति। नाति दं (कर्यः) यस्य संऽदः। प्रद्रय गत्ययं व घटगत्ययों, जानी चती घटगत्ययों चित जानादगत्ययों। न्यादयय जानादगत्ययं च ते। दिद्धपु दिक्यं क्षांत्रपुष मध्ये, (२८४) न्यादयो — नी वह इ द्राष्ट्रि ग्रह का मन्य सुष पचाद्या नव, जानाक्यंका जानगत्ययां य धातवी सुद्धे दे कर्याण वाचे दल कर्याप्रत्यां पापृयुः। (२८५) याचादयो — याच्जायं दुइ चि प्रच्छ क्ष बूशास जि इत्यर्थं धातवी गौण कर्याण वाचे कर्याप्रत्यसायुगुः। चन्ये तु दिक्यंका धातवः यथेष्ट सुद्धं गोणे वा कर्याण वाचे कर्याप्रत्यसायुगुः। चन्ये तु दिक्यंका धातवः यथेष्ट सुद्धं गोणे वा कर्याण वाचे कर्याप्रत्यसायुगुः। चन्ये तु दिक्यंका धातवः प्रद्यायोगनाः भानाये यह हम् यु क द्वितानेव धातृन् भ्रवेषु कथित् पटिति। साचात् किया

निन्धे विजनमजागरि रजनिमगिम मुद्मयाचि सभीगं। गोपी द्वावमकार्यत भावसैनामनलेन ॥ *

इति द्वभाव-पाद:।

न्ययिनं सुष्यनं, व्यविक्तिकियान्ययिनं गीणतिमिति। भात्र यथप्टमिति भानिर्णयाद्तां, सन्येन आनामा प्रयोज्यं कभीति क्षेत्रके भावतीति पाणिनि सन्येन संक्षानि दुद्धादेः (दुइ याच पच दण्ड क्ष प्रच्छ वि बूशास जि मन्य सुष) प्रधानि नी हृ क्षप् वहानि, बुद्धिभैवार्थयोः शब्दक्षांणाञ्च निजेच्छेया, प्रयोज्यक्षणं प्रवानि स्वानं साद्योः मताः ।''

* उदाइरणान्याइ निर्मे इत्यायार्थया। अननीन क्रणीन गोपी विजनं (वनं) निर्मे प्रापिता, अन गोपीति सुख्य कर्म उक्त । अननीन गोपी रणांनं अनागरि नागरिती, (२०२) देशास्त्रकालंत्यनेन कालाधिकरणस्य रजने कर्मां से सकर्माकस्यापि, स्वभावा-दक्मां कस्य नाग्रधातीं जानकार्या गोप्याः (२०४) कम्मं लं, तत्य प्रेरणिकयाया सुख्यं कर्मागोपीत्युकं। अननीन गोपी सुदं इधं अगिन प्रापिता, अनापि गोपी सुख्यं कर्मा उक्तां। अननीन गोपी सुद्धं कर्मा उक्तां। अननीन गोपी सुद्धं कर्मा उक्तां। अननीन गोपी सुद्धां अवार्यत कारिता, अन गोपी गोपां कर्मा उक्तां। यथ्यमाइ — अननीन हावं (भावविष्णं) अकार्यत कारिता, अन गोपी सुद्धं कर्मा उक्तां। अननीन एना गोपीं भावस अकार्यति भेषः, अन भाव रित गीपां कर्मा उक्तां। अकार्यत इति कारि इति जानक्षधातीः घीता।

च कर्मकाल ---

सत्ता-जीवन-दर्प-भीति-भयन-कीषा-निवास-चया-ऽत्यक्तध्वान-नभीगित-स्थिति-जरा-खज्ञा-प्रमादीद्ये। एन्द्रादं च प्रवायन-समययी: खातौ चवे खोटने मीई धावन-युड-ग्राजि-दहने मानौ मुतौ मज्जने॥ दीप्तौ जागर-भीष-वक्तगमनीन्साई सतौ संभये खानौ मन्द्रगतौ च तृख-पतने चेष्टा-कुषी रोदनी। बखी हावक्षतौ च सिडि-विरतौ ह्थें।पवेशे वस्ले कस्पीहेग-निसेष-सङ्ग-यतन-स्वेदे घवीऽक्षक्रता.॥

सक्तमंकाय कर्माविवचायामकर्मका भवन्ति, तथाच भाष्यम्— भातीरथांन्तरे हत्ते धालयेंनीपसंग्रहात्। प्रसिद्धेरिविवचातः कर्मणोऽकार्म्मका निर्धेति॥ भालयेंत्र सङ्कर्मण उपसंग्रहादिखये, यथा, तपस्रति सुनिरित्यादि।

धर्च पादः—क्तिः।

-c<>0<>0<>0<>0<>0<>0<>0<<

भवद्भतभव्ये निष्णः क्याद्याः । (भवत-भवी ७), निषाः ।रण, क्याद्याः रण)।

क्याद्याः सय स्तिस्रस्तिस्रः क्रमात् वर्त्तमानातीतभविष्यत्सु कालेषु स्युः। *

> शेते स चित्त-शयने मम भीन-कूर्य-कोलोऽभवबृहरिवामनजामद्ग्नाः।

पार्व्यक्रियायाः समाप्तिपर्यनः काली वर्त्तमानः, यथा महाभारतं पठति । स चतुर्ळिम:--यया, प्रवृत्तीपरतयैव, वृत्ताविरत एव च ; नित्यप्रवृत्तः, सामीप्यी वर्त्तमान-श्रुतुर्व्विषः । क्रमेण यथा---मांसं न खादति, पादौ प्रवत्तं भांसभीजनं निवर्त्तयतीत्यर्थः । इ.इ. कुमारा: कींड्लि, तदानीं कींड्राभावेऽपि पूर्वकींड्राया बढी वर्त्तमानलात्। पर्व्यतासिष्ठन्ति, नित्यप्रवृत्ततान् । किश्व पर्व्यतानां नित्यप्रवृत्ताविष सम्बन्धविवश्वया भूतभविष्यतकालयोरपि प्रयोगी भविष्यति । सामीप्यी दिविध:--भूतसामीप्यी भविष्यत-सामीष्यय, यथा-चागमनानन्तरमपि एषीऽइमागच्छामि, एवं गमनात् पूर्व्वमपि एवीऽष्टं गच्छामीति। पाणिनि: शशश्रश

यिमिन् काले कियासमाप्ति भैवति स भूतः, सच विधा,-पदातनः, श्चलनः, परीचरीति । कमेण यथा — सः भयाभवत्, स चोऽद्राधीत्,स बहुदिनं नगामः । भयतने घी, इसलने टी, परोचे ठीति कथित तन्न, सर्व्यवेत व्यक्षिकारात्। पाणिनिस् "पनयतने लड्" (३।२।१११), "लुङ्" (३।२।११०), "परीचे लिट्" (३।२।११५)।

भविष्यत्रपि चिधा-- व्यद्यतनभविष्यन् व्यन्यतनभविष्यन् दूरभविष्यन् । यथा-- व्यद भविता, यो भविष्यति, वसारान्ते भविष्यतीति । पाणिनिम् ''वनस्रतने सुटुं' (शशारध), "लूट भेने च" (शशारश)।

[🐡] भवंत्र भृत्य भव्यत्र तत्रस्थितः। की पाद्यायासां ताः। पत्र कालेद्रति भवन्नित वर्भगाने श्रतुर्विधानात वर्धगान:, भूत इति विश्रेष्यं पदमध्याद्वार्थे। श्रतीते क्षविधानादतीत:; भव्यो भविष्यनकाल:, सामान्यकाले तव्यादि-विधानादिप इह भविष्यतकाले यः। की खी गी-वर्त्तभाने, घी टी ठी-अतीते, डी टी की-भविष्यति, यो - सर्व्यकाची (८६३)।

योऽभूद्वभूव भरताग्रजक्षणाबुद्धः कल्की सताच भविता प्रहरिष्यतेऽरीन्॥ *

८३८ । की स्मेनानीते। (की ।श, सेन श, पतीते ७)।

स्रोन योगे अतीते काले की स्थात्। इन्ति स्नारावणं रामः। 🕆

१३५१ यावत्पुरास्यां भव्ये । (यावत-पुराभ्यां ३॥,भव्ये ७)। यावद् भवति कल्की, पुरा दृश्यते कल्की । इः

८३६ | कदाकहिंग्यां वा । (कदा-किंहिंगां रा, वा ।रा)। कदा प्रथामि गोविन्दं, किंहिं द्रच्यामि ग्रङ्गरं । §

८३७ | किन्सि लिप्सायां | (किन्धिः २॥, विभागं ०)। डतरडतमत्त्रयन्त-किमो रूपै गींगे भव्ये की वा स्थात् लिपायां। कतरः कतमः को वा भित्तां रास्रित राति वा। श

अ स्ती-गी ढी-पीनां विश्वषिविधं वस्त्यतीति ता विहाय छदाइरित शिते इति । स सम-वित्तअथि चित्तशय्यायां शिते, यः भीनक्षंभीलोऽभवत, नृष्टिरवाननजामद्द्याः असूत्, भरतायजक्षणवृद्धो वसूत, कत्को भिविता, सतां साधूनां अरीन् प्रहरिष्यते चेत्य-लयः । भीन-क्षांभ्यां कीलः सीनक्षंभकीलः, एवं सर्व्यव वियदः । कीली वराइः ।

[†] स्माद्रत्यव्ययं चतीतकालवाचि । यद्यपिभृतमात्रे स्मण्डस्टः प्रयुक्तो वैयाकरणेः, तथापि भृतक्रियाक्रमान्वियत्वे एव प्रायशः श्रिष्टप्रयोगी दृश्यते । यथा ''पन्न्यति स्म जनता दिनास्यये'' इति रघुः । पाणिनिः ३।२।११८ ।

[‡] भाष्यां योगे भविष्यत्काक्षे की स्थात् । निकटागामिके पुरा, तत्साहचर्यात् यावदित्यव्ययं। भतप्त, यावद्दास्यति तावद्भी च्यते इत्यादौ भव्ययभिन्ने न स्यात्। पाचिनि: ३।३।४।

[§] भाभ्यांयोगेभव्ये की वा स्थात्। पछाभि द्रद्यामीलुदाष्टरण्डयेन विकल्पा दर्भित:। पाणिनि: ३।३।५ ।

[¶] किसिरिति वहुवचनेन सर्वविधानां किम्गव्दक्ष्पाणां प्राप्तिः। सञ्चिमिच्छा

१३८। लिप्सिक्की। (विकासिकी o)।

लिफी नावादिना खगीरे: सिष्ठी सत्यां भव्ये की वा स्थात्। यो भिचां ददाति दास्यति वा स खर्म याति यास्यति वा । *

८३८। ग्यर्थाम्सयोः । ^{(स्ववांष्}रवीः १०)।

ग्या प्रधे प्रियादी प्रामंसायात्व भन्ने की बा स्थात्। गुरुषेदा-याति प्रायास्यति वा, प्रय लं वेदमधीत्व वयं तर्कमधीमहे। पे

८४०। जात्विपिथ्यां सदा चीपे।

(जातुं अपिभ्यां ३॥, सदा छ।, चेपे छ।)।

जातु निन्दिस गोविन्द-मिप निन्दिस यङ्गरं। \$

१८४। कथमा खीचवा।

(कथमा ३।, खी।१।, घ।१।, बा।१।)।

लिप्सातस्यां गस्यमानायामिक्यर्थः । (५१०) दयोर्घाध्ये कः, बहनां मध्ये कः, को वादाता, भिर्यापाति रास्यप्ति ना, राखदाने । पाणिनिः १।१।६ ।

लब्बुनियते यत् तत् लिम्नां (मन्नादिः) कर्माण यः, तेन सिद्धिसस्यां । पृथक् योगात् किक्मिरिति वानुवर्तते । दातारं कथिन प्रोन्सः स्यति यो भिचानित्यादि । प्ररोचनायानिति कौसराः । पाणिनिः शशि ।

[†] ग्या पर्थी ग्ययं: । इसी प्रिष्यादाविति कथनात्, (८५४) वत्यमाणेषु ग्यथंषु विध्यादिष्ठ मध्ये प्रेष्यप्राप्तकालातुमत्य एव ग्रह्मते । षाश्रंमा सभावना । गृहर्षे दायातीति साश्रंमायां, तं वेदमधीषित ग्या पर्धे पतुमती छदाइरणइयं, प्रधीष इत्यस्य पर्चे प्रधीषे इति की ष, प्रधीमहे इत्यस्य दर्चे प्रध्यामहे इति गी च भविता । ष्राश्रंमायां श्रीष्ठार्थे भंध्ये तौ नित्यमिति वक्तव्यं (संविष्ठमारं, तिङ्लपादे प्रश्रम्भ), तेन इष्टिश्वेदायास्यति श्रीष्ठं धार्चं वस्नामी श्रेव । पाणिनि: २१३ । १। १। ।

[‡] जालपिश्यां योगे, चेपे गर्शयां, सदा सब्बेंषु कालेषु नित्यभ्व, की स्थादिलार्थः। सदेलाधिकारः।. जातु कदाचित्। पाणिनिः ३।३।१४९।

क्यं निन्दस्यजं, निन्देः यभुं, देवी निनिन्दिय । *

8२ | किसि: ख़ीत्यों | (किशः रण खी वी श्र)।

८८३ | ऋन्ये आ अहा मर्जे । (भने: ١॥, पारा, पत्रदामणें ها) ا किसिश्व (دوه) ا

> न यदधे मर्पये नी यत् स मर्श्वियते हिरं। हरंगर्हेत, को निन्देत् विष्णुं निन्दिषती खरं॥ 🕸 🖥

८८८। निंनिनास्त्रधीयां ती।

(किंकिल- अस्यर्थाभ्यां ३॥, ती।१।)।

तं किंकिल द्वषीकेशं निन्दिष्यसि, न मंखसे। महादेवश्वास्तिनाम, श्रद्धे नी न मर्षये॥ §

कथम् प्रस्टेश योगे स्र्वेषु कालेषु स्वीचकारात की चवास्थात् गर्हायां। भटा चिपे क्रस्यनुवर्त्ततं। कथं निन्दशीति कथंशब्दस्य निषु वाक्षेषु सम्बन्धः। पाणि।नः श्राश्थः।

[†] उतरउतमञ्चल-किमी रूपै थेंगि सब्बेंदु कालीयु खी-त्यौ स्थातां गर्हायां। पार्विनि: १।१।१४४।

[‡] यहा सम्भावना, नवै: चमा। यहाण सभाव: सयहं, मर्थस्याभाव: समर्थे। सम्बद्ध समर्थद्ध तम्बिन्। किनिध्येति हिति:। उत्तर उत्तम काल-किमी रूपै-रूपैस सुद्दै थें। से स्वेंदु खी-त्यौ तः स्यदामवेंद्रवें, अव चिपे द्रति नात्वतंति। स्वाना स्वयं प्रति हिस्से हर गहेंत तरहं न यहंधे नो मर्थसे, को जभी विण् निन्देत्, देश्वर निन्द्यिति, तदहं न यहंधे नो मर्थसे द्रत्यवयः। पाणिनिः श्श्रिस्।

८१५। जातु-यद्-यदा-यदिभि: खी।

(नातु-यद-यदा-यदिभि: ३॥, खी ।१।)।

न मर्षये यहधे नो जातु निन्दे जनाईनम्। क

१४६। यच-यनाभ्यां चेपचिते च।

(यस-यत्राभ्यां ३॥, चैपचित्रे ७, च ।१।)।

यच निन्देत् विभुं, गर्हे चित्रं ऋदां न मर्पये । 🕆

८४७। चित्रे त्ययदिना।

(चित्रे ७।, तौ ।१।, भ यदिना ३।)।

यदि-वर्ज्जितेन ग्रब्दमानेण योगे चिने गम्ये सदा ती स्थात्। चित्रं द्रच्यति नामान्यः क्षणं, पम्येत् यदीम्बरं। ध

८८८। वाढ़ेऽप्युताम्यां खी।

· (पार्द्ध ७), भपि-जताम्यां ३॥, खी ।१।) ।

समाव नायां सहाटेवच न संखसे, तदहं नो यद्वचे न मर्थयं इति श्लोकायः। पालिनि: इ। ११६६।

^{*} जातुम यद च यदा च यदिय ते ते:। एभि योगे सब्बंध कालेषु खी स्या-दयदानर्थे। भवान जातु कदाचित् जनाई नं निन्दंत् तदहं न सब्ये ना यद्वि । एवं यद्विन्दंत् यदा निन्देत् यदि निन्दंदिति च। पाणिनिः शश्थित, वार्त्तिक्ष ।

[†] यचत्र यत्रस्य तास्यां। भास्यां योगे चेपे चित्रे चकारात् भग्रहामधे च, सर्व्वेषु कालंषु खी स्थात्। चेपो गर्का, चित्रसाक्ष्यें। जनो यस विभुं निर्न्त् तदहं गर्हे, तक्षित्र, तत्राहं श्रद्धांन कारीमि, तदहंन मर्थयं इत्ययं:। एवं यत्र निर्न्दिति। पाणिनि: ३।३।१४ प्र-१५०।

[‡] यदि विजितेन इति वीपदेवमतम् ; यद्य यत-यदि वर्जम् इति तु भद्दीजित-क्रमदीयगै। नाम सम्भावनाथां भन्यः क्रणं द्रस्यति तिवितं। भ्रन्यदिना किं, भन्यः द्रंथरं यदि पत्थीत् तिचित्रं, भन खी पयोगं दर्भयता यदिना योगे चित्रं गम्ये सदा खी स्थादिति स्वितं। पाणिनिः ३।३।४५८।

ग्रपि इन्यादघं ग्रम्-रत दुःखं जयेदजः। *

१८१ प्रौक्या सस्मावन । (भौका श. सभावन का)।
प्रौढिः सामर्थ्यः । सभावनं क्रियास योग्यताध्यवसायः।
प्रौढिहेतुक-सभावनोपाधिकेऽवैं वर्त्तमानात् धोः सदा खी
स्यात्। श्रपिहिंस्यात् जग्नायी महापातकपञ्चकं । पे

८५०। यहाधे वी ऽयदि।

(ऋडार्थे: २॥ वा ।१।, ऋ-यदि ७।)।

अद्धे ऽजं भजे: प्राणै-भैच्यसेऽजं बभक्षं तं । 🕸

८५१। भव्ये वा फलहेलोः।

(भव्ये ७।, वा ।१।, फलई लो: ७॥)।

र्यं यायाचे-वमेदीयं, श्रीयं नंखति याख्ति। §

अ वाटं मितिशयः। मितिशयार्थे वर्त्तमानाभ्यामष्ट्रताभ्यां शीगे सर्वेषु कालेषु स्वीर स्थान्। मन्तुः त्रघं पापं चिप इन्यान् पापष्टनने मितियोग्य इत्यर्थः। मनः क्रमः दुःस्वं उत्त नयेत् दुःख्नये मितियोग्य इत्यर्थः। पाणिनिः २।२।११५२।

[†] योग्यताध्यवभायः क्षेग्यतावलक्ष्वनं । सामर्थ्येन क्रियासुयोग्यतावलक्ष्वनं छपाछि-भेंदकं यस्य तस्त्रिवर्थे वर्तमानात् भोः सन्त्रेषु कालेषु स्वी स्थादित्ययः । ''सिद्धाप्रयोग'' इति च पाणिनिः । जगन्नायः सद्दापातकपञ्चकं भिष्कंसात् सामर्थ्यन सहापातकपञ्चक-इनने योग्य इत्यर्थः । पाणिनिः २। १११५४ ।

[‡] न यद ष्ययद तिकान्। ऋडायें योंगे प्रौका समावने सर्वेष जालेषु खी स्थादा न तु यद्शब्द्धयोगे। त्वं प्राणें: सामयों: घजं भजे: षहं यह्षे। पर्च षजं भत्यसे तं वभक्ष, दति भविष्यदतीतयोक्दाहरणदयं। ष्ययदि किं, यह्षेऽजं भवान् प्राणे-भंजेत् यत् पुक्षोत्तमसिति पूर्वेण (८४८) नित्यं खी। पाणिनि: ३।३।१५५।

[§] वाग्रहणं परच वाधिकारिनिबस्तयो । फलं कार्थ्य, हेतु: कारणं। फलिक्यायां फेतुकियायाञ्च वर्त्तमानात् भी: अब्ये खी वास्यात्। जन: ईश्चंनभेन्नेत् ग्रंयायात्

रपूर् । कामोक्ते ऽकचिति । (कामोक्ते थ, पकचिति थ)। कामं भजेत् भवान् भगें कचिदर्चिष्ठते प्रिवं । *

ध्यू ३ | गी चेच्छा थैं: | (गी।रा, च।रा, दक्का थैं: ३॥)। दच्छामि, यर्व्वं सेवेत श्रीपतिं सेवतां भवान् । कामीक दति किं, दच्छन् करोति । पं

्रभू । विधि-निमन्त्रणामन्त्रणाध्येषण-संप्रत्र-प्रार्थनाप्रेष्य-प्राप्तकालादौ । (विधि—प्राप्तकालादो ७)।

सदा। यागं कुर्यात्, इह भुद्धीत भवान्, इह ययीत भवान्, पुलमध्याप्रयेत् भवान्, िकं भी वेदमधीयीय उत तर्कमधीयीय, भी भी जनं लभेय, प्रेषितस्वं गङ्गां गच्छे:, प्राप्तस्ते कालस्तपः कुर्याः। एवं गी । कृ

क ल्याण प्राप्तयात् । द्रीय-नमस्तारी हेतुः, क ल्याणप्राप्तिः फ लं। पचे श्रीयं नेस्यति चेत् य यास्यति । पाणिनिः ३।३।१५६ ।

अ सब्दुक सुत्या सदेल नुवर्तते। कामोक्र निच्छा प्रकाश:, तिस्रवर्धे सब्वेषु कालेषु खीस्यात् न तुक्तिवित्र स्टब्स्योगे। भवान् कासं येथेष्टं यथा स्थालया भगे थियं भजेत् इति वक्तुरिच्छया एतदाक्यं। भक्तिविदिति किं, किंचित् प्रियं पर्विष्यते इति किंवित्र क्षित् क्षित् प्रवेष्यते इति किंवित्र क्षित् क्षित् प्रवेष्य के इति किंवित्र किंवित्र

[†] इच्छा छैं भें भिर्जेषुकालेषुकामो क्रीकी यास्यान् । भाइंद्रच्छामि — भवान् भ्रव्ये महादेवंसिवेत, भौपतिंसेवतांवा। भाव उच्चाप्रकाभेस्वी गीच । इच्चन् लगः करोति इत्यव इच्चाप्रकाभीनास्तीति न खीगीच । पाणिनिः ३।३।१५०, वार्तिकच।

[‡] विधिय निमन्त्रणस्य भामन्त्रणस्य भाध्येषणस्य संप्रत्रश्च प्रार्थना चंप्रेयस्य प्रार्थना कालादियेति तक्षिन्। सदा इति इति:। एव्यवेष् सर्वेषु कालेष् खौगी च स्यात्। भगाप्तप्रापकी विधि:, (विधि: प्रेरणं स्रयादिनिक्यस्य प्रवर्भनिनिति सिदालकौसुदी)

ध्यूप्। समर्थनाशिषो गी।

(समर्थन-चात्रिषी: ७॥, गी ।१।)।

सिन्धमपि शोषयाणि। *

८५६। तस्त्रोस्तातङ् वागिषि।

(রু-দ্রী: ৩॥, तातङ् । १।, वा । १।, স্ব।মিদি ৩।) ।

पातु पातादा शिवः, पाहि पातादा शिवः। 🕆

८५७। मुक्तर्भशार्थे हि-त-ख-धं।

(सहर्भृषार्थे ७), हिन्त-खंध्वं ।१॥)।

पीन: पुन्धे अति प्रये चार्थे सदा काले ग्या हि-त-स्र-ध्वं स्यु:।

यथा, यागं क्यांत, एवं कस्यामुपाक्षीत। यस्याकरणे प्रत्यवाय: स्याक्षित्तकां, (निमलणं निधीगकरणं भाष्यकी याज्ञभीजनादी दी हिचादे: प्रवर्त्तनिकिति मिडालकोमुदी), यथा, इह मुझीत भवान्। यस्याकरणे प्रत्यवप्रयो न,स्याक्ष्याक्षणं (ज्ञामलणं कामचारकरणम् इति सिडालकोमुदी), यथा, इह प्रयोत भवान्। सत्कारपूर्त्रकेति-योभनमध्येषणं, (सत्कारपूर्त्रकेति व्यापार: इति सिडालकोमुदी), यथा, पुत्रक्ष्यापयेत् भवान्। संप्रयो जिज्ञाक्षा, (संप्रधारणमिति पाणिनिटीका), यथा, किंभी वेदमधी-यीय छत तर्कमधीयीय, अहमिति श्रेषः। प्रार्थना याच् जा, यथा, भी भीज कं लभेय, अहमिति श्रेषः। कर्माण्य प्रयथा, प्रेषितक्षं गक्षां गर्चः। तत्कियोचित-काललाभः प्राप्तकालः, यथा, प्राप्ति कालः तपः क्र्याः। भादिशब्दादनुमती च (ज्ञातकर्यः कामचारानुज्ञा इति पाणिनः), यथा, याडमहं करिण् इति प्रय्ने, कुकष्य इति। भन्नसती ख्या न प्रयोगः। एवं गीति यागं करीतु इत्यादि। पाणिनः स्विदिः स्विदः स्वि

- चश्रक्विऽध्यवसाय: समर्थना, (''समर्थनाशिषोय'' इति कातल्यम्), यथा सिन्धुमिप
 श्रीययाणि । इष्टार्थस्थाविक्तरण्याश्री:, यथा जीवतु भवान् । पाणिनि: ३।३।१०३।
- † तु-इयो: स्थाने तातङ्वास्यादाधिषि गम्यमानायां। सर्व्यावयवादेशोऽयं, तेन ङिक्तेऽपि नान्यस्य स्थाने । डिक्तन्तु,भवान् राजलं कृषतादित्यादावगुणार्थे, वदा ख कान्ती—भवान् स्वर्गसृष्टादित्वादी जिप्राश्येषः । पाणिनि: ७।१।३५ ।

मुहर्भृषं वा लुनाति **लुखाव ल**विष्यति वा—लुनीहि लुनीत लुनीष्व लुनीध्वं। *

ध्या मास्मेन घीट्यो । (मास्नेन श, बी-खी १॥)। मास्मयन्देन योगे सदा घी-खी स्तः। मास्म भवत् दुःखं, मास्म भूत् योकः। प

र्पूर। माटीवा। (माश, टी।श, वा।श)। मां-योगे सदाटी स्थादा। माविरंसीत् सुखं, माविरमतु, माविरंस्रति। इ

६६०। क्याभिषि। (ही १११, पाक्षिष ध)। जीव्याचिरं सज्जनः। §

कं पीन:पुन्ये चिताये चार्ये, मब्बेंधु कालेषु, लिक्के युचिट चम्मदि च प्रयुक्तमाने, तेवासेकले दिले वहले च ग्या हित स्व ध्वं स्युग्लयं:। ततार्यं विशेष:—कर्लिर चार्च्य परसीपदिनी हित दितं द्वं, कर्निर कर्माण भावे च् चालभनेपदिन: स्व ध्वमिति द्वं, कर्निर उभयपदिनथलागैति। कियासम्बर्ध स्वयप्यं विधिवा भवतीति वक्तस्यम्। (पाचिनिः ३।४।३), यथा, पुरीमवस्कन्द लुभीहिनन्दर्भ मुषाण रवानि हरासराङ्गनाः इति साघः, चच चतीतकाले प्रयोगः, रावणः कर्ता। चच पुनः पुनयस्कन्दित्यर्थे। स्वसम्लक्त एव इति सिद्धान्तकीमृदी। पाचिनिः ३।४।२।

[†] माम्य-योगोऽच व्यवद्वितोऽव्यवहितो वा । माम्य योगेऽपि (५५०) प्रमागमनिषेधः । पाणिनिः ३।११९६ ।

[‡] अवाधि योगो व्यवहितोऽव्यविती वा। पाणिनि: ३।३।१०५।

१६१। सुर्वेख्ययदि खतीते।

्या (स्पूर्वे: ३॥, ती ।१।, भयदि ७।, तु ।१।, भतीते ७।)।

स्मरणार्थेयों गे श्रतीते काले ती स्थात्। यच्छव्दश्वेत्र प्रयुज्यते। ध्यपवादीऽयं। स्मरस्थेनं नंस्यसीमं, यत् स्मरस्थानमः भिवं। *

९६२ | वानेकसार्ये | (वा ११, पनेकवार्ये ७)।

श्रनेकसार्ये प्रयोक्तार सित स्वरणार्थेयोगे श्रतीते तो वा स्यात्। ध्यायसीदं यदीमानं द्रस्थति स्तोष्यते भवान्। 🌵

१६४। लियुपादसादि त्यादि निगः।

(लि-युषाद-षद्मदि ७।, त्यादि ।१॥, विष्र: ।१॥)।

[#] स्मृषातीरथं इव घर्षों थेवांते तै:। न यद घयद तसिन्। ध्यपवादोऽव-मिति च्या घपवादो विशेव:, तेन यद: प्रथोगे घस्याप्राप्ती घी एव, न तु टी-स्त्री। तं ई्यं नंस्वसि एनं कारसि घत ती, यत् लं शिवं घानन: तत् कारसि, घच घी। पाचिनि: १।२।११२,११३।

[†] स्वर्धते यत् तत् आर्थेनिति जानात् कर्माण यः। भनेक-नेकिनितं साथं सारणीयं येन सीऽनेकसार्थसास्मन्। भवान् यत् ईशानं द्रस्यति सीखते भ इटं स्वंध्यायिस स्वरसील्यंः। पत्ते ध्यायसीटं यददाचीदलावीत्र भिवं भवान् इत्यादि। सार्थस्य परस्यरसाकाङ्गले विधिरयं, तेन, सारसि यत् लं तर्कमपठः काशीमगच्छम् इत्यादी न स्वात्। पाणिनिः ३।२।११४४।

[‡] परत्नात् सब्बेंबां वाधकोऽयं। जानचेदिति, जानस्यासकात् सुखस्याप्यसकात इति भ्ययस्यिकावः। भविष्यति भूते च इति पाणिनीयाः। पाणिनिः ११२।१११८,१४०।

ली युषादि श्रसादि च त्यस्यार्थे प्रयुज्यमाने त्यादीनि त्रीणि त्रीणि क्रमात्स्यः। अ

जानाति योऽखिलं, यश्व न जानीतः श्वतिसृती ।

प्रास्ताणि च न जानित, स मया सेव्यते थिवः ॥

भासि लगेको विष्वेष, भाषोऽचुतिष्यवी युवां ।

भाष यूयं इरिइरब्रह्मादाः, पाद्यनिक्यः, ॥ पं

एको भवानि स्र भवेऽहमादी, दारैरथोभी स्र भवाव श्रावां ।

वयं भवानी बहवः स्र पुत्रै-स्वनाययाद्यापि विभी प्रसीद ॥ \$

· इति ति-पादः।

द्रति खाद्यन्ताध्यायः।

^{*} लिख'युमा च षक्ष स्व तत्ति स्व मृत्य प्रत्य प्रत्य प्रत्य प्रत्य प्रत्य प्रत्य कर्त्ति सर्मित सर्म

[†] कानातीत्यादि। यः शिवः भिख्छं सकलं जानाति, युतिसृती च यं न जानीतः ज्ञापियतुं न सक्तुतः, भन्मभूतजार्थोऽयं, श्रास्तािष च यं न जानित जापियतुं न सक्तुवित, इति एकत्व-दित वहत्वेष कर्णार प्रत्ययः, स श्रिवः नया स्थ्यते इति कर्माण्य प्रत्ययः। इ विश्वेश त्यं एकी भावि, हे भच्युत् सिवी युवां भायः, हे इरिहरक्षक्षायाः भनेक्शी युवां भायः, इति युपदि कर्णार एकत-दित्य वहत्वेषूदाहरणानि। पाहि, सुद्ध्यं वा पायत्यवंः, भक्षान् इति श्रेवः, (८५०) सुहर्भ्यार्थे इति हि।

[‡] भवे संसारे चादी उत्पत्तिकाले घडं एकी भवानि स्न, प्रय दारे: सङ्घानां छभी भवाव: स्न, तथा प्रचे: सङ्घ वयं कड़िश भवान: स्न, एतत् सब्बे लक्सायया, घतएव है विभी घ्यापि लंग्रसीद प्रसी भव, यथा न प्रनभंवानीत्यभिनाय:। अत्र घस्मदि

१०मः। छदन्ताध्यायः।

१म पाद:- ल्य:।

१६५ | झड़ी: क्र-भावे | (क्रन्।१।, भी: प्रा, क भावे ال

वच्चमाण-ज्यः कत्मंत्रः स्यात्, सच घोः परः स्यात्, स च के भावे च स्थात्। *

कर्त्तरि एकल दिल-वहलेब्द्राहरणानि । युग्नदश्चदो मृञ्जर्यादेव ग्रहणं, गौणयीसु लिङ्गविदिलाविभक्ति:। यथा, चलंभवति चनहंभवतीत्यादि । एवं

प्रक्रतेविंक ते श्रीप्रिय चीक्रतं दयो प्रि। वाचक: प्रक्रते: सक्रांग्टकाति विक्रते नंतु॥ द्रति प्राचः। ' यथा. एक्की इच: प्रकुनीका भवति: प्रच इचा एका नी फ्रेंबनील ग्रीट।

• वस्त्यमाणमत्यादिश्रणम् पर्यम् न्यः प्रत्ययसमू इः क्षत्मं ज्ञः स्यादिर्येषः । कार्नेतिति क्षत्, वस्त्यमाणभत्ययानां मंज्ञाकारक इत्ययः । सच भाविव्यवादिष्ठितोऽपि प्रयोगानुसारादण्यसादिष्यं भातिः स्यादित्यस्य भाइ, सच भीः परः स्यादिति, भाभातिमानादित्ययः, तेन (११४०) श्रीव्रजादिस्यो विश्वितः क्षय द्रेरधातीरिप स्थात्, यया दृंद्यां इत्यादि । एवं भयंतिश्रेषे विश्वितोऽपि क्षत् प्रयोगानुसारादशेग्तरेऽपि स्थादित्यत् भाइ, सच के भावं भ स्यादिति, तेन ढभागयाविद्यात् विद्याः अपादानेऽपि स्थादित्यत् यथा वसतीति वास्त्यः, भभ मनीवादित्यात् विद्यः अपादानेऽपि स्था, भंतव्या रजनी । एवच कभूममस्दाभकरणिक्षकणेष्यपि भनीयः स्थात्, यथा, प्रवक्तीति प्रवचनीयो गृत्वभूमस्यात् द्रदात्वस्ये दानीयो विषः, स्वायतेऽनेनिति स्वानीयं छलं, रस्यतेऽस्थिति रसणीयं यः हं, "सन रस्यते तत रसणीयं" इति गोयीचन्दः । एवं कर्त्यव्यपि स्थाप् यथा नियोक्तस्व ति नियोग्यः प्रभः, जायते इति जन्यं, भाषततीति भाषात्यः प्रसादि । स्थाप्त (११८२) क्षयोः क्षभाव इत्युक्ते-रस्थापि प्रयोगत द्रित स्वयं वस्यितः । पास्थिनः ११६८१,८१।

८६६। सक्षो बाध्यः। (सक्षः १।, बाध्यः १।)।

समानरूपस्यः कता बाध्यते, न ल्सरूपः। *

१६७। तव्यानीयया ढ-भावे।

(तव्य-भनीय-या: १॥, ढ भावे ७।)।

धोरेते स्युर्ड-भावे। चेतव्यं चयनीयं चेयं पुर्खाः भवितव्यं भवनीयं भव्यं त्वया। पं

भगिक्षि कारके वाची वाच्यलिक्यः क्रदुच्यते। भावे ल्यक्त-खलयांन्ता चनटादा नपुंचके। क्यादानाच स्थियां ज्ञेयाः, पुंखयु वैश्वतौ तथा। चन्येषान्तु कतां लिक्नं वेदितस्य प्रयोगतः॥ (परिशिष्टपत्रं द्रष्टस्यं) पाणिनिः ३।१।८६,८०। एतन्यते तस्यत् द्रव्यधिकं हस्यते।

विश्वेषेण सामान्यस्य वाधनं नियमयित । विश्वेषेण कता सामान्यः कत् सदयएव वाध्यते इत्यर्थः । सदपलन्तु अनुवसं दिला स्थायिभागेन एकावयवलं । यथा,
विश्वेषेण ध्यणा सामान्यो य एव वाध्यते, न तु तत्यानीयौ । एवं एकार्थे एव
सद्यतं रह्मते न तु भिन्नार्थले, तेन पचादिलान् कर्त्तरि विद्वित विश्वेषेण अन्प्रत्ययेन सामान्यः सद्योऽपि घञ् न वाध्यते, अत्रप्य पचतौति पचः, पचनं, पाकः
इत्यादि स्यादेव । एवं ५११५५० ञीषौत्यादिना स्त्रीविद्वितेन अन-प्रत्ययेन अनट् न
वाध्यते, तेन कारणा कारणमित्यादि । एवमन्यचापि । न त्यद्वपद्यनेन असद्यविश्वेष्यभेन अस्यदेवसामान्यो न वाध्यते इति । पाणिनिः इ।१।८४ । एतन्यते विभाषा

विश्वेष्यभेन अस्यदेवसामान्यो न वाध्यते इति । पाणिनिः इ।१।८४ । एतन्यते विभाषा

[†] तव्यय भगीयय यय ते। उद्य भाव्य तत्ताचान्। (१३३) भवदभ्तभर्य इत्यव भव्य इति भविष्यदानिप्रयोगात् तव्याद्यो भविष्यत्काले स्युरिति, भव विशेष कथनाभावात् भव्यक्षिन् कालेऽपि। चित्तव्य, एकाजिवपौन्तवात्र इम्, (५४२) गुणः एवं भनीये चयनीयं, ये चेयं। भव पुष्णभिति कर्म्यणः क्रीवत्वात् तद्दिशेषणान भेतव्यादीनामपि क्रीवत्वं। भावे तव्यादी भवितव्यमित्यादि। भव्यमिति यकारस् (४२२) भज्यस्तात् (३५) भोकारस्वाने भव्। एवं भाविष्यतव्यं, बुभृषितव्यं, वीभृषि तव्यं, पुषकाथितव्यं ज्ञानीयितव्यं क्रमाविष्यत्व्यं। भावप्रत्यान्तवात् क्रीवत्वं। तथाय-

८६८। नो ऽचोऽन्तरदुर्गेः प्राग्वस्रो ऽख्या-भाभपञक्रमगमप्यायवेषानिजादौदितो जि-इसा-दौजुङस्त वा। (नः ६।, घषः ४।, घलरदुर्गेः ४।, प्राग्वत्।१।, षः १।, घखा—घनिगादौदितः ४।, जिइसादौजुङः ४।, तु।१।, वा।१।)।

अन्तरो दुर्-वर्ज-गिय परस्य णविधिहेती सति नस्याचः परस्य णः स्यात्, न तु स्थादेः इजादिवर्जीदितयः, जान्ताइसादीजुङस्य वा। *

श्वन्तर्योणीयं प्रयाणीयं । प्रयापणीयं प्रयापनीयं, प्रकोप-णीयं प्रकोपनीयं । ख्यादेनु—प्रख्यानीयं प्रख्यापनीयं, प्रभा-नीयं प्रभापनीयं, प्रभवनीयं प्रभावनीयं, प्रपवनीयं प्रपावनीयं, प्रकमनीयं प्रकामनीयं, प्रगमनीयं प्रप्यायनीयं प्रविपनीयं प्रकम्पनीयं । इजादेसु प्रेइणीयं । †

८६८। खनाट्टेर ये। (खनात्-टे: ६१, ए।११, वे अ) ।

^{*} नामि दुर्यंत्र सीऽदुः, षदुषाधौ गिश्चेति षदुर्गिः, षनार्ष षदुर्गिय तत्तस्मात्। इष् षादि यस्म स इनादिः, न इजादिः धनिजादिः, षनिजादिश्वासौ इदिवेति पनिजादौदित्। स्थाय भाय भूय पूज् च कमय गमय प्यायय वेपय पनिजादौदि-वैति, पसाम्रज्योगे तस्मात्। इसादियासौ इजुङ्चेति इसादौजुङ्, जिय इसा-दौजुङ् चेति तस्मात्। षनारदुर्गेः पराज्ञातोः परस्व कृत्सन्वस्थ-न-कारस्य षषः परस्वे सित षः स्थादिख्यैः। स्थादौनां कविलानां ज्ञानागास्य निषेधः। पाणिनिः पाधार्थ-१२,२४, वार्तिकस्थ।

[†] चन्तर्याचीयनित्यादि, एवं प्रपायिची प्रयाचं प्रश्लीचः प्रशाणिरित्यादि । विकत्य-माष्ठ आन्तस्य प्रयापचीयं प्रयापनीय, इसादीजुङः प्रकोपचीयं प्रकोपनीयनित्यादि । प्रगमनीयमित्यादि, गमादीनां कोवलानां आज्ञानाय भन्न तुल्यं दर्गः। प्रेडणीयनिति नित्यं चलं। भनः किं, प्रमग्र इत्यादि ।

खन प्रादम्तस्य च टे-रे स्वात् ये परे। खेयं देयं। *

८७०। घ्यणो-रावर्यके।

(ध्यण् ।१।, भी: ५।, भावश्यकी ७।)।

उवर्णान्तादवस्यभावेऽर्धे घ्यण् स्यात् ढभावे। विष्रेण श्रु विना भाव्यं। 🕆

. १७१ | इस्यासी: । (इस्-म्रःस-मा-सी: ४।)।

इसन्तात् ऋवणीन्तात् यीते रासनोतेष घ्यण् स्यात् ढभावे । वाद्यं चात्यं जन्यं वध्यं, कार्यं, यात्यं, श्वासाव्यं । ‡

स्रत च चाद्य खनाती, खनातीष्ट: खनाहितस्य । प्रकरणवलात् ये इति स्थासंज्ञके यकारे परे इत्यर्थ: । खियमिति खनधाती व्यक्ति चनेन टेरेकार: । देयमिति दास्त्रदर्भत् १८६०) यः, टेरेकार: । स्थासंज्ञके किं, खन्यते, दीयते, प्रखन्य, प्रदाय इत्यादी न स्थात्। पाणिनि: ३।१।१११,६।४।६५ (एतकाते दें, ईत्) ।

[†] भवस्यस् भाव: भावस्यं, भावस्यभेव भावस्यकं तिस्यत् । कियाया भवस्यभावे इत्यर्थः । स्यभो घषावितौ य-स्थिति: । भाव्यमिति भूष्यम् (५००) इदि:, (४२१) यस्य भज्वद्वावे, (६५) भौस्याने भाव् । एवं तपस्विना विष्यः साव्य इत्यादि । भना-वस्यकेतु ये भव्यं, क्यपि सृत्यः । पाणिनि: ११११२५ (एतकाते स्वत) ।

[‡] इस् च ऋष युष चा-सुष तकात्। प्रधगयोगादावस्त के दलस्य नातृहतिः। वास्त्रसित उद्यति यत् तत्, वष-ध्यण् (५००) हितः। चात्रसिति इन्यति यत् तत्, दक ध्यण् (५००) हितः। चात्रसिति इन्यति यत् तत्, दक ध्यण् (६०८) खेडीच दति इस्य घः, हितः, (८०१) दन-सादः। नायते दिति क्रमां, (८६५) कसावे दल्यतेः कर्णार ध्यण्, वस्यते यत् तत् वध्यं, उभयच हतीं (९४४) अनवध दितः। कार्यमिति क ज कृष् दति इस्तदीर्घान्ताभ्यां ध्यणि हितः। याध्यमिति या-सु-ध्यण्, उभयच हतीं (४२१) अनवहातः, पात् च। पाणिनः १९०१ १९४९।

८७२ । चजोः कगौ चित्यसेम्क्त-यद्गाङ्गयज-गत्यथवन्चां । (पःजोः ६॥, कगौ, १॥, विति ७॥, षःस्मृकःयज्ञाङ्गयज-

विति परे च-जोः क-गीस्तो न तुसेम् कादेः । पाक्यं रोग्यं। गतीतु, वद्यंगः। चन्यव वद्धंगकाष्ठं। *

८७३। नावश्यके त्यज-यज-प्रवचाञ्च ध्यणि।

(म ।१।, भावस्य के ७।, त्यभ-यञ्ज-प्रवचां ६॥, च ।१।, ध्यक्ति ७।)।

त्रावस्य के ऽर्थे एवा च च जो: कगी न स्तो घ्यणि । त्रवस्यं पाँचं, त्याच्य: याच्य: । नं

८७४। भुज-वच-निप्रयुजा उन्नामन्दम्क्ये।

(सुज-वच-निप्रयुज: ६।, भन्न-भग्रन्द-भक्ये ७।)।

भुजो भच्चेऽर्घे, वचीऽयन्देऽर्घे, निप्रपूर्वस्य युजः यन्वेऽर्घे, चजीः कगी न स्तो व्यणि । भोज्यं, वाच्यं, नियोज्यः प्रयोज्यः । एषु

[•] सेम की यसात् स सेमकः, यसात की विद्तिः सेम भवतीययः। यज्ञसाङ्गं यज्ञाङ्गं यज्ञाङ्गं यज्ञाङ्गं यक्ताः यज्ञाङ्गयजः, गत्यथसासी वन्च चिति गत्ययंवन्च। संम्कस्य यज्ञाङ्गयजय गत्थयंवन्च चिति, तती नञ्योगे तेवां। पाकामिति पच-च्यण्, हडिः, चस्य कः! स्क-च्यण्, गृषः, जस्य गः। एवं घित्र पाकः रीगः। सेम्क्रान् याच-व्यण् याच्य इत्यादि। यज्ञाङ्गयजस्य घित्र प्रयाजः चतुयाजः, प्रयागः प्रयागः चत्यायः, स्तुयाजः, प्रधानयज्ञस्य चङ्गयज्ञा एते। यज्ञाङ्ग इति किं, यागः प्रधानयज्ञस्य चङ्गयज्ञा एते। यज्ञाङ्ग इति किं, यागः प्रधानयज्ञ इत्यर्थः। वन्चु गत्थां वस्त्री यामः। सक्तीभावार्थे वद्वा काष्टं। पाणितिः ७।३।५२,६२,६१, भाष्यस्य।

[†] क्रियाया चवस्त्रभावेऽथें सब्बेंबां धातूनां, त्यज्ञ-प्रवचाय चावस्त्रके चनावस्त्रके चनावस्त्रके चनावस्त्रके चनावस्त्रके चनावस्त्रके चन्नेक भोष्य: चन्नेक भोष्य: इत्यादाविप प्रधीमानुसारेण का-ग-निषेधी वक्तस्य:। पाषिनिः अश्रेष, इत्यादाविप प्रधीमानुसारेण का-ग-निषेधी वक्तस्य:। पाषिनिः अश्रेष, इत्यादाविष सर्जेक्यस्थानम् इति वार्त्तिकस्य।

किं, भोग्या भू:, वाक्यं पद समुदाय:, नियोक्तमर्हित नियोग्य: प्रभुः । 🕸

१७५। पाय घाय प्रणायानाय कुग्हपाय सञ्ज्ञाय्य राजसय सान्ताय्य निकाय्य परिचाय्योप-चाय चित्राग्निचता समञ्चामावखामावाखा याज्याः । (पाय-याज्याः १॥)।

एते घणना निपालनी।

ंपायं मानं। द्धात्यग्निमिति धाया सामधेनी, धाया ऋत्विजः। प्रणाय्येश्यमातः प्रियो वा। श्रानाय्यो दिचणाग्निः। कुरुडे: पीयते श्रत्र सीम इति कुरुडपायः क्रतुः। सञ्चायः कृतु:। राज्ञा सूयते राजसूय: क्रतु:। सावाय्यं इवि:। निकायो निवास:। परिचायोऽग्निः, उपचायोऽग्निः, चिल्ली-ऽग्नि:। त्रग्नेययनं त्रानिचित्या । समुद्योऽग्नि: संवाह्य द्रत्यर्थ:। श्रमा सह वसतोऽस्यां चन्द्राकीवित्यमावस्या श्रमावास्या। यजन्यनया इति याज्या । निपाती भ्रार्थविभेषे । गं

भुजस वचय निप्राभ्यां युज च तस्य । भन्नस मंग्रन्स प्रकासित तस्मिन्। भुज्यतेयत्तत्भीज्यं चद्रादिः। वाच्यं वचनीयमित्यर्थः । नियोक्तं प्रयोक्तुःच श्रक्यते-ऽसी नियोज्यः प्रयोज्यः सेवकः । भीग्या भूरिति उपभोग्या पालगीया वेस्पर्यः । वार्क्य पदममुदाय: परस्पराकाङ्चायुक्तपदममूह: नियीक्तमईति योग्यो भवतील्यं:, भव (८६५) कभावे रुख्ती: कर्त्तरि व्यव्। पाणिनिः शहाइ ७-६६।

[†] पा च्यण् पार्यं परिमाणं, पेयमन्यत् । मतान्तरे मा च्यण्, मेयमन्यत् । धा-च्यण्, धाया सामधेनी प्रिज्ञालनमत्त्रः, एवं धायाः ऋतिनः ; धेयमन्यत् । प्रणीयतेऽसी प्रकायः ; चन्यच प्रकेयः । गाईपस्यादग्रेरानीय यः प्रकीयते स भानायी दिवणागिः ; षम्य पानिय:। कुण्डपायः क्रतः ; वन्यव कुण्डपेयं दुर्धः । सीमी लताविशेषस्य रसः। सचीयतेऽसी सचाय्यः ऋतुः ; भन्यत्र सचियं प्रस्थं। राज्ञा स्यते सङ्गलपूर्व्यक् सायते

१७ई। पुशक सह तक चत यत शसीऽचम वप रप लप चप दभी यो भज जप यजानमस्तुवा।

(प्र-मसः प्रा, षचम - दसः प्रा, यः रा. सज - षानमः प्रा, तारा, वारा)। पवर्गान्तात् मकादेश चमादिवर्जात् यः स्थात् उभावे, भजादेश वा। रस्यं मक्यं सद्यं तक्यं चत्यं यत्यं मस्यं। भज्यं भाग्यं, जम्यं जाम्यं, यज्यं याज्यं, भानस्यं भानस्यं। चमादेशु भाचास्यं वाम्यं राम्यं लाम्यं नाम्यं नाम्य

१९० । यत्रात्तभो मुण्। (विश, षा-वभः ६।, मुण्।१५)। श्राङ्पूर्वस्य तभो मुण्स्यात् यकारे परें। श्रात्तभगो गोः। क

ऽिखितिति राजस्यः कतः, ("राजयन्दः सीमवाषी, तिन सीतव्यं राजस्यं" इति तु कमदीचरः; भट्टोजिदी चितकः "राज्ञा भीतव्योऽभिषवदारा निष्पाद्यितव्यः, यदा खतात्मकः सोमी राजा स स्यते कछातेऽनित चिधिक्रणे व्यप् निपातनात् दीर्घः), स-व्यण्; चन्यन सव्यं। समीयते इदं साम्रायं इतिः; चन्यन सवियं। निचीयतेऽसी निकाय्यो निवासः; चन्यन निचेयं। परिचीयतेऽसी, परिज्ञायः, उपचीयतेऽसी उपचायः चितः, वोयतेऽसी निवाः; भग्यन परिचीयतेऽसी, परिज्ञायः, उपचीयतेऽसी उपचायः चितः, वोयतेऽसी निवाः, स्वयं परिचीयते असे परिज्ञायः। स्वयः समुद्धाः स्वयः, वोयतेऽसी निवाः, दीर्घयं, चन्यन संवाह्यः। यद्याः कञ्जे व्यणि पदं सिव्यति, तथापि वहधाती व्यणि चनिष्यारचार्यं निपातनं। चना (चव्ययं) चन्द्रस्य कला, तया सइ वस्तांऽस्यां तिष्को चन्द्राकों इत्ययं चनावस्य चनावस्य दित्यां। याज्या स्वक्। एकमवंतिष्ठां एव निपातः, नतु सर्वेतः। वहवचननिर्देशात् सको व्यण् शिक्यं, चिव्यंण् चैत्यमित्यादि। पाणिनिः ३।१।११४,१२२, १२९—१३२। एतनाते राजस्यपदं क्यवनी निपातः।

* पुत्र भक्ष सहस्र तक्ष चत्य यत्य भव चिति तक्षात्। चमय वप्य रपस्र सपस्य चपस्य दभ चते, न विद्यन्ते ते यच सी ऽचम-वप-दप-खप-चप-दभः, तस्मात्। भक्ष कपस्य यज्य भा-नम चेति तक्षात्। (८०१) इसन्तलात् प्राप्तस्य व्यणो वाधकीऽयं। स्यानिति पवर्गान्तलात् यः, एवं तप्य खभ्यानित्यादि । भक्ष इपिंद्वादीरिव यहणं, चन्यन भाक्षं साह्यानिति । चाचास्यनित्यादिषु व्यक् एव । दाम्यनिति दन्सुन दश्चे इत्यस्य नकार-इहितपाठात् नकार-खोपे,(५००)हद्धिः। पाकिनः इ।१५८८,१८६,१२६, वार्तिके च।

† सुर्वो च इत् भन्यातः परः। भालभग्नी सारवीयः स्पर्भनीयो वा इत्ययः। पावितिः २।१।६५। एतन्त्रते तुस्। ८७८ । उपात् सुती । (उपान था, सुती था)। उपपूर्व्य सभी मुण् स्थात् ये परे प्रशंसार्या। उपसभाः साधः। सुती किं, उपसभ्यमसात् किञ्चित्। अ

८७८। गद-मद-यम-चराचरो ऽगे र्यः।

(गट सद यम चर चाचर: ५१, चनी: ५१, य: १९१)।

श्रमिश्य एभ्यो यः स्थात् ढभावे । गद्यं मद्यं यस्यं चर्यं श्वाचर्यं । श्रमेः नितं, प्रगायं श्रभिचार्यं । पं

हटः । पग्यावदावयरीचार्यत्र वह्य जयत्र च्यत्र क्रयत्रायरीपसयरीजधेत्र । (पण्य-पण्यः १।) । एतं यान्ता निपात्यन्ते । पण्यं विक्रयं । अवद्यमनिष्टं । वर्षा कन्या ; वर्ष्यं श्रेष्ठं । आचार्यो गुरुः । उद्याविद्रनेनेति वद्यं यक्षटं । जितुं यक्यं जय्यं , एवं ज्ययं । क्रयं इट्टे प्रसारितं । प्रार्थः स्वामी वैद्यो वा । उपस्तियते इत्युपसर्था ऋतुमती । न जीर्थतीति अज्यें सङ्गतं । क्ष

उपलग्धाः सत्य इत्यर्थः। उपलग्धं प्राप्तव्यक्तिरार्थः। पाचिनिः ०।१।६६।

[†] श्रयभपि घ्यणी वाधकः । गिपूर्व्यकेयी घ्यण् एव । पाणिनिः ३।१।१००,वार्त्तिकञ्च।

[्]रयण क व्यवहार स्तृती च, पत्यं; अन्यव पाण्यो विच्हः साध इत्यर्थः। नञ्पृथ्वंस्य वदतीः भवदां चिनष्टं निन्दनीयनिन्ध्येः, चन्यच चवादां वाद्यं। इन्यन्
वर्ष्यां वरणीया, वर्ष्यं पृत्रनीयं; चन्यव वार्षे। चा-चर-व्यक् चाचार्थः गृहः, चन्यव चाचर्ये। (८६६) सूर्वात-नियनेन (८०८) व्यक्षी वाधितत्वान् चच निपातः। उद्यति इनेनित वद्यं; चन्यव वाद्यं। ति, जव्यं; चन्यव ज्यं। चिनुं प्रक्षं चर्यं; चन्यव चेयं। क्री, क्रयं; चन्यव क्रियं। च्य, चर्यः; चन्यव चार्यः विप्रः। उप-स्य, उपसर्या उपनित्रक्षयः, चन्यव क्रियं। चरुव्यातिस्ययः; चन्यव चपसार्यः। न-जृ चन्नयं सङ्का निचन-निन्धयः; चन्यव क्रियं। पाविनिः ११८।१०१-१०५, ६११।६९,५९।

८८१। द स जुब स्विन्-गास्टुड्-प्टजो ऽक्तपचृतन्दच पाणिस्जुसमवस्जः स्वप्।

(ह — हजः ५।, चक्रप - समवस्रतः ५।, काप् ।१।)।

द्रादे ऋकारोङो हजय कपादिवजीत् काप्स्यात् ढभावे। अ

१८२ । ख्य तन् पिति । (श्वस हा, तन् ।रा. विति अ)।

स्वान्तस्य तन् स्थात् पिति । श्राद्दस्यः स्वयः जुथः स्वयः इत्यः शिष्यः द्वस्यः द्वत्यः । क्षपादेनुकन्त्या चर्त्वे अर्द्धा पाणिसर्ध्यो समवसम्यो रज्जुः । १

१८३। टा द्य स्टज गुह दृह शन्स संस्ट प्रत्यिपगृहो वा । (क-यहः था, वा ११)।

एभाः काप् स्थात् वा उभावे। क्रत्यं कार्यं, इष्यं वर्षं, सज्यं मार्ग्यं, गुद्धं गोद्धं, दुद्धं दीद्धं, प्रस्यं प्रस्थं, संस्त्यः संभार्यः, प्रतिग्रद्धं, प्रतिग्राद्धं, श्रिपग्रद्धं श्रिपग्राद्धं। क्षः

क स्त्उङ्यस्य स स्टइङ्. हय क्षय गुषय लुख इन् च भाग च स्टइङ् च इज् चिति तक्षात्। पार्ण स्टज् पाणिस्टन्, नमाऽवः सभवः, समवात् स्टज् समबस्त्रः, क्षपय चृत्य स्टच्य पाणिस्टन् च समबस्त्रं च तत्, पथाव्रञ्गीने तथात्। व्यपः किस्तात् चगुणः। पाणिनिः ११:१०६,११०,११९, वार्मिकदय, भाष्यच।

⁺ ऋस्वालस्य तन् स्यात् प इत् क्रित परे, िदने । अत्र वेनः कंनापि प्रकारिय स्थालस्य ग्रहणं, नत् स्थाव-स्थलस्य ; तेनः वितल्धियादी जमलीये भनेन तन् । भादत्य स्थादि, भा-द-क्र्यप्, किस्वात् गुणाभावः, पिस्वात् तन् । शिष्प इति शास-क्रयप्, (७०५) भणी इति उङ इ. (११२) घर्षा । ब्रध्य इति भन्भित्जाश्वात् सक्षमेत्रव, कर्माण्य क्रयप्, वर्जनीय इत्यर्थः । बजी जानुनत्यति बङ इत्यस्य वार्ध इत्येव । कस्याति कृत्यः स्थायः (६४६) कृत्यदेशे, गुणः । पाणिभ्यां स्टम्यतेऽभी समवस्यत्यते- इती इति च वाक्षे घ्यणि, (६७२) अस्थ गः । पाणिनः ६।१।७१ ।

[‡] सभी क संबं, प्रत्यिभ्यां यह प्रत्यित्यह , क्षत्र वत्य च क्षत्र च दुइ च

१८४। गृष्ण विनीय विपूय जित्या सूर्य रचाव्यय्य भिद्योद्ध पुष्य सिद्ध तियाज्य युग्य स्टप्य कुष्य भार्याः। (एष-भाषाः १॥)।

एते काबन्ता निपात्यन्ते।

प्रस्मं पदं, क्षण्यस्मः क्षण्यन्यः, राष्ट्रोऽस्वेरी, यामराष्ट्रा यामवाष्ट्रां। विनीयः क्षल्कः। विप्यो मुद्धः। जिल्या प्रति:। सरतीति स्थाः, एवं कचः, श्रव्यथः। कूलं भिन-त्तीति भिद्यो नदः। वृदि उज्भतीति उद्यो नदः। कार्यो पुणातीति पुष्यो नत्त्वं। कार्यो साध्यतीति सिद्धाः, सएव तिष्योऽपि। श्राच्यं प्रतं। युग्यं वाहनं। कष्टे स्वयं पचते द्रित कष्टपचो वीहिः। कुष्यं सुवर्णकृष्याभ्यामन्यत्। भार्था वधः त्तिनया च। अ

भन्भ च्संध्य प्रत्यपियह चेति तस्नात्। सर्व्वव विकल्पपचे (८०१) घाष्। कार्यः मित्यव (५००) इति:। मार्ग्यमित्यव (६८४) इतिः, (८०२) अस्य गः। गोच्चमिति व्यणि, गुणे, (६५६) गुही चोक्तित्यव चिच परे विधानात् चव न कः। भस्यमित्यव (५६०) न-संपि:। पाणिनिः ३।१।११२,११२,११८०,१२०, वार्तिकं काशिका च।

[•] पद-पत्त्य-परतत्त्व-विद्धभूतेषु (पाणिनिः ३।१।११८) यद्यां निपाखते, यया, प्रयद्यां पदं; कण्यवस्यः कण्यप्त्यः पाछत्व द्रव्ययः ; भावति भावति ; पानवाद्या पानविद्धभूता नदीव्ययः ; एथ्योऽन्यत पाद्धः । कल्कोऽस्त्री समलैनसीरित्यमरः ; भन्यत्र विनेयः । सुद्याः अरपुष्ट्खः ; भन्यत्र विपयः। इलि भंडत् इलं ; भन्यत्र जेयः । सूर्यादयक्तिष्यान्ताः भण्यो कर्तर कावत्ताः, भन्यत्र स्-सायः द्रव्यादि । रोषतं इति कच्यः । न व्यथते भण्याः । तोवयतीति तिष्यः, पृथ्यनचत्रवाची । भज्यते सत्त्यते ऽनेनित भाज्यं । युज्यते यत् तत् युग्यं । कष्टपच्य इति कम्यंकत्तरि क्यप्, "कष्टन पच्यने" इति तु कमदीयरः । युग्यते यत् तत् कृष्यं । स्वर्ण-द्रप्यथोन्तु गोष्यं । सियते इसी भार्या । (८६६) सद्यो वाध्य इति नियनात् (८८१) सूत्रे ष्यणी वाध्य तत्ति स्वर्णाः पाणिनः । पाणिनः ।

१८५ । ले बंद: क्युपयौ । (लं: ४।, वद: ४।, क्यप्यौ१॥) ।

से: परात् वदः काप्-यो स्त; ढभावे। ब्रह्मणा उद्यते इति ब्रह्मोद्या ब्रह्मवद्या, कथा। *

१८६। स्त्रोद्यं नित्यं। 🕆 (म्बीद्यं रा, नित्यं रा)।

१८७। मू-इन: काप् भावे न तस्र।

(भू-इन: ४।, काप्।१।, भावे ७।, न ।१।, त: १।, च ।१।)।

ली: पराभ्यामाभ्यां काप्स्थात् भावे, इनो नस्य तथ। ब्रह्माः भूयं ब्रह्मालं, ब्रह्माहत्या । क्ष

१८८ | घो: कोलिमो ढघे |(धी: धा, केलिम: ११, ढघे ७।)।

धीः परः केलिमः स्थात् उत्रे । स्वयमेव पचन्ते इति .पचेलिमा-स्तण्डुलाः । एवं भिदेलिमाः माषाः । १ •

क्यप्यौ इति इयं क्यपी विकल्पं स्वयित । ब्रह्मणा ब्राह्मणेन । ब्रह्मोखाः इति (६६१) जि: । यप्रलखे ब्रह्मवदा । भावे तु, ब्रह्मीदां ब्रह्मवदां । एता ट्रम्थलेषु स्याद्यकोषपदस्य क्रदलेन धातुना समासी वक्तव्यः । चत्रपव "प्रादिवर्जिते सुपि" इति क्रमस्त्रियस्वव्याख्याने गोयीचन्द्रः । चनुदां चनुदां चनुवाद्यमिति तु पदानि भविति । पाणिनि: ११११०६ ।

[†] सृषा चदाते प्रति सर्वोद्यं, निर्श्यं क्यप्, जि:। निर्श्यमिति कथनेन स्वावद्य-मितिन स्वात्। पाणिनिः ३।१।१९४।

[‡] त्रज्ञाणी भाव:, त्रज्ञभूयं त्रज्ञत्विसित्यर्थः । त्रज्ञाणी इननं त्रज्ञहत्या, (६०६) जस्-खोपे, (১.८२) तन्, प्रभिषानात् स्त्रीलिङ्गता । पाणिनि: ३।११९०७,१०८ ।

[§] दश्च तत् घर्षति द्रषः तिसान् । धीरुपादानं सर्व्वधातुप्राप्तप्रथे । केलिमः कि स्वात् न गुषः । कालिन पच्चमानाक ग्रुलाः खयमेव पच्चले इत्यर्थः । ग्रुडस्थेन भिद्यमानाः माषाः स्वयमेव भिद्यले इति भिदेलिमाः । एवं भिदेलिमं काष्ठं । मेधेन सुच्चमानं

१८६। ते ल्याः, श्वास्त्रिप्रेष्यानुद्गाप्राप्त-कालेवा। (तेरण, ल्याः रण, मक्य-प्राप्तकार्व अ, वा ररा)।

तव्यादयो ख-संज्ञाः स्युः, ते च मक्याद्ययेषु वा स्यः। *
वोद्यं मक्या वोद्यः वहनीयः वाह्यः। स्तोतुमर्द्यः स्तोतव्यः
स्तवनीयः सुत्यः। प्रेषितस्व लया गन्तव्यं गमनीयं गम्यं।
धनुज्ञातस्व लया प्रध्येतव्यं प्रध्ययनीयं प्रध्येयं। प्राप्तस्ते
कालः लया ध्यातव्यं ध्यानीयं ध्येयं। गः

इति ल्य-पाद:..

वारि खयमेव सुच्यते इति सुचे जिमं। इत्यादि । भव उद्ये इति कथनं कार्यिकामतानु-सारि, वार्तिकेभाययोन् कर्वाणीति । ''लेखिमर उपपत्यानम्" इति वार्तिकम् ।

मकाय पर्छाय प्रमुक्ता च प्राप्तकालय तत्त्रियम् । मकाते ऽभी भकाः कर्णाच यः । 'प्रज्ञाते योग्यः क्रियतेऽसावित पर्छाः, चन्तर्भूतव्यायेलात् कर्णाच यः । नियंकार-पाठे तु कर्णाच चव्यः ते तत्त्र्यादयः — तव्य, चनोयः, य, च्याण् करा-, किलिस प्रति पट, ''ल्यः" संज्ञा येषां ताह्याः स्युः । ते च तच्यादयः मक्याद्ययेष वा स्युः । वौ-प्रकट्ट ससुद्ययार्थः । तेन, मकाद्यवांभाि ऽपि स्युरिल्ययः । ल्यादिकारन- मस्दानां नाससंज्ञानाः : —

खणादानं क्रदन्तञ्च तिङ्कतानां समासमं। नाससज्ञा भवेदेवां स्थादान्यत्तिस्तत.पर ॥

† सन्धार्थेषु पूर्व्वोदाहरणानि, शकाय्येषेषु उदाहरणान्याह गीदुनित्वादि । वीद्रव्य-हति वह-तव्य, (१०५) इस्स ढ, (६५३) सन्तास्य भोकार, (५०६) तस्याने ध, (४०) धस्य ढ, (००) ढलीगः । बीदुं शकाः सन्यो भार हति श्रेषः । बाद्याहति वह (८०१) घरण, (४००) ढाँद्वः । सीतुमर्त्ताः गुर्कारित श्रेषः । स्तृय हति (८८१) क्यप्, (८८२) स्त्रस्य तन् । इस्पुदाहरणद्यं कम्प्रोण वार्ष्य । प्रेष्यादीगासुदाहरणानि भाववार्षः । ध्यातव्यमिति त्यैतव्य, (६०८) चा, ध्येयमिति (६११) ए । वाक्षितिः १।१।८५, ३।२।१६२,१६८ । एतकाति क्रत्याः ।

२य पाद:- हनादि:।

८८०। त्याको, द्वे। (वन-चको १॥, चे ०।)।

धीस्तृन्-णकी घे स्त:। करोतीनि—कर्त्ता, कारकः, इरि-द्रायकः। *

८८१ । गलेचीपक-पाद्हारकौ ढे_।

(गलेचीपक पादचारकौ १॥, ढे ।।)।

एती निपाली है। 🅆

१६२। माईत क्रमो नेम तथा:।

(माहीत् ४।, क्रम: ४।. न ११।, इम् ११।, व्या: ६।) ।

प्रकारता उपक्रम्ताः श्रन्थच क्रमिता श्रतिक्रमिताः क्षे

८१३। ग्रन्थनित्यचादे शिननान् धे।

(यह-नन्दि-पच-चादे: प्रा, विन्-चन-भन् ।१।, घे ०।) ।

ग्रहादे चिन्, नन्धादेरनः, पचादेरन्, स्वात् घे। गाँही स्थायी

[•] तन् च पक्य तो। तन् इति दन्य-नकार, भीषादिकतन्प्रयानानां पित-भादि-प्रस्तानां विश्वेषार्थ। यकस्य प्रकारो (५००) वृह्ययं:। तन् तन्कोसतद्वर्य-तक्षाधकारिव्यवेष्वि (पाणिनि: शरारक्ष) स्वादिति बीध्यं, भतएव ग्रन्यकारैण (२०५) श्रोकायंत्रन् इति कथितं। दरिद्रायक इति (००२) दरिद्र पालीप इत्यत्र भक्षकंत्रात् भाकोपाशावे, (८२४) यन्। पाणिनि शरारक्ष। एतन्यति तन् तन् यन् म

[†] एतौ कर्माधि वाची सकप्रस्थयेन निपासी। गर्ले चुर्यतेऽसी गर्लेचीपकः। पादास्थां क्रियतेऽसी पादकारकः। भाष्यम्।

[‡] मं (चात्मनेपदं) चर्रतीति मार्डः । चात्मनेपदगितयोग्यात् क्रमः परस्य द्रच-इम् न स्वात् । प्रक्रभीत्यादि (८८४) चात्मनेपदयोग्यतं । मृकारस्य (५०,५१) चतुस्वार-नकारौ । चन्यत्र घात्मनेपदायोग्ये इत्ययः । वार्षिकम् ১

प्रपायिणी, नन्दनः विचचणः जनाईनः मधुस्रदनः लवणः, पचः देवः लेखाः लोलुवः रोक्यः । *

१८४। चिक्तिर चक्रम चराचर चलाचल पतापत वदावद घनाघन पाटपटा वा।

(चिक्रिट-पाटपटा: १॥, वा ।१।)।

एते अनना निपालने वा।

पर्च, क्रोदः क्रसः चरः चलः पतः वदः इनः पाटः । 🅆

ग्रहस्य नन्दिस्य पचस्य ते आदशो यस्य संतक्षात्। विन् च सनस्य भन् चतत्। णिनी पंदर् (४००) वृद्धार्थः। भैनः भकारान्तः। भन् इत्यस्य नद्दर भ-प्रत्ययात् विभेषायं:। यहादि:--गह स्थापा सहदास भास मल मदंरच युवप भी (भी) याच इत्रज्ञ बद वस का भी भूराध रूप । नन्द्रादि:— नन्दि वाश्रि सदि दूषि साधि वर्षि भौभि प्रोचि सक्तिपि दिन कि परि एसि दिप किन्द कर्षि इर्षि महिं यु सूदि भौषि लून।शि चिवि। पचादि.—पच वष वप वद चल पत गद भव सुचर स्टप गम टग्र चप चम निष त्रण किर मुद जिख कम इन पट भूध खगुज़ भातृगाइ दिव पुर भीव दुनो ज्वल सा एवमपर्ऽपि प्रयोगतो ज्ञयाः। (३०५) ढचे क्रतीत्वच स्तथं कथ-नात् कदाचिद भविधत्क ले च्हणार्थं च णिन् स्वादिति (पाणिनि: ३।३।१००)। एवं (६६०) स्त्रप्रक्रहात् चिषानि-प्रत्ययाऽपि वक्तव्यः ; घ इत्, अन्त्यस्य इक्तारस्य च इत्, य इ.स. इ.न्स्थिति: (पार्विान: १।२।१४१-१४५)। यक्कातीति विकाल विश्वात् विश्व-तीति (६२४) यन् । प्रणिवतः यौ, (८६८) चल, चलप्रदर्भनाधिनेव दिवचनानं पटं। नन्दयतीति चन:, (६४१) जलीप:। विचष्ट इति (७०६) चन वर्जनात् न चच: समाज-ख्याजी, (१०७) यतः। ननं महंयतीति, मधं स्दयतीति, जन-मधू मसुरिक्षिधी। लुनातीति सवणः राचसः, खभावान् गलं। पचतीति पचः, दीव्यतीति देवः, भव भन् (८.८६) क-प्रत्ययस्य वाधकः। लेलीयतं इति भन्, (८३६) चनि तु नित्यं यस्नुक्, (८४१) गुपनिषेध, (५८८) ई.स्थाने यः। लील्यते इति मनि यङ्लुकि छस्याने उत्। रोडयते इति चनि, उदलात् चनि यङ्लुक्निविधः। (५४२) यङीऽकारसीयः। याणिनिः २।१।१३४। ॡ्यु≕ मन्। भच्≕ भन्।

⁺ कियु इर्किदे, क्रस्यु म उड़ती, घर गती, चल ज गती, पत ल ज गलां, वदे वाचि, इन ल वधे गती, पट क लिबि, इत्यष्टभ्यः पचादिलादिन एते वा निपालने । पाटपट इत्यच पाटुपट इति चान्दाः । ,पाटुपट इति पाचिनोधाः । पचे क्रेद इत्यादि, पाट इति चुरादिलान् औं, इक्षिः । वार्तिकचयम् ।

१८५। राचे मन् वा क्रति।

(राचे: ६।, मन्।१।, वा।१।, क्रति ७।)।

राचेभेन् खादा क्षति। रांचिचरः राविचरः। #

८८६। कृ गृ ज्ञा प्रीजुङ: को — दुक्रो घङ्च।

(कृ-गू-जा-प्री-इजुङ: ५।, क: १।, दुह: ६।, घङ्।१।, च।१।)।

क्रारेरिजुङ्य कः स्थात्, तिस्नंय दुद्दी घङ् स्थात् र्घे । किरः गिरः च्नः प्रियः चिपः भूतहः कामदुघा गौः । 🕆

१९७। इनजनाद्गमादे र्डः।

(इन-जन-चात्-गमादेः ५।, उ: १।)।

हनो जन श्राद्तात् गमादेश डः स्थात् घे। श्रोकापहः वराहः सरिसजं पङ्गजं श्रजः गोदः दिपः प्रहः श्राश्रगः नगः गिरिशः, वारि चरतीति वार्षो हंसः। क्ष

कति क्रदने घातौ परे इत्थर्थः । मनोऽनावितौ, निचादने । रेपने निपरतिति पचादितादनि, भनेन मन्, (५०,५१) मखानुखारः, भनुखारस्य ज । पचे राविचरः । भगदद्वारः सत्यद्वारः (पाणिनिः ६।३।७०) (१००८) षण्, तिमिङ्गिलः (''गिर्जऽगिलस्य'' इति वार्त्तिकम्) (१८६) कां, इत्यादौ मन् वक्तव्यः । पाणिनिः ६।३।७२ ।

[†] इच् उङ्यस स इजुङ्, कृष गृष जास प्रीय इजुङ् चिति तसात्। दुधी घङ् चिति चकारात् इजुङ्लात् की सतीलार्थः। परमुचेण उप्रक्षयेन सिविऽपि अच जा-यहणं, परस्वं उपपदपूर्वादेन उः स्थात्, इह तु की ने लात् का नातीः क इति ज्ञाप-नार्थम्। अव इजुङ्भावनिभित्तकतया विश्वेष कप्रत्ययेन, सर्वेषातु-निभित्तकतया सामान्यो ढात् पण् (१००८) बाध्यते। किरतीति किरः, (६२०) इर्। एवं गिरतीति गिरः। कानातोति जः, (६१०) बाधीपः। प्रीचातीति प्रियः (५००) इस्थाने इय। विपतीति विषः, सुवि रोहतीति भू-कहः, उभयन इजुङ्लात् कः। कामं दोग्धीति, कप्रत्यथे, इस्य घङि, स्त्रीलात् (२४८) बाष्। पाचिनिः ११११६५, ११रा७०।

[‡] इन च जन च चाद्य गमादिय तसात्। उदा इरच-दर्भनेन विपपदपूर्वकादेवे-

१८८ । घेट-हम-पा-घा-धम: म:।

(धेट--धा: धा, म: १।)।

एभ्यः श्रः स्थात् वे। उदयः उत्पन्धः उत्पितः उक्तिन्नः उदमः। क

ह्ह। साहि साति चेति वेदोिन धारि पारि लिम्प विन्दो ऽगे: ا (साहि—विन्दः धा, अगेः धा)।

भगिभ्य एभ्यः यः स्थात् वि । साष्ट्रयः सातयः चेतयः वेदयः एजयः धारयः पारयः, लिम्पः विन्दः गोविन्दः । १०

१०००। दुनीभूञ्चलाद्यासुसंस्रो गें। वा।

(दु—संसी. ४।, ष: १।, वा ।१।)।

त्यशः। श्रीकृमपहान्त, वरमाहन्ति, सरित जायते (विभन्नेराजुक्), पङ्गाज्ञायते, न जायते, गा दर्शात, हाभ्यां पित्रति, प्र-इयित, श्राग्न गच्छित, न गच्छित, निरी भिन्ने भि

[•] शस्य प्र इत् रमंत्र', चकारस्थिति: । ल्द्घयतौति शः, चे अप् रे प्रप्, (५४१) चकारलीपः । एवं उत्पय्यतौत्यादि वाकाणि । सर्व्यंत्र ने परे प्रप्, (५८०) हमादेः स्थाने पद्मायादियः । साइचर्याद्य पा इति भौवादिक एव । उदाइरणज्ञापकात् प्रायतः सापसर्गाणानेवायं विकिरिति ; (चत्यव "प्रादेघोदेः शङ्" "चप्रादेशेलेके" इति कमदीयरः) । व्याप्त इत्यत्र संज्ञानुगोधात् उ एव ("जिन्न संज्ञायात् प्रतिषेषः इति वार्तिकन्) । पाणिनिः १।१।१२०।

[†] सह ज उर बती, सात क सुखं, चिती संघाने, विद ल सतौ, एज कसी, ध्य उर खितौ, प्र लि पालनं, एते जान्ताः। जि लिपी य प ज लेपने, विद लृ य प जी लाभे. इत्युभयोः (७४१) सुवादिलान् चन्। साइयतौत्यादि वाल्यानि। ब-प्रवर्धे, रेपरे गप्, गुवादि। लिन्यः विन्दः इत्युभयन तुदादिलान् यः। चदेलयः इत्यन तु उद्यन्दस्य उपसर्गप्तिकपकलिन चनुपस्तान् यः इति भाष्यम्। कमदीयरसु उदयन्स्य उपसर्गवतान् "एन्द्रिदः" इति प्रथक् सूनं कतम्। पाविनः १११११९न।

म्रागिभ्य एभ्यो णः स्थात् घे वा । दावः दवः, नायः नयः, भावः भवः, ज्यालः ज्वलः, चालः चलः, ग्रास्नावः मास्रवः, संस्रावः संस्रवः । *

१००१ । खस व्यधेन तन टावह्रसः । (यम-मः प्रा)।
प्रभी णः स्थात् वे । खासः व्याधः श्रत्यायः श्रवतानः दायः
धायः श्रवहारः श्रवंसायः । १

१००२। नृत्खनरन्जः प्रकः । (वत् खनः रन्जः प्रा, पकः रा।। एस्यः प्रकः स्यात् घे। नत्तेकी खनकी रजकी । क्ष

१००३ | गो गानट्यको | (गः ५१, पनट् थको १॥)। गायर्तरेती चे स्तः । गायनी, गायकः । §

[•] ण प्रत्ययस्य ण इत् वद्धार्थः. भकारस्थिति:। दृनीतीति दावः, णःप्रत्यथे, (विद्धाः), पत्ते पचादिलादन् दवः। एवं नयति, भवति, ज्वलित, चलति, भासवित, संस्वति, इति वाक्यानि। भासुसंस्र दन्यादी। व्यतिकरसन्देहनिरास्यये समास् न क्षतं। एवं यादः यहः (पाधिनिः ३११।१४३)। क-प्रत्यये यहनित्योपे (पाधिनिः ३१११४४)। ज्वलादिय — ज्वल चल यल खल इल मल पल वल शल पत क्षय वम भन चर सह रम शद सद कुच कम। पाधिनिः ३।१।१४० —१४२, काशिका च।

[†] इस साय इसी, भवीत् इसी भवद्वती । यस्य व्यथय इत च तन च दास्य भवद्वती चिति तक्षात् । एयक्ष्त्वकरणं निलाय, भगिरित्यस्य निवृच्ययं च । दा इति दासंजकः । यिति, विभ्यति, प्रत्येति, भवतनीति, ददाति, दधाति, भवद्वति, भवस्यति, इति क्रमेण वाक्यानि । टायः भागः भवसायः एतेषु चादलत्यात् (८२८) यन् । पाणिनिः ३।१।८३८,१४८, वार्तिकच । भवस्याय-प्रतिस्थायौ च णप्रत्ययानौ इति वक्तव्यम् ।

[‡] वकाः घ इत् (२५०) द्रेवर्थः चक-स्थितिः । नृत्यिति, खनति, रज्ञति या सा, इति सक्तानि । रज्ञकौत्यच (६६०) घर्कपरेन-खीपः । पाथिनिः ३।१:१४५, वार्क्तिचा

[§] चनटो चिच्चात् वृद्धिः, टिल्लादीप् भन-स्थितिः । गायति या सा गायनी, (১२४) यन्, (२५७) ईष्। वाचितिः ३।११४६,१४७।

१००४। हायनः। (कायनः १।)।

त्रयं निपात्यते। भावं जहातीति द्वायनी वर्षः, श्रम्बु जहा-तीति हायनी वीहिः। *

१००५ । प्रद्रसुस् स्वोऽतः । (मु-बः ४।,पकः १।)। एम्योऽतः स्वात् वे। प्रवकः द्रवकः स्ववकः सरकः लवकः । १०

१००६। ऋषिष । (मामिष ७।)।

जीवतादिति जीवकः। क्ष

१००७। नाम्त्रन्ये तिक च।

(मास्ति ७।, भन्ये १॥, तिक् ।१।, च ।१।) ।

धीराशिषि श्रन्थेऽपि कतः स्युः, तिक् च, संज्ञायां। देवरातः, रिक्तः। §

[⇒] काल-बौडिम्यामर्चव र्षातः, (८०५) निपाती द्यर्थविशेषे इत्युक्ते:। ''जिडीते प्राप्नीतीति वा" इति अही जिदीचित:। पाणिनिः ३।१।१४८।

⁺ सें। क्वाँरिणि कर्त्तरीति वक्तव्यं, यतः ''समिभि इन्दि'' इति पाणिनिना प्रीक्तम्। ''साधकारिख्युपसंख्यानम्" इति वार्त्तिकीतियः। ''समिभि इन्दर्वणेन साधकारिलं सन्द्यते'' इति भट्टीनिद्दीचितः। साधु प्रवति प्रवकः, (५४२) मुणः। एवं साधु द्रवित, स्रवति, सर्वति, लुनाति। साधुकारिणि किं, प्रीता। पाणिनिः ३।१।१४८। भव वृन्। भाष्यद्य।

[‡] पाधिषि गस्त्रमाने सर्वेधातुम्यो ऽकः स्थात् घे। कीवतादिति (८५६) तातङ् । एवं नन्दकः, वर्षका इत्यादि । स्त्रियां कौविका । पाणिनिः ३।१।१५० ।

[§] चामिति संज्ञायाच गत्यमानायां कर्णार वाच्ये कियतादन्येऽपि (उणादयः) जत-प्रत्ययाः स्यः, तिक् च स्थादित्ययः । देवाय रायान् देवरातः, कर्णार ज्ञः । एवं देवाय देयात् देवदत्तः, यजाय देयान् यजदत्तः । एवच वौरी भूयात् वौरभूः, निम्नं भूयात् निषभूः, दृत्यादो किए। रमतां रन्तिः, (६०६) तिकि-वर्ज्ञनात् न अम्लोपः । (परि-जिष्टपणं द्रष्टव्यम्) । इदमेव सूर्षं ''उचादयो वच्छक्त्'' (पाचिनिः ३।३।१) इति ज्व-स्थानीयम् । पादिनिः ३।३।१०४।

१००८। सति-साती वा। (विति-साती १॥, वा।१।)। सन्तिय। *

१००**६ | ढात् घर्ण् |** (ढात् था, षण् ।२।)। ढात् परात् धीः षण् स्थात् चे । कुश्वकारः, श्रघटं घटं करी-तीति घटीकारः ।†

१०१० | इनचरग-ष्टका । (इन-चर-गः ४।, टक् ।१।)। टात् परेभ्यः एभ्यः टक् स्यात् घे । पापन्नः कुरुचरः सामगः-। क्ष

१०११ । स्कुष्ट: । (स्र-कः था, टः श)। ढात् पराभ्यामाभ्यां टः स्थात् चे । पुर:सरी, यशस्करी विद्या। भास्त्ररः चपाकरः, कर्मंकरी दासी । §

 ^{*} सितय सातिय तो । सनीतेराशिति तिगन्तस्य एतो वा निपालो । पचे सिन्तः,
 सनुतादिति वाक्ये तिक्, (१०३३) इम् निवेधः, (६०६) ञम्लोपामादः अ अपाणिनः
 ६१४५।

[†] षणी च इत् इडार्यः व इत् ईबर्यः, चकारस्थितः। टार्टित निष्यंच्यांदि-कर्माण एव, तेन स्टुकार इति न स्थान्। कुम्नं करीतीति कुम्नकारः। यथिप नित्य-समासे वाकारचना नास्ति, तथापि शिष्यवीधार्थमिति वीध्यम्। (११८३) कत्ति उत्ति-समासानामभिधानं नियासकसिति कथनेन नतु सञ्चेव षण्। पाणिनिः ३।२।१।

[‡] इनब चरय गाय तक्तवात्। टकः कित्तवादगुणः, टिक्वादीप्, त्रकारिस्यितिः । विश्वोऽपवादीऽर्यः। पापं इन्तीति पापन्नः, टकः कित्तवात् त्रगुणले, (१६०) उङ्खीपः, (१८८) प्रस्थाने न्नः। कुद्दन् चरतीति कुद्दरः (कुद्दु चरतीति पाणिनः)। साम गायतीति सामगः, (६१०) त्राखीपः। एवं सद्द्वरः सनुचरः द्रस्यादि वक्तस्यम्। पाणिनः १।२।५,१६,५२—५४।

[§] पुरोऽयं सरतीति, टः, (५४२) ग्रयः. (२५७) टिच्वादीप् । यशः करीति, असं करीति, चपां करीति, कर्म्यं करीति, इति वाकानि । (१००७) क्रमकार इत्युदा-

१०१२ । शक्तत्स्तम्बात् दृति-नायात् फले-रजो-मलात् देववातात् क्ष-ह्न-ग्रहाप दः ।

(श्रकत् सम्बात् ५।, डितिः नाथात् ५।, फली-रजस्मलात् ५।, देव-वस्तात् ५।, क्रष्ट ग्रह भाष: ५।, इ. १।)।

एभ्यः परेभ्यः क्रमादेतेभ्य दः स्यात् घे। प्रक्वलिरि वैसः, स्तम्बक्तरि ब्रींहिः, दृतिहरिः खा, नायहरिः, पश्रः, फलेयिहिः रजीयहिः मलयहिः, देवापिः वातापिः।

१०१३। कुच्चात्मोदराद् भुः खिः।

ৃ (कुचि-चाकान् उदरात् ५।, सुः ५।, खि: १।)।

एभ्यः परात् भुजः खिः स्थात् घे । ф

१३१८ | वित्यव्याजनको मन्स्वौ दीकान्तत्वं त्वेकाजिन:।

(खिति ७।, चन्या नर्षः ६।, मन् स्त्री १॥, दोक्रान्तलं १।, तृ ।१।, एकानिचः ६।)।

इरता ग्रयकारिय भनिभानान कवित् षय्, किचन टय स्यादिति स्वितं। एवं भनिसर-इत्यादि वक्तव्यम् । पाणिनिः ३।२।१८ — २२ । '

^{*} पृथक् पदकरणं यथासक्ष्यार्थे। तेन, मक्तन्सम्बाभ्यं क्रजः, हिन्निष्यार्था इजः, फिलरजोसिक्यो यहः, देव-वाताभ्या चापः, इः स्थादिल्थः। मक्तत् चन्ययमन्दः ताल्य्याद् विष्ठावाचकः, मक्तत् करोतीति इः, गुणः। सस्यं गुच्छं करोतीति सम्बक्तिः। हितं चन्नं इरतोति, नायं प्रभुं इरति वहतीति। फले ग्रह्मातीति एका-रान्यस्थात् चिक्तर्थविवया, चनुक्च। फलयाइक इत्यथः। रजी ग्रह्मातीति रजीयिहः धूलियाइको वायुरित्थयः। मलं ग्रह्मातीति मलयिहः, इङ्डिक इत्यथः। देवं चाप्रोति देवापि देवयाजकः (देवयाजिक इति कमदीयरः)। वातमाप्रोति वात।पिरसुप्रविश्रषः। पाथिनः इ। १। १४ — २६। सर्ववन्नं समदीयरः।

⁺ कृषिय भावभा च उदस्य तत्तवात्। खिमत्ययस्य ख इत् इकारिख्तिः। पाणिनिः ३।२।२६, कालापाः भान्दायः।

व्यवर्जस्थाजन्तस्थारुषय मन् स्थात् स्वयः, एकाजिचसु दीकान्तत्वं स्रात् खिदन्ते भी परे । कुचिश्वरिः चालश्वरिः उदरश्वरिः । *

१०१५ । खग्ने: । (खग्।रा, एके: ४।)। ढात् परात् एजयतेः स्वय् स्यात् घे। जनमेजयः । १

१०१६ | मन्यात् खार्थे | (मन्यात् ४), सार्थे ७)। श्रात्मानं गां मन्यते गांमन्यः, त्रियंमन्या । 🕸

१०१७। मुञ्जकूं लास्यपुष्पात् घेटः। (मुझ कूल-भास्य-पुष्पात् ५।, घेट: ५।) ।

एभ्यः परात् घेटः खग् स्थात् वे । मुच्चन्धयः कूलन्धयः त्रास्य-म्बयः पुष्पम्बयः । मुञ्जन्वयी, घेटष्टित्वादीप् (२५७) । §

[•] नास्ति व्यं यत्र सीऽव्यः, भव्यक्षासी भव् विति अव्याव्। (अव् - अजन्तः)। ष्रवाच षद्य च तत्त्रसः। ही दिगीया, तस्याः कं (एकवचनं) हीकं, हीकं अन्तं। यस्य स दीकालः:, तस्य भाव: दीकालालं। एकाक्षासीदच्चिति एकाजिच्तस्य। द्रव् इक्ताः। सनीन इत् चर्ता, स्-स्थितिः, चकार उचारणार्थः। कुचिं विभर्त्ति, खिः, गुण:, कुविग्रब्दस्य चजलस्वात् मन्। चात्मानं विभर्त्ति, (३१८) क्रीलुंकि, (११८) विरामे परे नस्य लुपि, (१५) नजा निर्दिष्टमनित्यमिति न्यायात् तदादिविधिनिवेध-स्थानित्यत्वे मनेन मन्। एवं उदर विभक्तिं उदरम्थरि:। पाणिनि: ६।३।६६,६०,६८।

[🕆] एजेरिति एन कम्पे इत्यस्य जानस्य ग्रहणं। खगः खगानितौ प्रकारस्थितिः। जनं एजयतीति खण्, (५४१) घे मप्र इति मप्, (५४२) गुणादिः, (५४३) मकार-स्तीप:, पूर्श्वस्य सन्। पाचिनि: ३।२।२८।

[‡] ढात् परात् सन्यते: खश्स्यात् घे स्वार्थे, स्तः-निमित्तक-घालर्थे इत्यर्थ:। गांमन्य दित (৩২८) दिवादिलात् स्यन्, (५४३) चकारखोप:। गामिति एकाजिजनालात् दितीथैकावधनान्तत्वं। एथं श्रियंगन्या (भाष्यमते श्रिमन्या)। पाषिनिः ३।९।८३ ।

[§] सुद्धां (त्याविभेषं) धयतीत्यादि वाक्यं। खिदना घाती पूरे पूर्वस्थानन्।

१०१८। नाड़ी शुनी स्तन कर मुष्टि पाणि नासिकात् ध्मञ्च । (नाडी-नासिकात् ४।, घः ४।, च ११।)।

एभ्यः परात् भी घेटख खग्र्स्थात् घे। नाडिन्थमः नाडिन्थयः 🗱

१०१८। घटी-खारी-वाताट् विध्वरुस्तिला-द्मूर्योग्राञ्चलाटा-त्मित-नख-मानात् ध्मा-तुद्-दृशतप-पचः। (घटी-खागी-वातात् धा, विध-भवस्-तिलात् धा, अमूर्य-छवात् तप-पचः।

५।, जलाटात् ५।, सित-नख-मानात् ५ ५ भा-तृद-दृत्र-तप-पचः ५।) ।

एभ्यं: परेभ्यः क्रमादेतेभ्यं: खश् स्थात् घे। घटिन्धमः खारि-न्धमः वातन्धमः, विधुन्तुदः ग्रहन्तुदः तित्तन्तुदः, श्रम्र्थम्पश्यः जग्रम्यख्यः, ललाटन्तपः, मितम्पचः नखम्पचः द्रोणम्पचः ।†

१०२० | कूलादुदुजुदृहः । ' (क्र्षेवात् प्रा. वद-वन-वद-वहः प्रा)।

भेटधातीष्टिच्लात (२५७) ईप्। यत्र भेटधाती-रेकारस्थाने श्रयादेश: स्थात् त³व टिस्त्राहीप् इति वक्षयं, तेन घेट-तय्य = धातयां इत्यादी न देप्। कातस्त्रम्।

[🔋] नाडी चग्रनी चसन्य करचस्टिय पाणिय नांभिकाचेति तस्रात्। नार्जी भनतीति खण्. (५८०) धनादेणः, पूर्वपदस्य मन् इस्तयः । एवं नाङ्ग्सयः इत्यादि । पाणिनि: १।२।२६,३∙,३७, वार्त्तिकं कातन्त्रच।

[†] पृष्टक् पदकर्णं यथासङ्घार्थं, तेन, घटौ-खारौ-वातेभ्यः भ्रः, विध्वकस्तिलेभ्यः कदः, चन्यांगायां दशः ललाटात् तपः, मित-नख-मान-वाचकेसः पचः, खश्र स्वात् र्घ इत्यर्थ:। घटौं धनतीत्यादि वाकां (१०१४) घटौ-खागै-प्रबद्धी र्मन् इत्सवः। खारौ यरिमाणविर्मव:। खरौति च वार्तिके, खरी गर्गरौ (गईभीति सिद्धान्तकौसुदौ)। चरः सम्भ तृदतीति चवलुदः, चवसी मन्, (२१३) सलीपः । न सूर्यो पछातीनि चस्यांपछाः। द्रीयन्यच: इति द्रोच: परिमाचविभेष:। एवं चाटकम्पच: इत्यादि। पाचिनिः शराहर--१७, वार्तिकच ।

कूलात् घाभ्यां खग्सात् घे। कूलमुद्रजानदी, कूलमुदहः समुद्रः। क्ष

१०२१। प्रियवशाद् भयित्तमेद्वात् सर्वेकुला-भकरोषात् वद-क्त-कपः खः। (भिय-वशात् ॥, भय-क्टित-भेवात् ॥, भर्व-कृत-पम-करीवात् ॥, वद-क्त-कपः ॥, खः १।)।

एभ्यः परिभ्यः क्रमार्टतेभ्यः खः स्थात् वे। प्रियंवदः वर्षवदः, भयद्भरः ऋतिङ्करः मेघङ्करः, सर्वेङ्कषः क्रसङ्कषः अभ्रङ्कषः करी-

१०२२। चेम-प्रिय-मद्रात् क्वरी।

(चैम-शिय-मद्रात् ५।, कु: ५।, वा ।१।)।

एभ्यः क्षञः खो वास्यात् घे। चेमङ्गरः प्रियङ्गरः मद्रङ्गरः। पचेचेमकारः । ः

१०२३। भावधे त्वाधितात् भुवः। •••

(भाव-घे ७), तु ।१।, भाग्रितात् ५।, सुवः ५।) ।

प्राधितात् भुवः खः स्थात् भावे घे वा।

 ^{*} प्रभयच उदी यहणं साष्टार्थे । कूल-सुदुजिति, क्ल-सुद्द्वित इति वाकादयं ।
 ऽभयच खम्, कूलमञ्स्य मन् । पाणिनिः ३।२।११ ।

[†] प्रथक्पस्करणं वदास्थिन र्यथाभक्षार्थं, तेन प्रिय-वयाभ्यां वदः, भय-स्टितिः विभाः काजः, सर्व्वकृताभकरीयेभ्यः काषः, खः स्थात्। प्रियं वदतीत्यादि वाक्यानि। अर्वत्र पूर्व्वपदस्य मन्। स्पर्वायामिप निन्दाया-मग्रभे गमने स्वियां, कल्याण-वर्त्यनी-रंग स्टितिरिव्यभिषीयते। करीषः ग्रक्त-गोमयं। पाणिनिः शरावद्र, ४२,४३।

[🗜] चेनं करोतीत्यादि वाक्यानि । पत्ते (१.००६) ढात् वर्ष् । पार्थिनिः ३।२।४४ ।

श्राधितस्थवं वर्त्तते, श्राधितं भवत्यनेनिति श्राधितस्थव श्रीदनः।

१०२४। तृ स्ट ट दृ जि ध तप यम दम मद लिइ गम सहाजो नामि। (१-४७:४१, नामि ७)।

एभ्यः खः स्यात् संज्ञायां । रथेन तरतीति रथन्तरः, विश्वभरः, पतिंवरा, पुरन्दरः, धनस्त्रयः, वृत्तभ्यरा, यनुन्तपः परन्तपः, वाचंयमः, अरिन्दमः, दरया माद्यतीति दरम्पदो हस्ती, वहं-िलहः, भुजङ्गमः (पतङ्गमः प्रवङ्गमः), सर्वेत्तहः, वातमजः । प

१०२५ । श्रधंजहीरङ्गमीरग तुरग तुरङ्गम विह्नग विहङ्गम (भुजग)भुजङ्ग (पतग)पतङ्ग (स्रवग) स्रवङ्गाः । (श्रदंजह—स्रवङ्गाः १॥)।

धे करेगे। आश्रितंत्रिः। भाशितस्य भवनं भाशितस्य भावे खः। खः प्रत्ये परे गुणः पूर्वस्य मन्। "माशियती भवल्येनाशितस्यवः त्रोदनः। भाशितस्य भवनम् भाशितस्य नः देति तु सिद्धान्तकौ भुदी। पाणिनिः ३।२।४५।

[†] तृ तरे, स्र लि स्वित्रिक्षाः, व न ज ग वतौ, दृय गि विदारे, नि जये, स्र ज स्थां, तथौ सन्ताये, श्री यस उपरमें, दम्स दर् समें, मदी भि ये जि हथें, लिए ल स्वादे, श्री गम ल गत्थां, सह ज ङ शकौ, भज गतौ चेपणे, दित चत्र्र्शस्थी धातुम्यः नास्त्र वाच्च खः स्थान्। विश्वं विमत्तिं। पतिं वणीति या सा। पुरं दौर्यात (दारयतीति पाणिनः) पुरन्दरः, एवं भगन्दरः ("भगे च दारेः" दित काशिका)। धनं जयित धनस्यः, एवं रिपुत्तयः। वक्ति धरित (धारयतीति पाणिनः)। शत्रं तपित, परं तपित (तापयतीति पाणिनः, एवं दिवनपः)। वाचां यच्छित, भज मन् भाषी ऋस्य। श्रीरं दास्थित। दरा जलं, दरस्यद स्थव मन् इस्त्र । वहं लेदि वहं लिहः, एवं भर्मेलिहः ; यस्रकता तृभवद्विष्ट इति गुणप्राप्तियोग्यधान्नां मध्यं लिह्धातीः सम्वित्र न कला वहं लिङ् रस्थव गुणी न स्थादित स्वितं। सुजन वक्षगमनेन गच्छित सुजन कला वहं लिङ् रस्थव गुणी न स्थादित स्वितं। सुजन वक्षगमनेन गच्छित सुजन वे पतङ्गमः सवङ्गमः। इदयङ्गमः दित भर्मेश्रायामपीति वक्षव्यं। सम्बं सहते। वातमजतीति वातमजः वातस्याः, संभागरोधान् न वौ-भादेशः (५०६)। पाणिनः १।२।२१,२०,२८,४०,४१,४६,४०,६।२।६८, वार्त्रभस्य।

एते खान्ता निपात्यन्ते। यहं जहातीति यहं जही माषः, उरसा गच्छतीति उरङ्गमः, उरगः, त्वरया गच्छतीति तुरगः तुरङ्गमः, विहायसा गच्छतीति विहगः विहङ्गमः, भुजेन गच्छतीति (भुजगः) भुजङ्गः, पतेन गच्छतीति (पतगः) पतङ्गः, भ्रवेन गच्छतीति (भुवगः) भुवङ्गः। *

१०२६। नग्नपितिप्रियान्यस्यूलसुभगास्यात् कु: खनट् घे च्यु घे । (नय-भाबात् ४०, कः ४१,खनट् १११, घे ७१, चूर्ये ७१)

एभ्यः परात् क्षञः खनट् स्थात् धे चुर्थे। अनम्नो नमः क्रियते उनेनेति नमङ्करणं द्यूतं, पलितङ्करणं, प्रियङ्करणं, अन्धङ्करणः योकः, स्थूलङ्करणं दिधि, सुभगङ्करणं रूपं, आव्यङ्करणं वित्तं । 🅆

१०२७। भवा वे खिष्णु-खुकजौ।

(सुव: ५१, घे ७।, खिणाु खुकाञी १॥)।

प्रकीः सम्मन्दः पपानवायुत्यागः । पत्यतेऽनेनिति पतः पत्तः । स्रवीऽव उल्लस्पनं । वक्षवत्तर्गीदन्यैऽपि, तेन त्वर्था गत्कतोति तुरङः, विद्यायसा गत्कतोति विद्यः इत्यादि। भव सुनग-पत्ग-स्रवग पदानि उ-प्रत्यथेन साध्यान्यपि लिपिकर-प्रमादान् एतत्स्वे निविधितानि । वार्त्तिकानि ।

[†] नग्रसः पित्रस्य पियस सम्बद्धाः स्थूलसः स्थानसः साकास तत्तस्मान् । खनटः खटावितौ, स्थन-स्थितिः । चुर्यस्यायः (४८५) स्थानतद्वादः । धे करणवाद्यः । नग्रस्यपित्यादि खिल्लान् (१०१४) पूर्वपदस्य मन् । क्रधातां ग्रीणः । एवं स्थालितं पिलतं क्रियतेऽनेनिति पिलतद्वर्षां वार्जव्यं । प्रियद्वर्षां संवनं । चूरियं खनट्विधानात् चिप्रस्ये न स्थान्, तेन नग्रीकरीत्यनिन इत्या खनट् न स्थादिति पाणिनीयाः । काथिकासते सनट् स्थिन स्थान्, भाष्यमते तु स्यादेव । पाणिनौः ३१२ ५६ ।

नग्नादिभ्यः परात् भुवश्वपर्ये एती वे स्तः। नग्नश्मविष्णुः नग्नश्मावुकः। *

१०२८। ढात् भज-वह-सहो विण्।

(ढात् ५।, सज-वड-सडः ५।, विण् ।१।)।

ढात् परेभ्यः एभ्येा विण् स्यात् । सुखभाक् प्रष्ठवाट् तुराषाट्।†

१०२८। ऋनडुच्छेतवाचादिः। (१।)।

एते विणन्ता निपात्यन्ते । अनी वहतीति अनद्वान् व्रषः । खेतेरुद्धते इति खेतवाः इन्द्रः । अवयजतीति अवयाः, उक्-यानि ग्रंसतीति उक्षयाः यजमानः । पुरीडाः हविः, पुरी-डागः । ः

१०३०। क्रम गम खन सन जंनो विट्।

(जम-जन: ५१, विट् १११)।

^{*}भिक्यों. ख इत्, इणु-स्थिति:। खुक्जः खञाविती, उक्त-स्थिति:। अवाि दिप्रत्यथेन स्थात्। अन्यो भवतीित नग्रश्चित्यः, भूषाती गृंधः, खिस्तात्नग्रश्चस्य मन्। एवं नग्रश्चावुकः जिस्तात् विद्वः। एवं पित्तिश्चविद्युः पित्तिश्चावुकः इत्यादि। पाणिनः शराप्षः।

⁺ विण् इत्यस्य दकार जवारणार्थः, ण इत् (५००) वृद्धार्थः । भविष्ट-भकारस्य (४८६) त्यो वमान इति जीपः, स्तरां विणः सन्वाभावः । सुत्यं भजतीति सुखभाक्, विलासी, (२११) कुङ्। प्रष्ठं भयगं वहतीति प्रष्ठवाट् भयः, तुरां विगं सहते इति तुराषाट् इन्द्रः, जभयन (१०५) हस्य ढ, तुराषाडिति (१११) षत्वं। पाणिनिः २।२। ६२—६४।

[‡] श्वेतवाह चादि र्यस्य सः। चनड्वानिति (१८१) चान्। श्वेतवाः इति कर्तः परात् वर्षः कर्माणि वाचे विष् । पुरः चादौ दास्रते दौयते इति पुरोडाः, पतेषु (१८४) उसङ्, (१८५) दौर्यः। पुरोडाम्र इति चकारान्तोऽपि निपाल्यते। पाणिनिः ३।२।२१,०२।

एम्यो विट् स्यात् घे। *

१०३१ | विड्वनो डी | (विट्रवनी: आ, डा ।१।) । धोरन्यस्य डा स्थात् विटि विन च । उद्धिकाः, अग्रेगाः, विसखाः, गोषाः, खजाः । पं

१०३२ | नासुसिस् मन् क्वनिप् विच् किप: । ू (१॥)।

धोरते स्यु: के भावे च। नीयतेऽनेनेति नेतं दंशा नहीं योतं, उरुव्यचा: रुचचा: रज:, चचु:, सिंप:, सुष्ठु द्दातीति सुदामा गना। इ

^{*} विट: इटाविती, (४९६) वमात्रस्थापि लोपः, सुतरां विटः सर्व्वाभावः। पाणिनिः ३।२।६०।

⁺ विट्-साइचर्यात् वन् इति गुणी गाद्यः, तेन न किनिषः प्रसङ्घः। ङा इत्यस्य ङ इत् भन्यस्य स्थाने, भत भाइ धोरन्यस्यिति। उद्धिं क्रामतीति उद्धिकाः, एवं भर्य गफ्कति, विसं (स्थालं) खनित, गां सनीति (ददाति), भप्स जायते इति वाक्यानि। सर्वेत पूर्वेष विट्, भनेन ङा, भाकारान्ताः शब्दाः। गोषा इति सन धातोः सस्य (५००) क्रतत्वात् (१११) षत्वं। घदाइरखद्वापकात् अमन्तानामेव ङा, नावस्य। पाणिनिः ६।४।४१।

[्]रै तथ अस् च उस् च इस् च सन् च कानिप् च विनिप् च विच् च किप् च ते। कानिपः क इ प इतः, विनिपः इपाविती, उभयत वन् स्थितः। विच् किपोः सञ्चान्ताः। भीरिति सामायेनीकाविप प्रयोगानुसारात् अयं। दखतंऽन्येति देष्ट्रा दत्तः, (१५४) षड्। नद्यते ऽन्येति नत्नो रज्यः. (१३०) इस्य घड्, (५०५) तस्य भ, (६४) पूर्वेषस्य द। उभयत भभिषानात् स्त्रीतं, नदादिलादीप्। यूयतेऽनिनित्ति योत्रं, दा ख लूनी दात्रं, पा पाने पात्रं, सु सीत्रं, निक्क सेट्रं, पत पत्रं, अस अस्त्रं, भस अस्त्रं, भस अस्त्रा इत्यादि। उक् सहात्तं विचिति चक्च खाः, (७०६) भस्वति चक्च खाः, (७५६) भस्वति चक्च खाः, (७०६) भस्

१०३३ | हब्नते नैम् | (घन्नतः ६), न ११), घन ११)।
क्षती हबस्य नस्य तेख इम् न स्यात्। समर्माः, सपीवा प्रातरिला सला, भूरिदावा वारिजावा, सोमपाः रेट् रोट् क्रुङ,
युङ् प्रत्यङ् श्रचयूः मित्रभीः श्राभीः गीः बहुस्ट एतस्यक्
सस्यात् क्रव्यात्। अ

१०३४। छादे स्तुमन्कीस्वे खः।

(कार्द: ६।, च-मन्-िक रम् घ ०।, स्तः १। १।

क्टादयृतीः स्वः स्थात् ने मृनि क्वाविधि घे च। कसं, कद्म, तनुच्छत्, कृदिः, उरम्कदः। १

वर्जनात् न क्सा-स्थादेश: । रज्यतेऽनेनिति रजः, (६६०) न-लीप: । एवं विधतीति विधा: । सष्टे (पद्यति) सनेन सत्तुः, (७०६) उत्तवर्जनात् न क्सा-स्थादेगः । एवं धन रवे धभतीति धनुः । सपंतीति सिर्पः । एवं इयते यत्तत् इतिः । गच्छतीति नन्ता (२०२) सस्य न । पाणिनिः शराहरू, ७३—७०, ८७—८६, उत्पादिश्व ।

^{*} इब् इति वयं वकारानः प्रत्याद्वारः । सु-गू-मन्, धनेन इम्निवेधः, गुषः । सुपिवतीति सुपीवा, सुपा-किन्प् कित्त्वादगुणे, (६१२) छी । प्रातरिति प्रातित्त्वा, सुगीतीति सुला, उभयव (६८२) तन् । भूरि दहातोत्वव वनिप् (१६४,११८) भ्िदावा, वारिषि जायते वारिजावा, इत्वव वनिप्, (१०६१) छा । सीमं पिवतीति सीमपाः, विच्, विचः च इत् प्राचीनानुवादायेः न लव्ययायेः । (४८६) वमाव-लीपः । रेषति रीषिति रेट् रीट, विच्, गुणः । कुछतीति विच् कुषः । युनक्रीति युङ्, युन्ज-क्रिप्, (५६०) न-लीपः युज्, युन्ज-क्रिप्, (५१०) नुण् प्रत्यस्वतीति क्रिप् (५६८) पुजार्थस्य भन्यः न-लीपाभावे प्रत्यञ्कः, (६१, (२१०) तुण् प्रत्यस्वतीति क्रिप् (१८२) तुण् कृते प्रत्यञ् । चर्वेदीस्वित भव्यद्वः, (६१४) कट् । कित्रं श्रान्ति मित्रभीः, भाशानि भाशीः, उभयव (७०५) छङः स्थाने इत्, (२२०,२२८) रङ्, दीर्घः । (००५) क्रौ लागासर्थति कथनात्, भत्यत्र प्रश्चानीति प्रश्चाः । ग्र्यातीति श्वाः, (६२८) इर् । वषु सज्वतीति वहस्यत्, (६६१) जिः । छतं स्थ्रतीति छतस्युक् । ससं भित्त, क्रव्यं (मांसं) भित्त, प्रस्थात् कव्यात् । पाणिनः ७।र।८.८।

[†] कद कि संबंधी । कायतेऽनेनिति कसं, (१०११) प्रमृनिषेधे, (६४१) जे-

१०३५। दहज्जुह्न वाक् प्राट् स्त्री स्तू द्रू ज्वायतस्त्र कटप्रू परिवाट दिद्युज्जगत् दधक् सगु-ज्याहः। (वहत - विश्व हाँ १॥)।

पते क्षिवन्ता निपालन्ते । दीर्थ्यतीति दहत्, जुहोत्यनयेति जुहः, वन्त्यनयेति वाक्, पृच्छतीति प्राट्, श्रयत्वेनां श्रीः, स्रव-तीति स्तूः, द्रवतीति दूः, जवतीति जूः, श्रायतं स्तौतीति श्रायतस्तूः, कटं प्रवते कटपूः, परिव्रजतीति परिव्राट्, द्योतते द्रित दिद्युत्, गच्छतीति जगत्, धृष्णोतीति दृष्टक्, सैज्यते द्रित स्वक्, जर्षं सिद्यतीति उष्णिक्। *

१०३६ । जि द्वाँऽन्त्यः। (जि: ११, र्घः ११, अन्यः १।)। अन्त्ये जिर्घः स्थात्। मित्रं ह्वयतीति मित्रहः। पै

१०३७। वेध्याप्यां को । (वे-ध्या-श्राप्यां ६॥, को ०।)।

कः धीः ग्रापीः । ध्यायोरतएव जिः । 🕫 🕒 🗣

लोंप:, भनेन इस्तः, (६४) दस्त तं क्दा रित मन्, 'क्रख्य । तनुं क्राद्यतीति, तनुक्तत् किपि क्रस्तः । क्रायते परं क्रस्तः । क्रम्यये परं क्रस्तः । क्रम्यये परं क्रस्तः । विभागत् क्राद्यतेः कर्तरि नामि च-प्रत्यो वक्तव्यः (१०००), घ द्रत् भकारिस्थितः । तेन उरम्काद्यतौति उरम्कदः । एवं प्रश्वदः परिकादः दनक्तदः इत्यादि । पाणिनः ६।४।८६,८०। एतमाते "भद्यापर्यास्थ" । यथा समुपक्कादः ।

 [&]quot;जुईतिक्रंयतेर्वा जुहः। द्वणातदींर्य्यतेर्वा दहत्" इति भाष्यम्। पाणिनिः
 शराप्र,१७०,१७८, वार्त्तिकपञ्चकम्, ज्यादिषः।

[†] भान्य देति अत्प्रत्याय्यवितपूर्ववत्तीं । सिनक्ररिति किप्, (६६१) जिः, दीर्षः । एवं इतः इतवान्, क्रतिः, इत्या । ज्या—जीनः, श्वि—ग्रनः । भन्यः किं, इषः उष्टः पृष्टः । वार्तिकं, भाष्यभ्यः ।

[‡] एषां जेर्घः स्थात् कौ। वे अं स्थूतो, वयतीति कः, निकापि (६६१) जिः,

१०३८। जमुङो अस्यणौ चातिकि।

(जमुक्ट: ६।, भसि ७।, प्रयो ७।, च।१।, प्रतिकि ৩।) ।

जमन्तस्य उङोर्घः स्थात् अणी भासे की च, न तुर्तिका। प्रयान्। *

१०३८ | स्तिवाव सव ज्वर त्वरी वड्डा जमेच। (स्व अव सव ज्वर स्वरी ह अमे थ, च ११)।

एषांव उड़ा सह जट्स्यात् की भन्नि ग्रणी जमेच। स्तूः ज:सू:जःतूः। पे

१०८० | राच्छ्रो लाप: । (रात् ४।, क्वीः ६॥, कोपःश)
रात् परयो-श्कतार-वकारयो लीपः स्थात् की भस्यसी अमे
च । मुर्च्छा मूः, धुर्वी धूः । ईः

दीर्घ.। पूर्वत्वेष मिद्देशप जियमीऽयं, सम्स जीः कार्वेव दीर्घः, नान्यव, तेन स्तरः स्ता इत्यादि। ध्याययनया घीः, ("ध्यायतेर्द्धातेर्वा घीः" इति भाष्यम्), त्राष्यायते इति भाषीः, कर्षे यो एतयो जंरसमावेऽपि, जे दीर्विविधानादेव को नि वंकत्यः। वार्तिकं भाष्यस्त ।

अस् अस् असनी धातः, तस्य उङ्तस्य । प्रमास्यतीति प्रधान्, प्रमम-िक्षप्, भनेन छडी दीर्घः, (२०२। सस्य न । अर्थी भन्ने यया, भान्तः शान्तः भाग्वा इत्यादि! इतः इतिः इता इत्यादौतु (६०६) अस् लीथे अमन्तवाभावात् न दीर्घः। भतिकौति किं, रिनः तनिः। पाणिनः ६।४।१५ ।

⁺ सिब्यु शोवे गतौ, सीव्यतीति सः । भव रचादौ, भवतीति कः । मव वस्ते, मवतीति मृ. । प्रथमादिवधनादौ, (१३५) छव, सुतौ. छवी, सुतौ द्रव्यादि । ज्वर संगी, ज्वरतीति जूः, ("ज्वरते जीं थेते वं ज्ः" इति भाष्यम्), जिलारा भाष्ठम् स्वदे, लरते इति तृः । भाषौ भने — स्वृतिः कतिः सृतिः ज्तिः तृतिः । जिने च, सिव-मन् सोमा, भव-मन् श्रीम् इत्यादि । पाणि निः ६।४।२०।

[‡] सुर्का भोड उक्कये, धर्वी डिंसे, उभी क्रस्तवनी। किपि प्रमेन कःव-लोपे, सुर्, धर् प्रदो, ततः प्रयमेकवचने, (२२८) दीर्घः । प्रयो अस्ते च सूर्त्तः पूर्णः इत्यादि ।

१०८१ । आदृटो ब्रि: । (शत् ४।, कटः ६।, वि: १।)।

श्रवर्णात् परस्य जटो विः स्थात्। जनान् अवतीति जनीः।

१०४२। यम मन तन गमाऽन्तलाप: कौ।

(यस-मन-तन-गम: ६।, भन्तर्लाप: १।, की ७।)।

एषामन्तस्य लोपः स्थात् क्षे । संयत् परिमत् परीतत् संगत्। १

१०४३। सि-विष्वग्-देवस्य टेरद्यञ्ज्ञौ को । (सि-विष्यग्-देवस्य ६।, टे: ६।, पद्रि।१।, पश्ची ७।, को ७।)।

स्ने विषयो देवस्य च टेरद्रिः स्थात् तिबन्ते अञ्चती। सर्वा-नचतीति सर्वेयुङ, विषयुङ्, देवयुङ्। 🕸

भाव रेफ गाइचर्यात् बकारी दन्यएव, तेन घर्वगती इत्यादी वर्ग्यवकारे न प्रसङ्घः । पाणिनि: ६।४।२१ ।

जनौरिति, जनान इति उपपदेन अव-धाती: समासे, ततः क्रिप, (१०३८) कट, जन-क, भनेन क इत्यस हिंद्द: भी, तत: सिन्ध:। यवादी किंप् वेती: समास-स्तव, व्यवस्थाकः जनोरिति, एवं तव कः तवोदिलादि। एकपदेतु अपव-धासीः किए, (६१४)वस्य कट्, भनेन विद्धः, भौरित्यादि । पाणिनिः ६।१।८८ ।

⁺ संबच्छति, परिमन्दर्ते, परितनीति, सङ्च्छते — इति वाक्यानि । सर्व्वत किपि, पत्याचरलोपे, (८८२) खस्य तन्। परीतदिति दीर्घनिर्देशात् किंवने धातौ परे कविदुपसर्गस दीघी भवतीति स्चितं, "उपसर्गस दीघंलं किपघजादी कविक्षवित्" तेन, विरोहति वीदन्, उपनद्यति उपानन्, उपवर्तते उपावन्, प्रवर्षति प्रावट् (मतान्तरें) इत्यादि । पाणिनि: ६।४।४०, वार्त्तिका । परिमत्स्याने "सुनत्" द्रति विद्वासकी मदी।

[‡] सिस विष्यक् च देवसेति तस्य । विष्यगिति मुईन्यमध्यं चान्तमव्यर्थ। विष्यक् समलात् अञ्चित विध्ययुङ, देवानञ्चति देवयुङ्। सर्वत्र टेः स्थाने अद्गि भादेशः। पतेषु पूनार्थस्य (५६८) नलीपनिविधे सम्बंध्य देवगृष् अस्दी, गतार्थस्य तु (५६०) ने लीपे विष्ययुच् अस्टः, ततः सिः, (१८२) तुच्। पाणिनिः ६।३।८२,।

१०४४ । त्रम् द्युङ्त् त्रम् म्यङ् त्रद्युङ् त्रद्र-म्यङ् । (१॥) ।

त्रमुमञ्चती खर्चे एते निपालन्ते। #

१०८५। सह-सन्तिरः सिघु-सिम-तिरि।

(सक-सम्-तिर: ।६।, सिध-साम-तिरि ।१।) ।

एषां क्रमादेते खु: किबन्तेऽश्वतौ । सध्युङ् सम्यङ् तिर्थेङ् । १

ृ १०४६। बीक्हो धङ्कौ।

" (वीकहः ६।, धङ् १।, क्षी अ)।

वीरत्। #

१,89। त्यदादि-भवत्-समानान्योपमानात् दश्यक्त-सन्-िकपो ढे।

(त्यदाधि—जधमानात् ५।, दृष्टः ५।, टक्-सक् किपः १॥, दे ०।)।

त्यदादेर्भवतः समानादन्यसाच उपमानात् दृश एते स्युः है। §

१०८८ | खेडी । (बें: ६), डा ।१।)।

^{*} पाणिनिः पाराप्त ।

[†] सङ्घाषाति, सम् चाषाति, तिरः चाषाति, इति वाक्यानि । पाणिनिः ६।३।८३-८४।

[‡] विपूर्वस्य कहो थव्ह् स्थान् की। उट्टरत् भन्यस्य स्थाने। विरोह्नतीति वीकत्। वेदीर्घस्य वीजं (२०४२) स्वस्य टीकायांद्रष्टर्थं। पाणिनिमते विपूर्वकात् कथथाती: क्रिपि वीकष् इति सिक्तम्।

[§] त्यद् भादि र्यस्य स त्यदादिः, त्यदादिष भवांष समानश्च भवाव तत्, तम तत् उपमानश्चिति तसात्। भवा इत्येव श्रन्थः। उपमानभूतेभ्य एथाः परात् हशः टक् सक् किपः स्युः कक्षीण वाच्ये इत्यथः। टकः ट-कावितौ भकारस्थितिः, सकः क इत् सिस्तिः, किपः सर्व्योधावः। पाकितिः १।१।६०, वार्तिकदयसः।

स्रे की स्थात् टगायन्ते हिथि। स इव हस्यते ताहमः ताहनः ताहन्। भवाहमः। अ

१०४८। समानेदंकिमदः सेकाम्।

(समान-इदम्-किम्-भदः ।६॥, स-ई-की-भम् ।१॥) ।

एषां स्थाने स ई की श्रमू एते क्रामात् स्युः टगादान्ते दृशि । सदयः ईदृशः कीदृशः श्रमुदृशः । श्रन्थादृशः । पः

द्रति हमादि-पाद: ।

३य पादः—क्तादिः।

१०५०। ता-तावत् भूते ढभावे घे।

(त्त-प्तवत् १॥, भूते ७।, टभाने ७।, चे ७।)।

^{*} से: सर्व्यादिगणस्य स्थाने इत्यर्थः। जा इत्यस्य छ इत् घन्यस्य स्थाने। ताष्ट्रगः इति तद-हम-टक्, किस्तात् गुणाभानः, तदः स्थाने जा। टिस्तात् (२५०) देपि ताह्यो इति च। ताहच इति सक्, (१५४) षष्ट्, (६०२) षस्य क, (१११) कवर्गात् षत्तं। स्त्रियान्तु ताहचा। किपि ताह्य् मन्दः, (२११) कुङ्। भवानिव ह्य्यतेऽसी, टक् भवाह्यः, स्त्रियां भवाह्यो। एवं भवाह्यः, भवाहकः इति। पाणिनिः ६।३।८१।

[†] समान इव ट्रस्यते, भयमिव ट्रस्यते, का इव ट्रस्यते. भसाविव ट्रस्यते, भन्यहव ट्रस्यते — इति क्रमेण वाल्यानि । सर्व्यंत्र टक्। एवं सट्यः सटक् इत्यादि । भन्याटश-इति पूर्वेण खा । पाणिनिः ६।३।८८,८० । ८।२।८० ।

^{*} सुत इति ष्टुष्ण स सुतौ, कर्माण कः (६०६) विमलेऽपि, (१०५३) इमो

१०५१। चे वी ऽढे भावदैन्याक्रीये तुवा।

(चे: ६।, र्घ: १।, भटे ७।, भावदैन्याकीमे ७।, तु ।१।, वा ।१।)।

चे र्घः स्थात् न तु ढे, भाव-दैन्याक्रीये तुवा, तयोः परयोः।

१०५२। सूत्वाद्योदिह्-ची-यत्त्यातो न तो ऽप-मुक्क-स्था-ध्या-मदो दश्च १ के (स-ल्.पादि-पोत्-इत-द-र-ची-यत्-स-पातः ४१, न १११, तः ६१, षप्—मरः ४१, दः ६१, प ११।)।

स्वादे र्लांदे रोकारेतो दान्तात् रेफात् चीयव्दात् यसस्ययुकाः कारान्तात् परयोस्तयोस्तस्य नः स्थात्, पूर्वस्य च दस्य नः,न तु प्रादिभ्यः । चीणः चीणवान् । अटे किं, चितः कामो मया । \$

१०५३। वृदुश्विजूणाः कितो नेम्।

(ह-महत् छ-श्विज - कर्णाः प्रा, कितः ६।, न ।१।, इन् ।१।)।

निष्येभे, कित्तात् गुणाभावः। 'णा ख ग्रोधने, भावे कः, स्नातं। डुत अ द करणे क्षवतुः, कित्तात् गुणाभावे त्रतवत्गब्दः, प्रथमेकवचने, (१८२) चदिस्नात् तुण्, (१८५) देविः, (१८३) स्नान्तलोपः। पाणिनिः १।१।२६, १।१।९०२।

[#] भावस दैन्यस पात्रोशस तत्तिकान्। भावी धालयं, दैनं दौनता, पात्रोशः क्रीधीति:। चेरिति पविश्रेशात् सर्व्यंगवपठित विधाती सहस्यं। पास्पिनि: ६।४।६०,६१।

[†] स्थ लूथ स्लो, तौ भादी ययोशी स्लादी। भीत् इत् यस स भीदित्। यलः यलानः, स चासी स्थिति यलसः, तेन युक्त भात् यलस्यात्। ततः स्लादी प भीदिस दच रय चीय यलस्यातित तसात्। पृथ सुच्छंय व्याय ध्याय मद चेति, न पृमुच्छंव्याध्यामद तसात्। चौ इति कतदीर्घस यहणं। स्वादयः—स्ट्री डी धी सी रो लो ती। लादयः प्रादाः पृद्धः पृद्धः, ४१० पृष्ठे द्रष्टयाः। पाणिनः पाराधः १८०-४६, ५०। एतनाते स्वादयः श्रोदितः।

चीण इति चलक्यंकात् वच्यमाचेन (१०८१) कर्त्तरि तो, (१०५१) पूर्वेण दीचें,
चनंत्र तस्य न, (१००) णार्वं। एवं तावतः, चीणवान्। नया कानः चितः हिंसितइत्ययः। चत्र कर्म्यभच्चात् (१०५१) चेर्च इति न दीर्घः, दीर्घामावाद्य न क्रस्य न।
भाष वार्च्य तुचीणं चित्रमिति विकल्पन दीर्घः।

हजी हर्ड ऋट्न्सा-दुवर्णान्सात् त्रिज जर्णीय कित इम्न स्थात्। *

स्तः स्नवान् दीनः, 'लूनः जीनः, रुग्णः भुग्नः प्रहीणः, मित्रः निर्विषः, प्यानः खानः त्राणः । प्रादेसु — पूर्त्तः मूर्त्तः

ख्यात: ध्यात: मत्त: । 🌵

वतः यीर्षः भूतः ज्ञितः जर्णुतः । 🕸

१०५४। दिव्यञ्चय्योऽजिगीषाजासर्भे न त-स्तयोः । (दिवि पष-म्यः प्रा, पितगीषा-पज-पद्मग्रेण, नारा, त हा, तयाः है॥)।

^{*} तथ सहय छथ यिज्ञच कर्ण्य तत्तसात्। क इत्यस्य स कित्तसा । ह-स्तीः (७४०) स्वायृहदुरिति वेसत्वेन, यिधातीः (८१०) अम् जयीति वेसत्वेन च, (१००१) नेम् डीयोत्यादिना क-कावलोरिम्निषंभे, कि भादीनाय (१०३३) इव्वतंरित्यनेन इस्निषंधे पिद्वेऽपि इद्दोपादानं काच इम् निषेधायं। उपर्णानत्वेन धौषाविष कर्णेः पुनग्रंह्षं, सस्ज्यीत्यनेन विकासितिमः कर्णेधातीः नैम् डीयोत्यन भनेकावयर्जनात् इम्प्रसक्तौ, पुनन्धिधायं। भत्रद्वान उपर्णान एकाच एव बीख्यः। पाणिनिः ०।२।११, वार्त्तिक्यः।

[†] खादिमाइ स्न इत्यादि—स् यो ङ स्ती कसंिय तः, भनेन इम्-निषेधे, पूर्वेष तस्त्र न। एवं तत्रतः सृनवान् । भी दो ङ य चये, दौनः खादिलान् तस्त्राके न। लादिमाइ—क् जानि हिदि लून, ज्या नि जरायां भीनः, (६६१) तिः, (१०६६) दौर्यः । भीदितमाइ—दभी शौ भक्तं क्रयः (१००) यत्नं । भी भो वक्षये भुगः, भक्तरज्ञतादादौ (२११) चुिङ्ति कुङ्, प्रथात् तस्त्राने न । भो इन कि लागे प्रशियः, (६१२) छी, (८६०) यत्नं दानमाइ—इर् मिद्या केहे नितः, (१००२) इम्-निषेधः । विद्यौ ङ भावे निर्ल्लेखः, भध्यमे जङ स्त्रायः, भव यत्नं वत्त्रव्यं । रातस्य खदाइर्षं न दत्तं, नुर—गुर्णः, चर—चूणः इत्यादि कक्तं । यत्त्रप्रतादनमाइ—प्रे —प्यानः (६०८) ऐ खाने भा, की—स्तानः, ग्रा—ग्राणः । पृ—पूर्भः, (६२८) चर्, (१२८) दोर्षः । सर्वः -मूर्तः, (१००२) इम् निष्धः, (१०४०) क्व-जीपः, (२२८) दोर्षः । स्था—ख्यातः, ध्यै—ध्यातः । मद—मतः ।

[‡] त का इत:, (५५४) इ.स्पाधी चलेन निषिद्धः । मू---भीर्यः, इत्यादि ।

दिवरिजगीषायां अञ्चतेरजे खायतेरस्पर्धे तयोस्तस्य नः स्यात्। श्रायुनः समकः। *

१०५५। घनसमें म्यो जि:।

(घन-स्प्रमें ७।, म्यः ६।, जि: १।) ।

घने स्पर्भे चार्ये क्यो जिः स्थात् तयोः । ग्रीनं घतं । जिगी-षादौ तु. द्यूतं, उदत्तमुदकं कूपात्, भीतं जलं । घनस्पर्भे किं, संक्षानो दृष्टिकः भीतात् सङ्गुचित इत्यर्थः । पं

ं १०५६ । प्रते:। (पतेः प्रा)।

प्रतिपूर्वस्य भ्या जिः स्यात्तयीः। प्रतिशीमः। क

१०५७। ऋथवाद्या। (भिम-भवात् ४।, वा ११।)।

भ्रम्यवात् परस्य श्री जिः स्थादा तयोः । श्रीमयीनः श्रीम-श्यानः, श्रवशीनः श्रवश्यानः । §

क दिविय प्रस्य स्थाय तत्तस्थात्। न निगीवा प्रतिगीवा। जंपपादानं, न जंपनं । ने स्पर्धाः स्थानि । प्रतिगीवा प प्रत्य प्रस्थां तत्तस्थिन्। पा-दिवक्त, (८१४) वस्थाने कट, प्रनेन तस्थाने न। पाद्यूनः स्था-दीदिन्क द्रत्यम्गः। सम्पन्ष-क्त, (४६०) नशीपः, (२११) कुङ्, तस्थाने न, समक्रः सङ्गत द्रत्यवः। "समक्री
प्रकृतेः पादी" द्रति पाणिनिटीका। उभयन (१००१) द्रम्-निषेधः। पाणिनिः
प्रशिष्ठ—४६।

[†] घने द्रबद्रव्यस्य घनीभावे इत्यर्थः । शीनमिति श्री ङगती, कः, घनेऽघें घनेन निः, (१०३६) दीर्वः, पूर्वेष तस्थाने न । पूर्वस्य प्रत्युटाइरणमाइ — दृतं, दिव-भावे कः, निगोषार्थे न तस्थाने न । उदक्तं उद्गतमित्यर्थः, कूपादिति घपादानप्रयो-गात् न तस्थाने न । शीतमिति श्री-कः, स्थर्शोर्थे घनेन जिः, पूर्वेष न तस्थाने न । संश्यान इति घनस्यश्रभावे न जिः, पूर्वेष घस्प्रशंधे तस्थाने न । पाणिनिः ६।१।२४।

[‡] पृथक्थीगात् धनस्पर्भथीनांतुहत्तिः। पाणिनिः ६।१।२५ ।

^{§ &}quot;व्यवस्थितविभाषेयं, तेनेइ न समबद्धातः" इति सिखानकौ सुरी । पाणिनिः ६।१।२६।

१०५८। षिञो ढघेन तो ग्रासे।

(विञ: ५।, ढचे ७।, न।१।, त: ६।, यासे ७।)।

षिजः परस्य तयोस्तस्य नः स्थात् ढघे, यामे वाच्ये। सिनो यासः स्वयमेव । *

१०५१ पूजी नाम् । (पूजः ४।, नामे ०।)। पूनी नष्टः, अन्यचं पूतः । गं

१०६० | दुग्वो वश्व । (इ.म्बी: ६॥ र्घ: ११, घ ।११), । आभ्यां तयोस्तस्य नः स्थात् तयो र्घव । दूनः गूनः । क्षः

१०६१ | त्रञ्चो: कंडः च | $(^{(\mathfrak{a}^{\hat{\mathbf{a}}: \, \boldsymbol{\epsilon}|, \, \, \boldsymbol{n} \, \boldsymbol{s}^{-} \, |\, \boldsymbol{\epsilon}|, \, \boldsymbol{\eta} \, \boldsymbol{\epsilon}|\, \boldsymbol{\epsilon}|)}$ प्रश्चेक्तयो स्तस्य नः स्थात्, कङ् च । हक् $(\boldsymbol{w}: \, \boldsymbol{\epsilon})$

मिश्र इति घोषदेश-निर्देश:। (५६८) षस्य सां विश्व न वसे. कम्मकर्ति क्रः, टेवदनेन सौयमानी यास: स्वयंभेव सिनः वह इत्यर्थः, ग्रासः कृत्वलः। द्वे किं. सितो ग्रामी टेव्टनेन। ग्रामे .किं सित्यौरः स्वयंभेव। वा-इयमध्यवित्तं त्वा-देतदादीनां चत्र्यां नित्यता। "सिनोतेग्रोमकर्मकर्मक्त्रस" इति वार्तिकम्।

[†] धातनासनेकार्थतात, नाजार्थ-पूज-धाती-सयीकस्य नः स्थात्। ''पूर्जा विनाग्ने'' इति वार्त्तिकस्।

[‡] दुगरी (दुद्वीतिनतापे इत्यस्य तुन, तब दुत इति परं), गुङ प्यनी, गुणि तृ विट्सृजी, इत्यतिषां यदणं। टूगू इति दीर्घालाम्यां क्रप्रययेन पदनिज्ञाविप एतत्-स्वकरणं इत्यालयीर्दम्वी: प्रयोगनिषेषाणे। "दुम्बीरीर्घय" इति वार्तिकम्।

^{\$ (}१५४) मक्नित षङ्प्राप्तिवारणार्थनिष्ठ कङ्विधानं। ङ इत् भन्यस्य स्थाने। वक्ष इति, वसूत्र केंद्रे, जा, (१०७१) नेम् डीस्वीति इमी निवेवे. (६६१) जि:, भनेन क्रस्थाने न, पस्य क, निर्मत्तस्थापार्थ नैमित्तिकस्थाप्यपाय इति न्यायेन तालव्यवस्य दन्यत्वे, (२१३) स्थादि: सी खीप:, (१००) णत्वं। पाणिनि. ८।२।३६, वार्त्तिकस्था।

१०६२। स्तीघाचोन्दनुदविन्दो वा।

(इही - विन्द: ५) वा ।१।)।

एभ्यस्तयो स्तस्य नः स्यादा । ज्ञीणः ज्ञीतः, घाणः घातः, वाणः

त्रातः, उदः उत्तः, नुदः नुत्तः, विदः वित्तः । अ

१०६३। चैशुष्पचीमकव:।

(चै प्रय-पच पू।, स-का-व: १।)।

एभ्यम्तयो स्तस्य म क व एते क्रमात् स्युः। चामः ग्रुष्कः पकाः। 🕆

् १०६४। प्रस्यो स वा, जिञ्च। (प्र-च्या प्रा. म ११) वा ११। जि. १। च ११) ।

प्रस्त्यस्तयो स्तस्य मः स्थादा, जिय। प्रस्तीमः प्रस्तीतः। प्रात् जिं, संस्थानः । क्ष

क्षीय ब्राय बाख उन्दय नृदय निन्द च तकात । क्षी लि लिक्की क्ष:, वा तस्यानेनः । णव घागन्धग्रहणे चै उहुपालने, क्तः । उन्दर्धी लेटे काः. (१००१) नेस डीम्बीति ईदिस्थान 'दम निर्मेधे, 'प्रह्') नलीप'। नदी अर्थ प्रेरणे। धी विद इस्मीमार्स । अत्र सूर्वे विन्द इस्पनेन शैधादिकी विद्धातवीं ध्यते,—प्रमाणानि यथा -(१) पार्गिनि: (८।२।५६) ''न्दि दीन्दवाघाक्रीस्य'ऽन्यतरस्याम्''-विद विचारणे बौधादिक एव ग्रह्मते, द्रति भट्टीजिदीचित:। (२) भाष्य 'वेत्तेलु विदिती निष्ठा विद्यतिर्वित्र दृष्यते । विलेवित्रय वित्तय भीगै वित्तय विन्टते: ॥'' (३) कातलम् ''क्षीग्राबोन्सन्दर्शवन्दां वा।" कात्सु ५३८ सबस्। (४) संपन्नम् ''न्टोन्टविन्दिवान्नाः क्रीश्यां वा।" 'विद विचारणे'। पू) संचित्रसार: "छन्दीक्रीघावाविनतिन्दा था।'' क्रदनपादे ५०० सूर्वम्। 'विनन्ति निर्देशात् विद सत्तायामित्यस निर्य विव्रमिति' गांधी वन्द्रः।

⁺ चैचिं चाम:, ग्रथौ लागोये शक, उभयव अवर्मकलात (१∙८३) कर्त्तर क्षा । ड औष पथ पाके भन्तरङ्गताटाडी २११) कुङ्, ततः क्षस्य वः । पाणिनिः व्यारः प्रर — प्र ।

[🛨] अपत्र वा-प्रकट्स्य सकारंगैय सम्बन्धात जिलित्यः । स्ये संइती ध्वनी, श्रक्तीसः प्रस्तीतः, (१०३६) चल्य-जेर्दीर्घः। सस्यान इति (१०५२) ज्ञास्य नः। एवं स्थानः। पाणि नि: नारा प्रस्, दाश रहा।

१०६५ । निर्वाण भित्तण वित्त पुत्नीत्पुत्न संपुत्न प्रमुत्न प्रीव कार्य परिक्रयोक्षाद्याः । (१॥)। एते क्रान्ता निपायन्ते । निर्वाणः यानाः निर्वाणं मुक्तिः, भित्तं खण्डं, ऋणं वियोध्यं, वित्तं धनं वित्तः प्रतीतः, पुत्नी विकसितः उत्पुत्तः संपुत्नः प्रपुत्नयः, चीवो मत्तः, क्रयस्तनः परिक्रयथ, उन्नाघो नीक्जः । ॥

१०६६। जुध वस पूजार्थाञ्चागार्ध्याय-लुभ: क्वस्रम्। (नुध-नुमः धा, कः बा, चारा, इमारा)।

एभ्यः परयो स्तयोः क्वय द्रम् स्थात् । चुधितः उपितः अश्वितः लुभितः । गतौतु अक्तः । गार्ध्याये तुल्यः । 🕆

^{*} निपाती स्तर्थविषेषे दलाइ निर्व्वाण: प्रान्त दलादि। वा ल ग्मनहिंसयी: निर्व्वाण: प्रन्यव निर्व्वात:। भिदिर् घी ज भिदि भित्तं, प्रन्यव भिन्नं। स्त गती स्रयं, प्रन्यव निर्व्वात:। भिदिर् घी ज भिदि भित्तं, प्रन्यव भिन्नं। स्त गती स्रयं, प्रन्यव स्वतं सत्यं। विद लृ य प जी लाभे विनं, प्रन्यव विन्नं, विद ल मती वित्तः, प्रन्यव सिद्दतः। फृद्ध विकसने फृद्धादि चतुष्ट्यं, क्षेवलस्य छत्संप्रपृष्टंस्य च निपात-गत् प्रन्यव स्पुद्धित द्यादि। पाणिनी प्रनुपसर्गत् जि फ्ला विसर्णे दित फल्लातीः काली निपातः, प्रमुद्ध दित द्यां तु पृत्व विकसने दत्यस्य प्रचायि बोध्यम्। चीव इत्ये चीवः, सीपसर्गत्तु प्रवीवितः। क्षियं कार्यं कार्यः, एवं परिक्रायः, प्रन्यव गतिकार्यः। सामृ उत्यावादितः। पाणिनिः प्राराधः, प्रमुद्धः निर्मासः स्वतं कार्यः। पाणिनिः प्राराधः, प्रमुद्धः निर्मासः प्रवावितः। पाणिनिः प्राराधः ।

[†] पूजाधेशसी षख चिति पूजाधीख। गाध्यें (लिफा) षधीं यस स गाध्योंथे:
न गाध्योंथे: भगाध्योंथे:, स चासी लुभ चिति भगाध्योंथे-लुभ। ततः चुपथेलादि दन्दें
न सात्। क्वाः क्वाच् इत्ययं:। चुध-वसी-रौदित्वात, भद्यः उदित्वंन (११०२) क्वाची
वेसत्वे लुभख (६०६) वेसत्वे (१००१) नेम् डोशीति निवेधात, इसीऽप्राप्ती विधिरयं।
उदित इति (६६१) जि:। पश्चित इति पूजायंतात् (५६८) न नलीपः। लुभितइति लुभ विसोइने। भक्त इति (५६०) न-लीपः, (२११) कुङ्। लुम्च इति लुभ्य
इगोध्यें, (५०५) त-स्थाने ध, (६४) भ-स्थाने व। क्वाचलु चुधिता उदिता प्रस्तिता,
नुभिता लीभिता (८१८) वा किल्लं। पाणिनिः शराप्र-५४। "

१०६७ । प्रक्षिश वस जप व्याख्नस स्तयो-व्या । (प्र-वाषतः ४), वर्षाः ६॥, वा ।१।)। एभ्यसायोरिम् स्थादा । *

१०६८ । पूर्यो ध्रष्ठ मिद स्तिद खिद स्तिमा श्री । (प्-चवा ६००, वेमी: ०००, वः ११)। एवा ए: स्थात् तयी: बेमी: । पवितः पूर्तः, क्रियितः क्रिष्टः, विम्तिः वान्तः, जिपतः जप्तः, विश्वसितः विश्वस्तः, श्राश्वसितः श्राश्वसितः श्राश्वसितः श्राश्वसितः। श्राश्वसितः । श्रीयतं धिर्वतं मेदितं स्त्रेदितं स्त्रेदितं मिर्वतं । स्मार्थः किं, श्रपद्यवितं वाक्यं। पै

१०६२। भावादिहे वादुङी अव्वतः।

(भाव-चादिढे था, वा ।१।, छत्-छङ: ६।, चप्-वत: ६।) ।

विहिताप उदुको भावादिटयो र्यु व्वा स्थात् तयोः चेमोः। द्योतितं द्युतितं तैन र्वे चनपसु च्वितं । क्ष

क विश्व पाय ताथा वस व्यावस्त पृथ क्रिवय वसय जपय व्यावस्य च तसात्। पृ. चाती-दवर्षान्तसात् (१०५१) निषेत्रे, क्रिव्यातीदित्वादंसलेन (१००१) नेम्डी-वीति निषेत्रे, वसादीनां (५५४) निल्पाती विभाषेयं। पाणिनिः अश्यः ०,४१। वसजपन्यावसानिम्विकन्यः चन्द्रवर्षमानसतानुसारेषः; "पाणिनीयासु 'पूज्य' इति स्वे चकारस्थानुक्रससुव्यार्थलेन साध्यन्ति" इति गीथीचन्द्रः।

⁺ चनार्थयासी सव चेति चनार्थ-सव, ततः पूत्र श्रीय प्रवय निद्य स्विदय सिदय स्वत्र स्वार्थ-सव च तेषां। इसा सच वर्षेते यो तौ सेनी तयो:। पवित इत्यादि, पूर्वेष इस्, भनेन सुष:। क्रिष्ट इति (१५४) वर्ष्ट् । वाल इति (१०३८) दीर्घं:। शिवत- नित्यादीन श्रस्तांदा इरणानि। धव जि प्रधानश्री, जी-िर्मेद्या खेडे, स्विद जि भीवे, स्विदा जि सेदेने, एवां चतुर्षां (१०७३) इस्पचे, गुष:। मित्रं (५५४) इस्। स्वस्वितं नित्दित्त सित्यर्थः। पाषिनिः १।२।१८,१०,१२।

[‡] भादिउ नियारमा:। भावस भादिउच तथिन्। उन् उक्यस स तस। भप् विद्यतेऽस्य मक्वान् तस्य प्रति उद्गुकी विशेषणं। इतौ विक्रिताप प्रति, विक्रितः

१०७० | लीपो जी: | (क्षीपः रा, जी: दा) । जी लीपः स्थात् तयोः सेमोः । भावितः भावितवान् । *

१००१ | नेम् डीख्वीदिद्देमा ऽपत्यनेकान्-निष्कुष: | (नारा, रमारा, डी-चि-र्देदित्-वेन: प्रा, प-पति-पनेकान् निष्कुप: प्रा)। डीन: शून: दीप्त: गूढ़: कृत: तत: | पत्यादेसु पतित: दिर-द्वित: निष्कुषित: । ने

१०७२ । आदितः । (पारितः पा)।

कृतः अप् यसात् स तस्य, भादिरदादेशे व्यर्थः । भदादेः भपीऽस्थाधिविऽपि (६७०) तिष्ठिधानमेतदर्थे । द्युत क वृत्त दीपी भावे काः, (५५४) इम्. भवेन या गुणः । भदादे भृ रोदितं कितिमिति । भादिदे तु, (१०१२) घेचादिदे क्त इति कर्भि की, योतितः युतित इत्यादि । भायदादिन्या-मन्यस्य तु चुध यौ चुध चुधितमित्यादि । सेमीः किं, दुग्धं गुप्तं । पाणिनिः १।२।२१, भाष्यभ ।

 ⁽६४१) इसि जिलीपनिषेधादिष्ठ विधानं। भौवित "इति भू-जिन्न, भावि-त्तन,
 (५५४) इस्, जिलीप:। पाणिनि: ६।४।५२।

श्राकारितस्तयो रिम्न स्थात्। मित्रः, मित्रवान्। *

१०७३ । भावादिढे वा । (भाव-भादिडे था, वा ११)) मिसं मेदितं तेन । प्रमिन्नः प्रमेदितः सः । 🕆

१०**०४। शके हैं।** (सकी: प्रा, है का)। प्रकितीऽर्चितुं शिवस्तेन, शक्तः। इं

१०७५ । ज्ञुन्य वाढ् खान्त ध्वान्त फार्स्ट कष्ट धुष्ट जम्न न्त्रिष्ट विरिक्त घृष्ट विश्वस्त परिष्टढ् दृढं शृत वृत्ताभ्यस्ताः । (१०) ।

पते ज्ञान्ता निपात्यन्ते। चुन्धो मन्यः, वाढं स्थ्यं, स्वान्तं मनः, ध्वान्तं तमः, फाण्टं कषायभेदः, कष्टं कच्छं, घुष्टं प्रव्हितं, लग्नं सत्तं, न्तिष्टं घ्रस्पष्टं, विरिच्यः स्वरः, धृष्टः प्रगलःः, विश्व-स्त्य, परिहदः प्रभुः, र्दढो बली, स्ततं पक्षं, हत्तो गुणस्कानेण, घ्रभ्यणें.ससीपं। §

अन्यात् इत्यस्य स तथात्। इर् निद्या सिंहे, कर्त्तरि क्तः, (१०५२) क स्थाने न, पूर्वस्य दस्य चन, निद्रः, एवं कवतुः निद्रवान्। पाणिनिः ७।२।१६।

[†] चादिञ्चं ठं, कियारश्च इति यावत्। भावस चादिठच तत्तिश्चन्। चाका-रैती घो भाव चादिकस्त्रीच च विडितस्य क्रस्य इम् न स्यादा। भावादिठयी: क्रवती-रसभ्यवात् केवलं क्राग्रैवेत्यर्थः। भिक्तमिति भावे क्रः, पचे इम्, (१०६८) पूर्वीत गुणः मेदितं।. एवं प्रमिन्नः इति (१०६२) क्रियारभे कर्त्तरे क्राः, प्रशब्देन चारभी द्यीत्यते। सेहं कर्त्तुमारस्ववानित्वर्थः। पाविनिः ७१।१७।

[‡] सक्त धानी: कर्माचि विकितस्य क्रस्य इ.म. न स्वादाः। दे इति किं, तेन शक्तं, स सक्तः, भच कदिस्विद्देसले, (१००१) नेम खोबीति इम्निवेधः। ''शक्तृ सकर्म्यकः'' इति क्रमदोयरः।

[§] चुम ७ च स्वतने, तः चुक्तः, मयो मयनद्षः, प्रवाप चुनितः। बाइ ७

१०७६। नेम् संनिव्यहः।

(न ११।, इस् ११।, सं नि-वि-षर्दः ५१)।

संनिविपूर्वा-दर्दतेस्तयोरिम् न स्यात्। समर्सः न्यर्सः असीः।

१०७७ । वा रुषाम हृष त्वर संघुषास्वन:।

(वा ।१।, रव-धन-द्वव-त्वर-संघुष-धास्त्रन: ५ः)।

एभ्यस्तयोरिम् न स्यादा। रुष्टः रुषितः, त्रान्तः प्रमितः, इष्टः इषितः, तूर्णः लरितः, संघुष्टं सघुषितं, त्रास्तान्तं आस्त-नितं। '।'

यवे, बाटं स्त्रां, भन्यत्र वाहितं। स्वन चा शब्दे स्वानां मनः, भन्यत्र स्वनितं। स्वन मि च रवे भ्यान्तं, मन्यव भ्यनितं। फण च निस्नेहे, ञि:, तत: क्त: फागटं कन्नाय-विभिष:. (फाग्टमनायास धाध्यमिति पाणिनिः), चन्यत्र फाणितं। कव वधे कष्टंकक्रं, (क्रच्छगइनियोः क्रष इति पाणिनिः), ऋत्यत्र क्रवित। पृष कि विश्रद्धे प्रुष्टितं, (घुषिरविश्रव्यक्ति इति तुपाणिनि, घुषि: प्रतिज्ञाय। मिति तुलमदीश्वरः), अध्यत्र घुषितं। लगम सङ्गेलगंसकं, प्रत्यव लगितं। संच्छिकि देश्योकौ स्निष्टं प्रस्यप्टं प्रत्यव रेस्ट एक ग्रर्व्हविस्थिय: स्वरः, प्रन्यत्र विरेक्षितं। ञिष्ठवान प्रागल् स्ये धष्टः प्रगल्भः, अन्यत्र धर्षितं। (१००२) भादित इति इन्निष्धे पदसिज्ञाविष्, (१००३) भायादिट वेति पाचिकस इमी निविधार्थे निपातनं। अस छ वधे विश्वसः प्रगलभः, चन्यन विश्वसितः। चन (१००१) नेम् डीमीति इम्निविधेऽपि, प्रगलभादन्यन द्रम्पात्राये निपातनं। हिंदि हिंदि च हत्ती, परिहदः प्रमु:, हदी बली, (हदः स्यूलवलयोरिति पाणिनिः), भन्यत्र परिवंहितं दृहितं। याल्भ पाकेकेवलस्य कानस्य च मतंपक्षं, एतच चीरे इविधि च वाच्ये विपातिनं, ऋन्यन याणः यपितः। इत उटव स्टबर्सने इत्त: भधीत: गुणी गन्यविशेष:, (चिजन्तहतधातुरेवीक: पाणिनिना, णिलुक्च), चन्यच विभितः। चर्दं पीड़ायां, सभीपादन्यच अध्यद्दितः। पाणिनिः ७।२।१८—२१,२४,२६,२७ ।

समर्थः इत्यादि, चई पौड़ावां, चनेन इम्निवेधः, (१०५२) तस्य दस्य चन,
 एवं समर्खवानित्यादि । एभ्यः कि, चिहैतः प्रार्हित इत्यादि । पाचिनिः ७।२।२४ ।

[†] वषय भाग्य क्रवय त्वरथ संघुवय भास्तन् चतकात्। कृष्ट क्रवादि, क्योर्जि कृषि, भाग सतौ भजने मध्दे भनक् रोगे, क्रयु दर्तृष्टी, जिल्दरा मार्ज्सादे, छव

१०७८। दाना शाना पूर्ण दस्त स्पष्ट च्छन च्चप्ता वा। ^(दाना-क्रप्ताः १॥, वा ।१।)।

एते जालाः क्राल्तानिपात्यन्ते वा। पचे दमितः ग्रमितः पूरित: दासित: स्याधित: क्वादित: च्चित:। *

१०७६ । स्फाय: स्फी वा । (स्काय: ६१, स्की ११),वा(१))। स्फीत: स्फीतवान्, स्फात: स्फातवान् । १

१०८०। प्यायोऽगे: प्यस्वाङ्गे त वा।

द्यगे: प्याय: पी स्थात्, स्वाङ्गादन्यचतु वा तयो:। पीनं मुखं, ष्यानः पीनः खेदः। \$

क्ति इर इती,-स्वन साम्ब्दे, एभ्यः ज्ञा-क्रवतप्रस्थययी: वा इम्निवेध:। चाल्त इति, भास्तालं इति च (१०३८) असुङ इति दीर्घः। तूर्णं इति (१०३८) सिंबेति कट्, (१०५२) क्रास्ट्रेन. यालचा। भव रूप धातो: (६०६) वेससहित, इत धातो: (१९७२) पूक्तिभेति देम्रत्वे, (१००१) नेम् डीवीति निवेधादमाप्ती, चन्येवाच (५५४) वसीऽरस्थेति नित्यप्राप्ती विभाषा । पाणिनि: ७।२।२८,२८ । "इन्टंइ वितंलीन'' इति पाणिनिः, "विक्रितपतिचातयोय" इति वात्तिकम् । इत्वन्तुष्टौ इट् । इति विद्यान्तकौमुदो ।

🔹 दसु-ग्रसु भिर्यं ग्रमे, प्रेरणार्थे, (৩৩৩) औ, कर्म्माणि के (१०३८) दान्त: शान्त: इति, पचे (७८८) ऋस्ते, (५५४) इमि, (१०७०) ऋेलेंपि दमितः शमित: इति च। एवं पूरी का पूर्तो -- पूर्ण:, पंत्ते (५५८) इ.स्. (१०००) जीलीपे, पूरित:। दशु इर् चत्चेपणे दत्तः, पचे दासितः। समान्न ग्रय-वाधयोः, स्पष्टः, पचे स्पाधितः। इट्ट कि संडती, खायंञी इतः, पक्षे इहादितः। ऋप कातु ऋपी— ऋपः, पचे ऋापितः। पाणिनि: शरा२०।

+ स्क्रायते:स्कीवास्थात् तयी:। स्क्रायीख इन्ही, ईदिस्वान (१०७१) इ.स. निषेधे, स्क्री-चादेशः, पर्चे (६४२) य-लोपः । पाणिनिः ६।१।२२, भाष्यसः ।

‡ पौननिति, भो प्यायी उर बडी, त्रः, (१००१) देदिस्नादिननिषेधे, भीदिस्नात् (१०५२) तस्य न । भगे: तिं, प्रध्याभे सुखं, (६४२) यलीप:। भस्ताक्रे तुष्यान: पीन: खोदः, खोदस्य खाक्षभित्रलं (२६५) सूत्रे द्रष्टव्यं। पाचिनिः ६।१।२८, भ।वाचा

१०८१ । आङोऽसूघसी: । (भारः था, पसु कथसी:वा)। प्राक्तः परस्य प्यायः पी स्थात् तयोः,असूधसीः । आपीनीऽसुः,

ष्रापीनमूध:। #

१०८२। ह्लादेः खः त्तौ च।

(हाटे: ६।, ख: १।, क्ती ७, च।१।)।

न्नादेः स्वः स्थात् तयोः त्तीच । प्रह्ननः । 🕆

१०८३। दो-षो-मा-स्यां डिस्यगौ।

(दो - खां ६॥, डि: १।, ति ७। मणौ ०।)। • •

एषां ङि: स्थादणी तकारे। दित: सित: मित: स्थित: । अ

१०८४। इतायो वी। (का-मी: ६॥, था।१।)।

कितः कातः, गितः गातः। §

१०८५ । श्री वते नित्यं। (गः ६१, वते ७४ निर्व १।)। संभितं वतं । ११

[•] भन्यु: कूप:, जघ: गवादे: सनः, एतगीरवंशीरित्यवं:। (६।१।२८) सूत्रे वार्त्तिकम । † प्रक्रम प्रति, क्वादी खनोदने, कर्त्तरे कः, (१००१) इ.मृनिवधे, चनेन इस्से दानालान (१०५२) तस्य दस्य चन। क्री प्रक्रतिरिति। पाणिनिः ६।४।८५।

[‡] दी य केदे, षीय नाश्ची (धोपदेशनिईंगः), मा इति मास्तक्षं, तेन से उट प्रतिदान, मा क लि शब्दे, साल च साने, सा उट य च साने इत्येतेषां यहणं। अि छा गतिनिष्ठणौ। एवं दितवान् दितिः दिखा। घणौ किं, दाता दातुं दाव-सिकादि। पाणिनिः ७।४।४०।

[§] काशी र्र्जः स्थादा भणी तकारे। कीय लूनी, शोय निशाने, (∢०८) भोस्थाने मा, ततः डिः:। भणी किंकावं। पाणिनि: ৩।৪।৪१।

[¶] भीय निशाने इत्यस्य नित्यं ङि:स्यात् भशी तकारी। व्रते वाची क्रस्थैव भयोग:। "स्थतेरित्वं व्रते नित्यम्" इति वार्तिकम्।

१०८६ | घाओ हि:। (भाजः सा, हि: १।)। धाओ हि: स्यादकी ते परे। हितः। *

१०८७ | चरफलोऽदुः । (बर-फवः ६।, बत् ।१।, छः१।)। भनयोरकार छः स्यादगो ते । प्रफुल्तः । वृं

१०८८ | दृदोऽधः । (दन १२१, दः ६१, पधः ६१) । दासंज्ञकस्य धावर्जस्य दत्स्यात् अणी ते । दत्तः । अधः किं, धीतः । इ

१०८६ । ^{*}ग्यचस्त वा । ^{(गि-घचः ४।, त}ारा, वा ।रा)। गेरचः परस्याधो दासंज्ञकस्य वा तः स्यादणौते । प्रत्तः प्रदत्तः। §

इच्छाना सिकेऽपि घाली निवारणार्थ: । एवं दितवान्, दिति:, दिला,
 इिविसं । चाल्र: विं, घेट-घीत: । पाणिन: ०।४।४१।

[†] चर गमने इत्यस्थात् का जावलीः क्वाचयं, (५५४) वसीऽरस्थेतीनि चव्यविद्यत्त तकाराभावादुकाराभावे चरितः चरितवान् चरिता इति भविता । क्री तु (१०३३) इत्वतिरितीमनिषेधे चनेन चकारस्य चकारे, (१२८) दीवें चूर्तिरिति । जि फला भिदि, (१०७२) इम्निषेधे, चनेन चकारस्य चकारे प्रफुल्तः । एवं फुल्तवान्, फुल्तिः । पाणिनिः ७।४।८८ ।

[‡] दा ख खूनी, दा तुदाने, डुदा अ खि च, दे ड पालने इति चतुर्णांदमः, एवंदमनान्दिमः दस्या। डुदा अ ्लिदाने इत्यस्य दिश्वसमिति च। दासंज्ञकेति कथनात् दैपधातीः दातिमिति। धीत इति घेट पाने इत्यस्य, (६१२) खी-चादियः। पाणिनिः ७।४।४६।

[§] चर्घः किं, वेट पाने इत्यस्य प्रधीतः । चरः किं, निर्देत इत्यादि । पाणिनिः काशास्त्र ।

१०६० | भें। दा-ते गीच: । (वं: ११, दा-ते थ, गीव: ६।)। नीत्तं। इच: किं, प्रत्तं। अ

१०९१। जन्धाऽदी यपि च।

(जग्ध: १।, भदः ६।, यपि ७।, भारा)।

म्रदो जग्ध:स्थात् म्रणी तेयपि च। जग्दं। गै

१०८२ । घे चादिढे ता: । (घ ०), च ।रा, मादिडे ०), ता: रा)।

श्वादिटे विहितः को घे स्थात् उभावयोश्व। प्रकतः कटं सः, प्रक्रतः कटस्तेन। (१०५१) चेर्षे द्रति प्रचीणः सः। प्रचीणं प्रचितं तेन, चीणः चितोऽयं तपस्री, चीणायुः चितायुः प्रजः। ह

अ बाद्यमध्यवित्तेलात् एतदादोनामष्टानां नित्यत्तं। गेरिकी घं: स्थात् दा-स्थान-काति तकारि परे। नोक्तिमित पूर्वेण दास्थाने तकारी ऋनेन नि इत्यस्य दीर्घः। एवं नीतिः परीतं अन्तिनित्यादि। पाणिनिः ६।३।१२४।

[†] कियापंदलेने व प्युज्यमानस्य भदधाती र्जन्यादेश इत्यं शं., तेन पैकतच्छुलादी इदं भविति भविता। नग्दमिति भवितिमित्यं हैं, जन्यादेशे, (५०५) तस्य घः, (६४) पूर्वंधस्य द। यि प्रजन्धां [पाणिनिनते 'तु (पाडी ६५) भरीभरीति मृत्रेण धलीपे कादी जन्य फैलादि रूपमा] क्वाचि परे भादी नन्धादेशे पश्चात् यि कृते मिद्धेऽपि, भव यपौति यदणं, क्वाचः स्थाने यवादेशात् प्राक्त प्रकृतेः किमिप कार्यं न 'स्थादित मृत्रवायं, तेन विमुचलादी न कुङ् (२११), प्रविद्यालादी न षङ् (१५४), प्रविद्यालादी न घङ् (१५४), प्रविद्यालादी न घङ् (१५०), प्रविद्यालादी न द (१०५), भाष्टक्य प्रदीक्षेत्रव च न शक्ते (८१४)। पाणिनिः १४।३६।

[‡] चादिभूतं ढं कर्मा (किया), चादिढं चादिकिया, कियारभ इति यावत्। स कटं प्रक्रत कर्तमारभ्य दान्, तेन कटः प्रक्रतः कर्णमारभ्य इत्थंः। प्रचीच इति चनेन कर्त्तरः, चक्रमीक कर्तात् तिलंदीर्घः, ची इति दीर्घानात् (१०५१) तस्याने नः, (१०९) चलं। प्रचीचं प्रवितमित्यादि भावदैनाक्षीप्रेषु क्रमेचीदाइरणानि। पाणितिः १४।०१।

१०६३। गत्यर्थाढ शी स्थास वस जन जू स्थित रहः। (११)।

एभ्यो वे कः स्थात् उभावयोषः। गङ्गां गतः कृषां प्राप्तः, प्रयितः, ग्रीवमधिप्रयितो विष्णुः, वैकुण्डमधिष्ठितः, शिवसुपा-सितः, हरिदिनसुपोषितः, राममनुजातोऽच्युतः, विष्वमनुजी-णीऽनन्तः, लक्ष्मीमाश्चिष्टो सुकुन्दः, यरुष्टमधिकंदो गोविन्दः । श

'१०६४। भीव्यगत्यदनायति डे च । '' भीव्यं-गित-पदनार्थात् प्रा, डे थ, प । ११)।

नियनार्थात् गत्यर्थात् भीजनार्थाच क्रो डे खात् टभावे घे च।

^{*} नास्ति ट येवां ते घटा: । नत्वर्षाय घटाय श्रीय स्थाय घासव विसंघ जनस जुर्यस्थिषय \kappa इ. च.तनमात् । घे, च, क्राः, इति वयमनुवर्णते । परस्वेणैव सिंद्धे भव गत्यथंग्रहणं, गत्यथं-प्राप्तार्थंथीरैक्यात् दाध्यां कत्तीरि क्तः स्थात्, परस्**वे** तु कैवलंगल्य शेदिव वतुप्राप्तार्थ। दिति चापवार्वे। ग्रीस्थादी वामकर्म्यकल। देव प्राप्ती पुव-र्वहर्ष् येन केनापि सक्तर्यकर्तऽपि कर्लार क्रान्पानाये। गत इति (६०६) अस्लोप:। सर्वे गर्थथाः ज्ञामार्थाः प्राप्तार्थोसे ति वचनात् प्राप्त इति गर्थयृतादेव कर्त्तरि तः । एवं स्त्रभा इत्यपि । प्रयित इति भाढलात् कर्त्तरि क्तः, (१०६⊏) गुषः। मधिमयित द्रत्यस्य श्रेषनिति, पणिडित दृश्यस्य वैकुष्टनिति च, पश्चिकरचे (२८१) कर्मालं। चिधिष्टत इति (१०८३) ङि:। उपाधित इति घाराधनार्थलात् सकर्माकलं, एवं घोषमध्यासित इत्यादाविधकरचस्य कर्म्यलेऽपि कर्तरिक्तः। उपीधित इत्यस्य इरि-दिनिविति (२८२) कर्यालेऽपि कर्त्तरि कः, (१०६६) इ.स., (६६१) ति:। अनुजातः भनुत्रीर्थः इति भनुपूर्वभवीरेतयोः सक्कांकलं, यस प्रसाज्यननादि तदेव कर्मा । जात इति (१०७१) इस्विभेषे, (६५५) इता। कीर्षकति (१०५३) इत्वविषेषे, (६२८) इर्. (२२८) दीर्घ:। माझिट: मधिडढ़ इति च सक्यमेकलेऽपि कर्भरि का:। बढ़ इति (१०५) इस्य टः, (५०५) बस्य च, (४०) अस्य ट, (००) ढलोपः पूर्वदीचंद। पाणिनि: ३।४।७२]

मुकुन्दस्यासितमिद-मिदं यातं रमापते:। भुक्तमेतद्वनसम्बेखुनुर्गीप्यो दिद्यवः॥ *

१०८५। जार्चेच्छार्थ जीच्छीलारेः सति।

([चा-चर्चा इच्छा]-चर्य-जि-इत्-ग्रीलादे: ५।, सति छ।)।

एभ्यो वर्त्तमाने क्तः स्थात् तेषु । विदितः, पूजितः, वाञ्चितः, इतः, श्रीलितः, —श्रिवोऽनुवर्त्तते । गं

^{*} अवी नियन्तः । भृतस्य भाषां भीत्यं, भैत्यस्य गतिष पदन्य ममाहारे कत् प्रधी यस्य स तकात् । के पित्र पर्ण, प्रकारत् हे भावे मे च । सुकृत्यस्य ति । सुकृत्यस्य हिष्णस्य इदं (कृष्णः) यातं, या ल गतौ प्रधिकरणे कः, इद्मित्यधिकरणसुक्तः। प्रनत्य कृष्णस्य एतत् (तक्तलं) भृतः भृज धौ वाण-भव्योः प्रधिकरणे कः, एतदिष्यधिकरणसुक्तः। (सुकृत्यं) दिह्ववं। गीयः इति कच् । सर्ववं (३०६) कासुकृति कर्त्तरि वष्णै। कर्त्ताण वार्चे स्था—सुकृत्येन पीठमध्यासितं, स्था यास्य व्याजिकानं सुकृतं। भाववाष्यः—सुकृत्येन प्राप्ति, यातं, भृक्तमिति । कर्त्तार्यः व्याजिकानं सुकृतः। भाववाष्यः सुकृत्येन प्राप्तिः, वातं, भृक्तमिति । कर्त्तार्यः सुकृत्यः पीठे प्रास्तिः, सयुरां यातः, वात्रकानं भृतः इत्यादि । पार्वितः श्वावः

[†] जा जानं, जायः चर्चा च क्रव्या च जायं क्याः चर्या येषां ते के जिल्लायाः । जिर्नि यस्य स जोत्। श्रील (धादः) चादि यस्य स श्रीलादिः। ततः जायं क्याः यां य जोष सीलादिश्चितं, तथात्। सितः वर्णमानकार्षं, चनीतेऽपि इति वक्तव्यम्। एतत् स्वं कालमानविधायकं, कन्धांदि-वाची तु यथासम्भवं स्थादित्ययः। विक स जाने विदितः जायते इत्ययंः। पृत्र क पृजी पृत्रितः (१०००) जिलीपः, पृत्र्यते इत्ययंः। वाहि काने वाञ्चितः वाञ्चाते इत्ययंः। एषु कर्षाणि कः। जि इत्यीः च क युती, चन्नमंकलात् (१०००) कर्नारि तः, (१०००) इन-निवेधः, (५६०) न-लीपः, (५००) तस्य स , (६०) पृत्रं स्वयंः। चादितः इत्यादः। जिल्लामं कर्षाणि के श्रीलतः, ध्यायते इत्ययंः। चादिवन्दात् जि रच्च पालने स्वितः इत्यादिः। गवपाठं स्वयादः। क्षायते इत्यादः। नदयचाः—सीलितो रचितः चानः चाकुष्टो जुष्ट इत्यिः। चष्या वृत्यस्याः। कृष्यः वृत्यत्याः। तदयचाः—सीलितो रचितः चानः चाकुष्टो जुष्ट इत्यति। चष्यः वृत्यत्योगाविभावादः। प्रवितः स्वयादः। प्रवितः स्वयादः। कृष्टाः वृत्यस्याः प्रवितः स्वयादः। सान्तन्वयोभो सेथतोयती। कृष्टसः वृत्यत्योगाविभावादः। प्रवितः स्वादः। प्रवितः स्वयादः। कृष्यः वृत्यत्याः प्रवितः स्वादः। स्वयः कृष्टाः स्वयादः। स्वयः कृष्टाः स्वयादः। स्वयः वृत्यत्यः। स्वयः वृत्याः । पाविनिः स्वरः स्वः स्वः स्वयः स्

१०८६। ठी-प-म-वत् क्रमु-कानौ।

(ठी-प-म-वत् ।१॥, कसु-कानी १॥)।

धीरेती क्रमात् व्याः प म-वत् स्तः । बभज्वान्, जजागब्वीन् जजाग्यवान्, दुबृवान् दिदिवान्, विविद्यान् विविच्छान् । *

१०६७। वसो ईसेकाज्जिनात इस्।

(वस्रो: ६।, घस-एकाच्-च्ट-इन-भात: ५।, इस् ।१।)

घस एकाची उत्ते रिन श्रादन्ताच वसी रिम् स्थात्, नान्यतः। जिच्वांन् श्रादिवान् श्रारिवान् ईयिवान् दिस्वान्। 🕆

[•] ठी-पसे इव ठी-पसवत, तेन घतीते काले कर्तार वार्च परस्वैपदिश्यः कसः, धात्मनेपदिश्यः कानः, छभयपदिश्यो दय स्थातः, कसंग्रीण मावे च वार्च कानः स्थादि-त्यथः। कस्-कानयोः क इत् घगुणार्थः, जकारः (२५०) ईवयः। वभज्वानिति भन् जन्मः, (५६०) न-लोपः, (५५८,५६४) दिलादि, वभज्वस् ग्रन्दः, ततः संः, (१८२) छदिस्वात् नुष्, नसन्तवात् (१६४) दीर्घः, (१८२) स्थानलुष्। एवं स्त्रियां (२५०) छदिस्वादीप्, (१२८) वस्र छः, वभज्ञषी। जायःकसः, दिलादि, (६८८) वा गुणः, धनाग्रेवात् कणाय्यात्। दिव-कसः, (८१४) वस्राने कट् दिलादि, दुयूवान्, पर्व (६४२) वस्रोपे दिदिवान्। एवं विष्क-कसः, (८१४) कस्राने वा म, विभिन्नान् विविक्षान्। पाणिनः ३।२।१०६,१०७।

^{• †} घस च एका स स्थ इन च भा स तकात्। घस: प्रयक्ष यह पात् एका च इति वि जतिऽपि य एका च सपत् याद्य: । एतेश्य एव धातुश्यी वसु-स्थानं दम् नावतः दिति जतिऽपि य एका च सपत् याद्य: । एतेश्य एव धातुश्यी वसु-स्थानं दम् नावतः दिति नियमः । जिचानिति भद-क्रमः, (६०४) व्यां विति घ्रसारेशे, भ्रमेन इति वित्ते, (१६४) एका पे एकं चर्चा कर्ते। एकं चर्चा दिते, (१६४) दस्य लोषे, सन्तौ, एका च्यादिम, भादिवान् । एवं यज-क्रमः, (६५१,६६१) व्यां मृत्यापिति क्रियापि जिः, एका च्यादिम दिनात् , वस क्रमियान् । एवं (५०६) तृम्सिति स्थिपि पेचियान् भेनियान् इत्यादि । स्थ-क्रमः, दिलं, (५५६) स्वे स्थानात् भ, (६९६) स्थलस्य गुणः, ततः स्थानः, भादिवान् । इन गतौ, क्रमः, दिलं, (६-६१) स्थलस्य यकारः द्वितान् । दा-क्रमः, दिलादि, (७०१) प्राद्योगिति भाषोपः, दिवान्। पाणिनः, ७१।६०।

१०६८। इन-गम-दृश-विश-विन्दो वा।

(इन-विन्दः प्रा, वा ।१।)।

एभ्यो वसी रिम् स्यादा। 'जिध्नवान् जघन्वान्, जिम्बान् जगन्वान्, दृहिष्यवान् दृहस्वान्, विविध्यान् विविध्वानं, विवि-दिवान् विविद्यान् । अ

१०८८। दाखान् साह्वान् मौद्वान्। (११॥)।

एते वस्त्रना निपालनी। 🌵

चक्राणः, जजाग्राणः जजाग्राणः, अनूचानः । ह

१९००। की-प-स-वत् ग्रत्ट-ग्रानौ।

(की-प-स-वत् ।१॥, भ्रतः भानौ १॥)।

धोरेती क्रमात् क्याः प-म-वत् स्तः । पचन्। §

क्ष इन क्याः, इम्. दिलादि, (२३०) लक्तियः. (१८८) क्रयः घ, त्रविवान् । पत्ते, (६०८) इना इस्य घः, जघलान् । गमकामः, लङ्नीपे जिमितान्, सस्ति (१०२) मस्याने न, जगलान् । हमःकाः, टहिष्यान, पत्ते दहस्रान् । एवं विग-काः । विद स्व ग्राप कौ लाभे विद क्याः, वेत्रेष्ठ विविदान् । पाणिनः ७।२।६८. वार्तिकच ।

[†] दाघर ङ्दाने, तार्कंब्यानः: दल्यानः इति केचित्। सङ्ज ङ श्रतौ । सिडौ सेचने । एतेभ्यः क्रमुः । पाणिनिः ६।१।१२ ।

[्]रकानसुदाइण्ति, क्रज धातोः कर्मित कर्माणि वा कानः । जाग्रधातोः कर्माख कानः, (६८८) वा गुणः । चनुत्रधातोः कर्मरि कानः, (७२५) वचारेग्रः, दिलादि, (६५१.६६१) खे भूलस्य च जिः । चनुचानः साङ्गवेदाध्यायौ । पाणिनिः श्रारुण्य ।

^{&#}x27; ह की पमे इव की-पमनत्। एतेन वर्षमानकाले कत्तंदि वाच्यं परसीपदिश्यं: श्रहः, चात्रमनेपदिश्यः श्रानः, उभयपित्था इयं स्थात्, एवं कर्माण भावे च वाच्ये सर्वेश्यः श्रानः स्थादिन्यर्थः। श्रिस्तात् रमज्ञाः, पिस्ताभागाच डित्मंज्ञाः। श्रह इत्यस्य च सर इत् (२५७) ईवर्थः। एतयोः प्रयोगे किथाभमाप्ति नीभीति वीध्यः कियायाः प.इ. नाथके विक्र इती च च्यों ती भवतः। यद्या श्रशाना भुक्कैते ययनाः, इसिं

११०१ । शाने इतो सन्। (माने ७, पतः ६१, मन्।१।)।

श्रकारस्य सन्स्थात् श्राने। पचमानः। अ

११८२ | यासो ऽस्य। (ई।११, मा।११, मासः ६१)।

भास: परस्थास्य भा ई स्थात्। भासीर:। 🌵

११०३। वेत्ती: शतु: क्षसु वीं।

(वेत्ती: प्रा, मतु: दा, कसु: १।, वा १२।)।

विदं: परस्य यतुः कासुः स्थादा। विदान् विद्न्। #

११०४। मितावयसाच्छीत्ये मतुः मानः।

(मित्रि-वयस्-ताच्छील्ये ।, मतु: ६।, मान: १।)।

यतुं निन्नानः, कवचं विश्वाणः, भोगं भुद्धानः। §

प्रधान सुचारें। पचन इति, जुजी स्पच पाके. सतः, (५४१) प्रप्, (५४६) चकार-क्षोपे पचर्तीब्दः, ततः सिः, ऋदिस्वात् (१८२) तुण्, (१८३) स्थानलुप्। स्त्रियां (२५०) दूप्, (२४५) तुष्, पचनी। पाणिनिः ३।२।१२४, १२६।

[#] सनीन इत् चनी। पचमान इति कर्मरि शानः, चनेन मन्। कर्माण विभेच पचमान घोदनः। पाणिनिः ७।२।०२।

[†] चस्र मानसः। चासीन इति, चास क ल उपवेशने, कर्मरि मानः, (५४१) मप्, तस्य (६७०) लुक्, अनेन चाकारस्य क्रे। पाबिनिः ७।२।८३।

[‡] क्रमुप्रव्ययस्य श्रद्ध-स्थानजातत्वेन दिलं चतीतत्वच न स्थात् । विदानिति विद च जाने, श्रद्ध, तस्य स्थाने क्रमुः, विदम्शस्दः, ततः सिः. (१८२) तुण्, (१६४) दीर्घं, (१८३) स्थान्तसुण् । पचे विदन् । पाचिनिः ७।१।३६ ।

[§] शक्तिः सामध्ये, बयो यीवनादि, ताच्छीत्यं तत्स्त्रभावतः । एव्ययेषु श्रष्ट-स्थाने श्रानः स्थात् । श्रवं निम्नान देति, इन-श्रष्ट, श्रक्तये श्रष्टस्थाने श्रानः, (६७०) श्रपील्किः (२२०) অङ्-सोपः, (१८८) क्रस्ताने म्नः । कावचं (वर्मः) विभाष दति, स-गढे,

११०५। तौ-प-म-वत् खत्ट-खमानौ।

(ती-प-स-वत् ।१॥, खळ-स्यमानी १॥)।

भोरेती क्रमात् त्याः प-म-वर्त्स्तः । करिष्यन् करिष्यमाणः । अ

. १४व पादः—द्रश्वादिः ।

११०६। जिमाज भूसह रच चर वध वत प्रजनापनपालंक निराक्रुत्मट्रपतपच द्रज्यु में।

(जि-पच: ४।, रणु: १।, घे ०।)

एभ्य द्रश्युः स्थात् घे। कारियशुः श्वाजिश्युः भविश्युः सिहश्युः रोचिश्युः चरिश्युः वर्षिश्युः वर्त्तिश्युः प्रजनिश्युः प्रपत्रपिश्युः प्रसङ्गरिश्याः निराकरिश्युः उत्मदिश्युः उत्पतिश्युः उत्पविश्युः। श

योवनश्यसि मर्थे ग्रव्ह्याने भागः, (७२६) द्वादी रे दिः, खे भंकारस्य (५५८) वकारे, (७२८) खे डिंः, (१००) पालं। भोगं सुझान इति सुन ग्रव, तत्स्सभावाये ग्रव्ह्याने ग्रानः, क्वादिवात् ग्रव्,(७५८) नवां नकारे,तस्य (४६) जकारः। पाणिनः १।२।१२८।

[#] भविष्यत्काले कर्निष्परसीपदिभ्यः स्वतः भाकानेपरिभ्यः स्वनानः, सभवपदिभ्यो दयं स्वात्, एवं कर्माण भावे च वाची स्वनानः स्वादित्ययः। स्वतः इत्यस्य ऋ इत् (२५०) द्रेवयः। करिष्यन् इत्यादि, (६१०) इन्। पाण्विनः ३।३।१४।

^{*} प्रात् जन प्रजन, सपात चप सपत्रप्, सलम् क सलंक, निरः सा निरा तस्रात् क निराक्त, सद रूपत स्पर्स पेत सद्यतप्रच, उदी सद्यतप्रच उत्तरप्रच। ततः जिद्य आग्रसंख्यादि इन्हें तस्रात्। जिज्ञानः। स्व पूर्श्वस्चादनुवर्ष्यं कीवलं तास्कील्यार्थं इन्हः स्थादिति वक्तव्यं। तास्कील्यार्थस्य च (११३२) स्वयंशिवसंप्रादिति पर्यानीव्यधिकारः। तेन, कारियत् ग्रीलसस्यैत्यादि वाक्ये कारियस्पृतिव्यदि। आनिस्विरित काश्रिका वितः। पाणिनिः १।२।१३६ —१६८। एतन्यते तस्कीलतञ्चमंतत्साधु-कारियु सर्थेषु।

११०**)। व्याक् भूजी:**। ^{(श्रक् ११), मु.ची: ४।) । श्राभ्यां श्राक् स्थात् चे। भूश्युः जिश्युः । अ}

१९०८ | ग्ला म्ला स्था चि पच परिस्वतः सु: । (ला-परिधनः प्रा, सु: ११)।

एभ्यः सुः स्थात् चे। ग्लासुः स्त्रासुः स्थासुः चेशाः पत्त्राः परिमात्त्र्युः। 🌵

ं ११०८। चिए वस ग्रंघ ध्रषः क्रुः। (चिप-ध्यः ४।, क्राः।

एभ्यः क्षुः स्थात् घे। चिष्रः चस्नः ग्रम्नः धणाः । क्ष

१११०। मृस्याभकाम गम इत लघ छष पत प्दो जुकः । (मृ-पदः प्रा, जुकः रा)।

एभ्यो जुका स्थात् वे। प्राम्काः स्थायुकाः भावकाः कामुकाः गामुकाः वातुकाः लावुकाः वर्षुकाः पातुकाः पादुकाः। §

[•] णुक्तः कित्वात् (१०५३) वृद्यीति इस्नियंघः, गुणाभावसः। पाणिनिः शशाश्तरः, वार्तिकसः।

[†] चैचानिति गुणे, (१११) वलं। पच्चानिति (२११) कुङ् वलं। परिमाच्छुंरिति कि कि कि स्वादिनिम्पचे (६८४) वृद्धिः, (१५४) षङ् (६०२) वस्य कः, वर्लं । अस्य इम्पचे न प्रयोगः। पाणिनिः ३।२।१३६। ''ज्यादेः खुः'' इति खंचित्रसारे क्रच्छिपोषादिपारे १६ स्वं।

[‡] क्रुइत्यस्य किस्वात् न गुणः। पाणिनिः ३।२।१४०।

[§] সুকী সিহ্লাণ (५०७) तत्रि:। स्थायक इति (১२४) सन्। घातुक इति (६०१) इस्य घ:, (५०१) इनकाङ्। पाणिनि: १।२।१५४।

११११ । भिच-नल्य-क्कट्ट-लुग्ट-ष्टञ: पाक:।

एभ्यः षानाः स्यात् वे। भिचाकी जल्पानी जुदानी लुण्टानी वरानी। *

१११२। प्रति गृहि स्पृहि शोङ त्रालु:। '(पित-शोक: ४।, पानु: १।)।

एभ्य चातुः स्थात् चे । पतयातुः ग्टहयातुः स्एहयातुः प्रयातुः। १

१९१३। शत सद सि धे दो. तः । (शत-दः शा.कः रा)। एम्बो कः स्थात् वे। शतुः सहः सेकः धाकः दाकः। क्ष

१११८। इसस्दः कारः। (वस-स-भदः प्रा, कारः १।)।

एभ्यः ऋरः,स्यात् घे। घसारः स्टमरः अद्यदः। §

१११५। मिद-भास-भन्तो घुर:।

(सिद-भास-अञ्चः ५।, घुरः १।)।

^{*} वाकस्य विस्तात् (२५७) ई.प्। पाणिनि: ३।२।१५५ ।

[†] पत त् केथ्ये, स्टइत् क ख यहे, स्टइत् केप्से, "चयोऽदलपुरादयः, श्री क स्व श्रयने, (६४१) भालु-वर्जनात् न जेलेंग्यः, ग्रयवः। पायिनिः १।२।१५८, वार्तिकसः ; पतकाते दय निद्रा तन्द्रा यज्ञादित चतुष्टयादिष भानुष्। वीपदेवेन तु(४४६) निद्रादिलात् भालुः दिति जिन्निते निवेशितम्।

[‡] पे इत्यस्य प्रथम्-बहणात् दा इति व दासंज्ञः, तेव दैप श्रीषने इत्यक्षापि माप्तिः। अनुरिति स्वे ताला-निर्देशात् भदीदस्य त, मनीपादिलादिति केचित्। पाणिनिः १।१५८। एतन्मते ग्रद्धातीः भदुः, शवुसुशातसतेरौषादिकः कृत्।

[§] क्षारः कद्रत् च बुखः, सरस्थितिः । पाचिनिः हाशार्द् । °

एभ्यो घरः स्थात् वे। मेदुरः भासुरः भङ्गरः। *

१११६। किद-भिद-विद: कुर:।

(क्टिन्भिद-विद: ५।, कुर: १।) ।

एभ्यः कुरः स्थात् घे। किंदुरः भिदुरः विदुरः। १

१११७। जाग्र यङन्त-यजजपक्ददन्म जकः।

(नाग्ट -- दन्भः ५।, सक. १।)।

एभ्य' जकः स्थात् घे । जागरूकः, यायजूकः जन्नपूकः वावदूकः इन्दर्भकः । व

११९८। यङम्त-चल पत सह वह: कि:।

(यङम-वहः ५।, किः १।)।

एभ्यः किः स्थात् वे । चाचितः पापितः सासिष्टः व्यविष्टः । §

^{*} घुर इ.व.स. घ इत्। मजुर इति (१७२) विति जसा गः, (५०) नस्वानुस्तारः, (५१) भनुस्तारसा छ । पाणिनिः ३।२।१६१।

[†] करका किस्तान गुष:। भव विद: ज्ञानार्थ:। पाणिनिः शशाहर ।

[‡] यजस जपस वटस दन्म च तत्, यङनास तत् यजजपवददन्म चिति, ततः जाग्यस यङन्त-यजजपवददन्भं च तकात्। पुन. पुन. संजतीति यायज्य-धानीः जकः, (७०५) यलीपः। एवं गिर्दतं जपित जझपते इति जझपूकः। वाबस्यते वावट्कः। इन्ट्स्त्रते दन्दम्भकः। एवं भक्त बन्ध मन्छ बल्ज सम धातुन्यः जकः वक्तस्यः (उचादिषु दृष्टस्यः)। पाधिनिः ३।२।१६५, १६६। एतन्मते वावद्कः चौद्यादिकः।

[§] चल काती, पत्न जैसी, सद्य कि सफ जल्य यक्ती इति दर्ग, वह जी प्रापकी, यक्तनेश्य एथ्य इत्यर्थः। चाचल्यतं इत्यादि वाक्यानि। पापितिरिति, (८२६) नीन् वस्त्रेश्यच पत्त्वज गत्यानित्यस्य यक्ष्णात्। पत्य जैस्ते इत्यस्य नीनीऽकावे पापत्य-धातुः, तक्यात् किः, '(२०५) कसाक्षीप इति चक्तार-यक्तारयो खेंगः। वार्तिकम्।

११६८। दि साद्रङलीिषनः।

(दि. १।, च ।१।, चात्-ऋ-चङ् लोपिन: ५०)।

भ्रादलात् ऋवणीलात् उङ्कोषिनय किः स्थात् घे, तेषाभ्र दिलं। ददिः चिक्रः जित्तः। #

११२० | यायाय भास कास स्थेश पिश प्रमदो | वर: । (यायाय-प्रमदः ५।, वरः १।)।

एभ्यो वरः स्थात् घे। यायावरः भास्तरः कस्वरः स्थावरः • •

११२१। चुरप् स्जीतागम सामञ्च।

(चुरप् ११), स्ट-जि-इन्-नश-गमः ५।, त ११।, मः ६।, च ११।) ।

एभ्यः च्लरप् स्वात् चे, मस्य तय। स्वती जिलरी इतिरी नखरी गतंरी। #

अषात् च स्त्य च क्लोपी चिति तमात् । च ङ्लोपिनस (२३०) स्त्रुं दर्भिताः । ददातीति दिदः, तिः, दिलं, (६१०) च संचीति चालीपः । एवं दिभि. जिलंति किरित दितः, विलं, (६१०) च संचीति चालीपः । एवं सितः । एवं सितः । लायते द्वित जिक्कः, दिलं, (२२०) च ङ्लीपः, (४६) नस्य ज । एवं इन - मिनः, गम-मिमः, खन—मिलः, घम—जितः । पाणितः । ११२१०१, वार्तिकञ्च ।

[†] वक्त यातीति यिङ यायाय घातः, सास्र ङ न दीप्ती, कम न गती, जि ष्ठा स्थाने, ईश्र ङ ल ऐत्रय्ये, पिश्र श्र पावयवे, प्रपूर्व- मदो भिर्ये जि इवें — एस्य ध्रत्यंः । सायाय घातीः वरः (१.०३१) ध्रम् निर्वेषे, (७०५) ध्रकारलीपे, (६४२) यत्तीयः । ईश्वरः ध्रति वरप्रत्ययस्य दत्यादिलान् (१५४) न पङ्। पाणिनिः ३।२।१०५,१०६। एतन्यते पिस दत्यानः । प्रमदर ध्रति पदं कातन्ताद्रप्रधीतम् ।

[‡] चुरपः किस्नात् (५४२) भगुषः, विस्तात् (२५०) ई.प्, पिस्तात् (८८२) तन्। सरति भयति एति नक्सति गच्छतीति वाक्यानि । नघरीति (१०३२) इन्दर्तीरति इन्निवेशः । गलरीति भनेन मस्यतः । वाणिनि ३।२।१६६२,९६४।

११२२। इंस दीप कम्पाजस सिङ कम

नमो रः। (हिंस-नमः ५।, रः १।)।

एभ्योः रः स्यात् घे। हिंस्नः दीर्पः कम्पः अजसः स्नेरः कसः नस्तः। *

११२३। सन्भिचाशंस छः।

(मन्-भिच-चार्थस: ५१, उ: ११) १

एभ्यः उः स्वात् घे। रिष्सः भित्तुः श्रायंसः। 🌵

ं ११२८। विन्दिच्छू। · (१॥)।

पती निपात्वी। वित्तीति विन्दुः, इच्छतीति इच्छुः । ‡

११२५। खप त्य धृषो ङ्ग्ज्।

(स्वप-त्वन-धनः ५।, ड्नन् ।१।)।

एभ्यो इन् स्यात् हे।, स्वप्नक् त्रणाक् प्रणक्। § 🐃

११२६ । श्वन्द आत: । (मृन्वन्तः ४।, वाबः १।)।

श्राभ्यामारः स्थात् घे। यरारः वन्दारः। श

[#] इिनि दिष्यते कायते न जस्यति खयते कामयते नमतीति वाक्यानि । इस् इत्यादी (१०२२) इम्निषेष: । कास इति (५८२) वारे इति जिङ्गोऽप्राप्तिपचे। पाणिनि: ३।२।१६७।

[†] रब्युनिच्छति, सन्, (८११) खिलोप: इन् च, (२१६) खादे: स-लोप:, (६४) अस्य प, रिष्स इत्यक्षात् छ:, (२०५४) चकारकीपै रिष्सु:। अचिते अन्तुः, चार्यसर्ते चार्यसु:। पाणिनिः १।२।१६८ ।

[‡] पाणिनि: शश्रह ।

ई जुन्नी क इत् गुवाभावः, नज्-स्थितिः । स्विपिति, हस्यति, प्रचौति, इति वाक्यानि, हवप्रयोः (१०३३) रम्निवेधः, (२११) कुङ् । पाविनिः १।२।१०२, वार्त्तिस्य ।

न प्रवाति वन्द्रते इति वाक्यवयं। पाचिनि, शशाहिक ।

११२७। ऋजुकौ भिय:। (कुकुकी शा, थियः ४।)। भीकः भील्कः। #

११२८। सृहि गृहि श्रु द जे राय्य: । (सह - नी: प्रा, पाया रा)।

एभ्य त्रायः स्थात् घि । स्षृहयायः ग्रह्मयायः त्रवायः दरायः . जयायः । 🕆

११२६। गाँखि माँखि जि जीन नन्दिथ्योऽन्तः।

एभ्योऽन्तः स्थात् घे। गण्डयन्तः मण्डयन्तः जयन्तः जनयन्तः नन्दयन्तः । ‡

११३०। स्तनि गदि मदि हृदि दूषे रिह्नु: । (स्ति-द्वे: ४।, ४व; १।)।

एभ्य इतुः स्यात् घे। स्तनयितुः गदयितुः मदयितुः हृद-यितुः दूषयितुः। §

भीषाता रेती स्थातां चे । उभयोः किल्वात् गुणाभावः । विभेतीति वाक्यं । क्रुकत्रिपि वक्तव्यम् । भीषकः । पाणिनिः श्राश्७४ ।

[†] सप्डत् कीप्से, स्टइत् क उपाइं, दो भदन पुरादी; सु सुती, ह उपादरे, जि नये — एथ्य इत्ययं:। भायीदाङ रणहये,(६४१) भाया-वर्जनात् न कीलाप:। उचादि:।

[‡] गडिंग खें, मडिंक भूषे, जिलये, जनी स्थङ् प्राद्वभावे, टुर्निट संबंधि । चप जिवजो: सब्वें ञ्राला: । गण्डयल इत्यादौ, (६४१), चल-वर्जनात् न ञेलींप:। गण्यल इति तुपदंसंवितसारे हस्यते । खबादि:।

^{\$} स्तनत् का गदत् का चाक्रध्यनी, दायदन चुरादी। मदी भिर्य जि इषें, आजाः, घटादिल।त् प्रश्ली मदिः। इत्करीति चाचष्टे वा (५५५) जिः इदिः। इर्द्ध्यी

१९३१ । कृगृजागु: कि: । (कृग्-जागु: ६।, कि: १।) । एभ्य: क्षि: स्थात् घे। कीर्बि: गीर्बि: जाग्टवि: । *

१९३२। स्वयं शं वि सं प्राट् भुवी डु:। (सर्व-प्रात् प्रा, मुन. प्रा,(डु: १))।

ं एभ्यो भुवो हु: स्यात् घे। स्वयमु: यमु: विभु: समु: प्रभु: । 🕆

११३३। त्नुध्यन सुचर पुसह वह दुनो भे।. (ब्-म ध्यन-म्चर-प्-सह,वह: ५१, दव: ११, धे ०१)। एभ्य दव: स्यात् धे। स्वित्रं श्रास्त्रं धवित्रं खनित्रं स्वित्रं

एभ्य इतः स्थात् धे। लिवतं श्रदिकं धिवकं खिनवं सर्विकं चित्तिं पवित्रं सिहतं विहतं। 🕸

११३८ | घञलनटो ऽघे | (धञ्चन पन पन पा प्राचि का)। धोरते स्युर्न तु वि । प्राचारः, पादः, दासः, उपाध्यायः,

बैक्कते, जि:, गुणे, (৩১৩) भीस्थाने ज कते दृषि:। सन्धित्र दिखादौ (६४१) इतु-भनंनात्न जेलेंगि:। उपादि:। तन तु इदिस्थाने इषिदृष्यते।

^{*} कुग्न विधेषे, गुग्न निगरणे गृगि शब्दे इति इथं, जाय खुलु जागरे। किरतौति कीर्विः, (१०३३) इब्बतेरिति इसिंग्षेष्ठे, (६२८) इर्, (२२८) दीर्घः। एवं गिरति स्टणाति वा गीर्व्वः। जागर्गीति जायविः (६८८) वि-वर्जनात् न गृणः। उषादिः। क्रविः जागविंरिति तुसंविष्ठसारः।

[†] डुद्रव्यस डिच्चात् (१२६) टिलोपः । एतत्-पर्यानीषु ताच्छीत्यायाधिकारः । पाणिनिः १।२।१८०, वार्त्तिकचः ।

[‡] लूज गि व्हिदि, ऋ प्रापे, धूज गि कम्पे, खतुज विदारे, मू उन्न स्तौ, चर गतो भदने भाषारे, पूज गि ब्रोधे, सहा कि सह ज उन्न ब्राही, वहें औं प्रापणे। धे करवार्या । सूयतेऽनेन, भय्येतेऽनेन इत्यादि वाक्यांगि। पाणिनिः १।१।१८४ — १८६। पतकाते वहित्रम् तथादिसिद्यम्। देयतायां कर्तारे पवित्रं।

प्रासादः । समाजः, यमः, कामः वामः त्राचामः, त्रमः त्रामः यमः यामः वित्रमः वित्रामः । अ

११३५ | कामावे 5मी | (कमावे ण, प्रमी १॥)। †

प्रवसः, वधः, करः निलयः समजः मयः लयः। ज्ञानं मानं दानं प्रवेषेनं, वयनं अजनं, दरिद्राणं ग्रयनं । क्ष

घञी घकारः (८०२) घजी कार्यः, जकारः (५००) इक्ष्यः । यथा पाकः भाग इत्यादि । भाकी चकारः कातन्वादानुयाथी । भनटण्कार (२५०) इंबर्धः । प्राकार इत्यादि, प्रकर्षेण कियते उसी, क्ष्यांण घञ, इदिः । प्रस्य दीर्घविधानात् घञत्रभातौ परे कचिन्पसगस्य दीर्घवं स्थादिति स्चितं । तथाच — उपसगस्य दीर्घवं किप्चनारी कंचित् भवेदिति पाचः, ("उपसगस्य घञ्ज भमनुष्ये बहुज्म" इति पाणिनः (६।३।१२२), सनुष्यभिन्नं इति किं, निषादः ।) यथा—प्राष्ट्रसः नीहारः भौवारः प्रतीकारः प्रतीकारः प्रतीकारः स्वीसारः, किंपि परीतत् नैकत् (१०४२,१०४६ स्वटीकाद्रष्ट्या) इत्यादि ।

पद्यते ऽनेनिति पादः, दाखते ऽष्मै दासः, छपेत्य भधीयते ऽस्मान् छपाध्यायः, प्रसीदिन्त (मनांभि) भक्षिन् प्रासादः इति कारकीदाइरणानि । भावे यथा, समक्षनं समाजः समूदः, (५८६) घज वर्जनात् न वी-भादेशः । श्रमनं श्रमः, घिज हसी, (७४४) जनविति इस्तः । काम इति (५८२) वारे इति जिडोऽपाति-पचे घिज हसी, जनवित्याय वर्जनात् न इस्तः, एवं वामः भाचामः । भ्रम यम विश्रमां वा इस्ति भनः भामः इत्यादि ।

† पूर्वम् वे घणादयः कर्गरि न स्युरित्युकापि, भव म्वे भनी सर्व्वकारकेषु भावे च स्युरित्युक्तवता, प्रयोगानुसारेच क्वचित् कर्त्तयपि स्युरित स्चितं। यथाः घिक कन्नतौति रोगः, भितसरतौति भतीसार इत्यादि। भन्यम पूर्व्वत्वे संज्ञायां, भव भसंज्ञायानिति। पाचितिः शशरुहः।

‡ चिल उदाधरित, प्रात्तीति प्रघस:, (६०३) चदी घसादेश:। इनमं वध:, (६०८) इनी वधादेश:। कियते ऽनेन कर:। निर्धायते ऽक्षिम् निरुपः, (७४५)

[#] घस्य वर्जनात् कंमादि-कारके भावे च वार्च इत्यर्थः। 'भावी घालयैः, तियामाचवाचीति यावत्। तियायाच चवस्याइष्टं भवति, तथाच-चवस्य हे तियायाः सः सांध्यता सिङ्कतादि च। साध्यता त्यादि-वाच्या स्थात् सिङ्कतादि द्रव्यवत् भवेत्। द्रव्यवत्त्वं घञादिः स्थात् योगी लिङ्केन सङ्घया इति। तेन पाकः पाकौ पाकाः इत्यादि। पाणिनः ३।३।१८,१८,५६-८०,११५,१९०। एतन्मते चच्, व्यप् = चल। त्युट = चनट।

१९३६ | छोवन-सीवने वा | (शीवन-सीवने १॥, वा ।१।)। एते निपात्ये वा । पत्ते धेवनं सेवनं । अ

११३७। मुण् लभो ऽनेकदु:सार्गे: खल्घञो:।

(सुण्।१ः, लभः ६।, भन्-एक-दुः-धोः ५।, गेः ५।, खल्-घञोः ৩॥) ।

. केवल दु: सुवर्जात् गेः परस्य लभो मुण्स्यात् खलि घिज च। प्रलग्धः । श्रन्थच दुर्जाभः । एकेति किं, श्रंतिदुर्लग्धः । 🕆

. ११३८। खदैधावीद हिमस्रय प्रसंघ स्मार स्माल राग काय निकायाकायाः। (१॥)।

एते घजन्ता निपात्यन्ते । स्यदो वेगः । एध इधा । श्रवोद श्रवक्कोदः । हिमस्रयः हिमस्रत्यनं । प्रस्रयः प्रस्रत्यनं । स्कारः

भाववर्जनातुन ङा। सलजनं समजः, (५८६) भाव्यवर्जनात् न वी-भादेशः । जुनि छन चेपे मी जगवधे प्रति द्वास्यां भावे भाव् सम्यः, (०४५) भाव्यवर्जनात्र ङा। एवं ली ङ्य भी • स्निष्ठि, लयनं लयः। भन्य यथा, जायते प्रति भावं उन्यूष्णां। सा-स्वद्याणां सिस्योध (०४५) ङादेशे सानं। दा-स्वद्याणां दीड्य (०४६) ङादेशे दानं। प्रविपनसिति (८६८) विपवर्जनात् न भावं। भज-भन्य (५८६) विकल्पेन वी-भादेशे यथवं भजनं। दिन्द्राणसिति (००२) भन्यजनात् भालोपः। भी ङ ल स्थने भ्रयनं। कारके भन्य यथा — क्रियते उननेति केदनः स्वदः, वस्त्री रस्वारिस्थादि।

किनु निरसने, िब्यु तन्तुसन्तभी एतयी भावि ज्ञिट दीवीं वा निपास्तते, पवे गुण:। किनुसिवीदेविंच" इति चन्द्रस्त्रम्। एषीदशदिवादिति पाणिकीयाः।

[†] एकी (भहितीथी) चती दुःस् चित एकदुस्, व विद्यते एकदुःस् यच सीऽनेक-दुस् सम्रात्। सुची च इत् भन्याचः परः. छकारिभक्रार्थः, स्-स्थितिः। प्रसम्भः इति घिल भनेन सुण्। केवल-दुःसवजनात् दुर्लामः, एवं सुलाभः। भितदुर्लभः इत्याचन केवलदुः। (७४१) तुण्रभ इत्यनेन सिक्वेऽपि एतिहभानं विवसाय। पारिपनिः भाराहक्द्रमः।

स्कीरणं। स्काल: स्कीलनं। रज्यतेऽनेनेति राग:। कायी देह:। निकायी निवास:। श्राकायियति:। *

११३८। खनो डं-डरेक्नेकवकाः।

(खन: ५१, ड-डर-द्रक-द्रकवका: १॥)।

भाख: ग्राखर: ग्राखनिक: श्राखनिकवक: । 🌵

११४०। व्याप्तौ भावे णिन:।

(व्याप्तौ ७।, भावे ७।, विनः १।)।

धोर्भावे णिनः स्थात् व्याप्ती सत्यां। णिनाक्तात् स्वाधे णैः। साराविणं वर्त्तते। क

१९४१। व्यतीहारे गन्स्ती।

(व्यतीहारे ७।, पन्।१।, स्त्री।१।)।

^{*} स्वन्द् इल्व् चरणे स्वदः, विगादन्यव स्वन्दः। जि इत्वीङ युती एषः काष्ठं, भन्यव इत्वः। भवपूत्र्व उन्द धी क्षेत्रे भवोदः, भवादत्यच उन्दः प्रीन्दः। यस्य ग मीने, हिमस्य यस्य गं हिमयथः प्रयस्वा प्रयस्वा भवाद प्रति प्रयस्वः। स्कृत स्कृतः चिम्रस्यः स्कृतः प्रात्ते। स्कृतः ज्ञानस्य स्कारः, स्कृतः। स्कृतः प्रति (७८३) भीजीङ इत्यनि भा कृते, स्कृतः धातोय स्कृतः इति सिद्याविष, निपातनं, पचे स्कृतिः स्कृतः इति भिष्ट-निवाद-धायं। रन्नौ अरागे, करणे भावे वा रागः, भवावे रङः। चि ज न चित्यां कायः. निकायः, भाकायः, भवाव चायः मिचायः भाचाय इति । चितियितेत्वर्यः। पाणिनः ६।४।४०, ६।४।४०, ८,४०,२०,९८, १।३।४१।

[†] खान धातीः उडर इका इकावका एते स्युकाभावे इत्यर्थः । उडरशी डिलात् टिलीपः । वार्त्तिकामः।

[‡] विनस्य ग इत् ब्रह्मयं:। संपूर्व व स ध्वनी भावे किने, ब्रही, संराविण इति स्थिते, (४३३) स्तार्थे की, (४९६) चित्ते विरिति भादाको ब्रही, (२५८) ययोकोप इत्य-कार-कोपे, सांराविण, बङ्गां समवेतग्रव्य इत्यथे:। पाणिनिः श्रीष्ठ, प्राधिष्र ।

धोर्भावे चन् स्थात् व्यती हारे, चनन्तात् खार्थे चाः, तदन्तय स्तियां। व्यावहारी। *

१९८२ । दिताऽयुभीव । (द्वितः था, षषुः ११, भावे २०)।

. टुकारेती घोरघुः स्यात् भावे। वेषयुः । 🕂

१९४३। डितस्तज्जे चिमक। व (ड्वितः ४।, तज्जे भ, विमक् १।)।

डुकारेत स्त्रिमक् स्यात्ध्वर्धातिष्यत्रे। करणाज्ञातं क्रतिमं।\$

१९४४। स्वप रच्चयत प्रच्छ विच्छ याच यजो नङ्भावे न जि:।

(खप- यजः, ४।, नङ् ।१।, भावे ७।, म ।१।, निः १।) ।

णनी णकारी तदार्थ:, दल्यनकारसु (१०००) दुनीमृज्यलाहीति चप्रत्ययेन सह प्रभेदार्थ: तत्पत्तच (४२०) श्रीर्यमदानीत्यव ध्यतः। भकार-स्थित:। परस्परः व्यवद्वरणं दति वाकी व्यावहारी, व्यव-इट-णन्, (५००) वर्षत्वः, व्यवहार दति स्थिते, (४३३) स्तर्थे था:, (४१०) श्रीगृंग इत्याच शाननावर्जनात् यकारस्य न इस, (४१६) भादाची वृद्धिः, (२५८) अफारलीपः, (२५७) विस्तादीप्, पुनः भकारसीपः। एवं यरस्यर-व्याक्रीयमं व्याक्रीशीत्यादि। पाणिनिः १।१।४३, ५।४।१४।

[†] टु इत् यस्य स दिन् तस्रात्। प्रथम् योगात् स्थतीहारस्य स्त्री इत्यस्य व नानुवृत्ति:। वेपनं वेपणु:। एवं वसधु: दवधु: साजधुरिखादि। पाचिनि: ३।३।८८

[‡] डुद्रत्यस्य स ड्वित्तसात्। तसात् (धालर्थान्) नातं तस्त्रं (೭೭७) उपस्थर्यः सिसं, तिस्मिन्। डुक अर इस्यक्षान् तिमक्, किस्वादगुणे क्रिक्मं, एवं डुढाड दिविमं (१०८८) दा स्थाने दन्, जुधा अ (१०८६) दिविमं, खुपच व पिक्रमं, खुवर छप्_{विसं,} दुभ ज्यविमसित्यादि। पाणिनिः शश्विम, ४।४।२०।

एभ्यो नङ्स्यात् भावे, न च जि:। स्तप्नः रक्ताः यत्नः प्रश्नः विश्वः याज्ञा यज्ञः। ॥

११८५ | किहैं। दिनारों: । (कि: १), द ५।, पन्तर्नी: ५।)। अन्तरों गेव परात् छा-संज्ञकात् कि: स्थात् भाते । अन्तर्किः आदि: । १

१९८६ | ढाड्डे | (डाग प्रा, डिंश)। ढात् परात् दः किः स्थात् डे। वारिधिः पयोनिधिः । ही

११४७ । ति: स्व्यक्षे । (कि रा, खी । रा, अवे २०)। धी: ति: स्थात् न तु चे, तदन्तय स्त्रियां। किति: बुद्धिः मिति: स्मृति: प्रकृति:। (१०८२) स्नुदेः स्वः तौ चेति। प्रस्नृति:, भूति: फुल्ति:। §

[•] नकी डिचात् गुणाभावः, निस्थितः। निर्मिति निर्धयात् हिंदशे गाइ-स्वपायीरिति प्राप्तस्य जेनिषेषः। प्रत्रा, विद्यः सभयव (८१४) की. ग्रहाविति सन्ध्य त्र.। याच्ञा इति (४६) नस्य जः, घनिधानान् स्वीतं, (२४९) त्राप्। यज्ञ इति (४६) नस्य जः। एषुः (१०३३) इव्वतंनिति इस्निष्धः। पाणिनिः ३।३।८०,८१।

⁺ भन्तर्शनं भन्तर्दिः, भादानं भादिः, कित्स्धदगुर्थः, (६१०) उसेचीति श्रासीपः । पाषिनिः ३।३।६२, वार्षिकञ्च ।

[‡] उद्भिधकरणवार्ष्यः। वारिधीयतेऽिकाम्, पयोः निधीयतेऽिकान् इति वाक्यद्वयं। पाणिनि: ३।३।८३ ।

[§] घः कर्चा, तस्त्र वर्जनात् अर्चृभिन्न-कारके भावे च वाच्ये दश्ययं। क्रियतेऽसी द्रति कर्माय, करणमिति भावे वा क्रितिः। बुध्यते ऽतया इति करणे, वीधनमिति भावे वा बुदिः, (५७५) तस्त्र घ, (६४) घस्य द। मननं मितः, (६०६) जम्लीपः। भारचं स्तृतिः। प्रक्रियते इतया करणे प्रक्रतिः। प्रद्वादिनं प्रद्वाचिक, (१०१३) इव्यति-

१९८८ । कृगृ ज्याग्लाहाल्लादेनि:।

(कु--- लादे: ४।, नि: १।) ।

एभ्य: परस्या: क्ते निः स्थात् । कीणिः गीणिः ज्यानिः ग्लानिः हानिः लूनिः पूर्णिः । *

११८ । साति हिति यूति जूति। (१००)। स्यति-हिनोति-यौति-जवतीना-मेते स्वन्ता निपात्यन्ते। पे

ृश्यू०। शौ वज यज विद खास मन चर भटांचीन समज निपत निषदः काप्।

(भी--निषद: ५।, काप ।१।)।

एभ्यो भावे काप् स्थात् तदन्तय स्त्रियां। यया व्रज्या इच्या िया सुला त्रास्था मन्या चर्या भत्या त्रटाव्या इत्या समज्या निपत्या√निषद्या।'ंं '

रितीम्निवेर्धः (प्रह्वत्रिरित त सिडान्तकौसुदी) । भूयते ऽनया भूतिः संन्यक्तिः, भवन-मिति वा, (१०५३) वृद्यौति इम्निवेधः । फलनं फुल्तिः, (१०८०) चरफलाऽदुरिति स्रकारस्य छः । पासिनिः ६।३।८४ ।

[•] सूचादि यस स लादिः, कृष गृष ज्याय ग्लाय हाय लादिष, समाहारे तसात्। लादिष (७६६) सृष्टोकायां द्रष्टव्यः। कीर्णिरित, कीः स्थाने निः (१०५१) द्रम्निषेषः, (६२८) ऋष्याने दर्, (१२८) दोषः। एवं गीर्णः। ज्यानिरित्यव कीः स्थानिवल्वास्त्रीकारात् (६६१) न निः। हानिरिति हा-ङ धातोः कीः स्थानि निः, (६१२) दासागैहाक दित हाक-यहणात् न छो। ("चो हाक् हानिरपचयः" दित तु संवितसारः)। लूनिरिति (१०५१) द्रम्निषेषः। पूर्णिरिति पृधातोः। पूर्णिरिति तु पूर-धातोरेव। सपन्ने संवितसारे च तु पूष्टातेः पूर्णिरित। उषादिः, वार्षिक्षः।

[†] सीय नाशं, हिन वर्डने गतौ, यु ल नियणे, जु गतौ, एवानेते प्रयोगा इथाये:। साति रिथाय, (१०८५) दोषोमास्यां किरिति न कि:। पाणिनि: १।३।८०।

[।] भव, सूर्व भावे इति नीका हत्ती भावे इति व्याख्यानात् प्रयोगानुसारिस

११५१ | कु: श्या (कः था, मः १।, म ।१।)।

करोते: ग्रःस्थात् काप्च, भावे, सच स्त्रियां। क्रिया, क्रत्या। अ

१९५२ | सृ-जागुर्धः । (स्-जागुः प्रा, यः रा)। श्राभ्यां यः स्यात् भावें, सच स्त्रियां । परिसर्था जागर्था । 🕆

११५३। ग्रांस्याद:। (र्णम् त्यात् प्रा, णः रा)।

कर्नुभिन्ने कारकेऽपि स्यात्, यथा, भिनेऽस्यामिति अधिकारणे भ्रत्या खुट्टादिः, भ्रायनिमिति भावे वा, क्यप्, (८१५) भ्रोडिंगे उत्यः, स्त्रीलात् (१४८) आप् । तज्ञनं त्रत्या । भ्रम् रं त्रत्या, (६६१) जि । विटल्यनया द्वित करणवार्चे विद्या, विदनं (ज्ञानं) इति वा । भवनं (यज्ञनं) मृत्या, (६८२) तन् । भागेनं आस्या अन्यते ऽनया सन्या (पथाद्यीवाभिरा), मननिमित वा । चरणं (आचरणं) चर्या । भरणं (पीषणं) भ्रत्या । चट-यंङ्, घटाद्यभातोः क्यप् (९०५) इमाल्लोप दित क्रमञ्चः अकौर-यकारयी-र्णेषः प्रदाद्या मृहुर्भनणं । एति भन्या, भ्रयनं वा, द्वत्या । समजन्ति (मङ्क्ति) भर्यामिति समन्या, सभा, समजनिति वा । (५८६) कैय्वर्जनात् न वी-भादेशः । निपतन्यस्थामिति निपत्यां, पिक्तिस्था मृतिः । पिवीदन्यस्थामिति निपत्यां, क्रयविक्रय-मृतिः । पाणिनिः १।१८८,६८ वार्त्तिकः ।

^{*} म इत् र-संज्ञः, अकार-स्थितिः । जःमः, (भाववाकः) (८२१) र-तनोरितिः यक्, (६२०) चत् रिः, स्तियामाप्, किया । कापि च, गुणाभावे, (८८२) तन्, क्रत्या । अत्र चकारेण कोरपि ससुद्ययात् कृतिः इति च । पाणिनिः ३।३।२००।

⁺ परिसरणं परिसर्था, परिपूर्वसीत प्रथोग:। जागरणं जागर्या। वार्त्तिकस् |
‡ श्रम्स च व्ययिति शंख्यं तथात्। त्यः प्रव्ययानः। प्रशंसनं प्रशंसाः।
हश्यस्त, (१५४) षङ् (६०२) षस्यकः, दिहत धातीः च-प्रव्ययः, (५४३) पूर्वाकारखोपः, दिहसा। एवं चिकित्सा इत्यादि। श्रटाटा इति श्रटश्यङ्, अटाव्यधातोः

१९५८। सेम्कात् सरोः। (स्मकात् धा, सरोः धाः। यसात् को विह्नितः सेम् स सेम्काः, तस्मात् कमती धोः श्रः स्थात् भावे, सच स्त्रियां। ईहां जागरा। सेम्क्तात् िकां, नीतिः राहिः। कमतः किं, पत्तिः। अ

११५५ । तुलेच्छारा तारा अारा कारा हारा गीधा लेखा रेखा चूड़ा:। (१॥) । एते क्रान्ता निपालनी । चोदना चूड़ा । १०

११५६। भौषि चिन्ति पूजि कथि कुम्बि चर्चि स्पृह्ति तोलि दोलि षिट् भिदाद्यात्वर्घटादे क्ः । (भौष - भावर्षटादः ४।, ७ः १।)।

मः, (७०५) प्रकार यकार्यो लेंग्यः । कल्डूया इति कल्डूग्रन्दात् (८५४) क्यः, कल्डूय घातीः मः । मनः परत्वात् (७०५) न भकार-यकार-जीपः । एवं च्यतीया गीपाया इत्यादि । पाणिनिः ३।३।१०२ । ''श्रंक्षिप्रत्ययदः" इति कातन्त्रे कृत्सुपभ्रमे पादे ।

इसा सइ वर्त्तते यः स सेम्, सेम् की यद्यात् स सैम्कलस्यात्। सेमक्रात् गुर्व्यचर्यकात् घातोः म्नः स्थादिस्थंः। द्वेडनं द्वेडा, कागर्षं कागरा। क्री क्रते द्वेडितं कागरितं। नयनं, नीयते ऽनया इति वा, नीतिः; राधनं राडिः। क्री क्रते नीतं राडं। पत्तिरित पत-क्रिः, क्रं पतिर्तानित। पाणिनिः ३।३।१०३, वार्तिकेष्ठा।

⁺ तुल घाताः, तीलयत्यनया तुला परिभाषदस्यः । इत्र घानी-रिच्छा । स्ट— घारा कुरिका । तू—तारा नचत्रं, छत्ताकारियौ भगक्तौ च । ध—घारा द्रवद्रव्यपतनं, ब्रह्मादिपतनं, खड्गादि निशितस्यलं, समूहः. प्रकारय । कू—कारा वस्त्रनालयः । इ—इत्रा इर्षां, द्वारय । गुध—गोधा अङ्गुलिनं, गोधिका च । लिख—लेखा लिखनं, लकारस्य रेफे रेखा च भूगो । चट—चूड़ा, चोटना प्रेरणा इत्यर्थः । पाणिनिः शशरि १,१०४ । तुलाग्रस्टम् प्रथक् सिद्धः ।

एभ्यो भावे: ङ: स्थात्, सच स्त्रियां। भीषा चिन्ता पूजा कथा कुम्बा चर्ची स्पृहा तीला दीला, पचा, भिदा किदा गुचा विदा चिपा जना पीड़ा सरा वसा रुजा, घटा व्यथा लगा 🕸

११५७। चाता ऽन्तः खर्गे:। ं (भातः ४।, भन्तर् यत्गे: ४।)।

णभ्यः परादादन्तात् ङः स्थात्, सच स्त्रियां। अन्तर्दा अदा. संज्ञा प्रमाः। 🕆

११५८। ञी-िष स्रन्यि ग्रन्थि वेत्ति वन्हासी

(जि— त्रास: ५।, त्रन: १।) ।

एभ्यो इनः स्थात् सच स्त्रियां।

^{*} ष इत्यस्य स थित्। भिद भादि र्यस्य स भिदादि:। भावर वरपर्यनः. स चासी घटादिशति त्रालर्घटादि:। ततः, भीषिय चिलियेणादि इन्हें तस्मात्। भीष्यादि दीलि-पर्यन्ता नव त्रान्ता:। वित् गणपाठ मूर्जन्यवकारत् धातु:। भिदादि र्गणः । उत्तरस्य उत्तरं, भकारस्थिति । भी जि, भी वि— उत्तः, (६४१) जेलीपः, (२४८) भाष, भीवा। एवं चिना इलादि। पचा इति जुजी वृपच पाने, विस्तात् छ:। एवं चजा समा क्यादि। भिटादि यंथा, भिटा किटा गुडा विदा चिपा एषु जिल्लात् न गुण:। जना इति (२३०) इनगर्भत्यत्र ज्वर्जनात् न छङ्-स्रोप:। सरा इति (६१८) दशीरिति गुण:। भालर्घटादि र्यथा, घटा व्यथा लारा। एवं जुलरा, भय भया, चप चपा, खज्जा खज्जा, नंध मेधा, वप वपा, कप क्तपा इत्यादय:। पाचिनि: १।१।१०४,१०५। भीषि इत्यारभ्य दोलि इत्यत: सब्दे क्रसिकं कातल्वसः।

[🕇] चलर्धानं चलर्जा, एवं अद्धा, अत् इत्यव्यर्थ। संभायतेऽनया संज्ञा नाम। प्रभीयतेऽनया प्रमाणमिति वा प्रमा। एषु (६१०) उन्सेचीति आः-लोपे, स्त्रोलादापः। पाणिनः ३।३।१०६, वार्त्तिका ।

कारणा ईषणा यत्यना ग्रत्यना वेट्ना वन्दना घासना। 🕸

१९५६ । प्रऋाख्याने िं!। (प्रय-पाछाने ०।, विः १।)।
प्रश्ने प्राख्याने च घी पिं: स्थात्, सच स्त्रियां। कां कारिमकार्षीः, सर्वीं कारिमकार्षे। पं

११६०। नजो उन्याक्रोगे स्त्री।

्नञ: प्रा, व्यनि ।१।, व्याक्षीधे ७।, स्त्री ।१।) ।

नजः.परात् धी रनिः स्यात्, त्राक्षीमे, सच स्तियां। त्रजीवनिस्तवं भूयात्, अप्रयाणिः। 🕸

११६१। ईषत्-दु:सा: खल् भावे हे।

(देवत्-दुर्-सी: ५।, खल् ।१।, भाव ७।, दे ०।)।

एभ्यः परात् घीः खल् स्यात् भावे ढे च । ईषदाळाभृवं भवता, दुराळाभृवं भवता । ईषत्करः कट-स्वया, दुष्करः सुकरः । §

^{*} जिर्जानः, जिय ईषिथेस्यादि इन्हः। कारि— भनः कारणा इत्यादि । एषु (६४१) जे स्नेपः। पाणिनः, ३।३।१००, वार्त्तिकचा। ''द्रपेरनिच्छार्थस्य'' इति वार्तिको तु द्रप्रधातीः भ्रत्वपणा। कातन्त्रे तु द्रपिधातुर्तिः खितः।

[†] चि इत्यस्य च इत् बद्धार्थः, इ-स्थितिः। क-चिः, (५००) वृद्धिः, कारिः कार्यः भित्यर्थः, चकार्थः लक्षिति प्रत्रः, चकार्यं चहमिति श्रेषः। प्रत्रे, चाव्यभि (उत्तरदाने) च उदाहरणदयं। पाणिनिः ३।३।४१०। एतव्यति विभाषा। विभाषायहणात् पर्च यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति, क्षियां क्षत्यां क्षतिं वा।

[‡] भ-जीव-भनि: भजीविन:, भ-प-या भनि: भप्रयापि: (८६८) नीऽच इति खलं। स्यधिकारिऽपि स्त्रीय इषं स्यधिकारिन वृत्त्ययं। भाकीशे कि, भक्रतिसस्य घटस्य। पाणिनि: ३।३।११२।

[§] खल: ख-लौ इतौ, भकारस्थिति:। एषामव्ययलान् (१०१४) खिन्कार्थाः भावेऽपि, ईषत्दु:सी:॰ परान् धाती: खल्विधानसामर्थान् भाव्यादिशय्दस्यवधानेऽपि

११६२। मातो उनो उहरिद्र:।

(भात: ५।, भन: १।, भदरिद्र: ५।)।

दरिद्रावर्जादादन्ता-दीषष्टुःस्गेः परात् श्रनः स्थात् भावे टे च । ईषत्पानः दुष्पानः सुपानः । श्रदरिद्रः किं, ईषहरिद्रः । *

११६३। देश शास युध धष स्वषी वा।

(हम---स्यः ५१, वा ।१।)।

केषत् दुः सोः परेभ्य एम्यो ऽनः स्यात् भावे दे च वा । सुदर्शनः सुदर्भः, दुःयासनः दुःयासः, दुर्योधनः दुर्योधः, सुधर्षणः सुधर्षः, ईषण्मर्षणः ईषण्मर्षः । १०

११६४। तादथ्य चतुम्। (तादधं अ, चतुम्।१।)।

भी- बतुम् स्थात् तादर्थें। क्रणां द्रष्टुं याति । 🕸

स्थादिति, तेन, ईषदाकान भूयते इति वाको ईषदाकाभव्दात् भूषाती भवि खल्, गुणः, खिल्लात् भाकास्य मन् ईषदाकाभवं, एवं दुराकाभवं। ईषद्वार्टीकायतेऽसी ईषत्कारः, एवं दुःखेन क्रियतेऽसी, सुखेन क्षियतेऽसी, एव भव्ययलात् न मन्। पाणिनिः ३।३।१२६।

- ईवन पौयते उसी, दुःखेन पौथते उसी, सुखेन पौयते उसी, एषु कर्माण चन: ।
 ईवन दिस्द्रायते इति पुळींण भावे खल, (७०२) दिस्द्र चालीप:। पाणिनः शश्रद्भ ।
- † सुखिन दृष्यते ऽसी, भन: सुदर्भन:, पर्च खल सुदर्भः। दुःखेन भिष्यतेऽसी दुःश्वासन: दुःशास:। दुःखेन युष्यते ऽसी, दुंशासन: दुर्थोधः। एवं सुखेन ध्र्यते ऽसी, दूंधन सृष्यते ऽसी,
- ‡ स घालयं:, स चासी चर्यः प्रयोजनश्वित तदर्थः, तस्य भावसादय्ये तिसान्।
 यस्य धातीरर्थः चन-धालर्थस्य प्रयोजनं भवित तस्यात् धातोः चतुम् स्यान्, च इत्
 चस्ययं, तुम्-स्थितिः। चन भवि वाची भविष्यत्वत्ताले चेति बीष्यं। द्रष्टुमिति
 ह्य-तुम्, (६०४) च्हकारस्य र, (१५३) वक्, (४०) तस्थाने ट। चन हम धातोर्यः
 या-धालर्थस्य प्रयोजनं। क्रिययोरिककर्नृत्वे सस्येव चतुम् स्थात्, तेन विग्नं भोक्तं
 निम नायते इति न स्थात्, भोजनाय निमन्तयते इत्येव स्थात्। प्राणिनः श्रारप्रिः।

११६५ । त्ताच्वानिषेघेऽलं-खलुना।

(क्वाच् ।१।, वा ।१।, निषेधे ७।, ऋलं-खलुना १।) ।

निषेधार्थयोरलं खल्बोर्योगे घोः क्वाच् स्यादा भावे। अलं दल्वा अलं दानेन, खलु पीला खलु पानेन। *

११६६। पूर्वकाले। (a)

पूर्विस्मिन् काले स्थितात् धीः क्वाच् स्थात्। विशां नला स्तीति। १

'११६७। , न कित् स्कन्दखन्द:।

(ग।१।, कित्।१।, स्कन्द-स्थन्द: ५।)।

स्वन्वा स्वन्वा । \$

क्रमुच यकारोऽव्ययार्थः, क इत् गुणाभावः, ला-स्थितिः । चलं दत्ता दानं निषिद्वित्तिव्यर्थः, (१००८) दास्थाने दन् चार्दभः, पचे दानेन (२८८) सहवार्णनिति त्रतीया। खलुपौला, पानं निषिद्वित्तव्यंः (६१२) दामा इति ङौ। पाणिनिः ३।४।१८ ।

[†] यदा कत्ती कियाइयं कियात्रयं वा करीति तहा परिक्रयिपेत्रया पूर्विधिन् काले वर्त्तमानात् घातीः भावे क्वाच् स्यादिर्स्थयः। विष्णुं नत्ना स्तीतीति ज्ति-क्रियायाः पूर्व्यकालं वर्त्तमानात् नमःधातीः क्वाच् (६०६) जन्लोपः। नमति च स्त्रौति च इत्यादौ समकालत्वात् न स्थात्। भ्रत्नापि क्रियाषाःमेकक भृत्वे एव क्वाच् स्थादिति। पुत्रं टहास्यं भवतीत्यादौ तु स्थितस्थ्यध्याद्वादारेकक र्त्तृत्वे। भनन-क्रत्य पतित्, सुखं व्यादाय खिपिति इत्यादौ तु पूर्वकालिविषयेति वक्तव्यं। पाणिनिः १।४।११।

[‡] आध्यां परः क्वाच् किक्न स्थान् । क्वाचः किक्त निषेधसः फर्लं (५६०) इसुड्न इति न लीपाभावः । स्वल्वा इति चौदित्वादिम्निषेधः, स्थल्वा इति कटित्वादिमें विकल्पपथे जदाइरणं । उभयव वधी यवैक्षवर्गीया भध्यमकाव लुष्यते इति दःलीपः । एताभ्यां क्वाच् एव किक्षनिषेधः, क्वाच-स्थानजातस्य यपसु किक्तमेवेति, तेन प्रस्तय प्रस्यय । पाचिनिः दाधाहर ।

११६८। सेमऽत्तुघ कुष क्रिय गुघ खड़ स्टर वट वस ग्रहः। (निम्।१५ प्रतुष न्यहः ॥)।

धोः पर इम्सहितः त्वाच् किंत्र स्थात्, नतु चुधादेः।. ग्रयित्वा। सेम् किं, युत्वा। चुधादेः किं, चुधित्वा। अ

११६८। हष स्व स्व वज्य जुज्जुतो वा । ·

एभ्यः सेम् क्वाच् कित्र स्थादा। तर्षिला मर्षिला कर्षिला विचला लुचिला अर्त्तिला। पत्ते त्रिषला द्रलास्यः। 🏰

११७०। यफान्तुङ:। (य फान ४१, नुङ: ४।)।

नकारोङस्थान्तात् फान्ताच सेम् क्वाच् कित्र स्थादा । यत्थिता यथिता, ग्रन्थिता यथिता, गुम्फिला गुफित्वा । तुङः किं, कोथिता रिफिला । इ

[ः] सह इसा वर्तते थीऽमी सेम्, क्वाच् द्रवस्य विभेषणं। भायता हैति शी ला, (५५४) वसीरस्थेतीम्, क्विचिक्ष्यात् (५४२) गुणः, (१५) एस्थाने अय । चुधिलां हित, एवं कुषिला क्विगिला गुधिला सहिला चहिला चहिला चहिला चौधला गरहीला।एषु चुधिला चिपला चभयव (१०६६) चधवसेतीम्। क्विगिला हित जहिलात् (५०६) चधवसेतीम्। क्विग्ला हित जहिलात् (५०३) इस्पेच प्रयोगः। भ्रथेष (५५४) वसी स्थेतीम्। चहिला चिपला गरहीला हित (६६१) जि:। गरहीला हित (७०१) इसोदीर्थः। पाणिनिः १।२।१८,७,८। चोधिलापीति भटीजि दौष्तिः।

⁺ स्टन इति स्टत धातुः । तर्षिता इत्यादिषु (५५४) वकीऽनस्यंतीम्, किस्ता-भाष-पचे यद्यासभावं गुणः गलीपाभावष, किस्तपचे तुगुणाभावी गर्णीपय । पाणिनिः १।२।२५,२५ । एतन्प्रकंक्षप्रः तालव्यान्तः ।

[‡] येन विधिस्नद्रन्तस्येति कायात् धानात् फान्तादिति। श्रविलेयादि सर्वव (१५४) वनीऽरस्थेतीम् । किल्लाभात्र-पत्ते नलीपाभावः, कितपत्तं (५६०) नलीपः । कोषिन्नारिकतारित (११६०) सेमऽलुधेति किल्लिनियेष, गुणः । पाणिनः १।२।२२।

११७१। नश्-जोऽनिमः। (नम्-णः धा, पनिमः धा)।

नगो जान्ताच नुङोऽनिमः परः क्वाच् किंद स्वादा। नद्दानंद्दाभक्वाभङ्का। प्रनिमः किं, प्रस्तिला। *

(८१८) ब्युडी इसारेरिति। बुतिला चीतिला, लिखिला लेखिला। करारेसु करिला विदिला मुण्ला। अवः निं, रेनिला। इसारेः निं, एपिला प्रोपिला। पे

११७२ । पूक्तिशुदित इम् । (प्-िक्त म- चितः ४।, रम ।१।)।
एभ्यः काच 'इम् स्यादा। पविला पूला, क्रिशिला किष्टा,
शमिला शान्वा। ध

११७३। क्रामी द्वीं वा। (क्षम: ६।, र्च: १।, वा।१।)।

^{*} न्यू च ज चित तस्मत्। नद्दा इति, नय छ यू नाये कदिखात् (५०१) इसीऽभावपत्ते (०४१) तृष् रध इति तृष्, कित्पचे (५६०) न-खोपे, (१५४) षड, (४०) तस्माने ट। पिकत्पचे नस्यानुस्तारः नंद्दा इति। भक्ता इति, भन्न धौ सीटने, पौदिलादिसीऽभावे, कित्पचे न-खोपे, (२११) कुड, पिकत्पचे (५०,५१) नस्यानुस्तारः, तस्य च ङ्। प्रश्चिला इति कदिखात् (५०३) इस्, (११६८) सेमऽचुधेति किस्तनिष्धे, नस्यानुस्तारं, तस्य च छ। पिनश्पचे तु पक्का पङ्का इति। पाणिनिः ६।४।३२।

[†] व्युकोऽवी इसादेरित्यंसीदाइरणमाइ, युतिलेखादि (५५४) वसीऽरखेतीम्। टेविला इति दिव्यु क्षीड़ायां उदिस्तात् (११०२) पृक्षिग्रदित इति वा इम्, (११६८) नित्यक्तिस्तामावे गणः। सनिम्पचे (८१४) यूला इति। एविला भीविला इति कदिस्तादनग्रेरिप वेमलादिम्पचे नित्य-किस्ताभावः। पाणिनिः १।२।२६।

^{‡ (}१०५३) बृदुश्रीत्यनेन कित इस्-निविधादमाप्ती विकालार्थे पू इत्यस यहणं, पविला (११६८) सेमऽल्धिति किलानिवेधात् गुण:। तत्रैव किशवर्जनात् किशिलेखन न गुण:। श्रान्ता इति (१०३८) असुङ इति दीर्घः, मस्रानुस्वारसस्य च नकारः। पाचितिः अ२।५०,५०१,५६।

क्रमिला, क्रान्या क्रन्या। #

११७8 | जुब्रद्धा न जि: | (मृत्वयः ४।, म ।१।,जिः १।)। श्राभ्यां जाच इम स्थात्, नत् वसे जिं:। जरिला वसिला। गं

११७५। 'हाको हि:। (हाकः ६।, हि: १।)।

हिला। 🕸

१९७६। व्यादनजः क्यो यप से। (व्यात् प्रा, चनजः प्रा, कः दा, यप् ।१।, से ७।)।

नञ्वर्जात् व्यात् परात् धीः क्वो यप् स्यात् से सति। प्रकर्षेण कला प्रक्रत्य, प्रवत्य प्रतत्य प्रहत्य, उद्ज्य, प्रदाय प्रमाय प्रगाय प्रहाय प्रपाय प्रस्थाय । §

क्रमी घं स्यादा क्वाचि । क्रमिला इति चुदिच्यात् पुक्तिग्रदित् इति इम्, विकाल्यपचे अपनेन वादीर्घः। पाणिनि: ६।४।१८।

[†] विभाषाइयमध्यवर्त्तितादस्य नित्यता। जरिता इति (१०५३) व्यद्शीति इम्-निषेधेऽपि, चनेन इस, (१९६८) सेसऽच्धेति कित्त्वनिषेधात गुण:। (६२७) वृती वेनीर्घद्रतिवादनी दीर्घले जरीली दलपि। व्रथिना दति कदिखेन वेनलेऽपि चनेन नित्यमिन्। सेम्ब्राचः किस्वनिषेघादेव जेरप्राप्ती अपत्र जेनिषेधः, प्रवस्त्र द्रति क्वाची यपि जिनिषेधार्थः । पाणिनिः ०।२।५५ ।

[🛨] डाको हि: स्यात्। डाक: किं, डाङ इत्यस्य डाला। पाणिनि: ०।४।४३।

[§] नास्ति नउन् यत्र सीऽनउन्तस्यात्, व्यात् इत्यस्य विशेषणं। प्रकर्षेण क्राता इति (५४८) व्यस्य ग्यनुकारीत सनासे, भनेन काची यपि, काच: स्थानिवस्तेन किस्तात् गुणाभावे, (८८२) खरा तन्, प्रक्रत्य। प्र-वन प्रवत्य, प्र-तन प्रतत्य, प्र-क्रन प्रहरा, एषु (६०६) अम्लोपे, खस्य तन्। उद-भन्म (५६०) इस्ङ्न इति न-खोपे चढ्जा। दा इत्यस्य प्रदाय, ना इत्यस्य प्रनाय, गैप्रगाय, इान्स प्रहाय, पा पाने प्रपाय, स्था प्रस्थाय, एवु (६१२) दामागै इत्यत्र यप्वर्जनात् न ङौ। पाचिनिः 1 ७३।३१७

(७४३) दीङष्ठामिति यपि ङा, प्रदाय। (७४५) मिन्यी-रिति ङा, प्रमाय, प्रलाय प्रलीय। *

११७७। न्त्रोपो वानिमः।

(म्-लोप: १।, वा ।१।, चनिम: ६।)।

चनिमो मस्य लोपः स्यादा यि। प्रमत्य प्रमास्य । चनिमः निं, प्रथम्य । पे

११७८। वो जेरयः। (वी: ४१, जे: ६१, श्रय: १।)।

षु-पूर्वस्य जेरय: स्यात् यवि । विगणय्य । घोः निः, सम्प्रधार्यः ।

·११७६ । वाप:। (वा ।११, आपः ५१)।

श्राप: परस्य जेरय: स्यादा यपि। प्रापय प्राप्य । §

१९८०। वा मेच्यो मिच्यो ।

(वा ।१।, भ-च्छी, ६॥, मि च्यी १॥)।

मेङो मि: चे: ची स्यादा यिष । अपमित्य अपमार्थ, प्रचीय प्रचित्य रेभ

श्रीदो डिय चर्य, ङा प्रदाय। डुनिज न चंपे, मी ङ्य तृ, मी जग बधे एषां डा प्रमाय। ली इत्यस्य विकल्पे डा पृलाय प्रकीय इति। श्रनजः किं, न क्रता श्रक्तता। से किं, सर्पोद क्रता इत्यादी न यप्।

[†] प्र-नम् क्वाची यपि भनेन मलीपे, स्वस्य तन् प्रणत्य, पत्ते प्रणस्य, (५४६) णत्यं। एथं भागत्य भागस्य भ्रथादि । प्रश्नस्य दति सेमलात् न मलीपः, एवं विकस्य भाचस्य भ्रत्यादि । निर्जित्य भाइत्य विश्वत्य स्थादी भागमविधिवंशवस्वात् भादी स्वस्य तन्, स्तरां (५८०) घाँऽजय्यरे दति न दीर्घावकाशः । पाणिनिः ६।४।३६ ।

[‡] लघीरव्यविद्यास्थातस्य जिरसभावात् इस्व्यवधाने इत्यथः। वि-गणि इति आक्तात् क्वाचीयपि, भनेन जैः स्थाने भय, विगणव्य, एवं विषटव्य इत्यादि। सं-प्र-धारि इति आक्तात् यपि, धा इति गुर्व्यवसपूर्व्यतात् अरयाभावे, जलेंग्पे संप्रधार्यं, एवं विभाव्य विनाश्य इत्यादि। पाणिनिः ६।॥५६।

[§] प्र-मापि-यप्रापय प्राप्य इति, गुरुपूर्वत्वादप्राप्ती, विभाषा। पाणिनिः ६।॥५०। গুपुनवीग्रहणं श्वाधिकार निश्चयें। भपनित्य इति से स्थाने नि भादिणे, स्वस्य

११८१। न वे-ज्या-व्यो जि:।

(म ।११, वे-ज्या-व्यः ६१, जिः १।)।

एषां जिनेस्यात् यपि । प्रवाय प्रज्याय प्रव्याय । 🕸

११८२ । सं-परि-व्यो वा । (मं-परि-व्यः ६), वा ११)।
श्राभ्यां व्येजो जिर्वास्यात् यपि। संवीय संव्याय, परिवीयः
परिव्याय। प

११८३। चणम् वाभीच्णेत्र पूर्वकाले। . (चणम् ११), वा ११। चाभी संग्रं ७। पूर्वकाले ॥ ।।

धोः पूर्विकाले चणम् स्थादा पौनः पुन्धे। स्नृत्वा स्नृत्वा नमसि, स्नारं स्नारं नमसि। #

तन्; पर्च (६०८) प्चोऽशिया इति अपमाय । दिधाती: ची इति दीर्धानादेशी प्रचीय, पर्च स्वस्य ति प्रतिस्य । पाणिनिः ६।४।४६.७० ।

७ वे जे म्यृती, ज्यागि जरायां, व्यं जे इती, एषां (६६१) ग्र≰स्वपाद्योगिति प्राप्तीनिनंस्थान् यपि । पाणिनिः ६।२।४१-४३।

[†] सं-परि-पूर्वस्य व्ये जैहती देखस्य जिवां स्थान यपि। संबीय परिवीय सभयव जीकते, (१०३६) जिबें।ऽन्य इति दीवे:। पाणिनि:६।२।४४।

[‡] भभी च्लां सुइर्ण-सव्यं, तस्य भाव. भाभी च्लां तस्यन्। अवापि किय्योरेक कभूकले सतीति बीध्यं। स्नृत्वा स्मृता नमसि, पचे सारं सारं नमसि। स्नृत्वा स्मृता क्षान्या किय्योरेक कभूकले सतीति बीध्यं। स्नृत्वा स्मृता नमसि, पचे सारं सारं नमसि। स्नृत्वा स्व क्षान्य (पा. ८।१।४)। किद्याभी च्लांभिक्षा भिन्नेऽपि चणम् भवति यथा, चीर इति कला इति चीर द्वारमाक्षी मिति (पा. ३।४।२५), स्वाद्धारं भुद्ते (पा. ३।४।२६), स्वक्षांपदं भुदक्ते (पा. ३।४।२६), स्वक्षांपं, तथाकारं (पा. ३।४।२५)। क्षांच्य भव्यमलस्य यंभोत्रो भवति यथा, सम् ज्वातं हिन जीवया इं रिक्सांति (पा. ३।४।३६), चूर्णपेषं पिनिष्ट (पा. ३।४।३५), विद्युत्पृथा मं नम्सित (पा. ३।४।३५) इत्यादि। पाणिनिः ३।४।२२ ६४।

कतो ये यत्र विश्वितास्तत्र नृतं भवन्ति ते। कडोः कभावं इत्युक्ते-रन्यत्रापि प्रयोगतः॥ तथाच । कत्तदितसमासाना-मभिधानं नियामकम्। स्वणस्वनभिज्ञानां तदभिज्ञानस्वकम्॥ *

११८४। बहुलं ब्रह्मिण्। ' (बहुलं १।, ब्रह्मिण ७)।

यदिदं लीकिकप्रयोगव्युत्पत्तये लचणमुक्तं तत् वैदिकप्रयोग-व्युत्पत्ती बहुलं ज्ञेयं। कवित् विहितं न स्थात् (१), कवित् निषिंदं स्थात् (२), कवित् वा स्थात्, कवित् ततोऽन्यद्पि स्यादित्यंर्थः। यथा,—पूर्वेभिः (१), ब्राह्मणाम् (२), द्रत्यादी वेदसिद्धेः। पं विद्यार्थे प्रव्होऽत्र मङ्गलार्थः।

इति इण्वादि पाद:।

क्षदन्ताध्यायः।

. समाप्तम्।

[#] क्रद्रली प्रकारणं समाप्य यणकात् न्यूनता-परिकार्गयेमा ह— क्रती ये इति । ये क्रतः यत्र येष्वयेषु विक्रिताः, ते तत्र तेष्वयेषु नूनं निश्चितं भवित्त । प्रयोगतः मक्षाकि । प्रयोगातुसारेणा च्याचापि स्यः। तत्र हेत्सा हं (८६५) क्रजीः कभावे इत्युक्तिरिति । तथाच, प्राचः इति शेषः । क्रतां तिज्ञितानां समासानाचः, चिभामनं प्राचीनः प्रव्यक्तेष्णविष्यान् प्रविचानमं, यिखान्येयं यिखान् निक्षं चयत्र भवित तिन्नयमकारकं । व्याकरणविष्यान् चन्नभिक्षानां प्रसिद्धप्रसाणस्त्रानंतां तदिश्चानस्य स्वकं प्रकाणकिस्तर्थः।

⁺ ब्रह्माण वेदे, बहुलं — बहुव: (प्रकाराः) सन्यस्य. चूडादिलात (४४६) लः, षण्या बद्धन् प्रकारान् लाति स्टङ्घातीति वहुलं, भादमत्वात् (८६०) जः। सामान्यलात् नृपंसकं। एतत् व्याकत्णं लीकिकप्रयोग-साधनाय, वैदिकप्रयोग-साधनायेन प्रकारा-न्यस्मिप स्यादिल्यंः, तथा इंक किवित्वादि । पूर्वेभिरित्यत्र, भिसः स्थानं ऐस् (१०६) विदितमिप नातं। ब्राह्मणास् कृत्यत्, सम्यानं विस्तः (१०२) विदितोऽपि निविद्यक्ति। वेदिसिदिति इतौ पद्मभी । पाणिनिः २।४।३६, ७३, ७६; ३।२।८०; ५०२ १९३, ०६ १३।२।८० १९३ १०३।०८ ।

परिशिष्ट-पचम्।

लिङ्गानुशासनम्।

(१९४०) स्वीतः स्त्रीलिङ्गस्यगामवलस्याः यत्र प्रचलितामां कतिषय-क्रत्तितः समास-प्रत्ययान्तानामेव लिङ्गनिर्देशः क्रियते ।

• (८६७ स्वस्य टीका द्रष्टव्या।)

क्षदन्त-पुंलिङ्गाः—

(११६४) घञला: *, (११६४) फलला: *, (११४४) नङन्ता: †, (११४५-११४६) कि-प्रत्ययाना: ‡, (१११३) क-प्रत्ययाना: §, (११४२) फ्यु-प्रत्य-याना:, (१०००-१००१) य-प्रत्य-याना: ।

त्रित-पुंलिङ्गाः—

(४७५) इमन्-प्रत्ययान्ताः ¶।

समास-पुंलिङ्गाः---

(३६२) रात्रानाः, (१५३) **महानाः** ॥, (१५४) महानाः।

- अ घञनाः पलनाय भावार्थे एव पुं-लिङ्काः, त्रन्यार्थे तु विश्रेष्यलिङ्का प्रिपि भवनि। प्राथनिष्ठ--- भर्य वर्षे पटं सुखं नपुंसलम् ।
 - † याज्ञा—स्त्री।
 - ‡ इपुधि:-पुमान्, स्त्री च।
 - § दार (काष्ठं), अनु गपुंसक्म्।
 - ¶ प्रेम—नपुंचकनपि।
 - । पुरवाएं -- नपुंसकम्।

कदन्त-स्त्रीलिङ्गाः---

(११४०-१९४८) कि-प्रत्ययान्ताः, (११५०)
भावविहितक्यपप्रत्ययान्ताः*,(११५२)
भावविहितक्यप्रत्ययान्ताः १, (११५२-४१५५)
४१५५) अप्रत्ययान्ताः,(११५६-११५०)
४८-प्रत्ययान्ताः, (११४१) णन्-प्रत्ययान्ताः, (११५८) अन-प्रत्ययान्ताः १,
(११५८) णि-प्रत्ययान्ताः, (११६०)
भनि-प्रत्ययान्ताः।

त्रश्वित-स्त्रीलिङ्गा;---

(४३८) तन्त्रस्ययान्ताः, (१४८) स्वीकाः कृतिपये — (तज्ञित-न्युंसक-लिङ्गाः द्रष्टव्याः)।

समास-स्ती लिङ्गाः— (३८८) अप्रत्ययान-धुर्श्रव्यानाः।

- (टॅर-८-८०) स्वीक्त व्यवनाः प्रायेण कर्म्यविद्वितः कर्मृविद्विता वा दृष्यने, भावविद्वितान् नप्सक्तिन्तः।
- † (८६०-८६८,८०६-८८०) स्वीत-यान्ताः प्रायेषा सारक-विह्निताः, भाव-विद्नितासु नपुंसक्तिकाः।
- ‡ (११६२-११६२) कुर्म्मविहितान-प्रत्ययात्तासु विशेषान्तिकाः।

कदमा नपुंसक लिङ्गाः —

(११६४-११३६) भनट्-प्रत्ययान्ता: *, (११६१) इच-प्रत्ययान्ता:, (१६५०) भावविद्यान-क्षप्रत्ययान्ता:।

तिहत नपुंसक लिङ्गाः—

(४३२) भावार्थ-समूहार्थ-प्रव्यवानाः †, (४३८) स्त-प्रव्यवानाः, (४६०-४६१)

* भावविद्विता एव बीध्याः। कारक-विद्वितालु प्रायेण विश्वेष्यलिङाः। +/(४४८) जनता, बसुता. खलिभी, इलिनी, गोचा, त्यक्षाः—स्त्रोजिङाः। बात्यसु पुंलिङः। तबट्-मयट्-प्रत्यान्ताः *, (४८२) तेज-काकान्ताः, (४८३) शाकट-शाकिन-प्रत्ययान्ताः।

• समास-नपुंसकलिङ्गाः—

(६२२) समाहार-इन्हनिषद्भाः, (६२२) समाहार-इिगुनिषद्भाः t, (६२२) भव्ययोभावनिषद्भाः, (६८५) भव्य-यान-पुरक्षद्धानाः।

 स्तीलिका प्रियमिति।
 † (१६८) प्रकारान-भिन्नाः, पात्रा-दौर्नित नपुंसकानि एवः। (१००,१००)
 स्वयीसुस्तीलिका नपुंसकलिकाषः।

उणादय: ।

(१००१९) स्शीक्त-सङ्कतमाशिष्य कतिपये प्रचलिताः

उषादि-प्रवयानाः विख्यने ।

ı

भड़्य- कर-करहः, तृ-तरहः, स्ट-स्टडः, ल्-लवहः, स्ट-सारहः । भटन्-कन्क-कड्टः, कप-कपटः, क-करटः, कक्-कक्टः, कप-कपटः, सक्-सक्टः, जक् भकटः, स्ट-सरटः। भड-क्-कर्यः, ह-वर्षः। भन्-प्र-एवन्, सह-सहत्, इष्ट-श्रह्त्। भत्-वस-वस्तिः, इन-भहतः। भव्-कस-वस्तिः, इन-भहतः। भव्-कस-वस्तिः, इन-भहतः। भवन् — पत-पतिः ।
भधन् — प्रप-प्रपष्टः, भा-वस-भावसणः ।
भद्द — ग्रू-ग्ररतः, दृ-दृषत् ।
भवि — स-भरिषः, भव-भवितः, भगभग्रतः, भा-ग्रद-सन्-भाग्रप्रचिषः,
ग्रह-यहचिः, तृ-तरिषः, धम-भनिः,
१-धरिषः, भन्न-रत्निः,स-सरिषः।
भवि — भव-भवितः, किंवद-किंवदिनः।
भव्य — स-भरष्यं, १९-पर्जयः।
भप — स-भर्षः, ।
भप — स-भर्षः।
भाष् — स्व-स्वभः, कृ-करभः, कलकल्भः, गई-गईभः, रास-रासभः,

बज्ञ बज्जभः, इष-त्रषभः, मू-ग्ररभः, मल-ग्रलभः।

षम-- षष- षधमः, वाई-वाईमः, काल-कालमः, षर-षरमः, प्रथ-प्रथमः।, ष्रवाष् - काड्-काड्म्यः, कार-कादम्यः, स्था-सम्बः।

षयु, षयू--स-सरयु:, सरयू: ।

भरन् — म्ह-भररं, क्ष-कवरः, चन-चनरः, जन-जठरं, जर्ज-जर्जरः, सर्सन-सर्भरः, दिव-देवरः, सनसन्तरः, वस-जि-वासरः।

वर--ऋ-वरतः।

मल---तृ-तरक्षः, मन्ग-मङ्गलं, छ सर्षः। मल---मन्त्र-मञ्जलिः।

षानक--स्था-लवक:।

चसच्—चम-चमसः, तम-तमसं, नभ-नभसं, पन-पनसः, यु-यवसः, रभ-रभसः, वे-वेतसः।

ग्रा

था — नि कष-निकषा, सस्-इ-समया ।
धाक — तड्-तड्गकः, तड्गः, पत-पताकः,
पा-पिनाकः, वल-वलाका, ग्रल-प्रलाका।
धानक — भी-भयानकः ।
धानक — क्य-क्यानः ।
धान — वट-वदान्यः ।
धार — चड्-पड्यारः, कड्-कड्रारः स्व-भङ्गारः, मन्द-सन्दारः, स्व-मार्जारः ।
धालक — पत-पातालं, चन्ड-चख्यावः ।

इन्-पण-विश्वन् । इतन् -- दष्ठ-रोडित:, इ-ष्ठरिव: । इत्-- तक्ड-तड़ित्, युप-योवित्, छ-सरित्, इ-ष्ठरित् ।

ह

मूं — भव-भवीं:, तन्त-तन्ती:, तृ-तरी:, क्षच-लच्ची:, वात-प्र-सा-वातप्रसी:। मूंकन् — भन-भगीकं, भल-भ्रतीकं, इष-म्वीका, वल-वलीकं, भ्रव स्वीकं। मूंचि — स-सरीचि:, वे-वीचि:। मूंर्न् — कट-भटीर', कृ-करीर:, पट-पटीरं, श्र-शरीरं, शीट शीटीरः। मूंषम् — भन्द-भन्नरीयं, कृ-करीयं, पृ-परीषं, स्-धिरीयं।

ਰ 🖸

उ--- भण-भण: जन्द-इंग्डुं, इष-इष्टुं, कट-कट्रं, स्तन्द-कन्दुं, गङ्गण्डुः, घर-चक्रं, जन-जतुः, जन-जतु, जन-दतुः,तन-ततुः,ट्टु-तक्षः, प्रस्त-त्यक्षः, धन-धतुः, नि-भन्च-सङ्, पट-पट्टः, फल-फण्यः वस्त-मन्दुः, ध-भक्षः, मन-मधु,मन-मनुः, ख-मक्षः, क्सन-मन्दुः, स्ट-दज्ञः, वट-वट्टः, वल-वन्तुः, वस-वसः, विट-विन्दुः, ध्रू-धकः, श्री-श्रिष्टः, स्टन्टत्। दल-कन्तुः, श्री-श्रिष्टः, स्टन्दिनुः, स्ट-कहः। उत्त्र-भाषः, क्ष-काषः, वा-वाषुः, स्वर-सादः।

डत-गर-गवत्, स-मवत्।

ভন, ভনি, ভনা, ভনি—মন-মারুন: शकुनिः, शकुन्तः, शकुन्तिः । **७**नन्—सः घरषः, फर्ज-पर्जुनः, .कृ-करणः, टू-तरणः, हू-जि-दारणः, पिश-पिश्वनः, सिथ-सिथ्नं, व्-वर्णः। **उ**नम् — कुस-कुसुनम् । उमान् — कुस-कुसमाम्। **उर--- भन्क-भ**डुर:, कर्ब-कर्बुर:, चत-चतुरः, दृ-दर्हरः, बस्य-बस्युरः, सन्ध-मधुरा, सद-मदगुरः, सन्द-सन्द्रा, मन्क-सुकुर:, श्राग्र-श्रग-श्रगुर:। **एल-**न्घट-चटुनः, तन्ड-तखुनः । **ए लि--- भन्ग-भहुर्लः** । **उग--- षन्क- प**ङ्गः । चषन्—कल-कलुषं, नइ-नह्षः, परुषः।

জ

क-चम-चम्:, जन-जन्:, तन-तन्:,
दिद्रा-दर्द्र:, बस-बध्:, वद्य-बध्:।
कक-वर्ण-वर्ण-वर्णः, भद्य-भद्यकः, मन्डसण्ड्ल:, श्रम-श्रम्बुल:, बस-बस्युकं।
कथ-मय-स्युद्धः।
कथ-प-वर्ण-वर्णः।
कर-जप-कर्प्रं, खन-खर्ज्युरः, सि मयूरः,
स्यत्-सिन्द्रं।
कल-चन्य-लाङ्क्षः।
कान-गड्-गळ्वः, पीय-पीयूषं, सस्ज-

77

T एनु -- क्र करेणु: । एन्य--- हःवरेष्यः । एरक्-काठ-काठेरः। भौरन्— कठ्कठोरः, किस्-गृकिशोरः, चक्त-चकोर:। चील — सप सपोलः, पट पटीलः। क— वाल-कल्कां, कै काकः, निःसद-निकाः, रा-राका, वल-वर्का, भल-भर्का। काक्-छष-उल्का, सुष-सुकः, ग्रुभ ग्रुकः। कन्— इ.एक:,भीभेक:। काण---चित-चिक्कणः। कातु — क्रान्ततुः । कान — कृ-किरणः, धृष धिषणः। कनम्---वश-उशनाः। कनिन्—तच-तचा, यु-युवा, राज-राजा। कन्यन्— इन्हिरएःं। कपन् -- उत्तरं, विट-विटपः, कप-कयन्—तन-तनयः, भल-मलयः, वल-वलायं, च-इदयं। करन्—पुष-पुष्करं, गृ-शकरा। कल-कान-कान्वज, कु,कान-कोनवः, चुप-चपलः, इरीइरग्लः, पस-पससं, सुष-सुषलं, लन्ग-लाङ्गलं, वल-वल्कलं, व्रष-वृष्णः, शक-शक्तः, भ्रप-भ्रवेणः। कालन् --- कप-कपालः, कुल-कुलालः, तम-तमालः, पन्च-पञ्चालः, पल-पलालः,

पौय पियाल:, ऋष-ऋषाल:, विष्-

विदालः, विश-विश्वालः।

किनन्—सृष-सृषिकः, त्रय-वृषिकः।

कित-वय-उचितः।

बिन्द - पुल-पुलिन्दः । किर—मन-पनिरं, इष-इषिरः, खद-खदिर:, खिद-खिदिर:, क्रिद-क्रिदिर: तिम-तिमिरं, बन्ध-बिदः, भिदिरं, मद-मदिरा, मन्द-मन्दिरं, मिइ-मिदिर:, सुद-सुदिर:, यच-कचिर:, कथ-कथिरं, भी भिविरं, भम-भिभिरः, ग्रष-ग्रविरः, स्था-स्थविरः, स्था-स्थिरः, स्माय-स्भिरः। किष्यन्—भुजःभुजिष्यः। कौटन्---क्-किरीटं, क्रप-क्रपीटं। कु—श्रम-श्रम्ः, कर्ष्-उरः,ऊरः, सॄत्र-ऋजु:, क्त-कुरु:,खन-खरु:,गृ-गुरु:,दृश-पश्च:, पन्भ-पांग्य:, पृ-पुरु:, प्रथ-पृथु:, बन्ह-बहु:, अस्ज-धगु:, सद-सदु:, रन्घ रघु:, लन्घ लघु:, व्यथ-विधु:। कुषम्--पुर्पुरुषः। क् — भन्द भन्दूः, जन,जन-जन्मूः, दिधि-सी- (६ धिष्:, हम-हन्म: । न्न-चि-चित्रं, मिद-मित्रं। काभ-काष्ठं, कथन् --- घव-भ-घवस्यः, कुष-कुषं, रस-रथः। क्थिन्— यस- घस्यि, सन् ज- सक्यि । क्र — त ६ - त र्ष । भारतन् --- कुट-कुझलं । कर्ग्--कु-कुर्रः । कि-भू-भूरि:, स्-स्रि:। म् -- व-ववः। क्कन्-लिइ-जिहा, विश्व विश्वं। क्सि--- कुष-कुदि:। क्मु---इष इनुः। कस — क्रत-क्रतसं,तिन-तीच्यः,श्लिष-श्लच्यः।

ख---सुइ-सूर्वः, श्रम-श्रञ्जः, शौ-शिखा।

गक्-की-कागः, पू-पूगः, ख सङ्गः, सुद-सुद्धः, मृत्यद्धं, सिट-विड्गः। गन्—खड-खड:, गम-गड़ा, गृ-गर्ग: ।

चट—सिव मुची।

जुण — किं-ग्रुकि शारः,, क्रक वच क्रकः-वाकुः, चटचाट, चरचार, जरा-इ-जरायु:, जन-जानु:, तृ-तालु, दृ-दाब, सन-सानु:।

टिषच्—अम औमिषं, किल-किल्लिषं, मइ-महिष:।

ठ --- क्य-व्यख्ः।

ड—पम-पार्छ, क्वांकार्छ, रात-खर्छ, गम-गर्छः, दम-दर्छः, पणपण्डः, सन-मण्डः, रम-रण्डा, सन-पण्डः ।

ड उ — तन-तित उ:।

डक् — गु-गुउ:।

डति — पा-पति:।

डवत् – भा-भवान् ।

जिम्---कौ-किम्।

ड्त--- चत्-भू-चड्डतं ।

डुम्म्--पा पुमान् ।

खू—सम-भुः।

डेस-- छद् वि उत्ते: , नि वि गोचै: ।

डी - गम-गी:, खुत-धी: । खोस्—दस**-**दो: । डी-- को-की:, नुद्-नी: I ड्ट्-स्ये-स्ती। डि—त-चयः।

ड --- सन - वर्छः ।

विवन्-चर-चारित्रं। ष--षज-वेषः, स्था-स्थापः। ष्य--- ध्व-धिष्या।

तकन-- भंग-मध्या।

तकक्— इष-इष्टका। तन्-भन-भनः, द एतः, गृ-गर्तः, तूस-नूस्तं, दस-दन्तः, धुर्व-धूर्तः, पूपीतः, मृ-मर्भः, इस-इसः। त्तनम्---पस-पत्तनं, ऋश-वेतनं । ति-प्रग्रमस प्रगत्ति:, •ग-भर्त गभत्तिः,

पद-पत्तिः, वस-वितः, वि-तम-वितन्तिः, मान-मानिः, सु-चस-खति। सिका- - क्रान्-क्रत्तिका, इत-वर्त्तिका।

तुक् — च्ट-च्टतुः।

नुष--वस-वास्तुः।

सुन्--- भव-भीतु:, चाब-केतुः, कुश-क्रीष्टा, जन-कन्तुः, जै जातु, तन-तन्तुः, धा-धातु:, मन-मन्तु:, सस-मस्तु या-यातः, वस-वस्तु, श्रच-श्रक्तुः, सि-चेतुः, क्ति-हेतु:।

ष्टच — जाया-मा-जामाता, दुइ-दुहिता, पा पिता, भाग-भाता, मान-माता। त्यक -- स-मृत्यः।

विष—पद-पविः, स-राविः ।

घ

धक --- वच- चक्यं. चढ्गे- चढ्गीवं, गू-गूषं, तृ-तीर्थः, तुद्दतुत्यं, निभी-· निशीय: पृष पृष्ठं, यु य्यं, रिच-रिक्षं, सिच-सिक्षं।

षण-स्ट-सार्थः।

यन—ऋ मर्थः, उप-मोष्ठः, कुष-कोष्ठः, गै-गाथा, प्र-प्रीय:, ग्र-भीय:।

ह - प्रव-प्रवट् कम कला, कुकुन्द, वर्ष-वृन्दं, शो-भादः ।

धक्—— श्री∗शीधः।

न---ऋ चर्षः, क्ष,क्-कर्षः, धा-धान:, रम जिरुबं, स्-स्ना, सि-सेना, स्थास्थ्वा।

नक्—इ-इन:, छघ-छण्डः, क्रघक्रणः, नि जिन[े], टष हका, स्फाय-फेन:, बन्ध-बुधः, ब्रधः, मी भीनः, वी-वीणा, सिर्ासन:।

नण्--रस-रास्ना, सस-साम्ना।

नि-मग,भन्ग-भन्निः, दुःद्रीणिः, स्था-प्रश्नि:,यु-योनि:,वह-विक्रः, यि यंथिः।

निक्—वृष वृश्विः, स्टस्पिः।

नुक्-िविव विचाः, स्-स्नुः।

प---तस-तस्पं. पा-पापं, बाध,वा-बाधः, वास्यः, श्रम श्रष्, श्रृश्र्यः। पक्---कु-कूप:, भी मीप:, पू-पूप:, यु-यूप:, शिल-शिल्पं, स्-पूप:, स्-सूप:।

पाय--क कपांस:।

फ फक्—गल-गुल्फः। भ

H

म--- भव-भीम्, वि-चेनं, 'गस-ग्रामः, छ-घर्माः, डा-जिक्कः, घ-धर्मः, नी-नेनः, पद-पद्मः, सा-म्रामः, या-यामः, वा-वानः, स्-चीमः, इ-डीमः । मन्-- दन्ध-द्रभं, द्र-द्रमः, चुजुमा,

मभ् – इन्ध-इभा, इर-इमा, चुजुना, यम-योमः, तिज-तिस्मः, घृ-घृनः, भी-भीमः, भीमः, गुज-युग्मं, रुच-ककां, ग्री-ग्रामः।

सद— चस-चर्षः, युष⊹लं, ग्रुष⊹सुग्रं। सि — चर-जिम्बं', नी-नेभिः, घश-रक्षिः। सिक् — भू-भूमिः। सुक्र — चष-चल्रकं।

ग

य — कन-कन्या, की-काया, जन-काया, कन्यं, पूपक्यं, मा-माया, सस-सर्थः । यु — कन-कन्यः, दस-दस्यः, मन-मन्यः ।

T

र— भस-भसः, भस-अखं, भई-भाई: इत्द-इन्द्रः, तस-तासं, दस-दखी भी-भेखः, सद-सदः, सन्द-सन्द्रः, वज-वजं, वप-वप्रः, विष्रः, भज-वीरं, शक-शकः, स्काय-स्कारः।

रक् — चक्र-कर्य, र-दरा, उप-उप:, छन्द-उद्गः, वस-उसः, कृत-कृष्कं, कृरः, विष-विषः, जुद-जुद्रः, सुर-सुरः, खुर-खुरः, ग्रथ ग्रधः, चन्द-चन्द्रः, चि-वौरं, व्हिट् व्हिद्रं, तक- तक्षं, दन्भ-दक्षः, दुर्ष-दूरं, नी-नीरं, भन्द भद्रः, सुदःसुद्रा, बद-जि-कदः, वन्क-वक्षः, अत-वृत्तः, ग्रष-ग्रकः, ग्रदः, ग्रभ-ग्रकः, श्रित-त्रित्तं, सि-सीरः, स-सुरः, म्-सुरः। रि—षन्ध-षद्भः, श्रद-षद्भः, भी-भेरिः। क—षध-षस्नु, जन-जवु, नि-भेकः।

ल

सक्— भी भीसं, ग्रच ग्रक्ते:। व

व— भग-भयः, खट-खट्टा, कण-कखः, ग गोवा, नी-निम्नः, प्र-हाँ प्रहः, वीध्विमं, ग्री-श्विः, इस-इखः। वल— इल-इलंकः, पल-पल्लः। वलज्, वालज्— शी-ग्रेवलं, ग्रीवालं। वालन्— चत-चलालः। वि— इ-द्विः।

ग

ग्रन, यन्-सृश-पर्शः, पार्यः।

₹

विवन्-प्रयः पृथिवी । , इन्-छप-छष्टः, वृध-वङ्गे, ग्रस-ग्रस्तं,। ष्यरच्-गाइ-गाइनं, चत-घत्वरं, चि-घीवरं, तृतीवरः, धा-धीवरः, ग्रे-पीवरः, इ-वर्ष्वरः, ग्रू-ग्रस्तंरो ।

स

स-जन्द-उत्सः, कम-कंसः, कप-कपः,
मन-मास, वद-वत्सः, इन-इंसः।
सक्-च्य-च्यः, वस-वयः, खु खुवा।
सरक्-कृ-कसरः, धू-धूसरः।
सरक्-मइ-मत्सरः, वस-वत्सरः।
सन्-स्व-च्याः।
सन्-मद-मत्सः।

सूचीपचाणि।

सूचसूची

स्वादः ।

सुवाङ्गः ।

श्र

ं घड़ उत्तर खुक्त, ए भी ङ,-चंघ: नुवी १८ प्रचारिवव्धि ३८३ मगेर्का ६८४ चध्यच्ताचीपृपि≀ १०० भाष भारालीज् विः चचीऽस्त्रीपीर्घंच २२४ षदात् ८०४, ८८० अतोऽडवाः ६८ चलबीडवी: सी घाँडवी १८५ श्रदसः सेरीः' २३४ चाधिकेश धर्योपाधिश्यां ३१० ^६ मधे: मनी दिद्य भन: ३८१ भन ब्यत्रोऽणाची घिष्योः १८१ मनडुक्तेतवाद्वादिः १०२८ भगाद: १८० षानुम सिद्देरसुव: ५६३ भनीरहात् ८०१ श्रम् ज: सेरिस् पे ७६२ षमीऽदृ है: (८७ षत्वात्रादिष्टिः ६२ भन्यारभ्यार्थारात्वहिर्दिनर्ते- ३०० भनीयात्रज्ञानवं ८४३ च्रपयनी नित्यं २४५ चभोभगी चची स्वीऽवे ल्प

षभ्यवादा १०५७

षसुद्राङ् षसुसुयङ् षदद्राङ्- १०४४

षयां योल्व्वा ३७

षर्व्वणीऽनञसुङ् त्येऽसी तु १८५

षवाद्गिर: ८०४

षर्म् प्रजाया: ३४२

षक्षांऽङ्गोऽनोने ४३२

ग्रा

भाभ्यस्थानी: १४६ भातिःसभवि १०⊂ था-गमे: चान्ती ८६४ षाङोऽस्घसोः १०८१ चाङी भाइगमे प्टर भातोऽनाऽदरिद्रः ११६२ षातीऽनः यद्गेः ११५० म्बीताइडा-इडामा-इनयम: ८०८ भात् सुमामः '११३ षा-वाञोऽखप्रसारे ८५३ प्रादिगेचीर्यक्री २३ चादित: १०७२ भादिन: ५२७ चादीपी: २४४ चादूटी त्रि: १०४१ भाबीव्भसात् सेलें।प: १४८ चाक्त्सवर्धस् ५ भागिषि १००€

सुवादः ।

स्वादः ।

Ţ

इगुकुमंटीस्थिनिम् विद्यमस् वा ६५ इक्डोऽरक्षेक् पाः प इप्रसन् जीप्यः ६५८ इतिइस्य जाते ४८४ इत् क्वते ४ इद्मोऽयमियं पृंस्त्रियोः स्री २०३ इत्वद्काः ६८५

ŧ

र्दूप् चाम्बस्यात् २५३ र्दूषत्-दु:धी: खल्भावे ढे ११६१

उ

चत्रः सटात् ८०६

चन्न् यपास्तित् व वा ४३

चताऽगुङ्ग्रङ्गादे नृंपायि- २००

चदः सः स्थानभी: २४०

चदीऽनृद्धं ६ ४००

चप-यमी विवाहे ८०८

चपात् सुतौ ८०८ ।

चसोचीस्यक्तराचि कोपः ६१०

चक्रसङः २४०

জ

कर्व्यक्षीवं पदक्षीवं धंन्वन बुद्दी - ३२४ ऋट

स्रकाक् ४५
स्टचः ३८०
सःच्छो ग्रष्ठाां ७५२
स्टचा प्रवसन नत्सर वत्सतर दश- ३०
स्टती उता तत्पुचे सगोचितियीचे ३२१
स्टतो उती डुः १४१
स्टिहः शयक्-दीपे ६२०
स्टिहो ये ४३४

秜

चरतौं गः: क्लित्-च्यां €२६ चर्टिरकाबुलें। ह्यात् ६२८

Ţ

एकोऽतः ३० एक्टाञ्चामि १९८ एको युन्सं १७३ एकोऽजिल्लाः ६०० एरी को २२६ एवेऽनियोगे २०

न्रो.

भीं नम: शिवाध १ भीदौतीऽज्वन् तक्तदय-काक्या: ४१ भोदौ घौ १४५ भीसौंपीऽकटुपास्क्रीरेथे ४२०

क

क \times पीn्मृन्यी कखपपयोर्भृत्यौ ६८ कति यति तबि यावनाबदेतावत्-कलावीचान्युची ४१२ कत्क्षच्चिरधवदे ४०८ कथमास्तीर्यना ८४१ कदाकर्हिंभ्यांवा ८३६ कभावेऽमी ११३५ कम ऋती गुपूधूपपणपनी- ५८१ कम्पात्रार्थेङबुधयुधपुदुसुजननशो- ८६१ कर्माकियाविभेवणाभिनिविभाधिभौड-१८१ कल्याची सुभगा दुर्भगा बन्धकी-कव्यादानेकाचीऽस्यादहन्- १३६ कांस्काम् वृं:पिवा ५६ काचे ४०६ काष्यनाभीरकेऽदिद्यंत्त्- २५४

सवाद: । कासुकसण्डायंक्तीन ३०६ कामांकंऽकविति ८५२ कात्मर्शायक्योः सम्पद्मकादी-कालभाउडेवा २८० काल भावाधारं उदं प्री कि कि लास्यर्थाभ्यांती १४४ ्किंग्रच देका न्यात दिवह्न गागेक - पूर्व कित ठी डीपं ५३३ कित्तिजगुप: सन्नम् मान भान-किम: कानात विचनी प्रद किंस: चेपे ४०५ किनव्ययत्त्दी हिंदं प्रश्र किमेव्याचाद्रव्ये चतरां घर्तमा ४६५ कि भि: स्त्रीयी ८४२ किभिलिभायां ८३० किटें।ऽलगें: ११४५ की खोगी घीटी ठी डो डो टी- ५,२८ की-प-स-वत् भ्रत्भावी ११०० कीर्त्तः , ७०४ की योगाती से ११४ ११५१ कुर्त्वासीदराइ सुः खिः १०१३ कुञ्जादेगांयन्यो ऽस्त्री व्ये ४२७ कुटांण्जीक्षिति ०५५ कुत: का कुए कुचेती इती इच्रेड- ४,२४ कुमादेरीयि १४८ क्षुबन्नीयी तथे ०६५ कुषि-रन्त्र: ऋग्न-षे वारे ८९८ बूलाइद्रज़रहः क्षजी इदबी दे क्रजी: क-भावे क्रपः क्रापी उक्रपादी (४८. क्रविधिव्यी: क्रथी और ०४ 🖰

त्र विष स्**न गृह दृह प्रन्स** संस्ट - ६८३ क्रवसम्भस्त्रग्रहपद्वपस्यः सिद्धां वा ६०३ कगजानुः किः ११३१ क्गृतापीनुङः को -- दुष्ठी- ८८६ कर्गज्याम्बाहाल्बादेनिः ११४८ कंडक:स्वी इत्वा ४३० कोडलदि: पंतत् यजातीय- ३५० कोरीषटधें ४११ को खुवा ८२५ कौटवामात् तत्ताः १५६ क्त-कृतवतू भूते उभावे वे १०५० कादल्पे १६० ति: स्ववी ११४० र्तनाटि ३१२ तीर्जुक्त्येच ११८ क्यनाम्बीदली १४ क्वाचवानिष्येऽश्ले-खल्ना ११६५ काद्यची चानास्यपत्यकासः क्योऽभव्याद् यस ६४३ क्रम: पेऽपि र्घः ग्रह्म क्रम क्रम भाग भाग चर- ५८४ क्रम गम खन सन कवी विट् १०५० क्रमी घीं वा ११०३ क्रक्रको भिय: ११३० क्षीऽपाद्धर्षात्रवासेच्छे- ८६७ को छो सबस्टबधी घो स्त्रियाच १३८ क्रीवात् स्यमीऽविर्माऽतः १६० ज्ञीवादयी: १८१ क्तीबाद्या ३८३ क्रीवे नी लुब्बाधी २४२ क्षद्रशान्येकदिवदुष्येकमः १३

सुचाङ्गः ।

तिलात् कतीऽसात् सः घीऽदाले- १११
विप चस ग्रथ ध्यः तः, ११०८
च्रदागीधास्यो वैरारी ४२२
च्रुप्त वस पूजायांचागार्थ्याये- १०६६
च्रुस्त वाद स्वास ध्याला भागर- १०७६
चेते याकरणा किनी ४८३ ।
चेति प्राप्त कर्ष्या १०२२
चेत्रे प्रावदेवाको ये तुःवा १७५१
चेग्रपची मक्तवः १०६३
च्यर्ष स्वीत्र श्रममान स्वः ११२१

ग

गिष्ड मिष्ड नि जनि निस्थोऽलः ११२८ गिष्यं सम्बद्धे चेष्टावज्ञे उनध्याकाकः १८८ गिष्यं देशीस्त्राच वस जनः १९८३ गिष्यं देशेस्य स्ट चर जपः ८२१ गर-सट-यस-चरास्यो इने यं ४०८ स्वादः ।

गभीनिको: ८०६ गमी≱ने स दम मार्शात्तुः वाः ६२४ गगंयस्कविदादिभग्विन- ४२८ गर्भे चीपक-पाइहारकी दे ८८१ गवाबादे: खोडले गौर्णंडनीयस: ३३० गास्त्रां ६८२ गीकः सुसुभ सी सुवास्थानः-सुव्वां- ५०२. गीउक्ष्षीयोर्वा ७१२ • गीचेच्छार्थे: ८५३ गुणादिमन् भावे ४०५ गणाडेक्षेयस् ४६६ गुवादीबीऽखबस्थीड: १६४ गुह दृष दिष्ठ विश्वां टीमदन्ये- ६५७ गुहो गोइ: ६५६ ग्टह्म विनीय विषुव जिल्या मूर्यं- ६६४ गेरध्वन: ३८८ मॅक्ड: खो ये ऽची ८७० गेधीं स्नेधिन एङ-ऋकी: गेव्यास्थी हो दे च ८०६ गैक्यादती ऽपाचादेरीप इंदर गोः चनटयकौ १००३ गीटण मेधादन काख- ४४४ मीरतार्थे १६३ गोर्व्या ३८ ग्यचसत्वा १०८६ ग्यर्थाशंसयी: ६३६ ग्रहनन्दिपचारे र्षिननात् घे १८३ यहस्वपप्रकां जि: ८०८ ग्रइस्यपाची: काङित-किती र्जि: ६६१ यहेरिमी घें। ऽखां: ७०१ ग्रीरल: ८२४ म्बास्वास्थाचि पच पश्चित्रः सः: ११०८

स्वादः ।

स्वाद: ।

घ

चलनटी उचे ११३४ घटादि जनी जुब क्रस रजास- ७६८ घटी खारी वाताद विध्ववित्ताः १०१८ धनस्पर्णे स्थी जि: १०५५ घससद: कार: १११४ 'घस्त्रामुर्तरात् ८८० वसलद: सन्द्यल्घिन 📢 ै चान राजी सखीपय वा- ८४८ घावखसृहणी: १४३ चीटीयोजन्धीरमा ५५० चे चारिंडे ता: १०८२ विपंपरातुःक्त-प्रत्यभ्यति-चिप- ८६० विश्रप्र ५४१ घीऽजी जी: शब्दाशनगतिश्वार्थाट- १८४ घो जेंरय: ११७^८ घो ब्रि: १२८ घ्यवी-राव्यक ८७०, धां ७१०। घ्यांदीत सः ७०१ ध्यां सौर वादधी: ६८० घाषोङीं ८ १ 8 म्रीवा ७८६

दः

क स्थै जो वीप: १२४ का तौ वा २०१ काम् वा क्यांग्यान्त कन्न ६०७ कितांयम् १५१ जिल्पिद्र: ५३२ किरिम् वीणें: ७२१ केक्योम: -२१६ चक्रतस्वारे ४८४ चत्र:क्राञ्खाञ्ऽरे- ७०६ चगैकावंक्षीवं ३२२ चजी: वागी वित्यसेम्त्र- ८०२ चर्णम् वाभी खारी पूर्व्यकाले ११८३ चतु:बड्-डित-कतिपयात घट ४५५ चपोदिताकानिता णः े चपी ऽवे अव् भूप चरट् भूतपूर्वे ४८० चरफंजीऽदुः १०८७ चर्पकोरबोङो गणुः पर्ध चादिर्गिनिः चाय: की ८३३ विक्तिद चक्रस चराचर चलाचल १८४ चित्रे त्ययदिना ६४० चिदिकारे वा ७८७ चुग्यां जिल्ला ७०३ 🕡 चे: किलां सन्द्यी: ०४६ चिनसिवा प्य चैकाषुद्वषी ६: ३२१ चुङ्कुङ्युङ्सग्- २११

वि: क्रभूस्छभूततद्भावे-इट्

कादेखमन् झीस्-वे ख: १०१४ काग्रीका १०८४ विद-भिद-विद: क्रर: ११९६ को ऽच: ६१ को; ग्रुटावणी अस्की- ८१४

चृत्सास्ये ४४०

मधी ऽदी यपि च १०८६

जन-खलादि गीरथ-वातात-जनवधः सेमगी ऽकमवमाचसी-जयत्यो: खोर्थे ५१६ मरस जराचितु ११५ मरातीऽस्वा नराया नरस च ३०८ जस्मसी: मि: १६२ मधीपियाधि इत्यसि- ६०० ' वार्ययङन्त-यज्ञजपवददनग्र- १९१७ जायो ऽषव्यीग ङिति कसुकाने- ६८६ कातमहद्दादुक्यः १५७ नातंरतो ऽस्त्री-युङ-सत्नाख- २५३ नातु-यद-यदा-यदिभि: खी ८४५ कालपिभ्यां सदा चीपे ६४० जिंवान्य: किति ६६६ जिघें। दस्य: १०३६ त्रिनं वा ८३८ कृत्रयो नृजि: ११०४ निर्गि: सन्द्यो: ज्ञपर्ज्ञापामीर्थः ८१२ चानयवप्रजीभे वद: ६०० द्यानार्वात् चेपोपनयन- व्यव्ह ज्ञाचेंक्हार्थ जीकीलादे: सति १० थ५ च्चीऽचाने घे ३०३ ज्योति जनपद राघि नाभि वर्ष् ज्यो बहुर्ययस्त्राः ४०२ ज्वल द्वल द्वाल ग्लासाय**न र**म- ७८८

भाप्भाधी: खास्भावी वप्जवावनी च ६४ भाषनदीपीर्चनास्यायदायखीगिरेळा ३८४ भभखयद्वं कृषां जब्चप्-भभानस्यादिनवां भभाः फी, धीसु- १७७ भाससात् भागीन देनि से लीपः ५६२

स्वाद: 1

অ

जपे जम नी: अपंडिक समीयं च्यक च ६ ञम कप जभ दह दनग्रभनज ८२७ अमुकी भारतयौ चाति कि रं०३ प ञनेञन्या ५८ ञि:काल्यादे: ८५८ नि: प्रंचे ००० जिञ् जान-पिब-धे नृहद्दं वस- ११९ ञिभाजभूसइ दचचर त्रध∹ ११०६ जि यि संदुत्तमो ऽङ्घिकां .∢≀३ সিদ্রী: र्ख: स: ष: षः षः विद्यक्तित् - দং ৪ जीमंच डिन्नैकाच: ४६० जी-वि यस्य ग्रस्थ वित्ति वन्दासी- ११५८ . જેટેંડજો ઘે પ્દશ ञे लींपोऽनाल्विणायानी- ६४१ जिंगसम्बेनुङती: ५०० ञाञ्जङः खोऽनग्लोपि प्राप्तुदितः ६३५ 7.

टादसयास्त्रियान्तुना १२३ टाभिस् ङे ङसि ङसीसा- १०६ टौ ठौ ढी घी ढिच: संमसु- ५५% टेरासी १८७ टे लोंपी डिति विंग्रते-सेस्वङी १२६ टौसीदमांऽनको उन: २०५ व्यासिः ५५१ द्वितीऽयुभावि

ठी-प-म∗वत् क्षकानी क्यांगा अप्रङ्धनी खुवा क्यांव वे-प्रच्छां ६६२ च्या**वा ६**७४,७०७

सूचाइ: ।

₹

डितिसङ्गाणी नस्मभीलुंक् १३१, डस्डीधीवा १८६ डाज्सीडितादेः पख ८५० डितस्तको पिसक् ११४३

ढ

हिषे कात् चौत्रकण्यौनेया- ४२६ दिष्ठे त्रस्य स्वयं दिसात् त्रयो घेडिषः ५०५ दिसात् त्रयो घेडिषः ५०५ दिस्य दिष्ठे ११४६ दिस्य स्वयं १००६ देनायात् १११ देनायिषि वा २६६ च्यात्रिष ६६० द्रीदि चेयातः ७७

ग

षचस्यसाहनी रहीप्वात हे २६१
षायन्त्रं वा ५०८
षात्रातं डी: ६०८
षात्रतं डी: ६०८
षात्रतं डी: ६०८
षात्रतं डाच: सभग-सपद्याखायील-४१६
षार्क्रस्यकां ६८६
पार्क्रसाकाङ्गित ५४१
पार्क्षमाकाङ्गित ५४२
पार्क्षमाक्ष्याः १४२
पार्क्षमाक्ष्यतं १२२
पार्वे वा १००
पार्वानिम ६०४

स्वाद:।

ਕ त-तज-खादीयी कोबी: ११८ तदो दानीं वा प्रश् तद्वीगेवा ८०€ तन्थः ग्रप्रेचे ्दद तन्वादेवी १७६ तपीढात्यक्चरे ८८२ सप्तान्ववाद्रवसः १८७ तमट् षखादेः ४५२ तरतमी दिवहनामेकोत्कर्षे ४६२ त सं। यं। ८० टिस्सिती देखनां वा ५०२ तव्यानीयया द-भावे ८६७ सम जी: ५११ तादर्थेचतुम् ११६४ तार्थेमानात्कास्डास्त्रतेत्रे ३०१ तिर्य्यगमुसुयगदसुयगुदचा तिरया- २२५ ती प-म-वत्स्यत-स्यमानी ११०५ तीय सम्ब वीज सङ्ग्रादिगुणात्. , ५०३ तीयो ङिति ६० तुलेच्छाराताराधाराकारा- ११५५ तुद्योसातङ्वाभिषि ८५६ त्रवनी में ६६० हन्**रांन-लुक्**वाग्र-**यो** ७५४ हन लीप: ४६८ सप्तार्थानां वा ३०४ त्रथ स्थ क्रथ वन्च लुन्चृतीया ११६६ त्रहरूण् विद्वसे ०६० নুদৰে भज বিদ স্বহাৰ্য হিমাহে – ৭,৩১ तुभावदृति धतपयमदन- १०२४ त ख्याः, त्रकार्श्वयोष्यानुज्ञा- ८८८ तीऽन्यादिमीऽनेकतरात् १६५ त्यवाद्य विद दिविषाद्यादेखः ५२५ त्यदांटेर: श्री १३३

मुचाङ्गः ।

खदांतदो: स: भी २१४ खदादि भवत्-समानान्योपमानात्- १०४७ स्यादि-व्यासभीस्तिसिसं- २०८ स्यादेश कपः ४६४ त्यादेशीने कत्यदेश्वदेशीयाः स्ये ∢० स्योवनात्रीलीप्य: चवत्थाच् प्रकारे ५२३ चासुसिस्मन् कानिप्वनिप्- १०३२ विशः, प्री दी वी ची घो प्रा: ७६ चीप्रशिर्वा ३०५ **चीसे ल**ती क्रिं २ ट वेरयङ्गामि १३२ प्राद्याऽर्घार्षैकक्षे: सेस् सर्वाः लती भावे ४३८

ग्र

यफाबुङ: ११७०

₹

दिविणोत्तरादा ही ५२० दम्न मावद्य सहस्माने ५०६ दम्मावद्य सहस्माने ५०६ दह दीऽधः १०८० दध्य स्थिसक्य स्थाऽन ङ्,१७२ दक्षी न-लीपी वा ५३८ दक्षी न-लीपी वा ५३८ दक्षी स्थाने ५६० दिह भानीपी ऽसमकाने ६६० ७०२ दिहा काश्रकास नागुषी वाम् स्था६०७ दिही डिइंसेडणी हाग्मी सुवा ००० दमादे डी युते सतादी ५०८ दादे धः १७६ दा भा दा ५३४ दान: सा चेम्रायें ८०८ सूत्राजः ।

दान्तवत्.सभि ८३ दाना शाल पूर्ण दक्त स्पष्ट च्छन्न- १०७८ दान्तं मोऽसमाजो इसे नु: ५३ दामागै इतक पिव की क्यो∞ ६१२ दाक्स्यङ्गले: ३३५ दायान् साहान् मीद्रान् १०९९ .दिक भव्दात् दिग्देशकाले सात्- ५१८ दिव भी ङ्सी २३८° दिव-स-तुद-कध-न्यादे यंन्त्व- ०३८ दिवो घंवा २८० दिव्यवस्यो ऽजिगीषाजास्यभै- १०५४ दिस्थोरमवा इटह ' दी ङ ह्यांयन् यन् यो ङासनि- ०४३ दौधीविस्री न गः ७१४ दुग्वीर्घम १०६० द्नीभुज्यलाद्यासमसी गींवा १००० दुर्षरोद्रः ७८६ ह भ जुष्टस्तिन शास्ट्रहर-हजो- ८८१ दश कास युध छव सबी ह्या ११६३ दयीर्षु: ६१८ देथे पाच ५०० देवादे बीम्गोस्त्राच् पूरर र्दशात् ब्रह्मण: कुम इद्वान्तुवा ३६० देशाध्वकालभावं वादै: २८२ दैकां शंऽज्ञवे ३१० दोमोऽदस्य तौ २०४ दी-बी-मा-स्थां ङिस्यणी १०८३ द्या कितामम् १५६ द्युत-स्वायो: खेर्जि: 🔏४० द्यृत: का: ३३२ द्वार खार ख: खिसा खाडु च दु- ४१८ दितीय हतीय तुर्यं तुरीयाः ४५०

सवादः ।

विवेर्भुड़: ३३६ दिनेव्याञ्चलेर: ३.०३ दिनेव्वायट् ४६१ दित्राष्टाधिका दात्रयी ८ए।-दिवता जवादी दि: १०४ हियाद्रङ्खोपिनः १११८ दिषविदाती ऽतुम्वा ६०५ . डी ची घी णांती दें त्वें स्ते भे वां-नौ-दीटी सी दैतयी रेनी ८ नुक्ती २०६ है: पिव: पीष्यी जाहि ७८३ द्ये: पूर्वकः खि: ५३८ द्वे: शतुर्नु,गुभी १४३ बेंदें की दिगिष्ठां ६४६ ' है धंहे धाचै धंचे धाषी है कथ्यं वा ४५.६ हैवस्तपुचवन्दारखज्ञानभस्ना- २५५ दान्तर्रोथीऽवीऽनात् ३८६ ह्यो दीधी दें घे ही ७३५ ' ਬ

धनोदकाण्यतः त्रवायले गंडपानात्र^६् ८४६ धर्मादन् ३४४ धाओं हि: '१०८६ धान् बीतात् २६€ धिक्समय।निकषाद्वान्तरान्तरे रद€ धिटौसीः १५० धुरीऽनचस्याः ३८८ विद्विष्ठांकि पूर् धेट हश-पा-घा-भा: शः ६६८ धेडंडनी वीशनसः २३३ भेबाच्छामाब्र: से: पेलुग्वा ६१४ धे सलीपी वा ५५६ धी: ने लिमी उघे ध्य भी: -- तिप्तस् मन्ति सिप्यस्थ- ५२५ धी द धीऽनलीपे तथि ०३०

स्वादः ।

धीरालीपीऽचाबी १२० घोरियुवचि १३५ धोुर्मे।न:फम्वि २०२

भीव्यगत्यदगार्थातु डेच १०८४ ध्वर्धासमावेषी ८६३ न कितस्कन्दस्यन्दः ११६० न गौर्खार्व्याच्यीसासे ८० नग्रपितिप्रियास्यस्य सन् १०२६ नजीऽनीवाजभसी: ३२५ नजोऽन्याकी भेस्ती ११६० नजोऽहवे ४०६ नज्दु:सी: सक्यो वा ३४१ नअबहीर्माणवक-चरणे ३८१ नञ्मुतिब्युपाचतुरीऽ ३४५ न गाटनङयकन् गा शस् स शसि वा ५० नर्णान सीघ्यः ७६१ नयौन् ऽयौ ७५८ न तप क्ष सटपचदुइ: ६३० न दंतसील स्वर्धेच ४३१ न दाङोऽचि ०३४ नन्पंस्त्रियी: ४२६ न मेन्-सङ्गाखसनादेः २०६ नमस्तपोवरिय:सर्थ्डादिभ्य:स्य:- ८५४ न-लोप:क्यउचे ८४४ न वश: ८३२ नवग्र: पने जितीऽन्यडिन्द्राां घे ५३१ न वे-क्या-स्योजि: ११८१ नग्रानेशावाडि ७४२ नश्जोऽनिम: ११७१ नसब्महत्री इपी चाँ इपी चौ १६४

नदी धङ्भी २३०

नाजनादेशदि हैं: ७१६

सुवादः ।

ना जीयकी (नाङ नि: सम ४० नाड़ी ग्रनी सन कर सृष्टि- १०१८ नाप सम्बार्थवदैकाजतः प्रभु नाभेनीसि ३३८ नास्त्रान्येतिकच १००७ नास्त्रास्ययेंऽचीर्षः ४४० मारी सखी यवानी यवनानी- , २०४ नार्चीयां स्वते: सस्वादेर: ४०४ मावश्यको त्यज-यज-प्रवचाच ध्यवि ८०३ माविशेष्यान्यायामन्त्रात् नावीऽर्ज्ञात् गेच ३६४ नाव्येष्ठां ६६५ नास्त्रीयुवः ८७ न।क्रीरकती ०५ निजांखेर ग्रः ०३३ निर्द्वारेऽधिकीन कियाल: ११३ निवंत्ते भावादिम: ४८**८** निर्वाण भित्तण वित्त पुत्नीत्पुत्न- १०६५ नि विपरि खन्ज सुसुमादेः सः - ६३३ निसव्यपहः प्रप्र निस: श्रतो ७: ४०२ निक्रवे जः ५८€ नीन् वन्च सन्स ध्वन्स अन्ग- ८२६ नुष्जभीऽचि ६३५ नुखयमादी भागन्तरकादी तुवा १६३ नुस्थिकोऽचनानि नुष्रधीमुचां नश्मस्जी रमलभी- ७४१ नुमामः खदापश्चार्षः नुर्व्वानामि घः न्पीऽस्यस्योक्षीपी वृति वा ६२२ रुत् कृत् चृत् कृत् ढदी ऽरसी-मृत्यानरन्जः घकः १००२

स्वादः ।

नेण तकी इनुतावे ८२३ नेदिनपूजार्थाची: ५५८ निंगऽसुन्तस्ति सृत्य सी- ५५४ नेसुगुहराह: ८०७ नेसतस्यपोऽवस्कः ६१६ नेमंका जा बहतो ऽश्वित्रिडी- ५८० .मेम् डी श्री दिदेमी ऽपत्य नेकाज-नेस पे द्या: ६५० नेम संनिव्यई: १०७६ नैकाचो ऽव्यक्तानुकरणात् डाच्-नैकाजादिन्वा ४४४ नी ऽचीऽन्तरदुर्गे: प्राग्वसी ऽख्यास्त्र- ८६८ नी नामि घं: १८६ नोप्तामकोङ्पूरस्याख्यायुसक्त- ३२८ नोष्यको सर्वातृत: ०६४ नोऽप्रणानऋते ५५ नीलुप्फेऽधी ११८ नी ऽसङ्गादे मेंट् यादि आनाढगवर्षा ८३२ न्याप्दीभ्यो खेराम् न्वीर्लोपीती तेऽची

प

पञ्च तिप् पञ्च श्वन वाह्य ०२३
पञ्च रः शिष्ठ ५३०
पञ्चानय वर्ष्याचार्य वज्ञ जयः ६८०
पति स्टिह स्टिशिङ भाजः १११२
पन्नामपालकानात् २००
पन्नपुक्षे १३०
पिथपुक्षे वा ४१०
पिथपुक्षे वा ४१०
पश्चिमय्युमुवां यितो नेनी घौ १८६

सूचाइ: । षच्यपपुर: से इद्यू पदसनीण चै प्याय ताय दीप- ६४३ पक्षती प्रक्ती युवल्यन दुग्दी खन्ये भी- २०५ प स्यः १८ पिकियो धेवा २६७ पर्यत्ववाङः क्रीडः ८६५ प्रशास्याभी-को सदी छ। ७२८ पश्चभाः स्थानदिषट्को गोष्ठः ४८० पाच्छीगादिम्बाङ्गेतीऽक्रेर्जा २६५ याख्दकक्षणात् भूमः: ४०० पाति स्कायी लंन् वङ्गै औं ७६० पात्पत्पौ २२०१ पाइ दम ग्रंघ निशा पृतना^त ११६ पाध्य भाष्य प्रवायानाय कुरूपाय- १०५ पाम: क्वत्सायां ४०६ विज्ञसस्यम् ब्रुवी यङ् लुग्कत् - ७२२ घीनुतिलीमाकर्षांदे: कुणतेल- ४८२ पुंवत स्त्रात्तपुंस्कं: स्त्रियां द्यमा- ३२० पंतर् से: 🗣 ३२० यंवद्याधीं ऋपंस्तं द्वाद्यचि १७१ पुंम. सन् खर्थन्परेऽच्ये ५४ पृंसितु अस्न १०५ पुंसीऽसङ्घी २३१ पुरुषाचा ३७२ पुर्वी वा ७३० पुश्रकसङ्गतकचतयतश्रभी- ८०६ पूक्ति स वस जप व्यायस सयीची १०६० पूक्तिग्रदित इम् ११७२ पूजाभिभवेच लापेः ८१४ पूजीनाधे १०५८ पूरवी शिया मनीश्रा सुभगा-पूर्वकाले ११६६ पूर्व्वादे: स्नात्श्विनी वर ११४

पूर्व्वः राष्ट्र प्रथम चरम तथायार्च-वुर्व्वाधरावराः पुराशावाः सादधीः ५१२ पूर्वाचान्यश्ररेतरापराधरीत्तरी-पुर्व्यात्तरसगाचानते: सक्षयः ३५८ पृब्वीऽन्यादुङ् ८१ पू भी ध्व निद सिद सिद समार्थ १०६८ पूर्वास्टिकिया १८० पृथं सदु लांश अश दृढ़ परिइट्खंद: 89% प्रभादे र्डि: खेरे ७१८ ष्याय: पी यंड ्यां: ६४५ प्याची ऽगे: प्यस्ताङ्गेतुवा १०८० प्रकारिकातीय: ४८७ प्रतारे विश्वगर्धेः ८१३ प्रतिज्ञा-निर्णय-प्रकाभी संप्रव्यवाच-८६९ प्रस्ववात् सामलीयः ३८२ प्रत्युपीपात् **जा: सुम् इिसाच्छे दे ०५३** प्रखुरसाव्यवे ३८८ प्रपरापसंन्यवानुनिर्धुर्म्याधिस्त्परि प्रभास्य: यः ४०१ प्रश्नाच्याने णि: ११५६ प्रस्था**स वा, जिय १०**∢४ प्रसादीकाहाः १२ प्रागच्कार्थादचि हि: ५३० प्राग्वत् नी भीऽतीऽइस्य ३५५ प्राग्वभी यो इसरदुमें यादि इन-प्रादुर्गीक: सः वीऽच्ये ६८३ भियवशाद भयत्तिं ने चात् सर्व-प्रीधूजी नेन्या ७८८ पुदुस्रसः स्वोऽकः: १००५ प्रीपादारको **प्**रध प्रौक्यासमावने १४८ प्रादे: सी ने ब्रादिस्तु वा ०६८

त्याइ:।

a

बहु-गच-पूग-सङ्घाती लिधट्- ४५६ बहुलं ब्रह्माचा १८८४ बहुलं ब्रह्माचा १८८४ बहुल्बाधात कासम्म ना ४८२ बाह्मादातीऽन्याव दिगगिंदि- ४१५ ब्रह्मा कद भन सन्ध स्टेन्ट वहचा- २०१ ब्रह्मा किस राज पर्ण्याब् वस्तु १८४ व्यवस्ति १०८

. भी
भगवद्यवद्वतां भगोऽषी भी वा थी २२६
भन्जागिलको विवाभी गंलीपः ८२६०
भवदभूतभव्ये विवास क्याद्याः ८३२
भव्ये वा फलहेलीः ८५१
भान्नेतः १४६
भावे लाशियान् सुवः १०२३

भावादिहे वा १००३ भावादिहे वीटुङो ऽव्वत: १०६८ भावे मार्च ८२५

भिष-जव्य-कुट-चुग्छ-इज्जः याकः ११११ भिन्न-चैकार्थद्यादिसङ्ग्राव्यादीनां- ३१५ भिम् भिसीऽदसय २०७

भी भींव या ०८५ भींवि चिनि पूर्ति आर्थि कुम्बि ११५६ सुज वच निष्युनी ऽज्ञाग्रन्थ्यको ८०४

भुकोऽसने ८१० भुव: बानीवा सं ५४४ भुवो घे स्त्रिण-सुक्रजी १०२० भुषो ऽक्ष्र्यांट-भावेतुवा ५८०

क्षुको वन् टीक्यचि ५५६ भूबोभूमभूविक्षाः ४०६ भूगौऽसत्रादेः ५०१

भूगर्ग ६८२

प्रवादिष्य हेगी लक्ष पे ५५१
भू-इन. केय् भावे न त्य ८ = ७
भवादे युर्धि वा त-स-लीप्य = ८ = ७
भवादे युर्धि वा त-स-लीप्य = ८ = ८
भी सिष्यां इंस्सिसीरकी च = ८
भयोहङ् २४१
भम् वि स्तृ यूर्ध भर इरिद्रा- प्र१०
भम् जी दर्रियों भर्क वा ०५१
भाज भास भास भाष दीप जीव- ००६ = २०३०
भन्नकत्वास: ५८३
भवादिष्यः सी ८ छोलक्ष हिवां ५५६८

ध्येषक्षियां पूर्ट

मधीनसङ्बा क्रियो: १८१ मतुरस्यर्थे ४४१ मनयत्त्र्यतोऽकरभोरहो ऽसा- ४८८ मनीवा: ३८ मनो खाप २५१ मलेगीपात् ८०१ मन्दाल्याश्चतु सेधायाः १४२, मनात स्वार्थे १०१६ 🖊 मन्वर्जान्यर्घोषस्थेनीऽभी- •४२४: मयट तट्रपे ४८६ मइर्सकार्थं जातीयघासकर- ३२६ माठीवा ८५८ मातुलोप!ध्यायचिषयाचार्थ- २०२ मात्स्वर्षायुक २३५ मानादी सायां ढे २८१ मानोऽदनतः ५५५ मान्तीरम् विद्रम् वा ७११ मार्जात् क्रामी नेम् तथः १८२ म।स्रोग घोष्ठौ ८५८ भिष्याकारे-रभ्यामे ८१५ निद्रभास-अन्जो पुर: १४१५

नि भी सादारभ लभ शकापत-मिस्यो र्यवणी ङा दखललि ७४५ त

मुञ्जकूलास्यपुषात् घेटः १०१७ मचीऽढे देशींच वा सनि ८१५

मखार्थीरसः ३५८

मण लभी ऽनिकदःसीर्गैः खल- ११३०

मुडां चङ वासी १७५ . महर्स्यार्थे हितस्त्रध्यं ८५०

मूच स्ा न्वाटमर्त्वां इसादी- ८२० मृङ्षीको मं ७५०

मजीऽकां किति विवासियां

स्षीयं नित्यं ६५€ मैत्राध्वसङ्गाराधि ८०२

मोङम-भूपात् वतुः

स्रोर्नर्भसदान्ते

स्त्रीपो वानिमः ११००

यङन्त-चल पत सइ वइ: वि: १११८ यङ खक्ये दुरी ४८०

यङलक्कालीपे ५रेन गुत्री ८४१ यङो लुग्वापीके लुक्त प विर- ८३€

यञ्च-यत्राभ्यां तेपचित्रे च ६४६

यती ऽपायभी मुगुप्तापरा नय- । १८८ यन् जिपत्कदिखातः ८२४

यन्यीश्रमादिनिदी खीपर्षण ७४० यस: स्वने वा त्दाहे ८८० '

यम मन तन गमी ऽन्तर्लोप: क्री १०४२

यमरमनमातः पे सीरिम् सन्- ५६५ ययो लों पी ऽयृत्ती पी २५५

यनायवायाबीऽचीच:

यलीऽचेक् जि: प्रश्र

यव:किति ६६४

य वाचि ०१

स्वादः ।

यसौ दिसास्याकी धर्षाक्वि-

याच आर्थे दुइ चि प्रच्छ - २८५

याचातीऽत: ५४५

यायाय भास कस स्योगः पिश्च- ११२०

यावत्पुराभ्यां अच्ये ८३५

यासी ऽस्य ५१०२

थि: सन् वेष्यां हि: ५०२

यिनो ऽच्यणौ €८९

युजिर छद्ग्यची ऽयज्ञपाने ८१२

युजिरीऽसे नुग घी २१०

युद्धां छे-डों: १२५

युद्ध्यां-सीय १२१

युषादबादी-स्वाधी युवाबी युववयी- २१५ युषादधादलनादां युषाकासाका- ४३६

युवाल्पीकन्या ४०४

यतोऽम्यसी सांवदीधी: १३४

यम रूथेव दी ८६

यौराप: १४८

यात्रभी मुख् १००

यो र्युम् दान्तेऽस्तद्भ व्यक्त व्यक्त- ४१७

योर्जीपी इसये ६४२

रङी वि: सुपि १८७

र-तनी यंगिषौ ' ८२१

रन्जी ऽपषकानास्च िंगनी न-जीपी- ६६०

रपिज्ञस्युत्ती ऽदेतिः ६५०

राच्छ्रीलीप: १०४०

रात्रमन् वाक्तति ८८५

विचीऽवे ७२

रीवृत्वत: ८१०

रीनो रिन्रनीवा ८४०

बदाय सिसे दिंखोरी सु ५६१

बह्यो ऽथी इसस्यम् ६८५

सूचाङ्गः ।

कड: पक् वा ७८८
क पक र्ल्य च बूप् सं वा ति सु पुं ४६३
क प नाम गीव स्थान वर्ष वधी- ४१४
दे रा स्मि १४७
रोऽच: ७३
शोम त्या क र्ल्य च प्र ३
क्षा उन्न भा मा ५०५
क्षा उन्न स्था ५८०
क्षा उन्न स्था ५८०
क्षा उन्न स्था ५८०
क्षा उन्न स्था ५८०
क्षा उन्न स्था प्र ३
क्षा दानी गीच: १०८०
क्षा उन्न स्था स्थानिकाची- ५८२
व्यव च त्यो को भी क्षा डी उत्त स्था स्थानिकाची- ५८२

लाल्यो र्जमननौ स्नेहद्रवे वा ७८१ लिधोयं येष्टं हि:, कण्डायनायां सु- ८५१ लिघोर्वा २५ लिफ्सायां वा ⊏०३ विसामिही १३८ लियुपदकादि त्यादि विग्र: १६४ सीकोऽर्घात सः पति ४३८ ल्किन तत्र ∙ ८३ लुक् परात् ३७६ लगङ्गाऽप: ६७० लुङ् मद्वद्विनां ४६८ • लुपिन सन्ध्याद्यविधी १५ ल: काम्यक खेकायां ८४२ ले: सवाव्याने जि: प्रभू ले:--सि भी जस भम् भी मस-सेर्वद: स्वप्यौ ८८५ खेर्बहु: प्राक्त ४७८ लेल जी: कीपीऽचाची १८८ લીયો અં: ૧૦૭૦

स्वादः ।

लीपीऽतीऽदेची: ५४६ लीपो इन्हेंग्रेसी डिंद्रसीरघ्यां ६८१ लीपो इक्षोग्रेसी: २६ लीघो इन्हेंग्रेसी: ७१५ लीखो इन्हेंग्रेसी: ३४० ल्याभावतास्त्राणकसदेधे थे ग ३०० ल्याधसम्बद्धातार्थे ग्री २८० ल्याधसम्बद्धातार्थे ग्री २८०

ल्यभावतास्त्राणकसढेघेवा ३०७ ल्ययंसम्बद्धातार्थे भी २५० वत्तस्य ख्यालिप सिच ही ङी वचीऽरे ७२५ वच्चस्य त्रियतां शोच स्त्रत्र पता उन्दे ५५२ वनतनांद्यनिमां अमुलीपी- ६७६ वर्दङीधु: ७८० वर्द्रोऽकिजभसे हमस्त्रजीस्तु नित्यं वसोऽरस्यमनौदित: ५५४ वसीर्घर्सकाजिनात इस १०८७ वर्सार्वः सेमण्र्मतुष्योः २९८ वाचलकार्यतचः श्रुधेरे ६०१० वाऽगे: ८१५ वास्मि वाचाट वाचाला: ५४५ वाचापीऽनुऋष्ंस्वस्य २५६ वाक्तः बाज्यालेः २६८ वाच्यघी १४० वाड़ान्तिक स्थूल टूर युव चिप्र- ४०० वाढेऽप्युताभ्यां खी १४८ वातीऽवाची: २४८ वात् क्षेत्रीं इती इच्या: ३०४ वालास्यपेऽस्यम् ५२ वाधराचात्ताः ५२१ वानाप: ३७० वानेकस्मार्थे ८६२

वाप: ११७६

वाम खचण भ्रफ सह संदित-

वामेच्यो मिन्स्यौ ११८० वास्याङ २३८

वारादर्थें: ३०१

वासि ६८

वा द्वाम द्वष लार संघ्वाखनः

,वारे प्रधर

वाव गीदांनी ३% वा श्रम यम फण गिच्छदां

वाष्ट्रनी समाभी डी: २०० वाषीषिकवध्मादुद्वानी ८५२

बाड़ी बर मी चितामुवा १०८ प विंग्रसादे जी ४५४

विकारसङ्गाविदं हितस्वार्थादी ४३३ विच्छामतिपणी वाय:

विजे ग्रेनि ७५८ विड्वनीर्ङा १०३१

विभी चुझुचयौ ४८८

विधि-निमैत्रवामत्ववाध्येषंय- रप्र

विन्दिच्छू ११२४४

विपरा-मि परिव्यव-क्षी नि-विशा- ५६२

विमति व्यक्तसद्दीक्यो: **८०**२ विश्वराजीऽदा २१२

विस्तभा निर्व-वि-सु-निर्दः स्वप:- ६२५

वीव दे। घट की १०४६ हच्युत्थाइतायने क्रमः परीपक्रमः प्रध्

इक्क्षी नेम् पे स्यसनी वांत्वने ६४८

डवाकष्ययिमनुपूतकतुकुधितः २०३ नृती वेसीचा ऽठीढीपमे: ६२०

बुद्रिज्था: किता नेम् १०५३

व: पद्धि: ८६३

वे: संडियसन्ते इते 📢

स्वादः ।

वेक स्वयार्थेऽसे ४४

वेङ्गणकथः खेर्जाङ ७०६

वेज़ीवयवा €€₹

वेषज्दहः ६२६

वेत्ते: कीपंठीपंवा ६८६

र्वत्ते: भतु: कॉनुर्वा ११०३

वेध्यायाकौ १०३०

वेमूदित स्वर चाय स्पाय प्याय- ५०३

वंग्सहल्भ स्मृगुच वस लग- ६०६ वैकोनस्येकाद्रैकाका अङ्गायां १५२

वैभोऽनी प्रश्ट

वैदेखी १३

वाजन्धृतौ ०१२

वार्षाः विश्वस्ते गः ७१६

बीष्ठाली: से २८

व्य पूर्वं ३६६

व्यवीतिरञ्गिदसि ७५६

व्यजीऽरं वा लनवसः घञक्तापि ५५६

चटेलें।पीऽनाराच्छवतीऽचेऽयी ४३० व्यतीहारे गतिहिंसाभव्दायं-इसान्य ८१६

व्यतीहारं चि: पूर्वी ची उनचा वा ३४८ व्यतीहार गन्स्त्रो ११४१

व्यथायह ज्या वय व्यथ वस व्यच- ६५१

व्यस्य ग्यनुकार खाच्चिकर्ण ८ लं- ५४ प

व्याच्छस्य गत्यये व देस: ५०१

व्यादनञः क्वीयपृषे ११०६ व्याप्तीभावेषिनः ११४०

व्याझुक्ति: २४६

व्यासादेर्ङक्णी ४१६

ब्युडीऽवी इसादे: सेन: क्वाच किहा- पश्य

व्यालयः बद्

व्यंखपस्रमी आरः प्रश

स्वादः ।

व्रजनदरस्जनिमी ऽञिश्विजागु वि:- ५०४ व्रश्वे: कडः च विदचीऽदेनीय घी र्ण-कंक्यांय∗यु-त तु-ति-व **भा**: श्रंगव्दै: २ र्व्याद: ११५३ शक्त सम्बात द्वति-नायात फर्ले-प्राचे हैं १००४ ज्ञतार्थ वत्रङ हित-सुख खाहा- २८५ क्राकित्वयस्ताच्छीलये भतुः द्यानः ११०४ भ क्।ज भाग यन वन स्त्र स्त्र-१५ँ३ भात सद नि घे दे। व: १११३ अतादि-साम संवत्सरात् इ।दे।ऽगतीतङ् ७८० प्रदेग इपि मं ६५४ अरपदाभीर्गत्यनुकारे भप-नाय-क्षत्रः प्रद श्च्दढाढाई: म्प्य भ्रब्दभुखकरादेः क्रतिवैदपापे ब्याः ५५१ भ्रार्डिपाडयश्चेतीसनीविड्पाम्डिः प्रहें महारक्षमीरग तुरग तुरक्षम- १०२५ शसिश्रस ६० भ्रमगमिर्घ: १०४ भ्रम्-स्यम्-ङ मिन्स्यम्-ङ स्-सामां न- २१८८ श्रद्धायपात् वासि इस्सभी ६१ प्राच्छासाक्षाञ्चे वे पांकौ य**न्** ७८२ प्राने इती मन् ११०१ भासक्ति इसके ऽयो को लागासय ००५ शासु जिद्दातपुषा दे उर्जे टी पे ज्- ५६५ ब्रि:क्रीवे पर शीकी क्य येऽची प्रश मीङोरेष: ०१० भी व्रश्न यज विद खास मन चर- ११५० मनाइ: ।

गुम्छ। चभ्छोऽपकर्षे रष्टरी ४८१ युनीरुत्यप्राग्यपमानातः १५८ **मृ**पुदांस्तीवाक्तिट्यां ७७२ भावन्द आहः ११२६ गस्याभ्रकस गम इन लघ इष- १११० भी ब्रते नित्यं १०८५ म्नाद्यीरा लीच्यी ऽगौ ४ में लाइ: ७०% मुध्वेरिखचीयुवयी व्यक्तिसात्री- भूप्प यज्ञार्थे वी ऽयदि ८५० यन्य ग्रस्थ दनभां चिप न-स्रोपी वा ७५० यास्स द्रुप्रसुभुङावा ६१० यो: प्रुधिरे जिय ६९१ 📭 श्वयुवसघीनाम् वैदिते पौ १८४ यस व्यर्धन तन दाव इ.स. १००१ र्वितवाहवयाज्ञक्यशाम्प्रीडाशां- १८४ त्रतात्रात्रसरगालीडिताहरकस्या- ८५६ श्वेतिर्वायङ - खो अंग्रङ्भनीः

и

पदी: का: मे ६०२

पसा पसर्वात पस्तर्याः ४८

पन्त दन्त्र स्वन्ति। पन्ति। ६२८

पिञो द्वे न ती सासे १०५८

पीडाः फे १५५

पुक्तः प्रस्तिनिटीः ४०

दिन्नुघाकनदादिरीप् २५०

छिवजादीः खेळकोस्त वा ५८६

छिवकमस्तिने वा ११२६

सुक्ति सुजीः ११००

था कष्य ४८१

मुर्गीहरासे नी ६वक्वपून्तरे- १००

स चाडाः

Ŧ

संच्यी: ८११ संजा: कं ३१६ संजीऽस्मृती ' २८२ संटानी भेऽधर्ये निर्ध २८३ संपि∢िच्यीवा ११८२ श्वंप्रतेरसाती पटप सक्तन, दिस्त वा ५१६ सकीऽस्रोपीऽचाववे ६५८ सक्यक्षाः षः खाङ्गे ३१४ सल्ब है। राज: ष: षगीच १५३ सळ्डांडिता-माएउससी, १२६ सख्दा सेडांचे: १२० सक्राया भवयवे तथट ४६० सक्ष्याया उट्पूरणे ४५० सङ्गाया डीऽवही: १३८ सङ्गाया धाचः प्रकारे ४५८ सङ्गाया नृदीगोदावरीभ्यात्र ४०१ सङ्घावत् उत्यक्तहगणा निपि १०१ सञ्ज्ञा-वि-साहाहाक्री ऽइन् की ११८ सङ्गाव्याद्राचाङ्गुलिभ्यामः ३६७ सङ्घाषन्यतो डिन् ५०० । सङ्ग्रासंभद्रान्यातुर्ङ्ग् भो ४२५ सङ्गास्पमानात् पात् पादोऽहस्यादेः ३४० सङ्ग्रेकार्थात् वीप्सायां ४८३ । सतिसातीवा १००८ स त्सरे ६६८ सन्खद्मीष्ठ्यां नाखेः ६३४ सदाध्वादि व्याप्ती सम्बैं: सिक्के तु धं २८३ सदानुत्रीऽसादिष्राः २२१ सदानीऽज्ञीपीऽस्वस्थात् पौवा- ११७ सध्वारस्येम् जनीडीम्: ७०८

स्वादः।

सन: पभी घी वी लायात् ६३६ सन् यन्य ग्रस् ब्रुकृगृ दुइ नन- ८३१ सभ्जादि र्घः ६३१ सन्निच्छायां ८०३ सन्भिचार्यम् छ: ११२३ सन्यङनी दि: ६३२ सपन-निष्त्रनात् प्रियसुखात् सद्र- ५०५ स्भगोचाङ २१० सम: प्रतिकायां ८०५ समय निष्तुल दु:ख श्ल सत्याद्- ५०४ समर्थनाभिषी गीं ८५५ समवास्थात् तमसः ३८५ समस्या २०७ समाभेदिकिनद: सेक्यमू १०४८ समापानुषौ ३८७ समार्थेनार्थससाडितसुखै निर्डार- ३०२ समोऽक्जने ८६६ समी गमक्कप्रक्रास्त्रयुवेश्यतिंद्यः ८०५ सम्तुम् मन -कार्म, भवश्यं ख्ये,- १८८ सम्पर:प्रत्यनुभ्योऽत्त्यः १८१ सन्परे: सुमुपान् भूषा-सङ्घ प्रति- ०६६ सम्बुद्धी सिर्धिः ५० सरजसीपग्रने १८० सद्भाषाध्यः ८६६ चरीऽनीऽघोऽग्रानः संज्ञानात्योः ३६१ सर्व्व विश्व उभ उभय भवत् लत् - ८६ मर्व्वे क देशसङ्गातपुग्यवर्षा हीर्घा- ३५२ सर्वेकिटेशसङ्गातसङ्गाव्यात्रैका- ५५४ सर्वेकात् कालेदा ५१४ सर्वे सुसमञ्चक्षां रङ्फेऽच: २२७ मइ: चीऽकाले ३०० सइ:सीवा ३३३

स्वाङ्गः । सह वें वं: २२ सफ-वहीदी दि ६५३ सहवारणसमीनार्थार्थविनापृथङ-सद-सन्तिर: सम्रि-समि-तिरि १०४५ ° साति हिति युति ज्ति ११४८ साधनकीत विशेषणभेदकं धं कर्ता-साहि साति चेति वैद्येकि धारि-333 सिव्यादिः क्तिः सीमान्तकांगीत् प्रीचान्ते ३१४ सुच चतुर्दिने: ,४८५ सुभदीदानम्बार्यानां धी स्वः समाधी: सेरिम्पे ६९३ सूचनावचेपणसेवासाइसप्रतिग्रव- ८८४ स्तेन सार्यां ०० ह स्तसुरभिपूते मैन्यादि वीतूपमानात् ४०३ मूर्यागस्वस्य तिष्यपुष्पस्य ग्रामत्यः २६० म्लाबोदिइ-ची-यलस्यातो न ती- १०५२ सक्षष्टः । १०१,१ स्रजः याद्यात् तनीण्च ८८३ स्जदभचपाठालतो निलानिमतु-सः नागुर्धः ११५२ सेकसीक स्टपस्स स्टन- ५०० सेतुक-ख-प-फेवा ६६ सेनक्षात् सरी: ११५४° सेमऽच्च क्रव क्रिय गुच मृड् मृद- ११६८ से डॉंग्रनसप्रदंशीऽने इसीऽधि: 755 सेर्लुक त-थासी सन्थो ऽकुर्या सीवा ७०४ स्तु स्तन्भ स्तुन्भ सन्भ सन्भयः- ०६८ सानि गदि सदि इदि दूवे रित्: ११३० सुवृक्षि: युशात् ४६ स्त्रियां चिचतुरी सिस्टचतस्य ऋवत्- १५०

स्त्रियामत चाप्

समाजः । स्ती भर्ध: 8 4 = स्त्रीयुचंडिस्ति ८८ स्तीवास श्रकोः स्यादान पाचाघाघाचार्सि- ५१० स्यादो र्ङिष्टीमेन ग्रु: ७३६ स्थोजी जाङी: ७८५ समीध:सख्यादिदासवयीऽर्थ- २६२ म्,जमीऽसेऽरवस इ.स् ५.८६ स्पर्जायामाङ: ८८५ सृहि यहि युद्द जेरायः: स्काय:स्कीवा १०७८ क्षिङ पूङ रनुज्ञ स् किर गिर द्विय- ८०८ क्षिभ्यो र्घात ध्वर्ये मञ्च ०८४ स्म हय(S) ननुजानाप्रतियो: सन: १९८ स्ट्वरप्रथमदल्सभीऽङ खे- ७०८ मार्थेस्ययदि लतौते ८६१ खदैधायोद हिमयय प्रयय•स्कार- ११३८ स्यभीर्खक 205 स्यमौजस घि: ८१ खखडं न: €80 स्यात् व्यपित् किंदा ५६६ स्यादे: सो सीप: कीऽषढवरच: स्वादे ङें ऽस्थो वा काणी ६११ स्यादी नवद्रोऽये ७२० साबर्चती गार्थक्यम् ठीकाणी - ६१५ स्याद्यहर्नु-रस्तु व्वेन सन्मढीसे: ७४७ स्थानस्थाराझुप फे \$39 स्यानादादादायत्री: खेरान क्यां- ५५० स्योदेती ४२ सङ्मेधास्मायात् विन्वा ४४३ सम्ध्यस्यस्यत्रहुद्वांदङ्की १८३

सिवहीस्त्रोऽद्यादेः मुगः ५१३

सवाद:। सिवाय सव ज्वर तारी वृद्धाः-सि-विष्या-देवस्य टेरद्राश्ची की १०४६ से:स्यमस्य १५२ सेर्ड १०४८ संजंस जेंड कि जीना मि से बगत- ११२ स्ती-वि:फी १०२ स्व:स्वेद: ५४० . स्वटीभ्यांध्यमत्रसारेर्खेग्पः १०६ स्वप ऋष ध्वी ङ्ज् ११२५ स्तप रची यत प्रच्छ विच्छ धाच- ११४४ स्वपीधिः ७८१ स्वयं शंवि संप्रादः भूवी डु: ११३२ स्त्रशदि-नि-चित्त्यं व्यं ६४ सवीं वर प्रश स्त्रस्य तन् पिति धप्र खाचबीरौरीहिखा ३१ स्वाङ्गान्ने २६८ खासंडी ऽचि दि: ६२ खामीयराधिपतिदायादसीचि- ं ३०८

इन: जिन पि: प्रश् इनगमजनखनचनामुङ्खीपी- १३० इनगमजनखनचनामुङ्खीपी- १३० इनगम् हम्पः सिखादिमिण् वा १९२ इनजनाद्गमादेडं: ११० इनजनाद्गमादेडं: ११० इन सङ-उविधि अणिति प०१ इनो वधष्टीकालि दीमे तुवा ६०५ इनो वधष्टीकालि दीमे तुवा ६०५ इनो वाची प१८ इन्प्रार्थमेनीऽभी सौ मौ धं: १८८ इन्प्रार्थमेनीऽभी सौ मौ धं: १८८ इन्प्रार्थमेनीऽभी सौ मौ धं: १८८ इन्प्रत्यांमिनीऽभी सौ मौ धं: १८८ इन्प्रत्यांमिनीऽभी सौ मौ धं: १८८ इन्प्रत्यांमिनीऽभी सौ मौ धं: १८८

सवादः । क्रमासयीक्षां है ८४५ इसार्ट: मेभी ऽद्वीहिनचणश्रसवधी- ५०६ इसाहा दिसे जापामी ८०२ समाहा २५० इसामानी श्री ७७० द्रमास्त्रीपोऽभ्रित्यस्यी: ७०५ इसको लोपी ऽगी ५६० इस्यासी: ८०१ इसोऽननरः स्यः ८५ इसीऽन्तः फः प्यू इसिधि ७२४ इस्ते प्राची प्राध्वं जीविकीपनिषदी- ७६७ इस्रोतत्तरीऽनजकः सेलीपः ०६ डाका: खेर्न र्घ: ८३० काकोऽनालोप:स्यां ७३१ ष्टाकी हि: ११०५ षायन: १००४ हिंस दीप कम्पाजन सिङ्कमः ११२२ इक्समी देधिः ६०१ क्षे: खेरनकि चि: ७४८ र्इंडन: २५१ हेपुरणीप्रमाणीभ्याम: ३३१ क्षेत्रपोद्योप्रीय ५४० क्रीअस २१० इरो हो है। हान:सैा १८२ हाइसेरित ८१० ही उत्तावा ७३२ क्रीघाचान्दगुद्धिनो वा १०६२ की बीरी क्याचायातां पच्- ७८४ क्वादे: खः क्री च १०८२ द्वादी रे दि: ७२६ क्वीदेजिं: ६६०

ही वचाची ७२०

स्वादः ।

खस चक् खि पूरुष प्रट, टर्स, दश्र दश्र, दश्रू, भव **१४६, १४**८∼१५४ षम् ग ३१⊏ প্ৰব হ गि ٠ ۶ पादिढ १०६६, १०७३, १०८१ प्रस्, हर्र, हप्रर-हप्रप्र इ क १८८, ३१६ र ङ घि ,८१,८२ प्रट, है३३, ८५८ द्रच द्रत् ४ 352 इन्वत् ६८५ खित् ५३२, ७२१ दुल ₹ **उ**ङ् 93 चक चप् ٠, मर क ०६, २६४-२६८, ३१५ एङ एच कत् ३ २१६, ३३६ एइ ऐच् ३ अब् গি प्रच्पं, प्रच्**६**, ६२१, ६४७, €५१, ₹१€ कित प्रव, प्रद, र्प्ट, ८१८, ८१८, ८०८, ६६१, ६६२, ६६**६, ६६७, ६६**८, EE0, ११६0-११08 ७५६, ७८१, ८०८, ८३१, ८३२, की प्रस्, हर्रस्थर च्ह्ह, १०५√-१०५७, १०**६**४, ११४४, ११७४, ११८१, ११८२. क्रत १६५ भ प् क्ति १२, (सि-सुप्) ७८, (तिप्-स्थामहि) भाग भ्रद, १६४ भभ् क्रीव १२२ भास १३ ञप् खथ् ञम् खप

व्यस इ टि ६२ टी प्रस् ६६३, ६५८, ६५६ ठी ५२८, ५८३३ ड ३०६, ३१६ खित ४६७ धी प्रस्ट, दर्र ढ २८१-२८४, ३१६, ६₹र ढभ ३ ढवत , ६२७ ठी पूरुट, टइइ, ट्€० बाउट हैं याप ३ चम ३ चु ⊂, २३-२५, १२२, १४२, १४३, १७०, ५४२, ६१५, ६१६, ६२६, इटन इट्ट, ७०८, ७१०, ०१४, ७१६५७१⊏, ७३३,,७३४, ७४°, ७५२. ७४%, ७५८, ७६४, ७८४, ८०४, हरर, दर्ट, दर्द, दर्द, 8065. 8062 त ५२० ती प्रह, ६३३, ६४२ ६४४, ८४७, **६६१, ६६**२ त्य १८ . ची ७६ २८८ २६३, ३१५ शी प्रस्. टर्डर ट १४, ४३१ टा ५३४ टान्तवत ^दरै हो १६-६६

इ. १३

नवादः। हि ६२. ६३. १७४, ५०१, ५३६, ५३७. प्रमृद्ध, ६३२, ७१६, ७२०, ७२६. . ८०२ ८३६ ८५६, १११८ बिढ २८५ ही ७८. १८१-२८७, ३१५ दीकान्तल १०१४ ध २८३, २८८, ३१६ ধি দ म ११, १५८, १५८, ६३१, ७८० नि १६,३४,४८, ५६, २०४, २०५, न्द्रस, इद०, इद०, ३६६, ३६८, ४४८, ४५०, ४५१, ४०६, ५०८, प्रथ, २०५, १८०, १८४, १६९, ८६४, १००४, १००८, १०२५, १०२८, १०३४, १०४४, १०६५, १०७५, १०७८, १०६६, ११९४, ११३६, ११७८, ११४८, ११५५ नी २० 39 % प प्रत्र, ६व६, ६४८, ६५०, ८व६, द्यू ०, दह् ०, दह् १, ८२६ पि ' १०० पी ७६, २८८-३०१, ३१३, ३१५ पंवत् १७१, ३२०, ३२७-३२८,३५०,४६३ ती ७६. ३० ८-३१५ भी ७६, २८०, ३१४, ३१५ स् ५ क ८४ बहुल ११८४ ब्द १३

म २८४, ३१६

भि ५४

व्य

इल

सपाङ:। म ५३१. ५४४, ६५६, ६५४, ०५०, 988, E8E, E65-E96, EOE, दयर दे१६, ह१द, ह१हं, ह२० माद्य १२५ म २० य अश्य यप 3 यस य ल ₹ 49° क ५३६, ५8• र्भ ५, २२, ७७, १०४, १४४, रॅं६४, १८५, १८६, १८८, १६६, २२४, ₹₹ , ₹8£ , 889 , 8£4 , ¥£0. ¥€₹, ¥€¥, €₹७, €₹٤, €¤₹, € E8, 9₹0, 080, 901, 9EE. E01, E22, E20, 8026--- 802E, १०११, १७६०, १०८०, ११७३ ť €. ७ सि १४ लुक ८३, १६१, १६८, ५४६-२४८, ३१८, ३०६, ४२८, ४६८, ४१८, प्रथर, ६१४, ६००, ७५४, ७६३. लाप १५, ३०, ३८, ७०, ११८, १८३. २४२ सीप २६-२८, ७६, ७०, १०३, ११७, १२०, १२४, १२६, १४८, १८८, २११, २२४, २१०, २५५-२६०.

११७, २८८, ४२०, ४२४, ४१०,

४६५. ४८८, ५४२, ५४०, ५५६,

प्रदेर, प्रदे**ं**, प्रदें, प्रवें, हर्रे,

६२२, ६२८, ६४१, ६४२, ६५८, । इस

,

सवाङः । €€0, €07, €0€, €£1. 007. · ७३१, ७४०, ७५०, ७६५, ७७५, ८११, ८३८, ८४४, ८४५, ८४८, ८४६, ८४६, ८२६, १०४०, १०४२. १०००, ११०० ला وتتو 3 9 5 वस 3 f4 8 8 83 ति ६, २३-२५, २६ ३३, १२८, ४१६. \$08, 40€-40¢, 6E8, 6E8. ७१८, ०५५, ८४१, १०४१ श्र स ष ३१८ षी ७६, ३०२ ३०८, ३१५ ●स ११०, ५४८, ५०१, ७६७ सङ्गावतः १५१ सिख १८-४५ मन्त्र (३८ स्त्रीलिङ्ग ११४७-११६० स्य ८५. सि ८६-२० ख ४, ४४, ४४, १५२, १५३, १६७, १७२, ३३०, ४३७, ४६३, ५५६, €₹5, 088, 0€€, 000, 00€, ७६८-८००, ८००, १०१४, १०३४, ३१५ इष

' सुम्धबीधं व्याकरणम्।

सुवादः। भाक २०५ पहर ६१३ नन् ४२६: ७८८, ७८१ भाग १८१ नम् १८६ नाप् ८५७ थम १५६, ५५०, ५०१, ६०२, ६६६ श्वस ५८३ . चहन् ८४६ न्याण १८१ स्राम् । प्रदर् ६०७ नुन् ८२०, ८२६ प्रमा ६४२, ७६४, ८८२, ८२१, ८२३, नुम् ११० 1 \$\$3,393 द्रम् ४१७, ४१८, ५५४, ५०३, ५८४, पण् ७८४ भूद्रक, भूद्रह, भूद्रद, ५०६, प्रशाम ७२८ ६१६, ६१७, ६२३. ६२४, ६३०, | भू प्रत् ६४८, ६४०, ६६४, ७०८, ७३६, म ६२ '७४७, ७६२, ८०७, ८०६, ८१०, मन् ६८५, १०१४, ११०१ टट₹, १०३३, १०५३, १०६६, निष् ट२२, ८३१ १०६०, ११००१-१००४, १००६, मण् ८००, १००८, ११३० وه عع، وهعه , وه وه. ووهع, ووهع, 8099 र्भूम ५६१, ७२२ खम ४१७, ४१८ कत् ५० रिन् ८४० क्ष प्रदर्, ६८० **ष्ट** €२, ५६५, €१^८ द्धाम् €८० चन् ५७ 65 €३ ऋष ५४१, €७० जन् ७६२

ं सवादः ।

नुषा १६३, १६८, १६२, २१०, २४३, २४५, ५६८, ६३५, ७४१ यक् प्रत्, प्रत्, हक्ष, हक्ष यन् ७४३, ७८२, ६२४

स्वादः।
या ७१८, ०६८
य ६०१, ६२१,७१८, ७६८
यम् ५८१, ७१८, ६२८

मुत्राङ्गः ।

सन् प्रष्टु, प्रथ्न, प्रश्च्यः सि , प्रथ्नु, ६०३, ६४,० सम् ११३, ०५३, ०६६, ८६७

म्रादेश-सूची।

सूत्राङ:। च १३३, २०६, ३२५, ५५०, ६८६ अपनी २२६ **प**ङ् ५६०,००८ चन प्रमू, ६८७ षतुम् ६८६, ७२३ षध्म ६८६, ७२३ षदमुर्च २२५ पद्रि १०४३ षाध प्रश्र . चन् ३२५ षान २०५ षगङ् १७२ " चाम् १६६ चसुमुर्द्रच् २२५ षम् १०४६ चय ३५ षय १०६, ११७८, ११७६ षायङ १३२ चयम् २०३ षर प पल ८

भव् ३५

चव ३६,५२२ चटा ३५१ सुनाइ:।

वसन् ११६ प्रमुङ् २३१ चस्य ६५२ चयाक धर् मह २१५ भहन् ११६ भक्र ३५४, ४३२ चा ६, १०८, १२६, १३०, १४६, १८६, १८७, २१२, .२५६, ३२६, **२४७, ४०२, ६०८, ६६४, ७८२,** चाकम् २१^८ षाङ् २१७, २१६ चात् १०६, २५६ थान ५⊏० भान ७७० मानङ २०१, २०२ चाम १३०

चाय ३५

चार् ट

খাল ೭

भाव

चार ४२२

सचाडः । संवादः । भासन ११६ कट ८१४, १०३८ बाह्र ७२३ ऋ प्रवृष् ७३५ क्रफ प्र ११२. १२१, १०३, २५४-२५६, ख्ट प्रश्र पुरुषु, . ७८४, ७८६, ८१३, ८१६, ए द. १०६, १२६, १३०, १४०, ५०६, C ? 2 હપૂષ્ઠ, દેલ્દ ८३५ का एकाट, ३५२ द्भत १७३, २५४-२५६, ६४०, ७०५ . एकात्र ३५२ -इन १०६ एङ २१८ दनेय ४२१ एधि ६७७ द्रश्च १३५, ५८५, ५८८ एन २०८ इयम '२०३ एर ४२२ द्रर ६९६ 3 9 द्रस ८११ ऐङ् २०३ र्षे १४८, १६१, २३६, ३८६, ४८५, ऐस १०६ प्रथ, प्रद. ७०१, ८१२, ८१३, भी ५,६५३ F099, 3809, 582 **र्द्र**ङ *७*०६ भीत् ३३० भी ह. १२८. १३०, १४५, १०८, २३४ र्ष्यम् ५४६ र्युम ५४६ भौड़ः २३८ र्दूर् ८१२ का ६४, ४५६, ६०२, ६०२ ६०४, च ६६, १२१, १३८, १७३, १६४, १०€३ काउट २११, १०€१ २२८, २३५, ५३५, ६८८, ८२८. 620 कत ४०८ ४१२ चङ् २४० कन ४०४ **चत् १७३**, ८१६ काव ४१२ घदन् ११६ का ४०६-४१२ कि ७४€ खदीच २२५ की ८३३, १०४८ **छर्** ६२८ की सं कश्र खर् १३५, ५८५, ५८८, ७१८ उस १२८, १३०, ५६३, ६७५, ६८६. क्रप ६४६ घी क १८०, ११४, ६४६, ७६६, ७६७

स्वादः ।

सभाकः।

चेप ४७० चोद ४०० कसाञ ००६, ००७ खङ २११ ख्याञ ००६,००० ग प्र. ६४, प्रम. ६०२-६७४ गङः २११ गच्छ ५६० गमि ⊏०६ गा ६८२, ७१३ गि ६०० गी ७१२ 30 € ₹, ₹9€, ₹99, €9€ चक्र १७८, २११, ८८६ घस्न ६७३, ६७४ বি ৭৪দ उर्ध प्र घी ८२८ **७** प्र, प्र, प्र, ६० ङक ४१६ **ख**ःख् २११ इत्य ⊏३५ • **छ**। २०१, ३२१, ६५५, ७३२, ७४३, ७४५, ८४६, १०३१, १०४८ **ङ** ७००, ७२६, ७३**६**, १०⊏३-१०⊏५ ख्डी ६१२,६३०, ⊏५४ खुर ४२५ र्छ ६११, ६१२ च ४६, ६४, ५५९ ७५५ फ़ुत्र

च ८१५

₹ 84. € 2. 44 € में ४६, प्रद्रह , प्रपूर नाम १०६१ अरस ११५, ३७८ नहिं ६०० ला ५६७ निघ ५६७ न्य ४७२ म ४६, ६१, १७७, ५५६ ज ४६, ५१, ५२, ५८, ६०, ५५€ ट ४७, ६४, ५५६ ड ४७, ४८,६४,१४४,२१८,२३३,४५८ डन २३३ डनङ ८४६ डभ्यम् २१८ डसङ् १८४ डा १२०, २३२ डि १६० ड १४१ डी १२५, २००, ६०८ ४७, ६१, १७४, १७७, ५५७ ष ४७, ५१, ५२, ५८, ६०, १०७, १८६, ३५५, ५४६, ५००, ६६८ चप ६८६, ७२३ त ६४, १६४, २१८, ४४६, ४६६, ६६८, ७०३, ७०४, ७२४, ६५७, ६८७, १०८६, ११२१ तक ७६०, ८०१

सवाङः । तिरच २२५ तिर्दि १०४५ तिष्ठ ५६७ तिस्र १५० तुङ १८१, १८४ तुभ्य २१५ त्न १३६ १४० र्ते २२०-२२२ च्य ४०० चग: ३५१ त्व २१५ लद २१५ त्वा २२०-२२२ थप ६८६. ७२३ द्य पूद, ६४, २०६, पूपूर दङ १८३, २४१ दम ११६, १०८८ दव ४७० दिगि ६५६ दे ७३५ ' दोषन ११६ ०७४ • घार् द्वा ३५१ **४ ६१, १७७, ५०५, ०३७** भड़ २३०, १०४६ धम ५६७ . f⊌ €9१, 9°€ में ७३५ ध्यम ६५० म ५१,५२,५८, ६०, १०५, १३४, १८२, २०२, २१८, २६२, ५६८,

७५६, १०५२, १०५४, १०५८--

१०६२

सवादः। नम् ११६, २२०-२२२ ना १२३ नि ११४८ निशे ११६ ની (*m*) હવ नु () ५०,५३ नंद ४७० नेग्रा ७४२ नौ २२०-२२२ प ६४. ५५.६ पङः ७८६ पद्ये ११६, २२३ पप्त ६५२ पश्य ५१० पाद ३४०, ३४८ पिव ५६० भी ६४५. १०८०, १०८१ पीष्य ७८३ पुर पुरुर प्रत ११६ о С в Ц व ५८, ६४, ५५६ बंड ४०० म ६१, १७० भ मगी २२६ मर्ज ७५१ भिम २०७ भीष ७८५ मू ६८२ भी २२६ म ५१, ५२, ५८, ६०, १३४, १६०,

२०४, २१६, १०४, १०४, ६८६,

१०६२, १८६४

म्बाङः ।	स्वाइ:।
मद् २१५	वध ६७८
मन ५८०	वक् ६६३ •
मम २१५	वय २१५
मसक ४३६	वर् ४७० .
मह्य २१५	दर्ख ४७०
मा २२० २२२	वस् २२०-२२२
माम् ११६ .	. वां २२०-२२२
मि ११८० "	বি (·) १०२, १८ ৩ •
म् (×) ६८	वी ५८६
र्म २२०-२२१	शन्द ४७०
भीव ८१५	वीच ६५२
य १५,५२,७१,१३४,५८८, ६८१	ग ६६, €०, ⊏१७ •
यकन् ११६	भ् कन् ११६
यच्छ ५८७	माधि <i>६७७</i>
यप् ११७६	मि १६२
यव ४००	भीय ५६७
युव २१५	भीषन् ११६
युष्माक ४३६	य ४७१
यूग २१५	य ६५२
यूपन् ११६	ष ४०,६०,०४, ११२, ४३६, ५००,
योम् १०६	५०२, ६२५, ६३३, ६३४, ६६३,
₹ १४, ०२-०४, ४३४, ४०३, ६०४,	⊏१ <i>६</i> , ⊏४ ६
€£°	षङ् १५४
₹ ड २२०, २६१	म ६५-६०; २०४, ३१३, २००, ४१३,
41 880	ક≀કુ. 4્દદ, ૧૦૪૬
रि ६२०	मधि १०४५
રી ૪૮૦	समि १०४५
म्म ३५, ४१, ५२ ८२४	साध ४००
व ३५, ४३, ५२, १३६, ५८८, ६६४,	भीद ५६७
६८६, ७२७, १०६३	₹ 2 8 % ~
बङ:् ७८७	स्थ्व ४५०
वच ७२५	मु ११६

सुग्धबीधं व्यावारणम्।

4 . 8

स्य ४७० स्पी १०७६ . स्वात् ११२,११४ स्विन् ११२,११४ स्वे ११२ स्वाह:। स्व १५७ इ ११७ हि ११६ स्वाष:।

शन्द-सूची।

--

पृष्ठाङः ।

9818: 1

थका ७५ ' षवि ८५ ऋग्नि €२ भगणी ६८ चवत् ११३ भागर ८३ षतिषम् ७० चतियुचाद व १०६ प्रतिलची 📢 चितिसर्वे ५५ भ्रत्यसंद १०६ त्रदसुयच् ११२ षदम् ११८, १२३, १२६ चनडुह ८८ चनादि प्पू व्यने इस् ११८ ष्मन्च १०२ चन्तर ५४ चनरा ७४ भगवतर पर

चप १२२ श्रविधान १२८ षमुसुयच ११२ षम्बाला ७५ श्रम्बिका ७४,७५ अस्य ८६ ष्रर्थमन् ८३ मर्जन ८५ चल्प ५५ पहार ७५ ऋवगाह १२८ षवयाज् १०३ चवी ७⊏ षष्टन् ६७ षस्ज १२४ चास्य ८५ चसद १०४-११० चह्न १२४ षानन्द प्र माग्रिस् १२३

पृष्ठादः ।

प्रषादः ।

भासन ⊏३ ददम ८८, १२२, १२४ द्रमका १०० उन्यगास् ११० **उ**चकीस १२० उच्चैम् १२७ **उ**त्तमा १२० उत्यान १२० **खदक** ⊏३ सदच ११२ ' **ड**दन्च १११ खपानह ११० उभ ५३ खमा ७३ उभनम ११८ उधिह १२० जर्जा १०३, १२४ महत्विज् १०५ ऋभुचिन् ८६ एकतर ८३ एतद १०४, १२२, १२५ कटप्रू ७० काति ६४ कार्भ प्रद काली ७८ किम् १०१, १२२, १२४ क्षता १२० क्रान्च १०२, १११ क्रीष्ट्र ६८ खन्ज १०२ खसपू ७० गवाच् १२५

गिर्दे १८२१ गी ° ७२ गोपा ७६ गीरच् ११६ गीविन्द ५१ गौरी ७७ **म्लौ** ७२ च १२७ चतुर् ८१, १२२ चमू ८० चिकीर्षं ११५ जचत् ११३, १२५ जगनम् ११७ निगिवस ११७ जरा ७५ नायत् ११३, १२५ नामाह ७१ भार द€ जान ८१ तति ६४ तद १०४, १२२, १२५ तनू ८० तन्वी ७८ तिर्थ्यच् ११२, १२५ तिर्यंन्च, १११ तुदत् १२५ तुरासाह ८१ त्रतीय ५५ त्वतीया ७४ त्यद १०४, १२२, १२५ वि ६५,०० लिष् १२३

पृष्ठादः ।

ब्रहाद्धः ।

ददत् ११३, १२५ दिधि ५५ -दध्य ११४ दन्त ५७. दिधच् ११६ दिव १२१ दिश १२३ दीधी ६७ ′ दीव्यत् १२६ दुर्गा ७४ टुह् दद हन्मू ७० द्या १२३ दंवेज् १०२ डोष ११६ द्या ८० द्रह ८८ द्दि ६५, ७० दितीय प्रम हितीया ०४ द्वाक्र पूर धिकार्द १२० धन ८२ धनुस् १२६ षार ००, ८६ धिक १२० धंन ७१ ध्वस ११७ नदो ७८ লমূ ৩০ मञ्च ८८,११४ भासिका ०५

मिर्जर ५५ **ৰি**মা ৩ মূ नी, ६० न् ०१ नेम ५४ मी ८० पचन १२५ पञ्चन ८६ पति ६३ षदृ ५८ पथिन हड् पथस १२६ पर ५,४ परा १२० परिस्ज १०२ परिवाज १०१ षाद ५० पित्र ७० पिधान १२८ पिपच १२६ पिपठिष ११५ પીલ, ⊂4 पुनर्भू ८० , पुसस् ११८ पुर १२१ पुरुदंशस् ११८ पुरी उराभ , ११४ -पूर्व ५४ पूषन् हरू पृतना ७५ पेचित्रम् ११० पील ७०

पृष्ठाङ्गः ।

पृष्ठाद्धः ।

प्र १२० प्रथाच १११ प्रथम ५५ प्रद्यो ८६ प्रधी ६६,७१,⊏६ ८३ मार्र प्रातर १२० प्रान्च् १११ प्रियचतु**र्** ८२ मुद्धि ७६ बुध १०१ बह्मन् ८२, १२३ भगवत् ११३ भवत् ११३ भात् १२५ मानु ६६ भूवाह ८८ भस्त् १०३ भार ७५ . भू ८० मघवत् ८४ सघवन् १४ मति ७६ मिथन् ८६ मधु ८६ महत् ११२ मात ८० माया ७४ मास् ५८ स्कृत्द ५१ सुष्ट् यय

यक्तत् ९२५ यञ्चीन ८२ यति ६४ यद १२२, १२५ यवकी ६६,६० यभस्वत् ११३ न्यम्बिन् ८३ युज्ञ १०२ धवन् ६५ युक्तद १०४११० যুগ ५८ रवि '६२ राज १०२ राजन् ८२ राम ४५.५१ रे ७२ लच्यी ७८ लिह ५०, ल्नी ६८ वगाह १२८ वधू ८० वन दर, वा १२० वाच् १२२ वाणो छद वातप्रमी ६५ वायु 🚓 ध वारि ८४ विद्यम् ११६ विभाज् १०२ विविच ११६ विम ११४

प्रशादाः ।

विश्वाहर:

विश्व पूरु विश्वपा पूर विश्वराज् १०३ विश्ववाह् ८९ विश्वसृज् १०२ বিশ্বা ৩৪ 'विषा ६ ह वनहर्न ६२ वेधस् ११६ व्यक्त ५१ मलत् १२५ भक्षा[°] ५८ श्रुष्ट प्राक्तिंन् ८३ क्योर्घ ८३ ग्रडघी ६० यी. ७६ श्रीपति ् ६२, ६३ यीपा ८४ , श्रीमन् ११३ শুবি, ৩€ यन् ८५ श्वेतवाह १० वद ११४ सक्षि ८५ सखि ६२ सञ्जब १२१ सम ५४ सर्व ५३ सर्चा ७४ साध्वन्य ५५ सानु ८€

सायाक्र ५८ सुखी ६८ स्ती ∢⊏ सृत्स ११६ सुधी ६६, ७६, ८६ सुनौ ८६ सुपाद १११ सुविस् ११६ सुभू ७०, ८० मुभू ८० सुयुन् १०३ सुरै ८०, ८६ मुख् ७० सुवल्ग् १२४ सुवस् ११८ सुबय् ११२ सुयो ६६ संहिन्स् ११७ स्त्री ७८ स्त्रिष्ट् पद सुह् ८८ स्पृष् ११४ सृति ०६ सम् १२२ स्रम् ११७ स्व ५४ खगडुह १२३ खप् १२€ स्तयम् ७० खर् १२७ लस ८. इरि ४८

स्रीत्य-स्वी-समासान्त-स्वी।

इतिवन १२७ इविस १२६ हा १२७ इंडिं। पृष्ट

वृक्षादः ।

स्वादः ।

मुबाइ:।

र्द्रप[े] २५३, २५७, २**६१-२७१, २७६**,

स्वादः।

च दरह, हरह, हरध, हरह, हर्, द ४०३

३६८, २०३, २०८, १०६, ३८१- व ३३२ २८५, २८६-१८५, १८०, ३८६, वि ३४८

पन् ३४४

८००, ४०१, ४०४-४०७

षस् ३४२, ३४३

ड ३३८-३४१, ४०१ ष ३३४-३३६, ३५३, ३५**६-**३६५

वोपदेवमते समासान्ताः तिख्तानर्गता एव, (५२०) स्त्रं द्रष्टयम् ।

तिद्वत-सूची।

स्वाद्धः.।

ं सूचाइः:।

ष ४१५, ४२६, ४३३ ४४६ षयट् ४६१ श्रम ५२२ प्या ५२० चाल पुरुष् चायन ४१५, ४२६, ४३३ भारक ४४६ माल् '४४६ श्राहि स्पृरः ' **४** ४१५, ४२६, ४३३ ° इक ४१५, ४२६, ४३३ इत ४८४ इन् ४४४, ४४९ इन ४४६ द्रभ ४४६ इस ४८.६ इसन् ४०५ **४य** ४२८, ४३३ द्रर 88६ प्रस्त ४४६ प्रष्ठ ४६६ र्द्रक ४२८, ४३३ र्द्रम ४२८, ४३३ र्द्रेग अ१५, ४२६, ४३६ द्यमु ४६६ र्दूर ४४६ सर ४४६ कल ४४६, ४४६ एदाम् ५६० पन ५१६

एय ४१५, ४२६, ४३३ का ४२६, ४३३ 828 किट किए ४२६, ४२३ कल्प ४०० किन् ४४६ क्ष ४६२ गोयुग ४८० गांत्र ४ ह चक्कलम ४८४ व्रशा ४८८ चतमां ४६५ चतरां ४६५ वन पूरह वरट् ४८०, ४८१ **घशम् ४८२,** ४८३ चमात् ४२२,५०• चित् प्रस् चुन्न ४८८ भृत् 880 चि ४१५ नाइ ४८२ उ०५ ह डट् ४५० डतम ५१० डतर ন্ত নি

डाच् ५०१, ५०१ – ५०५

	स्वाद्धः ।	र्वाहः।
ভি ৰ ৭০৩	,	स इष्ठ ५, ५२५
ण ४४६		सट् ४५१
गायन्य ४२०	,	मतु ४४१
यीन ४२८, ^{४३३}		मयट _{् ४} ८६
चीय ४१५,४₹₹		भावट् ५०६
त ४३८, ४४५, ४४६, ४४६		मिन् ४४६
तम ४६२		्य ४१५.४२८,४३₹,४४५
		यु ४४५, ४४६
तसट् ४५२, ४५३, ४५४		₹ 884, 888
तयट् ४६० तर ४६२		रूप ४६४
		्रहच ४⊏१
तम् ५११	•	रिं धरप्र े
ति ४४५		ભ ૪૪૬
तिषट् ४५६		व ४४५, ४४६
तु ४४५		वत् ४४२, ५०८
तैल ४८२		, સ્ત્ર્ય
व ५२५		नह ४७८
त्य प्र्		विन् ४४३
त्यग् ५२५		स १६६
च ४४६, ५१३		माकट ४६३
चाच् ५००,५१२		ं शाक्तिन ४६₹
ल ४३८		षड्गव ४८०
षट् ४५५	• ,	ष्टन प्रथू
षाच् ५२३		ष्टर ४८१
दन्नरं ५०६		યા ૪૧૫, ૪૨,₹, ११४^. ११४१
दा प्रश्व, प्रश्		शास्त्रन ४१५, ४३३
दानीं ५१६		थिया ४२५.४३३
देशीय ४००		र्गाका ४१५,४३३
देश्य ४००		′पाोका ४२८,४३३
दयसट् ५०६		र्काश्च ४१५,४३३
धाच् ४५६		काा, ४१५,४३३
न ४४६		· स 88६
ना १८६		सच् ४८५
भाग ४८५ भा ४४५		म्नात् ५१८, ५२२

पृ ष्ठा र :	
भव १२१	1
भन ६१६	कम ३४२
भद ३६१	काश ३४६
पर २६१ प्रम ३७१	कास ३४६
भन्च ३१५	कित ३३८
	कुट ४०२
भान्ज ३०५ भाग ३४४	कुन्य (कृषि) ३०६
•	कुष ४१२
• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	क्र ४०७
भग ११८, ११२	क्रत ३८८
षस १६६, १६१	कृत ४१६
मान्छ (माछि) ३१६	क्रान्व (क्रावि) ३८७
षास ३०६	क्राप १४८
इ(न)३६५, चिंधि-इ(क) ३६६, चिंध इ(ङ)	क्राष १२४
900	क् ४००, ४१०
द्रन्द (इदि) ३१३	क्राम ३२०
द्रन्ध ४०६	की ४०६
द्भव ४०२	क्रम ३८३
र्बुड़ ३०्४	चवा ४०७
र्द्रम ३०५	वि ३१८
र्देष १४६	বিশ ৪০৩
च्छ ११५	त्तु ३८१
खष १२६	च्यु ३६५
कर्षु ३७६	खद ३१०
म ट १ ३२, ३ ८५	खन ३५२
महक् ४००	ख्या ३६७
मर ज ३४०	गणा ४१३
चरण ४००	गद ३११
एस १३८	गम ३३५
काट ३१८.	गुप ३१६, ३४०
काथ ४१४	गुष्ट ३५३
1	उप २३२

पृष्ठाङः:

	पृष्ठाद्य: ।	वकायः ।
गै ३२८	ति ने '३४०	
ग्रस्य ४१२	तु रे≂१	
यह ४१०	त्द ३६८	
	त्र ४०५	
गुत २१६	हन्प ४००	
ग्लुन् च ११६ ग्लै ३२०	हप ३८२	
	. हह ४०५	
म्ना ३२० स्टब्स ३०४	तॄ ३३६	
चकास ३ <i>०४</i>	चंप ३४१	
चच ३०५	चम ३८८	
चम ३२०	बुट ४०३	
चह ३२०	लर '₹8€,	
चाय २५३	त्विष ३५६	
चि ३६६	त्सर ३२३	
चित ३०१	इंद ३३६	
चुर ४१२	दन्भ ३६८	
चृत ४०१	दन्भ १३ ^८	
म्बुन ,३०४ , कृद ४०५	दय 1,88,	
कुद ४०३	दिरद्रा १०३	
क्री ३६०	दल ३२२	
जच ३०१	दह १२०	- ,
काम २५५, ३६४	दा (न) , १३१, द	1 356
सभ ३४१	दान ३५५	
नाग्ट ३०२	दिव १८८	
जि ३२३	दिह <i>१.</i> ०६	
अपू ३८०	दी ३६४	
चा ४११	ही भी ४९ ^८	
क्या ४११	दीप ३८५	
द ी ६४०	द ३३४	
तचा ३२४	दुह्र ३७६	
सन ४०€	हप ३६२	
तप ३२०	हम् ३३ ० ,	
ताय ३४५	(6, ,, ,	

	इंडाइ:।	1
₹ ४११	t	पुष ३८१
दें ३४६	Э-	पू ४१०
दें (प) १२६		पूर- ३८५
दी ३८१		प्र _व ्य
द्य ३€४		प ४११
द्युत ३४०		प्याय २४४
ष्ट्री ३६७		प्रकृष्ट ४०१
हु १३४	į	भा १६२
दिष ३७८		फण ३५१
धा ३८० ⋅		मध १२२
धिन् व (धिवि)		बद , ३११
મુ ૨૯૦ **		वस ३४०
मू ४१०		वुध इह्म
भूप		म् १८२
र्घ (ठ) ३२६	ì	ः ` ` भज ३५५
भा ३३०		भी ३८४
नद् (पदः) ११२	1	म रहत्— ३०१
नस (गास) ३२२		स इप्रथ, इद⊏ ं ्रे
निम (गाम) ३८०		भाग ३५२
नक्ष इत्पू		न १०
निर्मा(गिनः) ३ २ ४	,	धसभ इस्य
निज ३८६		વામ ક્યૂર
निन्द (गिदि) ३१५		त्य इं.पू
निनम (निमि) ३०६		भिच ४०१
न (गा) १६४ .		।। ३६ <i>७</i> , ३८८
₹ ४०३	1	ान ३४७
ष्ट्र इदर		म इं≀६
पना ३५१	1	भद ३१३
पत ३५०		मह उरह
पद ३१५		808
यम ३५२		च ३.१.१
पा १३०	1	न ५८० हि. ३ ८२
•	1 3	v 4c1

वेडाहः।

पुष्ठा<u>इ</u>. । ।

4812: I

सा ३३० स्व ३१५ म्बुच ३१६ શાત્રા રૂપ્રદ્ यम ३२१ यस १८३ था ३€६ ય રદય बधी ३२३ बध ३८१ बन्ज ३५६ बाज ३५१ राध ३८१ क् ३४६, ३⊂१ अस ४०४ क्ष ३२५ लष ३५३ सिप ३८६ लुभ १८३ वस ३०० वज ३१६ वद ३५६ वप ३५० वस ३५० वभ्र ३६३ वस ३५६, ३०६ वह ३५७

वा ३६६ विक ४०२ विज ३८६, ४०४ विद ३६० विष ३८६ म ३६०, ४१२ ०४६ मध वे ३५० नवो ३०८ व्यच ४०२ व्यय ३४६ व्यघ * ३८.१ वे। ३५८ ब्रज ३१६ র্ম ৪০০ ब्री ४११ भद ३५१ ज्ञ क्ट३ • श्राला ३४५ भ्रम ३२६ शान ३५५ भास *३,*०8 श्री ३०६ गुच १२० म ४१**९** मी ३६० श्रम्थ ४११ যি ২૫૫ ञ्चित ३८१ यस ३७१ ষি ২4•

मुग्धवीधं व्याकरणम्।

	पृष्ठाङः।	
ष्ये १२६	6"	स्था (क्षां) ३३०
क्षिव ३२३	À	स्तु (षा) ३६५
षक ३३८		सृप्र ४∙१
सद (षद) १५१		स्फाय ३४४
सन (घन) ४०७		स्पुर ४०३
सन्ज (षन्ज) १३०		स्फुल ४०३
सह ३५०		स्यन्द '३४८
नि च (षिच) ३८६′ °		स्रु ३३४ '
सिष (षिष) ३०६, ५०८		खन(ध्वन) ३५२
भिव (थिव) ३८८		स्वन्ज (ध्वन्ज) ३४० '
સ		स्वपु(श्वप) ३७१
म् ३०६, १६३, (षू) ३६६	.	स्तृ १३२
स ११२ °	ļ	इन १६३
स्त ४०१		इय ३२२
स्टप ११५		हा (क) ३८४, (ङ) ३८८
सेव (षेव) ३४६		हि ३८०
सी (षी) ३८.•		हिन्स (हिसि) ४०५
स्तन्द ३३५		₹ 4c\$,
स्तु ४०६		इ ३५४
सु (ष्टु) ३८१		क्री ३८४
सुभ (हुभ) ३४१		ह्यू ३३१
ન ૃ ફેટફ	ļ	की ३८४ ह _ु १३१ हे १५६
		-

	सूत्राङ्गः ।	
ष ११५३, ११५४	भ्र नट्	११३४, ११३५
चक १००५, १००€	प नि	11€0
षयु ११४२	भनी य	८६०
षन् ८८३	भन्त	3999
मन टटर, ११५,प्र, ११६	२, ११६६ पत्	११३४, ११३५ ११६० ११३८ ११२६ ११३४, १ १ ३५

स्पादः ।

पृष्ठादुः ।

स्वाद्धः ।

स्वाइ: ।

श्रम १०३२ च्याय्य (१२८ चाद ११२६ चाल १११२ 🖫 १०१२ इक ११३८ द्रकावका ११३८ इत् ११३० द्रच ११३३. इ.सा ११०६ इस १०३२ छ ११२३ उस १०३२ कक ११२० क टहर् कान १०८६ कि १२१८, १११६, ११४५, रू. ११४६ कर १११€ र्कलिम रूप्प क्त १००७, १०५०, १०६२ — १०६५ न्नावत् १०५० क्ति ११४० क्वाच ११६४, ११६६ क्रा ११०८ कार १११४ काष् ६८१, ६८३, ६८५, ६८६, ६८७, ११५०, ११५१ क्रा ११२७ इन्न ११२० क्तनिप १०३२ कमु १०८६, ११०३ कि ११३१

-हिंस् १०३२, १०४० च्चरप् ११२१ ं ख १०२१—१०२४ खनट १०२६ खल् ११६१ खभ १०१५---१०२० वि १०१३ ु विषा १०२७ ख्काञ १०२७ ঘ १०३৪ घञा ११३४, ११३५ घुर १११५, घिवानि ६६० ध्यम ६७०, ६७१ ङ ११५६, ११५७ ङ्ज ११२५ चणम् ११८३ चतुम् ११६४ ञ्क १११० १९०१ उ टक् १०१०, १०४७ ड ६६७, ११३६ डर ११३६ डु ११३२ ग १०४०, १००१. गुक हरु ग्यन ११४१ णनट् १००३ विष ११५६ षिन् ६६३ णिन ११४० तव्य ८६०

मुखबोधं व्याकरणम्।

स्वादः । स्वादः ।

तिक् १००७ व व व १०३२

त्व १०३२

विक् १०३२

विक् १०३२

विक् १०३८

विक् १०३८

विक् १०३८

यह १०००

सह १०००

स्त्रीत्य-सरासान्त-तित्ति-कदन्तेतर-प्रत्यय-(घात्ववयव)-सूची ।

स्वादः । स्